

Shri Vateshwar Ācharya Virchit

VATESHWAR SIDDHANT

(Sanskrit, Hindi, Vijnan Bhāshya Upapatti Sahit)

★



Edited by

Acharyavar Ram Swarup Sharma

and

Pandit Mukund Mishra Jyotish Acharya



Published by

Indian Institute Of Astronomical & Sanskrit Research

Gurudwara Road, Karol Bagh, NEW DELHI-5

Shri Vateshwar Achārya Virchit

VATESHWAR SIDDHANT

(Sanskrit, Hindi, Vijnan Bhāshya Upapattī Sahit)

★

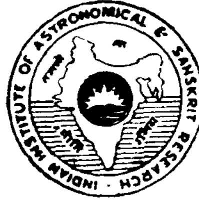


Edited by

Acharyavar Ram Swarup Sharma

and

Pandit Mukund Mishra Jyotish Acharya



Published by

Indian Institute Of Astronomical & Sanskrit Research

Gurudwara Road, Karol Bagh, NEW DELHI-5

Published by

Indian Institute of Astronomical

an Sanskrit Research

Gurudwara Road, New Delhi-5

Aided by

Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs of
The Government of India.



First Edition 1962

Price : **Rupees Thirty only.**



Printed by

Manager, Padmshree Prakashan
at the Everest Press, Delhi.

श्रीवटेश्वराचार्य-विरचितः

वटेश्वरसिद्धान्तः

संस्कृत-हिन्दी-विज्ञान-भाष्योपपत्ति-समलंकृतः

सम्पादकौ

आचार्यवर पंडित रामस्वरूप शर्मा

संचालक :

ज्योतिषाचार्य पंडित मुकुन्दमिश्रः

उपसंचालक :



प्रकाशक :

इंडियन इंस्टीट्यूट आफ आस्ट्रानोमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च

प्रकाशक—

इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ आस्ट्रानोमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च,
२२३६, गुरुद्वारा रोड, करौलबाग़, नई दिल्ली—५

भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विभाग के अनुदान से प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९६२

मूल्य तीस रुपए

मेनेजर पद्मश्री प्रकाशन द्वारा एवरैस्ट प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

Foreward

The Indian Institute of Astronomical and Sanskrit Research is now presenting its first publication in the shape of the first volume of VATESHWAR SIDDHANT to facilitate the study of the science of Astronomy as known to the ancient people of India. We hope that it will be found useful by the Learned Societies inerested in that subject. The publication has been made possible by the munificence of the Governments of India and of Jammu and Kasamir for which our grateful thanks are due to them and also to Professor Humayun Kabir, the Honourable Minister for Scientific Research and Cultural Affairs and to Bakshi Ghulam Mohammad, the Honourable Prime Minister of Jammu & Kashmir. Our thanks are also due to the Governments of Nepal, Uttar Pradesh, Rajasthan and Madhya Pradesh and to many other persons who have kindly helped in the good cause by becoming patrons and members and by giving donations and valuable advice and suggestions.

Brijlal Nehru,
President,
Indian Institute of Astronomical
and Sanskrit Research.

NEW DELHI,
1-3-1962

H. H. Maharaja
of Tehri Garhwal,
Chairman M P.
Research Programme Committee



TEHRI HOUSE
5, Bhagwan Dass
Road, New Delhi.

भारतीय ज्यौतिष की संरक्षक 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट ग्राफ ग्रास्ट्रोनोमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च' नामक संस्था अपने ध्येय पूर्ति के लिये प्रथम पुष्प यह 'वटेश्वरसिद्धान्त' संस्कृत विज्ञानभाष्य और हिन्दी भाष्य सहित सहर्ष प्रस्तुत करती है । भारतीय ज्यौतिष शास्त्र के तीनों अंगों—सिद्धान्त, होरा और संहिता—के प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों का सुसंपादन विज्ञानभाष्योपपत्ति और हिन्दी विज्ञान भाष्य सहित भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विभागों तथा प्रांतीय सरकारों के अनुदान से हो रहा है । वटेश्वरसिद्धान्त इस वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य में भारत केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों (उत्तर प्रदेश, जम्मू काश्मीर, राजस्थान एवं मध्यप्रदेश) ने आर्थिक महान् सहयोग दिया है । एवं ज्यौतिष की उन्नति के लिये संस्था का उत्साह बढ़ाया है, इसके लिए हम भारत केन्द्रीय सरकार एवं उक्त राज्य सरकारों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं ।

साथ ही जनता से हम साग्रह अनुरोध करते हैं कि वह प्राचीन भारतीय ज्यौतिष को अपनावें और यथाशक्ति इस कार्य में सहयोग प्रदान करें ।

(मानवेन्द्रशाह)

भूमिका

आनन्दपुर नामक नगर में वेद स्मृति धर्म-आचार (व्यवहार) विचार में चतुर महदत्त भट्ट नाम के एक ब्राह्मण थे। उनके पुत्र ग्रहों से वर पाये हुए ज्योतिषियों में श्रेष्ठ इस ग्रन्थ के बनाने वाले अतिशय प्रतिभाशाली श्रीमान् वटेश्वराचार्य ने आठ सौ दो (८०२) शाका वर्ष में जन्म लिया। आनन्दपुर प्रायः पञ्जाब प्रदेश के अन्तर्गत है यह बात पञ्जाब में रहने वालों के कहने से और अन्य प्रान्त के लोगो के कहने से भी मालूम होती है। अपने नाम के सिद्धान्त (वटेश्वरसिद्धान्त) के प्रत्येक अधिकार के समाप्ति-स्थान में "इति श्रीमदानन्दपुरीय महदत्तसुत वटेश्वरविरचिते स्वनामसंज्ञिते स्फुटसिद्धान्ते इत्यादि" ग्रन्थकार के लेख से भी मालूम होता है कि ये ग्रन्थकार (वटेश्वराचार्य) आनन्दपुर के रहने वाले थे, लेकिन पञ्जाब प्रान्त में जो आनन्दपुर है वहां के ये थे या किसी दूसरे आनन्दपुर (किसी दूसरे प्रान्त में रहा होगा) के थे इसके लिए कोई प्रबल प्रमाण न मिलने के कारण निर्णय नहीं कर सकते हैं, जन्म समय से चौबीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'वटेश्वरसिद्धान्त' की रचना की यह बात ग्रन्थकार के लेख ही से मालूम होती है, ग्रन्थरचना समय के लिए उनका श्लोक यह है।

'शकेन्द्रकालाद् भुजशून्यकुञ्जरै (८०२) रभूदतीतैर्मम जन्म हायनैः।
अकारि सिद्धान्तमितः स्वजन्मनो मया जिनाब्दै (२४) र्द्युसदामनुग्रहात् ॥"

त्रिस्कन्ध ज्यौतिष (सिद्धान्त-संहिता और होरा) में अतिशय निपुण अपने समय में अद्वितीय ज्यौतिष काव्यकला को जानने वाले श्रीपति (जन्मसमय शक वर्ष ९२१) से भी अतिप्राचीन वटेश्वराचार्य हैं, यह बात उन दोनों आचार्यों के जन्म समय देखने ही से मालूम पड़ती है, जो सिद्धान्तरत्न (वटेश्वरसिद्धान्त) अभी तक लुप्त ही समझा जाता था। विद्वन्मण्डली में उसका बहुत आदर था भास्कराचार्य रचित सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी मे 'कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाः ययुः' वटेश्वरसिद्धान्तोक्त इस वचन के लेख देखने से तथा ब्रह्मा की आयु में वटेश्वरसिद्धान्त में ग्रहादि भगणों के पाठ देखकर मालूम होता है कि 'अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु' यह सिद्धान्तशिरोमणिस्थ भास्करकृत आक्षेप वटेश्वराचार्य ही के ऊपर है। गणकतरङ्गिणी में इस सिद्धान्तग्रन्थ के विषय में महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी के लेख से भी उसके बहुत पूर्व समय से प्रचार में किसी तरह का सन्देह नहीं रहता है। वटेश्वराचार्य आर्यभट के बहुत भक्त थे, और ब्रह्मगुप्त मत के बहुत ही विरोधी थे, आर्यभटीय के गणित पाद में आर्यभटकृत

मङ्गलाचरण—

"ब्रह्मकुशशिबुध-भृगु-रवि-कुज-गुरु-कोण-भगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ।।"

के अनुसार ही अपने सिद्धान्तग्रन्थ ग्रहकक्षास्थितिक्रमानुसार वटेश्वराचार्य ने भी मङ्गलाचरण किया है जो कि अधोलिखित है—

"ब्रह्मावनीन्दु-बुध-शुक्र-दिवाकरार-जीवार्क-सूनु-भगुरून् पितरौ च नत्वा ।
ब्राह्मं ग्रहर्क्ष गणितं महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिलं स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम् ।।"

लेकिन आर्यभटगीतिकापाद में एक युग ४३२०००० में भूभगण = १५८२२३७५०० इतना होता है यह कह कर "अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् । अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्" इससे भूभ्रमण स्वीकार करते हैं, लेकिन वटेश्वराचार्य भूभ्रमण को नहीं मानते हैं, उसका (भूभ्रमण) खण्डन भी नहीं करते हैं। आर्यभटीय के टीकाकार परमेश्वर कहते हैं कि वस्तुतः 'स्थिरैव भूमिः' ब्रह्मगुप्त ने इस आर्यभटमत का खण्डन किया है यदि कहा जाय कि ब्रह्मगुप्त जैसे इसके अतिरिक्त बहुत स्थलों में खण्डन किया है वैसे ही यहां भी किया है उनका स्वभाव ही आर्यभटमत खण्डन का है लेकिन सो बात नहीं है, आर्यभट स्वयं पहले 'अनुलोमगतिर्नौस्थः' इत्यादि लिखकर—

"उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः ।
लङ्कासमपश्चिमगोभपञ्जरः स ग्रहो भ्रमति ।।"

इस लेख से भूभ्रमण को स्वीकार नहीं करते हैं, आर्यभट के अपने मन में भी 'पृथ्वी अपने अक्ष के ऊपर घूमती है' इस तरह की धारणा दृढ़ नहीं थी—यह उनके लेख से मालूम होता है, ग्रहों के भगणादि साधन के लिए गणित भूभ्रमणाधारक है इसके लिए प्रमाण है, ग्रह भगणादि ज्ञान के लिए कोई प्रक्रिया भी नहीं दिखलाई है, इन्हीं कारणों से आर्यभट मत के श्रद्धालु वटेश्वराचार्य ने भूभ्रमणविषयक उनके मत को स्वीकार नहीं किया है, वस्तुतः आकाश में जो ग्रहादियों के पिण्ड हैं वे सब परस्पर आकर्षण शक्तिवश से चलते ही हैं, जो गणितकर्त्ता या ग्रन्थरचयिता जिस पिण्ड पर रहते हैं वह उसको स्थिर मानकर भिन्न ग्रहादि पिण्डों को चल मानते हैं, हमारे भारतीय प्राचीनाचार्यों के पृथ्वीपिण्ड के स्थिरत्व स्वीकार करने में यही कारण है, आर्यभट ही की तरह उनके अतिरिक्त हमारे प्राचीनाचार्य और नवीनाचार्य भी भूभ्रमण जानते थे। लेकिन आर्यभट की तरह स्पष्ट शब्दों में उसका उल्लेख नहीं करने में पूर्व कथित कारण ही कारण है। मङ्गलाचरण के बाद वटेश्वराचार्य मुनि आदि से बनाये हुए शास्त्र के अभ्यासबल से अपने में ग्रन्थरचना करने की क्षमता दिखाकर ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तकथित युगादिमान और ग्रहों के स्पष्टीकरणादि कुछ भी ठीक नहीं है इसलिए ब्रह्मगुप्त मत के निराकरण के लिए मुनि आदि रचित शास्त्रसम्मत ग्रन्थ बनाने की आवश्यकता जानकर इस ग्रन्थ (वटेश्वरसिद्धान्त) की रचना करते हैं।

'श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्त्तु-तिथि-पर्व-दिनादि पूर्वे ।
वेदी ककुब्भवन-कुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुतिविदां बहुमत्यमस्मात् ।।'

इससे वटेश्वराचार्य स्व-रचित ज्यौतिष ग्रन्थ (वटेश्वरसिद्धान्त) में वेदों के प्रधानाङ्गत्व नेत्रस्वरूप दिखलाते हैं । इस ज्यौतिष ग्रन्थ के वेदों के प्रधान अङ्ग होने के कारण इसके पढ़ने के लिए किन्हें अधिकार है, किन्हें अधिकार नहीं है —इस विषय के लिए जिस तरह अन्य आचार्य लोग कहते हैं उस तरह ये आचार्य (वटेश्वर) नहीं कहते हैं । इस विषय में भास्कराचार्य इस तरह कहते है—

तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ।।

महाभाष्यकार भी 'ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञेयश्च' कहते हैं, सिद्धान्तशेखर आदि ग्रन्थों में भी इस विषय में बहुत लिखा गया है । सिद्धान्त ग्रन्थ के लक्षण वटेश्वराचार्य ने जो कहे हैं भास्करकथित लक्षण से कुछ कम है । भास्कराचार्योक्त में 'प्रश्नास्तथा सोत्तराः । यन्त्रादि यत्रोच्यते, यह है वटेश्वरसिद्धान्त में प्रत्येक अधिकार में प्रश्नाध्याय है किन्तु प्रश्नों के उत्तर नहीं है, इस ग्रन्थ में सिद्धान्तग्रन्थ लक्षण में यन्त्र नाम का भी उल्लेख नही है । अन्य प्राचीन ज्यौतिष ग्रन्थों और नवीन ग्रन्थों में भी 'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते' इस पुराणकथित ब्रह्मदिन के समान ही ब्रह्मदिन देखते हैं, लेकिन आर्यभट सिद्धान्त (आर्यभटीय) और वटेश्वरसिद्धान्त में एक हजार आठ (१००८) युगों का एक ब्राह्मदिन कहा गया है, ये दोनों आचार्य युगचरणों (सत्ययुगादि) को भी समान ही मानते हैं । लेकिन अन्य आचार्यो ने युग चरणों में असादृश्य (असमानता) स्वीकार की है । मनुमान में भी मतभेद है । पुराणों में और पूर्वकथित आचार्यद्वय के अतिरिक्त आचार्य ग्रन्थों में इकहत्तर (७१) युगों का एक मनुप्रमाण कहा गया है, परन्तु आर्यभटीय में बहत्तर (७२) युगों का एक मनु कहा है, वटेश्वराचार्य भी इसी को मानते हैं—

'चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्' इत्यादि मनुस्मृतिकथित वचन प्रमाण से दैवमान से सत्ययुगचरणमान = ४०००, त्रेतायुगचरणमान = ३०००, द्वापरयुगचरणमान = २०००, कलियुगचरणमान = १०००, इन सब के योग करने से युगमान = ४००० + ३००० + २००० + १००० = १२०००, तथा युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वयेकसङ्गुणाः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः, इस सूर्यसिद्धान्तोक्त वचन से सन्ध्या सन्ध्यांशसहित सत्ययुगादि चरण = ४८००, ३६००, २४००, १२००, और इन युगचरणों के क्रमशः सन्ध्यासन्ध्यांश = ८००, ६००, ४००, २००, मनुस्मृति आदि स्मृतिशास्त्र ग्रन्थों में सन्ध्या सन्ध्यांश रहित केवल शुद्ध ही सत्ययुगादिचरणमान मनु आदि स्मृति शास्त्रकार कहे हैं । यदि उन सत्ययुगादि चरणमानों को तीन सौ साठ (३६०) से गुण दिया जाय तो भास्करादि कथित उनके मान आते हैं ।

'युगानां सप्तभिः सैकामन्वन्तरमिहोच्यते' इसके अनुसार ७१ युग = १ मनु, एक ब्रह्मदिन में चौदह मनु होते हैं इसलिए १४ मनु = ७१ युग × १४ = ९९४ युग, लेकिन 'सन्धयः

स्युर्मनूनां कृताब्दैः समाः' इत्यादि से चौदह मनु सम्बन्धी सन्ध्या सन्ध्यांश मान=६ युग, इसलिये १४ मनु+सन्ध्या सन्ध्यांश=९९४ युग+६ युग=१००० युग=१ ब्राह्मदिन =१ कल्प, इससे पुराणोक्त वचन के अनुकूल ही प्राचीनाचार्य और नवीनाचार्य कथित ब्रह्मदिन प्रमाण सिद्ध हुआ, बहत्तर युगों का एक मनु होता है उसके वश से ब्रह्मदिन प्रमाण=१००८ युग आर्यभट ने जो कहा हैं जिसको वटेश्वराचार्य भी कहते है, इसमें अधिक प्रमाण नहीं मिलने के कारण ब्रह्मगुप्त ने उनके मत का खण्डन किया है। कलियुगादि से पहले तीन युग चरण बीत गये हैं इस ब्रह्मगुप्तकथित विषय का भी खण्डन वटेश्वराचार्य करते हैं, जैसे—

"युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत्।
तस्य द्वापरे पादो युगगतये ये स्फुटो नाऽतः॥"

लेकिन वटेश्वराचार्य भी तो 'युगत्रिवृन्दं सदृशाङ्घ्रयस्त्रयः' इससे उसी बात को कहते हैं ब्रह्मगुप्तोक्त जिस विषय का खण्डन करते हैं। वटेश्वराचार्य क्या खण्डन करते हैं वे ही जान सकते है। ब्रह्मगुप्तोक्त भूपरिध्यानयन का भी खण्डन करते हैं। वस्तुतः ब्रह्मगुप्त का वह आनयन ठीक नहीं है। ब्रह्मगुप्तोक्त बहुत विषयों का खण्डन अपने सिद्धान्त में वटेश्वराचार्य ने किया है, लेकिन ये खण्डन ठीक है या नहीं इस बात को विवेचक लोग विचार करें। आर्यभटमत खण्डन के लिये ब्रह्मगुप्त ने जिस तरह के वचन का प्रयोग किया है उसी तरह ब्रह्मगुप्तमतखण्डन के लिए वटेश्वराचार्य का है। जैसे आर्यभट मत खण्डन के लिये ब्रह्मगुप्तोक्त वाक्य ये है—

"स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुटं स्वगणितस्य।
सिद्धं तदस्फुटत्वं ग्रहणादीनां विसंवादात्॥
जानात्येकमपि यतो नार्यभटो गणितकालगोलानाम्।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम्॥
आर्यभटदूषणानां संख्यावक्तुं न शक्यते यस्मात्।
तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि॥"

अपने सिद्धांत (वटेश्वरसिद्धांत) में ब्रह्मगुप्त मतखण्डन में वटेश्वरोक्त वचन ये हैं—

"भानुभुजादियोगाच्चन्द्रे शुक्लं प्रकल्पितं तेन।
नो लग्नभुजानुगतं वेत्ति न शुक्लं सुतो जिष्णोः॥
जिष्णुसुतं दूषणानां संख्यां वक्तुं न शक्यते यस्मात्।
तस्मादयमुपदेशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि॥
एकमपि न वेत्ति यतो जिष्णुसुतो गणितगोलानाम्।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथग् दूषणान्येषाम्॥"

वेधविधि को जानने वाले ब्रह्मगुप्त के जिस तरह अनेक विवेचनात्मक विषय से सम्पन्न नाना तरह के तात्त्विक विचार से युक्त ब्राह्मस्फुट सिद्धांत है उसी तरह के वटेश्वर-

सिद्धांत भी है। इन दोनों महारथी आचार्यों की अपूर्व प्रतिभा में किसी के मन में लेशमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता है। इन दोनों आचार्यों के बाद जो आचार्य हुए हैं वे सब बहुत स्थानों में इन्हीं दोनों आचार्यों के सिद्धांतग्रन्थ में लिखित विषयों के ही प्रतिपादन करते हैं। मेरा कथन सत्य है या असत्य ये बातें इन दोनों आचार्यों के सिद्धांतग्रन्थ (ब्राह्मस्फुटसिद्धांत और वटेश्वरसिद्धांत) को और अन्य सिद्धांतग्रन्थ देखने से स्पष्ट है। आर्क्ष (नाक्षत्र), चान्द्र, सौर, सावन, ब्राह्म (ब्रह्मासम्बन्धी) जैव (बृहस्पतिसम्बन्धी), पैत्र्य (पितृसम्बन्धी) दैव (देवतासम्बन्धी) मानव (मनुष्यसम्बन्धी) इन नव प्रकार के मानों में सौरमान, चान्द्रमान, सावनमान और नाक्षत्रमान इन चारों मानों से मनुष्यों के व्यवहार चलते हैं, भास्कराचार्यादि सिद्धांतों में पूर्वकथित चारों मानों (सौर, चान्द्र, सावन और नाक्षत्र) से ही मनुष्यों के व्यवहार कार्य कहे गये हैं लेकिन वटेश्वराचार्य उपर्युक्त नौ प्रकार के मानों में किन किन से कौन-कौन कार्य होना चाहिए इसका वर्णन करते हैं, जैसे—

"पर्वावमतिथिकरणाधिमासकज्ञानमैन्दवान्मानात् ।
प्रभवाद्यब्दाः षष्टिर्युगानि नारायणादीनि ॥
आङ्गिरसादेतेषां ज्ञप्तिः पैत्र्याच्च पैतृको यज्ञः ।
कामलजासुरदैवैस्तेषामायुः परिच्छित्तिः ॥
अध्ययननियमसूतकमखगतयः सच्चिकित्सा च ।
होरामुहूर्तयामाः प्रायश्चित्तोपवासाश्च ॥
आयुर्दायश्च नृणां गमनागमने च सावनान्मानात् ।
ऋत्वयनविषुवदब्दा युगं क्षयर्द्धी दिनस्य सौरात्स्युः ॥
ज्याद्याविधयश्चार्क्षाच्छशधरभगणोद्भवाश्च नाक्षत्रात् ।
मासाश्च वासराणां संज्ञाः सदसत्फलावगतिः ॥"

इस सिद्धांत में ग्रहादि के भगणादि साधन युगमान के द्वारा किये गये हैं, यदि युगीय भगणादि को कल्प में लाना हो तो युगीय भगणादि को एक अयुत (१००००) से गुणने वे कल्पीय हो जाते हैं। यदि कल्पीय भगणादि को ब्रह्मा की आयु में लाना हो तो उनको ७२००० इतने से गुणने पर ब्रह्मा की आयु में आ जाते हैं। जैसे—

युग प्रमाण = ४३२००००, कल्पप्रमाण = ४३२००००००० तब

$$\frac{\text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}} = \frac{४३२०००००००}{४३२००००} = १००००$$ इसलिए युगवर्ष से कल्पवर्ष को १००००

इतना अधिक होने के कारण युगोत्पन्न ग्रहादि भगणादि को १०००० इतने से गुणने से कल्प में वे भगणादिक होते हैं। इसी तरह कल्पीय ग्रहभगणादि को ब्रह्मा की आयु में लाना हो तो

$$\frac{\text{ब्रह्मायुवर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{४३२००००००० \times ३६० \times २ \times १००}{४३२०००००००} = ७२०००$$ इससे सिद्ध होता

है कि कल्पीय ग्रहादि भगणादि को ७२००० इतने से गुणने पर ब्रह्मा की आयु में ग्रहादि भगण हो जायेंगे। अहर्गणानयन भी वटेश्वराचार्य ने अनेक प्रकार से किया है, अहर्गण से अभीष्ट वार ज्ञानार्थ अहर्गण को सात से भाग देकर जो शेष रहे उसमें एक जोड़ देने से

वर्त्तमान वार होता है । प्रत्येक अहर्गणानयन प्रकार में इसी तरह लिखा है इन्हीं के अनुसार सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी अनेक प्रकार से अहर्गणानयन किया है और अहर्गण से वर्त्तमान वार ज्ञान के लिए उसी तरह किया है, परन्तु हरएक अवस्था में सैक ही नहीं करना चाहिए, स्थितिविशेष में निरेक भी करना चाहिए जैसाकि सिद्धांतशिरोमणि में भास्कराचार्य कहते हैं—

'अभीष्ट वारार्थमहर्गणश्चेत्सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्' इत्यादि । इनसे प्राचीन सूर्यसिद्धांत में अहर्गण के सैक निरेक करण सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है । लघ्वहर्गणानयन भी वटेश्वराचार्य ने किया है । ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में ब्रह्मगुप्त भी 'लघ्वहर्गणानयन' किया है परन्तु सिद्धांतशेखर में उसके आनयन के लिए कुछ भी उल्लेख नहीं है, इसमें क्या कारण है मालुम नहीं होता भास्कराचार्य ने भी लघ्वहर्गणानयन सिद्धान्तशिरोमणि में किया है यद्यपि यह आनयन ठीक नहीं है तथापि एक अपूर्व विषय है, प्रस्तुत सिद्धान्तोक्त वर्षेश, मासेश कालहोरेश ज्ञान के लिए विधियां और उनके क्रमप्रदर्शन के लिए जो विधियां हैं तदनुरूप ही सिद्धान्तशेखर में श्रीपति कथित है, इनको देखने से मालूम होता है कि श्रीपति ने ये विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त से या वटेश्वरसिद्धान्त से लेकर लिखे हैं । ब्रह्मगुप्तोक्त रविसंक्रान्ति का भी अधोलिखित श्लोक द्वारा आचार्य (वटेश्वर) खण्डन करते है । जैसे—

संक्रान्तिर्घर्मांशोः समस्तसिद्धान्ततन्त्रवाह्याऽतः ।
कुदिनामज्ञानान्मन्दोच्चस्य स्फुटो नाऽर्कः ।।
कल्पितभगणैर्द्युचराः कल्पितकुदिनैः प्रकल्पितैश्च युगैः ।
परिधीनामज्ञानाद् दृष्टिविरोधात्स्फुटा नाऽतः ।।

ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान ही को वटेश्वराचार्य जब अशुद्ध कहते हैं तो उसके सम्बन्ध से साधित ग्रहभगणादि मान भी अशुद्ध ही होगा इसलिए उन भगणों द्वारा साधित ग्रह भी अशुद्ध ही होंगे अत: अशुद्ध स्फुट रविवश से जो संक्रातिकाल होगा वह भी अशुद्ध ही होता है, लेकिन वटेश्वर का यह कथन तभी ठीक हो सकता है जब ब्रह्मगुप्तोक्त युगादिमान ठीक नहीं होगा, आर्यभटकथित युगादि मानों को वटेश्वराचार्य भी स्वीकार करते हैं, ब्रह्मगुप्तकथित युगादिमान ठीक नहीं है, हमने जो कहा है वही ठीक है इसके लिए कोई प्रबल प्रमाण नहीं देते हैं, तब उनका कथन किस तरह माननीय होगा । स्मृतिकारादि कथित पूर्वोक्त मानों के साथ ब्रह्मगुप्तोक्त मानों की तुल्यता के कारण और वटेश्वरस्वीकृत मानों को स्मृतिकारादि कथित मानों से विभिन्न होने के कारण इनका कथन दुराग्रहपूर्ण है यह मेरा मत है, इसको विवेचक लोग विचार कर समझें इनका मध्यमाधिकारीय प्रश्नाध्याय बहुत ही उत्तम है, उसमें बहुत उत्तम उत्तम प्रश्न है, लेकिन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भी इसी तरह के बहुत प्रश्न हैं, यह कहना कठिन है कि ये प्रश्न वटेश्वराचार्य के अपने हैं या ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के आधार पर लिखे हैं, इस विषय का निर्णय विज्ञ ज्यौतिषिक लोग स्वयं करेंगे ।

स्पष्टाधिकार

स्पष्टाधिकार में आर्यभट ब्रह्मगुप्त आदि सब आचार्यों ने वृत्त के एक पाद में २२५ दो सौ पच्चीस कला वृद्धि करके चापों की चौबीस ज्या साधन कर अपने-अपने सिद्धान्तग्रन्थ में पठित किया है। लेकिन वटेश्वराचार्य ने छप्पन (५६) संज्ञक विकला सहित कलात्मक ज्या साधन कर पठित किया है। इष्टचाप ज्यानयन विधि एक ही तरह की हैं। भास्कराचार्य ने भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण किया है, वटेश्वराचार्य भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण का नाम नहीं कहते हैं लेकिन शेषांशज्यानयन देखने से भास्करकृत भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण ठीक वटेश्वरोक्त के सदृश हैं। वटेश्वरोक्त शेषांशज्यानयन में यदि गतैष्य ज्यान्तरार्ध के स्थान पर गतैष्यखण्ड के अन्तरार्ध और प्रथम चाप के स्थान में दशांश लिया जाय तब दोनों आचार्यों के प्रकारों में कुछ भी भेद नहीं रहेगा, शेषांशज्या शब्द से शेष चाप सम्बन्धिनी ज्यावृद्धि समझनी चाहिए, इस विषय में सिद्धान्तशेखर में श्रीपति कुछ भी नहीं कहते हैं। प्रायः अनेक स्थलों में ब्रह्मगुप्तकथित या वटेश्वराचार्यकथित विषयों के अनुरूप ही श्रीपति ने लिखा है लेकिन यहां किस कारण से कुछ नहीं लिखा नहीं कह सकते। भास्करोक्त भोग्यखण्ड स्पष्टीकरण प्रकार का मूल ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तकथित प्रकार या वटेश्वरोक्त शेषांष ज्यानयन ही हो सकता है, उनका यह अपना खास प्रकार नहीं है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यद्यपि वटेश्वरोक्त से भास्करोक्त प्रकार सूक्ष्म है लेकिन भास्करोक्त प्रकार भी सूक्ष्म नहीं है उसमें भी बहुत स्थूलता है यह उसकी उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है। अन्य आचार्यों के ग्रहस्पष्टीकरण के सदृश ही इनका (वटेश्वर का) भी ग्रह स्पष्टीकरण है, मङ्गलादि ग्रहों के स्पष्टीकरण के लिए चार फल (मन्दफलार्ध. शीघ्रफलार्ध, मन्दफल और शीघ्रफल) सब आचार्य कहते है, मध्यम रवि और मध्यम चन्द्र केवल अपने अपने मन्दफल संस्कार करने ही से स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र होते हैं, लेकिन मध्यम कुजादिग्रहों के लिए पूर्वोक्त चार फलों का संस्कार जो कहा गया है उसमें मन्दफलार्ध और शीघ्रफलार्ध संस्कार करने के लिए कुछ भी कारण नहीं मालूम होता है, केवल अपने अपने मन्दफल और शीघ्रफल के संस्कार करने ही से कुजादि मध्यम ग्रह स्पष्ट कुजादि ग्रह होते हैं यह विषय गोल पर स्पष्ट देखने में आता है। मन्दफलार्ध और शीघ्रफलाध संस्कार विषय में सब आचार्यों ने केवल आगम प्रमाण लिखा है। स्पष्टीकरण के लिए किसी भी आचार्य का स्वतन्त्र विचार नहीं है ग्रहों के मन्दगतिफलानयन और शीघ्रगतिफलानयन अन्य प्राचीनाचार्यों के सदृश ही वटेश्वराचार्य ने भी किये हैं। अन्याचार्यों की अपेक्षा भास्करोक्त बहुत ही अच्छा है। सूर्य-सिद्धान्त में नतकर्म की चर्चा नहीं की गई है, वटेश्वराचार्य ने भी उसके विषय में कुछ नहीं लिखा है। लेकिन यह ठीक नहीं है, स्पष्टीकृत ग्रह में भुजान्तरादि संस्कार करने पर भी जो स्पष्ट ग्रह होते हैं वे स्वगोलस्थ स्पष्टग्रह होते हैं। वे जिस गोल में हम लोगों को दृश्य होते हैं उन्हीं को वास्तव स्पष्टग्रह हम लोग कह सकते हैं, गणितसाधित पूर्वकथित स्वगोलस्थ स्पष्ट ग्रह में जितना संस्कार करने से हम लोगों से स्पष्टग्रह (प्रत्यक्षीभूतग्रह) होते हैं उसी संस्कार का नाम नतकर्म कहा गया है, सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य ने रवि और चन्द्र को नतकर्मानयन किया है जो कि ब्रह्मगुप्तसम्मत है-- स्वयं भास्कराचार्य कहते हैं। लेकिन यह आनयन ठीक नहीं है, यह विषय नतकर्मोपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है। तथापि

उनके आनयन आदरणीय हैं क्योंकि इन्होंने एक अद्भुत नवीन विषय कहा है। जिसके विना सम्पूर्ण स्पष्टीकरण निरर्थक कहा जा सकता है। क्योंकि जिन स्पष्टग्रहों के लिए स्पष्टीकरण का विधान लिखा गया है उन विधानों से वस्तुतः ठीक स्पष्ट ग्रह की सिद्धि न हो तब तो वह विधान ही असफल हो सकता है इसलिए जिन आचार्यों ने नतकर्मानयन नहीं किया उनमें वह त्रुटि है, ब्रह्मगुप्त और भास्कर ने नतकर्म साधन कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है, आर्यभटादि प्राचीनाचार्यों में किसी का भी दृष्टिपात उदयान्तर संस्कार के ऊपर नहीं हुआ, केवल भास्कराचार्य ही अहर्गणोत्पन्न ग्रह में उदयान्तरासु सम्बन्धी ग्रहचालन फल संस्कार की आवश्यकता समझ कर विधिपूर्वक उसका साधन कर संस्कार किया है। उदयान्तर साधन में भास्कराचार्य की क्या त्रुटि है, उसको दिखला कर उसका वास्तवानय कैसे होता है और उसका परमत्व कब होता है ये सब बातें प्रसङ्गवश इस ग्रन्थ में स्थान विशेष पर हमने दिखलाई हैं। भास्करकथित उदयान्तर का मूल सिद्धान्तशेखर के त्रिप्रश्नाधिकार में श्रीपतिकृत विषुवांश और भुजांश का अन्तरानयन है यह किसी का मत है। परन्तु उक्त ग्रन्थ के उक्त अधिकार में उक्त विषुवांश और भुजांश का अन्तरानयन नहीं देखने के कारण वह मत ठीक नहीं मालूम होता है।। अभी तक इस देश के ज्योतिषी लोग जानते हैं कि तात्कालिक गतिसिद्धान्त का ज्ञान सबसे पहले भास्कराचार्य को हुआ, 'फलांशखाङ्कान्तर-शिञ्जिनीघ्नी' इत्यादि भास्करोक्त की उपपत्ति देखने से तथा

"दिनान्तरस्पष्टखगान्तरं स्याद् गतिः स्फुटा तत्समयान्तराले।
कोटी फलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादि केन्द्रे॥
तया युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्॥"

इसकी उपपत्ति देखने से तथा 'तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्' यहां तात्कालिकी शब्द देखने से भी ज्योतिषी लोगों की पूर्वोक्त धारणा की पुष्टि होती है। इसी तरह 'कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसम्पाते। मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य, इस भास्करोक्ति से वहां (कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त के सम्पात में ग्रह रहने से) ग्रहों की मन्दस्पष्टगति और स्पष्टगति के बराबर होने के कारण शीघ्रगति फलाभाव होना चाहिए, उसी पूर्वकथित स्थान को भास्कराचार्य शीघ्रगति फलाभाव स्थान कहते हैं। चलन कलन में तात्कालिक गति का यह सिद्धान्त है कि किसी चलराशि के परमत्व में और परमाल्पत्व में उसकी तात्कालिक गति शून्य होती है, भास्करकथित पूर्वोक्त स्थान में शीघ्र फल के परमत्व होने के कारण उसकी तात्कालिक गति शून्य होनी चाहिये, वही भास्कराचार्योक्ति से भी होती है, लल्लाचार्य शिष्यधीवृद्धिद नामक अपने सिद्धान्तग्रन्थ में कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त के योगविन्दु में ग्रह के रहने से शीघ्रगति फलाभाव स्वीकार करते हैं जिसका खण्डन गणिताध्याय में भास्कराचार्य 'धीवृद्धिदे चलफलं द्युगतेर्यदुक्तं लल्लेन तन्न सदिदं गणकैर्विचिन्त्यम्' इत्यादि से बहुत युक्तियुक्त किया है। इन सब को देखने से भी भास्कराचार्य के तात्कालिक गतिसिद्धान्तविषयक ज्ञान में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता है। लेकिन भास्कराचार्य से अतिशय प्राचीन वटेश्वराचार्य भी तात्कालिक गतिसिद्धान्त को जानते थे यह भास्करकथित भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण मूलभूत वटेश्वरोक्त शेषांशज्यानयन देखने ही से स्फुट हो जाता

है । भास्करीय लीलावती की निसृष्टार्थदूती नाम की अपनी टीका में 'चापोननिघ्नपरिधि प्रथमाह्वयः स्यात्' इत्यादि की व्याख्या में मुनीश्वर लिखते हैं—

'दोः कोटिभागरहिताभिहताः खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भिः' इत्यादि ज्याखण्ड विना ही चाप से श्रीपतिकृतज्यानयन के अवलम्बन से ग्रहलाघव में गणेशदैवज्ञ ने सब प्रकार लिखा है—'इति कृतं लघुकार्मुकशिञ्जिनी ग्रहणकर्म विना द्युतिसाधनम् ।' इस करण कुतूहलस्थ छायासाधनविषय भास्कराचार्याभिमान का मूलकारण यही श्रीपतिकथित प्रकार हैं । गणकतरङ्गिणी में महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी के लेख से भी मालूम होता है कि पूर्व कथित प्रकार श्रीपति ही का है । बहुत पहले से भी ज्यौतिषकों में इस बात की प्रसिद्धि है कि इस प्रकार के रचयिता श्रीपति ही हैं । लेकिन वटेश्वरसिद्धान्त के स्पष्टाधिकारीय 'ज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणाध्याय' के अधोलिखित श्लोक देखने से मालूम होता है कि पूर्वोक्तिप्रकार श्रीपति का नहीं है—

चक्रार्धांशा भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ता,
खव्योमेष्वभ्रवेदैः सलिलनिहताः पिण्डराशिः प्रदिष्टः ।
षड्भांशघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ताः स्यात्पिण्डराशिर्विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा ॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने निम्नलिखित श्लोक से ज्याविना इष्टज्या का चापानयन किया है—

"इष्टज्यया विनिहताः शरभास्करांशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृताः फलं तत् ।
त्यक्त्वा खनन्दकृतितः ८१०० पदमभ्रनन्दभागाच्च्युतं भवति धन्वविना ज्यकाभिः॥"

लेकिन इसीका आनयन वटेश्वरसिद्धान्त में निम्नलिखित रूप में है—

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्र हारो विशिखरविखचन्द्रैस्ताड़ितायास्तु मौर्व्याः ।
खखविशिखखवेदैराहता वेष्टजीवा त्रिभगुणकृतिघातज्यासमासेन भक्ता ॥
फलहीना नवतिकृतिस्तन्मूलेन च वर्जिता नवतिः ।
शेषं धनुरथवा यन्त्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम् ॥

इससे मालूम होता है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार 'वटेश्वरसिद्धान्त' ही से लेकर श्रीपति ने 'सिद्धान्तशेखर' में लिखा है—(१) 'वटेश्वराभिधेन ज्योतिर्विदा विरचित एको-ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थ आसीदिति तत्परवर्त्तिभिरनेकैर्ग्रन्थकारैर्व्याख्याविधातृभिश्च तन्मत-प्रतिपादनात्स्फुटमेव । परमयं ग्रन्थः प्रायो लुप्त एवाभूदिति बहुधैव प्रतीयते । एतत्सम्बन्धे गणकतरङ्गिण्याम् "यथा ब्रह्मगुप्तेनार्यमतादीनां खण्डनं कृतं तथैव वटेश्वरेण सिद्धान्ते बहुत्र ब्रह्मगुप्तखण्डनं कृतमस्ति, अस्यैव 'कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाययु' रित्यादिना ब्रह्मण आयुः सार्धवर्षाष्टकं गतमिति मतम् । अस्य सिद्धान्तग्रन्थो मया सम्पूर्णो न दृष्टः ग्वालियर महाराजा-श्रितस्य श्रीबालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रासकृत्पत्रं प्रेषितं परन्त्वद्यावधि किम-प्युत्तरं न प्राप्तम्" श्रीमान् म० म० सुधाकर द्विवेदिमहोदयो लिखितवान् ।

श्रीमान् भास्कराचार्यः 'तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धगतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः' इत्युक्त्या सार्धवर्षाष्टकं वटेश्वरमतमेव लक्ष्यीकरोति । मुञ्जालाचार्यकृत लघुमानसस्य इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्नेत्यादि दृग्गणितैक्यकृच्चन्द्रसंस्कारविषये तट्टीका कृता लल्लाचार्येण

श्लोकद्वयस्यास्यावरणमेवमुच्यते । "अथ चन्द्रस्य ग्रहसमागमच्छायाशृङ्गोन्नतिदृक्साधने वटेश्वरोक्तसिद्धान्तोक्तदृक्कर्मविशेषं श्लोकद्वयेनाहेति" । अथ श्रीपतिनापि सिद्धान्तशेखरे ग्रहयुद्धाध्याये २४ श्लोकैर्वटेश्वरसिद्धान्तानुसार एव चन्द्रस्य विलक्षणः संस्कारो ब्रह्मगुप्त-लल्लाद्यनुक्तः प्राय उक्त इति ।

अथच श्रीपतिना—

श्रीजिष्णुजार्यभटलल्लवटेशसूर्यदामोदरप्रभृतयोऽपि च तन्त्रकाराः ।
शक्ताः प्रवक्तुममलामिह तन्त्रयुक्तिमस्मद्विधो जड़मतिस्तु कथं प्रवक्ति ॥

इत्युक्त्याऽऽर्यभट ब्रह्मगुप्तलल्लाचार्यैः सममेव वटेश्वरस्यापि नामोल्लेखः क्रियत इति वटेश्वरसिद्धान्तः सर्वमान्य आसीदिति प्रतीयते । अत्र शङ्करबालकृष्णदीक्षितमतेन वटेश्वर-कृत एकः करणसारनामा ग्रन्थः ८२१ शकाब्दे रचित इति श्रूयते यत्र काश्मीरत्याक्षांशाः ३४।६ एतन्मिता ग्रन्थोक्त्या सिद्धयन्ति प्रायः सर्वेऽपि ज्यौतिषसिद्धान्तरचयितार एकं करणग्रन्थंमपि व्यवहारोपयोगिनं रचितवन्त एवासन्निति वटेश्वरसिद्धान्तानुसारी करणसार इत्याख्यो ग्रन्थश्च वटेश्वरकृत आसीदिति च प्रतीयते परमधुना वटेश्वरसिद्धान्तः, करणसारश्च न कुत्राप्युपलभ्यौ वार्त्तागोचरौ स्त इत्यलमतिविस्तरेण (२) । (१) यहां से लेकर (२) यहां तक सिद्धान्तशेखर के परिशिष्टस्थ लेख से भी मालूम होता है कि वटेश्वरसिद्धान्त के ऊपर अधिक श्रद्धा रहने के कारण श्रीपति ने पूर्वोक्तज्या और चाप का आनयन उसी सिद्धान्त से लेकर लिखा है और भुजकोटिज्यादिसाधनविना अहर्गण ही से ग्रहस्पष्ट करने के प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त में अधोलिखित हैं—

स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकाद् भूदिनैः कृतहृतात्पदानि तु ।
शेषकात्त्रिगुणिताद्गृहादितः पूर्ववच्च भुजकोटिसाधनम् ॥
मन्दजं बलभवं च तद्धतैर्भूदिनैर्भगणलिप्तिकोद्धृतैः ।
खेचरस्य भगणावशेषकं संस्कृतं कलिकयाऽखिलं स्फुटम् ॥
दोःफलेन सवितुश्चरासुभिः स्वेन देशविवरेण चोक्तवत् ।
संस्कृतं कुदिनभाजितं भवेन्मङ्गलादिखचरः परिस्फुटः ॥

यह विषय ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, वटेश्वरसिद्धान्त और सिद्धान्तशेखर में वर्णित है, इस विषय को भास्कराचार्यादि ने अपने सिद्धान्तग्रन्थों में क्यों नहीं लिखा इसको वे ही लोग जान सकते हैं । श्रीपति ने इस विषय को ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त या वटेश्वरसिद्धान्त से लिया होगा क्योंकि उनके सामने दोनों सिद्धान्त आदर्शरूप में उपस्थित थे ।

अन्य सिद्धान्तग्रन्थों में जैसे अन्य अधिकार सब अलग अलग वैसे है ही पाताधिकार भी पृथक् ही है परन्तु वटेश्वरसिद्धान्त में स्पष्टाधिकारान्तर्गत ही पाताध्याय है, पाताधिकार सम्बन्धी सब विषय स्पष्टाधिकारान्तर्गत ही वर्णित है, सिद्धान्तशेखर के पाताध्याय में वर्णित सब विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तोक्त या वटेश्वरसिद्धान्तोक्त हैं इन दोनों सिद्धान्तोक्त विषयों से कुछ भी विशेष बात नहीं है। इस सिद्धान्त में स्पष्टाधिकार सम्बन्धी प्रश्नाध्याय

भी उसी (स्पष्टाधिकार) के अन्तर्गत है और इस अधिकार में ग्रहस्फुटीकरण के अलग अलग अध्याय हैं। जैसे—

सूर्याचन्द्रमसोः स्फुटीकरणविधिः प्रथमः। स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरविधिर्द्वितीयः। प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिस्तृतीयः। ज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणविधिश्चतुर्थः। फलज्या-स्फुटीकरणविधिः पञ्चमः। तिथ्यानयनविधिः षष्ठः। प्रश्नविधिः सप्तमः। यह क्रम और किसी सिद्धान्तग्रन्थ में देखने में नहीं आता है, कर्णानयन के विषय में भी इस ग्रन्थ में बहुत कहा गया है जो भास्करादि सिद्धान्त में नहीं है॥

त्रिप्रश्नाधिकार में भी प्रतिपादन शैली आर्यभटादि प्राचीनाचार्य और उन (वटेश्वर) से नवीनाचार्य (श्रीपति·भास्कर आदि) से विलक्षण ही देखने में आती है, जैसे—विषुवच्छा-यानयनविधिः प्रथमः। लम्बाक्षज्यानयनविधिर्द्वितीयः। क्रान्तिज्यानयनविधिस्तृतीयः। द्युज्यानयनविधिश्चतुर्थः। कुज्यानयनविधिः पञ्चमः अग्रानयनविधिः षष्ठः। स्वचरार्ध-प्राणज्यासाधनविधिः सप्तमः। लग्नादिविधिरष्टमः। द्युदलभादिविधिर्नवमः। इष्टच्छाया-विधिर्दशमः। सममण्डलप्रवेशविधिरेकादशः। कोणशंकुविधिर्द्वादशः। छायातोऽर्कनयन-विधिस्त्रयोदशः। छायापरिलेखविधिश्चतुर्दशः। प्रश्नाध्यायविधिः पञ्चदशः। इन अध्यायों में वर्णित विषयों के देखने से ग्रन्थकार के अद्‌भुत पाण्डित्य का परिचय मिलता है। सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, वटेश्वरसिद्धान्त और सिद्धान्तशेखर में कोणशंकु साधन प्रकार एक ही तरह के हैं। परन्तु वटेश्वरसिद्धान्त में अनेक प्रकार से उसका साधन किया गया है। कोणशंकु साधनविधि नामक अध्याय में तृतीय श्लोक से नवम श्लोक तक बहुत जगह लघु संज्ञक के भेद से वे दिखलाये गये हैं जैसे 'इष्टश्रवणाभ्यस्ता अग्रास्त्रिज्योद्धृता लघुका' इत्यादि, घृतिगुणितास्त्रिगुणहृता अग्राधृतिवृत्तगा भवन्ति लघुकाः, इत्यादि, 'वाऽग्राः-स्तद्वृतिगुणितास्त्रिज्याभक्ता भवन्ति तद्वृतिगाः। लघका हि विदिङ्नार' इत्यादि इनके अतिरिक्त सब आचार्यों ने केवल एक ही प्रकार से कोणशंकु का आनयन किया है केवल श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक प्रकार लिखे हैं, भास्कराचार्य ने अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गात्' इत्यादि से असकृत्प्रकार द्वारा जो कोणशंकु का साधन किया है उसका मूल 'इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयोदग्वियुक्' इत्यादि वटेश्वरोक्त या 'इनाग्रकायाः सहितोनिताया इष्टेन' इत्यादि श्रीपत्युक्त प्रकार ही हो सकता है, लेकिन कोणशंकु साधन प्रकार किसी आचार्य का ठीक नहीं है। भास्करोक्तकोण शंकुसाधन का खण्डन उत्तरगोल में—

**"युग्माश्वोनाक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाब्ध्यंशज्याद्विकाश्वैर्विभक्ता।
अक्षच्छायावर्गयुक्तैः फलाच्चेदग्रान्यूना स्यात्खिलं सौम्यगोले॥"**

इससे महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने किया है और दक्षिण गोल में उसका खण्डन सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में संशोधक (महामहोपाध्याय वापूदेव शास्त्री) ने निम्नलिखित पद्य से किया है।

"अक्षप्रभाकृतिविहीनदृगद्रिनिघ्नः पञ्चाब्धिभागजगुणो विहृतो द्विकाश्वैः।
अक्षप्रभाकृतियुतैः फलतोऽग्रकाघ्नान्नाऽल्पा तदा न सदिदं रवियाम्यगोले ।।"

भास्कर प्रकार के उपर्युक्त खण्डन से ही उसके मूलभूत वटेश्वरसिद्धान्तोक्त और श्रीपत्युक्त कोणशंकु आनयन का भी खण्डन समझना चाहिये। जिस देश में सत्रह अङ्गुल से अधिक पलभा है वहां उत्तर गोल में चार कोणशंकु उत्पन्न होते हैं और दक्षिण गोल में कोणशंकु का अभाव होता है इस भास्करोक्त वासना भाष्योक्त का मूल प्राचीनोक्तकोणशंकु साधन ही है। इच्छादिक् छायानयन के लिए 'सममण्डलप्रवेशविधि" में इष्टकोण शंकु साधन किया गया है। भास्कराचार्य ने 'व्यासार्धवर्गः पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृतिर्द्विदशवर्गनिघ्नी। तत्संयुतिः स्यात्' इत्यादि से इष्टच्छायाकर्णसाधन किया है, वस्तुतः भास्करोक्त प्रकार का मूल वटेश्वर प्रकार ही है। सूर्यसिद्धान्तकार और सिद्धान्तशेखरकार इस विषय में कुछ भी नहीं कहते हैं इसीसे मालूम होता है कि भास्कराचार्य का उपर्युक्त प्रकार अपना प्रकार नहीं है, त्रिप्रश्नाधिकार के आदि में वटेश्वराचार्य ने अनेक प्रकार से दिग्ज्ञान किया है जिनमें कुछ प्रकार अन्य सिद्धान्तों में नहीं पाये जाते हैं। भाभ्रम के सम्बन्ध से दिक्ज्ञान प्रकार वटेश्वराचार्य का जैसा है तदनुरूप ही श्रीपति का प्रकार भी है, छायाभ्रमण मार्गज्ञानार्थ 'इष्टेन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद् धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेः' इत्यादि से सूर्यसिद्धान्तकार और 'अग्रेषु चिन्हानि विधाय वृत्तैर्मियोऽवगाहैः' इत्यादि से लल्लाचार्य ने जो युक्ति दिखलाई है वटेश्वराचार्य भी तदनुरूप ही कहते हैं, ये सब आचार्य छायाभ्रमण मार्ग वृत्ताकार स्वीकार करते हैं उसी के सम्बन्ध से दिक्ज्ञान भी किये हैं, परन्तु मेरु से अतिरिक्त साक्षदेश में छायाभ्रमण मार्ग सदा वृत्ताकार नहीं होता है इसलिए सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में भास्कराचार्य ने 'भात्रितयाद्भाभ्रमणं न सत्' इत्यादि से उन लोगों के वृत्ताकार छायाभ्रमण मार्ग का खण्डन किया है जो कि बहुत ही युक्तिसङ्गत है। यद्यपि छायाभ्रमण मार्ग कैसा होता है इसके सम्बन्ध में भास्कराचार्य ने अपना विचार कुछ भी नहीं व्यक्त किया तथापि सब देशों में सदा छायाभ्रमण मार्ग वृत्ताकार नहीं होता है इस विषय को सबसे पहले वे ही समझ सके। सूर्यसिद्धान्तकार ने छायाभ्रमण मार्ग वृत्ताकार होता है इस बात को कहकर उससे और कुछ काम नहीं लिया है जैसा कि वटेश्वराचार्य श्रीपति ने उससे काम (दिक्ज्ञान) लिया है जो ठीक नहीं है वटेश्वराचार्य के त्रिप्रश्नाधिकार के प्रश्नाध्याय में जो अनेक प्रकार के प्रश्न हैं उनमें बहुत प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्तशेखर में पाये जाते हैं, मेषादि राशियों के निरक्षोदय मान साधन प्रकार ब्रह्मगुप्त वटेश्वर श्रीपति आचार्यों के एक ही तरह के हैं, स्वदेशीय राश्युदय मान से लग्नानयन प्रकार वटेश्वराचार्य और श्रीपति के एक ही तरह के हैं लग्नानयन में कुछ विशेष बातें नहीं कहते हैं, अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा इन दोनों आचार्यों के सिद्धान्तों में विशिष्ट बातें ये हैं 'स्वदेशीय राश्युदय विना विलग्न और काल साधनप्रकार तथा स्वदेशीयोदय विना रवि और लग्न के अन्तरासु साधन प्रकार' चन्द्रग्रहणाधिकार में रवि और चन्द्र के स्फुट कलाकर्णसाधन प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त में जसा है उसके सदृश ही सिद्धान्तशिरोमणि में 'मन्दश्रुतिर्द्राक्श्रुतिवत्प्रसाध्या तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना। त्रिज्याकृतिः शेषहृता स्फुटा स्याल्लिप्ताश्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्च ।।' भास्कराचार्य का प्रकार है। आज तक ज्यौतिषियों की यही धारणा थी कि यह प्रकार भास्कराचार्य का है

परन्तु वटेश्वरसिद्धान्त के प्रकाशित होने पर उसमें उस प्रकार को देखकर वह धारणा दूर हो जायगी, इस सिद्धान्त (वटेश्वरसिद्धान्त) में छाद्य और छादक निर्णय में और रवि, चन्द्र और भूभा बिम्बानयन में कहीं भी राहु या भूभा का नाम स्पष्ट नहीं कहते हैं—सब जगह उसके स्थान पर तम कहते हैं, लेकिन मध्यमाधिकार में "खण्डयति तमोऽर्धेन क्षपाकरं तिग्मांशुं विधुदलेन। राहुकृतं च ग्रहणं प्राहुस्ते समस्त आचार्याः" ग्रन्थकार के इस लेख से मालूम होता है कि ये राहुकृत ग्रहण ही मानते हैं, इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस अधिकार में जहां जहां 'तम' शब्द का प्रयोग इन्होंने किया है उन सब स्थलों में उससे राहु ही को समझना चाहिए। सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने 'राहुनिराकरणाध्याय' लिखा है लेकिन राहुबिम्बानयन और भूभाबिम्बानयन दोनों उक्त ग्रन्थ में देखते हैं इससे मालूम होता है कि उनके मन में निश्चय नहीं था कि राहुकृत चन्द्रग्रहण होता है या भूभाकृत भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में छाद्य और छादक के निर्णय के सम्बन्ध में कहते हैं "अर्कस्छादकाच्चन्द्रच्छदकः पृथुतरोऽवगम्यते, कुतः। यतोऽर्धखण्डितस्येन्दो विषाणयोः कुण्ठता दृश्यते स्थितिश्च महती। अर्कस्य पुनरर्धखण्डितस्य तीक्ष्णता विषाणयोः स्थितिश्च लघ्वी। एतत्कारणद्वयानुपपत्त्याऽर्कस्यच्छादकोऽन्यः स च लघुः। एवं रवीन्द्वोर्न च्छादको राहुरिति वदन्ति। कुतः। दिग्देशकालावरणादिभेदात्। एकस्य प्राक्स्पर्शः। इतरस्य पश्चात्। रवेः क्वापि ग्रहणमस्ति क्वापि नास्ति। क्वापि दर्शान्तादग्रतः क्वापि पृष्ठतः। अतो राहुकृतं न ग्रहणम्। नहि बहवो राहवः। एवं के वदन्ति। केवलगोलविद्यास्तदभिमानिनश्च। इदं संहिता-वेदपुराणवाह्यम्। यतः संहितासु राहुरष्टमो ग्रहः "स्वर्भानुर्ह वा आसुरः सूर्यतमसा विव्याध" इति माध्यन्दिनीश्रुतिः।

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः।
सर्वं भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते दिवाकरे॥

इत्यादि पुराण वाक्यानि। अतोऽविरुद्धमुच्यते। राहुरनियतगतिस्तमोमयब्रह्मवर-प्रदानाद्भूभा प्रविश्य चन्द्रं छादयति, चन्द्रं प्रविश्य रविं छादयतीति सर्वागमानामविरुद्धम्" कहीं पर राहु का बिम्बादिसाधन नहीं किया है ग्रहण में राहु की कुछ जरूरत नहीं है, राहु की अनियतगति के कारण और ग्रहण में स्पर्शादि की निश्चित दिशा के कारण राहुकृत ग्रहण का खण्डन स्पष्ट ही है। बड़े दूरदर्शी ग्रहों से वर पाये हुए वटेश्वराचार्य ने भी स्पष्टरूप से भूभा का नाम निर्देश नहीं किया है यह बहुत आश्चर्य है। भूभा (राहु) बिम्बानयन वटे-श्वराचार्य ने जिस तरह किया है, तदनुरूप ही श्रीपति और भास्कराचार्य ने किया है, इन सब के मत से 'वर्धित रविकर्ण चन्द्रकक्षा में जहां पर लगता है उस बिन्दु मे सूर्यबिम्ब और भूबिम्ब की क्रमस्पर्श रेखा के ऊपर जो लम्ब करेंगे वही भूभा व्यासार्ध आता है, लेकिन यह स्पर्श के लिए उपयुक्त नही है इसलिए उन सब के मत ठीक नही हैं। वर्धितरविकर्ण और चन्द्रकक्षा के योगबिन्दु से उसी रेखा (वर्धितरविकर्ण) के ऊपर जो लम्बरेखा होती है उसको मुनीश्वर भूभाव्यासार्ध कहते है। यह भी पूर्वोक्त कार्य के लिए अनुपयुक्त है, अतः इनका भी मत ठीक नहीं, स्पर्शरेखा और चन्द्रकक्षा के योग बिन्दु से मध्यरेखा (वर्धित-रविकर्ण) के ऊपर जो लम्ब रेखा होती है वही वास्तव भूभाव्यासार्ध है जिसका साधन

सिद्धान्त तत्त्वविवेक में कमलाकर ने किया है जो कि बहुत ही ठीक है। म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी ने वास्तव भूभाबिम्बार्धानयन किया है, संशोधकोक्त भूभाबिम्बार्धानयन ठीक नहीं है। वटेश्वराचार्य ने रवि, चन्द्र और भूभा (राहु) के योजनात्मक बिम्बों के कलात्मकीकरण के लिए जो नियम कहे हैं सो ठीक नहीं हैं। श्रीपति और भास्कराचार्य का भी बिम्बकलानयन तत्सदृश ही है। इन आचार्यों ने स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध के साधन असकृत्प्रकार से किये हैं, सकृत्प्रकार से उनके (स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध) आनयन सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में म० म० पण्डित बापूदेवशास्त्री (संशोधक) और सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका में म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने किया है, ये दोनों प्रकार वटेश्वराचार्योक्त स्थित्यर्ध और विमदार्ध के आनयन स्थल में हमने दिखलाये हैं, आक्षवलन और आयनवलन के साधन उत्क्रमज्याविधि ही से इनका भी है जैसा लल्लाचार्यकृत है। शिष्यधीवृद्धिद में लल्लोक्त साधन अधोलिखित है।

स्पर्शादिकालजनतोत्क्रमशिञ्जिनीभिः क्षुण्णाक्षभा पलभवश्रवणेन भक्ता।
चापानि पूर्वनतपश्चिमयोः क्रमेण सौम्येतराणि समवेहि यथाक्रमेण॥
ग्राह्यात्सराशित्रितयाद् भुजज्याव्यस्ता ततः प्राग्वदपक्रमज्या।
तस्या धनुः सत्रिगृहेन्दु दिक् स्यात्क्षेपो विपातस्य विधोर्दिशि स्यात्॥
अपक्रमक्षेपपलोद्भवानां युतिः क्रमादेकदिशां कलानाम्।
कार्यो वियोगोऽन्यदिशां ततो ज्या ग्राह्या भवेत्सावलनस्य जीवा॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी वलनों के आनयन इसी तरह किये है, आयनवलन और आक्षवलन के संस्कार करने से स्पष्ट वलन होता है। लेकिन लल्लाचार्य वटेश्वराचार्य और श्रीपति आचार्य आयनवलन आक्षवलन और शर इन तीनों के संस्कार (योग और वियोग) रूप स्पष्ट वलन कहते हैं, शर संस्कार जो किये हैं सो ठीक नहीं है 'वलनानयने क्षपः क्षिप्तोयैस्ते कुबुद्धयः' इत्यादि से भास्कराचार्य ने उसका खण्डन युक्तियुक्त किया है। उन आचार्यो के उत्क्रमज्या प्रकार से साधित वलनों के खण्डन भी उनके बहुत पाण्डित्यपूर्ण है। कमलाकर ने सिद्धान्ततत्त्वविवेक में आक्षवलन और आयनावलन के विना ही स्पष्ट वलनानयन किये हैं जो बहुत ही सुन्दर है। अङ्गुलिप्तानयन भी किसी आचार्य का ठीक नहीं है, वटेश्वराचार्य ने उन्नत कालानुपात से उसका आनयन किया हैं। श्रीपति और भास्कराचार्य दो प्रकार से (शङ्क्वनुपात से और उन्नत कालानुपात से) उसका आनयन किया है। भास्कराचार्य कहते हैं कि शङ्क्वनुपात से जो फल आता है वह सूक्ष्म में और उन्नत कालानुपातागत फल स्थूल है, लेकिन सूक्ष्मभाव और स्थूलत्व का ज्ञान होना बहुत कठिन है। भास्कराचार्य को कैसे उसका पता चला सो नहीं कह सकते हैं। इस ग्रन्थ में चन्द्रग्रहण परिलेख रविग्रहणाधिकार में परिलेखविधि नामक अध्याय में है रविग्रहणाधिकार ही के अन्तर्गत पर्वज्ञान विधिनामक पञ्चमाध्याय है, परन्तु सिद्धान्तशेखर में सूर्यग्रहणाध्याय के बाद पर्वसम्भवाध्याय है, सिद्धान्तशिरोमणि में और सिद्धान्ततत्त्वविवेक में चन्द्रग्रहणाधिकार से पहले पर्वसम्भवाधिकार है, इन भिन्न-भिन्न लेखक्रम में अपनी-अपनी रुचि ही कारण कह सकते हैं।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में

सन् १९४१ में मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ, कि भारत के छः शास्त्रों में से नेत्ररूप ज्यौतिषशास्त्र की ओर भारतीय जनता का कोई ध्यान नहीं है जिस कारण यह दिन-प्रतिदिन अवनति की ओर जा रहा है, क्यों न इसकी रक्षा की जाय। तभी मैंने प्रतिज्ञा की कि यथाशक्ति मैं अपने जीवन में ज्यौतिषशास्त्र की उन्नति के लिये कार्य करूंगा। यह कार्य कोई लघु कार्य नहीं था, क्योंकि इसमें ज्यौतिष का प्रचार, प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का प्रकाशन एवं भारत तथा अन्य देशों, विभिन्न राज्यों एवं स्थानों पर उपेक्षित पढ़ी हुई ज्यौतिष पुस्तकों की खोज तथा उनका सम्पादन, मुद्रण एवं प्रकाशन आदि कार्य हैं। इस बृहत् कार्य के साधन के लिए तो 'संस्था' की आवश्यकता होती है जो इस कार्य को अग्रसर करे तथा शुभ परिणाम तक पहुंचा सके। अतः तभी एक संस्था स्थापित करने का विचार आया और ५ दिसम्बर सन् १९४३ को लाहौर के ओरियण्टल कालेज के प्रिंसिपल डा० लक्ष्मणस्वरूप डी. लिट् महोदय द्वारा 'कुशल ज्योतिष कार्यालय' नामक संस्था का उद्घाटन कराया। उद्घाटनकाल में गोस्वामी ईश्वरदास जी (भारत बैंक के डिस्ट्रिक मैनेजर) ने सभा की अध्यक्षता की।

उन्हीं दिनों ज्यौतिष का कार्य आरम्भ कर दिया और ज्यौतिष के तीन अंगों—सिद्धान्त, होरा, संहिता में से होरा शास्त्र की, आचार्य हेमप्रभ सूरी रचित 'त्रैलोक्यप्रकाश' नामक पुस्तक को पाठान्तरों सहित हिन्दी टीकायुक्त १९४५ में प्रकाशित किया।

तदनन्तर सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ तथा पंजाब का विभाजन हो गया। तब हमने भी पंजाब छोड़कर भारत की राजधानी दिल्ली में अपना ज्यौतिष अनुसन्धान केन्द्र बनाया। ज्यौतिष को पूर्ण रूप से समुन्नत करना एक व्यक्ति के वश का कार्य नहीं जब तक कि इस कार्य में जनता का सहयोग प्राप्त न हो। यह विचार कर मैंने श्री बृजलाल जी नेहरू एवं अन्य सदस्यों के समक्ष जनता संरक्षण संस्था (Public body) बनाने का एण्ड प्रस्ताव रखा और उन कृपालु महानुभावों ने "इण्डियन इन्स्टीच्यूट आफ अस्टौनौमिकल संस्कृत रिसर्च" नामक संस्था का सूत्रपात किया उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री माननीय श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी के करकमलों से इस बृहज्ज्यौतिष संस्था का उद्घाटन कार्य सम्पन्न हुआ। तदनन्तर संस्था ने अपने कार्य का ज्योतिष-विज्ञान 'नामक' मासिक पत्रिका के रूप में श्रीगणेश किया।

आचार्य वटेश्वर का नाम मैंने अलबेरूनी की भारतयात्रा में पढ़ा। अलबेरूनी ने लिखा है कि वटेश्वर-सिद्धान्त नाम का एक उत्तम ग्रन्थ भारत में है जिसमें ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त पर आलोचना की गई है। मेरे मन में उत्कण्ठा थी कि यह ग्रन्थ मुझे प्राप्त हो जाये।

इसके बाद "गणकतरंगिणी" में भी महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी रचित के 'स्वाध्याय' से १९ वें पृष्ठ पर वटेश्वराचार्य प्रणीत 'वटेश्वरसिद्धान्त' के न प्राप्त होने की विवशता देखी। इससे उत्कण्ठा और भी बढ़ी। इस पुस्तक के लिये मैंने प्रयत्न शुरू किया। भारत के

बिहार, काश्मीर एवं अन्यान्य राज्यों में मैंने जाकर हस्तलिखित प्रति की प्राप्ति का प्रयत्न किया किन्तु कहीं भी यह पुस्तक उपलब्ध न हुई। अन्त में मैंने इसकी खोज लाहौर-स्थित विश्वविद्यालय के बृहत् पुस्तकालय में की और वहां मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। मुझे वहां हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हो गई। तदनन्तर मैंने श्री जगदीश शास्त्री एम. ए. एम. ओ. एल. द्वारा 'वटेश्वरसिद्धान्त' की प्रति को वहीं बैठकर नकल करवाया। इस प्रकार यह महान् ज्यौतिषग्रन्थ प्राप्त हुआ।

पुस्तक तो प्राप्त हो गई किन्तु उसी रूप में मुद्रण कराने से कोई लाभ नहीं दिखाई देता था इसलिए मैंने उसे भाष्य, उपपत्ति और हिन्दीभाषानुवाद सहित छापने का विचार किया किन्तु पर्याप्त समय तक इस कार्य को सुसम्पन्न करने के लिए किसी योग्य ज्यौतिषी की खोज में रहा, अन्त में श्री पंडित विश्वनाथ झा द्वारा सिद्धान्त ज्यौतिष के प्रकाण्ड पंडित मुकुन्दमिश्र ज्यौतिषाचार्य का पता चला। उन्हें इस कार्य को सुसम्पन्न करने के लिये मैंने बुलाया। उन्होंने अपने महान परिश्रम से इस पुस्तक के सम्पादन, संस्कृत भाष्य, उपपत्ति और हिन्दी टीका आदि में मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

इस प्रकार यह पुस्तक अभी तीन अधिकार के इस विशाल स्वरूप में आज आपके समक्ष प्रस्तुत है। इससे ज्यौतिष के प्रचार में कितना कार्य होगा तथा इस पुस्तक से ज्यौतिष महानुभाव कितने अग्रसर हो सकेंगे—यह बात विद्वन्मण्डली पर ही छोड़ता हूँ।

आभार-ग्रहण

इस कार्य में ज्यौतिष के परम विद्वान् श्री पं० विश्वनाथ झा ज्यौतिषाचार्य ने मुझे जो होरा तथा गणितकार्य में सहयोग प्रदान किया है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ। प्रूफ पढ़ने में महान् सहायक विद्याभास्कर लक्ष्मीनारायण शास्त्री तथा इस कार्य की सम्पन्नता के लिये मैं भारत सरकार के सांस्कृतिक व वैज्ञानिक विभाग तथा प्रांतीय सरकारों और अपने संस्था के सदस्यों का अनुगृहीत हूँ।

भृगु आश्रम
नई देहली
३१-१०-६१

विदुषाम् अनुचरः
रामस्वरूप शर्मा

भूमिका

आनन्दपुरनामके नगरे श्रुतिस्मृति-धर्माचारविचारकुशलो महदत्तभट्ट-नामको द्विज आसीत्, तत्पुत्रो लब्धग्रहप्रसादः सकलज्यौतिषिकसार्वभौमः प्रस्तुत-ग्रन्थ (वटेश्वरसिद्धान्त) रचयिताऽतिप्रतिभावाञ्छ्रीमान् वटेश्वराचार्यो द्विशून्याष्ट-(८०२) मिते शाकवर्षे जन्म लेभे। आनन्दपुरं प्रायः पञ्चनद (पञ्जाब) प्रदेशान्त-र्गतमस्तीति जनश्रुत्या ज्ञायते। स्वनामसंज्ञिते सिद्धान्ते (वटेश्वरसिद्धान्ते) प्रत्ये-काधिकारसमाप्तिस्थले 'इति श्रीमदानन्दपुरीयमहदत्तभट्टसुत-वटेश्वरविरचिते स्वनामसंज्ञिते स्फुटसिद्धान्ते' इत्यादि ग्रन्थकारलेखादपि ज्ञायते यदयमा-नन्दपुरवास्तव्य आसीत्। पञ्चनदप्रदेशान्तर्गतं यदानन्दपुरं तदेवैतस्याऽनन्द-पुरमुत तद्भिन्नं तन्निर्णायकप्रमाणाभावान्निर्णेतुं न शक्यते। अस्तु, जन्मसमया-च्चतुर्विंशतिमिते वयसि प्रस्तुतग्रन्थं स्वनामसंज्ञितं सिद्धान्तं ग्रन्थकारो रचितवा-न्निति तदुक्तग्रन्थवचनाद् ज्ञायते, तदुक्तश्लोकश्च यथा—

'शकेन्द्रकालाद् भुजशून्यकुञ्जरै (८०२) रभूदतीतैर्मम जन्म हायनैः।
अकारि सिद्धान्तमितः स्वजन्मनो मया जिनाब्दै (२४) र्द्युसदामनुग्रहात्॥"

अयं त्रिस्कन्धज्यौतिष (सिद्धान्त-संहिता-होरा) शास्त्रनिपुणात्स्वसमये-ऽद्वितीयात् काव्यकलाभिज्ञाज्ज्यौतिषिकाच्छ्रीपते (जन्मसमयः शकाब्दः ९२१) रप्यतिप्राचीन आसीदिति द्वयोर्जन्मसमयावलोकनेनैव स्फुटीभवति। लुप्तप्रायस्यैत-त्सिद्धान्तरत्नस्य विद्वत्समाजेषु प्रचुरः प्रचार आसीदिति भास्कराचार्यविरचित-सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पणीस्थात् 'कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाययुः' वटेश्वरसिद्धान्तीय-वचनाद् ब्रह्मायुषि तत्सिद्धान्तीयग्रहादिभगणपाठदर्शनाच्च ज्ञायते यद् 'अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु' सिद्धान्तशिरोमणिस्थ-भास्क-रकृतोऽयमाक्षेपो वटेश्वराचार्यं लक्ष्यीकृत्यैवास्ति, गणकतरङ्गिण्यामेतत्सिद्धान्त-ग्रन्थविषये महामहोपाध्याय-पण्डितसुधाकरद्विवेदिमहोदयलेखादप्यस्य प्रचुर-प्रचारे न कश्चित्सन्देहः। वटेश्वराचार्य आर्यभटमतपोषको ब्रह्मगुप्तमतविरोधी चाऽसीत्। आर्यभटीयगीतिकापादे आर्यभटकृतमङ्गलाचरणस्य—

"ब्रह्मकुशशिबुध-भृगु-रवि-कुज-गुरु-कोण-भगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्॥"

अस्यानुरूपमेव ग्रहकक्षास्थितिक्रमानुसारं मङ्गलाचरणं स्वसिद्धान्ते कृतवान् । यथा—

"ब्रह्मावनीन्दु-बुध-शुक्र-दिवाकरार-जीवार्क-सूनु-भगुरून् पितरौ च नत्वा ।
ब्राह्मं ग्रहर्क्षगणितं महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिलं स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम् ।।"

परन्त्वार्यभटीयगीतिकापादे एकस्मिन् युगे ४३२०००० भूभगणाः= १५८२२३७५०० एतावन्तो भवन्तीति कथयित्वा "अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् । अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्" अनेन भूभ्रमणं स्वीकरोत्यार्यभटः । परं वटेश्वरेण भूभ्रमणं न स्वीक्रियते, तत्खण्डनमपि न क्रियते आर्यभटीयटीकाकारेण परमेश्वरेण कथ्यते यद्वस्तुतः 'स्थिरैव भूमिः' । आर्यभटमतस्यास्य खण्डनं ब्रह्मगुप्तेन कृतम् । यदि कथयिष्यते यद् ब्रह्मगुप्तेन यथाऽस्य मतस्य खण्डनं बहुत्र स्थले कृतं तथैवात्रापि कृतम् । आर्यभटमतखण्डनकरणं तत्स्वभावः, परन्तु तन्नहि। आर्यभटेन स्वयमपि पूर्वम् 'अनुलोमगतिर्नौस्थ' इत्यादि लिखित्वा

"उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः ।
लङ्कासमपश्चिमगोभपञ्जरः स ग्रहो भ्रमति ।।"

अनेन भूभ्रमणं नहि स्वीक्रियते । आर्यभटस्य स्वमनस्यप्येवं 'पृथ्वी स्वाक्षोपरि भ्रमति' दृढधारणा नाऽसीऽदिति तल्लेखादेव ज्ञायते । ग्रहादिभगणादीनां साधनार्थं गणितं भूभ्रमणाधारकमस्तीत्येतदर्थं काऽपि प्रक्रिया नावलोक्यते तस्मादेव कारणात्तन्मतसमर्थकेन वटेश्वराचार्येण भूभ्रमणविषयकं तन्मतं नाङ्गीकृतम् । वस्तुतस्तु आकाशे ये ग्रहादिपिण्डास्ते परस्पराऽऽकर्षणवशतश्चलन्त्येव परन्तु गणितज्ञा ग्रन्थरचयितारो वा यत्र पिण्डे निवसन्ति ते तं पिण्डं तदितराश्च ग्रहादिपिण्डान् भ्रमणशीलान् स्वीकुर्वन्ति । पृथिव्याः स्थिरत्वस्वीकरणेऽप्ययमेव हेतुः, आर्यभटसदृशमेवास्माकं प्राचीना अर्वाचीनाश्चाऽऽचार्या भूभ्रमणं जानन्ति स्म परन्तु यथाऽऽर्यभटेन स्पष्टशब्देन भूभ्रमणं व्यलेखि तथा तदुल्लेखे पूर्वकथितकारणमेव कारणम् । अस्तु, मङ्गलाचरणानन्तरं वटेश्वराचार्य मुन्यादिरचितैतद्विषयकग्रन्थबलेनाऽत्मनि ग्रन्थरचनक्षमत्वं प्रदर्श्य ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तोक्तयुगादिमानं ग्रहभगणादिमानञ्च किमपि समीचीनं नास्ति तन्मतनिराकरणार्थं मुन्यादिरचितशास्त्रसंमतग्रन्थरचनाऽवश्यकताञ्च ज्ञात्वा तद्रचनां करोतीति—

'श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्त्तु-तिथि-पर्व-दिनादि पूर्वे ।
वेदी ककुब्भवन-कुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुतिविदां बहुमत्यमस्मात् ।।'

अनेन स्वरचितज्यौतिषग्रन्थे (वटेश्वरसिद्धान्ते) वेदस्य प्रधानाङ्ग (नेत्र)-त्वं प्रदर्शयति, परमेतस्य वेदस्य प्रधानाङ्गत्वात्केषामेतत्पठनेऽधिकार एतस्मिन् विषये यथान्यैराचार्यैः कथितं तथाऽनेन न कथ्यते । एतद्विषये भास्करेणैवं कथ्यते ।

तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥

महाभाष्यकारेणापि 'ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञेयश्च' कथ्यते, एतद्विषये सिद्धान्तशेखरादिग्रन्थेषु बहुलिखितमस्ति, एतदाचार्यकथितसिद्धान्तग्रन्थलक्षणेऽपि भास्करकथिततल्लक्षणतः किञ्चिन्न्यूनत्वमस्ति, भास्करोक्ते 'प्रश्नास्तथा सोत्तराः, यन्त्रादि यत्रोच्यते, इत्यस्ति परमत्र सिद्धान्ते प्रत्येकाधिकारे तत्तदधिकारसम्बन्धिनः प्रश्नाः सन्ति, तदुत्तराश्च न सन्ति, यन्त्रादेरपि चर्चा नास्ति, अन्येषु प्राचीनज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थेषु नवीनसिद्धान्तग्रन्थेषु च 'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते' इति पुराणकथितब्रह्मदिनतुल्यमेव ब्रह्मदिनं वर्णितमस्ति परन्त्वार्यभटीये वटेश्वरसिद्धान्ते चाऽधिकसहस्रयुगैस्तद्दिनं कथ्यते, तथैतयोर्मतेन युगचरणमानान्यपि समानान्येव सन्ति, किन्त्वेतदतिरिक्ताचार्यमतेन युगचरणे स्वसादृश्यमस्ति, मनुमानेऽपि मतभेदोऽस्ति पूर्वकथितसिद्धान्तग्रन्थद्वये द्विसप्ततियुगैरेको मनुरुक्तोऽस्ति, पुराणेषु वटेश्वरार्यभटातिरिक्ताऽऽचार्यसिद्धान्तेषु चैकसप्ततियुगैर्मनुरुक्तोऽस्ति ।

'चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युग' मित्यादिमनुस्मृतिकथितवचनप्रामाण्याद्दैवमाने सत्ययुगचरणमानम् = ४०००, त्रेतायुगचरणमानम् = ३०००, द्वापरयुगचरणमानम् = २०००, कलियुगचरणमानम् = १०००, एतेषां योगकरणेन युगमानम् = ४००० + ३००० + २००० + १००० = १००००, तथा "युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोःस्वकः" इति सूर्यसिद्धान्तोक्तवचनेन सन्ध्यासन्ध्यांशसहितयुगचरणाः = ४८००, ३६००, २४००, १२००, तथैषां क्रमशः सन्ध्यासन्ध्यांशाः = ८००, ६००, ४००, २०० मनुस्मृत्यादिस्मृतिग्रन्थेषु सन्ध्यांशरहितं केवलं शुद्धमेव सत्ययुगादिचरणमानं कथितम् । यदि तानि सत्ययुगादिचरणमानानि षष्ट्यधिकशतत्रयैः ३६० गुण्यन्ते तदा भास्करादिकथिततन्मानानि समागच्छन्ति, 'युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते' इत्युक्तचनुसारेण ७१ युग = १ मनुः, परन्त्वेकस्मिन् ब्रह्मदिने चतुर्दश मनवोऽतः १४ मनवः = ७१ युग × १४ = ९९४ युग, परन्तु 'सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समाः' इत्युक्तेश्चतुर्दशमनुसम्बन्धिसन्ध्यासन्ध्यांशमानम् = ६ युग, अतः १४ मनु + संध्या-सन्ध्यांश = ९९४ युग + ६ युग = १००० युग = १ ब्राह्मदिनम् = १ कल्पः । अतः पुराणादिकथितब्राह्मदिनानुकूलमेव प्राचीनाचार्यनवीनाचार्यकथितं ब्राह्मदिनं सिद्धम् । आर्यभटमतेन द्विसप्ततियुगैरेको मनुर्भवत्यतस्तन्मतेन ब्राह्मदिनम् = १००८ युग. वटेश्वराचार्योप्येतदैव स्वीकरोति । अत्र मताधिक्याभावात्स्मृत्यादिकथितविरुद्धत्वाच्च ब्रह्मगुप्तेनाऽस्यखण्डनमकारि, कलियुगादितः पूर्वयुगचरणत्रयं व्यतीतमिति ब्रह्मगुप्तोक्तस्य खण्डनं वटेश्वरेणैवं क्रियते—

**"युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत् ।
तस्य द्वापरपादो युगगतये ये स्फुटो नाऽतः ॥"**

परं वटेश्वरेणापि तु 'युगत्रिवृन्दं सदृशाऽङ्घ्रयस्त्रयः' पद्येनानेन ब्रह्मगुप्तोक्तमेव कथ्यते। वटेश्वरेण किं खण्डयते इति तैरेव कथयितुं शक्यते। ब्रह्मगुप्तोक्तभूपरिध्यानयनस्यापि खण्डनमनेन क्रियते। वस्तुतो ब्रह्मगुप्तोक्तं तदानयनं समीचीनं नास्ति, ब्रह्मगुप्तोक्तबहुविषयाणां खण्डनं वटेश्वरेण स्वसिद्धान्ते कृतं परं तत्समीचीनं नवेति विवेचकाः स्वयमेव विचारयन्तु। आर्यभटमतखण्डनार्थं ब्रह्मगुप्तेन यादृशानां प्रयोगः यथाऽऽर्यभटमतखण्डनार्थं ब्रह्मगुप्तोक्तवाक्यानि—

**"स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुटं स्वगणितस्य ।
सिद्धं तदस्फुटत्वं ग्रहणादीनां विसंवादात् ॥
जानात्येकमपि यतो नार्यभटो गणितकालगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ॥
आर्यभटदूषणानां संख्या वक्तुं न शक्यते यस्मात् ।
तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥"**

स्वसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तमतखण्डनविषये वटेश्वरोक्तवाक्यानि—

**"भानुभुजादियोगाच्चन्द्रे शुक्लं प्रकल्पितं तेन ।
नो लग्नभुजानुगतं वेत्ति न शुक्लं सुतो जिष्णोः ॥
जिष्णुसुतं दूषणानां संख्यां वक्तुं न शक्यते यस्मात् ।
तस्मादयमुपदेशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥
एकमपि न वेत्ति यतो जिष्णुसुतो गणितगोलानाम् ।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथग् दूषणान्येषाम् ॥"**

वेधविधिज्ञस्य ब्रह्मगुप्तस्य यादृशोऽनेकविवेचनात्मकविषयसम्पन्नो विविधतात्त्विकविचारयुक्तो ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तोऽस्ति तादृश एव वटेश्वरस्यापि सिद्धान्तोस्ति, एतयोर्महारथिनोराचार्ययोरपूर्वप्रतिभायां कस्यापि मनसि लेशमात्रोऽपि सन्देहो न भवितुमर्हति। एतदाचार्यद्वयानन्तरं ये केचन ग्रन्थरचयितार आचार्या अभूवन् ते सर्वे बहुषु स्थलेषु स्वस्वसिद्धान्तग्रन्थ एतदाचार्यद्वयसिद्धान्तग्रन्थस्य विषयप्रतिपादनमेव कृतवन्तः, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त-वटेश्वरसिद्धान्तयोर्दर्शनेनैतदतिरिक्तसिद्धान्तग्रन्थदर्शनेन च मत्कथनमिति सत्यमसत्यं वेत्यस्य ज्ञानं भविष्यति तद्विदां विवेचकानम्। मानव-दैवजैव पैत्र्यार्क्षब्राह्मसौरैन्दवसावनानि नव मानानि सर्वेषु सिद्धान्तग्रन्थेषु प्रतिपादितानि सन्ति, तेषु चतुर्भि (सौरचान्द्रसावननाक्षत्रै[२]) रेव मानैर्मानवानां सर्वे व्यवहाराश्चलन्तीति भास्करादिसिद्धान्तग्रन्थेषु वर्णिताः सन्ति, किन्त्विह सिद्धान्ते पुरोदीरितनवविधमानैः कानि कानि कार्याणि व्यवहृतानि भवन्तीति वर्णितानि सन्ति यथा—

"पर्वावमतिथिकरणाधिमासकज्ञानमैन्दवान्मानात् ।
प्रभवाद्यब्दाः षष्टिर्युगानि नारायणादीनि ॥
आङ्गिरसादेतेषां ज्ञप्तिः पैत्र्याच्च पैतृको यज्ञः ।
कामलजासुरदैवैस्तेषामायुः परिच्छित्तिः ॥
अध्ययननियमसूतकमखगतयः सच्चिकित्सा च ।
होरामुहूर्तयामाः प्रायश्चित्तोपवासाश्च ॥
आयुर्दायश्च नृणां गमनागमने च सावनान्मानात् ।
ऋत्वयनविषुवदब्दा युगं क्षयर्द्धौ दिनस्य सौरात्स्युः ॥
ज्याद्याविधयश्चार्काच्छशधरभगणोद्भवाश्च नाक्षत्रात् ।
मासाश्च वासराणां संज्ञाः सदसत्फलावगतिः ॥"

अत्र सिद्धान्ते अहर्गणग्रहभगणादिसाधनानि युगमानादेतत्साधितानि सन्ति, यदि युगीयग्रहभगणादयः कल्पीया अपेक्षिता भवेयुस्तदा ते युगीया भगणादय एकायुते १०००० न गुणनीयाः, यदि च कल्पीया ग्रहभगणादयो ब्रह्मायुष्यपेक्षिता भवेयुस्तदा ते कल्पीया भगणादयः द्विसप्ततिसहस्रै ७२००० गुणनीयाः, यथा युगमानम् = ४३२००००, कल्पप्रमाणम् = ४३२००००००००

अतः $\frac{\text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}} = \frac{४३२००००००००}{४३२००००}$ = १०००० तेन कल्पवर्ष = युग × १००००, तथाच

$\frac{\text{ब्रह्मायुवर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{४३२०००००००० \times २ \times ३६० \times १००}{४३२००००००००}$ = ७२००० ∴ ब्रह्मायुर्वर्ष = ७२०००× कल्प, एतेन पूर्वोक्तसिद्धिर्भवति । अत्र सिद्धान्ते (वटेश्वरसिद्धान्ते) ऽहर्गणानयनमप्यनेकैः प्रकारैः कृतमस्ति, तेषु कुत्रापि कुत्रापि पद्येष्वशुद्धयोऽपि वर्त्तन्ते अहर्गणादभीष्टवारज्ञानार्थमहर्गणे सप्तभक्तेऽवशिष्टे सैककृते सति वर्त्तमानवारो भवत्येवमेव सर्वत्र दृश्यते, परन्तु सर्वदा सैककरणं न भवति स्थितिविशेषे निरेककरणमप्यावश्यकं भवति, एतद्विषये सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येणैवं कथ्यते । यथा—

'अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वदित्यादि' सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनापि बहुभिः प्रकारैरेतत्साधनं कृतमस्ति, परन्तु तस्मा-(अहर्गणात्) दभीष्टवारार्थं वटेश्वराचार्यस्यैव मार्ग (सैककरणरूपः) स्तेनाऽपि गृहीतोऽस्ति, सूर्यसिद्धान्ते सैकनिरेककरणसम्बन्धे किमपि नहि प्रतिपादितमस्ति प्रस्तुतसिद्धान्ते लघ्वहर्गणानयनमप्यनेकैः प्रकारैर्वटेश्वरेण कृतमस्ति, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तेऽपि तदानयनमस्ति, किन्तु सिद्धान्तशेखरे तदानयनं दृग्गोचरं न भवति, भास्कराचार्येणापि सिद्धान्तशिरोमणौ तदानयनं कृतमस्ति, यद्यपि लघ्वहर्गणानयनं कस्यापि समीचीनं नास्तीति तदानयनावलोकनेन स्फुटीभवति, तथाप्येकमपूर्वचमत्कारपूर्णं तदानयनमस्ति, अत्र सिद्धान्ते वर्षेशमासेशकालहोरेशज्ञानार्थं तत्क्रमप्रदर्शनार्थं च ये विधयः सन्ति तदनुरूपा एव सिद्धान्तशेखरेऽपि

सन्ति, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तेऽपि तद्दर्शनेन ज्ञायते यद् ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ताद् वटेश्वर-सिद्धान्ताद्वोद्धृत्य सिद्धान्तशेखरे लिखिताः । ब्रह्मगुप्तोक्तरविसंक्रान्तिकालस्यापि खण्डनं वटेश्वरेण कृतिमस्ति । यथा—

संक्रान्तिर्घर्मांशोः समस्तसिद्धान्ततन्त्रवाह्याऽत्तः ।
कुदिनानामज्ञानान्मन्दोच्चस्य स्फुटो नाऽर्कः ॥
कल्पितभगणैश्चराः कल्पितकुदिनैः प्रकल्पितैश्च युगैः ।
परिधीनामज्ञानाद् दृष्टिविरोधात्स्फुटा नाऽतः ॥

वटेश्वराचार्यमते ब्रह्मगुप्तोक्तयुगमानमेव समीचीनं नास्ति तदा तत्सम्बन्धेन साधितग्रहभगणादिकानामसमीचनत्वात्तत्साधितग्रहादीनामप्यसमीचीनत्वादशुद्धस्फुट रविवशेन साधितः संक्रान्तिकालोऽप्यशुद्ध एव भवेत् । वटेश्वरोक्तमिदं तदैव समीचीनं भवितुमर्हति यदा ब्रह्मगुप्तोक्तयुगादिमानं समीचीनं न भवेत् । आर्यभटोक्तयुगादिमानमेव वटेश्वराचार्येण स्वीक्रियते, ब्रह्मगुप्तोक्तं तद्युक्तियुक्तं नहि, मया यत्कथ्यते तदेव युक्तियुक्तमेतदर्थं किमपि प्रबलप्रमाणं नोपस्थाप्यते तर्हि कथमेतत्कथनं मान्यं भवेत् । स्मृतिकारोक्तयुगादिमानैः सह ब्रह्मगुप्तोक्तमानानां सामञ्जस्याद्वटेश्वर-स्वीकृतमानानाञ्चाऽसामञ्जस्याद्वटेश्वरकृतखंडनं दुराग्रहपूर्णमस्तीति मन्मतम् । विवेचकाः सुधियः स्वयं विवेचयन्तु । एतस्याऽऽचार्यस्य मध्यमाधिकारीय प्रश्नाध्यायोऽतीव शोभनोऽस्ति, तत्र विलक्षणाः प्रश्नाः सन्ति, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तेऽप्येतत्स-दृशा एव बहवः प्रश्नाः सन्ति यदवलोकनेन वटेश्वरोक्ताः प्रश्नाः स्वकीया ब्रह्मगुप्तोक्ताऽधारका वेत्यस्य निर्णयं विज्ञा ज्यौतिषिकाः स्वयमेव कुर्वन्त्विति ॥

स्पष्टाधिकारः

अत्राधिकारे ब्रह्मगुप्तादिभिः सर्वैराचार्यैर्वृत्तस्यैकस्मिन् पादे तत्त्वाश्वि २२५ कलावृद्धया चापानां चतुर्विंशतिसंख्यका जीवाः साधिताः, परं वटेश्वराचार्यैः षट्-पञ्चाश (५६) त्संख्यकाः सविकलाः कलात्मकज्याः साधिताः । इष्टचापज्यानयन-विधिः सर्वेषां समान एव, एतन्मते त्रिज्या=३४३८′ । ४४″, भास्कराचार्येण भोग्यखण्डस्पष्टीकरणं कृतम् । वटेश्वराचार्येण भोग्यखण्डस्पष्टी-करणस्य नाम न कथ्यते परन्तु तदुक्तशेषांशज्या $= \frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{यो}}{२} \mp \frac{\text{अं} \times \text{शे}}{२\text{प्रचा}}\right)$ =शेषचापसंज्यावृद्धि, स्वरूपे गतैष्यज्यान्तरार्धस्थले गतैष्यखंडान्तरार्धग्रहणेन प्रथमचापस्थले दशांशग्रहणेन च $\frac{\text{यो}}{२} \mp \frac{\text{अं} \times \text{शे}}{२\text{प्रचा}} = \frac{\text{यो}}{२} \mp \frac{\text{अं} \times \text{शे}}{२०}$ =भास्करोक्त स्पष्टभोग्यखंड, शेषांशगुणकाङ्कः स्पष्टमेव भास्करोक्तस्पष्टभोग्यखंडं भवेत् । शेषांश-ज्याशब्देन शेषचापसम्बन्धिनी ज्यावृद्धिर्बोध्या, सिद्धान्तशेखरेऽत्र विषये श्रीपतिना किमपि न कथ्यते । परं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते तदानयनमस्त्यतो भास्करोक्त-भोग्यखंड-स्पष्टीकरणप्रकारस्तस्य स्वकीयो नास्तीति कथने न कश्चित्सन्देहः । तन्मूलं ब्राह्म-

स्फुटसिद्धान्तोक्तं भोग्यखंडस्पष्टीकरणं वटेश्वरोक्तं शेषचापसम्बन्धिज्यावृद्ध्यानयनं वा भवितुमर्हति । वटेश्वरोक्ताद्भास्करोक्तप्रकारः सूक्ष्मः किन्त्वत्रा (भास्करप्रकारे) पि बहुस्थौल्यमस्तीति तदुपपत्तिदर्शनेन ज्ञायते । अन्याचार्योक्तग्रहस्पष्टीकरण-सदृश एव वटेश्वरस्याप्यस्ति, मध्यरविचन्द्रौ स्वस्वमन्दफलेन संस्कृतौ स्फुटौ भवतः। किन्तु कुजादिग्रहस्पष्टीकरणार्थं फलचतुष्टयं(मन्दफलार्धं,शीघ्रफलार्धं मन्दफलं, शीघ्र-फलञ्च) सर्वैराचार्यैरभिहितम् । मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धसंस्कारयोः किमपि कारणं गोलेनावलोक्यते; एतद्विषये सर्वैराचार्यैः 'अत्राऽगम एव प्रामाण्यम्' कथ्यते। मन्दफल-शीघ्रफलयोः संस्कारः कुजादिमध्यमग्रहे परमाऽवश्यकः, परं तत्स्फुटीकरणार्थं तत्फलद्वयार्धमपि सर्वैः संस्क्रियते । ग्रहस्पष्टीकरणविषये कस्याऽप्याचार्यस्य शुद्धं स्वतन्त्रं स्वमतं नास्ति । ग्रहाणां मन्दगतिफलानयनं चाऽन्याचार्योक्तसदृशमेव वटेश्वरोक्तमपि, अन्याचार्यापेक्षया भास्करोक्तं तदानयनं सूक्ष्ममस्ति, वटेश्वराचार्येण नतकर्मसम्बन्धे किमपि न लिखितम् । सूर्यसिद्धान्तेऽपि तदानयनोल्लेखो नास्ति परमिति समीचीनं न भवितुमर्हति, स्पष्टीकृतग्रहा भुजान्तरान्तरादिसंस्कारसंस्कृताः स्वगोलस्थाः स्पष्टा भवन्ति, ते ग्रहा यत्र गोलेऽस्माकं दृग्गोचरीभूता भवन्ति तत्रैव तेऽस्माकं स्पष्टग्रहाः, स्वगोलस्थस्पष्टग्रहा यावता संस्कारेण संस्कृता अस्माकं स्पष्ट-ग्रहा भवन्ति तस्यैव संस्कारस्य नाम नतकर्म कथ्यते । रविचन्द्रयोर्नतकर्मानयनं ब्रह्मगुप्तोक्तसंमतं सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेणाभिहितम् । परमेतदानयनं न समीचीनमिति नतकर्मोपपत्तिदर्शनेन स्फुटं भवति । तथापि तदानयनमादरणीय-मेकस्य चमत्कारपूर्णस्याऽऽवश्यकसंस्कारविशिष्टस्य प्रतिपादितत्वात् । एतन्नत-कर्म विना सम्पूर्णं ग्रहस्पष्टीकरणं निरर्थकमेवास्तीति कथयितुं शक्यते । यतो येषां ग्रहाणां स्पष्टीकरणार्थं यानि विधानानि सन्ति तैर्यदि ते स्पष्टा न भवेयुस्तदा तद्वि-धानान्येवासफलानि भवितुमर्हन्ति । तेन यैराचार्यैर्नतकर्मानयनं न कृतं तेषामियं त्रुटिः । ब्रह्मगुप्तभास्कराचार्यौ नतकर्मसाधनद्वारा स्वस्वदूरदर्शितायाः परिचयं दत्तवन्तौ । आर्यभटादिप्राचीनाचार्येषु कस्याप्युदयान्तरसंस्कारोपरि दृष्टिपातो नाभूत् । केवलं भास्कराचार्येणैवाहर्गणोत्पन्नग्रहेषूदयान्तरासु सम्बन्धिग्रहचाल-फलसंस्कारस्याऽवश्यकतां ज्ञात्वा तदानयनं कृत्वा संस्कारः कृतः । भास्करोक्तोदया-न्तरे किं स्थौल्यं तद्वास्तवानयनं कथं भवेत्तत्परमत्वं च कुत्र भवेदित्यादि सर्वे विषया अत्र ग्रन्थे प्रसङ्गवशाद्यथास्थानं दर्शिता मया, एतेनाऽचार्येणोदयान्तरं न कथ्यते । भास्करकथितोदयान्तरस्य मूलं सिद्धान्तशेखरत्रिप्रश्नाधिकारे श्रीपतिकृतं विषु-वांशभुजांशयोरन्तरानयनमस्तीति कस्यापि मतमस्ति, परमुक्तग्रन्थस्योक्ताधिकारे तद्दर्शनेन तन्मतं तथ्यं न प्रतिभाति ।। भारतीया ज्योतिर्विदो जानन्ति स्म यच्चल-राशेस्तात्कालिकगतिसिद्धान्तं सर्वप्रथमं भास्कराचार्य एव ज्ञातवान् 'फलांश-खाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक्केन्द्रभुक्तिरि' त्यादेरुपपत्तिदर्शनेन "दिनान्तरस्पष्ट-खगान्तरं स्याद् गतिः स्फुटा तत्समयान्तराले । कोटी फलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्यो-द्धृता कर्किमृगादिकेन्द्रे ।। तया युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा

स्यात्'' तदुपपत्तिदर्शनेन च तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यादत्र 'तात्कालिकी'-शब्दावलोकनेन च पूर्वोक्तज्यौतिषिकधारणायाः पुष्टिर्भवति । एवमेव 'कक्षा-मध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसम्पाते मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य' इति भास्करोक्त्या कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसम्पाते ग्रहे मन्दस्पष्ट-स्पष्ट-गत्योः समत्वात्तत्रैव शीघ्रगतिफलाभावो भवितुमर्हति, तत्रैव शीघ्रफलस्यापि परमत्वं भवति, चलनकलने चलराशेस्तात्कालिकगतेः सिद्धान्तोऽस्ति यत्कस्यापि चलराशेः परमत्वे परमाल्पत्वे च तात्कालिकी गतिः शून्यसमा भवति । पूर्वोक्तस्थान-स्थे ग्रहे शीघ्रफलस्य परमत्वात्तत्तात्कालिकी गतिः (शीघ्रगतिफलं) शून्यसमा भवितुमर्हति, तात्कालिकगतिसिद्धान्तेन यच्छीघ्रगतिफलाभावस्थानं सिद्धं तदेव भास्करोक्तमप्यस्त्यतो भास्कराचार्यश्चलराशेस्तात्कालिकगतिसिद्धान्तं जानाति स्मेत्यत्र न कश्चित्सन्देहः । भास्कराचार्यतोऽतीव प्राचीनो वटेश्वराचार्यश्चलराशि-तात्कालिकगतिसिद्धान्तं जानाति स्मेति भास्करकथितस्पष्टभोग्यखण्डमूलभूतस्य वटेश्वरोक्तशेषांशज्यानयनदर्शनादेव स्पष्टं भवति ।। भास्कराचार्यरचितलीला-वत्या निसृष्टार्थदूत्यभिधायां स्वटीकायां 'चापोननिघ्नपरिधिः प्रथमाह्वयः स्यादि' त्यादेर्व्याख्यायां मुनीश्वरो लिखति यत्—

'दोःकोटिभागरहिताभिहताः खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भिः' इत्यादि ज्याखण्डैर्विना चापादेव श्रीपतिकृतज्यानयनावलम्बेन ग्रहलाघवे गणेश-दैवज्ञेन सर्वे प्रकाराः लिखिताः 'इति कृतं लघुकार्मुकशिञ्जिनीग्रहणकर्म विना द्युतिसाधनम्' इति करणकुतूहलस्थच्छायासाधनविषयकभास्कराचार्याभिमान-मूलकारणमपि श्रीपत्युक्तोऽयं प्रकार एव, गणकतरङ्गिण्यां महामहोपाध्यायसुधा-करद्विवेदिमहोदयलेखादपि ज्ञायते यत्पूर्वोक्तप्रकारः श्रीपतेरेवास्ति, बहोः पूर्व-कालादपि ज्यौतिषिकेषु प्रसिद्धिरस्ति यदेतस्य प्रकारस्य रचयिता श्रीपतिरेवास्ति परन्तु वटेश्वरसिद्धान्तस्य स्पष्टाधिकारीयज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणाध्याय-स्याधोलिखितश्लोकदर्शनेन विदितं भवति यत्पूर्वकथितप्रकारो वटेश्वरा-चार्यस्यास्ति, श्रीपतेर्नहि

चक्रार्धांशा भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ता,
खव्योमेष्वभ्रवेदैः सलिलनिहताः पिण्डराशिः प्रदिष्टः ।
षड्भांशघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ताः स्यात्पिण्डराशिर्विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा ।।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽधोलिखितश्लोकेन ज्याभिर्विनेष्टज्यायाश्चापानयनं कृतमस्ति—

''इष्टज्यया विनिहताः शरभास्कराशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृताः फलं तत् ।
त्यक्त्वा खनन्दकृतितः ८१०० पदमभ्रनन्दभागाच्च्युतं भवति धन्वविना ज्यकाभिः।।''

परमेतदानयनं वटेश्वरसिद्धान्तेऽधोलिखितमस्ति—

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्र हारो ।
विशिखरविखचन्द्रै स्ताड़िताया स्तु मौर्व्याः ॥
खखविशिखखवेदैराहता वेष्टजीवा ।
त्रिभगुणकृतिघातज्यासमासेन भक्ता ॥

फलहीना नवतिकृतिरतन्मूलेन च वर्जिता नवतिः ।
शेषं धनुरथवा यत्त्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम् ॥

उपर्युक्त ज्यातश्चापानयनार्थमपि श्रीपतिप्रकारस्तस्य स्वकीयो नास्ति, प्रायो वटेश्वरसिद्धान्तादेवोद्धृत्य लिखितः । (१) वटेश्वराभिधेन ज्योतिर्विदा विरचित एको ज्यौतिषसिद्धान्तग्रन्थ आसीदिति तत्परिवर्त्तिभिरनेकैर्ग्रन्थकारैर्व्याख्याविधातृभिश्च तन्मतप्रतिपादनात्स्फुटमेव, परमयं ग्रन्थः प्रायो लुप्त एवाभूदिति बहुधैव प्रतीयते, एतत्सम्बन्धे गणकतरङ्गिण्याम् "यथा ब्रह्मगुप्तेनाऽर्यभटादीनां खण्डनं कृतं तथैव वटेश्वरेण सिद्धान्ते बहुत्र ब्रह्मगुप्तखण्डनं कृतमस्ति, अस्यैव 'कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाययु' रित्यादिना ब्रह्मण आयुः सार्धवर्षाष्टकं गतमिति मतम् । अस्य सिद्धान्तग्रन्थो मया सम्पूर्णो न दृष्टः, ग्वालियरमहाराजाश्रितस्य श्रीबालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रारुकृत्पत्रं प्रेषितं परन्त्वद्यावधि किमप्युत्तरं न प्राप्तम्" श्रीमान् म० म० सुधाकरद्विवेदिमहोदयो लिखितवान् ।

श्रीमान् भास्कराचार्यः 'तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः' इत्युक्त्या सार्धवर्षाष्टकं वटेश्वरमतमेव लक्ष्यीकरोति । मुञ्जालाचार्यकृतलघुमानसस्य इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ने त्यादि दृग्गणितैक्यकृच्चन्द्रसंस्कारविषये तट्टीका कृता यल्लयार्येण श्लोकद्वयस्यास्यावतरणमेवमुच्यते । 'अथ चन्द्रस्य ग्रहसमागमच्छाया शृङ्गोन्नतिदृक्साधने वटेश्वरसिद्धान्तोक्तदृक्कर्मविशेषं श्लोकद्वयेनाहेति' । अथ श्रीपतिनापि सिद्धान्तशेखरे ग्रहयुद्धाध्याये २-४ श्लोकैर्वटेश्वरसिद्धान्तानुसार एव चन्द्रस्य विलक्षणः संस्कारो ब्रह्मगुप्तलल्लाद्यनुक्तः प्राय उक्त इति ।

अथ च श्रीपतिना—

श्रीजिष्णुजार्यभटलल्लवटेशसूर्यदामोदरप्रभृतयोऽपि च तन्त्रकाराः ।
शक्ताः प्रवक्तु ममलामिह तन्त्रयुक्तिमस्मद्विधो जड़मतिस्तु कथं प्रवक्ति ॥

इत्युक्त्याऽर्यभट-ब्रह्मगुप्त-लल्लाचार्यैः सममेव वटेश्वरस्यापि नामोल्लेखः क्रियत इति वटेश्वरसिद्धान्तः सर्वमान्य आसीदिति प्रतीयते । अत्र शङ्करबालकृष्णदीक्षितमतेन वटेश्वरकृत एकः करणसारनामा ग्रन्थः ८२१ शकाब्दे रचित इति श्रूयते, यत्र काश्मीरस्याक्षांशाः ३४।९ एतन्मिता ग्रन्थोक्तया सिद्ध्यन्ति, प्रायः सर्वेऽपि ज्यौतिषसिद्धान्तरचयितार एकं करणग्रन्थमपि व्यवहारोपयोगिनं रचितवन्त एवासन्निति वटेश्वरसिद्धान्तानुसारी करणसार इत्याख्यो ग्रन्थश्च वटेश्वरकृत

आसीदिति च प्रतीयते, परमधुना वटेश्वरसिद्धान्तः करणसारश्च न कुत्राप्युपलभ्यौ वार्त्तागोचरौ स्त इत्यलमतिविस्तरेण (२)

(१) इत आरभ्य (२) एतत्पर्यन्तं सिद्धान्तशेखरस्य परिशिष्टस्थलेखादपि ज्ञायते यद्वटेश्वरसिद्धान्तोपरि श्रीपतेः श्रद्धाऽधिक्यमासीत्तेनैव हेतुना पूर्वोक्तज्याचापयोरानयनं तत्सिद्धान्तादेवोद्धृत्य श्रीपतिना प्रायो लिखितं भवेदित्यनुमीयते। तथा भुजकोटिज्यादिसाधनमन्तराऽहर्गणादेव स्फुटग्रहं कर्त्तुं प्रकारोऽत्र सिद्धान्तेऽधोलिखितरूपेणाऽस्ति।

स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकाद् भूदिनैः कृतहतात्पदानि तु ।
शेषकात्त्रिगुणितादगृहादितः पूर्ववच्च भुजकोटिसाधनम् ॥
मन्दजं बलभवं च तद्धतैर्भूदिनैर्भगणलिप्तिकोद्धृतैः ।
खेचरस्य भगणावशेषकं संस्कृतं कलिकयाऽखिलं स्फुटम् ॥
दोःफलेन सवितुश्चरासुभिः स्वेन देशविवरेण चोक्तवत् ।
संस्कृतं कुदिनभाजितं भवेन्मङ्गलादिखचरः परिस्फुटः ॥

विषयोऽयं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तवटेश्वर-सिद्धान्त-सिद्धान्तशेखरेषु वर्णितोऽस्ति भास्कराचार्यादिभिः कथमयं विषयो न लिखित इति त एव ज्ञातुं शक्नुवन्ति, श्रीपतिना प्रायो ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ताद्वटेश्वरसिद्धान्ताद्वा प्रायो लिखितो भवेद्यतस्तत्संमुखे तत्सिद्धान्तद्वयमादर्शरूपेणोपस्थितमासीत् ।

अन्येषु सिद्धान्तग्रन्थेषु यथाऽन्येऽधिकाराः पृथक् पृथक् सन्ति तथैव पाताऽधिकारोऽपि पृथगेवास्ति, किन्त्विह सिद्धान्ते स्पष्टाधिकारान्तर्गत एव पाताध्यायोऽस्ति, अत्रैव पाताध्याये पाताधिकारसम्बन्धिनः सर्वे विषया वर्णिताः सन्ति, स्पष्टाधिकारसम्बन्धिप्रश्नाध्यायोऽप्येतदधिकारान्तर्गत एवास्ति, तथैतदधिकारे ग्रहस्फुटीकरणार्थं पृथक् पृथगध्यायाः सन्ति, यथा—

सूर्याचन्द्रमसोः स्फुटीकरणविधिः प्रथमः । स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधिर्द्वितीयः । प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिस्तृतीयः । ज्याखण्डैर्विनास्फुटीकरणविधिश्चतुर्थः । फलज्यास्फुटीकरणविधिः पञ्चमः । तिथ्यानयनविधिः षष्ठः । प्रश्नविधिः सप्तमः । क्रमोऽयं कस्मिन्नप्यन्यसिद्धान्तेनावलोक्यते । करणानयनेऽप्यत्र ग्रन्थे बहु कथितमस्ति यच्च भास्करादिसिद्धान्ते नोपलभ्यते ।

त्रिप्रश्नाधिकारेऽपि विषयप्रतिपादनशैली, आर्यभटादिप्राचीनाचार्येभ्यो वटेश्वरतो नवीनाचार्यश्रीपतिभास्करादिभ्यो विलक्षणैव दृग्गोचरीभूता भवति यथा—

विषुवच्छायानयनविधिः प्रथमः । लम्बाक्षज्यानयनविधिर्द्वितीयः । क्रान्तिज्यानयनविधिस्तृतीयः । द्युज्यानयनविधिश्चतुर्थः । कुज्यानयनविधिः पञ्चमः ।

अग्रानयनविधिः षष्ठः। स्वचरार्धप्राणज्यानयनविधिः सप्तमः। लग्नादिविधिरष्टमः। द्युदलभादिविधिर्नवमः। इष्टच्छायानयनविधिर्दशमः। सममण्डलप्रवेशविधिरेकादशः। कोणशंकुविधिर्द्वादशः। छायातोऽर्कानयनविधिस्त्रयोदशः। छायापरिलेखविधिश्चतुर्दशः। प्रश्नाध्यायविधिः पञ्चदश इति, अध्यायेष्वेतेषु वर्णितविषयावलोकनेनैतदाचार्यस्याद्भुतप्रतिभायाः परिचयो मिलति। सूर्यसिद्धान्त-ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त-वटेश्वरसिद्धान्त-सिद्धान्तशेखरेषु कोणशंकुसाधनमेकमेव, वटेश्वरसिद्धान्ते तत्साधनमनेकैः प्रकारैः कृतमस्ति, येषु प्रथमः प्रकारः पुरोदीरिताचार्यकोणशंकुसाधनवदस्ति, कोणशंकुसाधनविधिनामकेऽध्याये तृतीयश्लोकान्नवमं श्लोकं यावद्बहुत्र लघुकसंज्ञकभेदेन तत्साधनानि प्रदर्शितानि सन्ति, यथा 'इष्टश्रवणाभ्यस्ता अग्रास्त्रिज्योद्धृता लघुका इत्यादि' धृतिगुणितास्त्रिगुणहृता अग्रा धृतिवृत्तागा भवन्ति लघुका इत्यादि' 'वाऽग्रास्तद्धृतिगुणितास्त्रिज्या भक्ता भवन्ति तद्धृतिगाः। लघुका हि विदिङ्नार इत्यादि' सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्यनेके प्रकारा लिखिताः, सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येण 'अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गादि' त्यादिनाऽसकृत्प्रकारेण यत्कोणशङ्कोरानयनं कृतं तस्य मूलम् 'इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयोदग्वियुगि' त्यादि वटेश्वरोक्तम् 'इनाग्रकायाः सहितोनिताया इष्टेनेत्यादि श्रीपत्युक्तं कोणशंकुसाधनं वा भवितुमर्हति। परन्तु तदानयनं केषामपि समीचीनं नास्ति, उत्तरगोले भास्करोक्तकोणशंकुसाधनस्य खण्डनमधोलिखितानुसारं म० म० सुधाकरद्विवेदिनः कृतवन्तः—

"युग्माश्वोनाक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाब्ध्यंशज्या द्विकाश्वैर्विभक्ता।
अक्षच्छायावर्गयुक्तैः फलाञ्चेदग्रा न्यूना स्यात्खिलं सौम्यगोले॥"

दक्षिणगोले च तत्खण्डनं सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्यां संशोधकेन (म० म. बापूदेवशास्त्रिणा) अधोलिखितश्लोकेन कृतमस्ति—

"अक्षप्रभाकृतिविहीनदृगद्रिनिघ्नः पञ्चाब्धिभागजगुणो विहृतो द्विकाश्वैः।
अक्षप्रभाकृतियुतैः फलतोऽग्रकाञ्चेन्नाऽल्पा तदा न सदिदं रवियाम्यगोले॥"

उपर्युक्तभास्करोक्तप्रकारखण्डनेनैव तत्प्रकारमूलभूतयोर्वटेश्वरोक्तश्रीपत्युक्तप्रकारयोश्चापि खण्डनं बोध्यम्। यत्र देशे सप्तदशाङ्गुलाधिका विषुवती तत्रोत्तरगोले कोणशंकुचतुष्टयमुत्पद्यते। दक्षिणगोले च तदभाव इति भास्करवासना भाष्योक्तस्यापि मूलं तत्प्राचीनकोणशङ्क्वानयनमेवास्ति। इच्छादिक्छायानयनार्थं सममण्डलप्रवेशविधिनामकेऽध्याये इष्टकोणशङ्कोरानयनं वटेश्वरेणाभिहितमस्ति, भास्कराचार्येण तु 'व्यासार्धवर्गः पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृतिर्द्वादशवर्गनिघ्नी। तत्संयुतिरि' त्यादिनेष्टच्छायाकर्णानयनं कृतम्, वस्तुतो भास्करोक्तप्रकारस्य मूलं वटेश्वरोक्तप्रकार एव भवितुमर्हति। सूर्यसिद्धान्त-

कारादिभिरेतद्विषये किमपि न कथ्यते। त्रिप्रश्नाधिकारादावाचार्येण बहुभिः प्रकारैर्दिग्ज्ञानं कृतमस्ति येषु कतिचन प्रकारा अन्येषु सिद्धान्तेषु नोपलभ्यन्ते। भाभ्रमसम्बन्धेन दिज्ज्ञानप्रकारो वटेश्वराचार्योक्तसदृश एव श्रीपत्युक्तस्तत्प्रकारोऽस्ति, वृत्ताकारच्छायाभ्रमणमार्गार्थम् 'इष्टेऽन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेरि' त्यादिना सूर्यसिद्धान्ते 'अग्रेषु चिन्हानि विधाय वृत्तैर्मिथोऽदगाहैरि' त्यादिना शिष्यधीवृद्धिदे सिद्धान्ते या युक्तिः प्रतिपादितास्ति सैव वटेश्वराचार्यस्यापि, सिद्धान्तशेखरे श्रीपतेश्चापि, परन्तु वृत्ते छायाभ्रमणं सर्वदा मेरावेव भवति, तदतिरिक्ते साक्षे देशे न्यूनाधिकशंकुवशेन छायाभ्रमणमार्गा वृत्तपरवलयदीर्घवृत्तातिपरवलयरेखाकारा भवन्ति, निरक्षे विषुवद्दिने रेखाकारो भाभ्रमः, तेनैव हेतुना सिद्धान्तशिरोमणेर्गोलाध्याये भास्कराचार्येण 'भात्रितयाद् भाभ्रमणं न सदि' त्यादिना वृत्ताकारच्छायाभ्रमणस्य खण्डनं कृतं, वृत्ते सर्वदा छायाभ्रमणं भवत्येव नहि, तर्हि भाभ्रमवृत्तसम्बन्धेन यैराचार्यैर्वटेश्वरलल्लप्रभृतिभिर्दिग्ज्ञानं कृतं तदपि युक्तियुक्तं नहि, यद्यपि छायाभ्रमणमार्गाकृतिसम्बन्धे भास्करेण स्वविचारो न प्रदर्शितः किन्तु पूर्वोक्तखण्डनं तद्विषयकतज्ज्ञानं पाटवं व्यनक्ति। मेषादिराशीनां निरक्षोदया साधनप्रकारो ब्रह्मगुप्तवटेश्वरश्रीपतीनां समान एवास्ति, स्वदेशीयराश्युदयमानैः लग्नानयनप्रकारेऽपि न किमप्यन्तरमस्ति, किन्तु स्वदेशोदयैर्विना विलग्नविघटिकयोरानयनं रविलग्नयोरन्तरासु साधनञ्चाऽत्र सिद्धान्ते प्रदर्शितमस्ति। सिद्धान्तशेखरेऽपि तदानयनं दृश्यते किन्तु भास्करादिसिद्धान्तेषु नावलोक्यते। एतदधिकारीयप्रश्नाध्याये ये प्रश्नाः सन्ति तेषु बहूनामुत्तरं सिद्धान्तशेखरेऽप्यस्ति, चन्द्रग्रहणाधिकारे रविचन्द्रयोः स्फुटकला कर्णसाधनमेतद्ग्रन्थकारकृतमस्ति, सिद्धान्तशेखरादिसिद्धान्तेषु तदुल्लेखो न दृश्यते, सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येण 'मन्दश्रुतिर्द्राक् श्रुतिवत्प्रसाध्या तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना। त्रिज्याकृतिः शेषहृता स्फुटा स्याल्लिप्ता श्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्चे'त्यनेन तदानयनं कृतमस्ति, परमेतद्ग्रन्थे (वटेश्वरसिद्धान्ते) तत्साधनदर्शनेन भास्करोक्तं तत्साधनं स्वकीयमेतदीयं वेति कथितुं न शक्नुमः। छाद्यच्छादकयोर्निर्णयेऽन्येषु रविचन्द्रभूभाबिम्बादिसाधनेषु चाऽऽचार्येण भूभाया नाम कुत्रापि न लिखितं सर्वत्रैव तम इत्येव लिख्यते, अयमाचार्योऽपि राहुकृतं ग्रहणं स्वीकरोति, सिद्धान्तशेखरे भूभा विम्बानयनं राहुबिम्बानयनमपि दृश्यते यदि राहुशब्देन भूभाया एव ग्रहणं तेन कृतं भवेत्तदा तु तथ्यमेवाऽन्यथा राहुकृतं भूभाकृतं वा चन्द्रग्रहणं भवतीत्येतद्विषयकनिश्चयस्तन्मनसि नाऽऽसीदिति कथयितुं शक्यते। तेन तु राहुनिराकरणाध्यायो लिखितोऽस्ति तर्हि राहोरपि बिम्बानयनं कथं कृतमिति महदाश्चर्यम्। भास्कराचार्येण "अर्कच्छादकाच्चन्द्रच्छादकः पृथुतरोऽवगम्यते। कुतः ? यतोऽर्धखण्डितस्येन्दोर्विषाणयोः कुण्ठता दृश्यते। स्थितिश्च महती। अर्कस्य पुनरर्घखण्डितस्य तीक्ष्णता विषाणयोः स्थितिश्च लघ्वी। एतत्कारणद्वयानुपपत्त्याऽर्कस्य च्छादकोऽन्यः स च लघुः। एवं रवीन्द्वोर्न च्छादको राहु-

रिति वदन्ति, कुतः ? दिग्देशकालावरणादिभेदात् । एकस्य प्राक् स्पर्शः इतरस्य पश्चात् । रवेः क्वापि ग्रहणमस्ति क्वापि नास्ति । क्वापि दर्शान्तादग्रतः क्वापि पृष्ठतः । अतो राहुकृतं न ग्रहणम् । नहि बहवो राहवः । एवं के वदन्ति । केवल-गोलविद्यास्तदभिमानिनश्च । इदं संहिता-वेद-पुराण-बाह्यम् । यतः संहितासु राहुरष्टमो ग्रहः । "स्वर्भानुर्ह वा आसुरः सूर्यं तमसा विव्याध" इति माध्यन्दिनी श्रुतिः ।

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः ।
सर्वं भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

इत्यादिपुराणवाक्यानि । अतोऽविरुद्धमुच्यते । राहुरनियतगतिस्तमोमय-ब्रह्मवरप्रदानाद् भूभां प्रविश्य चन्द्रं छादयति । चन्द्रं प्रविश्य रविं छादयतीति सर्वागमानामविरुद्धम्" सिद्धान्तशिरोमणेर्वासनाभाष्ये लिखितम् । परं कुत्रापि राहोः किमपि बिम्बादिकं न साधितम् । ग्रहणे राहोः किमपि प्रयोजनं न भवति, ग्रहणे स्पर्शादिदिङ्नियमाद्यवलोकनेन राहोरनियतगतित्वाच्च राहुकृतग्रहणस्य खण्डनं स्पष्टमेवास्ति, अतिदूरदर्शिनो लब्धग्रहप्रसादा वटेश्वराचार्या अपि कथं स्पष्टशब्देन भूभाया नाम निर्देशं न कृतवन्त इति महदाश्चर्यम् । स्थिति-विमर्दार्धयोरानयनमसकृद्विधिनाऽनेनापि कृतम् । सकृत्प्रकारेण तदानयनं सिद्धान्त-शिरोमणेष्टिप्पण्यां म० म० पण्डित बापूदेव शास्त्रिणा (संशोधकेन) सूर्यसिद्धा-न्तस्य सुधावर्षिणीटीकायां म० म० पण्डित सुधाकर द्विवेदिना च कृतमस्ति, आचार्योक्तस्थित्यर्धविमर्दार्धयोरानयनस्थले सकृत्प्रकारेण तदानयनमेतन्महानु-भावद्वयकृतं मया प्रदर्शितमस्ति, आक्षायनवलयोः साधनमुत्क्रमज्या विधिनैवं तेना-प्याचार्येण लल्लाचार्योक्तवत्कृतं, शिष्यधीवृद्धिदे लल्लोक्तं तत्साधनञ्च—

स्पर्शादिकालजनतोत्क्रमशिञ्जिनीभिः क्षुण्णाक्षभा पलभवश्रवणेन भक्ता ।
चापानि पूर्वनतपश्चिमयोः क्रमेण सौम्येतराणि समवेहि यथाक्रमेण ॥
ग्राह्यात्सराशित्रितयाद् भुजज्याव्यस्ता ततः प्राग्वदपक्रमज्या ।
तस्या धनुः सत्रिगृहेन्दुदिक् स्यात्क्षेपो विपातस्य विधोर्दिशि स्यात् ॥
अपक्रमक्षेपपलोद्भवानां युतिः क्रमादेकदिशां कलानाम् ।
कार्यो वियोगोऽन्यदिशां ततो ज्या ग्राह्या भवेत्सा वलनस्य जीवा ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्येवमेवानयनं कृतं वलनानाम् । आयनाक्षवल-नयोः संस्कारेणैव स्पष्टवलनं भवति, परमेभिर्लल्लवटेश्वर-श्रीपत्याचार्यैस्तदर्थं-(स्पष्टवलनार्थं) माक्षायनवलनशराणां संस्कारः कृतः । शरसंस्कारकरणं न युक्त-मेतदर्थं 'वलनानयने क्षेपः क्षिप्तो यैस्ते कुबुद्धयः' इत्यादिना भास्करेणातीव युक्तियुक्तं खण्डनं कृतम् । उत्क्रमज्यया वलनानयनप्रकारखण्डनमपि तत्कृतम-

तीव पाण्डित्यपूर्णमस्ति, कमलाकरेणाक्षजायनवलनद्वयं विनैव स्पष्टवलनानयनं कृतमस्ति, अङ्गुललिप्तानयनमपि कस्यापि (आचार्यस्य) समीचीनं नास्ति, वटेश्वरेणोन्नतकालानुपातेन तदानयनं कृतमस्ति, श्रीपतिना भास्करेण च प्रकारद्वयेन 'शङ्क्वनुपातेनोन्नतकालानुपातेन च) तदानयनं कृतम्। तत्र भास्करेण कथ्यते यच्छङ्क्वनुपातागतं फलं सूक्ष्ममुन्नतकालानुपातागतफलञ्च स्थूलं भवति, अनयोः सूक्ष्मत्व-स्थूलत्वयोर्ज्ञानमतीव दुर्घटमस्ति, भास्करेण कथमेतयोः सूक्ष्मत्वं स्थूलत्वञ्च ज्ञातमिति कथयितुं न शक्यते।

भूभाबिम्बानयनं वटेश्वरेण यथा कृतं तदनुरूपमेव श्रीपत्युक्तं भास्करोक्तञ्चास्ति, एतेषामनेन वर्धितरविकर्णो यत्र चन्द्रकक्षायां लगति तद्बिन्दुतः स्पर्शरेखो (सूर्यबिम्बभूबिम्बयोः क्रमस्पर्शरेखो) परि यो लम्बस्तदेव भूभाव्यासार्धमायाति, परमेतत्स्पर्शोचितं भूभाव्यासार्धं नास्त्यतस्तन्मतं न शोभनम्। मुनीश्वरेण वर्धितरविकर्णचन्द्रकक्षयोर्योगबिन्दुतस्तद्रेखो (वर्धितरविकर्ण) परि यो लम्बस्तदेव भूभाव्यासार्धं कथ्यते, एतत्कथितभूभाव्यासार्धमपि स्पर्शानुपयुक्तत्वान्न शोभनम्। स्पर्शरेखाचन्द्रकक्षयोर्योगबिन्दुतो मध्यरेखो (वर्धितरविकर्ण) परि यो लम्बस्तदेव वास्तवभूभाव्यासार्धम्। यत्साधनं सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण युक्तियुक्तं कृतम्। म. म. सुधाकरद्विवेदिनाऽपि वास्तवभूभाबिम्बार्धानयनं कृतमस्ति, संशोधकोक्तञ्च तदानयनं स्थूलमस्ति, वटेश्वरेणापि रविचन्द्रभूभा-(राहु) बिम्बानां योजनात्मकानां कलात्मकीकरणानयनं शोभनं न कृतं, श्रीपतिना भास्करेण चैतत्सदृशमेव तदानयनं कृतमस्ति, चन्द्रग्रहणपरिलेखोऽत्र ग्रन्थे सूर्यग्रहणे तत्परिलेखेन सहैवास्ति, पर्वज्ञानविधिनामको रविग्रहणाधिकारीयपञ्चमाध्यायस्तदन्तर्गत एवास्ति, परं सिद्धान्तशेखरे सूर्यग्रहणाध्यायात्परं पर्वसम्भवाध्यायोऽस्ति, सिद्धान्तशिरोमणौ सिद्धान्ततत्त्वविवेके च चन्द्रग्रहणाधिकारात्पूर्वमेव पर्वसम्भवाऽधिकारोऽस्ति, एषु भिन्नभिन्नलेखक्रमेषु स्वस्वरुचिरेव कारणं वक्तुं शक्यते।

प्रस्तुत-पुस्तक-विषये

एकचत्वारिंशदुत्तरैकोनविंशतितमे क्रिस्ताब्दे (१९४१) मम मानसे विचारः समजनि यत् भारतीयेषु षट्सु शास्त्रेषु नेत्ररूपं ज्यौतिषं शास्त्रं प्रति जनतायाः नहि किमपि ध्यानम्, येनेदं प्रतिदिनम् अवनत्युन्मुखम्, कथं नेदं संरक्षणीयम्! तदैव मया प्रतिज्ञातं यत् यथाशक्ति अहं स्वजीवने ज्यौतिषशास्त्रस्योन्नत्यै कार्यं विधास्ये। एतत्कार्यं नास्ति लघुरूपम्, यतः अस्मिन् कार्ये ज्यौतिषस्य प्रचारः, प्राचीनानां पाण्डुलिपिबद्धानां ग्रन्थानां प्रकाशनम् एवं भारतेऽन्यदेशेषु विभिन्नराज्येषु तथान्यस्थानेषु उपेक्षितां ज्यौतिषग्रन्थानामन्वेषणं. तेषां सम्पादनं मुद्रणं प्रकाशनादिकं च कार्यं वर्तते। अस्य बृहतः कार्यस्य सिद्ध्यै 'संस्थायाः' आवश्यकता भवति, या एतत्कार्यं साधयेत् तथा शुभपरिणामं उपलभेत। अतस्तदैव संस्थामेकां स्थापयितुं व्यचारयम्। दिसम्बरमासस्य पञ्चतारिकायां त्रयश्चत्वारिं-

शदुत्तरैकविंशतितमे क्रिस्ताब्दे (५. १२. १९४३) लवपुरस्थप्राच्यमहाविद्यालयस्य (ओरियण्टल कालेज) आचार्याणां श्रीलक्ष्मणस्वरूपमहोदयानां करकमलाभ्यां 'कुशल ज्यौतिषकार्यालय' नामकसंस्थाया उद्घाटनमकारयत् । उद्घाटनावसरे गोस्वामी श्री ईश्वरदासः (भारतधनकोषस्य देशीयाध्यक्षः) सभायाः अध्यक्षतामलंचकार ।

तेषु दिवसेषु कार्यारम्भे जाते ज्यौतिषाङ्गत्रये सिद्धान्त-होरा-संहितासु होराशास्त्रस्य, आचार्यहेमप्रभसूरिविरचित 'त्रैलोक्यप्रकाश' नामक पुस्तकस्य पाठान्तरैः सहितं हिन्दीटीकायुक्तं प्रकाशनं पञ्चचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतितमे क्रिस्ताब्दे (१९४५) समभवत् ।

तदनन्तरं सप्तचत्वारिंशदुत्तरैकविंशतितमे क्रिस्ताब्दे (१९४७) भारतवर्षं स्वतन्त्रमभवत्, पञ्चापदेशस्य भागद्वये विभाजनमभवच्च । तदा वयमपि जन्मभूमिं विहाय भारतस्य राजधान्यां दिल्लीनगर्यां स्वज्यौतिषानुसन्धानकेन्द्रमरचयाम । ज्यौतिषं पूर्णरूपेण समुन्नतकरणं नैकजनस्य कार्य, यावदस्मिन् महति कर्मणि जनतायाः साहाय्यं न भवेत् । इत्थं विचार्य अहं श्रीवृजलालनेहरुमहोदयस्य तथाऽन्यसदस्यानां समक्षं 'जनता-संरक्षण' संस्थायाः स्थापनस्य प्रस्तावम् अस्थापयम् । तैः कृपालु-महानुभावैः भारतीयज्यौतिष-संस्कृतानुसंधानसंस्थायाः (इण्डियन इन्स्टीटयूट आफ अस्ट्रानोमिकल एण्ड संस्कृत रिसर्च) सूत्र-पातमकारि । उत्तरप्रदेशस्य भूतपूर्वैः मुख्यमन्त्रिभिः माननीयैः श्रीसम्पूर्णानन्दमहोदयैः स्वकरकमलाभ्याम् अस्याः बृहत्संस्थायाः उद्घाटनं सुसम्पादितम् । ततः संस्थेयं स्वकार्यस्यारम्भं 'ज्यौतिष-विज्ञान' नाम्न्या मासिकपत्रिकयाऽकरोत् ।

आचार्याणां श्रीवटेश्वरमहानुभावानां नाम मया अलबेरूनी यात्रिणो भारतयात्रायामपठम् । अलबेरूनी तस्यामलिखत् यत् वटेश्वरसिद्धान्तनामक एकोत्तमो ग्रन्थो भारते विद्यते यस्मिन् ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तविषयिकी आलोचना वर्तते । मम चेतसि उत्कण्ठाऽऽसीत् यद् ग्रन्थोऽयं कथं मामुपलभ्येत ।

ततः गणकतरंगिण्यामपि महामहोपाध्यायसुधाकरद्विवेदिरचिते स्वाध्याये वटेश्वराचार्यप्रणीतस्य वटेश्वरसिद्धान्तस्य अनुपलब्धिविवशतामपश्यम् । इदं पुस्तकं लब्धुमहंयतमानोऽभवम् । भारतस्य विहारप्रान्ते, काश्मीरेषु एवं अन्यान्येषु राज्येषु अहं गत्वा हस्तलिखितग्रन्थस्यास्य प्राप्त्यै प्रयत्नमकरवम् । किन्तु कुत्रापि नहि लब्धवान् ग्रन्थमिमम् । अन्ते मयाऽस्यान्वेषणं लवपुरस्थ-विश्वविद्यालयस्य बृहत्पुस्तकालयेऽकारि तत्र सफलमनोरथोऽभवम् । अहं तत्र हस्तलिखितं वटेश्वरसिद्धान्तमुपलब्धवान् । ततः अहं श्री जगदीशशास्त्रि एम० ए०, एम० ओ० एल० महोदयद्वारेण वटेश्वरसिद्धान्तस्य प्रतिलिपिमकारयम् । इत्थम् अयं महान् ज्यौतिषग्रन्थो हस्तगतो जातः ।

पुस्तकं तु प्राप्तं किन्तु तथैव मूलरूपेण मुद्रापणेन नहि कोऽपि लाभो दृश्यते स्म, अतः सभाष्यः सोपपत्तिः हिन्दीभाषानुवादसहितश्च मुद्रितो भवेदिति व्यचारयम् । किन्तु पर्याप्तां वेलां यावत् अस्य कार्यस्य सुसम्पन्नाय नहि कश्चित् सहायो योग्यो ज्यौतिषी मिलितः । बहुकालानन्तरं श्रीपण्डितविश्वनाथ (झा) द्वारेण सिद्धान्त-ज्यौतिषस्य प्रकाण्डविद्वांसः श्रीमुकुन्दमिश्रज्यौतिषाचार्याः अवबोधपथमवतरिताः । आहूताश्चास्य कार्यस्य सम्पादने । तैः महानुभावैः स्वमहता परिश्रमेण पुस्तकस्यास्य सम्पादने संस्कृतभाष्योपपत्तिहिन्दीटीकादिलेखने च मह्यं महान् सहयोगः प्रादायि ।

इत्थंविधिना पुस्तकमिदमिदानीम् अधिकारत्रयस्य विशालस्वरूपेण भवतां समक्षं प्रस्तूयते । अनेन ज्यौतिषस्य प्रचारकार्ये कियांल्लाभो भविष्यति तथाऽनेन ग्रन्थेन ज्यौतिषिकाः महाभागाः कियन्मात्रम् अग्रेसराः भवितुं शक्ष्यन्ति—एतत् सर्वं विद्वन्मण्डलायत्तं मन्ये ।

आभार-स्वीकारः

अस्मिन्कर्मणि ज्यौतिषस्य परमविद्वान् श्रीपण्डितविश्वनाथ (झा) ज्यौतिषाचार्यवर्यैः गणितकर्मणि च मह्यं महान् सहयोगोऽदायि तदर्थमहं हृदयेन तेषामाभारं गृह्णामि । प्रूफसंशोधनकर्मणि महान् सहायको विद्याभास्करो लक्ष्मीनारायणः शास्त्री धन्यवादार्हः । तथा कार्यस्यास्य सम्पन्नतायै भारतशासनस्य सांस्कृतिक-वैज्ञानिक-विभागानां प्रान्तीयशासनाधिकारिणां अस्याः संस्थायाः सदस्यानां चानुगृहीतोऽस्मि ।

भृगु आश्रमः विदुषामनुचरः

नई देहली रामस्वरूपशर्मा

३१-१०-६१

विषयानुक्रमणिका

मध्यमोधिकारः

पञ्चमोऽध्याय:—

स्पष्टाधिकारः

प्रथमोऽध्यायः—

अष्टमोऽध्यायः—

अथ देशान्तरविधिः

नवमोऽध्यायः—

अथ प्रश्नविधिः

स्पष्टाधिकारः

प्रथमोऽध्यायः—

द्वितीयोऽध्यायः—

तृतीयोऽध्यायः—

चतुर्थोऽध्यायः—

स्फटीकरणम्

पञ्चमोऽध्यायः—

षष्ठोऽध्यायः—

तिथ्यानयनविधिः

त्रिप्रश्नाधिकारः

द्वितीयोऽध्यायः—

तृतीयोऽध्यायः—

चतुर्थोऽध्यायः—



द्वित्राः शब्दाः

श्रीवटेश्वरसिद्धान्त की रचना आज से लगभग ९०० वर्ष पहले हुई थी। लिखे जाने के थोड़े ही दिन के भीतर, इसकी गणना सिद्धान्त-ज्योतिष के लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थों में हो गई। यह आश्चर्य का विषय है कि जिस पुस्तक ने विद्वत्समाज में इतना समादर प्राप्त किया था, वह कुछ दिनों में नाम-शेषमात्र रह गई थी। यह हर्ष का विषय है कि बड़े अन्वेषण के पश्चात् उसकी एक हस्तलिखित प्रति पण्डित रामस्वरूप शर्मा को मिल गई। उसका प्रकाशन करके उन्होंने उपयोगी कार्य किया है। कुछ मित्रों की सहायता से उसका जो विज्ञान-भाष्य लिखा गया है व हिन्दी टीका दी गई है उससे उपयोगिता और भी बढ़ गई है। उपपत्तियों में उस प्रक्रिया का व्यवहार करके, जो आधुनिक गणित-ग्रन्थों में प्रयुक्त होती है, विद्यार्थियों के लिए उपादेयता की मात्रा को कई गुना बढ़ा दिया है।

जिस व्यक्ति ने २४ वर्ष के वय में ऐसा ग्रन्थ लिखा उसकी प्रतिभा निश्चय ही असाधारण रही होगी। ग्रन्थ को देखने से इस अनुमान की पुष्टि होती है। परन्तु इसके साथ ही कुछ और बातों की ओर भी ध्यान जाये बिना नहीं रहता। जिन दिनों पुस्तक लिखी गई थी, उस समय भारतीय विज्ञान में अधोमुखी प्रवृत्ति का आरम्भ हो गया था। ज्योतिष प्रत्यक्षमूलक शास्त्र है। जिस व्यक्ति ने २४ वर्ष की अवस्था में ऐसी पुस्तक लिखी, निश्चय ही उसने आकाशवर्ती पिंडों के प्रत्यक्ष अध्ययन में अधिक समय नहीं लगाया। उसके ज्ञान की गम्भीरता चाहे जो रही हो, पर वह ज्ञान गुरुमुख से और पुस्तकों से प्राप्त हुआ था। उसका आधार वेधशाला में किया गया प्रयोग व अध्ययन न था। वही प्रवृत्ति आज भी है लोग पुस्तक पढ़कर ज्योतिषी बन जाते हैं। लोकोक्ति के अनुसार, "बावा वाक्यम् प्रमाणम्" का युग आ गया था। कालिदास के इस कहने को कि 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' लोग भूल चले थे। व्याकरण व दर्शन के समान ज्योतिष भी शास्त्रार्थ का विषय बन गया था। वटेश्वरसिद्धान्त में पूरा एक अध्याय, ब्रह्मगुप्त के खंडन में दिया गया है। उसका शीर्षक ही है 'अन्यदूषणानि'। यह हो सकता है कि भू-भ्रमण आदि किन्हीं विषयों पर ग्रन्थकार को आर्यभट्ट के मत में स्वारस्य हो और ब्रह्मगुप्त के मत में वैरस्य; परन्तु ब्रह्मगुप्त को मूर्ख सिद्ध करने का प्रयास अशोभन है। कहीं वह कहते हैं, "रविशशिनोरज्ञानात् तिथेर्न पंचांगमपि वेत्ति"। कहीं उनके लिए 'विनष्टमत्र' जैसे विशेषण का प्रयोग किया गया है। जब किसी विद्या की उन्नति का प्रवाह रुक जाता है तभी प्राचीन ग्रन्थों को सर्वोपरि प्रामाणिकता दी जाती है। उनको देवों व ऋषियों की कृतिमात्र कहा जाने लगता है और उनसे लघुमात्र भी भिन्न बात कहना अज्ञान का ही द्योतक नहीं प्रत्युत एक प्रकार से पाप समझा जाने लगता है। आज हमारे यहां ज्योतिष व वैद्यक में यही हो रहा है। उपज्ञा का मार्ग बन्द सा हो गया है। ब्रह्मगुप्त के सम्बन्ध में वटेश्वर की यह आपत्ति है कि 'जिष्णुतनयो निजबुद्धया दिव्यशास्त्रमपहाय अन्यद् प्राह' अर्थात् ब्रह्मगुप्त ने देवादिरचित शास्त्रों को छोड़कर अपनी बुद्धि से उससे भिन्न कहा है। जो प्रशंसा की बात होनी चाहिए थी वही दोष बन गई। कहीं-कहीं तो दोषदर्शन के नशे में ऐसा तर्क दे गये हैं जिस पर हँसी आती है। कम से कम मेरी बुद्धि में वह बात नहीं बैठती।

व्यक्ते, भूव्यासार्धे सहस्रप्रसंविते गणितसौक्ष्म्यात् ।
कर्त्तव्यं व्यासार्धं खत्रयमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम् ॥

पृथ्वी का व्यासार्ध १००० मानना चाहिए क्योंकि इसमें गणित की सूक्ष्मता है । ब्रह्मगुप्त ने जो ७६० स्वीकार किया है इसमें गणितजाड्य है । पृथ्वी का व्यास वस्तुस्थिति का अंग है । वह न तो ठीक ठीक १००० है और न ही ७६० । यदि ब्रह्मगुप्त ने गणना करने में भूल की तो वह भूल बतलानी चाहिए । सूक्ष्मता व जड़ता अप्रासंगिक है ।

मैं यह सब ग्रन्थ की निन्दा करने के लिए नहीं लिख रहा हूँ वरन् यह दिखलाने के लिए कि वैज्ञानिक ह्रास के युग में ऐसी प्रवृत्तियां प्रोत्साहित होती हैं । बुद्धि का उपयोग, पुराने ज्ञान के संचय व परस्पर के छिद्रान्वेषण में होने लगता है । वटेश्वर के कई सौ वर्ष बाद भारत के गणिताकाश में भास्कर जैसे दीप्तिमान् नक्षत्र का उदय हुआ, जिन्होंने न्यूटन क्लाइब् पिट्ज के कई शताब्दी पहले तात्कालिक गति के नाम से **Differential Calculus** को उपज्ञप्त किया । कितने खेद की बात है कि परवर्ती भारतीय गणितज्ञ इस प्रक्रिया का मूल समझ न सके और कुछ ने तो उसका खंडन करने में ही अपनी कृतकृत्यता समझी । अब काल ने करवट ली है । ऐसी आशा करनी चाहिए कि भारत फिर ज्ञान के क्षेत्र में अग्रसर होगा ।

लखनऊ —**सम्पूर्णानन्द**

(भू० पू० मुख्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश)

३१-१०-६१

सम्मति—उपकुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वटेश्वरसिद्धान्त

विज्ञानभाष्योपपत्तिसहित

श्री रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित

पुस्तक का अवलोकन किया। ऐतिहासिक दृष्टि से ८२६ शक काल में इस ग्रन्थ का निर्माण श्रीवटेश्वराचार्य ने किया है क्योंकि २४ वर्ष की आयु में उन्होने इस ग्रन्थ का निर्माण किया था और आचार्य का जन्म शक ८०२ वर्णित है। यथा—

"शकेन्द्रकालाद्भुज-शून्य-कुञ्जरैरभूदतीतैर्मम जन्महायनैः।
अकारि राद्धान्तमितैः स्वजन्मनो मया जिनाब्दैर्युसदामनुग्रहात्॥"

व० सि० अध्याय १ श्लोक २१।

श्लोक से उक्त बातें स्पष्ट हैं।

गणकतरङ्गिणी पृ० सं० १६ पंक्ति १४ में लिखा है—

"यथा ब्रह्मगुप्तेनाऽऽर्यभटादीनां खण्डनं कृतं तथैव वटेश्वरेण स्वसिद्धान्ते बहुत्र ब्रह्मगुप्त-खण्डनं कृतमस्ति।.............. .. .. अस्य सिद्धान्त-ग्रन्थो मया संपूर्णो न दृष्टः। ग्वालियरमहाराजाश्रितस्य श्रीबालज्योतिर्विदो गेहेऽयमस्तीति श्रुत्वा तत्रासकृत्पत्रं प्रेषितं परन्त्वद्यावधि किमप्युत्तरं न प्राप्तम्।"

गणकतरङ्गिणी के उक्त गद्य से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अब तक अनुपलब्ध रहा है। विद्वान् सम्पादक ने उक्त ग्रन्थ को केवल प्राप्त ही नहीं किया है अपितु सुन्दर विज्ञानभाष्योपपत्ति सहित ग्रन्थ का सम्पादन कर सिद्धान्त ज्योतिष के एक महान् प्रयास को सफल बनाया है।

पुस्तक तीन अध्यायों में प्रकाशित हो रही है। सिद्धान्तग्रन्थों में कम-से-कम १४ अध्याय पाये जाते हैं। जैसे सूर्यसिद्धान्त १४ अध्यायों में प्रकाशित है। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अभी अपूर्ण है, अर्थात् यह ग्रन्थ खण्डमात्र है।

ब्रह्मसिद्धान्त का संशोधन कर इस ग्रन्थ का निर्माण आचार्य वटेश्वर ने किया था जैसा कि मंगलाचरण से स्पष्ट है। मंगलाचरण में ही कक्षा-क्रम का उल्लेख आचार्य ने किया है। यह अन्य आचार्यों की अपेक्षा अपना वैशिष्ट्य रखता है। अब वटेश्वरसिद्धान्त को विज्ञानभाष्योपपत्ति तथा हिन्दी टीका ने सर्वसुगम बना दिया है। वास्तव में यह बहुत ही उत्तम प्रयास है। नवम शतक (शक काल) में इतने बड़े ग्रन्थ का होना ज्योतिष के इतिहास को गौरवान्वित करता है। मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ के माध्यम से सम्पादक ने ज्योतिष शास्त्र को विशेष प्रगति प्रदान करने का प्रयास किया है। आशा है विद्वान् लोग इससे विशेष लाभ उठावेंगे और सम्पादक का प्रयास पूर्ण सफल होगा यही मेरी शुभ कामना है।

एन० एच० भगवती
उपकुलपति
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

३१-१०-१९६१

वटेश्वर-सिद्धान्ते

मध्यमाधिकार - स्पष्टाधिकार - त्रिप्रश्नाधिकाररूपं

पूर्वार्द्धम्

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वटेश्वरसिद्धान्तः

विज्ञानभाष्योपपत्तिसहितः

तत्र मध्यमाधिकारे

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मावनीन्दुबुधशुक्रदिवाकरार-जीवार्कसूनुभगुरून् पितरौ च नत्वा ।
ब्राह्मं ग्रहर्क्षगणितं महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिलं स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम् ॥१॥

विज्ञानभाष्यम्—अहं महदत्तसूनुः (महदत्तनामक पण्डितपुत्रः) वटेश्वराचार्यः ब्रह्म (खं-शून्यं, परमात्मा वा), अवनी (पृथ्वी), इन्दुः (चन्द्रः), बुधशुक्रौ (प्रसिद्धौ) दिवाकरः (सूर्यः), आरः (भौमः), जीवः (बृहस्पतिः), अर्कसूनुः (शनैश्चरः), भानि (नक्षत्राणि) गुरुः (विद्यागुरुः) एतान् पितरौ (जन्मदातारौ) नत्वा (नमस्कृत्य) अखिलं (सम्पूर्णम्) ब्राह्मं (ब्रह्मगुप्तकृतं ब्रह्मसिद्धान्तीयं वा) ग्रहर्क्षगणितम् (ग्रह-नक्षत्रस्थूलगणितम्) अतीव (अतिशयं) स्फुटम् (स्पष्टम्) वक्ष्ये (ब्रुवे) ॥१॥

अत्र सर्वप्रथमं ब्रह्मशब्दोपादानमस्ति तदनन्तरं पृथ्वीतो नक्षत्रकक्षावृत्त-पर्यन्तं ग्रहस्थितिः वर्णितास्ति । खं ब्रह्मेत्युक्त्या ब्रह्मशब्देन खस्य आकाशस्य शून्यस्य वा, पृथ्वीतो नक्षत्रकक्षावृत्तं यावत् कक्षावृत्तानां केन्द्ररूपस्य भूकेन्द्र-संज्ञकस्यात्यन्ताकर्षणशक्तिसम्पन्नस्य च ग्रहणं कर्त्तव्यमन्यथा पृथ्वीतो नक्षत्र-कक्षा-वृत्त-पर्यन्तमुपर्युपरिस्थितग्रहापेक्षया ब्रह्मणोऽवस्था तस्याधोगतत्वापत्तिः ब्रह्म-स्थानस्य सर्वोर्ध्वगत्वादतो ब्रह्मशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणं न युक्तं प्रतीयते अथवा ब्रह्माण्डगोलान्तर्गतानवनीन्दुबुधशुक्रादीन् नत्वेत्यर्थः कर्त्तव्यः ।

ग्रन्थकारकृत-मंगलाचरणवर्णितं ग्रहस्थित्या सह पृथिव्याः स्थितिरपि वर्णितास्ति, परं पृथिव्या आकृतिः कीदृशी वर्त्तत एतस्य विचारः क्रियते । कुत्रचिद् वृक्षादिविरलितसमावनौ कियद्दूरेष्टिकाः स्तम्भाग्रस्थोद्दीपित-शीशक-घटप्रदीपं निशायां दृष्ट्वा तत्संमुखं तदासन्नं च गते सति स्तम्भमूलेप्येकं दीपं दृष्ट्वा दृष्ट्यवरोधकाभावेऽपि पूर्वं कथं न दृष्टमतो दृष्ट्यवरोधिका भूरेवेत्यनुमितम् । अतो भूपृष्ठे वक्रत्वमस्तीति सिद्धम् ।

अथ सत्यपि वृक्षाग्राच्चतुर्दिक्षु समाकाशे पृथ्व्यामेव पक्वं फलं पतत् दृष्ट्वा भूपृष्ठ-निष्ठाखिल-बिन्दुष्वाकृष्ट-शक्तिरस्तीत्यनुमितं, तथा मापनेन वृक्षाग्रात् पतनबिन्दुं यावद्बद्धरेखा<पतनेतर-बिन्दुषु बद्धरेखा, अत: पृथिव्या बहि:स्थ-बिन्दो: पृष्ठस्थ-बिन्दुगत-रेखाणां बहि:खण्डानि>केन्द्रगरेखा-बहि:खण्ड:, इति गोलीय-नैसर्गिकधर्मदर्शनात् गोलत्वमस्ति कश्चिदिति । अतस्तावत् गोलत्वं प्रकल्प्यात्र सन्ति गोलीयधर्मा नवेति परीक्षा क्रियते ।

पृथिव्यां स्थानद्वये समस्तस्तम्भ-द्वयमारोप्यैकस्तम्भस्य शीर्ष बिन्दुतोऽन्यस्तम्भाग्रं विद्धम् । पृथ्व्यन्तर्गत एकस्तादृशो बिन्दुरस्ति, यस्मिन् विशिष्टाऽऽकर्षण-शक्तिरस्ति यो हि बिन्दु: पृथिवीपृष्ठस्थ पदार्थान् स्वाभिमुखमाकर्षयति स: बिन्दु: (भूसंज्ञक:) । पृथिव्या: पृष्ठे स्थापित-स्तम्भद्वयं भूबिन्दोराकर्षण-शक्तिवशात्तत्र (भू) बिन्दौ मिलति (च, प) समस्त-स्तम्भ-द्वयाग्रं, च बिन्दुस्थ-दृष्ट्या द्वितीयस्तम्भाग्रं (प) विद्धम् ।

च बिन्दुस्थ-दृष्टिलग्नकोणस्तुरीययन्त्रद्वारा मापनेन विदित: । एतत्तुल्य-एव प बिन्दु-लग्न-कोण:, अत: च-प-भू त्रिभुजे १८०—(<च+<प)=<भू । च प स्तम्भाग्रान्तरमपि मापनेन विदितमस्ति तदोक्त-त्रिभुजेऽनुपात: क्रियते ।

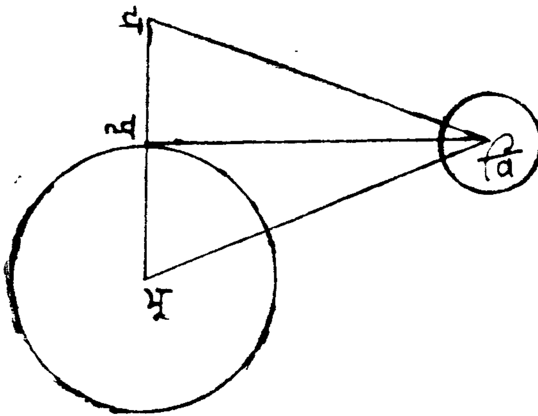
$$\frac{\text{स्तम्भाग्रान्तर}\times\text{ज्या}<\text{च}}{\text{ज्या}<\text{भू}}=\text{भूप}=\text{भूव्यासार्ध}+\text{स्तम्भ}$$

अत्र स्तम्भस्य शोधनेन भू-व्यासार्धं मानमवशिष्टम् । एवं भूव्यासार्ध-ज्ञानं जातम्, एवं कृते सर्वत्रैव फलसाम्यमुपलब्धमतो भूर्गोलाकाराऽस्तीति सिद्धम् । वस्तुतस्तु भूदीर्घपिण्डाकाराऽस्ति, परं तत्र लघुव्यास-बृहद्व्यासयोरत्यल्पान्तरत्वात्तयो: समत्वं कल्पितमाचार्यैरिति ।

चतुर्थे पृष्ठे दत्तं चित्रं द्रष्टव्यम् ।

तथा च मङ्गलश्लोकवर्णितग्रहस्थितिदर्शनेनैव रव्यादिवारगणनक्रमोऽपि सिद्ध्यति । यथा ग्रहस्थिति:—चन्द्र:, बुध:, शुक्र:, रवि:, कुज:, गुरु:, शनैश्चर: । एते क्रमश उपर्युपरि क्रमेण सन्ति । मन्दादध: क्रमेणैव चतुर्था दिवसाधिपा इति सूर्यसिद्धान्तोक्ते, शनैश्चरतोऽधोऽध: क्रमेण चतुर्थश्चतुर्थो वारेशो भवति । यथा शनैश्चरतश्चतुर्थो रविरत: प्रथमदिनपति: सूर्य:, सूर्यादधश्चतुर्थश्चन्द्रोऽस्ति तेन द्वितीयदिनपतिश्चन्द्र: । चन्द्रादधश्चतुर्थो मंगलोऽतस्तृतीयो दिनपतिर्मङ्गल:, मङ्गलादधश्चतुर्थो बुधोऽतश्चतुर्थो दिनपतिर्बुध इत्यादि, एवं वारगणनाक्रम: सर्वप्रथमं भारतीयैरेव गाणितिकै: कृत इति ।

अथ पृथ्वीतो नक्षत्रं यावदुपर्युपरि क्रमेण स्थितानां तेषां (चन्द्रबुधशुक्ररव्यादीनां) स्थितेर्ज्ञानं कथं भवेदर्थाच्चन्द्रादुपरि बुधस्तदुपरि शुक्र इत्यादेर्ज्ञानं कथमित्येतदर्थं वेधेन ग्रहबिम्बीय-कर्णज्ञानं क्रियते ।



वि = ग्रहबिम्बकेन्द्रम्

भू = भूकेन्द्रम्

पृ = पृष्ठस्थानम्

च = दृष्टिस्थानम्

पृ च = दृष्टयुच्छ्रितिः

भू वि = ग्रहबिम्बीयकर्णः

पृ वि = पृष्ठकर्णः

भू पृ = भूव्यासार्धम्

चित्र नं० १

अत्र पृ च वि त्रिभुजे च पृ वि, पृ च. वि तुरीययन्त्र द्वारा मापनेन विदितौ ततः १८०—(<च पृ.वि+ <पृच. वि)=पृ वि च तत उक्त त्रिभुजे कोणत्रयस्य दृष्टयुच्छ्रायस्य च ज्ञानादनुपातेन पृ वि विदितं भवेत्, तथा १८०— <च पृ.वि=< भू पृ. वि तदा भू पृ. वि त्रिभुजे भू पृ, पृ वि भुजयोस्तदन्तर्गतकोणस्य च ज्ञानात् त्रिकोणमित्या भू वि ज्ञानं भवेदयमेव ग्रह बिम्बीय कर्णः ।

एवं सर्वेषां ग्रहाणां बिम्बीय-कर्णज्ञानं कृत्वाऽऽचार्यैर्ग्रहकक्षा व्यासार्धमानं पठितम् । तत्र सर्वग्रहापेक्षया चन्द्रबिम्बीयकर्णमानमल्पमायाति चन्द्रकर्णतोऽधिकं बुधकर्णमानं ततोऽधिकं शुक्रकर्णमानं, ततोऽधिकं रविकर्णमानमित्यादि, तेन भूकेन्द्राद्बिम्बीय-कर्णव्यासार्धेन यद्वृत्तं तदेव ग्रहकक्षावृत्तं भवत्यतश्चन्द्रकक्षावृत्तादुपरि बुधकक्षावृत्तम्, तदुपरि शुक्रकक्षावृत्तं, तदुपरि रविकक्षावृत्तमित्यादिमङ्गलश्लोकवर्णित-स्थिति-क्रमेण सर्वेषां कक्षा वृत्तान्युपर्युपरि क्रमेण भवन्ति । एतावता सिद्धम् यद्येषु मार्गेषु ग्रहाः भ्रमन्ति सच मार्गो वृत्ताकारो भवति, यस्य नाम कक्षावृत्तमित्यर्थात् भूकेन्द्राद् ग्रहबिम्बकेन्द्रगतं सूत्रम् ग्रहकक्षाव्यासार्धम् तद्वशतः पृथिव्याः केन्द्रमभित उपर्युपरि ग्रहाणां वृत्ताकारा कक्षाः, नवीनैस्तु सूर्यकेन्द्राभिप्रायेण दीर्घवृत्ताकारकक्षायां ग्रहभ्रमणं स्वीक्रियते । दीर्घवृत्तस्यैकनाभौ रविकेन्द्रं तस्माद्बहिर्मन्दकर्णाग्रे बुध, शुक्र, भूमि, मंगल, गुरु-शनीनां कक्षाः क्रमशः ऊर्ध्वाधररूपेण सन्तीति ॥१॥

हिन्दी भाष्यम्—मैं महदत्त पंडित का पुत्र वटेश्वराचार्य ब्रह्म (परमात्मा); या शून्य (भूकेन्द्र बिन्दु) पृथिवी चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, वृहस्पतिः शनैश्चर, नक्षत्र, आचार्य गुरु, अपने जन्मदाता माता पिता इन सब को प्रणाम कर ब्रह्मगुप्त कृत समस्त ग्रह नक्षत्रों का गणित (स्थूल गणित) को अतिशय स्पष्ट कहता हूँ ।

यहाँ सर्वप्रथम ब्रह्म शब्द दिया गया है । उसके बाद पृथिवी से नक्षत्र तक ग्रहस्थिति वर्णित है । 'ओं खं ब्रह्म' इस उक्ति मे ब्रह्म शब्द से आकाश मानो शून्य का अर्थात् पूर्व वर्णित पृथिवी से नक्षत्र तक ग्रह कक्षा वृत्तों के केन्द्र रूप भूकेन्द्र नामक आकर्षणशक्तियुक्त बिन्दु का ग्रहण करना चाहिये । यदि ब्रह्म शब्द से ब्रह्म ही का ग्रहण करेंगे तो ब्रह्म का

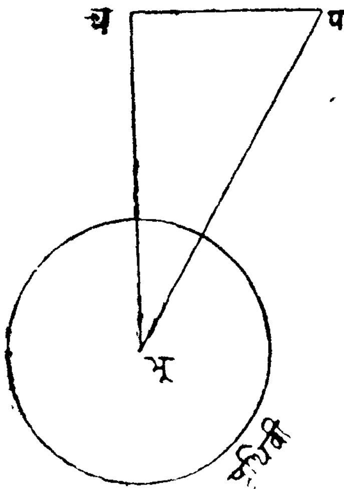
स्थान ग्रहों से पृथिवी से भी नीचा हो जाएगा जो उचित नही है। ब्रह्म शब्द से शून्य (भू केन्द्र बिन्दु) ही का ग्रहण करना उचित है, या ब्रह्माण्ड गोलान्तर्गत पृथिवी, चन्द्र, बुध, शुक्र आदि को नमस्कार कर ब्राह्म गणित को स्पष्ट कहता हूँ। ऐसा अर्थ करना चाहिये।

यहां पर (मङ्गलाचरण में)कही हुई ग्रहस्थिति के साथ पृथ्वी की भी स्थिति कही गई है, पर पृथ्वी का आकार कैसा है इसके सम्बन्ध में विचार करना है। वृक्षादि रहित किसी समान जगह पर से कुछ दूरी पर ईंटों के खम्भे के ऊपर जलती हुई लालटेन आदि प्रकाशमान चीजों को देखकर उसके तरफ समीप जाने पर उस खम्भे की जड़ में भी रात्रि में एक लालटेन देख कर मन में आया कि जब कोई चीज़ दृष्टि की अवरोधक नहीं थी तो एक ही समय में दोनों लालटेनों को क्यों नहीं देखा। इससे अनुमान किया कि पृथ्वी ही दृष्टि की अवरोधक है। इससे सिद्ध हुआ कि पृथ्वी के पृष्ठ में वक्रता (टेढ़ापन) है।

चारों तरफ आकाश के बराबर रहने पर भी पृथ्वी के पृष्ठ पर पके फल को गिरते हुए देखकर पृथ्वी के पृष्ठ पर प्रत्येक बिन्दु में आकर्षण शक्ति है। इस तरह का अनुमान हुआ। तथा वृक्षाग्र से पतन विन्दु तक रेखा < पतनेतर बिन्दु तक रेखा इस लिये पृथ्वी पृष्ठ पर बहिर्गत बिन्दु से पृथ्वी पृष्ठ तक रेखाओं के बहिर्खण्ड > केन्द्रग रेखा बहिर्खण्ड, यह गोल पदार्थ में होता है। इसलिये पृथ्वी में भी किसी तरह का गोलत्व ज्ञात हुआ। अतः पहले पृथ्वी में गोलत्व स्वीकार कर परीक्षा करनी है कि इसमें गोलीय धर्म है या नहीं।

पृथ्वी पृष्ठ पर दो जगह में दो बराबर खम्भों को गाड़कर एक खम्भे के अग्रभाग में दृष्टि रखकर दूसरे खम्भे के अग्रभाग को देखा। पृथ्वी के भीतर एक ऐसा बिन्दु है जो पृथ्वी पृष्ठ पर की चीज़ों को अपनी तरफ खींचता है। अतः दोनों खम्भे बढ़कर उसी बिन्दु में मिलते हैं। उस बिन्दु का नाम भू है। जो गणित द्वारा निम्न प्रकार से सिद्ध है।

च प = खम्भों का अग्रान्तर है, इसे नाप कर जाना। <च का ज्ञान तुरीय यन्त्र द्वारा कर लिया। इसी कोण के बराबर < प कोण भी है। अतः १८० — (>च + <प) = < भू, तब च प भू त्रिभुज में अनुपात से $\frac{\text{चप} \times \text{ज्या} < \text{च}}{\text{ज्या} < \text{भू}}$ = भू प = भू व्यासार्ध + खम्भा



चित्र नं० २

इसमें खम्भा वियुक्त करने से भूव्यासार्ध अवशिष्ट रहा। इस प्रकार हर एक जगह करने से भू व्यासार्ध का मान बराबर देख लिया। अतः पृथ्वी गोलाकार है यह उपपन्न हुआ। वस्तुतः पृथ्वी का आकार दीर्घ पिण्डाकार है लेकिन उसके लघुव्यास और बृहद् व्यास में बहुत ही कम अन्तर हैं। इसलिए

दोनों व्यासों को बराबर प्राचीन आचार्यों ने माना है। अतः पृथ्वी में गोलत्व सिद्ध हुआ।

मङ्गलश्लोक में वर्णित ग्रहस्थिति को देखने से रवि, सोम, मंगल आदि वार गणना-क्रम भी सिद्ध होता है। जैसे चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, कुज, गुरु, शनि ये उपरि-उपरि क्रम से हैं। 'मन्दादधःक्रमेणैव चतुर्था दिवसाधिपाः' इस सूर्यसिद्धान्त की उक्ति से शनि से नीचे नीचे क्रम से चौथे दिनपति होते हैं। जैसे-शनि से चौथा रवि है अतः यह प्रथम दिनपति हुआ। रवि से चौथा अधः क्रम से चन्द्र है अतः दूसरा दिनपति चन्द्र हुआ। चन्द्र से नीचे क्रम से चौथा भौम है अतः तृतीय दिनपति मंगल हुआ इत्यादि।

इस प्रकार वार-गणना-क्रम रवि, सोम, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि-इन दिनों का ज्ञान सर्वप्रथम भारतीय ज्योतिषियों ने किया।

पृथिवी से नक्षत्र तक चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, कुज, गुरु, शनि, नक्षत्र ऊपर-ऊपर क्रम से इन सब की स्थिति का ज्ञान कैसे होता है। इसके लिये वेध से ग्रहों के बिम्बीयकर्ण का ज्ञान अपेक्षित है।

चित्र नं० १ देखिये

वि = ग्रह बिम्ब केन्द्र

भू = भू केन्द्र

पृ = पृष्ठस्थान

च = दृष्टिस्थानम्

पृ च = दृष्टि की ऊँचाई

भू वि = ग्रह बिम्बीय कर्ण

पृवि = पृष्ठ कर्ण

भू पृ = भूव्यासार्ध

च पृ वि, पृ च वि ये दोनों कोण तुरीय यन्त्र से नाप कर ज्ञान लिया, तब १८० — (<च पृ वि + <पृ च वि) = <पृ. वि च तब पृ च वि त्रिभुज में पृ च दृष्टि-उच्छ्रिति और तीनों कोणों के ज्ञान से पृ. वि का भी ज्ञान हो जायगा।

१८० — <च पृ. वि = <भू पृ. वि तब भू पृ वि त्रिभुज में भू पृ, पृ. वि दोनों भुजों के तथा तदन्तर्गत कोण के ज्ञान से त्रिकोण मिति से (भू वि) इसका ज्ञान हो गया। यही ग्रह बिम्बीय कर्ण है। इसी तरह सब ग्रहों के बिम्बीय कर्णों का ज्ञान करके आचार्य ग्रहकक्षाव्यासार्ध पठित कर चुके हैं।

सब ग्रहों के बिम्बीय कर्णमानों से चन्द्रबिम्बीय कर्ण छोटा होता है। चन्द्रबिम्बीय कर्ण से <बुध बिम्बीय कर्ण इससे अधिक शुक्र बिम्बीय कर्ण, इससे अधिक रवि बिम्बीय

कर्ण इससे अधिक भौमबिम्बीय कर्ण इत्यादि। अतः चन्द्र कक्षावृत्त से ऊपर बुध कक्षावृत्त और बुध कक्षा वृत्त से ऊपर शुक्रकक्षावृत्त और इससे ऊपर रवि कक्षावृत्त इत्यादि होता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस मार्ग में ग्रह चलते हैं वह मार्ग वृत्ताकार है। ग्रह कक्षा व्यासार्धवश से पृथ्वी केन्द्र (भूकेन्द्र) के चारों ओर नीचे ऊपर क्रम से ग्रहों का कक्षावृत्त है।

आधुनिक ज्योतिषी लोग सूर्य केन्द्राभिप्रायिक दीर्घवृत्ताकार कक्षावृत्तों में सब ग्रहों का भ्रमण होना मानते हैं। दीर्घवृत्त की एक नाभि में रवि केन्द्र है और उसके बाहर मन्दकर्णाग्र में बुध, शुक्र, पृथ्वी, कुज, गुरु, शनैश्चर इन ग्रहों का कक्षावृत्त क्रम से ऊर्ध्वाधर रूप से हैं ॥१॥

कालक्रियागणितगोलमहागमार्थ-ज्ञानप्रपञ्च-विमलीकृतचारुधीभिः ।
दिव्यैः प्रदर्शितमिदं मुनिभिर्यदज्ञाः कुर्मो वयं तदवलोक्य गुणाः स तेषाम् ॥२॥

वि.भा.—कालक्रिया (त्रुटयादितः प्रलयान्तं यावत् कालगणना कालसाधनं वा) गणितं (व्यक्तमव्यक्तं च) गोलः (खगोल, भगोल, ग्रहगोलादि) महागमः (प्रामाणिकातीव प्राचीनग्रन्थः ।) एतेषां यथार्थज्ञानवैशद्येन विमलीकृत-सुन्दरबुद्धिभिः दिव्यैर्मुनिभिः (दिव्यज्ञानिभिः महात्मभिः) इदं (ज्यौतिषशास्त्रं) प्रदर्शितम् (जनसाधारणसमक्षे रक्षितम्) तदवलोक्य (तत्प्रदर्शितं ज्यौतिषशास्त्रं दृष्ट्वा) यदज्ञा वयं (यज्ज्ञानरहिता वयं) तच्छास्त्रं कुर्मः । तेषां महात्मनां सगुणः (आशीर्वादफलम्) अर्थात् ज्यौतिषशास्त्र-ज्ञानरहितेन मया यद् ग्रन्थ-प्रणयनं क्रियते तन्मुनिप्रणीत-ग्रन्थावलोकनफलम् । एतावतेत्यपि सिद्ध्यति, यदाचार्यो वटेश्वरः आत्मनि ज्यौतिषशास्त्रानभिज्ञत्वं प्रदर्शयन् भङ्ग्यन्तरेण कालक्रियागणितगोलादेरभिज्ञत्वं प्रदर्शयति, कथमन्यथाऽनभिज्ञेन ग्रन्थकरणं भवितुमर्हतीति ॥२॥

हि.भा.—त्रुटयादि से लेकर प्रलयान्त तक कालगणना वा कालसाधन, गणित (व्यक्त तथा अव्यक्त) खगोल भगोल ग्रहगोलादि, प्रामाणिक बहुत प्राचीन ग्रन्थादि के यथार्थ ज्ञान से साफ सुन्दर बुद्धि वाले दिव्य ज्ञानी मुनि महात्माओं द्वारा यह ज्योतिष शास्त्र दिखलाया गया है। उसको (मुनिप्रणीत ज्योतिष शास्त्र को) देखकर ज्योतिष शास्त्र से अनभिज्ञ मैं ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ को करता हूं, यह उन्हीं महात्माओं के आशीर्वाद का फल है। इससे पूर्वाचार्यों के प्रति (मुनि-महात्माओं के प्रति) अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए आचार्य (वटेश्वर) काल-क्रिया गणित गोलादि विषयों के अतीव ज्ञानी अपने को दूसरे ढंग से प्रकट करते हैं ॥२॥

ग्रन्थारम्भकारणमाह

किं तुच्छबुद्धि-कृतदृष्टि-विभेद एषां कोक्तं युगं स्फुटमुपैति सदैकतो नः ।
यस्मादतः सकलशास्त्रविचारसारं प्रोद्भास्यतेऽखिलमपारत-कुदृष्टिमार्गम् ॥३॥

वि.भा.—यस्मात् कारणात् एषां (महात्मनां मुनीनां कथितविषयेभ्यः इति शेषः) तुच्छबुद्धिकृतदृष्टिविभेदः (अल्पबुद्धि द्वारा रचितग्रन्थेषु प्रत्यक्ष-

विभेदः किं नार्थान् मुनिकथित-विषयेभ्योऽल्पबुद्धि द्वारा रचितग्रन्थेषु प्रत्यक्ष-विभेदोऽस्त्येव, कोक्तं (ब्रह्मगुप्तकथितम्) युगं (युगादिमानम्) सदा (सर्वदा) एकतः (एकमपि) स्फुटं नोपैति (न प्राप्नोति) अर्थात् ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्त-कथितं युगादिमानमेकमपि स्पष्टं न भवति अतः (अस्माद्धेतोः) अखिलं (सम्पूर्णं) अपास्तकुदृष्टिमार्गं (निराकुलाशुद्धपद्धतिम्) सकलशास्त्रविचारसारं (सम्पूर्ण-शास्त्रविचाररहस्यम्) मया प्रोद्भास्यते (प्रकाश्यते) प्रकाशितं करोम्यहं वा ॥३॥

हि.भा.—जिस कारण अल्पबुद्धि द्वारा रचित ग्रन्थों में प्रत्यक्ष विभेद उन मुनियों द्वारा कथित विषयों में क्या नहीं है अर्थात् मुनियों द्वारा कथित विषयों से अल्प बुद्धिद्वारा रचित ग्रन्थों में प्रत्यक्ष विभेद है ही । ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ (ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त) में कथित एक भी युगादिमान स्पष्ट नहीं होता है । इसलिए मैं इस अशुद्ध पद्धति को हटाकर सम्पूर्ण शास्त्रों का सारभूत ग्रन्थ को करता हूं (बनाता हूं) ॥३॥

इदानीं ज्यौतिषशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वनिरूपणमाह—

श्रुत्युक्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्तु तिथिपर्वदिनादिपूर्वैः ।
वेदीककुब्भवनकुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुतिविदां बहुमत्यमस्मात् ॥ ४ ॥

वि.भा.—यतः (यस्मात् कारणात्) अयनर्त्तु, तिथि, पर्व, दिनादि पूर्वे काले अयने (उत्तरायणे, दक्षिणायने) ऋतवः (वसन्तादयः षट्) तिथयः (प्रतिपदादयः) पर्वाणि (संक्रान्ति-ग्रहणादीनि) दिनानि (रव्यादयः) एत-दादिपूर्वककाले, नियोगः (वेदविहित-क्रियाणां प्रयोगो भवति) अस्मात् (शास्त्रात्) वेदी ककुब्भवन कुण्डतदन्तरादि स्फुटं ज्ञेयं (यज्ञवेदी, दिक्, यज्ञमण्डपं) कुण्डानि, तदन्तरादि (दैर्घ्यविस्तारादि) इति स्फुटम् ज्ञातव्यं भवति (अर्थात् अयनर्त्तु तिथि-पर्वादि-काले वेदविहितक्रियाणां विनियोगो भवति, तत्कालज्ञानञ्च ज्योतिषशास्त्राद् भवति, यज्ञवेद्यादिरचना तत्र दिग्-ज्ञानं दैर्घ्यविस्तारादिज्ञानञ्च ज्यौतिषशास्त्रादेव भवति) अस्माद्धेतोरिदमेव ज्यौ-तिषशास्त्रं श्रुत्युक्तमाङ्गम् (वेदप्रधानाङ्गं नेत्ररूपं) श्रुतिविदां (वैदिकानाम्) बहुमत्यं (बहुसम्मतं) ज्ञेयमिति ॥४॥

ज्योतिषशास्त्रस्य वेदाङ्गत्व-तदङ्ग-प्रधानत्वविषये सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेण कथ्यते । यथा—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण ।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात् ॥
शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ॥
वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित् करः ॥
तस्मात् द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् ।

यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः सः सम्यक् धर्मार्थ-कामाँल्लभते यशश्च ।

यद्यज्ञादीनि कार्याणि कालाधीनानि सन्ति, कालज्ञानञ्च ज्योतिःशास्त्राधीनमतस्तस्य (ज्यौतिषस्य) वेदाङ्गत्वं जातम् । तथा वेदस्येदं ज्यौतिषं नेत्ररूपमतोऽङ्गेष्वस्य प्रधानत्वम् । अस्य शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वात्, द्विजैरेवाध्येतव्यम् नान्यैः शूद्रादिभिः ।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्येतदेव कथ्यते यथा—

क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः ।
शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गतामुष्य ततः प्रसिद्धाः ॥
छन्दः पादौ शब्दशास्त्रञ्च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्यौतिषं चक्षुषी च ॥
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च ।
वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत् प्रधानताऽङ्गेषु ततोऽस्य युक्ता ।
अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किञ्चित् ॥
अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिःशास्त्रं पुण्यमेतद् रहस्यम् ।
एतद् बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थं धर्मं मोक्षमग्र्यं यशश्च ॥

तथा च पाणिनीयशिक्षायाम्—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ॥
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥

वेदाङ्गं ज्यौतिषं च —

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥ इत्यादि

ग्रन्थकारेण (वटेश्वराचार्येण) केवलं ज्यौतिषस्य वेदाङ्गत्वमेवाभिहितम् कैरध्येतव्यं कैर्नाध्येतव्यमिति न कथितमन्याचार्यापेक्षया "वेदी ककुब्भवनकुण्डतदन्तरादि, ज्ञानं स्फुटमित्यादिभिः" विशेषोऽभिहित इति ॥४॥

हि.भा.—उत्तरायण दक्षिणायन, वसन्तादि ऋतु, प्रतिपदादि तिथि, संक्रान्ति ग्रहणादि, रवि आदि दिन, एतदाह्निक काल में वेदविहित कार्यों का विनियोग होता है । और यज्ञवेदी यज्ञमण्डप कुण्डादियों की रचना और उनमें दिशा-ज्ञान-दैर्घ्य-विस्तार आदि ज्ञान ज्यौतिष शास्त्र से होता है । इसलिए वैदिकों की बहुसम्मति से ज्यौतिष-शास्त्र को वेद का प्रधान अङ्ग (नेत्र रूप) कहा गया है ।

ज्यौतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व, वेदाङ्गों में प्रधानत्व के विषय में सिद्धान्त-शिरोमणि में श्री भास्कराचार्य ने कहा है—'यथा वेदास्तावत् यज्ञ-कर्म-प्रवृत्ताः' इत्यादि ।

यज्ञादि समस्त कार्य कालाधीन हैं। काल का ज्ञान ज्यौतिष शास्त्र द्वारा सुलभ है, अतः ज्यौतिष शास्त्र का वेदाङ्गत्व सिद्ध हुआ। यह ज्यौतिष शास्त्र वेद का नेत्र है। इसलिये अङ्गों में इस अङ्ग की प्रधानता है।

इस शास्त्र को वेदाङ्गत्व होने के कारण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को ही पढ़ना चाहिये शूद्रादि को शास्त्राध्ययन वर्जित है।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व पर विचार किया है।—

'क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः' इत्यादि।

यज्ञक्रियायें शास्त्रों तथा वेदों द्वारा अभिहित हैं जिसमें काल की प्रधानता है अतएव कालज्ञान ज्यौतिष शास्त्र के द्वारा होता है क्योंकि वेद रूपी शरीर का ज्यौतिष शास्त्र नेत्र माना गया है। अतएव नेत्रों की प्रधानता स्वयंसिद्ध है। उक्त सिद्धान्तशेखर में भी वेदाङ्ग में ज्यौतिष की प्रधानता वर्णित है। अतएव ज्यौतिष का वेदाङ्गत्व सिद्ध होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को पढ़ने का अधिकार है क्योंकि वेद का अध्ययन शूद्रों को वर्जित हैं। और ज्यौतिष को वेदाङ्ग माना गया है अतएव भास्कराचार्य की अध्ययनाध्यापन की दृष्टि श्रीपति का कथन पुष्ट करती है।

पाणिनि-शिक्षा में भी ज्यौतिष के वेदाङ्गत्व का प्रतिपादन किया गया है।

यथा—छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथेत्यादि। वेदाङ्ग ज्यौतिष में भी ज्यौतिष के वेदाङ्गत्व के प्रतिपादन में अधिक महत्त्व दिया गया है।

यथा—वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥ इत्यादि।

आचार्य वटेश्वर ने केवल ज्यौतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व के विषय में ही अपना विचार व्यक्त किया है, जो शास्त्रीय परम्परा पालन की दृष्टि से अपना महत्त्व रखता है। आचार्य ने अध्ययनाध्यापन-विषयक अधिकार की चर्चा अपने ग्रन्थ में भास्कराचार्य के समान नहीं की है। "वेदी, ककुभवन कुण्ड, तदन्तरादि" ये विशेष बातें अपने ग्रन्थ में प्रतिपादन की हैं जिनकी अन्य आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में कहीं भी चर्चा नहीं की है॥४॥

सिद्धान्तग्रन्थलक्षणमाह—

समयमितिरशेषा सावनं खेचराणां गणितमखिलमुक्तं यत्र कुट्टाद्युपेतम्।
ग्रहभगणमहीनां संस्थितिर्यत्र सम्यक् स खलु मुनिवरिष्ठैः स्पष्टराद्धान्त उक्तः॥५॥

विज्ञानभाष्यम्—यत्र (यस्मिन् ग्रन्थे) अशेषा (सम्पूर्णा) समयमितिः (त्रुट्यादि-समस्त कालमानम्) खेचराणां (ग्रहादीनां) सावनं (उदयास्तवशेन सावनं दिनम्) अखिलं (सम्पूर्णम्) कुट्टाद्युपेतम् (कुट्टकादि सहितम्) गणितम् (व्यक्तमव्यक्तम् च) उक्तं (कथितं भवेत्) ग्रहभगणमहीनां (ग्रह नक्षत्र-पृथ्वीनाम्) संस्थितिः (अवस्थानमर्थात् पृथ्व्या आकृतिः कीदृशी, कुत्र च अस्ति ग्रहेषु कस्मात् क उपरि अधो वा, नक्षत्राणि च क्व कीदृग्रूपेण सन्तीत्यादेर्वर्णनम्) यत्र (यस्मिन् ग्रन्थे) सम्यक् (उत्तमरूपेण) भवेत्। स मुनिवरिष्ठैः (मुनिवरैः) सिद्धान्तः कथित इति।

भास्कराचार्येण सिद्धान्तग्रन्थलक्षणे वटेश्वरापेक्षयाऽन्येऽपि बहवो विषयाः प्रतिपादिताः सन्ति । यथा—

"त्रुट्यादि-प्रलयान्त-कालकलना-मानप्रभेदः क्रमाच्चारश्च द्युसदां द्विधाऽत्र गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः । भूधिष्ण्या ग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते । सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः ॥" इति ॥५॥

हि. भा.—जिस ग्रन्थ में त्रुट्यादि सम्पूर्ण कालमान, ग्रहादि के उदयास्तवश सावन दिन, कुट्टकगणित युक्त समस्त व्यक्त अव्यक्त गणित, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी इन सब की स्थिति ग्रहपिण्ड, नक्षत्रपिण्ड, पृथ्वीपिण्ड, किस आकार के हैं और कहाँ पर किस रूप में है इन सब का वर्णन जिस ग्रन्थ में उत्तम तरह से किया जाय उसे मुनिवरों ने सिद्धान्त कहा है । सिद्धान्त ग्रन्थ के लक्षण के विषय में भास्कराचार्य ने आचार्य वटेश्वर जी से कुछ और विशेष बातें कही हैं । "यन्त्रादि यत्रोच्यते स सिद्धान्त उदाहृतः" परन्तु वटेश्वराचार्य ने उक्त भास्कराचार्य के समान अपने ग्रन्थ में कहीं भी यंत्रादि का वर्णन नहीं किया है । यही भास्कराचार्य के सिद्धान्त विषय परिभाषा में विशेषता देखी जाती है ॥५॥

आदौ ससर्ज भगणं झष मेष सन्धि-संस्थग्रहैः सह ग्रहस्फुरदंशुजालम् ।
ब्रह्मा प्रतिक्षणगमर्कजसोमकक्षा-वक्त्रध्रुवप्रतिनिबद्धमिनेन्दुवश्यम् ॥६॥

वि. भा. —ब्रह्मा (स्रष्टा) आदौ (प्रथमतः) झष मेष सन्धि संस्थ ग्रहैः सह (रेवत्यन्तस्थितैः ग्रहैः सार्धम्) ग्रहस्फुरदंशुजालम् (ग्रह किरण द्वारा देदीप्यमानम्) भगणं (नक्षत्र समूहम्) प्रतिक्षणगम् (निरन्तरं चलायमानम्) । अर्कज सोम कक्षा वक्त्रध्रुवपतिनिबद्ध (शनिकक्षातश्चन्द्रकक्षां यावत् तदभिमुखं ध्रुवयष्टिसन्नद्धम्) । इनेन्दुवश्यम् (सूर्यचन्द्राधीनम्) ससर्ज रचितवान् अर्थात् भगणादि संस्थैः ग्रहैः सह ध्रुवयष्ट्याधारे प्रतिक्षणं चलायमानम् भगणं रचितवान् । ब्रह्मगुप्तोप्येवमेव कथयति—ध्रुवतारा प्रतिबद्ध-ज्यौतिषचक्रं प्रदक्षिणगमादौ । पौष्णाश्विन्यन्तस्थैः सह ग्रहैः ब्रह्मणा सृष्टम् ।

अत्र ग्रन्थकार कथनेन ज्ञायते यदाकाशे ये ग्रहा यानि नक्षत्राणि च सन्ति सर्वेषां सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मैवास्ति परन्तु "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति" वेदोक्त्या ब्रह्मा सूर्यस्य पुत्रः सिद्धयति तदा पुत्रात् ब्रह्मणः पितुः सूर्यस्य कथं सृष्टिर्भवेत् ? तथा च "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इत्यादि वेदोक्त्याऽपि ब्रह्म (प्रजापति) द्वाराऽऽकाशी ग्रहादिसृष्टिर्न भवतीति।

अत्र धाताशब्देन परमेश्वरस्य ग्रहणं ब्रह्मणो नहि, ब्रह्मा केवलं पार्थिव-सृष्टिकर्त्ताऽस्ति आकाशीय-सृष्टिकर्त्ता नहि, ब्रह्मणा तेजोमय सूर्ये एको विशिष्टः प्रकाशवर्धकः शीशकरूपपदार्थो नियोजितो यद्द्वारा सूर्यस्य प्रकाशोऽतीव दूरे गच्छेत् । अतो ब्राह्मप्रलये (ब्रह्मणो दिनान्ते) स विशिष्टः पदार्थः सूर्ये नियोजितो विनष्टो भवति, येन तत्र (प्रलयकाले) अन्धकारो जायते । यद्यपि सूर्यस्तस्मिन्

समयेऽपि वर्तत एव किन्तु तदा सूर्येऽतीव प्रकाशाल्पता जायते एतेनैव कारणेन सूर्यसिद्धान्ते ब्रह्मकल्पाद् भिन्नः सृष्टिकल्पः प्रतिपादितोऽस्ति। सूर्येण यत् समर्थनं सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण कृतं भास्करमतखण्डनञ्च कृतमिति। ग्रन्थकारपद्ये न ज्ञायते यद् भगोल भ्रमणेन सहैव ग्रहगोलस्यापि भ्रमणं प्रतिक्षणं ध्रुवकीलद्वयगतसूत्रा (ध्रुवयष्टि) धारे भवति। कथमित्युच्यते। भूगर्भादिष्ट-व्यासार्धको हि गोलो भगोलः। भचक्र-भगोलयोः ध्रुवसूत्रयष्टि-प्रोतत्वेन सहैवागमनादि-भवनाद् भगोलसंसक्तयोर्मन्दशीघ्रगोलयोः ग्रहाधिकरणयोरपि तत्सहैव गमनमिति।

अथ ध्रुवसूत्राधिकरणकम् पश्चिमाभिमुखं भचक्रभ्रमणम्। तत्सूत्रमध्ये कदम्बसूत्रं ब्रह्मणा तथा निबद्धम्, यथा कदम्बसूत्रं भचक्रस्य पश्चिमभ्रमे विघ्नं न कुर्वत् स्रष्ट्र कराघातजनितभ्रमे भचक्र पृष्ठे कदम्बस्थाने खचितं भूत्वा स्थिरं भवेत्। तेन ध्रुवसूत्रं ध्रुवस्थानादुक्तवेग-विरामान्तं प्रागपरदिशि २७° पर्यन्तम् भचक्रस्य पृष्ठं घर्षति। प्रतीत्यर्थमस्य वामकरतले दक्षतर्जनीमध्यमे समारोप्य गतिभ्यां ते प्रचाल्य सर्वं दर्शयेत्। तेन ध्रुवतारा न स्थिरा केवलं ध्रुवस्थानमेव स्थिरमिनि सिद्धमतोऽत्राचार्योक्तं, ध्रुवप्रतिनिबद्धमिति साधु संगच्छते। अत्र भास्करेण, तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वे" इति यत्कथ्यते तत्तथ्यं नास्ति।

उपरि-लिखित युक्त्यैव स्फुटमतः सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण तस्य यत् खण्डनं "ध्रुवतारां स्थिरां ग्रन्थे मन्यन्ते ते कुबुद्धयः।" इत्यादिना कृतम् तत्समीचीनं प्रतिभाति।

हि.भा.—भगणादि (रेवत्यन्त) में स्थित ग्रहों के साथ शनि कक्षा से अधोऽधः क्रम से चन्द्र कक्षा तक चन्द्राभिमुख नक्षत्र गणों को ब्रह्मा ने बनाया, जिनमें सूर्य और चन्द्र प्रधान हैं। ब्रह्मगुप्त भी इससे सम्मत हैं। जैसे—

ध्रुव-तारा-प्रतिबद्ध-ज्योतिश्चक्रं प्रदक्षिणगमादौ। पौष्णाश्विन्यन्तस्थैः सह ग्रहैर्ब्रह्मणा सृष्टम्॥

आचार्य के कथन से मालूम होता है कि आकाश में जो ग्रह और नक्षत्र गण हैं सब के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ही हैं लेकिन "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस वेद-वचन से ब्रह्मा सूर्य के पुत्र सिद्ध होते हैं, तब पुत्र (ब्रह्मा) से पिता (सूर्य) की सृष्टि कैसे सम्भव हो सकती है। और, "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" इस वेदमंत्र से भी ब्रह्मा द्वारा आकाशीय ग्रहादि सृष्टि नहीं होती है। यह स्पष्ट सिद्ध है।

यहाँ धाता शब्द से परमेश्वर का ग्रहण किया गया है। ब्रह्मा का ग्रहण नहीं किया है। ब्रह्मा केवल पृथ्वी पर की सृष्टि करता है, आकाशीय ग्रहादि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा नहीं है। ब्रह्मा तेजोमय सूर्य में एक ऐसा प्रकाश फैलाने वाला शीशा रूप पदार्थ रख देता है, जिसके द्वारा सूर्य की रोशनी बहुत दूर तक जाती है। इसलिये ब्राह्मलय (ब्रह्मा का

दिनान्त में) वह प्रकाश फैलाने वाली चीज नष्ट हो जाती है। जिससे उस समय (प्रलय काल) में अन्धकार हो जाता है। यद्यपि सूर्य भगवान् उस समय भी रहते हैं किन्तु उनमें अत्यन्त प्रकाश की कमी रहती है। इसी कारण से सूर्यसिद्धान्त में ब्रह्मकल्प से सृष्टि-कल्प भिन्न माना गया है जिसका समाधान सिद्धान्ततत्त्वविवेक ग्रन्थ में कमलाकर भट्ट ने किया है और भास्कर मत का खण्डन किया है।

ग्रन्थकार के कथन से मालूम होता है कि भगोल भ्रमण के साथ ही ग्रहगोल का भी भ्रमण बराबर दोनों ध्रुव कीलों में गई हुई रेखा (ध्रुवयष्टि) के आधार पर होता हैं ऐसा क्यों होता है ? भूगर्भ से इष्ट व्यासार्ध से भगोल बनता है। भचक्र और भगोल दोनों का ध्रुव यष्टि के आधार पर साथ ही आने जाने के कारण भगोल संमन्द मन्द गोल और शीघ्र गोल का भी (जिनमें ग्रह भ्रमण करते हैं) साथ ही भ्रमण होता है। ध्रुवसूत्र (ध्रुवयष्टि) के आधार पर भचक्र का भ्रमण पश्चिमाभिमुख होता है उसके बीच में ब्रह्मा कदम्बसूत्र को उस ढंग से बाँध देता है जिसमें कदम्बसूत्र भचक्र के पश्चिमाभिमुख भ्रमण में बाधा नहीं करते हुए ब्रह्मा के हाथ के आघात से उत्पन्न भ्रमण में भचक्र के पीठ पर कदम्ब स्थान में गड़ कर स्थिर हो, इसलिये ध्रुव-सूत्र ध्रुवस्थान से पूर्व कथित वेग के विराम (अन्त तक) पूर्व और श्चिम २७° पर्यन्त भचक्र के पीठ को रगड़ता है। इसलिये ध्रुवतारा स्थिर नहीं हैं, केवल ध्रुवस्थान ही स्थिर है, यह सिद्ध हुआ। अतः सिद्धान्तशिरोमणि में "तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वं" भास्करोक्त का खण्डन सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कमलाकरभट्ट ने किया है। कमलाकर यह भी कहते हैं कि ध्रुव स्थान स्थिर है ध्रुव तारा स्थिर नहीं है। यथा—

"ध्रुवतारां स्थिरां ग्रन्थे मन्यन्ते ते कुबुद्धयः" वटेश्वराचार्य यहाँ "ध्रुवप्रति-निबद्धमित्यादि" युक्तिसंगत कहते हैं ॥६॥

ब्राह्मणा भचक्रं निर्मायाऽकाशे क्षिप्तं तदा तत्कराघातेन। तस्याऽन्दोलिका गतिर्जाता तद्गतिज्ञानार्थमधोलिखितविधिः—

प्रथमं ज्यौतिषशास्त्र-मूलभूत भचक्र सम्बन्धे किञ्चिद्विचार्यते। भचक्र-मिति शब्दात्ताराणामाधारे गोलत्वध्वनिः। यतो भचक्रस्थाने भसंघेनाप्य-दोषात्। अतोऽत्र भानां (नक्षत्राणाम्) चक्रस्य (समूहस्य) चक्रं गोल इत्येकशेष-समासो नेयः।

भचक्रे कथं गोलत्वमानन्त्यञ्चेति विचारः।

दृष्टिभ्यां भचक्रस्थैकनक्षत्रे विद्धे दृष्टिसूत्रद्वय दृष्टिद्वयान्तर्गत-सूत्रै-र्जायमानत्रिभुजे नक्षत्र-लग्नकोणस्येन्द्रियाग्राह्याच्छून्यसमत्वादनुपातेन

$$\frac{\text{दृष्टिद्वयान्तर्गतरेखा} \times \text{दृष्टिलग्नकोण द्वययोगार्धज्या}}{\text{ज्या } (०)} = \text{दृष्टिसूत्र} = \text{अनन्त}।$$

दृष्टिसूत्रयोरन्तत्वादिष्ट स्थान केन्द्रिकानन्त-व्यासार्धकं भचक्रमिति सिद्धम्।

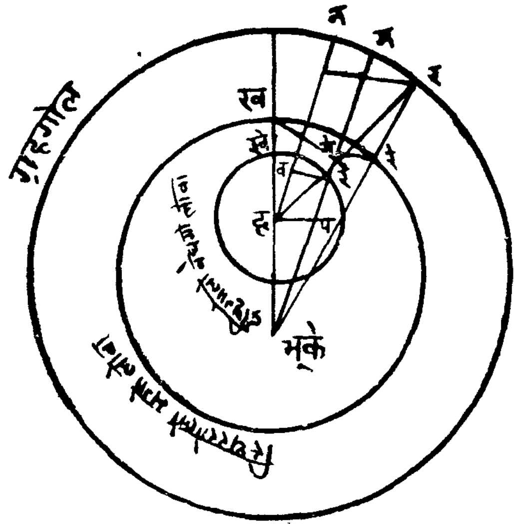
कदम्बाख्यताराया द्यु ज्याचापं स्थिरं कदम्बे ताराणां च चलं दृश्यते तेन भचक्रस्य काचित् प्रवहेतर निदानाऽपि गतिरस्तीत्यनुमितम्। स च कदम्बोत्पन्न महद्वृत्तरूपमार्गे स्यादिति गोल युत्यैव स्फुटम्। अस्या आन्दोलिकाकारगतेः कारणं प्रवहाधिकरणक-भचक्र-त्यागकालिक-स्रष्टृ-कराघातमेवेत्यनुमितम्। उक्त-महद्वृत्ते प्रवहप्रधानमार्गान्नाडीमण्डलात् प्रस्तुतगतिमूलकं यावन्मितं भचक्रस्य चलनसंकलनं तावदेवाचार्यैः प्रागपराख्या अयनांशाः परिभाषिताः। तत्साधनमुक्तमहद्वृत्ताधिकरणकसार्वदिकावस्थान-विशिष्टस्य पूर्णप्रकाशवतो नक्षत्रबिम्बस्य ग्रहबिम्बस्य वाऽवलम्बेन कर्तुं शक्यमतस्तावत् सूर्यबिम्वस्यैव। अथ तच्चलनम् (भचक्रस्य चलनम्) वेधेन निर्णीयते तत्र तावदुक्तमहद्वृत्तमार्गनिर्णयः।

परं तस्य भूगर्भाधीनत्वात्तस्य चागम्यत्वात् पृष्ठादेवोपायः। दृष्टिस्थानादेकं दृश्यगोलं भूगर्भात् स्थिरगोलं च कृत्वा गोलयोः केन्द्रग-दृष्ट्या दृश्य-गोलीय भगोलीय परिणतो भचक्रस्थ ध्रुवताराभ्याम् नवत्यंशेन कृते तत्तद्गोलीय-नाड़ीवृत्ते, ध्रुवसूत्रकेन्द्रान्तरैर्जातत्रिभुजधरातलच्छिन्नगोलद्वयी मार्गे च तत्तद्याम्योत्तरवृत्ते। स्वनाड़ीवृत्तयाम्योत्तरवृत्त धरातलयोर्योगरेखा स्वनिरक्षोर्ध्वाधरसूत्रम्, वर्धितकेन्द्रान्तररेखा चोर्ध्वाधरसूत्रम्। ध्रुवसूत्रस्य नाड़ीवृत्तधरातलोपरिलम्बत्वाद् ध्रुवसूत्रयोश्च समान्तरत्वात् भगोलीय दृश्यगोलीयनाडीवृत्त धरातले समानान्तरे सिद्धे।

अथ दृष्टिस्थानात् स्थिरगोलीय (भगोलीय) नाड़ीवृत्त-धरातलोपरि कृतो लम्बो नाड़ीवृत्तधरातलयोरन्तरम्। गोलद्वयेऽक्षांशयोः समत्वात्तज्ज्ञानमेवं भवितुमर्हति यथा—

$$\frac{\text{अक्षज्या} \times \text{केन्द्रांतर रेखा}}{\text{त्रिज्या}} = \text{धरातलान्तरम्}$$। रविगतदृष्टिसूत्रस्वनाड़ीवृत्त-भूतलयोः स्वगोले (वेधगोले)ऽन्तरम् = वेधगोलीय क्रान्तिज्या। दृग्गोलीय क्रान्तिज्यामापनेन ज्ञातैवातो $\frac{\text{दृग्गोलीय क्रान्तिज्या} \times \text{दृष्टिकर्ण}}{\text{दृग्गोलीयव्यासार्ध}}$ = ग्रहाद्दृग्गोलीय-निरक्षोर्ध्वाधरोपरि कृतलम्ब रेखा = लम्बः, लम्ब-धरातलान्तर = ग्रहगोलीय क्रान्तिज्या। एतज्ज्ञानेन $\frac{\text{ग्रगोक्रांज्या} \times \text{त्रि}}{\text{बिम्बीयकर्ण}}$ = भगोलीय क्रान्ति ज्या = स्थिरगोलीय क्रान्तिज्या, अस्याश्चापं क्रान्तिः।

भू = भूकेन्द्रम्
दृ = दृष्टिस्थानम्
ग्रहगोले र = रविः
भू र = रविबिम्बीयकर्णः
दृ = वेधगोलकेन्द्रम्
भू दृ = केन्द्रान्तरम्
दृप = धरातलान्तरम्
ख = स्थिरगोले स्वस्तिकम्
$ख_1$ = वेधगोले ख स्वस्तिकम्
भू म = भगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर-सूत्रम्
दृन = वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर सूत्रम् ।
दृर = दृष्टिकर्णः ।
$र_1म_1$ = भगोलीय क्रान्तिज्या



चित्र नं० ३

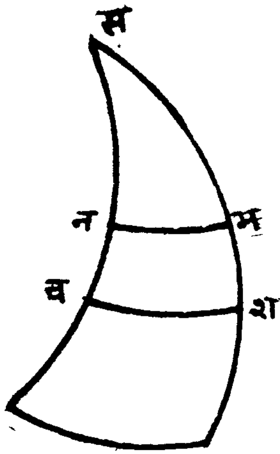
$र_{11}व$ = दृग्गोलीय क्रान्तिज्या = $र_{11}$ विन्दुतो वेधगोलीय-निरक्षोर्ध्वाधर-रेखोपरि-लम्बः ।

पुनर्द्वितीयेऽह्नि षष्टिदण्डात्मककालेऽर्काधिष्ठान-विन्दुर्याम्योत्तरे किन्तु ध्रुवप्रोतवृत्ते तत्रैवागतोऽनन्तरं यावता कालेनार्को याम्योत्तरवृत्ते समागतः षड्गुणितं तत्कालमानं रवेर्निरक्षोदययोर्विषुवांशयोरन्तरं स्यात्, याम्योत्तरवृत्तस्य निरक्षदेशीय क्षितिजत्वात्, क्रान्तिश्चोक्त-युक्त्या ज्ञाता, कृत्वैवं बहुषु दिनेषु गोलमेकं स्वाग्रे संस्थाप्य तत्र नाड़ीवृत्ताख्यं महद् वृत्तं विधाय तत्स्थेष्ट-विन्दोः पूर्व-पूर्वक्रमेण विषुवांशान्तरान् दत्वेष्टविन्दौ प्रत्येकदानाग्रविन्दौ च कृतध्रुव-प्रोतवृत्तेषु तत्तत्क्रान्ती (प्रत्याह्निक क्रान्ती) दत्वा क्रान्तिद्वयाग्रलग्नं महद्वृत्तं कृतं तत्क्रान्त्यग्रेषु गतमित्युपलब्धमतो रविभ्रमणमार्गो महद् वृत्तमिति सिद्धम् । क्रान्त्यग्रेषु गतत्वात्तत्क्रान्तिवृत्तमिति संज्ञा शोभनेति ।

अथ पूर्वोक्तोपपत्तौ कालमानं नाड़ीवृत्तेऽङ्गीकृतं कथं नाड़ीवृतं कालवृत्तमित्युच्यते ।

प्रवहवायुना भ्राम्यमाणेऽपि भगोले बहुभिरपि वर्षैर्न खलु कासांचित्ताराणां स्थिरतयोपलब्ध-ध्रुवताराङ्कित ध्रुवस्थानाद् द्युज्या-चापान्तरमुपलभ्यते । एतावतैवावगतं यद्वास्तव भगोलपृष्ठ-निष्ठस्थिरकेन्द्रोत्पन्न नाड़ीवृत्ताऽहोरात्रवृत्तयोर्धरातलस्थैर्यम्, तत्रैकस्योपलब्ध-प्रवहवायुवेग-भ्राम्यमाणोक्त-मण्डलद्वयस्यैवावलम्बेन कालगणनोचिता, अनाद्यनन्तस्यास्याच्युतोपम-कालस्यागमनिर्णीत-सर्वदैकरूपत्वात्, इयमेव युक्तिः प्राचीनार्वाचीन-घटीयन्त्रादिभिः कालाबोधेऽपीत्यलम् ।

अधुना विषुवांशयोरन्तरं क्रान्तिद्वयञ्च ज्ञात्वा परमक्रान्त्यानयनम्। नाडीवृत्तक्रान्तिवृत्तोत्पन्नकोणः परमक्रान्तिस्तत् प्रमाणम्=य कल्पितम्। विषुवांशान्तरम्=वि, संन=र, नम=क्रान्तिः=क्राँ, च श=क्रान्तिः$_1$=क्रां$_1$। नच=वि।



मध्यावयवः=र तदा मध्यजा दोर्ज्या-त्रिज्यागुणेत्यादिना

ज्यार त्रि=स्पक्रां$_1$ × कोस्पय

$\therefore \frac{\text{ज्यार.त्रि}}{\text{स्प क्राँ}}$ =कोस्पय (१)

तथा ज्या (र+वि) त्रि=स्पक्रां$_1$ कोस्पय

$\therefore \frac{\text{ज्या(र+वि) त्रि}}{\text{स्पक्रां}_1}$ =कोस्पय (२)

(१) (२) अनयोः समीकरणम्

$\frac{\text{ज्या} \times \text{रत्रि}}{\text{स्पक्रां}} = \frac{\text{ज्या (र+वि) त्रि}}{\text{स्पक्रां}_1}$ पक्षौ त्रि भक्तौ तथा

स्पक्रां$_1$ गुणितौ तदा $\frac{\text{ज्यार. स्पक्रां}_1}{\text{स्पक्रां}}$ =ज्या(र+वि) अत्र $\frac{\text{स्पक्रां}^1}{\text{स्पक्रां}}$ =गु

तदा ज्यार.गु=ज्या(र+वि) चाययोरिष्टयोर्दोर्ज्ये इत्यादिना

ज्यार.गु= $\frac{\text{ज्यार को ज्यावि+को ज्यार ज्यावि}}{\text{त्रि}}$ पक्षौ त्रिगुणितौ

तदा ज्यार.गु.त्रि=ज्यार कोज्यावि+कोज्यार.ज्यावि समशोधनेन ज्यार. गु. त्रि—ज्यार. कोज्यावि=कोज्यार. ज्यावि=ज्यार (गु. त्रि—कोज्यावि)

$\therefore \frac{\text{ज्यार}}{\text{कोज्यार}} = \frac{\text{ज्यावि}}{\text{गु. त्रि—को ज्यावि}}$ =व्यक्त पक्षौ द्वादशभिर्गुणितौ

$\frac{\text{ज्यार १२}}{\text{को ज्यार}}$ =१२×व्य, वा $\frac{\text{ज्यार. त्रि}}{\text{ज्कोज्यार}}$ = स्पर=त्रि. व्य

आभ्यां या पलभा अक्षांशस्पर्शरेखा वा सा व्यक्ताऽर्थाद्यस्मिन्देशे १२×व्य, वा त्रि. व्य एतत्तुल्य पलभा, अक्षांश स्पर्श रेखा वा तद्देशीयाक्षांशमानमेव र मानम्। ततो य मानं व्यक्तमेवेति सिद्धमभीष्टम्।

अथ यत् क्रान्ति वृत्ताधारं भचक्रस्य चलनं तदेव निरूपित-रविमार्गरूप-

क्रान्तिवृत्तमिति निर्णयः। ध्रुवस्थाने कदम्बं याम्योत्तर-वृत्तस्थाने कदम्बप्रोत-वृत्तं नाडीवृत्तस्थाने क्रान्तिवृत्तमक्षज्यास्थाने दृक्क्षेपञ्च नीत्वा या पूर्वोक्ता युक्तिः सैवात्रापि, किन्त्वत्र लम्बरेखा—नाडीवृत्तधरातलान्तर=० इत्युपलब्धमतः सिद्धम्।

अथ रेवत्याः शराभावनिर्णयः

उक्त-गोलद्वयकेन्द्रात् कदम्बे रेवत्याञ्च सूत्रे नीते केन्द्रद्वय-लग्न-कोण-माने शरकोटितुल्ये, कदम्बगतयो रेवतीगतयोश्च रेखयोः समानान्तरत्वात्ताभ्या-मूनो नवत्यंशः=शरचापं=० इत्युपलब्धम्। एवमेव पुष्यमघाशतभिषजां नक्षत्राणां शराभाव उपलब्धो भवति। तेन "पैत्रर्क्ष-पुष्यान्तिम-वारुणानामित्यादि" भास्क-रोक्तं सिद्धमिति।

अथ गोलद्वय-केन्द्रात् ध्रुवे रेवत्याञ्च रेखे नीते गोलद्वय केन्द्रलग्न कोणमाने द्युज्याचापमिति तुल्ये ध्रुवगतयो रेवतीगतयोश्च रेखयोः समानान्तरत्वात्। अतः ९०—रेवती द्युज्या चाप=रेवती क्रान्त्यंश, ततः $\frac{\text{त्रि} \times \text{ज्याक्रां}}{\text{ज्याजि}}$ = ज्याभु,

अस्याश्चापमयनांशाः, परमास्ते=२७° भवन्ति। अत्र प्रसंगागतानां गोलद्वयी लग्न-वित्रिभ दृक्क्षेपचापाक्षांश-चापादीनां समत्वोपपत्तिरुह्येति।

ग्रहे प्रथमपदे तत्कालीन-क्रान्तीनां वेधेन क्रमादधिकत्वं द्वितीयपदे ह्रासत्वं तृतीयपदे प्रथमवच्चतुर्थे द्वितीवद्दृश्यतेऽतो ग्रहाणां प्राग्गतित्वं सिद्धम्। ग्रहाणां वहदिनैः प्रवहस्य त्वेकेनैव दिनेन भगणपूर्तिरतः प्रवहगत्य-पेक्षया तदल्पगतित्वं सिद्धम्। भ्रष मेष सन्धिसंस्थैर्ग्रहैरित्याद्युक्त्या भूकेन्द्रा-द्रेवतीगतसूत्रे ग्रहा ऊर्ध्वाधरक्रमेण ब्रह्मणा निवेशिता इत्यनेन ग्रहबिम्बीय-कर्णानामसमत्वं सूच्यते, ग्रहपिण्डानां गोलत्वं नवेति निर्णयः। गोलमेकं क्वापि संस्थाप्य दृष्टिस्थाने समा यष्टित्रयस्तथा स्थापिता यथा गोलस्पर्शकराणि दृष्टिसूत्राणिस्युस्तानि च दृश्यवृत्ताधारसमसूचीगनानि आधारवृत्त धरातल-समानान्तरधरातलं यष्ट्यग्रेषु मिथो बद्धरेखात्रयजनित त्रिभुजोपरिष्ठ वृत्तमुक्त-सूच्या कर्णेषु लगतीति सुस्पष्टम्। तद् वृत्त केन्द्रगत दृष्टिसूत्रं वर्धितं सदा-धारवृत्तकेन्द्रगतञ्चैते गोलधर्माः। अथ तावद् ग्रहपिण्डे गोलत्वं प्रकल्प्योक्त-गोलधर्मा दृश्यन्तेऽतो ग्रहपिण्डे गोलत्वं सिद्धम्। उक्तक्षेत्र संस्थान-संस्मरणेन कतमं दृष्टिसूत्रं बिम्बकेन्द्रगं दृष्टिसूत्राणामानयनं बिम्बव्यासार्धानयनमि-त्यादयः स्फुटा एवेति बिम्बीयकर्णानयनं प्रागुक्तमन्यथा वा तदानयनं कार्यमेवं तत्तद्बिम्बीय-कर्णानामसमत्वमुपलब्धमिति।

अथ वेधगोले दिने क्रान्तिवृत्त-निवेशनप्रकारः।

पृष्ठच्छायातो गर्भच्छाया-ज्ञानमथवा दृष्ट्युच्छ्राय+भूव्यासार्ध, दृष्टिकर्णबिम्बीयकर्णोत्पन्न-त्रिभुजे भुजत्रयज्ञानाद् भूकेन्द्रलग्नकोणस्य नतांशस्य च ज्ञानात्।

$\frac{\text{ज्यानतांश} \times १२}{\text{कोज्यान}}$ = गर्भच्छाया, तत आद्ये पदेऽपचयिनीत्यादिनार्कपदज्ञानम्। क्रान्तिवृत्तयोर्धरातलान्तरं विज्ञाय क्रान्तिज्ञानं ततो भुजांशज्ञानम्। भुजांशज्ञानादर्कपदज्ञानाच्चार्कज्ञानम्। अथ लम्बांश-नतांशद्युज्याचापांशैर्जायमानत्रिभुजे भुजत्रयज्ञानात् "त्रिज्या गुणाद् धरणिकोटिगुणाद्विहीनादित्यादिविलोमेन" ध्रुवलग्नकोणस्य नतकालस्य कोटिज्ञानम्।

नतकालकोटिचाप-चरचापयोः संस्काररूपमिष्टकालं प्रकल्प्य ज्ञाततात्कालिकार्केण लग्नज्ञानम्। ततो लग्नज्ञाने लग्नपदज्ञानेन च लग्नभुजांशज्ञानम्। एतत्तुल्यमेव वेधगोलेऽपि। गोलसन्धिलग्न-बिन्दुगतयोस्तत्तद्गोलीयरेखयोः समानान्तरत्वात्, लग्नभुजांशज्ञानाच्च लग्नक्रान्ति-ज्ञानम्। ततः

$\frac{\text{त्रि. ज्याक्रां}}{\text{ज्यालम्ब}}$ = अग्रा इयमपि गोलयोः समा (पूर्वस्वस्तिक गतयोर्लग्नगतयो रेखयोः समानान्तरत्वात्) अथ वेधगोले पूर्वस्वस्तिकाल्लग्नगोलक्रमेण (दक्षिणगोले पूर्वस्वस्तिकाद् दक्षिणदिशि उत्तरगोले लग्ने सति पूर्वस्वस्तिकादुत्तरदिशि) क्षितिजे लग्नाग्राचापसमं छित्वा छेदितबिन्दोर्लग्नभुजांश व्यासार्धवृत्तं छिन्नबिन्दुगत ध्रुवप्रोत वृत्तात्तुल्यान्तरे नाडीवृत्ते लगिष्यति। तत्र लग्नपदक्रमनिश्चितैकबिन्दु-छिन्नबिन्द्वोः प्रोतमेकं महद् वृत्तं कार्यं तदेव क्रान्तिवृत्तम्।

अथ वेधगोले रात्रौ क्रान्तिवृत्तनिवेशनप्रकारः।

पूर्वनिर्णीत शराभाव नक्षत्राणां "पैत्रर्क्ष-पुष्यान्तिमवारुणाना" मेकतमे विद्धे यावांस्तन्नतांशो वेधगोले तावानेव भगोलेऽप्यतो वेधगोले मापनेनोक्तनतांशमानं विज्ञाय विद्धनक्षत्रं रविं प्रकल्प्य पूर्ववत् कृतेऽत्रापि जातं क्रान्तिवृत्तनिवेशनम्।

ननु पैत्रर्क्ष-पुष्यान्तिमवारुणानामेकतमः सदोदित एव, कथमित्युच्यते।

पुष्यं	=३ । ३ । २० । ०	उपरि ३ । १६ । ४० । ०	यावत्।
मघा	=४ । ० । ० । ०	उपरि ४ । १३ । २० । ०	यावत्
शतभिषक्	=१० । ६ । ४० । ०	उपरि १० । २० । ० । ०	यावत्
रेवती	=११ । १६ । ४० । ०	उपरि १२ । ० । ० । ०	यावत्

एवं पश्यन् प्रवहवशेन गोलं भ्राम्यन् मेषादेरारभ्य प्रतिबिन्दुं क्षितिजस्थं कुर्वन् विचारितेभीष्टसिद्धिः स्यात्। अथवा शराभावनक्षत्रद्वयं सदोदितमेव षड्भान्तराल्पान्तरत्वात् परिणत-नक्षत्र-द्वयगतं वृत्तं क्रान्तिवृत्तमिति॥

अथ वेधगोलीय ग्रहज्ञानेन भूगर्भगोलीय ग्रहज्ञानम्॥

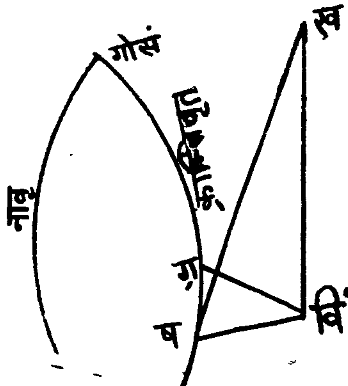
वेधगोले दृष्ट्या परिणतबिम्बस्य स्पष्टभोग-चिह्नं (बिम्बोपरिगतकदम्बप्रोतवृत्तं यत्र क्रान्तिवृत्ते लगति तच्चिह्नम्) तद्गोलीयग्रह एवं भूगर्भगोलीयोऽपीति ग्रहपरिचयः।

अथ परिभाषा:

वेधगोलीयस्थानम्=स्थान, स्थानीय दृग्वृत्तभूतलेन छिन्नस्य भूगर्भगोलस्य छेदितप्रदेशस्तद्गोलीय दृग्वृत्तम्। तस्य (तद्गोलीय दृग्वृत्तस्य) गर्भगोलीय-क्रान्तिवृत्तस्य च योगविन्दु =ष। भूगर्भात् ष विन्दुगता रेखा=प संज्ञिका दृष्टित: स्थानगता रेखा फ संज्ञिका।

अथ प-फ रेखे समान्तरे (रेखागणित ११ अध्याययुक्त्या) रेवतीगते च रेखे समानान्तरे (गोलद्वये क्रान्तिवृत्त धरातलयो: समानान्तरत्वात्) तेन भूगर्भ लग्न दृष्टि स्थान लग्नकोणयो: साम्यात् सिद्धं यद् भूगर्भगोले रेवतीत: षविन्दुपर्यन्तं भगोले वेधगोलीय स्पष्टग्रहतुल्यं (भगोलीय रेवतीत: ष विन्दु पर्यन्तम्=वेधगोलीय रेवतीत: स्थानपर्यन्तम्) केन्द्र लग्नकोणस्य चापमानत्वात्। स्थानीयनतांश=ष विन्दूत्थ नतांश:, प, फ रेखयो: समानान्तरत्वात्। स च नतांशो वेधगोले मापनेन विदित:। तथा बिम्बीय नतांश ष विन्दूत्थ नतांश-चापाभ्यां जायमान: कोण: ख स्वस्तिकलग्नो यावान् वेधगोले तावानेव भूगर्भगोले (गोलद्वय धरातलैकत्वात्) स च नतांशोत्पन्न-कोणो वेधगोले मापनेन ज्ञेयस्ततो भूगर्भगोलपृष्ठे संजातत्रिभुजे, "त्रिज्यागुणाद् धरणि-कोटिगुणादित्यादि विलोमेन, परिणत बिम्ब ष विन्दु प्रोतवृत्तीयाधार चापज्ञानम्। तथा च वेधगोलीय शर क्रान्तिवृत्त धरातलान्तरयोर्ज्ञानाद् भूगर्भ गोले शरज्ञानम् (यथापूर्वं नाडीवृत्त धरातलान्तरज्ञानेन वेधगोलीय क्रान्तिज्ञानेन भूगर्भ-गोलीय क्रान्तिज्ञानं कृतं तथैवात्राऽपि शरज्ञानं कृतम्)।

अतश्चापीय जात्ययुक्त्या गर्भ-गोलीय ग्रह ष विन्द्वोरन्तरचापस्य संस्काराख्यस्य ज्ञानम्।



अ =संस्कारचापम्।
वेधगो स्पग्रह±संस्कारचा=भूगर्भगोलीय स्पष्टग्रह:।

चित्र नं० ५

अथ संस्कारचापस्य धनर्णव्यवस्था।

तत्र परिभाषा:

वेधगोलीय क्रान्तिवृत्तम्=इष्ट क्रां वृत्तम्। भूगर्भगोलीय क्रान्तिवृत्तम् =वास्तवक्रान्तिवृत्तम्, बिम्बीय कर्णगोलीय क्रान्तिवृत्तं=वास्तव[1] क्रान्तिवृत्तम्।

वर्धिता प रेखा वास्तव क्रान्तिवृत्ते यत्र लग्नाः तत्र ष१ बिन्दुः। बिम्बत इष्ट-क्रान्तिवृतधरातले या शरज्या लम्बस्तस्याः (शरज्यायाः) मूलं क्षाख्यं वर्धितायां फ रेखायामेव स्यात् फ रेखा तु स्थानीय दृग्वृत्त धरातले, उक्त शरज्या वर्धिताऽवर्धिता वा वास्तव क्रान्तिवृत्तधरातले लम्बः स्यात्, एतदुक्तं भवति स्थानीय दृग्वृत्त धरातलनिष्ठतः क्ष विन्दोर्वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातले लम्बः क्रियते। स च लम्बो यस्यां दिशि स्थानीय दृग्वृत्त वास्तव-क्रान्तिवृत्त धरातलाभ्या-मुत्पन्नकोणोऽल्पः स्यात्तस्यां दिशि पतिष्यति।

भूगर्भाद्विम्बकर्ण व्यासार्धेन यो गोलस्तत्रोच्यते—

ष बिन्दूत्थ दृग्वृत्त वास्तव१ क्रान्ति-वृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणो दृक्षेप-चापाभिमु-खोऽल्पः स्यात्, क्ष बिन्दुस्तु वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातलोर्ध्वाधरसूत्रयोर्मध्ये-स्यात्। यतः फ रेखैव मध्ये वर्त्तते। एभिः सिद्धं यत् दृक्षेपवृत्तात्पूर्वकपाले ग्रहे सति रेखातः प्रतीच्यामेव लम्बः पतिष्यति। यतः प रेखा स्थानीय दृग्वृत्त वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातलयोर्योगरेखा, भूगर्भाल्लम्बमूलगतरेखा ष१ बिदुतः प्रती-च्यामेव क्रान्तिवृत्ते लगिष्यति स एव बिन्दुर्भूगर्भाभिप्रायिक-ग्रहस्थानम्। त्रिज्या-गोलेऽपीयमेव स्थितिः। पश्चिमकपालेऽप्येवमेव विचारणीयम्। अतः सिद्धं वित्रिभादूने ग्रहे संस्कारचापं धनमन्यथा ऋणमिति॥

हि. भा.—ब्रह्मा ने भचक्र को निर्माण कर आकाश में फेंक दिया तब ब्रह्मा के हाथ के आघात से उसकी आन्दोलिका गति उत्पन्न हुई। उस गति के ज्ञान के लिये अधोलिखित भनी चाहिये। पहले ज्यौतिष शास्त्र के मूलभूत भचक्र के विषय में कुछ उपपत्ति सम-विचार करते हैं।

भचक्र शब्द से ताराओं के आधार में गोलत्व की ध्वनि होती है। क्योंकि भचक्र स्थान में भसङ्घ कहने से भी दोषाभाव है अतः यह नक्षत्रसमूह (भचक्र) के चक्र (गोल) ऐसा एकशेष समास से अर्थ करना चाहिये।

भचक्र में गोलत्व और अनन्तत्व क्यों है इसके लिये विचार।

दो दृष्टि स्थान से भचक्रस्थ किसी तारा को वेध करने से दृष्टि सूत्रद्वय और दृष्टि-द्वयान्तर्गत सूत्रों से जो त्रिभुज बनता है उसमें तारालग्न कोण शून्य है अतः उक्त त्रिभुज में

$$\text{अनुपात से}\ \frac{\text{दृष्टिद्वयान्तर्गत रेखा} \times \text{दृष्टि द्वयलग्न कोणद्वय योगार्धज्या}}{\text{ज्या}\ (0)} = \text{दृष्टिसूत्र} = \text{अनन्त}$$

इस तरह दृष्टि सूत्रद्वय के अनन्तत्व से इष्टस्थान केन्द्रिक अनन्त व्यासार्ध वाला भचक्र सिद्ध हुआ॥

कदम्ब तारा का द्युज्या चाप स्थिर है, कदम्ब में ताराओं को चल देखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रवह वायु से भिन्न भी भचक्र गति के कारण है वह कदम्बोत्पन्न नवत्यंश वृत्तरूप मार्ग में है यह बात गोल युक्ति से स्पष्ट है। इस आन्दोलिकाकार गति के कारण भचक्र छोड़ने के समय के ब्रह्मा के हाथ का आघात ही है ऐसा अनुमान किया गया। उक्त महद्वृत्तमें प्रवह के प्रधान मार्ग (नाड़ीवृत्त) से प्रस्तुत गति के मूलभूत जितने भचक्र चलन का सङ्कलन होता है वही आचार्यों से अयनांश कहा गया है। उसके

साधन उस महद्वृत्तस्थ प्रकाशवती तारा अथवा ग्रहबिम्ब के वश से कर सकते हैं। अब भचक्र चलन ज्ञानवेध से करते हैं। पहले पूर्वोक्त महद्वृत्त मार्ग का निर्णय करते हैं। लेकिन वह भूगर्भाधीन है, भूगर्भसम्बन्धी पदार्थज्ञान कठिन है इसलिये भूपृष्ठ ही से काम करते हैं। दृष्टिस्थानवश करके एक गोल बनाइये जिसका नाम दृश्यगोल अथवा वेधगोल है। भूगर्भ से जो गोल होगा वह स्थिर गोल अथवा भगोल कहलाता है। दोनों गोलों के केन्द्रस्थ दृष्टि से भचक्रस्थ ध्रुव तारागत रेखाद्वय स्व-स्व गोल में जहां-जहां लगता है दोनों गोल में परिणत ध्रुव तारा होगी, परिणत ध्रुवों के केन्द्र मान कर नवत्यंश व्यासार्धवृत्त दोनों गोल में नाड़ीवृत्त होंगे, दोनों ध्रुवसूत्र (दृष्टिस्थान और भूकेन्द्र से भचक्रस्थ ध्रुव-तारागत रेखाद्वय) और केन्द्रान्तर रेखाओं (भूकेन्द्र से दृष्टिस्थानगत रेखा) से जो त्रिभुज बनता है उस धरातल (त्रिभुज रूपी धरातल) से कटित गोलद्वय में मार्ग दोनों गोल में याम्योत्तर वृत्त हैं। स्वनाड़ीवृत्त याम्योत्तर वृत्त धरातल की योगरेखा दोनों गोल में निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र है। वर्धित केन्द्रान्तर रेखा ऊर्ध्वाधर सूत्र है। नाड़ीवृत्त धरातल के ऊपर ध्रुवसूत्र लम्ब है, दोनों गोल के ध्रुव सूत्र समानान्तर है, इसलिये दोनों नाड़ीवृत्त धरातल समानान्तर होंगे, दृष्टिस्थान से स्थिरगोलीय नाड़ीवृत्त धरातल के ऊपर जो लम्ब होगा वह नाड़ीवृत्तधरातलान्तर है, दोनों गोल में अक्षांश बराबर हैं, अतः धरातलान्तर ज्ञान इस प्रकार होगा। यथा

$\frac{\text{अक्षज्या} \times \text{केन्द्रान्तरे}}{\text{त्रि}}$ = धरातलान्तर। रविगत दृष्टिसूत्र स्वनाड़ी वृत्त (वेधगोलीय नाड़ीवृत्त) धरातल का अन्तर वेधगोल में वेधगोलीय क्रान्तिज्या है। दृग्गोलीय क्रान्तिज्या (वेधगोलीय क्रान्तिज्या) मापन द्वारा विदित ही है इसलिये

$\frac{\text{दृग्गोलीय क्रान्तिज्या} \times \text{दृष्टिकर्ण}}{\text{दृग्गोलीय व्या} \frac{1}{2}}$ = ग्रह से दृग्गोलीय निरक्षोर्ध्वाधर रेखा के ऊपर लम्ब

लम्ब—धरातलान्तर = ग्रहगोलीय क्रान्तिज्या, इसके ज्ञान से

$\frac{\text{ग्रगोक्रांज्या} \times \text{त्रि}}{\text{बिम्बीयकर्ण}}$ = भगोलीय क्रान्तिज्या = स्थिरगोलीय क्रान्तिज्या,

चाप करने से स्थिरगोलीय क्रान्ति हुई। यहाँ चित्र (१) देखिये, भू = भूकेन्द्र, दृ = दृष्टिस्थान, र = ग्रह गोल में रवि,

भूर = रवि बिम्बीय कर्ण, दृ = वेधगोल केन्द्र, भूदृ = केन्द्रान्तर। दृय = धरातलान्तर

ख = स्थिरगोल में खस्वस्तिक, $ख_1$ = वेधगोलीय खस्वस्तिक। भूम = भगोलीय निरक्षोर्ध्वाधरस् दृन = वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधरम्। दृर = दृष्टिकर्ण। $र_1$म = भगोलीय क्रान्तिज्या $र_{11}$व = दृग्गोलीय क्रान्तिज्या = $र_{11}$ विन्दु से वेधगोलीय निरक्षोर्ध्वाधर रेखा के ऊपर लम्ब

फिर दूसरे दिने ६० दण्डात्मक काल में जहाँ पर रवि है वह बिन्दु याम्योत्तर वृत्त (ध्रुव प्रोतवृत्त) में वहीं पर आया बाद में जितने काल में रवि याम्योत्तर वृत्त में आये

उस काल को छः से गुणा देने से रवि के निरक्षदेशीय दोनों उदय के विषुवांशान्तर हो गया (याम्योत्तर वृत्तको निरक्ष देश के क्षितिज होने के कारण) पूर्वोक्त युक्ति से क्रान्ति विदित है। इस तरह बहुत दिनों तक करके अपने आगे एक गोल को रख कर उसमें नाड़ीवृत्त महद्वृत्त बना कर तत्स्थित (नाड़ीवृत्त स्थित) इष्ट बिन्दु से पूर्व पूर्व क्रम से विषुवांशान्तर दान देकर इष्ट विन्दु और दानाग्र बिन्दुओं में ध्रुव प्रोत वृत्त कर देना। उन ध्रुव प्रोतवृत्तों में प्रत्येक दिन की क्रान्ति देकर दो क्रान्ति के अग्रगत महद्वृत्त कर देना वह प्रत्येक क्रान्ति के अग्रगत होता है, ऐसा देखा जाता है इसलिये रवि भ्रमण मार्ग महद्वृत्त सिद्ध हुआ, क्रन्तिओं के अग्र में जाने के कारण उसका नाम क्रान्तिवृत्त है ॥

पहले की उपपत्ति में नाड़ीवृत्तमें कालमान स्वीकार किया गया है। नाड़ीवृत्त कालवृत्त क्यों है इसके लिये विचार करते हैं। प्रवह वायु द्वारा भगोल के घूमने पर भी बहुत वर्षों में भी किसी तारा की स्थिरता के कारण ध्रुव स्थान से द्युज्या चाप में अन्तर नहीं पाया जाता है इसीसे सूचित होता है कि वास्तव भगोल पृष्ठस्थ स्थिर केन्द्रोत्पन्न नाड़ीवृत्त धरातल और अहोरात्र वृत्त धरातलों में स्थिरता है। उनमें एक रूप से प्राप्त प्रवहवायु वेग से भ्राम्यमाण कथित नाड़ीवृत्त और अहोरात्र वृत्तके अवलम्बन से काल-गणना उचित है। यही युक्ति घटीयन्त्रादि के द्वारा काल-ज्ञान के लिये प्राचीनाचार्यों की है ॥

अब विषुवांशद्वय के अन्तर और क्रान्तिद्वय जान कर परम क्रान्ति ज्ञान के लिये विचार। चित्र (२) देखिये।

नाड़ीवृत्त और क्रान्तिवृत्त से उत्पन्न कोण परम क्रान्ति है, उसका प्रमाण=य, मानते हैं, विषुवांशान्तर=वि, मंन=र, नम=क्रान्ति=क्रां, चश=क्रान्ति_1=क्रां_1 मध्यावय=र तब मध्यजा दोर्ज्या त्रिज्या गुणा प्रान्त्यस्पर्शरेखाहृनिर्भवेत् इस नियम से

$$\text{ज्यार. त्रि} = \text{स्पक्रां.कोस्पय} \therefore \frac{\text{ज्यार.त्रि}}{\text{स्पक्रां}} = \text{कोस्पय} \ldots (१)$$

तथा $\text{ज्या (र+वि).त्रि} = \text{स्पक्रां}_1 \text{ कोस्पय} \therefore \frac{\text{ज्या (र+वि).त्रि}}{\text{स्पक्रां}^1} = \text{कोस्पय} \ldots .२)$

(१) (२) इन दोनों का समीकरण करनेमे $\frac{\text{ज्यार.त्रि}}{\text{स्पक्रां}} = \frac{\text{ज्या (र+वि).त्रि}}{\text{स्पक्रां}^1}$ दोनों पक्ष को

त्रि भाग देकर स्पक्रां^1 गुणा दीजिये तब $\frac{\text{ज्यार स्पक्रां}_1}{\text{स्पक्रां}} = \text{ज्या (र+वि)}$ यहां $\frac{\text{स्पक्रां}^1}{\text{स्पक्रां}} = \text{गु}$

तब ज्यार. गु= ज्या (र+वि) चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यका हते इत्यादि से $\text{ज्यार.गु} = \frac{\text{ज्यार.कोज्यावि} + \text{ज्यावि.कोज्यार}}{\text{त्रि}}$ दोनों पक्षों को त्रि मे गुणने मे ज्यार. गु. त्रि

= ज्यार. कोज्यावि + ज्यावि. कोज्यार समशोधन से ज्यार. गु. त्रि. — ज्यार. कोज्यावि=

ज्यावि. कोज्यार = ज्यार (गु. त्रि — कोज्यावि) अतः $\frac{\text{ज्यार}}{\text{कोज्यार}} = \frac{\text{ज्यावि}}{\text{गु. त्रि — कोज्यावि}}$ = व्यक्त

दोनों पक्षों को बारह से गुणने से $\frac{\text{ज्यार} \times १२}{\text{कोज्यार}} = १२ \times \text{व्य}$ वा $\frac{\text{ज्यार} \times \text{त्रि}}{\text{कोज्यार}}$ = स्पर = त्रि.व्य

इन पर से जो पलभा या अक्षांश स्पर्शरेखा होगी व्यक्त हो गयी, अर्थात् जिस देश में १२ × व्य वा त्रि. व्य एतत्तुल्य क्रमशः पलभा वा अक्षांश स्पर्श रेखा होगी उस देश के अक्षांशमान र होगा, इस परसे य मान सुलभ ही है ।।

जिसे क्रान्तिवृत्त के आधार पर भचक्र का चलन है वही पूर्व निरूपित रवि भ्रमण मार्ग रूप क्रान्तिवृत्त है इसका निर्णय करते हैं ।

यहाँ ध्रुव स्थान की जगह पर कदम्ब, याम्योत्तर वृत्त के स्थान पर कदम्ब प्रोत-वृत्त, नाड़ीवृत्त के स्थान पर क्रान्तिवृत्त, अक्षज्या के स्थान पर दृक्षेप लेकर नाड़ीवृत्त धरा-तलान्तरादि ज्ञानार्थ जो युक्ति बतलायी गई है वही युक्ति यहाँ भी समझनी चाहिये । लेकिन यहां लम्बरे — धरातलान्तर = ० यह उपलब्ध होता है, अतः सिद्ध हो गया ।।

अब रेवती के शराभाव के विषय में विचार करते हैं ।

पूर्वकथित गोलद्वय (वेधगोल, स्थिरगोल) के केन्द्र से कदम्ब में और रेवती में रेखाओं को लाने से केन्द्रद्वयलग्न कोणद्वयमान शरकोटि के बराबर है क्योंकि कदम्बगत रेखाद्वय और रेवतीगत रेखाद्वय समानान्तर हैं ।

∴ ९० — शरकोटि = शरचाप = ० यह उपलब्ध होता है, इसी तरह मघा, पुष्य, शतभिष इन नक्षत्रों के भी शराभाव उपलब्ध होता है । इसलिये "पैत्रर्क्षपुष्यान्तिमवारुणानामि"त्यादि भास्कराचार्य कहते हैं ।। गोलद्वयकेन्द्र से ध्रुव में और रेवती में रेखायें लाये तब गोलद्वयकेन्द्र लग्न कोणमानद्युज्याचाप तुल्य होंगे क्योंकि ध्रुवतारारेखाद्वय और रेवतीगत रेखाद्वय समानान्तर हैं इसलिये ९० — रेवती द्युज्याचाप = रेवतीक्रान्त्यंश तब $\frac{\text{त्रि० ज्याक्रां}}{\text{ज्याजि}}$ = ज्याभु, इसके चाप करने से अयनांश प्रमाण होगा वह परम (परमायनांश) = २७° होते हैं । यहाँ प्रसङ्गवश उपपत्त्यन्तर्गत आये हुए गोलद्वय के लग्न, वित्रिभ दृक्षेपचाप-अक्षांश आदियों के समत्व की उपपत्ति स्वयमेव समझनी चाहिये ।। ग्रह के प्रथम पद में रहने से वेध से तत्कालीन क्रान्ति के क्रम से अधिकत्व द्वितीय पद में ह्रासत्व प्रथम पदवत् तृतीय पद में, चतुर्थ पद में द्वितीय पदवत् देखते हैं इसलिये ग्रहों के प्राग्गतित्व (पूर्वाभिमुखचलन) सिद्ध हुआ । ग्रहों के बहुत दिनों में भगण पूरा होता है । प्रवह के एक ही दिन में भगणपूर्ति होती है इस-लिये प्रवह गति के अपेक्षा ग्रहों के अल्पगतित्व सिद्ध हुआ ।

आचार्योक्त "झषमेषसन्धि-संस्थैर्ग्रहैः" इत्यादि पद्य से सिद्ध होता है कि भूकेन्द्र से रेवतीगत सूत्र में ऊर्ध्वाधर (ऊंचे नीचे) क्रम से ब्रह्मा ने ग्रहों के निवेशित किया और ग्रहबिम्बीय कर्णों का असमत्व सूचित होता है, ग्रह पिण्डों में गोलत्व है या नहीं इसके लिये विचार ।

कहीं पर एक गोल को रख कर दृष्टिस्थान में समानयष्टित्रय को उस तरह रखें जिससे दृष्टिसूत्र सब गोल को स्पर्श करे अर्थात् दृष्टिसूत्र सब गोल की स्पर्शरेखायें हों और वे दृष्टिसूत्र सब दृश्य वृत्ताधार सम सूची कर्णरेखायें हैं, आधार वृत्त धरातल के समानान्तर धरातल यष्टित्रयाग्र में परस्पर रेखायें कर देने से जो त्रिभुज बनता है तदुपरिगतवृत्त पूर्व कथित सूची कर्णों में लगता है। उस वृत्त के केन्द्र में दृष्टिस्थान से जो रेखा (दृष्टिसूत्र) जायगी उसको बढ़ाने से आधार वृत्त के केन्द्र में जाती है ये सब गोलीय धर्म है। अब पहले ग्रह पिण्ड में गोलत्व स्वीकार कर पूर्वकथित गोलीय धर्म देखते हैं। इसलिये ग्रह पिण्ड में गोलत्व सिद्ध हुआ। कथित क्षेत्र-संस्थान के स्मरण करने से कौन दृष्टिसूत्र बिम्ब केन्द्रगत होता है, और दृष्टिसूत्र के आनयन, बिम्बव्यासार्धानयनादि सब बातें स्पष्ट ही हैं, बिम्बीय कर्णानयन पहले लिखा जा चुका है अथवा दूसरे तरह से भी उसका आनयन करना चाहिये, बिम्बीय कर्णों के आनयन करने से उनमें असमत्व पाया गया इसलिये ग्रह कक्षाओं में ऊर्ध्वाधरत्व सिद्ध हुआ ॥

दिनमें वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त निवेशन प्रकार।

पृष्ठच्छाया से गर्भच्छायानयन अथवा दृष्ट्युच्छ्राय + भूव्यासार्ध, दृष्टिकर्ण, बिम्बीयकर्ण, इन भुजों से जो त्रिभुज बनता है उसमें तीनों भुज विदित हैं इसलिए त्रिकोण मिति से भूकेन्द्र लग्ननतांश कोण का ज्ञान हो जायगा। तब $\frac{\text{ज्यानतांश} \times १२}{\text{कोज्यान}}$ = गर्भच्छाया।

नब "आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाऽल्पिका" इत्यादि से रवि पदज्ञान होगा। दोनों गोल (वेधगोल और स्थिरगोल) के क्रान्तिवृत्त धरातलों के अन्तर जान कर क्रान्ति ज्ञान करना, उस पर से भुजांश ज्ञान, भुजांश ज्ञान से रविपदज्ञान, उस पर से रविज्ञान हो जायगा।

नतांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश इन तीनों भुजों से उत्पन्न त्रिभुज में तीनों भुजों के ज्ञान से "त्रिज्या गुणाद्धरणिकोटि गुणाद्विहीनात्" इत्यादि के विलोम से ध्रुवलग्नकोण (नतकालकोटि) का ज्ञान हो गया, नतकालकोटिचाप और चरचाप के संस्कारजनित पदार्थ को इष्टकाल मान कर विदित तात्कालिक रवि पर से लग्न ज्ञान हो जायगा, लग्न ज्ञान से और लग्न पद ज्ञान से लग्न भुजांशज्ञान होगा, इसके बराबर ही वेधगोल में भी होगा क्योंकि गोलसन्धिबिन्दु और लग्न बिन्दुगत रेखायें दोनों गोल के समानान्तर है, लग्न भुजांश ज्ञान से लग्न क्रान्ति ज्ञान होगा तब $\frac{\text{त्रि० ज्याक्रां}}{\text{ज्याल}}$ = अग्रा, यह भी दोनों गोल में बराबर होगी, क्योंकि गोलद्वयकेन्द्रों से पूर्वस्वस्तिकगत रेखाद्वय और लग्नगत रेखाद्वय समानान्तर है. वेधगोल में पूर्वस्वस्तिक से लग्नगोलक्रम से (दक्षिणगोल में पूर्वस्वस्तिक से दक्षिण तरफ उत्तरगोल में लग्न रहने से पूर्वस्वस्तिक से उत्तर तरफ) क्षितिज में लग्नाग्राचाप तुल्य काट कर कटित बिन्दु से लग्न भुजांश व्यासार्धवृत्त कटित बिन्दुगत ध्रुव प्रोतवृत्त से तुल्यान्तर पर नाड़ीवृत्त में लगेगा, वहां पर लग्न पद क्रम से निश्चित एक विन्दु और कटित विन्दु में लगा कर जो वृत्त होगा वही क्रान्तिवृत्त है ॥

वेधगोल में रात्रि में क्रान्तिवृत्त निवेशन प्रकार।

पूर्वनिर्णीतशराभाव नक्षत्रों में किसी नक्षत्र का वेधजनित वेधगोल में जो नतांश प्रमाण होता है तत्तुल्य ही भगोल में भी होता हैं। वेधगोल में नतांशमान को मापन द्वारा जान कर विद्ध नक्षत्र को रवि मान कर पूर्ववत्क्रिया सम्पादन करने से यहां भी क्रान्तिवृत्त निवेशन हो जायगा। पूर्वनिर्णीत शराभाव नक्षत्रों में कोई एक बराबर सदोदित क्यों रहता है इसका विचार।

पुष्य	= ३	३	२०	०	इससे ऊपर	३	१६	४०	०	तक
मघा	= ४	०	०	०	इससे ऊपर	४	१३	२०	०	तक
शतभि	= १०	६	०	०	,, ,,	१०	२०	०	०	तक
रेवती	= ११	१६	४०	०	,, ,,	१२	०	०	०	तक

इसको देखते हुए प्रवहद्वारा गोल को घुमाते हुए मेषादि से लेकर प्रत्येक बिन्दु को क्षितिजस्थ करते हुए विचार करने पर अभीष्ट सिद्धि होती है। अथवा शराभाव नक्षत्रद्वय सदोदित रहते ही हैं, वेधगोल में जहां पर उक्त नक्षत्रद्वय परिणत होंगे तद्गत (परिणत नक्षत्रद्वयगत) वृत्त क्रान्तिवृत्त होता है।।

वेधगोलीय ग्रहज्ञान से भूगर्भगोलीय ग्रहज्ञान प्रकार।

वेधगोल में दृष्टि से परिणत बिम्ब का स्पष्ट भोगचिन्ह (बिम्बोपरिगत कदम्ब प्रोत-वृत्त क्रान्तिवृत्त का सम्पातबिन्दु) वेधगोलीय ग्रह है। इसी तरह भूगर्भ गोल में भी ग्रह होता है।

परिभाषायें

वेधगोलीय स्थान = स्थान, स्थानीय दृग्वृत्त धरातल से कटित भूगर्भगोल का प्रदेश तद्-गोलीय (भूगर्भगोलीय) दृग्वृत्त है, उसका और गर्भगोलीय क्रान्तिवृत्त का योगबिन्दु ष, भूगर्भ से ष बिन्दुगत रेखा प संज्ञक है। दृष्टि से स्थानगत रेखा फ संज्ञक हैं।

प, फ दोनों रेखायें समानान्तर है (रे० ११ अ० युक्ति से) रेवतीगत रेखाद्वय समा-नान्तर हैं, अतः भूगर्भ लग्नकोण दृष्टिस्थान लग्नकोण के बराबर हुआ अर्थात् भूगर्भगोल में रेवती से ष बिन्दु तक चाप वेधगोलीय स्पष्ट ग्रह के बराबर (भगोलीय रेवती से ष बिन्दु तक चाप = वेधगोलीय रेवती से स्थान तक) स्थानीय नतांश = ष बिन्दु के नतांश, क्योंकि प, फ रेखाद्वय समानान्तर है। वेधगोल में वह नतांश मापन से विदित है। तथा बिम्बीय नतांश ष बिन्दु के नतांश से उत्पन्नकोण खस्वस्तिक संलग्न, वेधगोल में जितना है उतना ही भूगर्भ गोल में भी है। वह नतांशोत्पन्न कोण वेधगोल में मापन से जान लेना तब भूगर्भ गोल के पृष्ठ पर जो त्रिभुज बनता है उसमें "त्रिज्यागुणाद् धरणिकोटिगुणात्" इत्यादि विलोम से परिणत बिम्ब ष बिन्दुगत वृत्तीयाऽधारचाप का ज्ञान हो गया और वेधगोलीय शर, क्रान्तिवृत्त धरातलान्तर के ज्ञान से भूगर्भगोल में शरज्ञान (जैसे पहले नाड़ीवृत्त धरातला-न्तर ज्ञान से और वेधगोलीय क्रान्ति ज्ञान से भूगर्भ गोलीय क्रान्ति ज्ञान किया गया है उसी तरह यहां भी शरज्ञान किया) अतः चापीयजात्ययुक्ति से गर्भगोलीय ग्रह और ष

विन्दु के अन्तर चाप (जिसका नाम संस्कार है) ज्ञान हो जायगा ।

अ = संस्कारचाप । वेधगोलीय ग्रह ± संस्कारचा = भूगर्भगोलीय स्पष्टग्रह

संस्कारचाप की धन और ऋण की व्यवस्था ।

परिभाषा

वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त = इष्टक्रांवृ । भूगर्भगोलीय क्रांवृ = वास्तव क्रान्तिवृत्त, बिम्बीय कर्णगोलीय क्रान्तिवृत्त=वा१स्तव क्रान्तिवृ, प रेखा को बढ़ाने से वास्तव क्रान्तिवृत्त में जहां लगती हैं वहां ष बिन्दु है । बिम्ब से इष्टक्रान्तिवृत्त धरातल के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह शरज्या है । शरज्या मूल विन्दु=क्ष है । यह बिन्दु वर्धित फ रेखा ही में है । फ रेखा स्थानीय दृग्वृद्ध धरातल में है । पूर्वकथित शरज्या वर्धित या अवर्धित वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातल पर लम्ब है । स्थानीय दृग्वृत्त धरातल निष्ठ क्ष विन्दु से वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातल पर लम्ब करने से उसका मूल बिन्दु "जिस तरफ स्थानीय दृग्वृत्त वास्तव क्रान्तिवृत्त से उत्पन्नकोण जिस तरफ अल्प होता है उसी तरफ" पतित होता है ।

भूगर्भ से बिम्बीय कर्ण व्यासार्धगोल में कहते हैं ।

ष विन्दुगत दृग्वृत्त वा१स्तव क्रान्तिवृत्त से उत्पन्नकोण दृक्षेपाभिमुख अल्प होता है । वास्तव क्रान्तिवृत्त धरातल और ऊर्ध्वाधर सूत्र के मध्य में क्ष विन्दु है । क्योंकि फ रेखा मध्य में है । इन सब से सिद्ध होता है कि दृक्षेप वृत्त से पूर्व कपाल में ग्रह के रहने से रेखा से पश्चिम ही लम्ब पतन होगा । क्योंकि प रेखा स्थानीय दृग्वृत्त धरातल और क्रान्ति-वृत्त धरातल की योग रेखा है, भूगर्भ से लम्ब मूल गत रेखा ष बिन्दु से पश्चिम ही क्रान्ति-वृत्त में लगेगी, वही बिन्दु भूगर्भाभिप्रायिक ग्रह स्थान है । त्रिज्यागोल में भी यही स्थिति है । पश्चिम कपाल में भी इसी तरह विचार करना, इससे सिद्ध होता है, वित्रिभ से ग्रह अल्प हो तो संस्कारचाप धन होता है अन्यथा ऋण होता है । इति ।।८।।

अधुना कालमानं कथयति

कमलदलनतुल्यः काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छतमिह लवसंज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेषः ।
सदल-जलधिभिस्तैर्गुर्विहैवाक्षरं तत्कृतपरिमित-काष्ठा-तच्छरार्धेन वासुः ॥७॥

वि० भा०—कमज-दलन-तुल्यः कालः (सूच्या भिन्ने कमलपुष्पे यावान् समयो लगेत् स समयः त्रुटिसंज्ञक उक्तः । तच्छतं (त्रुटिशतं) लवसंज्ञकः । तच्छतं (लवशतं) निमेषः (नेत्रपक्ष्मपाते यावान् समयः) स्यात् । तैः सदल-जलधिभिः (सार्धचतुर्भिर्निमेषैः) इह गुर्वक्षरं (एकगुर्वक्षरोच्चारणकालः) तत्कृत-परिमित-(गुर्वक्षरचतुष्टयोच्चारणसमयः) काष्ठासंज्ञकः । तच्छरार्धेन (सार्धद्वय-काष्ठामितेन) असुः (प्राणसंज्ञकः कालः) भवतीति ।।७।।

यथा

सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे यः समयः स त्रुटिसंज्ञकः

१०० त्रुटिः = १ लवः, १०० लवः = १ निमेषः (नेत्रयोः पक्ष्मपातकालः)

$2\frac{1}{2}$ काष्ठा = १ असुः ।

$4\frac{1}{2}$ निमे दीर्घाक्षरोच्चारणसमयः । ४ दीर्घाक्षरोच्चारणसमय = १ काष्ठा

कालमानानां विभागकल्पने सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करोक्तपद्यानि—

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता ।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकैः कलोक्ता ॥
त्रिंशत्कलार्क्षी घटिकाक्षणः स्यान्नाडीद्वयं तैः खगुणैर्दिनञ्च ।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः ॥ इत्यादयः

स्वस्थ पुरुषस्य नेत्रपक्षमपातकालः = १ निमेषः

$\frac{\text{निमेष}}{३०}$ = तत्पर, $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$ = त्रुटिः

१८ निमेष = १ काष्ठा, ३० काष्ठा = १ कला

३० कला = १ नक्षत्रघटिका, २ घटिका = १ क्षणः

३० क्षण = १ दिनम्

अथवा दशगुर्वक्षरोच्चारणकालः = १ असु, ६ असु = १ पलम्

६० पल = १ घटिका, ६० घ० = १ दिनम् । (क)

सिद्धान्तशेखरे श्रीपत्युक्त-कालमान-विभाग-कल्पनैवमस्ति, भास्करोक्तात्किञ्चिदपि भिन्ना नास्ति ।

सोमसिद्धान्ते (क) सदृश एव कालमानविभागोऽस्ति—

दशगुर्वक्षरः प्राणः षड्भिः प्राणैर्विनाड़िका ।
तत्षष्ट्या नाडिका प्रोक्ता नाडीषष्ट्या दिवानिशम् ॥

ब्राह्मसिद्धान्ते तु कालमानविभागोऽधोलिखितोऽस्ति—

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः ।
तासां त्रिंशत् क्षणास्तेऽपि षट्नाडीति प्रशस्यते ॥
यद्वा गुर्वक्षराणां तु दशकं प्राण उच्यते ।
षड्भिः प्राणैर्विनाडी तु तत्षष्ट्या घटिका तथा ॥
नाड़ीषष्ट्या ह्यहोरात्रमिति ॥६॥

ग्रन्थकारोक्त कालमानानि सूर्यसिद्धान्तोक्त-कालमानेभ्यो भिन्नानि सन्ति । यथा सूर्यसिद्धान्तोक्त-कालमानानि ।

१०० त्रुटि = १ तत्परसंज्ञकः ।	३० तत्परः = १ निमेषः ।
१८ निमेष = १ काष्ठा	३० काष्ठा = १ कला
३० कला = १ घटी	२ घटी = १ मुहूर्त
३० मुहूर्त = १ दिनं नाक्षत्रम् ।	

वटेश्वरसिद्धान्त निमेषकालः=१०००० त्रुटि
सूर्यसिद्धान्त निमेषकालः=३००० त्रुटि द्वयोर्महान् भेदोऽस्तीति।

हि. भा. —कमलपुष्प को सुई से छेदने में जितना समय लगता है। उसे एक त्रुटिसंज्ञक काल कहते हैं।

१०० त्रुटि=१ लव १०० लव=१ निमेष
$४\frac{१}{२}$ निमेष=१ दीर्घ अक्षर उच्चारणकाल
४ दीर्घ अक्षरोच्चारणकाल=१ काष्ठा
$२\frac{१}{२}$ काष्ठा=१ असु

वटेश्वरसिद्धान्त के कालमान से सूर्यसिद्धान्तोक्त कालमान भिन्न है, जैसे सूर्यसिद्धान्तोक्त कालमान निम्नलिखित है —

१०० त्रुटि=१ तत्पर ३० तत्पर=१ निमेष
१८ निमेष=१ काष्ठा ३० काष्ठा=१ कला
३० कला=१ घटी २ घटी=१ मुहूर्त
३० मुहूर्त=१ नाक्षत्रदिन
वटेश्वर सिद्धान्त के अनुसार निमेषकाल=१०००० त्रुटि
सूर्यसिद्धान्त के अनुसार निमेषकाल=३००० त्रुटि
दोनों में बहुत अन्तर है।

कालमानों के विभाग के सम्बन्ध में सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य कहते हैं। योक्ष्णोर्निमेषस्य खराम भाग इत्यादि।

स्वस्थ पुरुष के १ पक्ष्मपात में जितना समय लगता है उसे निमेषकाल कहते हैं।

$\frac{\text{निमेष}}{३०}$=तत्पर $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$=त्रुटि
१८ निमेष=काष्ठा ३० काष्ठा=१ कला
३० कला=१ नाक्षत्र घटिका २ घटिका=१ क्षण (मुहूर्त)
३० क्षण=१ दिन।

अथवा

दश गुरु अक्षरों के उच्चारण करने में जो समय लगता है उसे एक असु कहते हैं।

६ असु = १ पल ६० पल = १ घटी
६० घटी = १ दिन

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं।
सोमसिद्धान्त में (क) इसी तरह कालमान है।

दशगुर्वक्षरः प्राण इत्यादि।
ब्रह्मसिद्धान्त में कालमान अधोलिखित हैं—
अष्टादश निमेषास्तु इत्यादि ॥७॥

आर्क्षं पलं षडसवो घटिका पलानां षष्ट्या दिनं च घटिका खलु षष्टिमाहुः।
मासं खवह्निभिरथाब्दमिनाहतं तं क्षेत्रे च कालसदृशावयवं तथाहुः ॥८॥

वि. भा.—षडसवः (षट्प्राणाः) आर्क्षं पलं (नाक्षत्रपलमेकम्) पलानां षष्ट्या (षष्टिपलैः) घटिका (एकदण्डः), घटिकानां षष्टिं (दण्डानां षष्टिं) दिनं आचार्या आहुः। खवह्निभिर्दिनैः (त्रिंशद्भिर्दिनैः) मासं, इनहतं (द्वादश-गुणितं) तं (मासं) अब्दं (वर्षम्) आहुः। तथा क्षेत्रे काक्षायां कालसदृशावयवम् (वर्षादिसदृशं भगणाद्यवयवम्) आचार्याः कथितवन्त इति ॥८॥

एतदेव स्पष्टं विलिख्य प्रदर्श्यते —
६ असुः = १ नाक्षत्रपलम् ६० पलम् = १ घटी
६० घ० = १ दिनम् ३० दिन = १ मासः
१२ मास = १ वर्षम्।

तथा

१२ मासैः = १ वर्षम्	तथैव	१२ राशिभिः = १ भगणः
३० दिनैः = १ मासः	,,	३० अंशैः = १ राशिः
६० घटीभिः = १ दिनम्	,,	६० कलाभिः = १ अंशः
६० पलैः = १ घटी	,,	६० विकलाभिः = १ कला

सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्यैरप्येवमेव कथ्यते, यथा—

गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः।
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।
क्षेत्रे समाद्येन समा विभागाः स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येवमेव कथ्यते—

मासः प्रोक्तस्त्रिंशताऽहर्निशानां द्विघ्नैः षडभिस्तैश्च वर्षं प्रदिष्टम्।
एवं चक्रार्क्षांशलिप्ता विलिप्तास्तुल्याः क्षेत्रेऽनेहसाऽब्दादिकेन ॥८॥

हि. भा. :—६ असुओं का एक नाक्षत्र पल होता है, साठ पल की एक घटी होती है। साठ घटी का एक दिन होता है। तीस दिन का एक महीना होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है। जैसे—

६ असु = १ पल	६० पल = १ घटी
६० घटी = १ दिन	३० दिन = १ मास
१२ मास = १ वर्ष	

कक्षा में वर्षादि सदृश भगणाद्यवयव होते हैं। जैसे :—

१२ मास = १ वर्ष	इसी तरह	१२ राशि = १ भगण
३० दिन = १ मास	,,	३० अंश = १ राशि
६० घटी = १ दिन	,,	६० कला = १ अंश
६० पल = १ दण्ड	,,	६० विकला = १ कला

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य इसी तरह कहते हैं। यथा—
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः इत्यादि।

सिद्धांतशिरोमणि में भास्कराचार्य इसी तरह कहते हैं :—
मासः प्रोक्तस्त्रिंशताऽहर्निशानाम् इत्यादि ॥ ८ ॥

युगादिमानं कथयति

दन्ताब्धयोऽयुतहता युगमर्कमानाच्चन्द्राद्रयो युगगुणा मनुरेक उक्तः।
कल्पश्चतुर्दशमनुर्द्युनिशं च तौ द्वौ कस्य स्ववर्षशतमत्र सदायुरुक्तम् ॥९॥

वि. भा.—दन्ताब्धयः (४३२) अयुत (१००००) हताः (गुणिताः) तदा ४३२०००० अर्कमानात् (सौरवर्षमानात्) युगं (महायुगं) भवति अर्थात् ४३२०००० सौरवर्षैरेकं महायुगमानं भवति। चन्द्राद्रयः (७१) युगगुणाः (महायुग-गुणिताः) अर्थात् ७१ महायुगैः एको मनुः उक्तः (कथितः) चतुर्दशमनुः एकः कल्पो भवति। तौ द्वौ (कल्पौ) कस्य ब्रह्मणः द्युनिशं (अहोरात्रं) भवति, स्ववर्षशतं (स्वदिनमानवशेन) वर्षशतं तदायुः उक्तम् (कथितम्)।

एतदेव स्पष्टं विलिख्य प्रदर्श्यते—

४३२०००० सौरवर्ष = १ महायुगम्	७१ महायुग = १ मनुः
१४ मनवः = १ कल्पः।	२ कल्पः = ब्रह्मणोऽहोरात्रम्
३६० अहोरात्र—१ ब्रह्मणो वर्षम्	१०० वर्षाणि = ब्रह्मण आयुः।

कृतयुगे धर्मपादाः = ४		
त्रेतायाम् ,, = ३		
द्वापरे ,, = २	चतुर्णां युगचरणानां योगो महायुगम्	
कलौ ,, = १	कृतयु + त्रेतायु + द्वायु + कयु	
सर्वेषां योगः = १०		

ततोऽनुपातः दशभिर्धर्मपादैर्महायुगमानं लभ्यते तदेकचरणे किं समागमिष्यति

कलिप्रमाणम् $=\frac{४३२००००\times १}{१०}$ $=$ ४३२००० $=$ कलिप्रमाणम्

इदमेव द्विगुणितं तदा द्वापरमानम् = ८६४०००
त्रिगुणितं तदा त्रेतामानम् = १२९६०००
चतुर्गुणितं तदा कृतयुगमानम् = १७२८०००

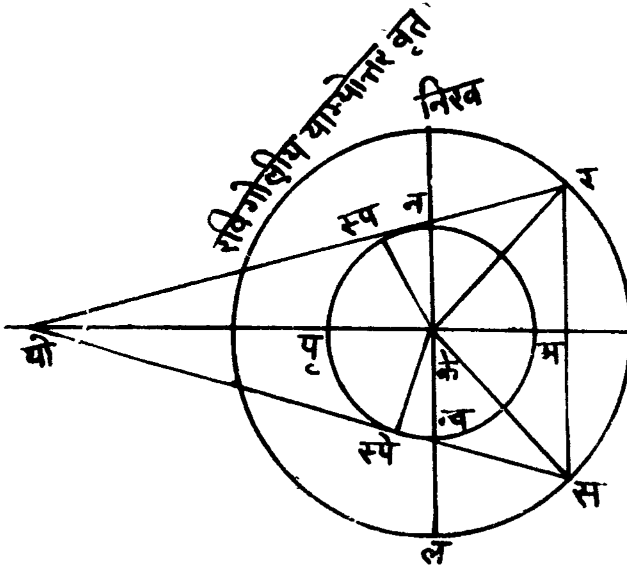
एतेनाचार्येण युगचरणमान-सम्बन्धे न किमपि कथ्यते केवलमग्रे (म. अधि. ६ अध्याये) कथ्यते यदार्यभटस्वीकृतं युगचरणमानं तथ्यमस्ति तेनार्यभटेन सर्वाणि युगचरणानि समान्येव कथ्यन्ते।

हि. भा.—चार सौ बत्तीस को एक अयुत से गुणने से ४३२०००० सौरवर्षमान से महायुगमान होता है। ७१ महायुग का एक मनु होता है, चौदह मनु का एक कल्प होता है, दो कल्प का ब्रह्मा का अहोरात्र होता है, तीन सौ साठ अहोरात्र का १ ब्राह्म वर्ष होता है, १०० सौ वर्ष का ब्रह्मा की आयु होती है। जैसे :—

४३२०००० सौरवर्ष = १ महायुग	७१ महायुग = १ मनु
१४ मनु = १ कल्प	२ कल्प = १ ब्रह्माहोरात्र
३६० अहोरात्र = १ ब्रह्मवर्ष	१०० वर्ष = ब्रह्मा की आयु होती है।

वटेश्वराचार्य युगचरणमान के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहते हैं। आगे (मध्यमाधिकार के ६ अध्याय) में कहते हैं कि आर्यभट स्वीकृत युगचरणमान ठीक है, आर्यभट सब युगचरणों को बराबर मानते हैं।

अथैकः कल्पो ब्रह्मदिनम् भवति एतावता सिद्धयति यत्सृष्ट्यादितः (ब्रह्मदिनादितः) सृष्ट्यन्तं (ब्रह्मदिनान्तं यावत्) ब्रह्मा रविं पश्यति, यत उदयकालाद्यावत्कालपर्यन्तं सूर्यदर्शनं भवति, स एव कालः दिनशब्देन व्यवहृतो भवति। परं सृष्ट्यादितः सृष्ट्यन्तं यावद्ब्रह्मा रविं पश्यति नवेति विचारः। सर्वेषां देवानां वासस्थानं सुमेरुपर्वते (उत्तरदिशि) वर्तते तेन ब्रह्माप्युत्तरदिश्येव कुत्रापि भवेत्। अतः परमदक्षिणेऽर्थात् धनुरन्ताहोरात्रवृत्ते रविर्भवेत्तदा धनुरन्ताहोरात्रवृत्तस्य प्रतिबिन्दुतो भूगोलस्य याः स्पर्शरेखा भवेयुस्तासां स्पर्शरेखाणां ध्रुवसूत्रेण साकमुत्तरदिशि कुत्राप्येकस्मिन्नेव बिन्दौ योगो भवेत्। प्रथमं ध्रुवसूत्रेण सह स्पर्शरेखाणां योगो भवेन्नवेति विचारः। <केरन+<नकेर=<केनस्प परं <स्प=९० ∴ केनस्प कोणः समकोणाल्पः सिद्धः, एवमेव के चस्प$_{१}$ कोणोऽपि समकोणाल्पस्तेन ध्रुवसूत्रेण सह स्पर्शरेखाणां योगो भवेत्परमेकस्मिन्नेव बिन्दौ योगो भवेन्नवेति विचारः।



चित्र न ६

स, र = रविगोलीय याम्योत्तराहोरात्र वृत्तयोः सम्पात विन्दू र स विन्दुभ्यां भू बिम्बस्य कृते स्पर्शरेखे निल, निरक्षोर्ध्वाधरे-खायां क्रमशः न, च विन्दुद्वये लग्ने । केर, केरन रेखे कार्ये, केस्प = केस्प$_1$ = भूव्या-सार्धम् । केर=केस = रविकर्णः । के= भूकेन्द्रम् । रम, सम = अहोरात्रवृत्तव्या-सार्धम्=परमाल्पाद्यु-ज्याचापम् ।

<रकेम = <सकेम =परमाल्पद्युचा <निकेम=९०, ∴ <नकेर=जिनांशाः । <मकेस =परमाल्पद्युचा ।

अथ केस्पर, केस्प$_1$ त्रिभुयोः केर=केस, केस्प,=केस्प$_1$ ∴ स्पर=स्प$_1$स ∴ <केरस्प=<केसस्प तेन केरस्प+<केरम=<स्परम=<केसस्प$_1$ +केसम=<स्प$_1$सम

∴ स्पर्शरेखयोर्ध्रुवसूत्रेण सहैकस्मिन्नेव विन्दौ योगो भवेदेवमेवान्यासा-मपि स्पर्शरेखाणां ध्रुवसूत्रेण साकं तस्मिन्नेव विन्दौ योगो भवितुमर्हति । यत्र योग-स्तत्र यो बिन्दुः कल्प्यः । अत्र यो बिन्दौ यो द्रष्टा भवेत्स सर्वदा रविं पश्येत् । स (योगविन्दुः) भूपृष्ठस्थानात्कियति दूरे वर्त्तते तदानयनं क्रियते ।

<केरन=कुच्छन्नकला, <नकेर=जिनांश ∴ कुच्छन्नकला+जिनांश <स्पनके, <नकेयो=९० ∴ <नयोके=९०−(कुकला+जिनांश) तदा केस्पयो त्रिभुजेऽनुपातः

$$\frac{\text{भूव्या } \frac{1}{2} \times \text{त्रि}}{\text{कोटिज्या (कुच्छन्नक+जिनांश)}} = \text{केयो} \therefore \text{केयो}-\text{केपृ}=\text{केयो}-\text{भूव्या } \frac{1}{2} =$$

पृयो=७६ योजन

ब्रह्मा तु यो विन्दुतोऽप्यतिदूरे चाप्यतो ब्रह्मा सर्वदैव (सृष्ट्यादितः सृष्ट्यन्तं यावत्) रविं पश्यतीति सिद्धम् ॥

हि. भा.—ब्रह्मा का दिन एक कल्प के बराबर होता है । इससे यह सिद्ध होता हैं कि सृष्ट्यादि से सृष्ट्यन्त तक ब्रह्मा रवि को देखते हैं । जिससे उदयकाल से अस्तकाल तक दिन माना जाता है ।

परन्तु सृष्ट्यादि से सृष्ट्यन्त तक ब्रह्मा रवि को देखते हैं या नहीं, इसके लिये विचार करते हैं। देवताओं का निवास-स्थान सुमेरु पर है, पर सुमेरु पर्वत उत्तर की तरफ है इसलिये ब्रह्मा भी उत्तर ही तरफ कहीं होंगे। इसलिये रवि जब परम दक्षिण होंगे अर्थात् धनुरन्ताहोरात्र-वृत्त में होंगे तब धनुरन्ताहोरात्र वृत्त के प्रतिविन्दु से भूबिम्ब की जो स्पर्शरेखायें होंगी उन सब को ध्रुवसूत्र (दोनों ध्रुव में गई हुई रेखा) के साथ एक ही विन्दु पर योग होगा। पर पहले यह विचार करना चाहिये कि ध्रुवसूत्र के साथ स्पर्श रेखा का योग होता है या नहीं।

<केरन + <नकेर = <केनस्प पर <स्प = ९० ∴ केनस्प कोण, समकोणाल्प सिद्ध हुआ। इसी तरह केचस्प$_1$ कोण भी समकोणाल्प है इसलिये ध्रुव सूत्र के साथ स्पर्श-रेखाओं का योग अवश्य होगा। लेकिन एक ही विन्दु में योग होता है या नहीं इसके लिये विचार करते हैं।

स, र = रविगोलीय याम्योत्तरवृत्त और धनुरन्ताहोरात्रवृत्त का योग-विन्दु है। र स विन्दुओं से भूबिम्ब की स्पर्शरेखायें (निल) निरक्षोर्ध्वाधर रेखा में न, च विन्दु पर लगती है। केर, केस रेखा कीजिये केस्प = केस्प$_1$ = भूव्या $\frac{1}{2}$, कर = केस = रविकर्ण, भू = भूकेन्द्र

रम, सम = धनुरन्ताहोरात्र वृत्त व्यासार्ध = परमाल्प द्युज्याचा, <रकेम = सकेम = परमाल्पद्युचा अतः <नकेर = जिनांश, <केरम = जिनांश, <केसम = जिनांश

<केरन = <केस = कुच्छन्नकला, ∴ केरस्प + <केरम = <स्परम = <केसस्प$_1$ + <केसम = <स्प$_1$सम

अतः रस्प, सस्प$_1$ स्पर्शरेखाओं का योग ध्रुव सूत्र के साथ एक ही विन्दु पर होगा यह सिद्ध हुआ। इसी तरह और भी स्पर्शरेखायें ध्रुव सूत्र के साथ उसी विन्दु पर मिलेंगी यह सिद्ध हुआ, ध्रुव सूत्र के साथ स्पर्शरेखाओं को एक ही विन्दु पर जहां योग हुआ वहाँ योगविन्दु रखिये, योगविन्दु पर जो होंगे उनको बराबर रवि का दर्शन होगा, वह विन्दु (यो) भूपृष्ठ (पृ) स्थान से कितने दूर पर है इसका साधन करते हैं।

<केरन = कुच्छन्नकला, <नकेर = जिनांश ∴ कुच्छन्नकला + जिनांश = <स्पनके

<नकेयो = ९० ∴ <नयोके = ९० - (कुच्छन्नकला + जिनांश)

तब केस्पयो जात्य त्रिभुज में अनुपात करते हैं $\frac{\text{भूव्या } \frac{1}{2} \times \text{त्रि}}{\text{कोज्या (कुकला + जिनांश)}}$ = केयो,

∴ केयो — केपृ = केयो भूव्या-$\frac{1}{2}$ = पृयो = ७६ योजन।

ब्रह्मा यो विन्दु से भी बहुत दूर पर है इसलिये ब्रह्मा बराबर (सृष्ट्यादि से प्रलय पर्यन्त) रवि को देखते हैं अर्थात् सृष्ट्यादि से प्रलय पर्यन्त एक कल्प ब्राह्म दिन सिद्ध हुआ॥

कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाययुस्तथा समाप्ता मनवो दिनस्य वा ।
युगत्रिवृन्दं सदृशाङ्घ्रयस्त्रयः कलेर्नवागैकगुणा शकावधेः ॥१०॥

वि.भा.—कजन्मनः (ब्रह्मणः) आयुषः सदला अष्टौ समाः (सार्धाष्टवर्षाणि) समाययुः (समाप्तिं गता अर्थाद्व्यतीयुः) तथा दिनस्य नववर्षस्य प्रथमदिने षड्-मनवो व्यतीताः, युगत्रिवृन्दं (सप्तविंशतिप्रमितं युगं) व्यतीतम्, सदृशाङ्घ्रयस्त्रयः (तुल्ययुगाङ्घ्रित्रयः) व्यतीताः, कलेः शकावधि (कलियुगादितः शकारम्भं यावत्) नवागैकगुणाः (३१७९) एतावन्ति वर्षाणि व्यतीतानि सर्वेषां योगकरणेन सृष्ट्या-दितः शकादि यावत्कल्पगतवर्षाणि भवन्तीति । आचार्येण कल्पगतवर्षाणि न लिखितानि—भास्कराचार्येण तानि लिखितानि —

याताः षड् मनवो युगानि भमितान्यन्यद्यु गाङ्घ्रित्रयं,
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः ।
गोऽद्रीन्द्वद्रिकृताङ्क दस्र नगगो चन्द्राः शकाब्दान्विताः,
सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्त्तमाने गताः ॥

यथा गणितम्

६ मनु+७ सन्धि+२७ युग+३ युग चरण+३१७९=
=६ मनु+७ सन्धि+२७ युग+ (युग—कलियुचरण) +३१७९
=६×७१ मयु+७×४×४३२०००+२७ युग+ (युग—कयुचरण) +३१७९
=६×७१×४३२००००+७×४×४३२०००+२७×४३२००००+
(४३२००००—४३२०००) +३१७९
=६×७१×४३२००००+२८×४३२००००+२७×४३२००००+
(४३२००००—४३२०००) +३१७९
=१८४०३२००००+१२०९६०००+११६६४००००+३८८८+३१७९
=१९७२९४७१७९=कल्पगत वर्ष=भास्कर-कथित-कल्पगत-वर्षाणि ।

ब्रह्मणो गतायुर्विषये सूर्यसिद्धान्ते लिखितमस्ति यत् "परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया । आयुषोऽर्धमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः ॥" इति । अतएव मतद्वैविध्ये भास्करः ।

तथावर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः ।
भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहावर्त्तमान द्युयातात्प्रसाध्या इति ॥ १० ॥

हि.भा.—ब्रह्मा की आयु के साढ़े आठ वर्ष बीत गये, तथा नवमें वर्ष के प्रथम दिन में छः मनु बीत गये हैं, सत्ताईस युग बीत गये, युग (महायुग) के तीन चरण (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर) बीत गये, कलियुगादि से शकादि (शकारम्भ) तक ३१७९ वर्ष बीत गये । इन सब के योग करने से सृष्ट्यादि से शकादि तक कल्पगत वर्ष होते हैं, इसका गणित उपरि-लिखित देखिये । वटेश्वराचार्य ने कल्पगत वर्ष नहीं लिखे हैं । भास्कराचार्य ने लिखा है, जो संस्कृत विज्ञानभाष्य में दिखलाया गया है । ब्रह्मा की गतायु के विषय में सूर्यसिद्धान्तकार ने

लिखा है—परमायुः शतं तस्य इत्यादि । इसलिये दो तरह के मत होने पर सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य ने लिखा है कि—तथा वर्त्तमानस्य इत्यादि ।

सूर्यसिद्धान्त के मत से आयु का आधा भाग बीत गया इस तरह दो मत होने पर भास्कराचार्य कहते हैं कि कोई भी आगम हो, मुझे उसकी जरूरत नहीं (ब्रह्मा की गतायु से कुछ भी जरूरत नहीं है) क्योंकि ग्रहों का साधन तो वर्त्तमान अहर्गण पर से करना है । इति ॥१०॥

अथ रविबुधशुक्राणां कुजगुरुशनि-शीघ्रोच्चानाञ्च भगणमानं कथयति :—

खाभ्र खाभ्र दशनाब्धयो युगे भार्गवेन्दुसुत-सूर्यपर्यया: ।
शीघ्रतुङ्ग-भगणाः प्रकीर्त्तिताः सूर्यसूनु सुरपूजितासृजाम् ॥११॥

वि. भा. —युगे (महायुगे) खाभ्र खाभ्रदशनाब्धयः (४३२००००) भार्गवेन्दु-सुत-सूर्यपर्यया: (शुक्र-बुधरवि-भगणा भवन्ति) एते एव सूर्यसूनु-सुरपूजितासृजाम् (शनि-गुरु-मङ्गलानां) शीघ्र-तुङ्गभगणाः (शीघ्रोच्चभगणाः) प्रकीर्त्तिताः (कथिताः) ।

अर्थान्महायुगे रविबुधशुक्राणां यावन्तो भगणास्तावन्त एव शनिगुरुमङ्गल-शीघ्रोच्चानामपि भवन्तीति ।

उपपत्ति :—मध्यमरविसमावेव मध्यमबुधशुक्रौ भवतः । तथा रविरेव शनिगुरुमङ्गलानां शीघ्रोच्चम् । अतो रविभगणसमाः=बुधशुक्रयोर्भगणाः= शनिगुरुमङ्गल-शीघ्रोच्चभगणाः ।

अथ युगसौरवर्ष=युगरविभगणः । परं युगसौरवर्षाणि=४३२००००
∴ युगरविभगणाः=युगसौरवर्षाणि=४३२००००=युगबुधभगण=युग-शुक्रभगण=शनिशीघ्रोच्चभगण=मङ्गलशीघ्रोच्चभगण=गुरुशीघ्रोच्चभगण ∴ सिद्धम् ॥११॥

एक महायुग में शुक्र बुध सूर्यों का भगण ४३२०००० होते हैं इतने ही शनि गुरु मङ्गलों के शीघ्रोच्चों का भगण ॥

उपपत्ति—

मध्यमरवि के बराबर मध्यम बुध और शुक्र होते हैं । शनि, गुरु और मङ्गल इनके शीघ्रोच्च रवि है इसलिए महायुग में :—

रविभगण=बुधभगण=शुक्रभगण=शनिशीघ्रोच्चभगण=गुरुशीघ्रोच्चभगण= मङ्गलशीघ्रोच्चभगण

परन्तु युगसौरवर्ष=युगरविभगण, ∵ युगसौरवर्ष=४३२००००
∴ युगे रविभगण=४३२००००=बुधभगण=शुक्रभगण=शनिशीघ्रोच्चभगण=

गुरुशीघ्रोच्चभगण=मङ्गलशीघ्रोच्चभगण ∴ उपपन्न हुआ ॥११॥

युगे चन्द्रकुजशनीनां भगणमानं कथयति ।

शशिनोरसवह्निसुरेषु नगक्षितिभृद्विषयास्त्वचलात्मभुवः ।
गजपक्ष-गजाङ्क-नवद्विभुजा खयमाक्षि कृतर्त्तु-गुणाश्च गुरोः ॥१२॥

वि. भा. —शशिनः (चन्द्रस्य) रसवह्निसुरेषु नगक्षितिभृद्विषयाः (५७७५३३३६) महायुगे भगणा भवन्ति । अचलात्मभुवः (कुजस्य) गजपक्ष गजाङ्क-नवद्विभुजा (२२९६८२८) भगणा भवन्ति, गुरोः (बृहस्पतेः) खयमाक्षिकृतर्त्तु गुणाः (३६४२२०) भगणा भवन्ति ॥

चन्द्रभगणोपपत्तिः

अथ ग्रहवेधार्थं गोलबन्धोक्तरीत्या गोलयन्त्रं विरच्य खगोलान्तर्गतो भगोलः कार्यः । वेधगोलीय क्रान्तिवृत्तं भगणांशाङ्कितं तथा तत्रत्यवेधवृत्तमपि (कदम्ब-प्रोतवृत्तं) भगणांशाङ्कितं कार्यं तद्गोलयन्त्रं दृढीकृत्य गोलकेन्द्रे ध्रुवाभिमुखयष्टीं निवेश्य रात्रौ गोलकेन्द्रगतदृष्ट्या रेवती तारां विलोक्य गोलयन्त्रीयक्रान्तिवृत्ते (रेवतीं) मेषादिमङ्कयेत् । तथा गोलकेन्द्रगतदृष्ट्यैव चन्द्रं विलोक्य वेधगोलीय (गोलयन्त्रीय) परिणतचन्द्रोपरि कदम्बप्रोतवृत्तं निवेशनीयम् । एवं सति कदम्ब-प्रोतवृत्त-तत्रत्यक्रान्तिवृत्तयोर्यः सम्पातः स एव वेधागतः स्पष्टचन्द्रो ज्ञातव्यः । मेषादितः स्फुटचन्द्रावधि (स्पष्टचन्द्रावधि) क्रान्तिवृत्ते ये राश्यंशादयस्ते गणनीयाः । स एव तस्मिन् काले स्पष्टचन्द्रो राश्यादिको भवेत् । एवमन्यस्मिन्नपि दिने स्पष्टचन्द्रो वेदितव्यः तदा विदितमन्दोच्चात्स्पष्टचन्द्राच्च "स्फुटं ग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्येत्यादि" विलोमेन तन्मन्दफलमानीय तेन संस्कृतः स्पष्टश्चन्द्रो मध्यमचन्द्रो भवेत् । एवं दिनद्वये मध्यमचन्द्रौ ज्ञात्वाऽन्तरेण चन्द्रमध्यमां गतिं विज्ञाय "यद्येकेन दिनेनैतावती चन्द्रगतिस्तदा युगकुदिनैः किमित्यनुपातेन" चन्द्रभगणा उत्पद्यन्ते ॥१२॥

हि. भा.—चन्द्रमा के भगण=५७७५३३३६ होते हैं ।
मंगल के भगण=२२९६८२८
बृहस्पति के भगण=३६४२२०

उपपत्ति :—ग्रह के वेध के लिये गोलबन्ध नियम के अनुसार गोलयन्त्र बनाकर खगोल के अंतर्गत भगोल को करना चाहिये, रचितगोलीय (वेधगोलीय) क्रान्तिवृत्त में ३६० अंश चिन्हित करना और वहाँ के वेधवृत्त को (कदम्ब प्रोतवृत्त) भी ३६० अंश से चिन्हित कीजिये । उस गोलयन्त्रको स्थिर करके गोलकेन्द्र में ध्रुवाभिमुखयष्टी करके रात्रि में गोलकेन्द्रगत दृष्टिद्वारा रेवतीतारा को देखकर वेधगोलीय क्रान्तिवृत्त में रेवती को (मेषादि को) अंकित करना । और गोलकेन्द्रगत दृष्टि द्वारा चन्द्रमा को देखकर वेधगोल में परिणत चन्द्र के ऊपर तद्गोलीय कदम्ब प्रोतवृत्त करना । इसतरह वेधगोलीय कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त का जो सम्पात है वही वेधागत स्पष्टचन्द्र समझना चाहिये । मेषादि से (रेवती से) स्पष्टचन्द्र तक क्रांतिवृत्त में जो राश्यंशादि है उसको गिन लेना चाहिये, वही उस समय राश्यादिक स्पष्टचन्द्र होते है ।

इस तरह और दिन में भी स्पष्टचन्द्र का ज्ञान करना चाहिये। तब मन्दोच्च और स्पष्टचन्द्र से विलोम विधि (मध्यमचन्द्र से स्पष्टचन्द्रसाधन की विपरीत क्रिया से) चन्द्रमन्दफल लाकर स्पष्टचन्द्र में संस्कार करें तब मध्यमचन्द्र होंगे। एवं दो दिन मध्यमचन्द्र जानकर अंतर करने से चन्द्रमध्यमगति समझनी चाहिये, तब "एक दिन में इतनी चन्द्रगति पाते हैं तो कुदिन में क्या" इस अनुपात से चन्द्रभगण आजायेंगे। ॥१२॥

शनेर्बुधशुक्रशीघ्रोच्चयोश्च भगवानाह।

गजषट्शरषट् मनवश्च शनेः शशिसूनुचलस्य खरसैर्हि युताः।
नखखाद्रि-गुणाङ्क-नगक्षितयो भृगुपुत्र-चलस्य बुधैर्गदिताः ॥१३॥

वि. भा.—शनेः (शनैश्चरस्य) गजषट् शरषट्मनवः (१४६५६८) भगणा भवन्ति। शशिसूनुचलस्य (बुधशीघ्रोच्चस्य) खरसैः (६०) युताः नखखाद्रिगुणाङ्क-नगक्षितयः (१७९३७०८०) भगणा भवन्ति। भृगुपुत्रचलस्य (शुक्रशीघ्रोच्चस्य) बुधैर्गदिताः, एतस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्धः ॥१३॥

बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चोपपत्तिः

पूर्वस्यां दिशि चक्रयन्त्रवेधेन रविशुक्रयोरन्तरांशा ज्ञातव्याः, स्पष्टर~विस्पशुक्र =अन्तरांशाः, ∴स्पष्टरवि—अन्तरांश=स्पष्टशुक्रः। स्पष्टशुक्रतो मन्दफलमानीय स्पष्टशुक्रे विपरीतं धनर्णं कार्यं तदा मंदस्पष्टशुक्रो भवेत्। स्पष्टरवेरपि विलोमविधिना मध्यमरविज्ञानं कार्यं तयोर्यदन्तरं तच्छीघ्रोफलं धनमृणं वेति। अर्थान्मध्यमरवि-तुल्यशुक्रस्य तन्मन्दफलव्यस्तसंस्कृतानीत स्पष्ट शुक्रस्यान्तरेण यदृणं धनं वा शीघ्र-फलं तदेव स्पष्टशुक्रमंदस्पष्टशुक्रयोरंतरमपि शीघ्रफलं भवतीति। प्रत्यहं वेधेन परमं शीघ्रफलमानतेव्यम्, एतस्य शीघ्रफलस्य परमत्वं प्रायः कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा-प्रतिवृत्तसम्पातस्थे ग्रहे एव भवति[१]। ∴ तत्र स्पष्टशुक्राच्छीघ्रोच्चं राशित्रयान्तरे वर्त्तते तेन स्पष्टशुक्र—३ राशि=शीघ्रोच्चम् एवं द्वितीयपर्ययेऽपि पूर्वोक्तेनैव विधिना शीघ्रोच्चं ज्ञातव्यम्। एतयोः शीघ्रोच्चयोरन्तरं तद्दिनज शीघ्रोच्चगतिर्भवेत्ततोऽनुपातो यद्येतत्कालांतरदिनैरियं शीघ्रोच्चगतिस्तदैकेन दिनेन किमिति फलमेकदिनजा शीघ्रोच्चगतिस्ततोऽनुपातेन "यद्येकेन दिनेनेयं शीघ्रोच्चगतिस्तदा कुदिनैः केति" शीघ्रोच्चभगणाः। एवमेव बुधस्यापि भगणोपपत्तिरनुसन्धेयेति ॥१३॥

हि. भा. :—शनैश्चर का भगण=१४६५६८

बुधशीघ्रोच्चभगण=१७९३७०८० शुक्रशीघ्रोच्चभगण आगे के श्लोक में है। पूर्व दिशा में चक्र-यन्त्र द्वारा स्पष्टरवि शुक्र के अन्तरांश समझना चाहिए, उस अन्तरांश को स्पष्टरवि में घटाने से स्पष्ट शुक्र हो जायेंगे। स्पष्टशुक्र पर से मन्दफल साधन कर स्पष्टशुक्र में विलोम संस्कार करने से मन्दस्पष्टशुक्र होगें। स्पष्टरवि पर से भी विलोमविधि से मध्यमरवि का ज्ञान करना चाहिए, दोनों के अन्तर करने पर धन या ऋण शीघ्रफल होगा अर्थात् मध्यमरवि-तुल्यमध्यमशुक्र का और मन्दफल व्यस्त संस्कृत लाये हुए स्पष्टशुक्र का अन्तर करने पर जो धन या ऋण शीघ्रफल होता है वही स्पष्टशुक्र-मन्दस्पष्टशुक्र का अन्तर शीघ्रफल होता है। इस

तरह प्रत्येक दिन वेध से परमशीघ्रफल लाना चाहिये। शीघ्रफल का परमत्व प्रायः कक्षा-मध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त सम्पात में ग्रह के रहने से होता है अतः वहाँ स्पष्टशुक्र से शीघ्रोच्च तीन राशि पर होता है इसलिए स्पष्टशुक्र—३ राशि=शीघ्रोच्चों एवं द्वितीयभगण में भी वेध से पूर्व विधिद्वारा शीघ्रोच्च का ज्ञान करना, इन दोनों शीघ्रोच्चों का अन्तर उतने समय की शीघ्रोच्चगति होती है तब अनुपात करते हैं कि प्रथम वेधदिन द्वितीय वेधदिन के अंतर में यह शीघ्रोच्चगति पाते हैं तो एक दिन में क्या फल एक दिन सम्बन्धी शीघ्रोच्चगति होगी तब "यदि एक दिन में यह शीघ्रोच्चगति तब कुदिन में क्या" इस अनुपात से युग में शुक्र का भगण आ जायगा। इसी तरह बुधभगणानयनोपपत्ति भी होती है। इति ॥१३॥

अथ चन्द्रमन्दोच्चभगणान् चन्द्रपातभगणांश्चाह।

रसशैल-गुणाक्षि-भुजाभ्रनगाः शिखिखाश्विकरीभपयोनिधः।
हिमगूच्च-युगर्क्षगणेभगुणाद्वियमाग्निभुजाः शशिपातभवाः ॥१४॥

वि. भा.—रशशैल गुणाक्षि भुजाभ्रनगाः (७०२२३७६) शुक्रशीघ्रोच्चभगणः (एतस्य पूर्वोक्त १३ श्लोकेन सम्बन्धः) शिखिखाश्विकरीभ पयोनिधयः (४८८२०३) हिमगूच्च-भवर्क्षगणाः (चन्द्रमन्दोच्च-भगणाः), इभगुणाद्वियमाग्नि-भुजाः (२३२२३८) शशिपातभवाः (चन्द्रपातोत्पन्नाः) भगणा भवन्तीति ॥

उपपत्तिः

शुक्रशीघ्रोच्च भगणोपपत्तिस्तु प्रागुक्तैव अधुना चन्द्रमन्दोच्चोपपत्तिः प्रदर्श्यते। प्रत्यहं वेधेन चन्द्रस्फुटगतयो विलोक्याः। एतस्या गतेः परमाल्पत्वं यस्मिन् दिने दृष्टं तत्र दिने मध्यमस्फुटचन्द्रौ समौ भवेताम् तदा तदेवोच्चस्थानम्। यत उच्चस्थे ग्रहे फलाभावः गतेश्च परमाल्पत्वम्। ततोऽनन्तरं तस्माद्दिनादारभ्यान्यस्मिन् पर्यये प्रतिदिनं चन्द्रवेधद्वारा तथैवोच्चस्थानं ज्ञेयम्। इदमुच्चस्थानं पूर्वोच्चस्थानादग्रे भवति। तयोरन्तरं तद्दिनजा चन्द्रोच्चगतिर्भवेत्। ततः यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरियमुच्चगतिस्तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातनैकदिनजा चन्द्रगतिः। ततः यद्येकेन दिनेनेयं चन्द्रोच्चगतिस्तदा कुदिनैः किमित्यनुपातेन (युग) चन्द्रमन्दोच्च-भगणाः समागच्छन्तीति ॥१४॥

हि. भा.—शुक्रशीघ्रोच्च भगण=७०२२३७६ इसको १३वें श्लोक से सम्बन्ध है इसकी उपपत्ति वहीं देखिये—

चन्द्रमन्दोच्च भगण=४८८२०३
चन्द्रपात भगण=२३२२३८

चन्द्रमन्दोच्चभगणोपपत्ति

प्रतिदिन वेध से चन्द्र स्पष्टगति देखनी चाहिये, इस गति की परमाल्पता जिस दिन देखी जायगी उस दिन मध्यमग्रह-स्पष्टग्रह (मध्यमचन्द्र-स्पष्टचन्द्र) बराबर होंगे, तब वही उच्चस्थान होगा जिस लिये उच्चस्थान में ग्रह रहने से फल=०, गति की परमाल्पता होती

है। उसके बाद उस दिन से आरम्भ कर दूसरे भगण में भी प्रत्येक दिन वेध से पूर्वोक्त नियम द्वारा चन्द्रमन्दोच्च स्थान का ज्ञान करे। यह चन्द्रमन्दोच्च स्थान पूर्व कथित चन्द्रमन्दोच्च स्थान मे आगे होता है। दोनों के अन्तर करने से उतने दिन सम्बन्धिनी चन्द्रमन्दोच्च गति होगी, तब "यदि इतने दिन में यह चन्द्रमन्दोच्चगति पाते हैं तो एक दिन में क्या" इस अनुपात से एक दिन की चन्द्रमन्दोच्चगति होगी। इस पर से अनुपात द्वारा "एक दिन में यह चन्द्रमन्दोच्चगति पाते हैं तो कुदिन में क्या" चन्द्रमन्दोच्चभगण प्रमाण आ जायगा। इति।

चन्द्रपात-भगणोपपत्तिः।

प्रत्यहं चन्द्रवेधाद्दक्षिणशरे क्षीयमाणे यस्मिन् दिने शराभावो दृष्टस्तद्दिने क्रान्तिवृत्ते तत्स्थानं चिन्हितं तत्र यावांश्चन्द्रः स चक्रशुद्धः पातो भवेत्। एवं द्वितीयपर्ययेऽपि पातस्थानं ज्ञेयम्। इदं पूर्वपातस्थानात्पश्चिमे समागच्छत्यतः पातस्य विलोमा गतिरस्तीत्यस्य प्रतीतिर्जाता, द्वयोः पातयोरन्तरेण तद्दिनजा पातगतिस्ततोऽनुपातो यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरियं पातगतिस्तदैकेन कुदिनेन किमित्यनुपातेनैकदिनजा पातगतिस्ततो यद्येकेन दिनेनेयं पातगतिस्तदा युग-कुदिनैः किमिति समागच्छति युगचन्द्रपातभगणा इति ॥१४॥

चन्द्रपात-भगणोपपत्ति।

प्रत्येक दिन चन्द्रमा के वेध करने से जिस दिन दक्षिण शर क्षीयमाण होने पर शराभाव देखा जायगा उस दिन क्रान्ति वृत्त में उस स्थान को अङ्कित कर देना, वहां पर जितना चन्द्रप्रमाण होगा उसको बारह राशि में घटाने से पात होगा इसी तरह, दूसरे पर्यय में भी पातस्थान समझना चाहिये। पर यह पात-स्थान पूर्वपातस्थान से पश्चिम होता है, इससे पात की विलोमगति सिद्ध होती है। दोनों पातों के अन्तर करने से उतने दिनों में पातगति होगी तब अनुपात करते हैं कि 'इतने अन्तर दिनों में यह पातगति पाते हैं तो एक दिन में क्या आ जायगी' एक दिन सम्बन्धी पातगति, तब अनुपात करते हैं कि 'एक दिन में यह पातगति तो युग-कुदिन में क्या' इस अनुपात से युग चन्द्रपातभगण आ जायंगे। ॥१४॥

कमलविष्टरवक्त्र-सरोरुह-स्फुटगिराभिहिता मुनिपर्ययाः।
य इह तानपि वच्मि युगोद्भवान् द्युचरलब्धवरो भुजगोऽष्टयः ॥१५॥

इदानीं ब्रह्मायुषि रविकुजगुरूणां भगणानाह—

मन्दतुङ्ग-भगणोऽब्ज-जीविते भूमि-पङ्कज-शराष्टयो रवेः।
लोहितस्य शरषट् शिवोरगा धीकृताङ्ग-दहनेन्दवो गुरोः ॥१६॥

वि. भा.—अब्जजीविते (ब्रह्मजीवनकाले) कमल-विष्टर-वक्त्र-सरोरुह-स्फुटगिरा (ब्रह्ममुख-कमल-स्पष्टवाण्या) ये मुनिपर्ययाः (मुनीनां कृते भगणाः) अभिहिताः (कथिताः) तान् युगोद्भवानपि (युगोत्पन्नानपि) भगणान्, द्युचर-लब्धवरः (ग्रहप्राप्तप्रसादः) अहं (वटेश्वरः) वच्मि (ब्रुवे)। भुजगोऽष्टय इति निरर्थकं प्रतिभाति।

ब्रह्मायुषि-भूमि-पङ्कज-शराष्टयः (१६५११) रवेर्मन्दोच्चभगणाः। लोहितस्य (मङ्गलस्य) शरषट्-शिवोरगाः (८११६५) मन्दोच्चभगणाः। धीकृताङ्कदहनेन्दवः (१३९४५) गुरोर्मन्दोच्चभगणा भवन्तीति ॥ १५-१६ ॥

हि. भा. :—ब्रह्मा के जीवनकाल में ब्रह्मा के मुखकमल से निकली हुई स्पष्टवाणी द्वारा मुनियों के लिये जो भगण कहा गया है। ग्रहों के प्रसाद से मैं (वटेश्वर) युगोत्पन्न उन भगणों को भी कहता हूं।

ब्रह्मा की आयु में—
रवि का मन्दोच्चभगण = १६५११
मङ्गल का मन्दोच्चभगण = ८११६५
वृहस्पति का मन्दोच्चभगण = १३९४५

रविमन्दोच्च-भगणोपपत्तिः।

मिथुनस्थे रवौ कस्मिंश्चिदपि दिने रेवतीतारकोदयाद्यावतीभिर्धटिकाभी रविरुदितस्तावतीभिर्मीनान्ताल्लग्नं साध्यम्। तत्र यल्लग्नं स तदा स्फुटरविः। एवमन्यदिनेऽपि तयोः स्फुटरव्योर्यदन्तरं सा स्फुटगतिः। एवं प्रतिदिनं स्फुटगतयो ज्ञातव्याः। यस्मिन् दिने गतेः परमाल्पत्वं तत्र दिने यावान् रविस्तावदेव रवेर्मन्दोच्चम्। एवं द्वितीयपर्ययेऽपि मन्दोच्चं ज्ञेयम्। एतन्मन्दोच्चं प्रथममन्दोच्चादग्रे भवति। यद्यपि मन्दोच्चस्यास्य बहुष्वपि वर्षेषु गतिर्नोपलभ्यते तथापि चन्द्रमन्दोच्चवदस्यापि गतिः स्वीक्रियते। तयोर्मन्दोच्चयोरन्तरं तद्दिनजा मन्दोच्चगतिर्भवेत्। ततोऽनुपातेन "यद्येतावद्भिरन्तरदिनैरियं मन्दोच्चगतिस्तदैकेन दिनेन किं जातैकदिनजा रविमन्दोच्चगतिः। "ततोऽनुपातेन रवेर्मन्दोच्चभगणाः समागच्छन्तीति। युगीयभगणादयः कल्पीयभगणादयश्च ब्रह्मायुषि कथमागच्छन्ति तदर्थमग्रे (द्वितीयाध्यायस्य सप्तमश्लोके) आचार्योक्तिविधिर्ज्ञेयः ॥१५-१६ ॥

हि. भा. —मिथुन से रवि के रहने पर किसी भी दिन रेवती नक्षत्र के उदय से जितनी घटी में रवि उदित हो उतनी घटी करके मीनान्त से लग्न साधन करना, तब जो लग्न हो वही स्पष्ट रवि होंगे, दूसरे दिन भी इसी तरह करना, दोनों स्पष्ट रवि के अन्तर स्पष्टगति होती है, इस तरह प्रत्येक दिन स्पष्टगति समझनी चाहिये। जिस दिन में गति की परमाल्पता होगी उस दिन जितने रवि होंगे उतने ही रवि मन्दोच्च प्रमाण होंगे, इस तरह दूसरे पर्यय में भी मन्दोच्च ज्ञान करना, यह मन्दोच्च पूर्व मन्दोच्च से आगे होता है, यद्यपि इस मन्दोच्च की गति वहुत वर्षों में भी नहीं उपलब्ध होती है तथापि चन्द्रमन्दोच्च की तरह यहां भी आचार्य ने इसकी गति स्वीकार की है।

दोनों मन्दोच्च के अन्तर करने पर उतने दिनों की मन्दोच्चगति होगी। तब अनुपात से "इतने अन्तर दिन में यह रविमन्दोच्चगति पाते हैं तो एक दिन में क्या" एक दिन की रविमन्दोच्चगति आई, इस पर से अनुपात द्वारा रविमन्दोच्च भगण आजायेंगे। युगीयभगणादियों को या कल्पीय भगणादियों को ब्रह्मा की आयु में लाने के लिये आगे

(दूसरे अध्याय के सप्तम श्लोक में) आचार्य ने नियम लिखे हैं।।१५-१६)

इदानीं ब्रह्मायुषि शनि-बुध-शुक्र-मन्दोच्च-भगणानाह। —

कृतसप्तनवद्विपर्वताः शनेः क्षितिगोदोर्मुनिभूभृदब्धयः।
शशिजस्य सुरारिमन्त्रिणो द्विकृताष्टद्विकपञ्चभूमयः।।१७।।

वि. भा. —ब्रह्मायुषि कृतसप्तनवद्विपर्वताः (७२९७४) शनैर्मन्दोच्चभगणाः क्षितिगोदोर्मुनिभूभृदब्धयः (४७७२९१) शशिजस्य (बुधस्य) मन्दोच्चभगणाः द्विकृताष्टद्विकपञ्चभूमयः (१५२८४२) सुरारिमन्त्रिणः (शुक्रस्य) मन्दोच्च-भगणाः।।१७।।

ब्रह्मा की आयु में शनैश्चर का मन्दोच्चभगण=७२९७४

बुध का मन्दोच्चभगण=४७७२९१

शुक्र का मन्दोच्चभगण=१५२८४२

उपपत्तिः

एतेषां (मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्रशनैश्चराणां) मन्दोच्चभगणोपपत्तिः। वेधेन स्फुटग्रहं ज्ञात्वा तं मन्दस्फुटं प्रकल्प्य ततः शीघ्रफलमानीय स्फुटग्रहे तद्विलोमं संस्कृत्यैवमसकृन्मन्दस्फुटग्रहो वेदितव्यः। एवं प्रतिदिनं मन्दस्फुटो ज्ञेयः। धनमन्द फले क्षीयमाणे स मन्दस्फुटग्रहो यस्मिन् दिने मध्यतुल्यो भवेत्तदा तत्तुल्यमेव मंन्दोच्चं ज्ञेयम्। एवं द्वितीयपर्ययेऽपि मन्दोच्चं ज्ञेयं ततो रविमन्दोच्च भगणावदत्रापि भगणा नेया इति।।१७।।

हि. भा. —वेध से स्फुटग्रह जानकर उसे मन्दस्पष्ट मानकर शीघ्रफल साधन करना, स्फुटग्रह में उसको विलोम संस्कार करने पर द्वितीय मन्दस्पष्टग्रह होगा। इस तरह असकृत्कर्म करने से मन्दस्पष्टग्रह का ज्ञान होगा। इस तरह प्रतिदिन मन्दस्पष्टग्रह जानना चाहिये। धन मन्दफल क्षीयमाण रहने पर जिस दिन मन्दस्पष्टग्रह मध्यमग्रह के बराबर होगा उस दिन उसीके बराबर मन्दोच्च होगा। इस तरह द्वितीय पर्यय में भी करना। तब रविमन्दोच्चभगण के अनुसार यहां भी मन्दोच्चभगण का ज्ञान हो जायगा।।१७।।

मङ्गलादिग्रहाणां पातभगणानाह।

नवकुनगाष्ट कुवेदशरेषु श्रुतिहरिणाङ्कभधीमतिनन्दाः।
शरशिखिधीरस रामरसाभ्र द्विपकृतभेन्दुरसाङ्कशशाङ्काः।।१८।।
जलधिगजर्त्तु नखा, यमशून्य द्विनवगुणा, द्विकृतेन्दुगुणाश्च।
बुधसित कुजसुरेज्य-शनीनां कमलभवायुषि पातभसङ्घाः।।१९।।

वि. भा. —कमलभवायुषि (ब्रह्मायुर्दाये) बुधसितकुजसुरेज्यशनीनां (बुध-शुक्रमङ्गल-गुरुशनैश्चराणाम् एते क्रमशः पातभसाङ्घाः (पातभगणाः) भवन्ति यथा नवकुनगाष्ट कुवेदशरेषु श्रुतिहरिणांक भधीमतिनन्दाः (९५५२७१४५५४१८७१९) शरशिखि धीरस रामरसाभ्रद्विपकृतभेन्दुरसांक शशांकाः (१९६१२७४८०६३६५५५) जलधिगजर्त्तु नखाः (२०६८४) यमशून्यद्विनवगुणा (३९२०२) द्विकृतेषुभुवः (१५४२)

ब्रह्मा की आयु में बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु और शनैश्चर इन सब के निम्नलिखित पात भगण होते हैं। जैसे—

बुधपात भगण = ९५५२७१४५५४१८७१९
शुक्र ,, ,, = १९६१२७४८०६३६५५५
मङ्गल ,, ,, = २०६८४
गुरु ,, ,, = ३९२०२
शनि ,, ,, = १५४२

उपपत्तिः।

पृष्ठाभिप्रायिक शरज्ञानाद्गर्भीयशरं ज्ञात्वा तदभावस्थले यो हि गणितागत-मन्दस्पष्टग्रहः स एव चक्रशुद्धः पातः स्यात्। बुधशुक्रयोः पातभगणेऽङ्काधिक्यदर्शनाल्लाघवार्थं तत्केन्द्रभगणान् तत्र विशोध्य पातभगणत्वेन प्राचीनाः स्वीकुर्वन्ति। तत एव कारणात् "मन्दस्फुटात्खेचरतः स्वपातयुक्तादित्यादिना शरसाधनार्थ-केन्द्रकरणे मध्यम रवि मन्दस्पष्ट शुक्रयोरन्तररूपेण मन्दफलेन विपरीत-संस्कृत-शीघ्रोच्चस्थाने यो हि शरः स एव सर्वत्र भवत्यतो बुध शुक्र शराभावस्थाने मन्द-फलव्यस्त संस्कृतशीघ्रोच्चं द्वादशशुद्धं पातः स्यात्। एवं द्वितीयपर्ययेऽपि, ततोऽनन्तरं मन्दोच्चभगणोपपत्तिवदत्राप्युपपत्त्या भगणा आनेतव्या इति।

वस्तुतो ब्रह्मायुषि भगणकथनमेव व्यर्थं यतः कल्पे एव सर्वेषां भगणपूर्त्तिर्भवति कल्पा (ब्रह्मदिना) नन्तरं सर्वेषां ग्रहाणां लयो भवति तेनानेककल्पानां भगणकथनं निरर्थकमेत्रातो भास्कर आक्षिपति यथा :—

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु॥

हि. भा. —पृष्ठाभिप्रायिक शरज्ञान से गर्भीय शर जान कर उसके अभावस्थान में जो गणितागत मन्दस्पष्ट ग्रह होते हैं वही चक्रशुद्ध (१२-पात) पात होता है। बुध और शुक्र के पातभगण में अङ्कों के अधिक होने के कारण गणितलाघवार्थ उनके केन्द्र भगण को उसमें घटा कर पात भगण प्राचीनाचार्य स्वीकार करते हैं। उसी कारण से "मन्दस्फुटात्खेचरत इत्यादि प्रकार से" शरसाधनार्थ केन्द्र के लिये मध्यम रवि स्पष्ट शुक्रान्तर रूप मन्दफल करके विपरीत संस्कृत शीघ्रोच्चस्थान में जो शर होगा वही सब जगह होता है इसलिये बुध और शुक्र के शराभाव स्थान में मन्द फल व्यस्त संस्कृत शीघ्रोच्च को बारह राशि में घटाने पर पात होता है। इस तरह दूसरे पर्यय में भी पातज्ञान करना चाहिये। उसके बाद रवि मन्दोच्च भगणोपपत्ति के तरह यहां भी पात भगण ज्ञान होता है॥ १८-१९॥

ब्रह्मा की आयु में भगण पाठ करना ही व्यर्थ है क्योंकि कल्प (१ ब्रह्मा-के दिन) के बाद सब ग्रहों का लय हो जाता है। कल्प में ही सब के भगणों की पूर्त्ति होती है। इसलिए अनेक कल्पों का भगण कहना व्यर्थ है अतः भास्कराचार्य ने आक्षेप किया है। यथा

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते इत्यादि।

स्वशीघ्रनीचोच्चक वृत्तपर्ययैर्हृतावशिष्टाः खगपातपर्ययाः ।
ज्ञशुक्रयोस्तच्चल केन्द्र संयुतिं वदन्ति पातानथवा मनीषिणः ॥ २० ॥

वि. भा. —स्वशीघ्रनीचोच्चक वृत्तपर्ययैः (स्व-शीघ्रोच्च-पातादि-भगणैः) खगपातपर्ययाः (ग्रहभगणादि-पातादिकाः) साध्याः हृतावशिष्टाः (भगणान् त्यक्त्वा शेषा राश्यादिका ग्राह्याः) बुध-शुक्रयोः पाते तच्चलकेन्द्र संयुतिं (शीघ्र-केन्द्र योगं) कृत्वा तदा मनीषिणः (पण्डिताः) पातान् (वास्तव पातान्) वदन्ति ॥ बुध शुक्रयोः पातविषये भास्करोऽप्येवमेव कथयति, यथा
ये चाऽत्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यतः स्युरिति ॥

हि. भा.—अपने अपने शीघ्रोच्च पातादि भगणों द्वारा ग्रहों के भगणादि पातों का साधन करना चाहिये। उनमें भगण को छोड़ कर राश्यादि का ग्रहण करना चाहिये। बुध और शुक्र के पातों में उनके शीघ्र केन्द्र जोड़ने से उनके वास्तव पात होते हैं, ये बातें पण्डित लोग कहते हैं बुध और शुक्र के पात के विषय में भास्कराचार्य भी ऐसे ही कहते हैं। यथा येचाऽत्र पातभगणाः इत्यादि ॥२०॥

ग्रन्थकारः स्वजन्मसमयं ग्रन्थकालञ्च कथयति ।

शकेन्द्र कालाद्भुज शून्य-कुञ्जरैरभूदतीतैर्मम जन्महायनैः ।
अकारि राद्धान्तमितैः स्वजन्मनो मया जिनाब्दैर्द्युसदामनुग्रहात् ॥ २१ ॥

वि. भा. —शकेन्द्रकालात् (शकारम्भतः) भुजशून्यकुञ्जरैः (८०२) हायनैः (वर्षैः) अतीतैः (गतैः) मम जन्माभूत् (अर्थाच्छकारम्भात्परं ८०२ वर्षेषु व्यतीतेषु मम जन्माभूत्) द्युसदां (ग्रहाणां) अनुग्रहात् (कृपातः) स्वजन्मनः (स्वजन्मसमयात्) जिनाब्दैः (चतुर्विंशतिवर्षैः) इतैः (गतैः) अर्थात् (जन्मसमयात् २४ वर्षेषु व्यतीतेषु) मया राद्धान्तं (सिद्धान्तं) अकारि (कृतम्) ।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे भगणनिर्देशनामकः प्रथमाध्यायः समाप्तः ।

हि. भा. —शकवर्षारम्भ से ८०२ इतने वर्ष बीतने पर मेरा जन्म हुआ, अपने जन्म के समय से चौबीस वर्ष बीतने पर ग्रहों की कृपा से मैंने इस सिद्धान्त की रचना की ॥ २१ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में भगण निर्देश नामक
प्रथमाध्याय समाप्त हुआ ॥



मध्यमाधिकारस्य

द्वितीयाध्याये

मानविवेकः

जलधर रस पञ्चक्ष्माभृदग्नि द्विपक्ष-
द्विपक शरशशाङ्का भोदयाः स्युर्युगेऽमी ॥
निज भगरण विहीना खेचरस्योदयाः प्राक्
दिनकृदुदय राशिः सावनो भूदिनाख्यः ॥ १ ॥

वि. भा.—एकस्मिन् युगेऽमी "१५८२२३७५६४" एतावन्तो भोदयाः (नाक्षत्रदिनानि) स्युरिति ते भोदयाः खेचरस्य (ग्रहस्य) निज भगणविहीनाः सन्तः, तदुदयाः (ग्रहसावनदिनानि स्युः, दिनकृदुदयराशिः (सूर्योदयसमूहः) सूर्यसावनः, स एव भूदिनाख्यः कुदिन संज्ञकः ।

उपपत्ति.—

प्रथमदिने उदयकाले क्रान्तिवृत्ते नक्षत्रेण साकं सूर्योदयो दृष्टः पुनः द्वितीयदिने नक्षत्रोदयानन्तरं सूर्योदयो दृष्टोऽतो नाक्षत्रैकदिने सावनदिनैकज रवि गति कलोत्पन्ना सुयुक्ते एक सावनान्तर्गत नाक्षत्रीय कालो भवेद्यथा —

१ नाक्षत्र दिन + रविगतिकलोत्पन्नासु = १ सावन दिनान्तःपाति नाक्षत्रकालः, एवं दिनद्वयस्य २ नाक्षत्रदिन + २ दिनज रविगति योगासु = २ सावन दिनान्तःपाति नाक्षत्रका एवं यस्मिन्निष्टदिने नाक्षत्रकालोऽपेक्षितस्तद्दिनसंख्यक नाक्षत्र दिनमिष्ट दिन गतियोग कलासु युक्तं तदेष्ट दिनान्तःपाति नाक्षत्रकालो भवेदिति नियमादेकस्मिन् वर्षे नाक्षत्रकालः कियान् भवेदस्य विचारः क्रियते। वर्षान्तःपाति सावनसंख्या तुल्ये नाक्षत्रदिने-एकवर्षसम्बन्धि रविगतियोगो द्वादशराशिसमोऽर्थात्क्रान्तिवृत्तमेवातस्तदुत्पन्नासु नैकनाक्षत्रदिनेन युक्तस्तदा वर्षान्तःपाति नाक्षत्रदिनान्यर्थाद्वर्षान्तःपाति भभ्रमा स्युः । वर्षान्तःपाति सावनसं + १ = वर्षान्तःपातिभभ्रम ततोऽनुपातेन" यद्येकस्मिन् वर्षे वर्षान्तःपातिभभ्रमस्तदा युगवर्षे किमित्यनेन" युगे भभ्रमाः =

(वर्षान्तःपातिसावनसं + १) युगवर्ष = वर्षान्तःपातिभभ्रम × युगवर्ष
= वर्षान्तःपातिसावनसं × युगवर्ष + युगवर्ष = युगसावनसं + युगवर्ष =
युगभभ्रम = युगकुदिन + युगवर्ष = १५८२२३७५६४
अथ युगभभ्रम = युगकुदिन + युगवर्ष परं रवियुगभगण = युगवर्ष
∴ युगभभ्रम = युगकुदिन + युग रविभगण

ततः युगभभ्रम—युगरविभगण=युगकुदिन=युगरविसावन दि
एवमेव युगभभ्रम—युगग्रहभगण=युगग्रहकुदिन

अत उपपन्नम् ।

हि. भा.—एक युग में १५८२२३७५६४ इतने नाक्षत्र दिन होते हैं, युगभभ्रम में युगग्रह, भगण घटाने से युगग्रह कुदिन होते हैं, युगरवि सावन-युगकुदिन संज्ञक है ॥ १ ॥

उपपत्ति ।

प्रथम दिन उदयकाल में क्रान्तिवृत्त में नक्षत्र के साथ रवि का उदय देखा गया, दूसरे दिन नक्षत्रोदय के बाद सूर्योदय देखा गया, इसलिये एक नाक्षत्र दिन में एक सावन दिन सम्बन्धी रविगति कालोत्पन्नासु जोड़ने से एक सावनान्तर्गत नाक्षत्र दिन होगा, यथा

१ नाक्षत्रदिन+रविगति कलोत्पन्नासु=१ सावनान्तर्गत नाक्षत्रकाल, एवं दो दिनों में २ नाक्षत्रदिन+२ दिन सम्बन्धी गति योगासु=२ सावन दिनान्तर्गत नाक्षत्रकाल, इस तरह जिस इष्ट दिन में नाक्षत्रकाल का प्रयोजन हो उस इष्टदिन संख्यक नाक्षत्रदिन में इष्टदिन सम्बन्धी गति योगकला सम्बन्धी असु जोड़ने से इष्टदिनान्तर्गत नाक्षत्रकाल होगा। इस नियम से एक वर्ष में नाक्षत्र काल कितने होंगे इसका विचार करते हैं। वर्षान्तर्गत सावन संख्या तुल्य नाक्षत्र दिनों में एक वर्ष सम्बन्धी रविगतियोग १२ राशि के बराबर होता है अर्थात् क्रान्तिवृत्त के बराबर होता है इसलिये एतदुत्पन्नासु प्रमाण एक नाक्षत्रदिन होता है, "अतः १ वर्षान्तर्गत सावन संख्या में एक जोड़ने से एक वर्षान्तर्गत भभ्रम होगा यथा १ वर्षान्तःपाति सावनसं+१=१ वर्षान्तःपाति भभ्रम, अब अनुपात से युग में भभ्रम लाते हैं यथा एक वर्ष में एक वर्षान्तःपाति भभ्रम पाते हैं तो युग वर्ष में क्या इस अनुपात से युग भभ्रमआगया, $\text{युगभभ्रम} = \frac{(\text{१वर्षान्तः पातिसावनसं}+\text{१ युगवर्ष}}{\text{१}}$ = १ वर्षान्तः पाति-भभ्र × युगव

=वर्षान्तःपाति सावनसं × युगवर्ष + युगवर्ष = वर्षान्तःपातिभभ्रम × युगवर्ष = युग सावनसं + युगवर्ष = युगकुदिन + युगवर्ष = युगभभ्रम

=१५८२२३७५६४,

पहले के स्वरूप से युगकुदिन+युगवर्ष=युगभभ्रम पर रवियुगभगण=युगरविवर्ष

∴ युगकुदिन+युगरविभगण=युगभभ्रम

∴ युगभभ्रम—युगरविभगण=युगकुदिन=युगरविसावन

इसी तरह युगभभ्रम—युगग्रहभगण=युगग्रहकुदिन

इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥ १ ॥

भगण विवरशिष्टा ये द्वयोस्तद्वियोगा
रविशशि भगणोत्थास्ते शशाङ्कस्य मासाः ।
दिनकरभगणा ये तानि वर्षाणि भानोः
ऋतुदिन निकरस्था भोदयाः प्राक् प्रदिष्टाः ॥ २ ॥

वि. भा. —रविशशिभगणोत्थाः (रविचन्द्रभगणोत्पन्नाः) ये वियोगाः (अन्तराणि) ते द्वयोः (रविचन्द्रयोः) भगणविवरशिष्टाः (भगणान्तरविशेषाः) शशाङ्कस्य मासाः (चान्द्रमासाः) भवन्त्यर्थाद्युग-रविचन्द्रभगणान्तरतुल्या युग-चान्द्रमासा भवन्तीति । ये दिनकर भगणाः (युगरविभगणाः) भानोः (सूर्यस्य) तानि वर्षाणि (सौरवर्षाणि) अर्थाद्युगे ये रविभगणास्तत्तुल्यान्येव रविवर्षाणि (सौरवर्षाणि) भवन्ति तैः सौरवर्षैः ऋतुदिननिकरस्था अर्थादृतुमास-दिनादीनां ज्ञानं भवति; भोदयास्तु प्राक् प्रदिष्टाः (पूर्वं कथिताः) ।

अत्र "भगण-विवरशिष्टा" इति शोभनं न प्रतिभाति ।

उपपत्तिः

यथामान्तकाले रविचन्द्रयोरन्तराभावः (अमान्ते रविचन्द्रयोरेकत्र स्थितत्वात्) तदनन्तरं रविचन्द्रयोश्चलनेन चन्द्रगतेराधिक्यात्पूर्वामान्तविन्दौ गत्वाऽग्रे पुनरपि चन्द्रो रविणा सहयोगं करिष्यति तदा द्वितीयामान्तकालो भवेत्, प्रथमामान्ताद् द्वितीयामान्तं यावच्चान्द्रमासः । तत्र चन्द्रगतिः=१२ राशि+रविगति=१ चं भगण+रविगति; अत एकस्मिश्चान्द्रमासे रविचन्द्रगत्यन्तरम्= चंग—रविग=१ चंभगणः । ततोऽनुपातो यद्येकचन्द्रभगणतुल्यं रविचन्द्रयोर्गत्यन्तरं यदा भवेत्तदैकश्चान्द्रमासस्तदा युगीयगत्यन्तरेण (युगभगणान्तरेण) किं समागच्छन्ति रविचन्द्रभगणान्तरतुल्याश्चान्द्रमासा इति ।

युगे यावन्तो रविभगणास्तावन्त्येव युगवर्षाणि=युगसौरवर्षाणि । अन्यत्-सर्वं स्फुटमेवेति ॥ २ ॥

हि. भा.—रवि और चन्द्र के युग में जो भगण है उनका अन्तर तुल्य युगचान्द्रमास होता है । युग में जितने रविभगण हैं उतने ही युग रविवर्ष वा युग सौरवर्ष होते हैं, उसीसे ऋतु, मास, दिनों का ज्ञान होता है और भभ्रम तो पहले कहे जा चुके हैं ॥२॥

उपपत्ति ।

अमान्त काल में रवि और चन्द्र एक जगह रहते हैं इसलिये वहां (अमान्तकाल में) उनका अन्तराभाव होता है, बाद में दोनों के चलने से चन्द्रगति के अधिक होने के कारण चन्द्र पूर्व स्थान में (अभीष्ट विन्दु में) जाकर रवि के साथ योग करेंगे तो फिर दूसरा अमान्तकाल होगा, प्रथमामान्त से द्वितीयामान्त तक एक चान्द्रमास है, इसलिये एक चान्द्र-मास में चन्द्रगति=१२ राशि+रविगति=१ चंभगण+रविगति ∴ चंगति—रविगति =१ भगण

इस पर से अनुपात करते हैं कि एकभगण तुल्य रविचन्द्र गत्यन्तर में एक चान्द्रमास पाते हैं तो युगीय रविचन्द्र गत्यन्तर (युगीय रविचन्द्र भगणान्तर) में क्या, इस अनुपात से रविचन्द्र के युगभगणान्तर तुल्य युग चान्द्रमास आते हैं ∴ आचार्योक्त सिद्ध हो गया। युग में जितने रविभगण है उतने ही युग सौरवर्ष है यह स्पष्ट है। इति ॥ २ ॥

स्वग्रहोच्चभगणान्तरं जगुः स्वोच्चनीच परिवर्त्त संज्ञकम् ।
मासराशि विवरं शशीनयोर्यत्तदुक्तमधिमाससंज्ञकम् ॥ ३ ॥

वि. भा.—स्वग्रहोच्चभगणान्तरं (ग्रहभगणोच्च भगणयोरन्तरं) स्वोच्चनीचपरिवर्त्तसंज्ञकम् (शीघ्र केन्द्रभगण मानं) अर्थाद्युगे उच्चग्रह भगणान्तरतुल्याः केन्द्र भगणा भवन्ति, तथा शशीनयोः (चन्द्ररव्योः) मासराशिविवरं यत्तदधिमाससंज्ञकमर्थाच्चान्द्रमाससौरमासयोरन्तरमधिमास-संज्ञकमिति ॥

उपपत्तिः ।

मध्यग्रह—मन्दोच्च=मन्द केन्द्र
तथा मध्यग्र$_1$—मन्दोच्च$_1$=मध्यकेन्द्र$_1$ अनयोरन्तरम्=मध्यगति—मन्दोच्चगति=मन्दकेन्द्रगतिः ।

ततो युगे मध्यग्रहभगण—मन्दोच्चभगण=मन्दकेन्द्रभगण
एवमेव शीघ्रोच्चभगण—शीघ्रग्रहभगण=शीघ्रकेन्द्रभगण

अधिमासोपपत्तिः ।

अथैकसावन दिने चन्द्रगतिः=७९०′ । ३५″
रविगतिः=५९′ । ८″ अनयोरन्तरम्=७३१′ २७″
=१२° । ११′ । २७″

अथ यतः चंग—रविग=१२°=१ तिथिरतः सावन दिन पूर्त्तिकालात् प्रागेव चान्द्रदिनपूर्तिरिति ।

∴ चांदि <सादि <सौदि, ∵ सौदि=६०′

६० कला रविगतिर्यदा भवेत्तदा सौरदिनपूर्त्तिः । सावनदिन पूर्त्तिस्तु ५९′ । ८″ एतत्तुल्यरविगतावेवातो दिनसंख्यया सौदि <चांदि
∴ युग चान्द्रमास—युग सौरमास=युगाधिमास ।

हि. भा. —ग्रह और उच्च का भगणान्तरतुल्य केन्द्रभगण होता है और चान्द्रमास सौरमास का अन्तर अधिमास (मलमास) कहलाता है ॥३॥

उपपत्ति

ग्रह और उच्च का अन्तर केन्द्र कहलाता है ।

मध्यग्र—मन्दोच्च=मन्दकेन्द्र
मध्यग्र$_1$—मन्दोच्च$_1$=मन्दकेन्द्र$_1$ दोनों के अन्तर करने से

मध्यगति — मन्दोच्चगति = मन्दकेन्द्रगति, युग में मध्यग्रहभगण — मन्दोच्चभगण = मन्द के भगण, इसी तरह शीघ्रोच्चभगण — मन्दस्पष्टग्रहभगण = शीघ्रकेन्द्रभगण ॥

अधिमास की उपपत्ति

एक सावन दिन में चन्द्रगति = ७९०′। ३५″
रविगत = ५९′ । ८″ दोनों के अन्तर करनेसे ७३१′ । २७″
= १२° । ११′ । २७″

लेकिन जब चन्द्रगति — रविगत = १२° तब एक तिथि होती है, इसलिये सावन दिन पूर्तिकाल से पहले ही चान्द्रदिन पूर्तिकाल सिद्ध हुआ, ∴ चांदि < सादि < सौदि ∵ सौदि = ६०₁ अर्थात् रवि की गति जब ६०₁ होती है तो एक सौर दिन की पूर्ति होती है, और सावन दिन की पूर्ति ५९₁ । ८₁ इतनी रविगति में होती है, इसलिए संख्या करके सौदिसं < चांदिसं ∴ युगचांमास — युसौरमास = युगांधिमास ∴ सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरमाहुस्तिथिविलयान् नृसमां रविवर्षम् ।
पितृदिवसं विधुमासमिनाब्दं दितितनयामरवासरसंज्ञम् ॥ ४ ॥

वि. भा.—क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरं (सावनदिन चान्द्रदिनयोरन्तरं) तिथि विलयान् तिथिक्षयं—अवमं वा रविवर्षं (सौरवर्षं) नृसमां (मानववर्षं) विधुमासं (चान्द्रमासं) पितृदिवसं, इनाब्दं (सौरवर्षं) दितितनयामरवासर संज्ञम् (राक्षसदेवयोर्दिनम्) आचार्या जगुः । अर्थाच्चान्द्र सावन दिनयोरन्तरमवमदिनम् सौरवर्षं तुल्यं मानववर्षं पितृदिनं चान्द्रमासतुल्यं, सौरवर्षतुल्यं देवराक्षसयोर्दिनमाचार्याः कथयन्तीति ॥४॥

उपपत्तिः—

भूकेन्द्राच्चन्द्रकेन्द्रगतं सूत्रं पितृत्रिज्यागोले यत्रलग्नं तत्र कल्पितश्चन्द्रः पितृ ख मध्यं वा (तदूर्ध्वभागस्थानां पितृणाम्) तज्जनित नवत्यंशवृत्तं तत्क्षितिजम् पितृ ख मध्ये यदा रविर्गच्छे त्तदाऽमान्तकालस्तत्रैव चन्द्रस्य स्थितत्वात् । ऊर्ध्व ख स्वस्तिकगतेरवौ दिनार्धं भवति तेन सिद्धं यदमान्तकाले पितृदिनार्धं भवति, एवं यदा द्वितीयामान्तकालस्तदा पुनः पितृदिनार्धं भवेतदा प्रथमामान्ताद् द्वितीयामान्तं यावच्चान्द्रमासः = प्रथम-द्वितीय-पितृ-दिनार्ध कालान्तर, परं प्रथम द्वितीय पितृ दिनार्धकालान्तर = प्रथम-द्वितीयसूर्योदयान्तरकाल = १ अहोरात्र ∴ सिद्धं यत्पितृणामहोरात्रम् = एकचान्द्रमासः ।

अत आचार्योक्तं सिद्धम् । परमाचार्योक्त दिनार्धे काचित्त्रुटिरस्ति, यथा अथ पितृक्षितिजस्थे रवौ तदुपरि कल्पित चन्द्रप्रोतमिष्टवृत्तं कल्पित चन्द्रोपरि कदम्ब प्रोतवृत्तञ्च कृतं तदा क्रान्तिवृत्त कदम्ब प्रोतवृत्तेष्ट वृत्त जनित जात्यत्रिभुजे ∵ कर्णचापम् = ९०, ∴ कोटि चापम् = ९० अतस्तदुदयास्तकालयोः सदैव रवि-

चन्द्रान्तर =९० भवेदिति सिद्धम् (कल्पित चन्द्रगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्तयो योगि बिन्दोश्चन्द्रत्वात्) अतः कृष्णपक्षसप्तम्यर्धे (सार्धसप्तम्याम्) उदयः शुक्लपक्ष सार्धसप्तम्यामस्तो ज्ञेयः। यदा र~चं=६ राशि तदा पूर्णिमायां रात्र्यर्धम्। तस्मिन् अमान्ते च दिनार्धम्। परमेवं दिनरात्र्यर्धे तदैव यदा कल्पित चन्द्रकेन्द्रगतं कदम्ब-प्रोतवृत्तं याम्योत्तरवृत्तमेव भवेत्। अतस्तस्य क्वाचित्कत्वात् याम्योत्तरवृत्तात् कल्पितचन्द्रगतं कदम्ब प्रोतवृत्तं क्रान्तिवृत्ते पूर्वे पश्चिमे वा लगेत् तदेव चन्द्रस्थानम्। तस्मिन् स्थाने यदा रविरागच्छेत्तदाऽमान्तकालोऽतः अमान्तकाल±आयनदृक्कर्म-कलासु=वास्तवदिनार्धम्। पूर्वं दिनार्धसम्बन्धेन यत्पितॄणामहोरात्रं प्रदर्शितं तन्न समीचीनं दिनार्धकालस्यावास्तवत्वात् ॥४॥

हि.भा.—चान्द्रदिन सावन दिनों का अन्तर क्षयदिन होता है। सौरवर्षतुल्य मानववर्ष होता है, पितरों का दिन (अहोरात्र) एक चान्द्रमास के बराबर होता है। और देव तथा राक्षस का अहोरात्र एक सौरवर्ष के बराबर होता है।

उपपत्ति।

भूकेन्द्र से चन्द्रकेन्द्रगत सूत्र पितृ त्रिज्या गोल में जहां लगता है वहा पितरों का खस्वस्तिक या कल्पित चन्द्र है। उसको केन्द्र मानकर नवत्यंशव्यासार्ध से जो वृत्त होगा वही पितृक्षितिज वृत्त है। पितृ खस्वस्तिक में जब रवि जायंगे तब पितरों का दिनार्ध होगा वही अमान्तकाल भी है इससे सिद्ध होता है कि पितरों का दिनार्धकाल अमान्त में होता है, एवं जब द्वितीय अमान्त होगा तब फिर पितरों का दिनार्ध होगा तब

प्रथमामान्तकाल से द्वितीयामान्तकाल तक काल=१ चन्द्रमास=प्रथम पितृ दिनार्ध-काल द्वितीयपितृदिनार्धकालान्तर

पर प्रथम द्वितीयदिनार्धकालान्तर=प्रथमद्वितीयसूर्योदयान्तरकाल=अहोरात्र

∴ सिद्ध हुआ कि पितरों का अहोरात्र प्रमाण (पितृदिन) चान्द्रमास के बराबर होता है॥

इनमें पितृदिनार्धकाल ठीक नहीं है यथा—

पितृक्षितिज में जब रवि है तब रविकेन्द्र और कल्पित चन्द्रकेन्द्रगत इष्टवृत्त कर देना, कल्पित चन्द्र के ऊपर कदम्ब प्रोतवृत्त कर दीजिये तब क्रान्तिवृत्त कदम्ब प्रोतवृत्त-इष्टवृत्तों से जो चापीय जात्य त्रिभुज बनता है उसमें ∵ कर्णचाप=९० ∴ कोटिचा=९० ∴ पितरों के उदय और अस्तकाल में र~चं=९०=रविचन्द्रान्तरांश, बराबर होगा, ∴ कृष्णपक्ष की साढ़े सप्तमी में उनका उदय होता है शुक्लपक्ष की साढ़े सप्तमी में अस्त होता है जब र~चं =६ राशि तब पूर्णिमा में रात्र्यर्ध (दोपहररात्रि) होता है। अमान्तकाल में दिनार्ध होता है, लेकिन इस तरह दिनार्ध और रात्र्यर्ध तब ठीक होगा जब कल्पित चन्द्रकेन्द्रगत कदम्ब प्रोत-वृत्त याम्योत्तरवृत्त ही होगा। ऐसी स्थिति कभी हो सकती है इसलिए कल्पितचन्द्र केन्द्रगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में याम्योत्तरवृत्त से पूर्व या पश्चिम में लगेगा वही चन्द्रस्थान है। वहां जब रवि आजायंगे तो अमान्तकाल होगा, अतः आमन्तकाल±आयनदृक्कर्मकलासु =वास्तवदिनार्ध, दिनार्धकाल के अवास्तविक होने के कारण पितरों का अहोरात्र प्रमाण भी ठीक नहीं है यह सिद्ध हुआ ॥४॥

अथ देवासुरदिनोपपत्तिः

उत्तरध्रुवो देव खस्वस्तिकम् । दक्षिणध्रुवश्च राक्षस खस्वस्तिकम् । ध्रुवोत्पन्ननवत्यंशवृत्तं (नाडीवृत्तं) तयोः क्षितिजम् । तदुत्तरे रविर्यदा मेषात्कन्यान्तं यावत्तावद्देवदिनमसुरनिशा च, एवं नाड़ीवृत्ताद्दक्षिणे रवौ तुलादेर्मीनान्तं यावत्तावद्देव निशाऽसुरदिनं च भवति । अतः सौरवर्षतुल्यं रविचक्रभोगकालमानं देवासुराणामहोरात्रं भवतीति । वस्तुतस्तु १ चक्रभोगकाल—तयोर्द्युरात्रान्तकालिकायनगत्युत्पन्नकाल=वास्तवं द्युरात्रम् परमाचार्येणायनगत्युत्पन्नकाल= ० कल्पितोऽतस्तज्जन्या त्रुटिरत्र ज्ञेयेति ॥४॥

हि. भा.—देवों का ऊर्ध्व खस्वस्तिक उत्तरध्रुव है । राक्षसों का ऊर्ध्वखस्वस्तिक दक्षिण ध्रुव है । नाड़ीवृत्त दोनों (देव, राक्षस) का क्षितिजवृत्त है, जब रवि मेषादि से कन्यान्त तक रहेगे तब नाड़ीवृत्त से ऊपर होने के कारण ६ महीनों का देव दिन होगा, और ६ महीनों की राक्षसरात्रि होगी । इसी तरह जब रवि तुलादि से मीनान्त तक रहेंगे तो ६ महीनों की देवरात्रि और ६ महीनों का राक्षसदिन होगा ।

∴ देवों और राक्षसों का अहोरात्रमान=दिन+रात्रि=१ रविभगणभोगकाल =१ सौरवर्ष

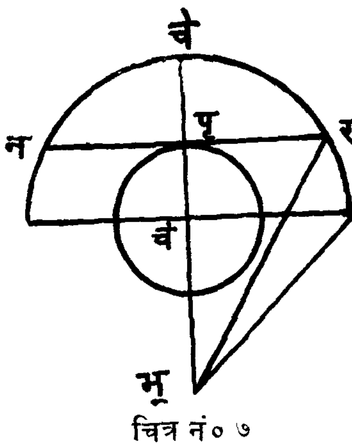
अतः आचार्योक्त सिद्ध हुआ ।

पर यहाँ १ चक्रभोगकाल—अहोरात्रान्तकालिक अयनांशगत्युत्पनकाल=वास्तव-अहोरात्रमान

लेकिन आचार्य ने ऋणखण्ड को शून्य मान लिया है । इसलिये एक सौरवर्ष तुल्य देव, राक्षस का" अहोरात्रमान जो कहा गया है सो स्थूल है, यह सिद्ध हुआ ॥४॥

पूर्वोपपत्तौ लिखितं यत्कृष्णपक्षसार्धसप्तम्यां पितृणामुदयकालः शुक्ल–पक्षसार्धसप्तम्यामस्तकालो भवति । परमिति न भवति यथा—

भूकेन्द्राच्चन्द्रकेन्द्रगता रेखा वर्धिता यत्र चन्द्रपृष्ठे लग्ना तद्बिन्दुतश्चन्द्रगर्भक्षितिजसमानान्तरधरातलं कार्यं तत्पितृपृष्ठक्षितिजधरातलम् । एतद्यत्र रविकक्षायां लगति तत्र यदि रविर्भवेत्तदा पितृणामुदयकाल स्यात् । रविबिन्दौ भूकेन्द्राद्रेखा नेया तदैकं त्रिभुजमुत्पन्नं, भूकेन्द्राद्रवि यावद्रविकर्ण एको भुजः । भूकेन्द्राच्चन्द्रपृष्ठं यावत् (चन्द्रकर्ण+चन्द्रव्यासार्ध) द्वितीयो भुजः । पृष्ठक्षितिजधरातले रवितश्चन्द्रपृष्ठं यावत्तृतीयो भुजोऽस्मिन् जात्यत्रिभुजेऽनुपातः क्रियते, यदि रविकर्णेन त्रिज्या लभ्यते तदा (चंक+चंव्या $\frac{1}{2}$)ऽनेन किमित्यनुपातेन समागता सितवृत्तीयान्तर कोटिज्या तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{त्रि० (चंकर्ण+चंव्या } \frac{1}{2})}{\text{रविक}}$.



चित्र नं० ७

पृ = चन्द्रपृष्ठस्थानम् ।
चं = चन्द्रकेन्द्रम् ।
भू = भूकेन्द्रम् ।
रपृन = पितृपृष्ठक्षितिजम् ।
$च_1$ = रविगोले परिणतचन्द्रः ।
$रच_1न$ = रविगोलीय सितवृत्तम् ।
र = रविः ।
भूर = रविकर्णः ।
भूपृ = चन्द्रक + चं व्या $\frac{1}{2}$ ।
भूचं = चन्द्रकर्णः ।
चंपृ = चन्द्र व्या $\frac{1}{2}$

अस्याश्चापं नवतेर्विशोध्यं तदा रविचन्द्रयोः सितवृत्तीयान्तरांशा भवेयुः ९०—चाप = सितवृत्तीयान्त-रांशास्ततो भक्ता व्यर्कविधोर्लवा-यमकुभिरित्यादिना

गततिथिः $= \frac{९० — चाप}{१२} = ७\frac{१}{२} - \frac{चाप}{१२}$

एतेन सिद्धं यद्यदा पितॄणामुदय कालस्तदा तत्कालीनतिथिप्रमाणम् $= ७\frac{१}{२} - \frac{चाप}{१२}$ तेन कृष्णपक्ष सार्ध-सप्तम्यामुदयो न भवितुमर्हति किन्तु सार्धसप्तम्यां चापस्य द्वादशांश विशो धनेन यद्भवति तत्रोदयो भवेत् । एव-मस्तेऽपि विचारः कार्यः । एतावता "कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेत्यादि" भास्करेण यदुक्तं तन्न समीचीनमिति सिद्धम् उपर्युक्तखण्डनं म. म. सुधा-करद्विवेदिना कृतमस्ति ।

परमत्रापि त्रुटिरस्ति यत उपर्युक्तोपपत्तौ सितवृत्तीयान्तरवशेन गततिथि-प्रमाणमानीतं तन्नोचितम्, क्रान्तिवृत्तीय रविचन्द्रान्तरवशेन गततिथिप्रमाणं समुचितं भवितुमर्हति । तर्हि वास्तवानयनं कथं भवेदिति विचार्यते । पूर्वयुक्त्या सितवृत्तीयान्तर ज्ञानमस्ति तदा सितवृत्तीयान्तर क्रान्तिवृत्तीयान्तर शरचापैर्य-च्चापीय जात्यत्रिभुजं तत्र कर्णभुज-चापयोर्ज्ञानात्

भुजकोटिज्या × कोटिकोटिज्या = त्रि × कर्णकोज्या
= शरकोज्या × क्रांवृत्तीयान्तरकोज्या = त्रि × सितवृत्तीयान्तरकोज्या

$\therefore \frac{त्रि \times सितवृअं कोज्या}{शरकोज्या}$ = क्रांवृत्तीयान्तरकोज्या, अस्याश्चापं नवतेर्विशोध्यं

तदा क्रान्तिवृत्तीयान्तरांशा भवेयुस्ततस्तिथिज्ञानं सुगममिति ॥

हि. भा. —पूर्व कथित उपपत्ति में कहा गया है कि कृष्ण पक्ष की साढ़े सप्तमी में

पितरों का उदयकाल होता है और शुक्ल पक्ष की साढ़े सप्तमी में अस्तकाल होता है लेकिन यहठीक नहीं है। जैसे —

(क) क्षेत्र देखिये।
पृ = चन्द्रपृष्ठ स्थान
चं = चन्द्रकेन्द्र।
भू = भूकेन्द्र
$च_1$ = रविगोल में परिणतचन्द्र
$रचन_1$ = रविगोलीय सितवृ
र = रवि। भूर = रविकर्ण
भूचं = चन्द्रकर्ण।
चंपृ = चन्द्रव्या $\frac{1}{2}$

भूकेन्द्र से चन्द्रकेन्द्र गत रेखा को बढ़ाने से चन्द्रपृष्ठ में जहाँ लगती है उस बिन्दु से चन्द्रगर्भ क्षितिज धरातल के समानान्तर धरातल कर देने से वह धरातल रवि कक्षा में जहाँ लगता है वहां रवि के रहने से पितरों का उदयास्त होता है। भूकेन्द्र से उस बिन्दु में (रवि में) रेखा ले आने से एक त्रिभुज बनता है। भूर = रविकर्ण, भूपृ = चन्द्रकर्ण + चंव्या $\frac{1}{2}$ भूपृर त्रिभुज में = अनुपात करते हैं

$$\frac{त्रि \times (चन्द्रकर्ण + चंव्या \frac{1}{2})}{रविकर्ण} = ज्या < भूरपृ = सितवृत्तीयान्तर\ कोटिज्या$$

इसका चाप करने से सितवृत्तीयान्तर कोटि = चाप, नवत्यंश में घटाने से ९० — चाप = सितवृत्तीय रविचन्द्रान्तरांश अब इस पर से भक्ता व्यर्कविधोर्लवा इत्यादि से गत-तिथि प्रमाण आ जायगा $\frac{९० — चाप}{१२} = ७\frac{१}{२} — \frac{\frac{१}{२} \cdot चाप}{१२}$ ६ इससे सिद्ध होता है कि जब पितरों के उदयकाल मान कर तिथ्यानयन करते हैं तो साढे सप्तमी में $\frac{चाप}{१२}$ ऋण आता है। इसलिये "कृष्ण पक्ष के साढ़े सप्तमी में उदयकाल कहना ठीक नहीं है। एवं शुक्ल पक्ष के साढ़े सप्तमी में अस्तकाल भी कहना ठीक नहीं होता है। भास्कराचार्य यही बात "कृष्ण पक्ष के साढ़े सप्तमी में पितरों का उदय और शुक्ल पक्ष के साढ़े सप्तमी में अस्त होता है" कहते हैं जिसका खण्डन उपर्युक्त रीति से म. म. सुधाकर द्विवेदी ने किया है। परन्तु इनके खण्डन में भी त्रुटि है उपर्युक्त खण्डन में सितवृत्तीय रवि चन्द्रान्तरांश वश से जो तिथ्यानयन किया गया है सो ठीक नहीं है क्रान्तिवृत्तीय रविचन्द्रान्तरांश को बारह से भाग देने से गततिथि प्रमाण ठीक होता है। तब वास्तवानयन कैसे होगा इसके लिये विचार। पूर्व युक्ति से सित-वृत्तीयान्तरांश जान कर सितवृत्तीयान्तरांश. क्रान्तिवृत्तीयान्तरांश, शर इन कर्ण, कोटि, भुज-चापों से जो चापीय जात्यत्रिभुज बनता है उसमें

$$भुजकोटिज्या \times कोटिकोटिज्या = त्रि \times कर्णकोटिज्या$$

$$शरकोज्या \times क्रांवृअंकोज्या = त्रि \times सिवृअंकोज्या$$

$$\therefore \frac{त्रि \times सिवृअंकोज्या}{शरकोज्या} = क्रांवृअंकोज्या$$ इसके चाप को नवत्यंश में घटाने से क्रान्ति — वृत्तीयान्तरांश होगा, इस पर से तिथ्यानयन करना चाहिये।। इति।।

सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण कुत्र सदोदितरविदर्शनं भवेदेतदर्थं बहु प्रतिपादित-मस्ति, प्रसङ्गाद-त्रोच्यते। कस्मिन् देशे दृश्यांशवशेन सदा रविदर्शनं भवेदिति विचार्यते।

स्वाधोनिरक्षखस्वस्तिक स्वाधः खस्वस्तिकयोरन्तरमक्षांशाः। तत्र यद्य-क्षांशाः = जिनांश + कुच्छन्नकला तत्राऽधोनिरक्षखस्वस्तिकादुत्तररविपरमगमन-प्रान्तबिन्दुतो भूबिम्बस्य स्पर्शरेखा तदूर्ध्वाधररेखायाः समान्तरा तेन तयोर्योगा-भावादूर्ध्वाधररेखायां न कोऽपि तादृशो बिन्दुर्यत्स्थितो द्रष्टा सदा रविमवलोकयेत्।

अथ यत्र अक्षांशाः > जिनांश + कुच्छन्नकला तत्र परमरविगमनप्रान्त बिन्दुतोऽधः खस्वस्तिकं यावत् = कुच्छन्नकला। तत्र तत्परमरविगमनप्रान्त बिन्दुतो भूबिम्बस्य या स्पर्शरेखा साऽवश्यं तदूर्ध्वाधरसूत्रेण मिलति तत्र तद्योग-बिन्दुगत द्रष्टुः सदा रविदर्शनं भवेत्।

यतस्तत्र अक्षांशाः > जिनांश + कुच्छन्नकला अतो लम्बांशाः =

९० — अक्षांश < ९० — (जिनांश + कुच्छन्नकला) = ६६ — कुच्छन्नकला

उभयत्र २४ योजनेन

लम्बांश + २४ < ६६ — कुच्छन्नकला + २४ = ९० — कुच्छन्नकला = कुच्छन्नकोटिः

अर्थात् लम्बांश + २४ < कुच्छन्नकोटि

एतेन सिद्धं यल्लम्बांशचतुर्विंशत्यंशयोर्योगतुल्यैर्दृश्यांशकै कुच्छन्नकोट्य-ल्पकैर्यद्दृष्टिस्थानं भवेत्तद्वशेन सदैव रविदर्शनं भवेदिति ॥

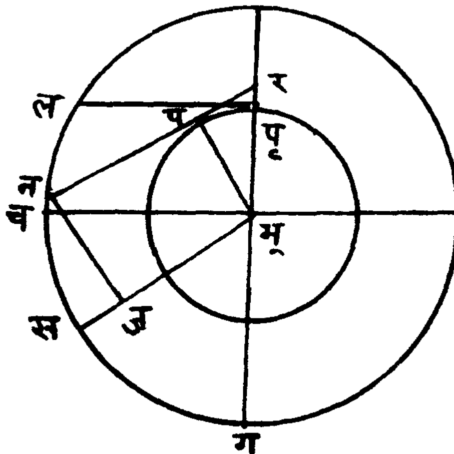
एतावता

कुच्छन्न कोट्यल्पक दृश्यकांशोद्भवैः स्वदृक्चिह्नजयोजनैश्च।
सर्वाक्षिदेशेऽपि कुगर्भभूजादधः स्वतद्दृश्यलवैः समन्तात् ॥
अस्ति खगेन्द्राश्रित गोलमध्ये सन्दर्शनं यत्तदपीह चित्रम्।
कुच्छन्नकोट्यल्पक दृश्यकांशैरुक्तं कुगर्भ क्षितिजादधः स्थैः ॥

कमलाकरोक्तमुपपद्यते।

अत्रैव यदि दृश्यांशा गर्भक्षितिजादुपरिगतास्तदा कथं तदुपपत्तिरिति विचार्यते।

(क)



चित्र नं० ८

भू = भूकेन्द्रम्। पृ = भूपृष्ठ-स्थानम्

लच = कुच्छन्नचापम् = नस

नच = दृश्यांशाः।

कुच्छन्न — दृश्यांश = नस — नच = चस, चग = ९०

अतः ९० — चस = ९० — (कुच्छन्न — दृ) = सग = < सभूग = < नरभू

ततः पभूर त्रिभुजेऽनुपातः

$$\frac{\text{भूव्या}\,\frac{1}{2}\times\text{त्रि}}{\text{ज्या}<\text{परभू}} = \text{भूर ततः भूर}-\text{भूपृ} = \text{भूर}-\text{भूव्या}\,\frac{1}{2} = \text{पृर} = \frac{\text{भूव्या}\,\frac{1}{2}\times\text{त्रि}}{\text{ज्या}<\text{परभू}} - \text{भूव्या}\,\frac{1}{2}:$$

$$= \frac{\text{भूव्या}\,\frac{1}{2}\times\text{त्रि}}{\text{कुच्छन्न दृश्यांशान्तर कोज्या}} - \text{भूव्या}\,\frac{1}{2} = \text{पृर}$$ । एतद्वशतो दृश्यांशज्ञानमपि सुबोधमत एतावता कमलाकरोक्तसूत्रावतारः ॥इति ॥४॥

ऊर्ध्वस्थिता दृश्यलवा यदि स्युः कुच्छन्न भागानधिकास्तदानीम् ।
कुच्छन्न-दृश्यांश-वियोग-कोटिज्यया हृतं त्रिज्यकया विनिघ्नम् ।

कुखण्डकं तत्तु कुखण्डकोनं कुपृष्ठतोऽप्यूर्ध्वगदृष्टि-चिन्हम् ॥ इति ॥४॥

हि. भा.—सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कमलाकर ने कहां पर बराबर (सदा) रविदर्शन होता है इसके सम्बन्ध में बहुत उपपादन किया है, प्रसङ्ग से यहाँ कहते हैं ।

किस देश में दृश्यांश वश करके सदैव रविदर्शन होता है इसके लिये विचार करते हैं । वहाँ अधो निरक्ष खस्वस्तिक और स्वाधः खस्वस्तिक के अन्तर अक्षांश है । वहां यदि अक्षांश = जिनांश + कुच्छन्नकला तब अधोनिरक्ष खस्वस्तिक से उत्तर तरफ रवि के परम गमन प्रान्त बिन्दु से भूबिम्ब की जो स्पर्शरेखा होगी वह ऊर्ध्वाधर खस्वस्तिक गतरेखा की समानान्तर होती है । इसलिये दोनों के योगाभाव से ऊर्ध्वाधर सूत्र में कोई भी ऐसा बिन्दु-नहीं है जहां पर दृष्टिस्थान रख कर द्रष्टा सदा रवि को देखे ।

जहां अक्षांश > जिनांश + कुच्छन्नकला वहां परमरविगमनप्रान्तविन्दु और अधो खस्वस्तिक के अन्तर = कुच्छन्नकला अतः वहां परमरविगमनप्रान्तविन्दु से भूबिम्ब की ज स्पर्शरेखा होगी वह ऊर्ध्वाधर सूत्र के साथ अवश्य मिलेगी, उस योग बिन्दुगत द्रष्टा को बराबर रवि दर्शन होगा ।

वहां अक्षांश > जिनांश + कुच्छन्नकला अतः लम्बांश = (९० — अक्षांश < ९० — (जि + कुक)

वा लम्बांश < ६६ — कुच्छन्नकला दोनों में २४ जोड़ने से

लम्बांश + २४ < ६६ — कुच्छन्नकला + २४ = ९० — कुच्छन्नकला = कुच्छन्नकोटि

अर्थात् लम्बांश + २४ < कुच्छन्नकोटि

इससे सिद्ध होता है कि कुच्छन्नकोटि से अल्प लम्बांश + २४ एतत्तुल्य दृश्यांशवश से जो दृष्टिस्थान होगा उसके वश से बराबर रविदर्शन होगा ॥ इससे कमलाकरोक्त सूत्र उपपन्न हुआ ।

कुच्छन्नकोट्यल्पक दृश्यकांशोद्भवैः इत्यादि ।

यहां यदि दृश्यांश गर्भ क्षितिज से ऊर्ध्वस्थित होंगे तब उपपत्ति कैसे होगी सो दिखलाते हैं (क) क्षेत्र देखिये। भू = भूकेन्द्र। पृ = पृष्ठस्थान। लच = कुच्छन्नकला = नस। नच = दृश्यांश, कुच्छन्नकला — दृश्यांश = नस — नच = सच। चग = ९० ∴ ९० — स च = ९० — (कुच्छन्न — दृश्यांश) = सग = < स भूग = < नरभू

अब परभू त्रिभुज में अनुपात करते हैं $\frac{\text{भूव्या} \frac{1}{2} \times \text{त्रि}}{\text{ज्या} < \text{परभू}}$ = भूर ∴ भूर — भूपृ = पृर = भूर — भूव्या $\frac{1}{2}$

$$= \frac{\text{भूव्या} \frac{1}{2} \times \text{त्रि}}{\text{कुच्छन्न दृश्यांशान्तर कोज्या}} - \text{भूव्या} \quad \frac{1}{2} = \text{पृर}$$

इसके वश से दृश्यांश ज्ञान भी सुलभ है ॥ ऊर्ध्वस्थिता दृश्यलवा यदि स्युः इत्यादि।

इदानीं बार्हस्पत्यवर्षवर्णनं करोति।

गुरुभगणाऽब्दर्क वधोब्दगणः स्यात्त्रिदशगुरोर्विजयाश्विनपूर्वः।
द्विगुणितपर्यय संयुतिरुक्ता दिनकरचन्द्रमसोऽर्थनिपाताः ॥५॥

वि. भा. —गुरुभगणार्कवधः (बृहस्पतिभगणद्वादशघातः) त्रिदशगुरोः (बृहस्पतेः) विजयाश्विनपूर्वः (विजयादिनामकषष्टिः, आश्विनादिनामक द्वादश वा) अब्दगणः स्यात् (वर्षसमूहो भवेत्) अर्थाद्बृहस्पतिभगणा द्वादशगुणास्तदा विजयादिनामकानि षष्टिबार्हस्पत्य वर्षाणि वा, आश्विनादिनामकानि द्वादशबार्हस्पत्यवर्षाणि भवन्ति। तथा दिनकरचन्द्रमसोः (सूर्यचन्द्रयोः) द्विगुणित पर्यय-संयुतिः (द्विगुणित भगणयोगः) अर्थनिपातः (अर्थनिपातसंज्ञकाः) उक्ताः (कथिताः) अर्थात् रविचन्द्रयोर्द्विगुणित भगणयोगस्य नामार्थनिपात इति।

बृहस्पतेर्मध्यगत्यैकराशिभोगकालो बार्हस्पत्यवर्षमिति सर्वैः सिद्धान्तग्रन्थकारैः प्रतिपादितोऽस्ति यथा मध्यगत्याभभोगेन गुरोर्गौरववत्सरा इति।

तथा "बृहस्पतेर्मध्यम राशिभोगात्सम्वत्सरं सांहितिका वदन्ति" (भास्करः) एतदादिकान्यनेकानि तत्साधकवचनानि सन्ति। अत्राचार्येण गुरुभगणा द्वादशगुणास्तदा राश्यादिकानि तत्प्रमाणानि भवन्ति, तान्येव विजयादिकानि बार्हस्पत्यषष्टिवर्षाणि, आश्विनादिद्वादशवर्षाणि वा" कथ्यन्ते परमन्यैराचार्यैः सूर्यसिद्धान्तकारादिभिरितोऽधिकानि तत्सम्बन्धे प्रतिपादितानि यथा सूर्यसिद्धान्ते—

"द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणावर्त्तमानकैः।
राशिभिः सहिताः शुद्धा षष्ट्या स्युर्विजयादयः"

गुरोर्गतभगणा द्वादशगुणास्तदा राश्यादिका भवन्ति तत्र वर्त्तमानगुरुराशियोजनेन षष्ट्याभक्तेन च शेषाणि विजयादिषष्टि-संख्यक-गुरुवर्षाणि भवन्ति, सृष्ट्यादौ विजयवर्षसद्भावाद्विजयादितो गणना समुचितेति ॥५॥

हि. भा. —गुरु भगण को बारह से गुणने से विजयादि नाम के साठ वा आश्विन आदि नाम के बारह बार्हस्पत्यवर्ष होते हैं। रवि और चन्द्र के द्विगुणितभगण योग "अर्थ-निपात" संज्ञक कहा गया है।

गुरु (बृहस्पति) की मध्यमगति द्वारा एक राशिभोगकाल बार्हस्पत्यवर्ष होता है यह सब सिद्धान्तग्रन्थकारों का कहना है। यथा :—

मध्यगत्या भभोगेन गुरोर्गौरबवत्सरा इति

तथा "बृहस्पतेर्मध्यम-राशिभोगात्सम्वत्सरं सांहितिका वदन्ति" (भास्कर)

इसके सम्बन्ध में अनेक वचन हैं। यहां आचार्य (वटेश्वर) गुरुभगण को बारह से गुणने पर जो राश्यादिक उनका प्रमाण होता है उसीको विजयादि नामक साठ वा अश्विनादि-नामक बारह बार्हस्पत्य वर्ष कहते हैं। लेकिन सूर्यसिद्धान्तकारादि अन्य आचार्य इनसे और अधिक बातें इसके सम्बन्ध में कहते हैं। जैसे "द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्त्तमानकैः इत्यादि।

गुरु के गत भगणों को बारह से गुणने पर राश्यादिक होता है उसमें गुरु के वर्त्तमान राशिप्रमाण जोड़ने से साठ से भाग देने से शेष विजयादि साठ गुरु वर्ष होते हैं। सृष्ट्यारम्भ में विजय वर्ष रहने के कारण विजयादि से गणना उचित ही है ॥५॥

उत्सर्पिणी प्रथममेव युगार्धमुक्ता
ज्ञेया द्वितीयमपसर्पिणिकाभिधाना।
मध्ये युगस्य सुषमा खलु दुष्षमा स्या-
दाद्यन्तयोः कुमुदिनी वनबन्धुयोगात् ॥ ॥६॥

वि. भा. —युगस्य मध्ये, प्रथममेव युगार्धं (युगस्य पूर्वार्धं) उत्सर्पिणी (उत्सर्पिणी नामिका) उक्ता (कथिता) द्वितीयं युगार्धं (युगस्योत्तरार्धं) अपसर्पिणि-काभिधाना (अपसर्पिणी संज्ञका) ज्ञेया (बोद्धव्या) आद्यन्तयोः (तयोरादावन्ते च) कुमुदिनीवनबन्धुयोगात् (सूर्यसंयोगात्) ते पूर्वकथिते (उत्सर्पिणी-अपसर्पिणी नामके) सुषमा दुष्षमा चे (क्रमशः सुषम दुष्षमे चे) ति ज्ञेये ॥६॥

आर्यभटीये तु "उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च।

मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात्" इति पाठोऽस्ति। एतद्विषये युगस्य समभागद्वयं कृत्वा पूर्वार्धस्योत्सर्पिणी द्वितीयार्धस्यापसर्पिणीति संज्ञा जैनमतानुसारतः कृता, तथा युगस्य समभागत्रयं कृत्वाऽऽद्यन्तयोर्दुःसमा मध्यस्य च सुषमा संज्ञा चेति च प्रतिपादिता, अत्र व्याख्याकारैरिन्दूच्चादीनां कालभेदेन गतेर्भेदो भवतीत्याचार्यः कथयतीति व्याख्यानं मन्मते तन्न तथ्यं प्रसङ्गानुसारतोऽत्र ग्रहभगणादौ भेदप्रदर्शनानौचित्यात्। इन्दूच्चस्यैव पदस्य प्रयोगकरणे प्रमाणा-भावाच्च मन्मते तु "उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च। मध्ये युगस्य सुसमाऽऽदावन्ते दुःसमाग्न्यंशात्" इति पाठः साधुः स च लेखकाध्यापकाध्येतृ-दोषै-रन्यथाजात इति गणकतरङ्गिण्यां म. म. प. सुधाकर-द्विवेदिभिर्लिखितं तत्समीचीनं प्रतिभातीति ॥

हि. भा. —युग के मध्य में पहला युगार्ध (युग के पूर्वार्ध) उत्सर्पिणी नाम के हैं। दूसरा युगार्ध (युग के उत्तरार्ध) अपसर्पिणी नाम का समझना चाहिये। उन दोनों के आदि और अन्त में सूर्य के संयोग होने से वे ही (उत्सर्पिणी-अपसर्पिणी) क्रम से सुषमा और दुष्षमा कहलाती है।

आर्यभटीय में "उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च। इत्यादि

गणकतरङ्गिणी में म. म. पं. सुधाकर द्विवेदी जी लिखते हैं कि युग के समान द भाग करके पूर्वार्ध की उत्सर्पिणी परार्ध की अपसर्पिणी संज्ञा जैनमत के अनुसार की गई, और युग के समान तीन भाग करके आदि और अन्त की दुःसमा, मध्य की सुषमा संज्ञा कही गई है। यहाँ व्याख्याकार ने "चन्द्रमा के उच्चादियों के कालभेद से गति में भेद होता है यह आचार्य कहते हैं" इस तरह व्याख्या की है। मेरे मत में वह ठीक नहीं है, प्रसङ्ग के अनुसार यहाँ ग्रहभगणादि में भेद देखना अनुचित है। श्लोकोक्त पद्य में "इन्द्वन्च" पद का प्रयोग करने में प्रमाण नहीं है इसलिये ठीक नहीं है। मेरे मत में

"उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपसर्पिणी युगार्धं च। मध्ये युगस्य सुसमाऽऽदावन्ते दुःसमाग्न्यंशात्" यह पाठ ठीक है; यह पाठ लेखकों, अध्यापकों, पढ़ने वालों के दोषों से भि हो गया, यह द्विवेदीजी का कहना ठीक मालूम होता है॥

पूर्वकथित षष्टिसंख्यकानां बार्हस्पत्यवर्षाणां विजयादिकानां नामान्यधो-न्न लिखितक्रमेण ज्ञेयानि।

१	विजय	१३	विश्वावसु	२५	पिंगल	३७	शुक्ल	४९	वृष
२	जय	१४	पराभव	२६	कालयुक्त	३८	प्रमोद	५०	चित्रभानु
३	मन्मथ	१५	प्लवंग	२७	सिद्धार्थी	३९	प्रजापति	५१	सुभानु
४	दुर्मुख	१६	कीलक	२८	रौद्र	४०	अंगिरा	५२	तारण
५	हेमलम्ब	१७	सौम्य	२९	दुर्मति	४१	श्रीमुख	५३	पार्थिव
६	विलम्ब	१८	साधारण	३०	दुन्दुभि	४२	भाव	५४	व्यय
७	विकारी	१९	विरोधकृत्	३१	रुधिरोद्गारी	४३	युवा	५५	सर्वजित्
८	शर्वरी	२०	परिधावी	३२	राक्षस	४४	धाता	५६	सर्वधारी
९	प्लव	२१	प्रमादी	३३	क्रोधन	४५	ईश्वर	५७	विरोधी
१०	शुभकृत्	२२	आनन्द	३४	क्षय	४६	बहुधान्य	५८	विकृत
११	शोधन	२३	राक्षस	३५	प्रभव	४७	प्रमाथी	५९	खर
१२	क्रोधी	२४	नल	३६	विभव	४८	विक्रम	६०	नन्दन

युगपठितभगणेभ्यः कल्पीयभगणज्ञानं ततो ब्रह्मायुषि भगणज्ञानञ्चाह ।

(१)

यद्युगोत्थमिह पर्ययादिकं तद्भुजाभ्र गगनेन्दु (१०००) ताड़ितम् ।
कल्पजं खखनखग्रहाहतं तद्भवेत्कमलविष्टरायुषि ॥७॥

वि. भा. —इह (अस्मिन् ग्रन्थे) युगोत्थं (महायुगोत्पन्नं) यत्पर्ययादिकं (भगणादिकं) तत् भुजाभ्रगगनेन्दुभिः (१०००) ताड़ितं (गुणितं) तदा कल्पजं (कल्पोद्भवं) भगणादिकं भवेत् तथा कल्पजं भगणादिकं खखनखग्रहा (७२०००) हतं (७२०००) एभिर्गुणितं सन् कमलविष्टरायुषि (ब्रह्मायुर्दाये) भगणादिकं भवेदिति ॥७॥

(१) भुजाभ्रम् (शून्यद्वयम्)

हि. भा. —इस ग्रन्थ में युग में जो ग्रहादियों के भगणादि पठित है उनको १००० एक हजार से गुणने से कल्पसम्बन्धी भगणादि प्रमाण हो जायेंगे । और कल्पसम्बन्धी. भगणादि प्रमाणों को ७२००० इतने से गुणने पर ब्रह्मा की आयु में भगणादि प्रमाण होते है ॥७॥

उपपत्तिः

यदि युगवर्षैर्युगपठित भगणादिमानं लभ्यते तदा कल्पवर्षैः किमित्यनुपातेन

$$\text{कल्पे भगणादिमानम्} = \frac{\text{युगभगणादिमान} \times \text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}}$$

$$= \frac{\text{युगभगणादिमान} \times ४३२००००००}{४३२००००}$$

$=$ युगभगणादिमान $\times$ १००० $=$ कल्पभगणादिमान । अतः सिद्धं यद्युगपठित-भगणादिमानं १००० गुणितं तदा ब्रह्मायुषि भगणादिमानं भवेत् ।

अथ १००० युग $=$ १ ब्रह्मदि $=$ १ कल्प $\therefore$ २००० युग $=$ ब्रह्माहोरात्रम् ।

ततः २००० युग $\times$ ३६० $=$ १ ब्रह्मवर्ष परं ब्रह्मायुः $=$ १०० वर्ष

$\therefore =$ २००० यु $\times$ ३६० $\times$ १०० $=$ ब्रह्मायुः $=$ ७२०००००० युग

कल्पसम्बन्धिभगणादिमानं ब्रह्मायुष्यानीयते यथा

$$\frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times \text{ब्रह्मायुः}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times ७२००००००\ \text{युग}}{१०००\ \text{यु}}$$

$=$ कल्पभगणादिमान $\times$ ७२००० $=$ ब्रह्मायुषि भगणादिमानम् अतः सिद्धं यत्कल्पीय भगणादिमानं ७२००० गुणितं तदा ब्रह्मायुषि तन्मानं भवेत् । अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तम् ॥६॥

हि. भा. —युगपठित भगणादि मानों को कल्प में लाने के लिए अनुपात करते हैं, "यदि युग वर्ष में युगपठित भगणादिमान पाते हैं तो कल्पवर्ष में क्या" इस अनुपात से कल्प

में भगणादिमान $= \frac{\text{युगभगणादिमान} \times \text{कल्पवर्ष}}{\text{युगवर्ष}} = \frac{\text{युगभगणादिमान} \times ४३२००००००००}{४३२००००}$

$=$ युगभगणादिमान $\times$ १००० । इससे सिद्ध हुआ कि युग पठित भगणादिमानों को १००० से गुणने पर कल्प सम्बन्धी भगणादिमान होते हैं ।।

१००० युग = १ ब्रह्मदिन = १ कल्प ∴ २००० युग = १ ब्रह्माहोरात्र

परं ३६० अहोरात्र = १ वर्ष ∴ २००० युग $\times$ ३६० = १ ब्रह्मवर्ष

लेकिन ब्रह्मा की आयु = १०० वर्ष ∴ २००० यु $\times$ ३६० $\times$ १०० = ब्रह्मायु = ७२०००००० युग अब कल्प सम्बन्धी भगणादिमानों को ब्रह्मा की आयु में लाते हैं, जैसे —

$\frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times \text{ब्रह्मायुर्वर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{\text{कल्पभगणादिमान} \times ७२०००००० \text{ युग}}{१००० \text{ यु}}$

= ७२००० $\times$ कल्प भगणादिमान = ब्रह्मा की आयु में भगणादिमान । इससे सिद्ध हुआ कि कल्पसम्बन्धी भगणादिमानों को ७२००० इतने से गुणने से ब्रह्मा की आयु में उनके मान आजायेंगे ∴ आचार्य का कथन युक्तियुक्त है इति ।।६।।

अथ कालस्य नवमानान्याह—

आर्क्ष चान्द्रमस सौर सावन ब्राह्मजैव पितृदेव दैत्यजैः ।
काल एभिरनुमीयतेऽव्ययो येन माननवकस्य च व्ययः ।।८।।

वि. भा.—आर्क्ष चान्द्रमस सौरसावन ब्राह्मजैव पितृदेव दैत्यजैः (पूर्वकथितैरेभिः) मानैः अव्ययः(अविनाशी व्यापकः)कालः(समयः) अनुमीयते(अर्थादनाद्यनन्तस्य कालस्य यद्यपि विभागो न भवितुमर्हति तथापि लोकव्यवहारार्थं पूर्वोक्त नवमानद्वारा विभक्तकालस्य प्रतीतिर्भवति) येन माननवकस्य (पूर्वकथित नवधा कालमानस्य) व्ययो भवति (अर्थादव्ययकालस्यैतन्माननवकद्वारा व्ययो भवतीति)। अत्र "दैत्यजैः" अयं पाठोऽसाधुः प्रतिभाति (देवदैत्यजमानयोः समत्वात्) तेन (देवदैत्यजैः) अत्र देवमर्त्यजैरिति पाठः साधुः (अन्येषु सिद्धान्तग्रन्थेषु तथैवोक्तत्वात्" यथा सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करोक्तम्—

"एवं पृथङ्मानवदैवजैव पैत्र्यार्क्ष सौरैन्दव सावनानि ।
ब्राह्मं च काले नवमं प्रमाणं ग्रहास्तु साध्या मनुजैः स्वमानात्" ।।८।।

हि. भा.—नाक्षत्रमान, चान्द्रमान, सौरमान, सावनमान, ब्राह्म (ब्रह्मसम्बन्धी) मान, बार्हस्पत्यमान, पितृसम्बन्धी मान, देव-दैत्य सम्बन्धी मान इन्ही नौ प्रकार के कालमान से व्यापक (अव्यय) काल की कल्पना की जाती है । (यद्यपि जिस काल का न आदि है न अन्त है उसका विभाग करना असम्भव है तथापि व्यवहार के लिये उस अव्यय काल का व्यय (आरम्भ-अन्तादि) समझा जाता है । यहाँ, आचार्योक्त पद्य में "दैत्यजैः" यह पाठ असङ्गत मालूम पड़ता है क्योंकि देवों और दैत्यों के कालमान एक ही (बराबर) होने के

कारण देव कालमान से दैत्य कालमान का पृथक् पाठ नहीं हो सकता, दोनों (देव, दैत्य) मानों के एक होने के कारण आचार्योक्त पद्य से आठ ही कालमान आता है, इनमें आचार्य ने मानव मान को छोड़ दिया है दैत्यमान के स्थान पर मानवमान कहना चाहिये अर्थात् "दैत्यजैः" शब्द के स्थान पर "मर्त्यजैः वा मानवैः" होना चाहिये। अन्य ग्रन्थों में दैत्यमान नहीं कह कर मानवमान ही कहा गया है, जैसे भास्कराचार्य कहते हैं

"एवं पृथङ्मानवदैवजैव" इत्यादि ॥८॥

अथ सृष्टचारम्भकालवर्णनमाह।

त्रुटचादि पद्मोद्भव जीवितान्तः कालः समं तेन झषाजसन्धौ।
लङ्का कुजस्थ द्युचरैः प्रवृत्तो रवेर्दिने चैत्रसितादितोऽयम् ॥९॥

वि. भा.—त्रुटचादि पद्मोद्भवजीवितान्तः (त्रुटचादितो ब्रह्मायुःपर्यन्तं) यः कालः (समयः) तेन कालेन समं (सार्धं) लङ्का कुजस्थ द्युचरैः (लक्षाक्षितिजस्थैर्ग्रहैः) झषाजसन्धौ (रेवत्यन्ते) स्थितै रवेर्दिने चैत्र-सितादितः (चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदादितः) अयं (सर्वोऽपि कालः) प्रवृत्तो बभूवार्थात् "लङ्कायामर्कोदये चैत्रशुक्ल-प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ" सर्वेषां युगानां मन्वन्तराणां सौरादिमासानां वर्षाणां कल्पस्य चैककालावच्छेन प्रवृत्तिर्बभूवेति ॥९॥

हि. भा.—त्रुटचादि से ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कालों के साथ मीन मेष की सन्धि (रेवत्यन्त) में लङ्का क्षितिजस्थ ग्रहों के रहने पर रविदिन में चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भ से इन सब कालों की प्रवृत्ति हुई अर्थात् लङ्का के सूर्योदय काल में चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भ में रविवार अश्विन्यादि में सब युगादिमन्वन्तर-कल्प सौरादिवर्ष मासादि की प्रवृत्ति हुई। इति ॥९॥

अथ केषु कार्येषु केषां मानानामुपयोग इत्याह।

पर्वावमतिथि करणाधिमासक ज्ञान मैन्दवान्मानात्।
प्रभवाद्यब्दाः षष्टिर्युगानि नारायणादीनि ॥१०॥
अङ्गिरसादेतेषां ज्ञप्तिः पैत्र्याच्च पैतृको यज्ञः।
कामलजासुरदैवैस्तेषामायुःपरिच्छितिः ॥११॥

वि. भा.—पर्व (ग्रहणादिः) अवमं (तिथिक्षयः) तिथिः प्रसिद्धैव, करणानि (तिथ्यर्धरूपाणि) अधिमासः (मलमासः) एतेषां ज्ञानं ऐन्दवान्मानात् (चान्द्रमानात्) भवति, षष्टिः (षष्टिसंख्यकाः) प्रभवाद्यब्दाः (प्रभवादिवर्षाणि) नारायणादीनि (नारायणादि नामकानि) युगानि यानि सन्ति, एतेषां ज्ञप्तिः (ज्ञानं), अङ्गिरसात् (बार्हस्पत्यमानात्) भवति, पैत्रिकः (पितृसम्बन्धी) यज्ञः (श्राद्धादिः) पैत्र्यान्मानात् (पितृसम्बन्धिमानात्) कर्त्तव्यः। (कामलजासुरदैवैः (ब्राह्मदैत्य-दैवमानैः) तेषां (ब्रह्मदैत्यदेवानां) आयुःपरिच्छितिः (आयुर्गणना) कार्येति ॥ १०-११ ॥

हि. भा.—पर्व (ग्रहण आदि), तिथिक्षय, तिथि, करण (तिथ्यर्ध) मलमास, इन सब का ज्ञान चान्द्रमान से करना चाहिये. प्रभव आदि साठ वर्षों का और नारायण आदि नाम के युगों का ज्ञान बृहस्पति सम्बन्धी मान से करना चाहिये, पितृसम्बन्धी यज्ञ (श्राद्धादि), पितृसम्बन्धी मान (पैत्र्यमान) से करना चाहिये, ब्राह्ममान से ब्रह्मा की आयु गणना, आसुरमान और दैवमान से क्रमशः असुरों और देवों की आयु की गणना करनी चाहिये ॥१०-११॥

अध्ययन नियमसूतक मखगतयः सच्चिकित्सा च ।
होरामुहूर्तयामाः प्रायश्चित्तोपवासाश्च ॥ १२ ॥
आयुर्दायश्च नृणां गमनागमने च सावनान्मानात् ।
ऋत्वयनविषुवदब्दा युगं क्षयर्द्धी दिनस्य सौरात्स्युः ॥ १३ ॥

वि. भा.—अध्ययननियमाः (वेदवेदाङ्गपठनारम्भसम्बन्धिनियमाः) सूतकं (जननाशौचं मरणाशौचञ्च) मखगतयः (यज्ञसम्पादनविधयः), सच्चिकित्सा (शोभनरूपेण रोगिणामौषधादिप्रयोगारम्भः), होरा (लग्नं राश्यर्धं वा) मुहूर्ताः (शुभकार्यार्थमुचितसमयाः) यामाः (प्रहरादिविचाराः) प्रायश्चित्तमुपवासाश्च, नृणां (मनुष्याणां) आयुर्दायः (जीवनदैर्घ्यम्) गमनागमने (मनुष्याणां यातायातयोरुचितविचारः) इत्येषां ज्ञानं सावनमानाद्भवति । ऋतवो (वसन्तादयः) अयने (उत्तरायण-दक्षिणायने), विषुवद्दिनम् (मेषतुलसंक्रान्ती) अब्दाः (वर्षाणि) युगं (महायुगादिः) दिनस्य क्षयर्द्धी (दिनह्रासवृद्धी) सौरमानादेतेषां ज्ञानं भवतीति ॥ १२-१३ ॥

हि भा.—वेद-वेदाङ्गों के पठन सम्बन्धी नियम, जननमरणाशौच, यागादि धार्मिक कार्यों की विधि, अच्छी तरह रोगियों के लिये औषधि आदि का प्रयोग आरम्भ करना, होरा (लग्न वा राशि का आधा), किसी शुभ कार्यविशेष के लिये उचित समय, प्रहर का विचार प्रायश्चित्त और उपवास, मनुष्यों के आयुर्दाय, मनुष्यों के आने जाने के लिये समुचित विचार, ये सब बातें सावन मान से करनी चाहियें । ऋतु (वसन्तादि) अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) विषुवदिन (मेषसंक्रमण-तुलसंक्रमणदिन) वर्ष-युग, दिन का घटना, वढ़ना ये सब बातें सौरमान से कहनी चाहियें ॥ १२-१३ ॥

ज्याद्या विधयश्चार्क्षाच्छशधर भगणोद्भवाश्च नाक्षत्रात् ।
मासार्ध-वासराणां संज्ञाः सदसत्फलावगतिः ॥ १४ ॥

वि. भा.—ज्याद्या ज्यादीनां लक्षणानि तत्साधनानि च स्पष्टाधिकारे सन्ति तेन तानि तत्रैव ज्ञातव्यानि । अथवा तत एव ज्ञातव्यानि । केभ्यो मानेभ्यः कानि कानि कार्याण्येतस्मिन् विषयेऽन्याचार्यापेक्षया वटेश्वरेणाधिकानि लिखितानीति (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदनरेखा, उत्क्रमज्या, कोट्युत्क्रमज्या) विधयः (ज्यादिसाधनार्थं साधनानि विधानं वा) आर्क्षान्मानात् (नाक्षत्रमानात्) ज्ञातव्या इति शशधरभगणोद्भवाश्च (चन्द्रभगण-

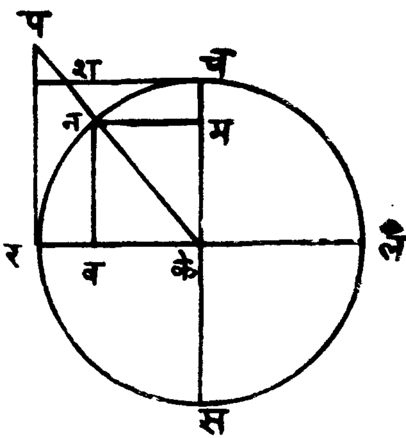
भोगाश्च नाक्षत्रमानादेव । मासार्धवासराणां संज्ञाः (मासपक्षदिननामानि) सदसत्फलावगतिः (शभाशुभफलज्ञानम्) नाक्षत्रमानादेव ज्ञातव्येति ।

हि. भा.—(१) ज्या आदि (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदनरेखा, उत्क्रमज्या, कोट्युत्क्रमज्या की विधियाँ नाक्षत्रमान से समझनी चाहियें, चन्द्रभगणभोग भी नाक्षत्रमान से जानना चाहिये, मास, पक्ष, दिनों के नाम और शुभ अशुभ फल ज्ञान नाक्षत्रमान से समझना चाहिये ।।

(१) ज्या आदि के लक्षण और साधन स्पष्टाधिकार में है इसलिये ये सब वहीं पर समझने चाहियें अथवा वहीं से समझना चाहिये । किन मानों से कौन-कौन का काम करना चाहिये इस विषय में अन्य आचार्यों से वटेश्वराचार्य अधिक बातें कहते हैं ।। १४ ।।

(१) —

यथाज्यादीनां (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा,छेदनरेखा, कोटिच्छेदन, उत्कमज्या=बाणः=शरः, कोट्युत्कमज्या) परिभाषा लिख्यन्ते ज्यादयश्चापीयाः कोणीयाश्च भवन्ति ।



चित्र नं० ६

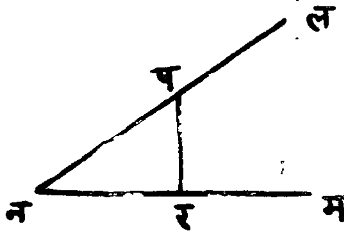
के=वृत्तकेन्द्रम् । चस, रल परस्परं लम्बरूपिण्यौ व्यासरेखे, केच=त्रिज्या=केर । नच=किमपि चापमस्ति यस्य ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा ... इत्यादयः का भवन्तीति विचारः ।

रचचापम् = ९०, रच —नच=९०—चाप = नर= कोटिचापम् । नच चापस्यैकप्रान्ते (च) विन्दौ केन्द्रात् (के) विन्दुतो केच रेखा नेया तदुपरि चापस्य द्वितीयप्रान्तात् (न विन्दुतः) कृतो लम्बः= नम = न च चापस्य ज्या=चापज्या । एवं नरकोटिचापस्य ज्या = नव = चापकोटिज्या । च विन्दुतो वृत्तस्पर्शरेखा कार्या केन्द्राच्चापस्य द्वितीयप्रान्त (न) विन्दौ केन रेखा नेया सा वर्धिता यत्र वृत्तस्पर्शरेखायां लगति तत्र श विन्दुः कल्प्यस्तदा शच रेखा नच चापस्य स्पर्शरेखा

नच चापस्पर्शरेखा = शच । केश रेखा = चापच्छेदन रेखा ।

एवं नर चापस्य रविन्दुतो वृत्तस्पर्शरेखा कार्या केन्द्रात् (केविन्दुतः) द्वितीय प्रान्त (न) विन्दुगता केन रेखा यत्र तस्यां स्पर्शरेखायां लगति तत्र प विन्दुः कल्प्यस्तदा परेखा रन चापस्य स्पर्शरेखा अर्थात् कोटिस्पर्शरेखा, केप=कोटिच्छेदनरेखा, चम = चापोत्क्रमज्या = बाण = शर । रव=कोट्युत्क्रमज्या = त्रिज्या — चापज्या = त्रिज्या — चापकोटिज्या, यस्य कस्यापि कोणस्य ज्या,

कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा ... इत्यादयः का भवन्त्येतदर्थं विचारः।



चित्र नं० १०

यथा लनम कोऽपि कोणोऽस्ति यस्य-ज्यादयः का भवन्तीति प्रदर्श्यन्ते नल रेखायां कोऽपि प विन्दुर्गृहीतः। प विन्दुतो नम रेखोपरि परलम्बः कार्यस्तदा $<$ नरप = ९० $\therefore$ ज्या$<$ नरप = त्रिज्या अत्र त्रिज्या= १ गृह्यते।

लनमकोणः = को

नपर त्रिभुजेऽनुपातेन कोणज्या $= \dfrac{\text{पर} \times १}{\text{नप}} = \dfrac{\text{पर}}{\text{नप}}$

तथा कोणकोटिज्या $= \dfrac{१ \times \text{नर}}{\text{नप}} = \dfrac{\text{नर}}{\text{नप}}$

$$\frac{\text{कोणज्या}}{\text{कोणकोटिज्या}} = \text{कोणस्पर्शरेखा} = \frac{\frac{\text{पर}}{\text{नप}}}{\frac{\text{नर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{पर}}{\text{नर}}$$

$$\frac{\text{कोणकोटिज्या}}{\text{कोणज्या}} = \text{कोणकोटिस्पर्शरे} = \frac{\frac{\text{नर}}{\text{नप}}}{\frac{\text{पर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{नर}}{\text{पर}}$$

$$\frac{१}{\text{कोणकोटिज्या}} = \text{कोणच्छेदनरेखा} = \frac{१}{\frac{\text{नर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{नप}}{\text{नर}}$$

$$\frac{१}{\text{कोणज्या}} = \text{कोणकोटिच्छेदनरेखा} = \frac{१}{\frac{\text{पर}}{\text{नप}}} = \frac{\text{नप}}{\text{पर}}$$

१ − कोणकोटिज्या = कोणोत्क्रमज्या। १ − कोणज्या = कोणकाट्युत्क्रमज्या ॥१४॥

इति वटेश्वर सिद्धान्ते मध्यमाधिकारे कालमानविवेको द्वितीयाध्यायः।

हि. भा.—ज्या आदिओं (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदनरेखा, उत्क्रमज्या=बाण=शर,=कोटिचाप की उत्क्रमज्या) की परिभाषायें लिखते हैं। ज्या आदि चापीय, और कोणीय होती है।

यहाँ चित्र (९) देखिये।

के=वृत्तकेन्द्र। चस, रल परस्पर लम्बरूप व्यास रेखायें हैं।

केच=त्रिज्या=केर

नच कोई एक चाप है जिसकी ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा……आदि क्या होती है इसका विचार करते हैं। रच चाप = ९०, रच—नच = ९०—चाप = नर = कोटिचाप। नच चाप = चाप। चाप के एक प्रान्त (च) बिन्दु में केन्द्र से केच रेखा कीजिये। उसके ऊपर चाप के दूसरे प्रान्त न बिन्दु से नम लम्ब कीजिये तब नम रेखा नच चाप की ज्या होती है।

नम = चापज्या। इसी तरह नरकोटि चाप की ज्या = चाप कोज्या = नव। चाप के एक प्रान्त च बिन्दु से वृत्त की स्पर्शरेखा कीजिये। केन्द्र से दूसरे प्रान्त (न) में लाई हुई केन रेखा वृत्त स्पर्शरेखा में जहाँ लगती है वहाँ 'श' बिन्दु रखिये तब शच = चापस्पर्शरेखा, केश = चापच्छेदनरेखा, एवं नर चाप के र बिन्दु से वृत्तस्पर्शरेखा कीजिये। केन्द्र से न बिन्दु में लाई हुई रेखा बढ़ कर उस रेखा में जहाँ पर लगती है वहाँ प बिन्दु है तब रप = कोटिस्पर्शरेखा, केप = कोटिच्छेदनरेखा,

चम = चाप की उत्क्रमज्या = बाण = शर। रव = कोटिचाप की उत्क्रमज्या = त्रि— चापज्या = त्रिज्या — चाप कोटिज्या = उज्या

किसी कोण की (ज्या, कोटिज्या, स्पर्शरेखा, कोटिस्पर्शरेखा, छेदनरेखा, कोटिच्छेदन रेखा, उत्क्रमज्या, कोट्युत्क्रमज्या क्या होती है उसके लिये विचार।

चित्र नं. (१०) देखिये

लनम एक कोण है जिसकी ज्या, कोटिज्या . . . आदि क्या होती है, यह दिखलाना है।

नल रेखा में कोई प बिन्दु लेकर उससे नम रेखा के ऊपर परलम्ब कीजिये, तब $<$ नरप = ९०, $\therefore$ ज्या $<$ नरप = त्रिज्या यहाँ त्रिज्या = १ लेते हैं

नपर त्रिभुज में अनुपात से $\frac{\text{पर}}{\text{नप}}$ = कोणज्या

$\frac{\text{नर}}{\text{नप}}$ = कोणकोटिज्या

तब $\frac{\text{कोणज्या}}{\text{कोणकोटिज्या}} = \text{कोणस्पर्शरे} = \frac{\text{पर}}{\text{नर}}$

तथा $\frac{\text{कोणकोटिज्या}}{\text{कोणज्या}} = \text{कोणकोटिस्प} = \frac{\text{नर}}{\text{पर}}$

$\frac{१}{\text{कोणकोटिज्या}} = \text{कोणच्छेदनरे} = \frac{\text{नप}}{\text{नर}}$

$\frac{१}{\text{कोणज्या}} = \text{कोणकोटिच्छेरेखा} = \frac{\text{नप}}{\text{पर}}$

१ — कोणकोटिज्या = कोण की उत्क्रमज्या, १ — कोणज्या = कोणकोटि की उत्क्रमज्या ॥१४॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में कालमान विवेक नामक

द्वितीयाध्याय समाप्त हुआ।

मध्यमाधिकारस्य

तृतीयाध्याये

द्युगण (अहर्गण) विधिः

कोत्पत्ति कल्पयुगयात समा इनघ्ना मासान्विताः खगुणसङ्गुणिता अहोभिः। युक्ताः पृथक्त्वधिकसङ्गुणिता इनाहैर्लब्धाधिमासदिवसैः सहिताः पृथक् पृथक् ॥१॥

दिनक्षयघ्नाः शिशिरांशु-वासरैरवाप्तहीनाहगणैर्विवर्जिताः। द्युराशयस्तेष्वगभक्तशिष्टको दिनाधिपो व्योमचराधिपादिकः ॥२॥

वि. भा.—कोत्पत्तिकल्पयुगयातसमाः (ब्रह्मोत्पत्तिकालाद्वर्त्तमानकल्पस्य यावन्तो युगाब्दा व्यतीताः) इनघ्नाः (द्वादशगुणिताः) मासान्विताः (वर्त्तमान-वर्षस्य चैत्रशुक्लप्रतिपदादितो यावत्यो गतमाससंख्यास्ता योज्याः) खगुणसङ्गुणिता (त्रिंशद्गुणिताः) अहोभिर्युक्ताः (गतामान्ताद्वर्त्तमानदिनं यावत्तिथिसंख्याभिर्युक्ताः) पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्याः) अधिकसङ्गुणिता (ते स्थापिता अङ्का एकत्र युगाधि-माससंख्याभिर्गुणिताः) इनाहैर्लब्धाधिमासदिवसैः (युगसौरदिनैः भक्ताः सन्ता ये लब्धाधिमासदिवसास्तैः) सहिताः (द्वितीयस्थानस्थापिता अङ्काः युक्ताः) ते पृथक् पृथक् स्थाप्याः, दिनक्षयघ्नाः (ते पृथक् स्थापिता अङ्का एकत्र युगावमैर्गुणिताः) शिशिरांशुवासरैरवाप्तहीनाहगणैः (युगचान्द्रदिनैर्भक्ताः सन्तो ये लब्धाक्षयवासरा स्तैर्द्वितीयस्थानस्थापिता अङ्काः) विवर्जिताः (हीनाः कार्यास्तदा) द्युराशयः (सावनाहर्गणो भवेत्) तेष्वगभक्तशिष्टकैः (तेषु समानीत सावनाहर्गणेषु सप्तभक्तेषु ये शेषास्तैः) व्योमचराधिपादिकः (रव्यादिकः) दिनाधिपः (वारपतिः) भवेदिति।

हि. भा. — ब्रह्मोत्पत्तिकाल से वर्त्तमान वर्ष के जितने युगवर्ष बीत गये हैं उनको बारह से गुण देना, गुणनफल में वर्त्तमान वर्ष के चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से जो गतमास संख्या हो जोड़ देना, उसको तीस से गुणा देना, उसमें गत अमावास्यान्त से वर्त्तमान दिन तक तिथि संख्या जोड़ कर दो स्थानों में रखना, एक स्थान स्थित संख्या को युग की अधिमास संख्या से गुण कर युग सौर दिन से भाग देने पर जो लब्धि (अधिमास दिन) आवें, इसे दूसरे स्थान में रखे हुए अङ्कों में जोड़ देना, इसे दो स्थानों में रखना, एक स्थान की संख्या को युग की अवमदिन संख्या से गुण कर युग चान्द्रदिन से भाग देने से जो लब्धि (क्षयदिन) हो उसे दूसरे स्थान में रखे हुए अङ्कों में घटाने से सावनाहर्गण होता है, इसमें (सावना-हर्गण में) सात से भाग देने से जो शेष रहे वह रवि से गणना करने से वारपति होते हैं ॥ १-२ ॥

उपपत्तिः

कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समा ययुरित्यादिना सृष्ट्यादितो गत-वर्षान्तं यावद् गतवर्षाणि=गव ∴ गव×१२=गतसौरमासाः चैत्रादिगत चान्द्र-मासतुल्यैरेव सौरमासैर्युतास्तदा सृष्ट्यादितो गतसौरमासाः=गव×१२+गत-

चान्द्रमास तुल्य सौरमास, त्रिंशता गुणनेन सृष्टयादितो गतसौरदिनानि = (गव × १२ + गतचान्द्रमास तुल्य सौरमास) × ३०, इष्टतिथि-तुल्यैः सौरदिनैर्युक्तानि तदा सृष्टयादित इष्ट चान्द्रान्तं यावत्सौर दिनानिभवन्ति = (गव × १२ + गतचान्द्रमासतुल्यसौरमास) × ३० + इष्टतिथितुल्यसौरदिन = इसौरदिनानि ततोऽनुपातो यदि युगसौरदिनैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदेष्टसौरदिनैः किमित्यनेन लब्धाः सशेषाधिमासाः =

$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{इसौर}}{\text{यसौरदि}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युगसौ}}$ यतः सौरचान्द्रान्तरमधिमासाः (अत्र पूर्वगतसौरमासाश्चैत्रादि चान्द्रमासतुल्यैरेव सौरमासैर्युक्तास्तत्राधिशेषतुल्यमधिकं गृहीतं भवेदतोऽनुपातागतमधिशेषग्रहणं नाऽत्र क्रियते, अतः इष्टसौरदि + गताधिदिन = तिथ्यन्ते चान्द्राहर्गण = इचां ।

ततो यदि युगचान्द्रैर्युगावमानि लभ्यन्ते तदेष्टचान्द्रैः किमित्यनुपातेन सशेषावमानि

$$\frac{\text{युगावम} \times \text{इचां}}{\text{युचां}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचां}}$$ अत इष्टचान्द्रे एतस्य शोधनेन

$$\text{इचां} - \left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचां}}\right) = \text{इचां} - \text{गतावम} - \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचां}} = \text{तिथ्यन्ते}$$

सावनाहर्गणः

परमपेक्षितस्तु सूर्योदयकालिकः सावनाहर्गणोऽतो "दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषमित्युक्तः" तिथ्यन्तकालिक सावनाहर्गणो ऽवमशेषयुक्ते तदा सूर्योदकालिकः सावनाहर्गण $= \text{इचां} - \text{गतावम} - \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}}$

$$= \text{इचां} - \text{गतावम}$$

अत : सर्वमुपपन्नम् ॥

अथ सृष्ट्यादितो भुवि लोकैर्वारगणना कथं समारब्धेति निर्णीयते। सृष्ट्यादिर्नाम लङ्का प्रथम सूर्योदयकालो भूस्थजनानां दिनार्धरात्र्यर्धास्तकालः स्यात्। स कालो यदि सर्वेषां रविवारीय एव स्वीक्रियते तदा रेखातः पश्चिमे दोषापत्तिर्भवेद्यथा। इष्टात्परं यः सूर्योदयस्तस्मात्परमग्रिमदिनगणनाऽऽरभ्यते लोकैरिति युक्तव्यवहारेण रेखातः पश्चिमे प्रथमसूर्योदयात्परं सोमवारगणना स्यात्। अतएवार्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिरित्यादिना सृष्ट्यादिकाल एव सोमवारप्रवृत्तिकालः स्यादिति सिद्धस्तदसङ्गतम्। नोचेत् सृष्ट्यादिकालात्परं यदा यदा यत्र यत्र प्रथमसूर्योदयस्तदा तदा तत्र तत्र रविवार इति कल्प्येत तदा रेखातः प्राच्यां प्रथमसूर्योदयात्परं यो लङ्काद्वितीयसूर्योदयः सोमवारप्रवृत्तिकालः स एवार्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिरित्यादिना रविवार प्रवृत्तिकालः सिद्ध्यति । रेखातः प्राच्यां दोषापत्तिरतो रेखातः पश्चिमे प्रथमसूर्योदयात्परं रविवारगणना प्राच्यां सोमवारगणना समारब्धेति। एतेन नैकत्र यः स्पष्टवारः स एव सर्वत्र स्पष्टवार इति सिद्धः ।

अथ लङ्का सूर्योदयकालीन मध्यमतिथेरज्ञानात् स्वदेशोदयकालीन स्पष्टतिथिमेव लङ्कोदयकालीनमध्यमतिथिं मत्वाऽहर्गणानयनं कृतमाचार्येण । अतः स्वदेशोदयकाले या स्पष्टतिथिः सैव लङ्कोदयकाले मध्यमतिथिर्भविष्यति नवेति विचारः ।

अथ मध्यरवि$\pm$रमंफ$=$स्पष्टरविः$=$स्पर
मध्यचं$\pm$चंमंफ$=$स्पष्टचन्द्रः$=$स्पचं अनयोरन्तरे द्वादशभक्ते तदा स्पष्टति$=$

$$\frac{\text{मचं}\sim\text{मर}\pm\text{चंमंफ}\pm\text{रमंफ}}{१२}=\frac{\text{स्पचं}-\text{स्पर}}{१२}=\text{स्पति}=\text{मति}\pm\frac{\text{रमंच}\mp\text{रमंफ}}{१२}$$

$$\text{यतः}\ \frac{\text{स्पचं}-\text{स्पर}}{१२}=\text{स्पति},\ \frac{\text{मंच}-\text{मर}}{१२}=\text{मति}$$

अथ परमचन्द्रमन्दफजम्$=५^\circ।२'।८''$
परम रवि मन्दफलम्$=२^\circ।१०'।३१''$ अनयोर्योगः
परम चं मं फ$+$परपंफ$=७^\circ।१२'।३९''<१२^\circ$

अतः परमस्पति$\sim$परममति $=\frac{७^\circ।१२'।३९''}{१२}<१$ अतः परममपि स्पष्टमध्यमतिथ्योरन्तरमेकतिथ्यल्पमेवेति सिद्धम् । एतेन मध्यम-तिथ्यन्तात् पूर्वं परतो वा $\frac{\text{चंमंफ}\times\text{रमंफ}}{१२}$ एतत्तुल्यान्तरे स्पष्टतिथ्यन्तोऽभूद्भविष्यतीति सिद्धम् । अतः स्वदेशोदयकाले या स्पष्टतिथिः सैव लङ्कोदयकाले मध्यमतिथिः कदाचिदेव स्यादिति निर्णीतम् । तेनाहर्गणोऽभीष्टवारार्थं सैको निरेकश्च कार्यः । परञ्चात्र स्वदेशोदयकालीन स्पष्टतिथिर्लङ्कोदयकालीनमध्यमतिथिर्न स्यात्तदा साधिताहर्गणः सान्तर एव, तदप्यन्तरं तिथ्यन्तरतुल्यमेव, अतो यावत्स्वदेशोदयकालीन स्पष्टतिथि लङ्कोदयकालीन मध्यमतिथ्योरन्तरं रूपतुल्यं तावदेव सैकनिरेकरूपसंस्कारः शोभनः । यावच्चोक्ततिथ्योरन्तरं$=२$, यथा स्वदेशोदयकाले स्पष्टतिथिः$=५$ मी, मध्यमतिथिः$=$६ष्ठी, स्वदेशोदयकाले स्पष्टतिथिः$=$६ष्ठी, मध्यमतिथिः$=७$मी, एवमित्यादि तावद्द्विसंस्करणमेव भवितुमर्हति । अतोऽत्र तावत्सर्वत्र द्विसंस्करणस्य योग्यता भवति नवेति निर्णीयते । कस्या अपि मध्यमतिथेरादितो मध्यम स्पष्टतिथ्यन्तरं परमं यत्तत्तुल्यमग्रतो दानेन यो बिन्दुस्तत्पर्यन्तमेतत्पूर्वस्पष्टतिथेरन्तबिन्दुरागमिष्यति न कदापि तदग्रे ।

घ. प. वि.

मध्यमगत्यन्तरम्$=$७३१ । २७ अतो मध्यमतिथिप्रमाणम्$=$५९ । ३ । ३८
मध्यमस्पष्ट तिथ्यन्तरं परमाल्पं मध्यमसावन घट्यादिः$=$३५ । २९ । २६
मध्यमस्पष्ट तिथ्यन्तान्तरं परमं स्पष्टसावनघट्यादिः$=$३९ । १८ । २९
(५९ । ३ । ३८)$-$(३९ । १८ । २९)$=$१९ । ४५ । ९......(क)

कमानमस्मादल्पं कदापि न स्यात् । अतोऽस्य कमानस्यान्तर्बिन्दुलङ्कोदयकाले कल्पिते सिद्धं यद्रेखातः प्राच्यां यस्मिन् देशे चर देशान्तरयोगः कमानतुल्यस्तद्देश-

पर्यन्तं कदापि द्विसंस्करणस्य योग्यता न स्यात्। एवं रेखातः प्रतीच्याम्। अत एकसंस्करण सर्वदेशिकत्वं द्विसंस्करणस्याल्पदेशिकत्वं सिद्धम्। तेनैकसंस्करणमेव युक्तियुक्तमिति।

आचार्यवटेश्वरेणाहर्गणानयने विशेषविचारो न कृतोऽतस्तत्सम्बन्धे किञ्चिदुच्यते। अहर्गणानयनेऽभीष्टाहश्चैत्राद्यन्तरे ये स्पष्टमासादयश्चान्द्रास्तेषामेव प्रयोजनम्। तत्र तदन्तरेऽङ्ग ल्यधिकरणगणनया यावन्तो मासा उपलब्धास्त एव गृहीताः सन्ति। अतएवाभीष्टाहश्चैत्राद्यन्तरे स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽस्ति चेत्तदा तज्जनिताशुद्धिरहर्गणेऽवश्यं पतिष्यतीति विशेषः क्रियते। तत्रेष्टतिथ्यन्तसौरान्तयोरन्तरस्थोऽधिशेषो मासाल्पः कदाचिन्मासोऽपीत्यहर्गणानयनवासनोक्तं स्मर्त्तव्यमिति।

यदि स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेष एकमासस्तदाऽधिमासानयनेन गताधिमासा ये आगमिष्यन्ति तेष्वेवेवास्याप्यागमात्साधिताहर्गणः शुद्ध एवातः संस्कारो न कर्त्तव्यः। यदाऽधिशेषो मासाऽल्पस्तदाऽऽगताधिमासान् सैकान् कृत्वाऽहर्गणः साध्यः। "अन्यथेष्टतिथ्यन्त—३० तिथि" एतत्तुल्यतिथ्यन्त कालिकाहर्गण आगमिष्यतीति दोषापत्तिः—

यदि च स्पष्टोऽधिमासोऽपतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेषो मासाल्पस्तदाऽहर्गणः शुद्ध एवातोऽत्र संस्कारो न कर्त्तव्यः। यद्यधिशेष एकमासस्तदाऽऽगताधिमासान् निरेकान् कृत्वाऽहर्गणः साध्यः। "अन्यथेष्टतिथ्यन्त + ३० तिथि" एतत्तुल्यस्तिथ्यन्तकालिकाहर्गण आगमिष्यतीति दोषापत्तिः। अथ यदैवमहर्गणः संस्कर्त्तव्यस्तदाऽधिशेषश्चैत्रादयो मासाश्च किंविशिष्टा ग्राह्याश्चन्द्रार्कसाधने तदर्थविचारः।

उक्त प्रथमसंस्कारकाले आगताधिशेष $=\frac{\text{अशे}}{\text{कसौ}}$, वास्तवाधिशेष $=\frac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}}+\frac{\text{कअमा}\times ३०}{\text{कसौ}}=\frac{\text{अशे}+३० \text{ कअमा}}{\text{कसौ}}$, उक्त द्वितीयसंस्कारकाले च

आगताधिशे $=\frac{\text{अशे}}{\text{कसौ}}$, वास्तवाधिशे $=\frac{\text{अशे}}{\text{कसौ}}-\frac{\text{कअमा}\times ३०}{\text{कसौ}}=\frac{\text{अशे}+\text{कअमा}\times ३०}{\text{कसौ}}$

चैत्रादिगतमासांश्च क्रमेण सैकान् निरेकान् कृत्वा चन्द्रार्कौ साध्याविति। अथ बृहदहर्गणे यदोक्तसंस्कारस्तदा लघ्वहर्गणे किंविशिष्टः संस्कारस्तदर्थं विचारः। यदा स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेषो मासस्तदा साधित चान्द्राहर्गण एव चान्द्रवर्षोर्वरितो यश्चैत्रसितादिगतस्तिथिसमूहः स एव वास्तवः। यदा च मासाल्पस्तदान्यः संस्कारः कर्त्तुं युज्यते स तथाऽधिमासस्य तिथिर्गृहीत्वा लघ्वहर्गणः साध्यः।

यदा स्पष्टोऽधिमासोऽपतितोऽस्ति तदा यद्यधिशेषो मासाल्पस्तदा गृहीत चैत्रसितादिगत तिथिसमूह एव वास्तवः। यदा चाधिशेषो मासस्तदा साधित चैत्रा-

सितादिगत तिथिसमूह—३० तिथि=वास्तव चैत्र सितादिगत तिथिसमूहः। अतोऽत्र वास्तवशेषः=चैसिगतिथिसमूह—३०—शुद्धि=चैसिगति समूह—(३०+शुद्धि) एतावता यत्तिथिसंवे संस्कृतं तत्छुद्धावेव संस्कृतमभूदिति स्फुटं दृश्यते ।। एतावता स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽपीत्यारभ्य शुद्धया तदा खदहनैरित्यन्तं भास्करोक्तं सम्यगुपपद्यते सूर्यसिद्धान्तकार-सिद्धान्तशेखरकारादिभिरेतद्विषये किमपि न कथ्यते। तैस्तु लघ्वहर्गणानयनमपि न कृतम्।

वटेश्वरेण क्षयमास सम्बन्धे न विशेषरूपेण विचारः कृतोऽतस्तत्सम्बन्धे किञ्चिद्विचार्यते। यदा स्पष्टचांमा>स्पसौमा तदैव क्षयमासोऽतः कदैवमित्यन्विष्यते।

उच्चस्थाने स्परग=मरग— रमंगतिफल $\frac{\text{१ सा० १८००}}{\text{मरग—रमंगफ}}$ = स्पष्टसौमासान्तः पासावन

तथा $\frac{\text{१ सा० १८००}}{\text{मरग}}$ = मसौरमासान्तःपातिसावन अतोऽत्र स्पसौमा>मसौमा

अथ यदा चंगफ=० तदा $\frac{\text{१ सा} \times \text{२१६००}}{\text{मचं—(मरग—रमंगफ)}}$ =स्पष्ट चांमासान्तःपातिसावन

तथा $\frac{\text{१ सा} \times \text{२१६००}}{\text{मचंग—मरग}}$ = मचान्द्रमासान्तःपातिसावन ∴ मचांमा>स्पचांमा

$\frac{\text{१ सा} \times \text{१८००}}{\text{मरग}}$ =मसौ मासान्तःपाति सावन, $\frac{\text{मचंग}=\text{७९०}'\text{ । ३५}''}{\text{मरग}=\text{५९}'\text{ । ८}''}$ द्वयोरन्तरकरणेन ७३१′ । २७″>५९′ । ८″ ∴ मसौमा>मचांमा

अतः स्पसौमा>मसौमा>मचांमा>स्पचांमा

तथा कक्षा मध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्तसम्पाते मरग=स्परग ∴ स्पसौमा=मसौमा तथा स्पचांमा=मचांमा तत्रापि स्पसौमा=मसौमा>मचांमा=स्पचांमा ∴ स्पसौमा>स्पचांमा, अथ नीचस्थाने

$\frac{\text{१ सा} \times \text{१८००}}{\text{मरग}+\text{रमगफ}}$ =स्पसौमासान्तः पासावन। मसौमा>स्पसौमा

$\frac{\text{१ सा} \times \text{२१६००}}{\text{मचंग-(मरग}+\text{रमंगफ)}}$ = स्पष्ट चांमासान्तःपासावन ∴ मचांमा<स्पचांमा

एतावता स्पसौमा<मसौमा>मचांमा <स्पचांमा मध्यमसौरमासात् स्पष्टसौरमासमध्यमचान्द्रमासयोरल्पत्वेन स्पसौमा< = >मचांमा एतत्त्रयमपि सम्भाव्यते तथा स्पसौमा< = >स्पचांमा एतत्त्रयमपि सम्भाव्यते निर्णायकाभावात्। अतोऽत्र

गणितमेव शरणम् । नीचे रविमन्दगतिफलम्=२ । १४″ अनयोर्योगः ६१′ । २२″
रविमध्यगति=५९′ । ८″
=स्परग

$$\therefore \frac{१\ \text{सा} \times १८००}{\text{स्परग}} = \frac{१८००}{६१।२२} = २९ । २० = \text{स्पसौमा ।}$$

मचंग=७९०′ । ३५″
स्परग=६१′ । २२″ अनयोरन्तरम्=७२९′ १३″ ∴ $\frac{१\ \text{सा} \times २१६००}{७२९ ।१३}$ =
२९ । ३७ एवं यदा स्यात्तदा प्रत्यक्षतः स्पसौमा<स्पचांमा इति दृश्यते अतः क्षय-मासलक्षणं कदाचित्स्यादिति प्रतीतिर्जाता ।

परं कदा स्पचांमा=स्पसौमा इत्यन्विष्यते ।

$$\frac{२१६००}{\text{मचंग} - (\text{मरग} + \text{रमंगफ})} = \frac{१८००}{\text{मरग} + \text{रमंगफ}} = \text{छेदगमेन}$$

२१६०० (मरग+रमंगफ)= १८००{मचंग—(मरग+रमंगफ)}अपवर्त्तनेन
१२ (मरग+रमंगफ)=मचंग—(मरग+रमंगफ)=१२ मरग+१२ रमंगफ
=मचंग—मरग—रमंगफ समयोजनादिना

१२ मरग+१३ रमंगक=मचंग--मरग ∴१३ रमगंफ=मचंग—१२ मरग —मरग = १३ मरग

$$\therefore\ \text{रमंगफ} = \frac{\text{मचंगम} - १३\text{मरग}}{१३} = \frac{\text{मचंग}}{१३} - \text{मरग} = ४ । ४१$$

एतेन सिद्धं यद्यदा रवेमर्मन्दगतिफलं (१ ।४१) भवेत्तदा स्पचांमा = स्पसौमा एवं स्यादिति ।

अथ कस्मिन् स्थले १ । ४१ इदं रवेर्मन्दगतिफलं भवेत्तदर्थविचारः ।

तत्कोटिजीवा कृतबाणभक्तेत्यादि भास्करोक्त्या $\frac{\text{लघ्वी केन्द्रकोज्या}}{५४}$=१।४१
=रमंगफ ∴ लघ्वीकेकोज्या = ५४ (१ । ४१) = ५४ । २२१४ = ९० । ५४ अस्याश्चापम् तथा कर्त्तव्यं यथा भोग्यखण्डा स्फुटीकरण निरपेक्षं शुद्धमानमागच्छेत् — तद्यथा ।

$$\frac{(९०।५४)\ ३४३८}{१२०} = \frac{(९०।५४)५७३}{२०} = (४′।३२″ । ४२‴)५७३ = २२९२ ।$$

१८३३६, २४०६६, २६०४ ज्यां प्रोह्य तत्त्वाश्विहतावशेषमित्यादिना चापम् = ४२° । १५′ = केन्द्रकोटि, अतः केन्द्रांशाः = (४९ + ९०)+ (० । १५) =
रा
१३९ + (० । १५) = ४।१९° । १५′ अत्र वर्त्तमानकालीन रवेर्मन्दोच्चम् =
रा
२।१८° एतद्युतं तदा केन्द्रांश+मन्दोञ्च=

(४ रा । १९° । १५′) + (२ रा । १८°) = ७ रा । ७° । १५′ अर्थाद् वृश्चिके गतेऽर्के स्पचांमा = स्पसौमा एवं भविष्यतीति सिद्धम् । अतोऽस्मात्कालादारभ्य पुनर्यदैतत्तुल्यं गतिफलं स्यात्तावत्कालपर्यन्तं क्षयमासपातः सम्भाव्यते । किञ्च नीचात्तुल्यान्तर उभयतस्तुल्यमेव गतिफलं स्यादतः २७० — (४९ । १५) = २२०° । ४५′ = ७ रा । १०° । ४५′ अत्र मन्दोच्चयोजनेन (७ रा । १०° । १५′) + (२ रा । १८°) = ९ रा । २८° । ४५′ अर्थान्मकरान्तपर्यंतं यावद्रविर्गमिष्यति तावदेव क्षयमाससम्भवोऽतो भास्करेण "क्षयः कार्त्तिकादित्रयेणान्यतः स्यादित्युक्तम्"

अथ यदा क्षयमासो भवति तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं भवतीति निरूप्यते यदा क्षयमासपातस्तदा यः स्पष्टसौरमासः स्पष्टचान्द्रमासोदरे पतितस्तदाऽदि संक्रान्तिबिन्दावधिमासानयनेन सावशेषा ये गताधिमासास्तत्राधिशेषमल्पतरमेव भवतीति दर्शनादवगम्यते । अतः क्षयमासपातकालात्पूर्वमासान्तेऽवश्यमधिमासपातः स्यात् । एवमेतद्दर्शनादेवान्तसंक्रान्तिबिन्दौ यदधिशेषमागच्छति तत्किञ्चितन्न्यून-माससममित्यवगम्यतेऽतोऽग्रेऽवश्यं मासासन्नेऽधिमासपातो भविष्यतीति वर्षमध्येऽधिमासद्वयं भवेदेवेति, सर्वं भास्करेण एव सिद्धान्तशिरोमणौ स्फुटं लिखित-मस्तीति ।

उत्पत्ति

हि. भा.—"कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाययुः" इत्यादि से सृष्टयादि से वर्तमान कल्प के जितने युग वर्ष बीते हैं उनका नाम गत वर्ष रखिये । तब गव × १२ = गत सौरमास इसमें चैत्रादि गत चान्द्रमास तुल्य ही सौरमास जोड़ने से सृष्टयादि से गत सौरमास होंगे ।

गव × १२ + गतचान्द्रमास तुल्य सौरमास = सृष्ट्यादि से गत सौर मास = गसौरमास दिनात्मक करने से गत सौरदि = (गव × १२ + गत चान्द्रमास तुल्य सौरमास) × ३० इसमें इष्ट तिथितुल्यसौरदिन जोड़ने से (गव × १२ + गत चान्द्रमास तुल्य सौर मास) × ३० + इष्टति = इसौरदिन, तब "यदि युगसौर दिन में युगाधिमास पाते हैं तो इष्ट सौरदिन में क्या इस अनुपात से $\frac{\text{युगाधि मास} \times \text{इसौ}}{\text{युसौ}}$ = गताधिमास + $\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}}$ यहाँ पहले गतसौर मास में चैत्रादि गत चान्द्रमास तुल्य सौरमास जोड़े थे इसलिये सौर चान्द्र के अन्तर तुल्य अधिशेष अधिक जोड़ा गया था । अतः अनुपातागत अधिशेष को यदि छोड़ देते हैं तो उस त्रुटि का (पहले अधिशेष तुल्य अधिक लेने का) निराकरण हो जायगा इसलिये केवल गताधिदिन का इष्ट सौर दिन में जोड़ने से तिथ्यन्तकालिक चान्द्राहर्गण होगा इसौदि + गताधिदिन = तिथ्यन्त कालिक चान्द्राहर्गण तब युगचान्द्र में युगावमदिन पाते हैं = इंचां

तो इष्टचान्द्र दिन में क्या इस अनुपात से

$\frac{\text{युगावम} \times \text{इचां}}{\text{युचां}}$ = गतावम + $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ इष्ट चान्द्राहर्गण में घटाने से

इचां—गतावम—$\frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ = तिथ्यन्त कालिक सावनाहर्गण, इसमें अवम शेष जोड़ने से

सूर्योदय कालिक सावनाहर्गण होगा, इचां—गतावम—$\frac{\text{अवमशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युचाँ}}$

= इचां—गतावम = सूर्योदयकालिक सावनाहर्गण ।

पृथ्वी पर सृष्ट्यादि काल से वारगणना क्यों आरम्भ की गई इसका निर्णय करते हैं । लङ्का प्रथम सूर्योदय काल का नाम सृष्ट्यादि है । वह काल यदि सब के लिये रविवारीय स्वीकार करते हैं तब रेखा से पश्चिम में दोषापत्ति होगी । इष्ट दिन के बाद जो सूर्योदय होता है उसके बाद अगले दिन की गणना आरम्भ करते हैं यही वारगणना के लिये व्यवहार है । इस तरह व्यवहार युक्त गणना से रेखा से पश्चिम देश में प्रथम सूर्योदय के बाद सोमवार गणना होती है । इसलिये "अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभि-रित्यादि से सृष्ट्यादि काल ही सोमवारप्रवृत्तिकाल है यह सिद्ध हुआ पर यह असङ्गत है । यदि नहीं तो सृष्ट्यादि के बाद जहाँ जहाँ जब जब प्रथम सूर्योदय होगा वहाँ वहाँ तब तब रविवार कल्पना करने से रेखा से पूर्व में प्रथम सूर्योदय के बाद जो लङ्का द्वितीय सूर्योदय सोमवार प्रवृत्ति काल है वही अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिरित्यादि से रविवार प्रवृत्तिकाल सिद्ध होता है । रेखा से पश्चिम में दोषापत्ति होती है इसलिये रेखा से पश्चिम में प्रथम सूर्योदय के बाद रविवार गणना रेखा से पूर्व में सोमवार गणना प्रारम्भ हुई ।

लङ्का सूर्योदय कालिक मध्यमतिथि के नहीं विदित होने के कारण स्व-देशोदयकालिक स्पष्ट तिथि को लङ्कोदयकालिक मध्यमतिथि मान कर आचार्य न अहर्गणान-यन किया हैं इसलिये स्वदेशोदयकाल में जो स्पष्टतिथि है वही लङ्कोदयकाल में मध्यमतिथि होगी या नहीं इसके लिये विचार करते हैं ।

मध्यमरवि ± रविमंफल = स्पष्टरवि = स्पर = मर ± रमंफ

मध्यमचन्द्र ± चन्द्रमंफल = स्पष्टचन्द्र = स्पचं = मच ± चंमंफ

दोनों के अन्तर को बारह से भाग देने पर = $\frac{\text{मचं} \sim \text{मर} \pm \text{चंमंफ} \mp \text{रमंफ}}{१२} = \frac{\text{स्पचं} - \text{स्पर}}{१२}$

$= \text{स्पति} = \frac{\text{मति} \pm \text{चंमंफ} \pm \text{रमंफ}}{१२} = \because \frac{\text{स्पचं} - \text{स्पर}}{१२}$ = स्पष्टतिथि = स्पति । $\frac{\text{मचं} - \text{मर}}{१२}$

= मध्यमतिथि = मति

अथ परमचन्द्रमन्दफल = ५° । २′ । ८″ दोनों के योग करने से ७° १२′ । ३९″ < १२

परम रवि मन्दफल = $\frac{२° \mid १०′ \mid ३१″}{७° \mid १२′ \mid ३९″}$

इसलिये परम स्पष्टति—परममति = $\frac{७′ \mid १२″ \mid ३९″}{१२}$ < १ इससे स्पष्ट है कि

परमस्पष्ट तिथि और परममध्यम तिथि का अन्तर एक तिथि से छोटा होता है, इसलिये मध्यमतिथ्यन्त से पहले या पीछे $\frac{\text{चं मं फ} \pm \text{रमंफ}}{१२}$ इतने अन्तर पर स्पष्टतिथ्यन्त हो गया रहेगा या होगा यह सिद्ध हुआ, अतः स्वदेशोदयकाल में जो स्पष्टतिथि होगी वही लङ्कोदय काल में मध्यमतिथि कभी ही होगी—इसीलिये वार (दिन) लाने के लिये साधित अहर्गण में एक जोड़ना चाहिये या घटाना चाहिये। लेकिन यदि स्वदेशोदय कालिक स्पष्टतिथि मध्यमतिथि नहीं होगी तब साधित अहर्गण में कुछ अन्तर पड़ेगा, वह अन्तर भी तिथ्यन्तर के बराबर होता है इसलिये जब तक स्वदेशोदयकालिक स्पष्टतिथि लङ्कोदयकालिक मध्यमतिथि का अन्तर एक के बराबर होगा तभी तक "एक जोड़नाया घटाना" इस तरह का संस्कार ठीक है। जब तक दोनों तिथियों का अन्तर = २ है, जैसे स्वदेशोदयकाल में स्पष्टतिथि = ५ मी है, मध्यमति = ६ठी या स्वदेशोदय काल में स्पष्टतिथि = ६ ठी है, मध्यमतिथि = ७ मी इत्यादि तब तक अहर्गण में दो संस्कार करना चाहिये, किसी मध्यमतिथि के आदि से परमस्पष्ट मध्यमतिथि के अन्तर तुल्य आगे दान देने से जो बिन्दु होता है, उस बिन्दु पर्यन्त इससे पूर्व स्पष्टतिथ्यन्त बिन्दु आवेगा कदापि उससे आगे नही.

घटी प. वि.

रविचन्द्र के मध्यमगत्यन्तर = ७३१ । २७ ∴ मध्यमतिथि प्रमाण = ५९ । ३ । ३८

मध्यम और स्पष्टतिथ्यन्तर परमाल्प मध्यमसावन घट्यादि = ३५ । २९ । २६

मध्यम और स्पष्टतिथ्यन्तर परमाधिक स्पष्टसावनघट्यादि = ३९ । १८ । २९

(५९ । ३ । ३८)—(३९ । १८ । २९) = १९ । ४५ । ९...........(क)

का मान इससे छोटा कभी भी नहीं होता है, इसलिये इस 'क' मान के अन्त बिन्दु को लङ्कोदयकाल में मानने से सिद्ध होता है कि रेखा से पूर्व जिस देश में चर और देशान्तर का योग (क) मान के बराबर होता है उस देश तक दो संस्कार की सम्भावना किसी भी तरह नहीं हो सकती है। इसी तरह रेखा से पश्चिम देश में भी विचार करना, इसलिये अहर्गण में एक संस्कार की व्यापकता, दो संस्कार की अव्यापकता सिद्ध हुई। अतः एक संस्कार ही ठीक है ॥

आचार्य वटेश्वर ने अहर्गणानयन में विशेष विचार नही किया है इसलिए उसके सम्बन्ध में कुछ विचार करते हैं। अहर्गणानयन में अभीष्टदिन और चैत्रादि के अन्तर में जो स्पष्ट चान्द्रमासादि होते हैं उन्हीं का प्रयोजन होता है वहाँ उसके अन्तर में गणना करने से जितने मास उपलब्ध होते हैं वे ही ग्रहण किये गये हैं। इसलिए यदि इष्टदिन और चैत्रादि के अभ्यन्तर में स्पष्टाधिमास पतित हो तो तज्जनित त्रुटि अहर्गण में अवश्य होगी। वहां इष्टतिथ्यन्त और सौरान्त के मध्य में जो मासाल्प अधिशेष है वह कभी एक महीना के बराबर भी होता है यह बात अहर्गणानयन की उपपत्ति देखने से साफ होती है।

यदि स्पष्टाधिमास पतित है तब अधिशेष यदि एक मास के बराबर है तब अधिमास

साधन से जो गताधिमास आवेंगे उन्हीं में इसके भी आने से साधिताहर्गण शुद्ध ही होता है इसलिए किसी संस्कार की जरूरत नहीं होती है। यदि अधिशेष एक मास से अल्प हो तब अधिमासानयन से जो गताधिमास आवे उनमें एक जोड़कर अहर्गण साधन करना चाहिए नहीं तो इष्टतिथ्यन्त—३० तिथि एतत्तुल्य तिथ्यन्त कालिक अहर्गण आने से दोषापत्ति होती है।

यदि स्पष्टाधिमास अपतित है तब यदि अधिशेष मासाल्प हो तो अहर्गण शुद्ध ही होता है इसमें किसी संस्कार की जरूरत नहीं होती है। यदि अधिशेष एक महीना के बराबर हो तो अधिमासानयन से जो गताधिमास आवे उनमें एक घटाकर अहर्गणानयन करना चाहिए नहीं तो "इष्टतिथ्यन्त + ३० तिथि" एतत्तुल्य तिथ्यन्तकालिक अहर्गण आने से दोषापत्ति होती है। यदि अहर्गण में इस तरह के संस्कार होते हैं तब अधिशेष और चैत्रादि मास किस तरह ग्रहण करना चाहिए चन्द्रमा और रवि के साधन के लिए, उसके लिए विचार करते हैं।

प्रथम संस्कार के अवसर में आगताधिशे $= \frac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}}$, वास्तवाधिशे $= \frac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}} + \frac{\text{कअमा ३०}}{\text{कसौ}} = \frac{\text{अधिशे} + \text{कअमा} \times \text{३०}}{\text{कसौ}}$, द्वितीय संस्कार समय में आगता-अधिशे $= \frac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}}$ वास्तवाधिशे $= \frac{\text{अधिशे}}{\text{कसौ}} - \frac{\text{कअमा} \times \text{३०}}{\text{कसौ}} = \frac{\text{अधिशे} - \text{कअमा} \times \text{३०}}{\text{कसौ}}$ चैत्रादि गत मासों में धन और निरेक कर चन्द्रमा और रवि के साधन करना चाहिए। बृहदहर्गण में जब इस तरह के संस्कार किये जाते हैं तब लघ्वहर्गण में किस तरह के संस्कार करना चाहिए इसके लिए विचार करते हैं।

यदि स्पष्टाधिमास पतित है तब अधिशेष एक महीना के बराबर हो तो चान्द्राहर्गण ही में चान्द्रवर्ष के उर्वरित जो चैत्र सितादि गततिथि समूह है वही वास्तव है।

यदि अधिशेष मासाल्प है तब जो संस्कार करना चाहिए वह और अधिमास की तिथि लेकर लघ्वहर्गण साधन करना चाहिए।

यदि स्पष्टाधिमास अपतित है तब अधिशेष यदि मासाल्प हो तो जो चैत्र सितादिगत तिथिसमूह लिया गया है वही वास्तव है। यदि शेष एक महीना के बराबर हो तो साधित चैत्रसितादिगत तिथिसमूह — ३० तिथि = वास्तव चैत्रसितादिगत तिथिसमूह, इसलिए यहां वास्तवशे = चैसिगततिथिसमूह—३०—शुद्धि = चैसिगतिसमूह — (३०+शुद्धि) इसको देखने से स्पष्ट है कि जिसको तिथिसंघ में संस्कार करना चाहिए वह शुद्धि ही में किया गया है। इन सब से "स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽपि" इत्यादि से लेकर 'शुद्धया तदा खदहनैर्युतया" यहां तक भास्करोक्त उपपन्न होता है।। सूर्यसिद्धान्तकार और सिद्धान्त शेखरकार ने इन विषयों में कुछ भी नहीं कहा है। उन्होंने लघ्वहर्गणानयन भी नहीं किया है। वटेश्वराचार्य क्षयमास के विषय में विशेषविचार नहीं किया है इसलिए उसके सम्बन्ध में कुछ विचार करते हैं।।

जब स्पचांमा $>$ स्पसौमा तभी क्षयमास होता है इसलिए कब इस तरह की स्थिति होती है। इसके लिए विचार करते हैं।

उच्चस्थान में स्परग = मरग — रमंगफ, $\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग} - \text{रमंगफ}}$ = स्पष्ट सौरमासान्तःपाति सावन

तथा $\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग}}$ = मध्यम सौमासान्तःपातिसावन। $\therefore$ स्पसौमा $>$ मसौमा

जब चंगफ = ० तब $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचं} - (\text{मरग} - \text{रमंगफ})}$ = स्पष्टचान्द्रमासान्तःपातिसावन

तथा $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचंग} - \text{मरग}}$ = मध्यम चान्द्रमासान्तःपासावन

$\therefore$ मचांमा $>$ स्पचांमा। $\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग}}$ = मसौरमासान्तःपासावन

मचंग = ७९०′। ३५″
मरग = ५९′। ८″
} दोनों के अन्तर = ७३१′। २७″ $>$ ५९′। ८″ $\therefore$ मसौमा $>$ मचांमा

अतः स्पसौमा $>$ मसौमा $>$ मचांमा $>$ स्पचांमा।

तथा कक्षा मध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त का सम्पात में मरग = स्परग। $\therefore$ स्पसौमा = मसौमा तथा स्पचांमा = मचांमा वहां भी स्पसौमा = मसौमा $>$ मचांमा = स्पचांमा $\therefore$ स्पसौमा $>$ स्पचांमा।

नीचस्थान में $\frac{१ \text{ सा} \times १८००}{\text{मरग} + \text{रमंगफ}}$ = स्पष्टसौरमासान्तःपातिसावन, मसौमा $>$ स्पसौमा

$\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचंग} - (\text{मरग} + \text{रमगंफ})}$ = स्पचांमासान्तःपासावन $\therefore$ मचांमा $<$ स्पचांमा।

इससे सिद्ध होता है कि

स्पसौमा $<$ मसौमा $>$ मचांमा $<$ स्पचांमा, मध्यम सौरमास से स्पष्ट सौरमास और मध्यमचान्द्र मास के अल्प होने के कारण स्पसौमा $<$ = $>$ मचांमा ये तीनों हो सकते हैं। तथा स्पसौमा $<$ = $>$ स्पचांमा ये भी तीनों हो सकते है। इसलिए यहां गणित ही शरण है।

नीचस्थान में रविमन्दगफ = २′। १४″
रविमध्यग = ५९′। ८″, दोनों के योग = ६१′। २२″ = स्परग

$\therefore \frac{१\text{सा} \times १८००}{\text{स्परग}} = \frac{१८००}{६१ । २२}$ = २९। २० = स्पसौमा

मचंग = ७९०′। ३५″
स्परग = ६१′। २२″
दोनों के अन्तर = ७२९′। १३″

$\therefore \frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{७२९ । १३}$ = २९। ३७

ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष देखने में आता है कि स्पसौमा < स्पचांमा इसलिए क्षयमास का लक्षण कभी होता है यह प्रतीति हुई। लेकिन कब स्पचांमा = स्पसौमा इसके लिए विचार करते हैं।

$$\frac{\text{२१६००}}{\text{मचंग} - (\text{मरग} + \text{रमंगफ})} = \frac{\text{१८००}}{\text{मरग} + \text{रमंगफ}}$$ छेदगम करने से

२१६०० (मरग + रमंगफ) = १८०० {मचंग — (मरग + रमंगफ)}

अपवर्त्तन देनेसे १२ (मरग + रमंगफ) = मचंग — (मरग + रमंगफ) = १२ मरग + १२ रमंगफ = मचंग — मरग — रमंगफ संशोधन करने से १२ मरगफ + १३ रमंग = मचंग — मरग

∴ १३ रमंगफ = मचंग — १३ मरग

$$\therefore \text{रमंगफ} = \frac{\text{मचंग} - \text{१३ मरग}}{\text{१३}} = \frac{\text{मचंग}}{\text{१३}} - \text{मरग} = \text{१ । ४१}$$

इससे सिद्ध होता है कि जब रवि के मन्दगतिफल (१ । ४१) इतना होगा तब स्पचांमा = स्पसौमा ऐसा होगा।

किस स्थान में (१ । ४१) इतना रवि के मन्दगति फल होता है इसके लिए विचार। तत्कोटिजीवाकृतबाणभक्ता इत्यादि से $\frac{\text{लघुकोज्या}}{\text{५४}}$ = १ । ४१ = रमंगफ, लकेन्द्रकोज्या = (१ । ४१) × ५४ = ५४ । २२१४ = ९० । ५४, इसके चाप करते हैं।

$$\frac{(\text{९० । ५४})\ \text{३४३८}}{\text{१२०}} = \frac{(\text{९० । ५४})\ \text{५७३}}{\text{२०}} = (\text{४}' \text{ । } \text{३२}'' \text{ । } \text{४२}''')\ \text{५७३} =$$

२२९२, १८३३६, २४०६६, २६०४ ज्यां प्रोह्यतत्त्वाश्विहतावशेषं इत्यादि से चाप = ४२° । १५′ = केन्द्रकोटि इसलिए केन्द्रांश = (४९।९०) + (०।१५) = १३९ + (०।१५)

रा

= ४ । २९°।१५′ इसमें वर्त्तमानकालीन रविमन्दोच्च जोड़ने से

रा रा रा

(४ । २९° । १५′) + (२ । १८°) = ७ । ७° । १५′ अर्थात् रवि के वृश्चिक में रहने से स्पचांमा = स्पसौमा ऐसा होता है यह सिद्ध हुआ। इसलिए उस काल से लेकर फिर जब एतत्तुल्य गतिफल होगा तावत्काल पर्यन्त क्षयमास पात की सम्भावना होगी। लेकिन नीच स्थान से दोनों तरफ तुल्यान्तर में तुल्य ही गतिफल होता है इसलिए २७० — (४९ । १५)

रा रा

= २२०° । ४५′ = ७ । १०° ४५′ यहां रवि के मन्दोच्च जोड़ने से (७ । १०° ।

रा रा

४५′) + (२ । १८°) = ९ । २८° । ४५ अर्थात् मकरान्त पर्यन्त जब तक रवि जायेंगे तभी तक क्षयमास सम्भव होता है इसलिए भास्कर ने "क्षयः कार्त्तिकादित्रयेनान्यतः" इत्यादि ठीक ही कहा है। जब क्षयमास होना है तब वर्ष के मध्य में दो अधिमास होते हैं। इसके लिए विचार करते हैं॥

जब क्षयमास पात होता है तो स्पष्ट सौरमास स्पष्ट चान्द्रमास के मध्य ही में पर

जाता है तब प्रथम संक्रान्ति बिन्दु में अधिमासानयन से अधिशेष सहित जो गताधिमास आवेगा उनमें अधिशेष बहुत छोटा होता है इसलिए क्षयमास पातकाल से पूर्व मासान्त में अवश्य ही अधिमासपात होता है । इसी तरह इसके देखने ही से अन्त संक्रान्ति-बिन्दु में जो अधिशेष आता है वह किञ्चिन्न्यून एक मास के बराबर होता है इसलिए आगे मासासन्न में अवश्य ही अधिमास पात होगा अतः वर्ष मध्य में दो अधिमास सिद्ध हुए । ये सब बातें भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि में स्पष्ट कही हैं ।।

अथ केषु केषु शाकवर्षेषु क्षयमासोऽभूद्भविष्यत्यादेर्निर्णयार्थं विचार्यते । यदि कार्त्तिकात्पूर्वं कस्मिन्नपि मासेऽधिमासपातस्तदैव कार्त्तिकादित्रये क्षयमाससम्भव इति । किञ्चासावधिमासपातो वर्षाद्यधिशेषस्यार्थात्प्राक्तन प्राक्तन वर्षान्ताधिशेषस्य शुद्धिसंज्ञकस्य वशेनैव भवितुं शक्यत इत्यल्पविचारेणैव स्फुटम् । उक्तशुद्धेरभाव उक्ताधिमासस्याप्यभावात् । अतो यादृशीषु शुद्धिषूक्ताधिमासपातस्तासामेवैकतमा "यदा किलैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदेऽधिमासः" इत्थं भास्करेणोदाहृता वासना भाष्ये । अतस्तद्वत् यदोक्तशुद्धिः = २१ तदा भाद्रपदोऽधिमासः कथमिति विचारः । मेषादिक्रमेण राशीनामाद्यन्तकालीन स्पष्टार्काः = ०, १, १, २, २, ३. . . ११, १२ राशयः एभिर्ज्ञाततात्कालिक मन्दोच्चेन २।१८° स्वस्वमध्यार्काद्विलोमप्रकारेण साध्याः । तत्राऽसन्नयोर्द्वयोर्द्वयोरन्तरेणानुपातेन $\frac{(१ \text{ सा} \times \text{अन्तरक})}{\text{रमग}}$ लब्धदिनानि स्पष्टसौरमासाः शिरोमणेष्टिप्पण्यां ते लिखिताः सन्ति । अथ कन्यार्के पूर्यमाणमासस्य भाद्रत्वेन आदित उक्तपञ्चसौरमासेषु पृथक् पृथक् चैत्रादि स्पष्टचान्द्रमासाः कर्तुं युज्यन्ते स्वस्वस्पष्टाधिशेषावमाय । तत्रर्णखण्डं स्वल्पान्तरान्मध्यमचान्द्रमाससमये व्यतीतम् प्रतिवर्षे तत्काले $\frac{१ \text{ सा} \times २१६००}{\text{मचंग} \pm \text{चंगफ} - (\text{मरग} + \text{रगफ})}$ = स्पचान्द्रमासान्तःपातिसावन । अत्र "चन्द्रगतिफल" अस्य निश्चयाभावात् अथ ते शेषाः

२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०
३०।५५।३३	३१।५८।५६	३१।३७।३२	३१।२८।३५	३१। २।५२
१।२३।४३	१।३३।६	२। ५।४२	१।५६।४५	१।३१। २

१ । २३ । ४३
१ । ३३ । ६
२ । ५ । ४२
१ । ५६ । ४५
१ । ३१ । २
८ । ३२ । १८ = सर्वाधिशेष

स्वल्पान्तरात्स्पष्टभाद्रमासः

(२९ । ३७ । ०) − (८ । ३२ । १८) = २१ । ४ । ३२

अतो यदा किलैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदोधिमास इति युक्तियुक्तमेवेति ।।

अथ यादृश्यां शुद्धौ तदग्रिमे वर्षे उक्ताऽधिमासपातस्तादृशी शुद्धिरग्रे पुनर्यद्वर्षान्ते स्यात्तदग्रिमे वर्षेऽवश्यमुक्ताधिमासपातेन क्षयमाससम्भवः किञ्च यन्मितैर्वर्षैः पूर्णाधिमासा लभ्यन्ते तन्मिता एव समाः (वर्षाणि) उक्तशुद्धिद्वयनिष्ठवर्षा-

न्तयोरन्तरे स्युः कथमिति कथ्यते । वर्षस्यान्तेऽधिमासानयनेन गअमास + शु= सावयवाधिमास तदग्रे पूर्णाधिमासोत्पादकवर्षान्तेऽधिमासानयनेन

गअमा + एक द्वित्र्यधिमास + शुद्धि = गअमा$_{१}$ + शुद्धि = सावयवाधिमास$_{१}$ ∴ सिद्धम्, अथ कियन्मितैर्वर्षैः पूर्णाधिमासास्तज्ज्ञानम् ।

$$\frac{\text{कअमास} \times १}{\text{कल्पसौरवर्ष}} = \frac{१५९३३०००००}{४३२०००००००} = \frac{५३११}{१४४००} = ० + \frac{१}{२ + \frac{१}{१ + \frac{१}{२ + \frac{१}{२ + \frac{१}{६ + \frac{१}{१ + \frac{१}{१ + \frac{१}{७ + \frac{१}{३ + \frac{१}{२}}}}}}}}}}$$

अथाऽऽसन्नमानग्रहणेन क्रमत एकवर्षेऽधिमास

संख्याः = $\frac{०}{१}, \frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{३}{८}, \frac{७}{१९}, \frac{४५}{११२}, \frac{५२}{१४१}, \frac{९७}{२६३}, \frac{७३१}{१८२}, \frac{२२९०}{६२०९}, \frac{५३११}{१४४००}$,

एतद्दर्शनात्स्फुटमेतद्यत् — हरमिते वर्षे भाज्यमितोऽधिमासस्तेन यस्मिन् वर्षे क्षयमासस्तदारभ्य हारमितैर्वर्षैः पुनः पुनः क्षयमाससम्भवः । तत्रातिस्थूलत्वादाद्यचतुष्टयं त्यक्तम् । शेषेषु च १९, ११२, १४१, २६३ एतानि ग्रहीतुं युक्तानि पूर्वापेक्षया सूक्ष्मत्वादल्पदिनात्मकत्वेन लोके प्रतीत्युत्पत्तेश्च । तत्रापि भास्करेण मुख्यतया १९, १४१, इमावेत्र गृहीतौ किञ्च प्रागग्रतश्चेति भास्करभाष्येण १९, १४१ — १९ = १२२, १४१ + १९ = १६०, १४१ एतानि स्वयमेव गृहीतान्यभवन् । युक्तिसिद्धमेव तत् यतो यदा क्षयमासस्ततः पूर्वं परश्च १९ वर्षैः क्षयमास इति युक्त्यैव सिद्धमस्ति । अतो १४१ ऽस्मादपि पूर्वं परतो १९ वर्षैः क्षयमास इति सिद्धम् ।

किञ्च भास्करगृहीतेभ्योऽपि सूक्ष्मस्वल्पदिनात्मकमपि २६३ इदं मानं भास्करेण कथं न गृहीतं तदर्थं सुधाकरद्विवेदिनाऽऽक्षिप्यते ।

कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुवर्षैर्नवेन्द्वाढ्यहीनैः कुवेदेन्दु वर्षैः ।
क्षयाख्या स्थितिर्भास्कराद्यैर्निरुक्ता न रामारिनेत्रैः किमर्थं न वेद्मि ।।

हि. भा.—अब किन किन शाकवर्षों में क्षयमास हो गया है और होगा इसके लिए विचार करते हैं ।

यदि कार्त्तिक से पहले किसी महीने में अधिमास पात होता है तभी कार्त्तिकादित्रय मासों में क्षयमास सम्भव होता है । लेकिन यह अधिमासपात वर्षादि अधिशेष के अर्थात्

पहले-पहले के शुद्धिसंज्ञक वर्षान्ताधिशेष के वश ही से हो सकता है। उस शुद्धि के अभाव से उक्ताधिमास का भी अभाव होता है। इसलिए जिस तरह की शुद्धियों में उक्ताधिमास पात होता है उन्हीं शुद्धियों में एक "यदा किलैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमासः" इस तरह भास्कर कथितोपपत्ति भाष्य में है। इसलिए जब उक्त शुद्धि=२१ तब भाद्रपद अधिमास क्यों होता है इसके लिए विचार। मेषादि क्रम से राशियों के आदि और अन्त-कालिक स्पष्ट रवि=०, १, १, २, २, ३ .... ११, १२ राशि इन पर से विदित तात्कालिक रवि मन्दोच्च के द्वारा अपने अपने मध्यम रवि से विलोम प्रकार से साधन करना। वहां आसन्न के दो दो के अन्तर से अनुपात $\frac{\text{"१ सा} \times \text{अन्तर क"}}{\text{रमग}}$ द्वारा लब्ध दिन स्पष्ट सौर-मास होते हैं जो सिद्धान्तशिरोमणि के टिप्पणी में लिखित हैं।

कन्यार्क में पूरा होने वाले मास को भाद्रमास होने से आदि से उक्त पांचों सौरमासों में अलग अलग चैत्रादि स्पष्ट चान्द्रमासों को करना युक्तियुक्त है अपने अपने स्पष्टाधिशेष और अवम के लिए। वहां ऋणखण्ड स्वल्पान्तर से मध्यम चान्द्रमास समय ही में व्यतीत हो जाता है प्रत्येक वर्ष में तत्काल में $\frac{\text{१ सा} \times \text{२१६००}}{\text{मच ग} \pm \text{च गफ} - (\text{मरग} + \text{रगफ})}$ = स्पष्ट चान्द्र-मासान्तःपाति सावन, इसमें चन्द्रगति फल के निश्चयाभाव से वे शेष अधोलिखित हैं।

२९ । ३१ । ५०	२९ । ३१ । ५०	२९ । ३१ । ५०	२९ । ३१ । ५०	२९ । ३१ । ५०
३० । ५५ । ३३	३१ । ५८ । ५६	३१ । ३७ । ३२	३१ । २८ । ३५	३१ । २ । ५२
१ । २३ । ४३	१ । ३३ । ६	२ । ५ । ४२	१ । ५६ । ४५	१ । ३१ । २

१ । २३ । ४३ — स्वल्पान्तरात्स्पष्टभाद्रमासः=
१ । ३३ । ६ — (२९ । ३७ । ०)—(८ । ३२ । १८)=२१ । ४ । ३२
२ । ५ । ४२ — अतो, यदैकविंशतिः शुद्धिस्तदा भाद्रपदोऽधिमास इत्यादि
१ । ५६ । ४५ — भास्करोक्त युक्तियुक्त सिद्ध हुआ॥
१ । ३१ । २
८ । ३२ । १८=सर्वाधिशेष

अब— जिस तरह की शुद्धि में अग्रिम वर्ष में उक्ताधिमास पात होता है उस तरह की शुद्धियों में फिर जिस वर्षान्त में होता है उससे अग्रिमवर्ष में अवश्य ही उक्ताधिमास पात से क्षयमास सम्भव होता है किन्तु जितने वर्षों में पूर्णाधिमास की उपलब्धि होती है उतने ही वर्ष उक्त शुद्धिद्वयनिष्ठ वर्षान्तद्वय के अन्तर में होते हैं क्यों-ऐसा होता है, तदर्थ युक्ति—

वर्ष के अन्त में अधिमासानयन मे गअमास+शु=सावयवाधिमासः उससे आगे पूर्णाधिमासोत्पादक वर्षान्ति में अधिमासानयन से गताधिमास+एकद्वित्र्यधिमास+शु=गअमा$_1$+शुद्धि=सावयवाधिमास ∴ पूर्वोक्त सिद्ध हुआ॥

कितने वर्षों में पूर्णाधिमास होता है उसके लिए विचार

$$\frac{\text{कअमा} \times १}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{१५९३३००००००}{४३२००००००००} = \frac{५३११}{१४४००} = ० + \frac{१}{२ + \frac{१}{१ + \frac{१}{२ + \frac{१}{२ + \frac{१}{६ + \frac{१}{१ + \frac{१}{१ + \frac{१}{७ + \frac{१}{३ + \frac{१}{२}}}}}}}}}}$$

आसन्नमानग्रहण से क्रम से एक वर्ष में अधिमास संख्या=

$\frac{०}{१}, \frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{३}{८}, \frac{७}{१८}, \frac{४५}{११२}, \frac{५२}{१४१}, \frac{९७}{२६३}, \frac{७३१}{१८२}, \frac{२२९०}{६२०९}, \frac{५३११}{१४४००}$

इनके देखने से स्पष्ट है कि हर तुल्य वर्ष में भाज्य तुल्य अधिमास होता है इसलिए जिस वर्ष में क्षयमास होता है उससे लेकर हार तुल्य वर्षों में फिर फिर क्षयमास सम्भव होता है उनमें अति स्थूलत्व के कारण पहले के चार मानों को छोड़ दिया गया। शेषमानों में १९, ११२, १४१, २६३ ये ग्रहण करने के लिए युक्तियुक्त है उनमें भी भास्कर ने मुख्यरूप से १९। १४१ इन्हीं दोनों को लिया है। किन्तु "प्रागग्रतश्च" इस भास्करभाष्य से १९, १४१−१९=१२२, १४१+१९=१६०, १४१ यह तो स्वयं लिये गये। जब क्षयमास पात होगा उससे पहले और पीछे १९ वर्षों में क्षयमास होगा अतः १४१ इससे भी पहले और पीछे १९ वर्षों में क्षयमास सिद्ध होता है। भास्कर गृहीत वर्षों से भी सूक्ष्म २६३ यह मान भास्कराचार्य ने क्यों नहीं ग्रहण किया। तदर्थ म. म. सुधाकर द्विवेदी जी ने आक्षेप किया है जैसे—

"कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुवर्षैः" इत्यादि ।।२।।

अथाहर्गणानयस्य द्वितीयः प्रकारः।

यातोऽर्कमासनिकरः क्षणदाकराहैर्निघ्नोऽर्कवासरहृतो गगनाग्निनिघ्नः।
तिथ्यन्वितः कुदिनसङ्गुणितो विभक्तश्चन्द्र द्युभिर्दिनगणः खलु वाससैकः ।।३।।

वि. भा.—यातः (गतः) अर्कमासनिकरः (सौरमाससमूहः) क्षणदाकराहैः (युगचान्द्रदिनमानैः) निघ्नः (गुणितः) अर्कवासरहृतः (युगसौरदिनैर्भक्तः) गगनाग्निनिघ्नः (त्रिंशद्भिर्गुणितः) तिथ्यन्वितः (गततिथिसंख्यया युक्तः) कुदिन सङ्गुणितः (युग सावनदिन गुणितः) चन्द्रद्युभिर्विभक्तः (युगचान्द्रदिनैर्हृतः) फलं वा दिनगणः (सावनाहर्गणो भवेत्) दिनपतिज्ञानार्थं यदि अहर्गणः सप्तभक्तः शेषो रव्यादिगणनया वर्त्तमानवारो नागच्छेत्तदाऽहर्गणः सैकः (एकेन सहितः) कार्यः

आचार्येण केवलं 'सैकः' इत्येव कथ्यते परं निरेक करणास्यपि स्थितिर्भवत्यतः "सैको निरेश्च" कथनं युक्तिसङ्गतमिति ।

हि॰ भा॰—गतसौरमाससमूह को युगचान्द्रदिन संख्या से गुणा कर युगसौरमास संख्या से भाग देना फल को तीस (३०) से गुणा करना, गत तिथि संख्या को जोड़ना फिर युग कुदिन संख्या से गुणकर युगचान्द्र दिन से भाग देना तब जो लब्धि होती है वही अहर्गण होता है, उस अहर्गण पर से यदि दिनपति ठीक नहीं आवे तो अहर्गण में एक जोड़ना या घटाना चाहिये तब उस अहर्गण पर से ठीक वर्त्तमान दिन आजायेंगे। यहां आचार्य ने केवल एक जोड़ना ही कहा है, परन्तु कभी कभी एक घटाने की भी स्थिति आजाती है इसलिये एक घटाना भी कहना चाहिये ॥३॥

उपपत्तिः

यदि युगसौरदिनैर्युगचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदा गतसौरदिनैः किमित्यनुपातेन गतसौर दिनसम्बन्धि चान्द्रदिनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगचान्द्रदिन} \times \text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदिन}}$

$= \frac{\text{युगचांदि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदिन}} = \frac{\text{युगचांदि} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} =$ गतसौरदिसं चांदिन । अत्र शुक्ले प्रतिपदादितो वर्त्तमानदिनं यावत्तिथिसंख्यायोजनेन वर्त्तमानदिनं यावत्तिथ्यन्तकालिक चान्द्राहर्गणः $= \frac{\text{युगचांदि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदि}} +$ गततिथि, ततोऽनुपातो यदि युगचान्द्रदिनैर्युगकुदिनानि लभ्यन्ते तदाऽऽनीत चान्द्राहर्गणेन किं समागमिष्यति तत्सम्बन्धि सावनाहर्गणः । अहर्गणतो दिनपतिज्ञानार्थं कदाचित्कदाचिदहर्गणः सैको निरकेश्च कार्यः—एतस्य कारणं (१।२) श्लोकोपपत्तौ मया प्रदर्शितम् ।

हि॰ भा॰—युगसौर दिन में युगचान्द्र दिन पाते हैं तो गतसौर दिनों में क्या इस अनुपात से गतसौर दिन सम्बन्धी चान्द्रदिन प्रमाण आ गया $\frac{\text{युगचांदि} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} =$ $\frac{\text{युगचांदि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदि}} =$ गतसौरदिसंचान्द्रदिन, इसमें वर्त्तमान महीना के शुक्ल प्रतिपदा से वर्त्तमान दिन तक तिथिसंख्या जोड़ने से वर्त्तमान दिन तक चन्द्राहर्गण हुआ, $\frac{\text{युगचांदि} \times \text{गतसौरमास} \times ३०}{\text{युगसौरदि}} +$ गततिथि $=$ चान्द्राहर्गण । तब अनुपात करते हैं कि युग-चान्द्रदिन में युगकुदिन पाते हैं तो चान्द्राहर्गण में क्या आ जायगा तत्सम्बन्धी सावनाहर्गण, अहर्गण से दिनपतिज्ञान के लिये कभी-कभी अहर्गण में एक जोड़ा जाता है, या घटाया जाता है। इसका कारण १।२ श्लोकों की उपपत्ति में दिखला चुके हैं इति ॥३॥

पुनरहर्गणानयनम् ।

युगक्वहघ्ना रवियातवासराः समन्विताः सूर्यदिनोत्थशेषकैः ।
विभाजिताः सूर्ययुगोत्थवासरैरहर्गणः स्यादथवैकसंयुतः ॥४॥

वि. भा.—रवियातवासराः (गतसौरदिवसाः) युगक्वहघ्नाः (युगकुदिनगुणिताः) सूर्यदिनोत्थशेषकैः (अहर्गणसम्बन्धि सौरदिनशेषैः) समन्विताः (युक्ताः) सूर्ययुगोत्थवासरैः (युगसौरदिनैः) विभाजिताः (भक्ताः) अथवाऽहर्गणः भवेत् । एकसंयुतः (एकयुतः) तदा वास्तवाहर्गणः स्यात् (अहर्गणे सप्तभक्ते यद्यभीष्टवारो नागच्छेत्तदाऽहर्गणः सैकोऽथवा निरेकश्च कार्यः) इति ।।४।।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैर्युगसौरदिनानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन सशेषागतसौरदिवसाः समागतस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगसौदि} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतसौदि} + \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$ पक्षौ 'युकुदि' गुणितौ तदा युगसौदि,अहर्गण$=$युकुदि गतसौदि$+$शे पुनः पक्षौ 'युसौदि' भक्तौ तदा $\frac{\text{युकुदि. गतसौदि} + \text{शे}}{\text{युसौदि}}$ $=$ अहर्गणः, अनेनाचार्येणाऽहर्गणे सर्वत्रैवाभीष्टवारज्ञानार्थं सैककरणमेव लिखितं कुत्रापि निरेककरणस्य चर्चा न कृता, सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्यहर्गणानयनेषु सकैकरणमेव लिखितं परमियं त्रुटिरस्ति । निरेककरणस्यापि स्थितिर्भवति, सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येण सैककरणं निरेककरणश्चाभिहितं यथा

अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत् ।
तदाऽधिमासावमशेषके न कल्पाधिमासावमयुक्तहीने ।।

हि. भा.—गत सौर दिन को युगकुदिन से गुण देना शेष (अहर्गण सम्बन्धी सौरदिन शेष) जोड़कर युगसौरदिन में भाग देने से अहर्गण होता है । अहर्गण में एक जोड़ने से वास्तवाहर्गण होता है । अभीष्टदिन ज्ञानार्थ अहर्गण में सात से भाग देने से एक आदि शेष रहने पर रवि आदि दिन समझना चाहिये, अहर्गण में सात से भाग देने से यदि दिन ठीक आवे तो अहर्गण को शुद्ध समझना चाहिये । यदि एक दिन का अन्तर हो तो एक जोड़कर या कहीं घटाकर भी अहर्गण लेना चाहिये, यदि अधिक दिन का अन्तर पड़े तो अहर्गण को अशुद्ध समझना चाहिये । वहां पुनः जांच के लिये गणित करनी चाहिये ।।४।।

उपपत्ति

यदि युग कुदिन में युगसौर दिन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से शेष सहित गत सौरदिन आते हैं । $\frac{\text{युगसौरदि} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतसौरदि} + \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ दोनों पक्षों को "युकुदि" से गुणने से युगसौदि. अहर्गण$=$युकुदि. गतसौदि$+$शे फिर दोनों पक्षों को

"युगसौदि" से भाग देने से $\frac{\text{युकुदि. गतसौदि} + \text{शे}}{\text{युसौदि}}$ = अहर्गण,

ग्रन्थकार अहर्गण में सब जगह एक जोड़ना ही कहते हैं परन्तु अहर्गण-पर से इष्ट दिन लाने पर यदि ठीक नहीं आता है तो अहर्गण में कहीं एक जोड़ा जाता है। सिद्धान्त-शेखर में श्रीपति ने भी अहर्गणानयनों में प्रत्येक स्थान में एक जोड़ना ही लिखा है किसी प्रकार में अहर्गण निरेक (एक घटाना) करने को नहीं लिखा है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्त-शिरोमणि में दोनों बातें (सैक करना, निरेक करना) लिखा है अर्थात् साधित अहर्गण पर इष्टवार ज्ञान के लिये यदि अहर्गण में एक जोड़ने से अभीष्टवार आवे तो एक जोड़ना यदि एक घटाने से ही इष्टवार आवे तो एक घटा देना चाहिये। जैसे "अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत्सैक" इत्यादि ।।४।।

पुनः प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम् ।

वृद्धयहावम-विशेष-सङ्गुणाः प्रेतसूर्यदिवसा विभाजिताः ।
प्रोक्तवद्रविदिनैस्त्वहर्गणः सैकयात रविवासरान्विताः ।। ५ ।।

वि. भा.—प्रेतसूर्यदिवसाः (गतसौरवासराः) वृद्धयहावमविशेषसङ्गुणाः (युगावमाधिदिनान्तरगुणिताः) रविदिनैः (युगसौरदिनैः) विभाजिताः (भक्ताः) सैकयात रविवासरान्विताः (एकसहित गतसौरदिनयुताः) तदा पूर्ववदहर्गणो भवेदिति ।। ५ ।।

अस्योपपत्तिः

अथ युचान्द्रदि—युसावनदि=युअवमदि ।
युचांदि—युसौरदि=युगाधिदिन

अनयोरन्तरेण

युचांदि—युसौदि—(युचांदि—युसावदि)=युगाधिदि—युगावमदि
=युगचांदि—युसौरदि—युगचांदि+युसावनदि
=युगसावनदि—युगसौदि=युगाधिदि—युगावमदि

ततोऽनुपातो यदि युगसौरदिनैरिदं युगाधिदिनावमान्तरं लभ्यते तदा गत-सौरदिनैः किमित्यनुपातेनेष्ट सावनदिनेष्ट सौर दिनयोरन्तरम्=

$$\frac{(\text{युगाधिदि}-\text{युगावमदि})\text{गसौदि}}{\text{युसौदि}} = \frac{(\text{युगसावनदि}-\text{युगसौदि})\ \text{गसौदि}}{\text{युगसौदि}} =$$

$$= \text{इष्टसावनदि}-\text{इसौरदि} = \text{गताहर्गण}-\text{गतसौरदि}$$

$$\therefore \frac{(\text{युगाधिदि}-\text{युगावमदि})\ \text{गसौदि}}{\text{युसौदि}} + \text{गसौदि} = \text{गताहर्गणः}$$

अत्रेष्ट वार ज्ञानार्थमहर्गणः सैको निरेकश्च कार्यः परमाचार्येण निरेककरणं न कथ्यते । एतावताचार्योक्तमुपपन्नम् ।। ५ ।।

हि. भा.—गतसौर दिन को युग के अधिमास दिन और अवम के अन्तर से गुणकर युगसौर दिन से भाग देने से जो फल हो उसमें गतसौर दिन और एक जोड़ने से अहर्गण होता है ॥ ५ ॥

उपपत्ति

युगचांदि—युसावनदि = युगावम
युचांदि—युगसौरदि = युगाधिदिन   दोनों के अन्तर करने से

युचांदि — युसौदि — (युचांदि — युगसावनदि) = युचांदि — युसौदि — युचांदि + युसायदि = युसादि — युसौदि = युगाधिदि — युगावमदि

अब इस पर से अनुपात करते हैं यदि युगसौर दिन में युगाधिदिन औत अवम का अन्तर पाते हैं तो गतसौरदिन में क्या इस अनुपात से इष्टसावनदिन और इष्टसौर (गतसौर) दिन का अन्तर आया, $\frac{(\text{युगाधिदिन} - \text{युगावम})}{\text{युगसौ}}$ = इसावनदि — इष्टसौदि = गताहर्गण — गसौदि

$\therefore \frac{(\text{युगाधिदि} - \text{युगावम})\ \text{गसौदि}}{\text{युसौदि}} + \text{गसौदि} = \text{गताहर्गण}$

अहर्गण से इष्टवार ज्ञान के लिये अहर्गण में एक जोड़ना या घटाना चाहिये। परन्तु आचार्य एक घटाने के लिये नहीं कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ स्फुटाधिमासशेषज्ञानम्

भूदिनैरधिकशेषमाहतं वाऽधिकैरवमशेषमेतयोः ।
संयुतिः शशधरद्युभाजिता स्यात्स्फुटं त्वधिकमासशेषकम् ॥ ६ ॥

वि. भा.—अधिकशेषं (अधिमासशेषं) भूदिनैः (युगकुदिनैः) आहतं (गुणितं) वा अवमशेषम् (क्षयशेषम्) अधिकैः (युगाधिमासैः) गुणितं, एतयोः संयुतिः (योगः) शशधर द्युभाजिता (युगचान्द्रदिन-भक्ता) तदा स्फुटं (सूक्ष्मं) अधिकमासशेषकं स्यादिति ॥ ६ ॥

अत्रोपपत्तिः

अथ $\frac{\text{युगावम} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ समशोधनेन

$\frac{\text{युगावम} \times \text{अपर्गण}}{\text{युकुदि}} - \frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम}$, अत्राहर्गणयोजनेन

जातानि गतचान्द्रदिनानि $= \frac{\text{युगावम} \times \text{अहर्गण} - \text{अवशे}}{\text{युकुदि}} + \text{अहर्गण}$

$= \frac{\text{युअवम} \times \text{अहर्गण} + \text{युकुदि} \times \text{अहर्गण} - \text{अयशे}}{\text{युकुदि}} =$

$$\frac{\text{अहर्गण (युअवम+युकुदि)—अवशे}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{अहर्गण}\times\text{युचदि—आंवशे}}{\text{युकुदि}}$$

ततोऽनुपातेन सशेषा गताधिमासा: $= \frac{\text{युअमा} \times \text{गतचांदि}}{\text{युचांदि}} =$

$$\frac{(\text{अहर्गण} \times \text{युचांदि} - \text{अवशे})\ \text{युअमा}}{\text{युचांदि} \times \text{युकुदि}} = \text{गताधिमा} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांदि}}$$

$$\frac{\text{अहर्गण} \times \text{युचांदि} \times \text{युअमा} - \text{अवशे} \times \text{युअमा}}{\text{युचांदि} \times \text{युकुदि}} = \text{गताधिमा} +$$

$\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांदि}}$ पक्षौ युगकुदिनैर्गुणितौ तदा

$$\frac{\text{अहगण}\times\text{युचांदि}+\text{युअमा—अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचांदि}} = \left(\text{गताधिमा}+\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांदि}}\right)\text{युकु}$$

$$=\text{अहर्गण}\times\text{युअमा}—\frac{\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचांदि}} = \text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\frac{\text{अधिशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचांदि}}$$

समयोजनेन

$$\text{अहर्गण}\times\text{युअमा} = \text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\frac{\text{अवशे}\times\text{युकुदि}}{\text{युचांदि}}+\frac{\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचांदि}}$$

$$= \text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\frac{\text{अधिशे}\times\text{युकुदि}+\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचांदि}}$$

$= \text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\text{स्पष्टाधिशेष}$

$\therefore \text{अहर्गण} = \frac{\text{गअमा}\times\text{युकुदि}+\text{स्पष्टाधिशे}}{\text{युअमा}}$ =एतेन "गताधिकघ्ना:

स्फुटशेषसंयुता इत्याद्यप्युपपद्यते" तथोपरिलिखितोपपत्तौ

$\frac{\text{अधिशे}\times\text{युकुदि}+\text{अवशे}\times\text{युअमा}}{\text{युचांदि}}$ =स्पष्टाधिमासशेष एतेन च "भूदिनैर-

धिकशेषमाहतं वाऽधिकै:" इत्यादि सिद्धमिति सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिना-प्येतदनुरूपमेव कथ्यते। यथा

कल्पोत्थाधिकमासभूमिदिवसैरूनाधिशेषे हृते
तद्योग: शशिवासरै: सविहृत: स्पष्टाधिशेषो भवेत्।
क्ष्माहघ्नोऽथ गताधिमासनिचय: स्पष्टाधिशेषान्वित:
कल्पोत्थाधिकमासहृद्दिनगणा: स्यु: पूर्ववन्मध्यमा:॥

ब्रह्मगुप्तेनाप्येतदेव कथ्यते। यथा—

गुणमधिमासकशेषं युगकुदिनैरवमशेषमधिमासै:।
तद्युतिरिन्दुदिनहृताऽधिमासशेषं स्फुटं भवति॥

भूदिन गताधिमासकघातः स्पष्टाधिमासशेषयुतः
भक्तो युगाधिमासैरहर्गणः पूर्ववन्मध्याः ॥ इति ॥६॥

हि० भा.—अधिशेष को युगकुदिन से गुण देना और अवमशेष को युगाधिमास से गुण देना, दोनों के योग में युगचान्द्रदिन से भाग देने से स्फुट अधिमास शेष होता है ॥६॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{युगवांम} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$$ समशोधन करने से

$$\frac{\text{युगावम} \times \text{अहर्गण} - \text{अवशे}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम}$$, इसमें अहर्गण को जोड़ने से गतचन्द्र दिन होंगे

$$\frac{\text{युगावम} \times \text{अहर्गण} - \text{अवशे}}{\text{युकुदि}} + \text{अहर्गण} = \text{गताचान्द्रदिन} \text{ ।}$$

$$= \frac{\text{युगावम} \times \text{अहर्गण} - \text{अवशे} \times \text{अहर्गण} \times \text{युकुदि}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{अहर्गण}(\text{युगावम} + \text{युकुदि}) - \text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$$

$$= \frac{\text{अहर्गण} \times \text{युचांदि} - \text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$$ अब अनुपात से $$\frac{\text{युअमा} \times \text{गचांदि}}{\text{युचांदि}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांदि}}$$

$$= \frac{(\text{अहर्गण} \times \text{युचांदि} - \text{अवशे})\ \text{युअमा}}{\text{युकुदि} \times \text{युचांदि}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांदि}}$$

$$= \frac{\text{अहर्गण} \times \text{युचांदि} \times \text{युअमा} - \text{अवशे} \times \text{युअमा}}{\text{युकुदि} \times \text{युचांदि}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांदि}}$$

दोनों पक्षों को "युकुदि" से गुण देने से

$$\frac{\text{अहर्गण} \times \text{युचांदि} \times \text{युअमा} - \text{अवशे} \times \text{युअमा}}{\text{युचांदि}} = \text{युकुदि} \times \text{गताधिमा} + \frac{\text{अधिशे. युकुदि}}{\text{युचांदि}}$$

$$\text{अहर्गण} \times \text{युअमा} - \frac{\text{अवशे. युअमा}}{\text{युचांदि}} = \text{युकुदि. गताधिमा} + \frac{\text{अधिशे. युकुदि}}{\text{युचांदि}}$$

दोनों पक्षों में $\frac{\text{अवशे} \times \text{युअमा}}{\text{युचांदि}}$ जोड़ने से

$$\text{अहर्गण} \times \text{युअमा} = \text{युकुदि. गताधिमा} + \frac{\text{अधिशे. युकुदि}}{\text{युचांदि}} + \frac{\text{अवशे. युअमा}}{\text{युचांदि}}$$

यहां $\frac{\text{अधिशे. युकुदि} + \text{अवशे. युअमा}}{\text{युचांदि}} = \text{स्फुटाधिमासशे} \ldots (१)$

तब अहर्गण युअमा $=$ युकुदि. गताधिमा $+$ स्फुटाधिशे

$$\therefore \frac{\text{युकुदि. गणाधिमा} + \text{स्फुटाधिशे}}{\text{युअमा}} = \text{अहर्गण}$$, इससे "गताधिकघ्नाः स्फुटशेषसंयुताः"

इत्यादि उत्पन्न हुआ, और (१) इससे "भूदिनैरधिकशेषमाहतं वाऽधिकैः" इत्यादि उपपन्न हुआ ।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं । जैसे —
"कल्पोत्थाधिकमास भूमिदिवसैरूनाधिशेषे हते" इत्यादि ।

ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं । जैसे "गुणमधिमासकशेषं" इत्यादि ।

प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम् ।

गताधिकघ्नाः स्फुटशेषसंयुताः कुवासराश्च द्यु गणोऽधिकोद्धृताः ।

वि. भा.—कुवासराः (युगकुदिवसाः) गताधिकघ्नाः (गताधिमासगुणिताः) स्फुटशेषसंयुताः (स्फुटाधिमासशेषयुक्ताः) अधिकोद्धृताः (युगधिमासभक्ताः) तदा द्युगणः (अहर्गणः) भवेदिति ।।

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोको (६ श्लोक) पपत्तौ द्रष्टव्येति ।

हि. भा.—युग कुदिन को गताधिमास में गुण देना, स्फुटाधिमास शेष को जोड़कर युगाधिमास से भाग देने से अहर्गण होता है ।

इसकी उपपत्ति पूर्वश्लोक (६ श्लोक) की उपपत्ति में देखिये ।

पुनः प्रकारेणाहर्गणानयनम् ।

सशेष यातावम भूदिनाहते युगावमैर्लब्धमहर्गणोऽथवा ।।७।।

वि. भा.—अथवा सशेषयातावमभूदिनाहते (युगकुदिनसशेषगतावमयोर्घाते) युगावमैर्भक्ते लब्धं (फलं) अहर्गणो भवेदिति ।।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैर्युगावमानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति सशेषाणि गतावमानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युअव. अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}$

पक्षौ "युकुदि" गुणितो तदा युअव. अहर्गण $=$ युकुदि. $\left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)$

ततः $\frac{\text{युकुदि.}\left(\text{गतावम} + \frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युअव}} = \text{अहर्गण}$

अत उपपन्नम् ।।७।।

हि.भा.—युग कुदिन और शेष सहित गतावम के घात में युगावम में भाग देने से अहर्गण होता है ।।

उपपत्ति

"यदि युगकुदिन में युगावम पाते हैं तो अहर्गण में क्या" इस अनुपात से शेष सहित

गतावम का प्रमाण आता है, $\frac{\text{युअव. अहर्गण}}{\text{युकुदि}}=\text{गतावम}+\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ दोनों पक्षों को "युकु" के गुणने से युअव. अहर्गण=युकुदि $\left(\text{गतावम}+\frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}\right)$ दोनों पक्षों को "युअव" से भाग दें जैसे $\frac{\frac{\text{युकुदि (गतावम + अवशे)}}{\text{युकु}}}{\text{युअव}}$ = अहर्गण, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥७॥

अथ शुद्धिदिनज्ञानमाह

शशधरभगणघ्ने यातसूर्यद्युराशौ युगरविदिनभक्ते मण्डलादिः शशाङ्कः ।
त्रिकुहतदिनहीनोऽसौ च भागादिकोऽक्षैरपिहतगतवर्षैरन्वितः शुद्ध्यहानि ॥८॥

वि.भा.—यातसूर्यद्युराशौ (गतसौरदिने) शशधरभगणघ्ने (युगचन्द्रभगण-गुणिते) युगरविदिनभक्ते (युगसौरदिनभक्ते) तदा मण्डलादिः (भगणादिः) शशाङ्कः (चन्द्रः) स्यात् असौ चन्द्रः त्रिकुहतदिनहीनः (त्रयोदशगुणित सौरदिन-रहितः) भागादिकः कार्यः, अक्षैर्हतगतवर्षैः (पञ्चगुणित गतवर्षैः) अन्वितः (सहितः) तदा शुद्धिदिनानि भवन्ति ॥८॥

हि. भा.—गतसौरदिनकरे युगचन्द्र भगण से गुण देना, युगसौर दिन से भाग देने पर भगणादिचन्द्र होते हैं। उसमें तेरह गुणित सौरदिन घटाकर अंशादिक करना, उसमें पञ्चगुणित गत वर्ष जोड़ने पर शुद्धिदिन होते हैं ॥८॥

अत्रोपपत्तिः

अथ $\frac{\text{युगचन्द्रभगण}\times\text{अहर्गण}}{\text{युगकुदि}}$ = अहर्गणसम्बन्धि = १३ × असंर + अधिमास

∴ भगणादिचं—१३ भगणादिरपि = अमास परं $\frac{\text{युचंभगण}\times\text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}}$ = भगणादिचं

∴ भगणादिचं—१३भगणादिरवि = $\frac{\text{युचंभगण}\times\text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदि}}$ — १३भगणादिर = अधिमास

एकस्मिन् वर्षे क्षयाहाद्यम् = ५।४८।२२।७।३० अत्र पञ्चातिरिक्तावयवान् विहाय केवलं पञ्च गृहीता कदा पञ्चगुणित गतवर्षयोजनेन यद्भवति तस्यैव नाम "शुद्धिदिनम्" रसितमाचार्येण, अत्र त्रिकुहदिनहीनस्थाने (त्रिकुहतरविहीनः) इति पाठः समुचितः प्रतिभाति. ॥८॥

$\frac{\text{युगचन्द्रभगण}+\text{अहर्गण}}{\text{युकुदिन}}$ = अहर्गणसंभगणादिचन्द्रः = १३ × असंर + अधिमा

∴ भगणादिचं—१३ × भणादिरवि = अभास =

$$\frac{\text{युगचंभगण} + \text{गतसौदिन}}{\text{युगसौरदि}} = \text{भगणादिचन्द्र}$$

अतः भगणादिचं—१३ भगणादिरवि = अमास = $\frac{\text{युगचंभ} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}}$ — १३ भगणादिरवि

हि.भा.—एक वर्ष में क्षयदिनादि=५।४८।२२।७।३० यहाँ पर केवल पाँच लेकर बाकी अवयव को छोड़ दिया गया तब ५ × गतवर्ष उसमें जड़ने से जो होता है उसका नाम शुद्धिदिन कहते हैं। अर्थात्

$$५\ \text{गव} + \frac{\text{युगचंभगण} \times \text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदि}} - १३\ \text{भगणादिरवि} = \text{शुद्धिदिन}$$

यहां "त्रिकुहत दिनहीनोऽसौचभागादिक" इत्यादि इसके स्थान पर "त्रिकुहतरवि से हानीऽसौच भागादिकः" ऐसा पाठ उचित मालूम होता है ॥८॥

प्रकान्तरेणाहर्गणसाधनमाह।

भोदयैर्गतखरांशुवासराः संगुणा युगदिनेशवासरैः।
भाजिताः कथितशुद्धिवर्जिताः स्याद्द्युराशिरथवैकसंयुतः ॥९॥

वि. भा. — गतखरांशुवासराः (गतसौरदिवसाः) भोदयैः (युगभोदय-संख्याभिः संगुणाः (गुणिताः) युगदिनेशवासरैः (युगसौरदिनैः) भाजिताः (भक्ताः) कथितशुद्धिवर्जिताः (८ श्लोकानीतशुद्धिदिनै रहिताः) तदा द्युराशिः (अहर्गणः) स्यादिति ॥९॥

हि. भा. —गत सौरदिन संख्या को युगीय भोदय संख्या से गुण देना युगसौरदिन से भाग देना फल में पूर्व कही हुई शुद्धि को घटाने से अहर्गण होता है ॥९॥

उपपत्ति

यदि युगसौरदिनैर्युग भोदय संख्या लभ्यते तदा गतसौरदिनैः किमिन्यनुपातेन गतसौरदिनसम्बन्धि नाक्षत्रदिनानि तत्स्वरूपम् $\frac{\text{युगभोदय} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदिन}}$

अत्र यदि शुद्धिदिनानि ऊनीक्रियन्ते तदाऽहर्गणो भवेदिति ॥९॥

यहां गतसौरवर्ष सम्बन्धी नाक्षत्रदिन लाते हैं। यदि युगसौरदिन युगभोदय पाते हैं तो गतसौरदिन में क्या इस अनुपात से गतसौरदिन सम्बन्धी नाक्षत्र दिन प्रमाण आया $\frac{\text{युगभोदय} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}}$ इसमें शुद्धिदिन के घटाने से अहर्गण होता है ॥९॥

पुनः प्रकारारान्तरेणाहर्गणज्ञानं तथा दिनशुद्धिज्ञानञ्चाह।

भोदयार्क भगणान्तरेण वा प्रोक्तवद्दिनगणोऽर्कवत्सरः ॥१०॥
नवाष्टरामांग रसैः समाहतः खखाभ्रषट्क प्रविभाजितः फलम्।
खरामशेषं दिनशुद्धिरिष्यते मधोः सितादेर्दिवसैर्दिनाब्दपः ॥११॥

वि. भा.— वा (अथवा) भोदयार्कभगणान्तरेण (युगपठित भोदय-रवि-भगणयोरन्तरेण) प्रोक्तवत् (पूर्वकथितरीत्या) दिनगणः (अहर्गणः) ज्ञेयः। अर्कवत्सरः (गतसौरवर्षसमूहः) नवाष्टरामाङ्गरसैः समाहतः (६६३८९ एतैर्गुणितः) खखाभ्रषट्कप्रविभाजितः (६००० एभिर्भक्तः) फलं (लब्धं) खरामशेषं (त्रिंशद्भक्तावशिष्टं) मधोः सितादेर्दिवसैः (चैत्रशुक्लप्रतिपदादिदिनैः) दिनशुद्धिः (शुद्धिदिनसंज्ञकं) इष्यते (कथ्यते) ततो दिनाब्दपः (दिनपतिर्वर्षपतिश्च) भवेदिति ॥ १०-११ ॥

अत्रोपपत्तिः।

भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानितानिवेत्यादिना
युभभ्रम—युरविभगण=युकुदिन=युगसावनाहर्गणः ।

अथैकवर्षेऽधिदिनानि=११ । ३ । ५२ । ३० । ० = १०+१ वसंदिनाद+१ वर्षसंअवमादि

$$\text{ततोऽनुपातेन गताधिमासः} = \frac{\text{१ वर्ष संअधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}} =$$

$$= \frac{(\text{१०}+\text{१ वर्षसंदिनादि}+\text{१ वर्षसंअवमादि}) \times \text{गतवर्ष}}{\text{३०}}$$

अत्र भाज्ये गतवर्षातिरिक्तानि खण्डानि मिलित्वा ६००० वर्षैः ६६३८९ इति भवन्ति तदा गताऽधिमासाः= $\frac{\text{६६३८९} \times \text{गतवर्ष}}{\text{३०} \times \text{६०००}}$, अधिदिनात् त्रिंशता भागे हृते कल्पगताधिमासा जायन्ते शेषश्च चैत्रादि प्रथमार्कोदयस्य रविमण्डलस्य च मध्ये सावनोऽहर्गणो भवति यस्य नाम शुद्धिदिनम्। ततः कल्पगताब्ददिनयुतौ वारस्तिष्ठति। वारश्चैष सावनात्मकः। शुद्धिदिनमपि सावनात्मकम्, तेन वर्षदिनयोगे दिनशुद्धेर्विशोधनेन येऽवशिष्टास्तावन्तो वाराश्चैत्रादेर्गताः स्युः। रूपं च शुद्धेः सविकलत्वाद्दीयतेऽन्यथारूपयोजनस्याऽऽवश्यका न भवेत् ततः सप्तभक्ते शेषश्चैत्रादौ वाराधिपतिर्भवत्येवमेव वर्षपतिश्चेति ॥१०-११॥

हि. भा. —युग पठित भोदय और रविभगण का अन्तर करने से अहर्गण होता है। गतसौरवर्ष को ६६३८९ इनसे गुणकर ६००० इतने से भाग देना जो लब्धि हो उसमें तीस से भाग देने से जो शेष रहता है चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से दिन शुद्धि कथित है इस पर से वर्षपति और दिनपति के ज्ञान होते हैं ॥१०-११॥

उपपत्ति

"भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य कुदिनानि तानि वा" इस नियम से युगभोदय—युरभगण=युकुदि।

एक वर्ष में अधिदिन=११ । ३ । ५२ । ३० । ० = १०+१ वर्ष संदिनादि+

१ वर्ष संग्रवमादि इससे अनुपात द्वारा गताधिमास $= \frac{\text{१ वर्ष संग्रधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}}$

$= \frac{(\text{१०} + \text{१ वर्ष संदिनादि} + \text{१ वर्षसंग्रवमादि})\ \text{गतवर्ष}}{\text{३०}}$ यहां भाज्य में गतवर्ष के अतिरिक्त

जो खण्ड सब हैं वे मिलकर ६००० वर्षों ६६३८९ होते हैं तब गताधिमास $=$

$\frac{\text{६६३८९} \times \text{गतवर्ष}}{\text{३०} \times \text{६०००}}$ अधिदिन को तीस से भाग देने से गताधिमास होते है शेष चैत्रादि प्रथम-सूर्योदय और रविवर्षान्त के बीच में सावनाहर्गण होता है इसी का नाम शुद्धिदिन है। गत-वर्ष दिनयोग करने से दिनसमूह सावनात्मक होता है शुद्धिदिन भी सावनात्मक है। इसलिये वर्ष दिन योग में शुद्धिदिन को घटाने से जो शेष रहता है वे चैत्रादि से गतदिन है। शेष सहित शुद्धि के रहने से एक उसमें जोड़ना चाहिये यदि शुद्धि शेषसहित न रहे तो एक जोड़ने की जरूरत नहीं है। सात से भाग देने से चैत्रादि में वारपति होते हैं। एवं वर्षपति भी होते हैं ॥ १०-११ ॥

पुनरहर्गणानयनमाह

विश्वरामनवमङ्गलैककैस्ताड़िता गतसमा विभाजिताः ।
खाभ्रखाङ्ग दहनैरवाप्तकं शुद्धिहीनमथ चैत्र शुक्लतः ॥१२॥
वासरैर्युतमवमवर्जितं वर्षवासरयुतं दिवागणः ।

वि. भा.—गतसमाः (गतसौरवत्सराः) विश्वरामनवमङ्गलैककैः (१८९३१३ एभिः) ताडिताः (गुणिताः) खाभ्रखाङ्गदहनैः (३६०००) विभाजिताः (भक्ताः) अवाप्तकं (लब्धं) शुद्धिहीनं (शुद्धिदिनरहितं) चैत्रशुक्लतो वासरैः (चैत्रशुक्ल-प्रतिपदादित इष्टदिनं यावत्दिनैः) युतं (सहितं) अवमवर्जितं, वर्षवासरयुतं (३६० दिनसहितं) तदा दिवागणः (अहर्गणः) भवेदिति ॥१२½॥

अत्रोपपत्तिः

एकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्यम् = ३६५ । १५ । ३१ । १५ । ० ततो गतवर्ष-सम्बन्धि दिनाद्यम् = (३६५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष = (३६०+५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष अत्र १५ । ३१ । १५ इति ६०० वर्षैः ९३१३ भवति तदा $\left(\text{३६०} \times \text{५} \frac{\times \text{९३१३})\ \text{गतवर्ष}}{\text{६००}}\right.$ पुनः ५ एतेन सवर्णनेन $\left(\text{३६०} + \text{५} + \frac{\text{९३१३}}{\text{३६०००}}\right)$ गतवर्ष

$= \frac{(\text{३६०} + \text{१८००००} + \text{९३१३})\ \text{गतवर्ष}}{\text{३६०००}} = \text{३६० गव} + \frac{\text{१८९३१३ गतवर्ष}}{\text{३६०००}} =$ गतवष सम्बन्धि दिनादि; अत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदादितदिनसंख्यायोजनेन तत्र शुद्धि न विशोध-नेन च क्षयघटी विशोधनेनाहर्गणो भवेदिति ॥ १२½ ॥

हि. भा.—गतसौरवर्ष को १८९३१३ इतने से गुण कर ३६००० इससे भाग देकर

जो लब्धि हो उसमें शुद्धि दिन को घटा देना चैत्र शुक्लादि से दिन संख्या जोड़ देना अवम को घटा देना और वर्ष की दिनसंख्या ३६० जोड़ देना तब अहर्गण होता है ॥१२$\frac{१}{२}$ ॥

उपपत्ति

एक वर्ष में सावनदिनादि=१६५ । १५ । ३१ । १५ । ० तब गतवर्ष सम्बन्धी सावन दिनादि प्रमाण=(३६५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष=(३६०+५ । १५ । ३१ । १५) गतवर्ष यहां १५ । ३१ । १५ ये ६०० वर्षों में ९३१३ इतने होते हैं तब (३६०+५ । $\frac{९३१३}{६००}$)गत वर्ष फिर ५ इसके साथ सवर्णन करने से $\left(३६०+५+\frac{९३१३}{६००\times ६०}\right.$ गतवर्ष $=\left(३६०+५+\frac{९३१३}{३६०००}\right)$गतवर्ष$=\left(३६०+\frac{१८००००+९३१३}{३६०००}\right)$गतवर्ष$=\left(३६०+\frac{१८९३१३}{३६०००}\right)$ गतवर्ष = ३६० गव $+\frac{१८९३१३ \text{ गतवर्ष}}{३६०००}$=गतवर्ष सम्बन्धिदिनादि, इसमें चैत्र शुक्लादि से दिनसंख्या जोड़ने तथा शुद्धिदिन घटाने से जो हो उसमें क्षयाह घटाने से अहर्गण होता है ॥ १२$\frac{१}{२}$ ॥

पुनरहर्गणानयनम् ।

विश्वराम नवभिः समाहताः खाभ्रषट्कविहृताः फलं च यत् ॥१३॥
प्राग्वदक्षरसरामसंगुणैरब्दकैर्युतमहर्गणोऽथवा भवेत् ।

वि. भा.—समाः (गतसौरवत्सराः) विश्वराम नवभिः (९३१३ एभिः) समाहताः (गुणिताः) खाभ्रषट्क विहृताः (६०० भक्ताः) यत्फलं भवेत्तत् प्राग्वत् (पूर्ववत्) अक्षरसराम संगुणैः (३६५ गुणितैः) अब्दकैः (गतवर्षैः) युतं (सहितं) अथवाऽहर्गणो भवेदिति ॥१३$\frac{१}{२}$॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथैकस्मिन् वर्षे सावन दिनाद्यम्=३६५।१५।३१।१५ ततोऽनुपातेन गतवर्ष-सम्बन्धि दिनाद्यम्=गव×३६५+गव (१५।३१।१५) अत्रै १५।३१।१५ तत् ६०० वर्षै ९३१३ रेतत्तुल्यं भवति तदा गतवर्षसन्बन्धि $\frac{९३१३}{६००}$ फलमानीया "३३५ गव" ऽत्र योजनेनाहर्गणो भवेत् ३६५ गव$+\frac{९३१३ \text{ गव}}{६००}$=अहर्गण

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनेतः किञ्चिदधिकं कथ्यते, यथा—
विषय रसगुणघ्ने कल्पयाताब्दराशौ
सविकल दिवसाद्यं चाब्दिकाहर्गणं च ।
क्षिप भवति स राशिः सावनानां दिनानां
नियतमधिकमासैरूनरात्रैर्विनापि ॥ इति ॥१३$\frac{१}{२}$॥

हि.भा.—गत सौर वर्ष को ९३१३ इतने से गुण कर ६०० से भाग देकर जो लब्धि हो उसको ३६५ गुणित गत वर्ष में जोड़ने से अहर्गण होता है ॥१३$\frac{१}{२}$॥

उपपत्ति

हि. भा.—एक सौर वर्ष में सावनदिनाद्य =३६५।१५।३१।१५ अनुपात से गत वर्ष सम्बन्धी दिनाद्य =गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५) यहां १५।३१।१५ ये ६०० वर्ष में ९३१३ इतने होते हैं तब ९३१३ इसको गत वर्ष से गुण कर ६०० से भाग देकर जो फल होगा "३६५ गव" में जोड़ देने से अहर्गण होता है

$$३६५ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{९३१३}{६००} = \text{अहर्गण}$$

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इससे कुछ अधिक कहते हैं, यथा

"विषयरसगुणघ्ने कल्पयाताब्दराशौ" इत्यादि ॥ १३$\frac{१}{२}$ ॥

पुनरहर्गणानयनम् ।

विश्वरामशरवेदताड़िताः खाभ्रखाङ्गगुणभाजिताः फलं च यत् ॥१४॥
प्राग्वदब्धिरसरामताड़ितैरब्धकैर्युतमहर्गणोऽथवा ।

वि. भा.—अथवा गतवत्सराः विश्वरामशरवेदताड़िताः (४५३१३ एभिर्गुणिताः) खाभ्रखाङ्ग गुणभाजिताः (३६००० एभिर्भक्ताः) फलं यद् भवेत्तत् प्राग्वत् (पूर्ववत्) अब्धिरसरामताड़ितैः (३६४ गुणितैः) अब्दकैः (गतवर्षैः) युतं (सहितं) तयाऽहर्गणो भवेदिति ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अत्रैकवर्षे सावनदिनाद्यम् = ३६५।१५।३१।१५ ततोऽनुपातेन गतवर्षसम्बन्धिदिनाद्यम् = गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५) = गव + ३६४ + गव + गव (१५।३१।१५) अत्रै (१५।३१।१५) तत् ६०० वर्षे ९३१३ रेतत्तुल्यं भवति तदा

$$\text{गव} \times ३६४ + \text{गव} + \frac{\text{गव} \times ९३१३}{६००} = \text{गव} \times ३६४ + \left(\text{गव} + \frac{\text{गव} \times ९३१३}{६०० \times ६०}\right)$$

$$= \text{गव} \times ३६४ + \left(\text{गव} + \frac{\text{गव} \times ९३१३}{३६०००}\right) = ३६४ \text{ गव} + \left(\frac{३६००० \text{ गव} + \text{गव}. ९३१३}{३६०००}\right)$$

$$= ३६४ \text{ गव} + \frac{४५३१३ \text{ गव}}{३६०००} = \text{अहर्गण}$$ एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१४$\frac{१}{२}$॥

हि. भा.—अथवा गत सौरवर्ष को ४५३१३ इतने से गुण कर ३६००० से भाग देकर जो फल हो उसको ३६४ गुणिक गत वर्ष जोड़ने से अहर्गण होता है ॥१४॥

उपपत्ति ।

एक वर्ष में सावन दिनादि = ३६५।१५।३१।१५ अनुपात से गत वर्ष सम्बन्धी दिनादि

= गव (३६५।१५।३१।१५) = गव × ३६५ + गव (१५।३१।१५)

= ३६४ गव + गव + गव (१५।३१।१५) यहां १५।३१।१५ ये ६०० वर्ष में ९३१३ इतना होता है. तब $\text{गव} \times ३६४ + \text{गव} + \frac{\text{गव} \times ९३१३}{६००} =$

$= \text{गव} \times ३६४ + \text{गव} + \frac{\text{गव} \times ९३१३}{६०० \times ६०} = \text{गव} \times ३६४ + \text{गव} + \frac{\text{गव} \times ९३१३}{३६०००}$

$= \text{गव} + ३६४ + \frac{३६००० \text{ गव} + \text{गव} \times ९३१३}{३६०००} =$

$= \text{गव} \times ३६४ + \frac{\text{गव} \times ४५३१३}{३६०००} = \text{अहर्गण} ।$

इससे आचार्योक्त उत्पन्न हुआ ।।१४½।।

अथ लघ्वहर्गणसाधनमाह

अब्दवेदरसरामकाहतिं वा क्षिपेद्दिनगणो लघुर्भवेत् ।
एवमेव शतशः प्रसाधयेद् वासरौघमलघुं लघुं क्रमात् ।।१५।।

वि. भा.—अब्दवेद रसरामकाहतिं (शकादितो कस्यापि युगस्यादितो व, यद्यहर्गणानयनमभीष्टं तत्र ये गताब्दास्ते ३६४ गुणनीया गुणनफलं) तत्रत्य गतवर्ष सम्बन्धि घट्यादिफले, ४५३१३ गुणित गतवर्षे क्षिपेद्योजयेत्तदा लघुर्दिनगणो (लघु सावनाहर्गणो भवेत्), एवमेव अनयैवरीत्या क्रमात् अलघुं (महान्तं) लघुं (अल्पं) दिनौघं (सावनाहर्गणं) शतशः (प्रकारशतैः) प्रसाधयेदिति ।। १५ ।।

हि. भा.—किसी युगादि या शकादि से यदि अहर्गणानयन करना हो तो वहां की गतवर्ष संख्या को ४५३१३ से गुण देने से, उसमें ३६४ गुणित गतवर्ष संख्या जोड़ने से लघु अहर्गण होगा । इस तरह सैकड़ों प्रकार से वृहदर्गण वा लघ्वहर्गण का साधन करना चाहिये ।। १५ ।।

अत्रोपपत्तिस्तु तृतीयाध्याये १४ श्लोकोपपत्तिवदेव ज्ञेया, केवलं गतवर्षसंख्यायां विभेदः तत्र (१४ श्लोके) गतवर्षस्थाने गतसौरदिवसा गृहीताः, अत्र गतवर्षस्थले शकादित इष्टयुगादितो वाऽहर्गणानयने क्रियमाणेऽत्रत्या ये गताब्दास्ते ग्रहीतव्या इति । भास्कराचार्येण वर्षान्तादिष्टदिनपर्यन्तं दिनगणस्य नाम लघ्वहर्गणः कथ्यतेऽर्थाद्वर्षान्तकालिकाहर्गणस्येष्टाहर्गणस्य चान्तरं लघ्वहर्गण इति ।

अथ लघ्वहर्गणः कदा सावयवः कदाच निरवयव इति निरूप्यते । यदाऽवमशेषाभावस्तदा सूर्योदयामान्तवर्षान्तानामेकत्र स्थितत्वात्सौराहर्गण-चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गणानां निरवयवत्वमन्यथा सावयवत्वमिति, अथ निरग्रलक्षणं कल्पे कियन्मितमिति विचार्यते । यदा च निरग्रलक्षणमस्ति तदा सौराहर्गण चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गणानां महत्तमापवर्त्तनाङ्कोऽन्वेष्टव्यास्तदा महत्तमापवर्त्ताङ्केन तेऽहर्गणा अपवर्त्तिताः कार्या लब्धितुल्यवर्षैः पुनः पुनस्तेषां निरवयवत्वम् । अथचापवर्त्तित-सौराहर्गणमानानि कियद्भिर्वर्षैर्वर्षान्ते भविष्यतीति विचारः । महत्तमापवर्त्ताङ्केनापवर्त्तनेन यावन्ति दिनानि तानि ३६० भजनेन यान्यवशिष्टानि भवेयुस्तानि येनाङ्केन गुणनेन ३६० भवन्तैरेव गुणक-तुल्यवर्षैस्तान्यपवर्त्तित सौराहर्गणमानानि वर्षान्ते भविष्यन्तीति सिद्धान्तितम् ।

एवञ्च "अपवर्त्तित चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गणमाने कियद्भिर्वर्षैर्वर्षान्ते भविष्यत इति विचार्यते। सौराहर्गणेन साकं चान्द्राहर्गण सावनाहर्गणयोर्महत्तमापवर्त्तनाङ्कमन्विष्यापवर्त्तनाङ्केनापवर्त्तिते ते चान्द्राहर्गणसावनाहर्गणमाने लब्धितुल्यवर्षैः पुनर्वर्षान्ते भविष्यत इति ॥ १५ ॥

हि·भा.—इसकी उपपत्ति तृतीयाध्याय १४ श्लोक में लिखित उपपत्ति की तरह जाननी चाहिये, केवल गतवर्ष संख्या में भेद है। १४ श्लोक में गतवर्ष स्थाने गतसौर वर्ष संख्या ली गई है, यहां गतवर्ष स्थान में शकादि से या किसी युगादि से अहर्गणानयन में यहां की गतवर्ष संख्या लेनी चाहिये, भास्कराचार्य वर्षान्त से इष्टदिन पर्यन्त दिन समूह को लघ्वहर्गण कहते हैं अर्थात् वर्षान्तकालिक अहर्गण इष्टाहर्गणकं अन्तरं को लघ्वहर्गण' कहते हैं ॥

लघ्वहर्गण कब सावयव होता है और कब निरवयव होता है इसके लिये विचार करते हैं।

जब अवम शेषाभाव होगा तब सूर्योदय-अमान्तकाल, वर्षान्त इन सब को एक जगह रहने के कारण सौराहर्गण-चान्द्राहर्गण सावनाहर्गण के निरवयवत्व होता है अन्यथा सावयवत्व होता है।

निरग्रलक्षण कल्प में कितने होते हैं इसके लिये विचार करते हैं। जब निरग्रलक्षण हैं तब "सौराहर्गण-चान्द्राहर्गण-सावनाहर्गण" इन सब के महत्तमापवर्त्तनाङ्क निकाल कर-महत्तमापवर्त्तनाङ्क से उन अहर्गणों को अपवर्त्तन देने से जो लब्धि होगी तत्तुल्य वर्षों में फिर-फिर उन अहर्गणों का निरवयत्व सिद्ध हुआ। अब अपवर्त्तित सौराहर्गण क मान कितने वर्षों में वर्षान्त में होगा इसके लिये विचार करते हैं। महत्तमापवर्त्तनाङ्क से अपवर्त्तन देने से जितने दिन होंगे उनको ३६० से भाग देने से जो शेष बचता है उसको जिस अङ्क से गुणने से ३६० होगा उन्हीं गुणकाङ्कतुल्य वर्षों में वे अपवर्त्तित सौराहर्गणमान फिर वर्षान्त में होंगे।

इसी तरह अपवर्त्तित चान्द्राहर्गणमान, अपवर्त्तित सावनाहर्गणमान कितने वर्षों में वर्षान्त में होंगे इसके लिये विचार करते हैं। सौराहर्गण के साथ चान्द्राहर्गण और सावनाहर्गण का महत्तमापवर्त्तनाङ्क निकाल कर अपवर्त्तनाङ्क से चान्द्राहर्गण और सावनाहर्गण को अपवर्त्तन देने से जो लब्धि आयेगी तत्तुल्य वर्षों में पुनः वे वर्षान्त में होंगे, इति ॥१५॥

अथ ब्रह्मदिनादौ गतसावनदिनानि कृतादियुगमानानि चाह।

शून्य नखाङ्कनवैकरसेला भूदिवसा द्युगणः कदिनादौ।
यात युगाब्दगणश्च कृतादौ तिब्यमुखस्त्रिगुणः कृतभक्तः ॥१६॥

वि. भा.—कदिनादौ (ब्रह्मदिनादौ) शून्यनखाङ्क नवैकरसेला (१६१९९२००) भूदिवसाः (सावनवासराः)द्युगणः (अहर्गणः) व्यतीत आसीत्। कृतादौ (सत्ययुगादौ यातयुगाब्दगणः) (गतयुग वर्षसमूहः) त्रिगुणः कृतभक्तः (अर्थान्महायुगस्य $\frac{3}{4}$ त्रि चरणत्रयं व्यतीतम् ॥ १६ ॥

हि· भा.—ब्रह्मदिनादि में १६१९९२०० सावनाहर्गण बीत गये थे। सत्ययुगादि में गतयुगवर्ष महायुग के तीन चरण $\frac{3}{4}$ बीत गये थे ॥१६॥

कलियुगादावहर्गणमाह ।

तद्योगः कल्पादौ द्युगणः कोत्पत्तितोऽथवा निघ्नः
नवगुण रसाष्ट नवनग नेदभुजैः कुदिनवेदशिः ॥१७॥
रवैकाक्षिशरशर वसुनवरूपाक्षतत्त्ववस्वगाङ्काः ।
कल्यादौ द्युगणोऽयं कलिगत द्युगणेन संयुतस्त्विष्टः ॥१८॥

वि. भा.—तद्योगः (पूर्वकथितानां योगः) कोत्पत्तितः (ब्रह्मदिनादितः) कल्यादौ द्युगणः (सावनाहर्गणः) अथवा कुदिनवेदशिः (कल्पकुदिनचतुर्थांशः)नवगुण रसाष्ट नव नगवेदभुजैः (२४७९८६३९) निघ्नः (गुणितः) तदा रवैकाक्षिशरशर-वसुनवरूपाक्षतत्त्ववस्वगाङ्काः (९७८२५५१९८५५२१०), कल्यादौ द्युगणः सावनाहर्गणः । अत्र कलिगताहर्गणेन युक्तस्तदा कल्पादित इष्टदिनं यावदिष्टाहर्गणो भवेत् ॥ १७-१८ ॥

हि. भा.—ऊपर कहे हुए मानों के योग करने से कलियुगादि में अहर्गण होता है । अथवा कल्प कुदिन के चतुरांश को २४७९८६३९ इतने से गुणने से ९७८२५५१९८५५२१० इतने कलियुगादि में अहर्गण होते है । इसमें कलि के गताहर्गण जोड़ने से कल्पादि से इष्टाहर्गण होता है ॥१७-१८॥

अत्रोपपत्तिः

कल्पादितः कल्यादि यावद्यानि सौरवर्षाणि तानि विदितानि सन्ति, ततोऽनुपातेन यदि कल्पवर्षैः कल्पकुदिनानि लभ्यन्ते तदैभिः (कल्पादितः कल्यादिं यावत्सौरवर्षैः) किमित्यनुपातेन कल्पादितः कल्पादिं यावत्सावनाहर्गणः

$$=\frac{\text{कल्पकुदिन}\quad\text{कल्पादितः कल्यादिं यावन्सौव}}{\text{कल्पवर्ष}}$$

$$\frac{\text{कल्पकुदिन}\times\text{कल्पादितः कल्यादिं यावत्सौव}}{\text{कल्पवर्ष}}=\frac{\text{कल्पकुदि}\times 3}{4\times\text{कवर्ष}}$$

$$\frac{\text{कल्पकुदिन}}{4}\times 24798639 = 9782551985521 0 = \text{कलियुगादावहर्गणः}।$$

अत्र कल्पादितः कल्पादिं यावदहर्गणयोजनेनेष्टदिन सावनाहर्गणो भवेदिति ॥ १७-१८॥

हि. भा.—कल्पादि से कलियुगादि तक जितने सौरवर्ष हैं विदित हैं तब उस पर से अनुपात करने हैं । यदि कल्पवर्ष में कल्पकुदिन पाते हैं तो कल्पादि से कलियुगादि तक सौरवर्ष में क्या आजायेगा कल्पादि से कलियुगादि तक सावनाहर्गण=

$$\frac{\text{कल्पकुदिन}\times\text{कल्पादिनः काल्यादि यावत्सौवर्ष}}{\text{कल्पवर्ष}}$$

$$=\frac{\text{कल्पकुदिन}\times\text{कल्यादितः कस्यादियावत्सौव}\times 4}{4\times\text{क वर्ष}}$$

$$= \frac{\text{ककदिन}}{४} \times \frac{\text{कल्यादितः कल्यादिं यावत्सौवर्षं} \times ४}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{\text{कल्पकुदिन}}{४} \times \text{पठितगुणकाङ्क}$$

$$= \frac{\text{कल्पकुदिन}}{४} \times \text{ २४७९८६३९} = \text{९७८२५५१९८५५२१०} = \text{कलियुगादिकासावनाहर्गण ।}$$

॥ १७–१८ ॥

अथ कल्पादितो युगादितो वा व्यस्तदिनाधिपज्ञानमाह ।

सप्ताभ्यस्तात्कुदिनाद्द्युगणोनात्सप्तभाजिताच्छेषम् ।
तेन च मन्दसिताद्यो व्यस्तगणनया दिनाधिपतिः ॥१९॥

हि. भा. —सप्ताभ्यस्तात् (सप्तगुणितात्) कुदिनात् (कल्पकुदिनाद्युग-कुदिनाद् वा) द्युगणोनात् (अहर्गण रहितात्) सप्ताभाजित् (सप्रभक्तात्) शेषं यत्तेन व्यस्तगणनया (विलोमगणनया) मन्दसिताद्यः (शनिशुक्रादिकः) दिनाधिपतिः (दिनपतिः) भवेदिति ॥१९॥

अत्रोपपत्तिः ।

सप्तभक्तेऽहर्गणे शेषं यदि $शे_१$, तथा "७ युकुदि—अहर्गणे" ऽस्मिन् सप्ततष्टे शेषं=शे तदा शे=७ $शे_१$ अतो—$शे_१$ ऽस्माख्यादितः क्रमगणना सैव ७—$शे_१$ अस्मात् शन्यादेर्विपरीतगणना । यथा

यदि $शे_१$=१ तदा क्रमगणनया वर्त्तमानः सोमवारस्तथा

शे=६ । अस्मात् रविः । शनिः । शुक्रः । गुरुः । बुधः । कुजः । इति विपरीत-गणनया वर्त्तमानः सोम एव जातः ॥१९॥

हि. भा. —सात गुणित कल्पकुदिन या सातगुणित युगकुदिन में अहर्गण घटा कर सात से भाग देने से जो शेष होता है उस करके विपरीतगणना द्वारा शनि शुक्र आदि दिनपति होते हैं ।

उपपत्ति

अहर्गण को सात से भाग देने से जो शेष रहता है उसका नाम=$शे_१$ और ७ युकुदि—अहर्गण इसमें सात से भाग देने से जो शेष रहता है उसका नाम=शे तब शे= ७—$शे_१$ इसलिये—$शे_१$ इससे जो रव्यादिक क्रमगणना होती है वही ७—$शे_१$ इससे शनि आदि की विपरीतगणना होती है । जैसे

यदि $शे_१$=१ तदा क्रमगणना से वर्त्तमान सोमवार होता है तथा

शे=६ इससे रवि । शनि । शुक्र । गुरु । बुध । कुज । विपरीतगणना से वर्त्तमान सोम ही आता है ॥१९॥

अथ सावनाहर्गणतश्चान्द्राहर्गणज्ञानं सौराहर्गणज्ञानञ्च क्रियते ।

द्युगणोऽधोऽवम गुणितात्कुदिनहृतादाप्तयुग्विधोर्द्युगणः ।
पृथगधिकगुणो विधुदिनहृतोऽधिमासदिनर्वजितोऽर्काहाः ॥२०॥

वि. भा.—द्यु गणः (सावनाहर्गणः) अधः (स्थानद्वये स्थापनीयः) एकत्राऽवम गुणितात् (युगावमदिनगुणितादहर्गणात्) कुदिनहृतात् (युगकुदिनभक्तात्) आप्त (लब्धं)यत्तेन द्वितीयस्थानस्थोऽहर्गणो युक्तस्तदा विधोर्द्युगणः(चान्द्राहर्गणो भवेत्)। अयं पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्यः) एकत्र अधिकगुणः (युगाधिमासदिनगुणितः) विधुदिनकृतः (युगचान्द्रदिनभक्तः) यल्लब्धमधिमासदिनं तेन द्वितीयस्थानस्थश्चान्द्राहर्गणो हीनस्तदाऽर्काहाः (सौरदिवसाः) भवन्तीति ॥२०॥

हि. भा.—सावनाहर्गण को दो जगहों में रखना एक जगह अहर्गण को युगावमदिन से गुण कर युगकुदिन से भाग देने से जो लब्ध होता है, उसे द्वितीय स्थान स्थित सावन अहर्गण में जोड़ देना तब चान्द्राहर्गण होता है। इसको दो जगहों में रखना; एक जगह युग के अधिमास दिन से गुण देना, युगचान्द्र दिनों से भाग देने से जो फल (गत अधिमासदिन) आवे उसे दूसरे स्थान में रखे हुए चान्द्राहर्गण में घटा देने से सौराहर्गण होता है ॥२०॥

उपपत्तिः।

अत्रानुपातो यदि युगकुदिनैर्युगावमदिनानि लभ्यन्ते तदाहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गणसम्बन्धिगतावमदिनानि समागच्छन्ति, तत्स्वरूपम्

$=\frac{\text{युगावमदिन}\times\text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ एतेन फलेन सावनाहर्गणो युक्तस्तदा चान्द्राहर्गणो भवेत्

सावनाहर्गण + अनुपातागतावमदिन = चान्द्राहर्गण

ततः यदि युगचान्द्रदिनैर्युगाधिदिनानि लभ्यन्ते तदाऽऽनीत चान्द्राहर्गणेन किं समागच्छन्ति गताधिदिनानि तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{युगाधिदिन}\times\text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युचां}}$ गताधिदिन ।

एतैः समागतगताधिदिनैश्चान्द्राहर्गणो हीनस्तदा सौराहर्गणः = चान्द्राहर्गण — अनुपातागतगताधिदिन अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥२०॥

उपपत्ति

हिं. भा.—यहां अनुपात करते हैं कि युगकुदिन में युगावम दिन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गतावम दिन आते हैं, $\frac{\text{युगावमदिन}+\text{अहर्गण}}{\text{युकुदिन}}$ = गतावमदिन, इन्हें सावनाहर्गण में जोड़ने से सावनाहर्गण × गतावमदिन = चान्द्राहर्गण, इस पर से पुनः अनुपात करते हैं कि यदि चान्द्रदिन में युगाधिदिन पाते हैं तो चान्द्राहर्गण में क्या इस अनुपात से गताधिदिन आ जायेंगे। $\frac{\text{युगाधिदिन}+\text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युचांदि}}$ = गताधिदिन, इनको चान्द्राहर्गण में घटाने से सौराहर्गण हो जायगा, चान्द्राहर्गण = गताधिदिन — सौराहर्गण, इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥२०॥

इदानीमेकस्य मानज्ञानेनान्यस्य ज्ञानं कथमित्याह ।

यातावमेन्दु दिनराशिचयः स्वशिष्ट्या युक्तोनितोऽवमहृतो विधुवासरा वा ।
एवं गताधिकगणश्च रविद्युराशिरन्योन्यतोऽवमदिनानि गताधिमासाः ॥२१॥

वि. भा.—यातावमेन्दुदिनराशिचयः (गतावम. चान्द्रदिन समूहः) स्वशिष्टया (स्वशेषेण) युक्तोनितः (सहितरहितः) अवमहृतः वा विधुवासराः (चान्द्रदिवसाः) भवन्तीति । अर्थादेषां सशेषावमादीनां परस्पर-सङ्कलनेन व्यवकलेन वाऽवमभक्तेन यथा चान्द्रदिवसा भवन्ति तथा सर्वं कर्मकार्यम् । एवं गताधिदिनैः सौरदिनस्य गुणनेन पूर्ववद्भागहरणेनयुक्तो नितेत्यादि करणेना-वमदिनानि गताधिमासाश्च भवन्तीति ॥२१॥

हि. भा.—गतावम, चान्द्रदिन. सौरदिन, सशेषाधिमास इन सब को परस्पर जोड़ने घटाने, गुणने से अवम से भाग देने से, चान्द्रदिन का ज्ञान होता है। इसी तरह गताधिमासदिन से सौरदिन को गुण कर परस्पर भाग देने से, जोड़ने, घटाने से अवम और अधिमास आदि का ज्ञान होता है ॥२१॥

पुनः प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनमाह ।

पृथगिनदिनराशिश्चन्द्रभघ्नो विभक्तः शतगुणित खखेषु व्योमवेदैर्विहीनः ।
रसनग नवल द्विव्योमरामैश्च युक्तः पृथगिन हृतराशिर्द्विष्टइत्थं विभक्तः ॥ २२ ॥
खाग्नि खैक शरषण्मुखैर्युतो रामखाग भजिताप्त वर्जितः ।

स्याद् द्यु राशिरविसावनोऽथवा—

वि. भा.—इनदिनराशिः (गतसौरवासरः) पृथक् (स्थानद्वये) स्थापितः । एकत्र चान्द्रभघ्नः (चन्द्रराशिगुणितः) शतगुणित खखेषु व्योमवेदैः (४०५००००) विभक्तः (भाजितः) फलं रसनगनवलद्विव्योमरामैः (३०२९७६) विहीनः (रहितः) शेषः पृथक् स्थापित सौरदिने युक्तः (सहितः) पूर्वहरेण विभक्तः (भाज्यः) फलं पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्यम्) एकत्र-खाग्निखैकशरषण्मुखैः (१६५१०३०) युतः, रामखागभजिताप्तवर्जितः (७०३ एतद्भजनेन यत्फलं) तेन द्वितीयस्थाने हीनः तदा द्युराशि रविसावनः (रविसावनाहर्गणः) स्यादिति ॥ २२ ॥

हि. भा—गतसौर दिन को दो जगह रखना, एक जगह उसे चन्द्रराशि से गुण देना, ४०५०००० इस भाग देना, जो लब्धि आवे उसमें (३०२९७६) घटा देना शेष को द्वितीय स्थान में रखे हुए सौरदिन में जोड़ देना, उपरोक्तहर से भाग देना, लब्धि को दो जगहों में रखना, एक जगह १६५१०३० जोड़ देना, ७०३ इस भाग देने से जो लब्धि हो उसे द्वितीय स्थान स्थित संख्या में घटाने से सूर्य का सावनाहर्गण होता है ॥२२॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगसौरदिनैर्युगाधिदिनानि लभ्यन्ते तदा गतसौरदिनैः किमित्यनुपातेन लब्धानि सशेषाधिमासदिनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगाधिदिन} \times \text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} =$

गताधिदिन $+ \frac{\text{अधिशेषदि}}{\text{युगसौरदि}}$ अत्र यदि युगाधिदिनयुगसौरदिनस्थले तत्तन्मानानि गृह्यन्ते

तदाऽपवर्त्तनादिना $\frac{\text{युगाधिदिन}\times\text{गतसौरदि}}{\text{युगसौरदि}} = \frac{२७१\times\text{गतसौरदि}}{४०५००००} =$ गताधिदिन + $\frac{३०२९७६}{४०५००००}$ अत्र $\frac{३०२९७६}{४०५००००}$ इति त्यक्तं तदा लब्धगताधिदिनैर्गतमासदिनं सहितं तदा चान्द्रदिनं भवेत्पुनरपि स्थानद्वये स्थाप्यम् ।

ततोऽनुपातो यदि युगचान्द्रदिनैर्युगावमदिनानि लभ्यन्ते तदा समानीत-चान्द्रदिनैः किमित्यनुपातेन सशेषावमदिनानि तत्स्वरूपम्

$= \frac{\text{युगावमदि}\times\text{समागतचान्द्रदि}}{\text{युगचांदिन}} = \text{गतावमदि} + \frac{\text{अवमशेदि}}{\text{युचांदि}}$ अत्रापि युगावम-दिनादि मानग्रहणेनापवर्त्तनेन च $\frac{\text{युगावमदि}\times\text{समागतचांदि}}{७०३} = \text{गतावमदि} + \frac{१६५१०३०}{७०३}$ एतेन लब्धफलेन पृथक् स्थापित चान्द्राहर्गणमानानि रहितानि शेषाणि च त्यक्तानि तदा सावनाहर्गणो भवतीति । अत्र श्लोकपद्ये त्रुटिरस्तीति. ।

अत्र पद्ये पृथगिनदिनराशिश्चन्द्रभघ्न इत्यादि वर्त्तते तत्र चन्द्रभघ्न इत्यनेन चन्द्रराशिगुणित इत्यर्थो न कार्यः । चन्द्रभघ्नः (२७१) इत्यनेन गुणित इत्यर्थोऽवधेय इति ।।२२।।

हि. भा.—यदि युगसौर दिन में युगाधिमास दिन पाते हैं तो गतसौर दिन में क्या इस-अनुपात से शेष सहित गताधिदिन आ जायगा, $\frac{\text{युगाधिमासदि}\times\text{गतसौदि}}{\text{युगसौदि}} = \text{गताधिमासदिन} + \frac{\text{अधिशे}}{\text{युगसौदि}}$

यहां युगाधिमासदि, युगसौरदिन इनको अपने-अपने युगपठित दिनसंख्या लिखने से और अपवर्त्तन देने से $\frac{२७१\times\text{गतसौदि}}{४०५००००} =$ गताधिदि, शेष को छोड़ दिया गया । गतसौर दिन में गताधिदिन जोड़ने से चान्द्र दिन हुआ, तब अनुपात करते हैं । युगचान्द्र दिन में युगावमदिन पाते हैं तो आये हुए चान्द्रदिन में क्या इस अनुपात से शेष सहित गतावमदिन आवेगा

$\frac{\text{युगावमदिन}\times\text{समागतचान्द्रदि}}{\text{युगचांदि}} = \text{गतावमदि} + \frac{\text{अवमशे}}{\text{युचां}}$

यहाँ युगावमदिन, युगचान्द्रदिन इनके स्थान पर इनके युगपठित मान लेने से और अपवर्त्तनादि देने से अपवर्तित $\frac{\text{युगावमदि}\times\text{समागतचांदि}}{७०३} = \text{गतावमदि} + \frac{\text{पातिशे}}{७०३}$

शेष को छोड़ देने से चान्द्राहर्गण में (समागत चान्द्रदि) में गतावम दिन को घटाने से सावनाहर्गण हो जायेगा । यहाँ पद्य में चन्द्रभग्नः शब्द से चन्द्रराशि से गुणित का ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु २७१ इनसे गुणित समझना चाहिये ।।२२।।

पुनरहर्गणानयनम्

सूर्य मासनिकरो द्विधा स्थितः ।। २३ ।।
गोगजाग्नि रसषड्गुणो हृतः खाभ्रखाभ्र रसरूपबाहुभिः ।
लब्धमास सहितोऽभिताड़ितः खाग्निभिस्तिथियुतः पृथग् धृतः ।।२४।।
मूर्छनाभ्रनवखाक्षिभिर्हतः खार्क भक्तशिशिरांशुवासरैः ।
लब्धहीनदिवसापवर्जितः स्याद्द्युराशिरिनसावनोऽथवा ।।२५।।

वि. भा.—सूर्यमासनिकरः (सौरमासगणः) द्विधा (स्थानद्वये) स्थितः (स्थापनीयः), एकत्र गोगजाग्निरसषड्गुणो हतः(६६३८९ एतैर्गुणितः) खाभ्रखाभ्ररसरूपबाहुभिः (२१६०००० एतैर्भजनेन ये लब्धा मासास्तैः) सहितः द्वितीयस्थानस्थितसौरमासगणो युक्तः) खाग्निभिः (त्रिशद्भिः) ताड़ितः (गुणितः) तिथियुतः (वर्त्तमानमासस्य शुक्लप्रतिपदादितो गततिथिसंख्याभिर्युक्तः, पृथग्धृतः (स्थानद्वये स्थापनीयः) एकत्र मूर्छनाभ्रनवखाक्षिभिः (२०९०२१) हतः (गुणितः) खार्कभक्त शिशिरांशुवासरैः (द्वादशभक्त-युगचान्द्रदिनैर्भक्तः सन्) लब्धहीन दिवसापवर्जितः (लब्धैरवमदिनैर्द्वितीयस्थानस्थिताङ्को हीनः) तदा अथवा इनसावनः द्युगणः (सूर्यसावनाहर्गणः) स्यादिति ।। २४-२५ ।।

हि. भा.—गत सौरमासगण को दो जगह रखना, एक जगह उसको (६६३८९) इससे गुणकर (२१६००००) इससे भाग देना जो मासात्मक भागफल हो उसे द्वितीय स्थान में रखे हुए गतसौरमासगण में जोड़ देना, तब तीस से गुणकर वर्त्तमान मास के शुक्लप्रतिपदा से गततिथि संख्या जोड़ देना, उसको दो जगह में रखना, एक जगह (२०९०२१) इतने से गुणा करना बारह से भाग लिये हुए युगचान्द्र दिन से भाग देना, लब्धि (अवम दिनों को) द्वितीय जगह में रखे हुए अङ्कों में घटा देना तब सूर्य का सावन अहर्गण होता है ।।२४-२५।।

उपपत्तिः

प्रथम प्रकारेण यदहर्गणानयनं कृतं तत्रैव युगपठित सौरमासादिमानं संगृह्य गणितं क्रियते यथा तत्राहर्गणसाधनावसरे गतसौरमासगणादनुपातः कृतः

$$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गतसौरमास}}{\text{युगसौरमास}} =$$

$$\frac{१५९३३३६ \times \text{गतसौमा}}{५१८४००००} = \frac{५३१११२ \times \text{गतसौरमास}}{१७२८००००} = \frac{६६३८९ \times \text{गतसौरमा}}{२१६००००} =$$

गताधिमास इति द्वितीयस्थानस्थ सौरमासगणे युक्तस्तदा चान्द्रमासगणो वर्त्तमानमासस्य गतामान्तं यावद्भवेत्, त्रिंशद्गुणनेन वर्त्तमानमासस्य गतामान्तं यावच्चान्द्रदिनानि भवन्ति, अत्र वर्त्तमानमासस्य शुक्लप्रतिपदादित इष्टदिनं यावत्तिथि संख्या योज्या तदेष्टदिनं यावच्चान्द्राहर्गणोभवेत्ततः

$$\frac{\text{युगावमदि} \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युगचांदि}} = \frac{२५०८२०५२ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{१६०३००००८०}$$

$$= \frac{१२५४१०२६ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{८०१५०००४०} = \frac{६२७०६३ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{४००७५००२०}$$

$$= \frac{२०९०२१ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{१३३५८३३४०} = \frac{२०९०२१ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\frac{\text{युगचान्द्रदि}}{१२}} = \text{गतावमदिनानि}$$

अतः चान्द्राहर्गण—गतावमदि = सावनाहर्गणः ॥ २४-२५॥

हि. भा.—प्रथम प्रकार से जो अहर्गणानयन किया गया है उसी में पठित युगसौर-मासादि प्रमाण लेकर गणित करते हैं। जैसे अहर्गणानयन में गतसौरमास गण पर से अनु-पात किया गया $\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गसौमा}}{\text{युगसौरमास}}$ यहां पर पठित युगाधिमास संख्या—युगसौरमास संख्या ग्रहण करने से $\frac{१५९३३३६ \times \text{गतसौमास}}{५१८४००००} =$

$$= \frac{५३१११२ \times \text{गतसौमा}}{१७२८००००} = \frac{६६३८९ \times \text{गतसौरमास}}{२१६००००} = \text{गताधिमास}$$ । इसको गतसौरमास में जोड़ने से वर्त्तमान मास के गतामान्त तक चान्द्रमासगण हो जायेंगे। इन्हें तीस से गुणने से गतामान्त तक चान्द्रदिन होंगे इनमें वर्त्तमान मास के शुक्ल प्रतिपदा से इष्टदिन तक तिथि-संख्या जोड़ने से इष्ट दिन तक चान्द्राहर्गण होगा, तब

$$\frac{\text{युगावमदिन} \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\text{युगचांदि}} = \frac{२५०८२०५२ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{१६०३०००००८०} =$$

$$\frac{१२५४१०२६ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{८०१५०००४०} = \frac{६२७०६३ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{४००७५००२०} = \frac{२०९०२१ \times \text{चान्द्राहर्ग}}{१३३५८३३४०}$$

$$= \frac{२०९०२१ \times \text{चान्द्राहर्गण}}{\frac{\text{युगचांदिन}}{१२}} = \text{गतावमदिन}$$ ।

चान्द्राहर्गण—गतावमदिन = सावनाहर्गण ॥ २४-२५ ॥

प्रकारान्तरेणाहर्गण साधनम्

विश्वाग्निनन्द मन्वग्नि शशिघ्ना भाजिताः समाः ।
खखाभ्राङ्कगुणैर्लब्धं मेषाद्यहयुतं च वा ॥ २६ ॥

वि. भा.—समाः (गताब्दाः) विश्वाग्निनन्द मन्वग्निशशिघ्नाः (१३१४९३१३ एभिर्गुणिताः) खखाभ्राङ्कगुणैः (३६०००) भाजिताः (भक्ताः) लब्धं मेषाद्यहयुतं (मेषसंक्रान्तितः इष्टदिनं यावद्दिनसंख्यया सहितं) वाऽहर्गण इति ॥ ६१ ॥

हि. भा.—गतसौरवर्ष को १३१४९३१३ से गुणकर (३६०००) इतने से भाग देने से जो लब्धि हो उसमें मेषादि से इष्टदिन तक जितनी दिनसंख्या हो जोड़ देना तब अहर्गण होता है ॥ २६ ॥

अत्रोपपत्तिः

(१) अत्रैकवर्षे सावनदिनादि: =३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०

ततोऽनुपातेनगतवर्षसम्बन्धिदिनाद्यम् = $\frac{(३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०) \text{ गतवर्ष}}{१ \text{ वर्ष}}$

= (३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०) गतवर्ष अत्र १५ । ३१ । १५ । ० इति ६०० वर्षैः

९३१३ एतत्तुल्यं भवति तदा $\left(३६५+\frac{९३१३}{६००}\right)$ गतवर्ष, पुनरपि

३६५ एतेन सह सवर्णनेन $\left(३६५+\frac{९३१३}{६००\times ६०}\right)$ गतवर्ष =

$\left(३६५+\frac{९३१३}{३६०००}\right)$गतवर्ष

$=\left(\frac{१३१४००००+९३१३}{३६०००}\right)$गतवर्ष$=\frac{१३१४९३१३\times \text{गवर्ष}}{३६०००}$=गतवर्षसंदिनादि

अत्र मेषादितो दिनसंख्या योजनेनाहर्गणो भवेत् ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे द्युगणविधिस्तृतीयोऽध्याय: समाप्तिमगात् ।

हि. भा.—एक वर्ष में सावनदिनादि=३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०

तब अनुपात से गतवर्ष सम्बन्धी दिनादि= (३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०) गतवर्ष

यहां १५ । ३१ । १५ । ० यह ६०० वर्षों में ९३१३ एतत्तुल्य होता है

तब $\left(३६५+\frac{९३१३}{६००}\right)$ गतवर्ष, फिर ३६५ इसके साथ सवर्णन करने से

$\left(३६५+\frac{९३१३}{६००\times ६०}\right)$गतवर्ष$=\left(३६५+\frac{९३३१३}{३६०००}\right)$ गतवर्ष

$=\frac{(१३१४००००+९३१३) \text{ गतवर्ष}}{३६०००}=\frac{(१३१४९३१३) \text{ गतवर्ष}}{३६०००}$

=गतवर्ष संदिनादि

इसमें मेषादि से दिनसंख्या (इष्टदिन तक) जोड़ने से अहर्गण प्रमाण होगा ।

इति वटेश्वरसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में द्युगण विधि नाम का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥



सर्वतोभद्रनामकः

चतुर्थोऽध्यायः

तत्रादौ अहर्गणद्वारा ग्रहानयनमाह ।

द्युगणे भगणाभ्यस्ते कुदिनहृते पर्ययादि गतखेटाः ।
रव्युदये लङ्कायां मृदूच्चपाताः स्वकुद्युभिः साध्याः ॥ १ ॥

वि. भा.—द्युगुणे (अहर्गणे) भगणाभ्यस्ते (युगग्रहभगणगुणे) कुदिनहृते (युगकुदिनभक्ते) तदा पर्ययादिगतखेटाः (भगणादिकग्रहाः) भवन्ति, लङ्कायां (लङ्काक्षितिजे) रव्युदये ते ग्रहा अगच्छन्ति, एवं मृदूच्चपाताः (मन्दोच्चपातादयः) स्वकुद्युभिः (स्वसावनदिनैः) साध्याः ।

अत्रोपपत्तिः ।

$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}} = \text{गतभगण} + \frac{\text{भगणशे}}{\text{युकु}}$ प्रतिदिनजनित गतिकलोत्पन्नासु वैषम्यमूलक प्रतिकुदिन वैषम्येनैताद्दशानुपाताभावादेकवर्षान्तःपाति स्पष्टकुदिनानामेकत्रितानां कृतस्वसंख्यकसमखण्डानां मध्यसावनमेवं स्पष्टगतिकलाभ्यो मध्यगतिकलेति च कृत्वैकस्ताद्दशो ग्रहश्चेत्कलिपतो भवेद्यस्य कुदिनं मध्यमसावनं तद्गतिकला च मध्यमगतिकला भवेत्तदा तत्कुदिनेनैवमनुपातः स्यात् । परञ्चायं क्रान्तिवृत्ते चालितो भवेत्तत्र समचापजासूनामप्यसमत्वात् । अथ

$\frac{\text{वर्षान्तःपास्पसावनयोग}}{\text{वर्षान्तःपास्पसावनसं}} = \text{मध्यमसा}$

वर्षान्तःपातिस्पष्ट-सावनयोगसम्बन्धिनाक्षत्रम् = वर्षान्तःपातिस्पष्टसावसं + १ ना

$\text{अतः १ मध्यसावन} = \frac{\text{वअं पास्पष्टसावसं} + \text{१ ना}}{\text{वअंपास्पसावसं}} = १ + \frac{\text{१ ना}}{\text{वअंपास्पसावनसं}}$

$= \text{१ ना} + \frac{\text{२१६०० असु}}{\text{वअं पास्पसासं}} \text{ परं } \frac{\text{२१६०० कला}}{\text{वअं पास्पसावनसं}} = \text{मध्यगतिकला}$

अतः मध्यगति कला समासुः $= \frac{\text{२१६०० असु}}{\text{वअं पास्पसावनसं}}$ ∴ मसावन $=$ १ ना $+$ मगतिक-

लासमासु परं कला तुल्या असवो नाड़ीमण्डल एवातो नाड़ीमण्डल एवोक्तग्रहश्चा-लनीय इति सिद्धम् । अतः स्वस्वभगणादनेनानुपातेन नाड़ीमण्डलीय मध्यमार्कस्य काल्पनिकत्वात्कल्पिते क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्क आगतोऽयं मध्यमग्रह अत आचार्यो "रव्युदये लङ्कायां" वदतीति । आचार्योक्त "रव्युदये लङ्कायां" मिदं समीचीनं नास्ति यत आचार्येणात्रोदयान्तरं शून्यं कल्पितमिति ॥ १ ॥

हि. भा.—अहर्गण को युग ग्रहभगण से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से भगणा-दिक ग्रह लङ्का क्षितिजोदय कालिक होते हैं । इसी तरह अपने-अपने सावनदिनों से मन्दोच्च-पातादि साधन करना ॥१ ॥

उपपत्तिः

$$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{गतभगण} + \frac{\text{भशे}}{\text{युकु}}$$

अथ $\frac{\text{वर्षान्तःपाति स्पष्टसावनयोग}}{\text{वर्षान्तःपातिस्पसावनसं}} = \text{१ मध्यमसा}$

वर्षान्तःपाति स्पष्टसावनयोग सम्बन्धी नाक्षत्र $=$ वर्षान्तःपातिस्पष्टसावनसं $+$ १ ना

अतः १ मध्यमसावन $= \frac{\text{वर्षान्तःपातिस्पष्टसावनसं} + \text{१ ना}}{\text{वर्षान्तःपाति स्पष्टसासं}} =$

$$\text{१} + \frac{\text{१ ना}}{\text{वर्षान्तःपातिस्पसावनसं}} = \text{१ ना} + \frac{\text{२१६०० असु}}{\text{वअं पास्पसासं}}$$

लेकिन $\frac{\text{२१६०० कला}}{\text{वर्षान्तःपाति स्पष्टसावनसं}} = \text{मध्यगतिकला}$

इसलिये मध्यगतिकला समासुः $= \frac{\text{२१६०० असु}}{\text{वर्षान्तःपातिस्पसावनसं}}$

अतः मध्यमसावन $=$ १ ना $+$ मध्यगतिकलासमासु

पर कलातुल्य असु नाड़ीवृत्त ही में होती है इसलिये पूर्वोक्तानुपात से जो ग्रह आते हैं उनको नाड़ीवृत्त में ले जाना चाहिये यह सिद्ध हुआ अतः अपने अपने युगभगण से अनुपात द्वारा जो ग्रह आते हैं वे क्रान्तिवृत्तीयमध्यमार्कोदय कालीन (लङ्काक्षितिजोदयकालीन) होते हैं यह आचार्य का कथन ठीक नहीं है क्योंकि नाड़ीवृत्तीयमध्यमार्कक्रान्ति वृत्तीयमध्यमार्क का अन्तर (उदयान्तर) यहां शून्य मानते हैं तभी "रव्युदये लङ्कायां" हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

प्रसङ्गादुदयान्तर सम्बन्धे किञ्चिद्विचार्यते ।

अहर्गणादनुपातेन यो ग्रहः समागच्छति स मध्यमसावनान्तविन्दुकोऽर्थाद्-

गोलसन्धितो रविभुजांशव्यासार्धवृत्तं यत्र नाड़ीवृत्ते लगति तद्बिन्दुकः। रव्युपरिगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं कार्यं तन्नाड़ीवृत्ते यत्र लगति ततो भुजांशवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातं यावदुदयान्तरासवः। एतत्सम्बन्धिग्रहगतिकला प्रमाणमानीयते, तत्रानुपातो यद्यहोरात्रासुभिर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदोदयान्तरासुभिः किमित्यनुपातेनोदयान्तरासुसम्बन्धिनी ग्रहगतिस्तत्स्वरूपम् $\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{उदयान्तरासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$ एतत्फलं यद्यहर्गणानीतग्रहे (अहर्गणान्तकालिक ग्रहे) संस्क्रियते तदा ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त सम्पातविन्दौ (मध्यमार्कोदयकाले) ग्रहो भवेत्। उदयान्तरस्वरूपदर्शनेन स्पष्टमवसीयते यद् भुजांश विषुवांशयोरन्तरम्=उदयान्तरम्। सम्पातविन्दौ मध्यमरवौ विषुवांशभुजांशयोरभावादुदयान्तराभावः। तथाऽयनसन्धिस्थे मध्यमरवावपि तयोः समत्वादुदयान्तराभावः। एतयोर्मध्ये ह्युदयान्तरमुत्पद्यते। पूर्वमनुपातेन यदुदयान्तरफलमानीतं तन्न समीचीनं यत उदयान्तरासु मध्येऽपि ग्रहाणां काचिद्गतिर्भवति तद्ग्रहणं तु न कृतमतः पूर्वानीतोदयान्तरफलेन संस्कृतोऽहर्गणान्तकालिक ग्रहो नहि मध्यमार्कोदयकालिको भवेत्। अतएव वास्तवोदयान्तरप्रमाणम्=य एतदुदयान्तरासु मध्ये या ग्रहगतिस्तज्जनितासुभिर्यदि पूर्वोक्तमुदयान्तरं संस्क्रियते तदा वास्तवमेवोदयान्तरं भवति। अथवास्तवोदयान्तरकाले ग्रहगतिः=

$\frac{\text{ग्रहगतिक} \times \text{य}}{\text{अहोरात्रासु}}$ एतत्सम्बन्ध्यसुप्रमाणज्ञानार्थमनुपातो यदि राशिकला १८०० भिर्निरक्षोदयासवो लभ्यन्ते तदोदयान्तरकलाभिः किमित्यनुपातेन तत्सम्बन्ध्यसुप्रमाणम् $= \frac{\text{ग्रगक} \times \text{य} \times \text{निरक्षोदयासु}}{\text{अहोरात्रासु} \times १८००}$ अत्र $\frac{\text{ग्रगक}}{\text{अहोरात्रासु}} = १$ असुजगति

तथा $\frac{\text{निरक्षोदयासु}}{१८००} = १$ कलोत्पन्नासु

ततः १ असुजगति $\times$ १ कलोत्पन्नासु $\times$ य=पूर्वानीतासवः। पूर्वोक्तोदयान्तरे संस्करणेन वास्तवमुदयान्तरम्=पूर्वकथितोदयान्तर$\pm$१ असुजग $\times$ १ कलोत्पन्नासु $\times$ य=य

समशोधनेन

पूर्वकथितोदयान्तर=य$\mp$१ असुजगति १ कलोत्पन्नासु $\times$ य

=य (१$\mp$१ असुजग $\times$ १ कलोत्पन्नासु)

अतः $\frac{\text{पूर्वकथितोदयान्तर}}{१ \mp १ \text{ असुजग} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}} = \text{य}$

एतेन म. म. श्रीसुधाकरद्विवेदिसूत्रम्।

"एकासुजातगतिसङ्गुणितैकलिप्तोत्पन्नासु राश्युदयहीनयुतेन तेन।
रूपेण पूर्वमुदयान्तरमत्र भक्तं स्वर्णं ग्रहे युग युजोः पदयोः क्रमेण॥

उपपद्यते।

या त्रुटिः प्राचीनोक्तोदयान्तरकर्मणि तादृश्येव भुजान्तरकर्मणि चरकर्मणि चास्ति वास्तवनयनमप्येकविधमेवार्थात्प्राचीनोक्तोदयान्तरवशतो यद्वास्तवोदयान्तरं कृतं तत्र हरे यत्फलमस्ति तदेव फलं प्राचीनोक्तभुजान्तराच्चराच्च तद्वास्तवानयने भवति, केवलं भाज्ये यत्र प्राचीनोक्तमुदयान्तरं तत्र प्राचीनोक्तभुजान्तरं चरञ्च भवतीति ॥

अथवा वास्तवोदयान्तरसाधनम् ।

अथोदयान्तरम् = भुजांश-विषुवांश तदा चापयोरिष्टयोरित्यादिनोदयान्तरज्या =

$$\frac{\text{ज्याभु} \times \text{कोज्यावि} - \text{कोज्याभु} \times \text{ज्यावि}}{\text{त्रि}}, \text{ परं } \frac{\text{पद्यु} \times \text{ज्याभु}}{\text{द्यु}} = \text{ज्यावि}$$

$$\text{तथा } \frac{\text{कोटिज्याभु. त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{कोज्यावि}$$

$$\therefore \frac{\text{ज्याभु. कोज्याभु. त्रि} - \text{कोज्याभु. पद्यु. ज्याभु}}{\text{त्रि. द्यु}} = \text{उदयान्तरज्या, तुल्यगुणक}$$

पृथक्करणेन

$$\frac{\text{ज्याभु. कोज्याभु (त्रि} - \text{पद्यु)}}{\text{त्रि. द्यु}} = \frac{\text{ज्याभु. कोज्याभु. ज्याजिउ}}{\text{त्रि. द्यु}} =$$

उदयान्तरज्या अत्र ज्याजिउ = जिनांशोत्क्रमज्या

हरभाज्यौ त्रि + पद्यु गुणितौ तदा

$$\frac{(\text{त्रि} + \text{पद्यु}) (\text{ज्याभु. कोज्याभु. ज्याजिउ})}{(\text{त्रि} + \text{पद्यु}) \text{ त्रि. द्यु}} =$$

$$\frac{(\text{त्रि. ज्याभु. कोज्याभु} + \text{पद्यु. ज्याभु. कोज्याभु}) \text{ ज्याजिउ}}{(\text{त्रि} + \text{पद्यु}) \text{ त्रि. द्यु}}$$

$$\frac{\text{ज्याजिउ (कोज्यावि. ज्याभु)} + \text{ज्यावि. कोज्याभु)}}{\text{त्रि (त्रि} + \text{पद्यु)}} =$$

$$\frac{\text{ज्याजिउ ज्या (वि} + \text{भु)}}{\text{त्रि} + \text{पद्यु}} = \text{उदयान्तरज्या} \ldots (१)$$

एतेन "विषुवांशभुजांशयोगजीवा जीनभागोत्क्रमजीवयाविनिघ्नी ।
परमाल्प द्युज्यया विभक्ता त्रिभजीवायुतयोदयान्तरज्या ॥

इति विशेषोक्तसूत्रमुपपद्यते ।

(१) एतत्स्वरूपदर्शनेन सिद्ध्यति यत् "ज्याजिउ, त्रि + पद्यु" अनयोः स्थिरत्वाद्यत्रै ज्या (वि + भु) तस्य परमत्वं भवेत्तत्रैवोदयान्तरस्यापि परमत्वं भवेत्परं परमा ज्या (वि + भु) = त्रि अर्थाद्यत्र भुजांश + विषुवांश = ९० भवेत्तत्रैवोदयान्तरस्य परमत्वम् । तथा सति

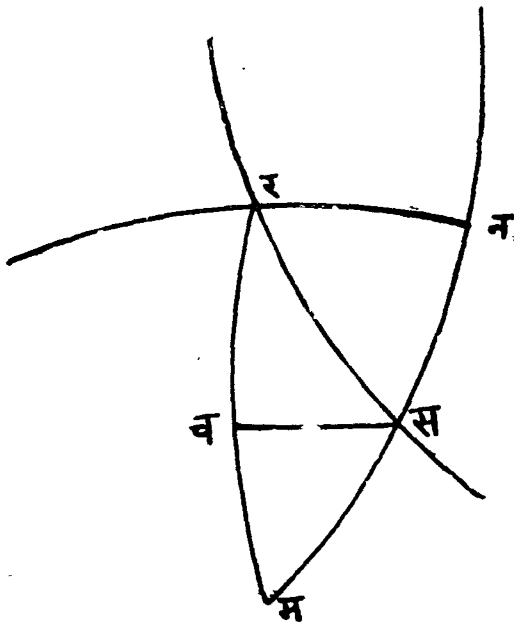
$\frac{\text{त्रि. ज्याजिउ}}{\text{त्रि}+\text{पद्यु}}$ = परमोदयान्तरज्या ।

अस्याश्चापं परमोदयान्तरम् । ततः संक्रमणगणितेन

$\frac{९०+\text{परमोदयान्तर}}{२} = ४५ + \frac{\text{परमोदयान्तर}}{२}$ = परमोदयान्तरकालीनभुजांशाः ।

तथा $\frac{९०-\text{परमोदयातन्र}}{२} = ४५ - \frac{\text{परमोदयान्तर}}{२}$ = परमोदयान्तर-कालीनविषुवांशाः ।

अन्यथा वा परमोदयान्तरकालीन भुजांशज्ञानम् ।



चित्र नं. ११

क्रान्तिवृत्ते र=रविः । सं=नाड़ी क्रान्तिवृत्तसम्पातः संर=भुजांशाः । संन=विषुवांशाः । नाड़ीवृत्ते संर भुजांशतुल्यं संम दानं दत्वा मर वृत्तंकार्यं रसंम कोणार्धकारि संच वृत्तं कार्यं तदा संच चापं मर चापोपरि लम्बरूपं भवेत् । $<$रसंन= = जिनांशाः

१८० − जिनांश = $<$रसंम,

$<$रसंच = $<$मसंच

$= \frac{१८० - \text{जिनांश}}{२}$

$= ९० - \frac{\text{जिनांश}}{२}$ = जिनार्ध-कोटिः ।

अथ यदोदयान्तरं परमं भवेत्तदा भुजांश + विषुवांश = ९० तेन परमोदयान्तरकाले मनचाप = भुजांश + विषुवांश = ९० अतो नमर चापीय जात्ये नमकोटि-चापस्य नवत्यंशत्वात्कर्णचाप (रम) मपि नवत्यंशतुल्यं भवेत् । तेन चर= चम = ४५ तदा रचसं चापीयजात्येऽनुपातः $\frac{\text{ज्या } ४५ \times \text{त्रि}}{\text{ज्या}\left(९० - \frac{\text{जिनांश}}{२}\right)}$ = परमोदयान्तरकालीनभुजज्या ।

अस्याश्चापं तदा परमोदयान्तरकालीन भुजांशा भवेयुरिति । एतेन

"त्रिज्येषु वेदांशगुणेन ताड़िता जिनार्ध कोट्युत्थगुणेन भाजिता ।
तदीयचापेन समा भुजांशका यदा तदा तत्र परोदयान्तरम्" ॥

इत्युपपद्यते ।

'एतद्बलेनैकस्य "परमोदयान्तरज्ञानेनाहर्गणज्ञानं कथं भवेत्") प्रश्नस्योत्तरं सत्वरमेव भवेद्यथा परमोदयान्तरज्ञानेन पूर्वप्रतिपादितरीत्या तत्कालीन भुजांशज्ञानं भवेत्ततो "निरग्रचक्रादपि कुट्टकेनैतद्विलोमेन" ऽहर्गणज्ञानं भवेदेवेति ॥

कमलाकरेणोदयान्तरं न स्वीक्रियते प्रत्युत भास्करोक्तोदयान्तरस्य खण्डनं क्रियते। कमलाकरेण भास्करोक्तोदयान्तरानयने "मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमाना." इत्यादौ निरयणमध्यमरवेर्गतिकलातुल्या असवः सायनरवेर्गतिकलोत्पन्ना सवोहि गृहीता अतस्तयोरन्तरे कृतेऽयनांशस्य परमत्वसमये परमायनांशमितमेवोदयान्तरम्। ततोऽनुपातः क्रियते यद्यहोरात्रासुरभिरर्कगतिकलास्तदाऽयनांश कलातुल्यो दयान्तरासुभिः का जाता रविचालनकलास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{रगक} \times \text{अयनांशकला}}{\text{अहोरात्रासु}}$

परमायनांशाः $=$ २७° एतत्कलाः $=$ २७ $\times$ ६० $=$ १६२०, रविमध्यम गतिः $=$ ५९′। ८″
अहोरात्रासवः $=$ २१६०० ततो रवेश्चालनकलाः $= \frac{(\text{५९}'\text{। ८}')\times \text{१६२०}}{\text{२१६००}} =$

४′ स्वल्पान्तरात्

तथा चन्द्रमगतिः $=$ ७९०′। ३५″ ततश्चन्द्रचालनकलाः $= \frac{(\text{७९०}'\text{। ३५}'')\times \text{१६२०}}{\text{२१६००}}$

$=$ ५९′ स्वल्पान्तरात्

घ

ततो "भक्ता व्यर्कविधोर्लवा यमकुभिरित्यादिना" गततिथिः $=$ ०। ४। एवं योगादावपि एतावता कमलाकरेण कथ्यते यदुदयान्तरस्वीकरणे भास्करकथितमार्गेण परमायनांशकाले पूर्वोक्तरीत्या तिथ्यादौ घटी चतुष्टयमन्तरं भवत्यतस्तदुदयान्तरं न तथ्यम्। परं कमलाकर-खण्डनमिदं न शोभनं, भास्करेण तु सायनमध्यमरवेरेव गतिकलातुल्यासवो गतिकलोत्पन्नासवश्च गृहीतास्तेन तयोरन्तरकरणेनायनांशस्य नाशो भवेत्तदाऽयनांशसम्बन्धेन यत्खण्डनं कृतं तन्न युक्तम्। भास्करोक्तो दयान्तरस्य कमलाकरकृतं खण्डनान्तरमपि वर्त्तते परमेकमपि खण्डनं युक्तियुक्तं नहि वर्त्तते, ये उदयान्तरं न स्वीकुर्वन्ति तेषामेव तद्दूषणम्। भास्करेणोदयान्तरं स्वीकृत्याऽतीव स्वबुद्धिमत्ता प्रदर्शितेति ॥ १ ॥

हि॰ भा.—यहां प्रसङ्गवश उदयान्तर के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

अहर्गण से अनुपात द्वारा जो ग्रह आते हैं सो मध्यम सावनान्त बिन्दु में (अर्थात् गोलसन्धि से रवि भुजांश व्यासार्धवृत्त नाड़ीवृत्त में जहां लगता है उस बिन्दु में) रवि के ऊपर ध्रुवप्रोत करने से वह वृत्त नाड़ीवृत्त में जहां लगता है वहां से भुजांशवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात तक उदयान्तरासु हैं, उदयान्तरासुसम्बन्धिनी ग्रहगतिकला प्रमाण अनुपात से लाते हैं।

यदि अहोरात्रासु में ग्रहगतिकला पाते हैं तो उदयान्तरासु में क्या इस अनुपात से उदयान्तरासु सम्बन्धी ग्रहगति आई $\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{उदयान्तरासु}}{\text{अहोरात्रासु}} = \text{उदयान्तरकला}$

इस फल को यदि अहर्गणानीत ग्रह में (मध्यम सावनान्त कालिक ग्रह में) संस्कार करते हैं तब रव्युपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात बिन्दु में ग्रह होते हैं। उदयान्तरासु प्रमाण भुजांश विषुवांश के अन्तर है, नाड़ीवृत्त क्रान्तिवृत्त के सम्पात बिन्दु में मध्यम रवि के रहने पर विषुवांश भुजांश के अभाव के कारण से उदयान्तराभाव होता है। तथा अयनसन्धि में मध्यम रवि के रहने पर भुजांश=विषुवांश इस लिये वहां भी (अयनसन्धि में भी) उदयान्तराभाव हुआ, इन दोनों (गोलसन्धि और अयनसन्धि) के बीच में मध्यम रवि के रहने से उदयान्तर होता है। पहले अनुपात से जो उदयान्तरफल आया है सो ठीक नहीं है क्योंकि उदयान्तरासु के मध्य में भी ग्रह की कुछ गति होगी उसका ग्रहण नहीं किया गया है। इस लिये पूर्वानीत उदयान्तरफल संस्कृतमध्यमसावनान्त कालिकग्रह (अहर्गणानीतग्रह) मध्यमार्कोदयकालिक (निरक्षक्षितिजोदयकालिक) नहीं होंगे। इसलिए वास्तव उदयान्तर प्रमाण=य मानकर उदयान्तरासु मध्य में जो ग्रहगति होती है तज्जनित असुप्रमाण करके यदि पूर्वोक्त उदयान्तर को संस्कार करते हैं तो वास्तव उदयान्तर प्रमाण होगा। वास्तव उदयान्तर काल में ग्रहगति $= \frac{\text{ग्रहगतिक} \times \text{य}}{\text{अहोरात्रासु}}$ एतत्सम्बन्धी असुप्रमाण जानने के लिये अनुपात करते हैं यदि राशिकला १८०० में निरक्षोदयासु पाते हैं तो उदयान्तरकला में क्या इस अनुपात से तत्सम्बन्धी असुप्रमाण आया $= \frac{\text{ग्रगक. य. निरक्षोदयासु}}{\text{अहोरात्रासु} \times १८००}$, यहां $\frac{\text{ग्रगक}}{\text{अहोरात्रासु}}$

$= १\text{असुजग}$ और $\frac{\text{निरक्षोदयासु}}{१८००} = १$ कलोत्पन्नासु

इसलिये १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु. य=उदयान्तकलासंअसु, इसको पूर्वोक्त उदयान्तर में संस्कार कर देने से वास्तव उदयान्तर होगा।

पूर्वकथित उदयान्तर ± १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु. य=य समशोधन करने से

पूर्वकथित उदयान्तर =य ∓१ असुजग × १ कलोत्पन्नासु. य

=य(१±१असुजग × १ कलोतपन्नासु)

अतः $\frac{\text{पूर्वकथित उदयान्तर}}{१ \mp १ \text{ असुजग} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}} = \text{य}$।

इससे म. म. प. श्री सुधाकर द्विवेदी का सूत्र उपपन्न हुआ।

एकासुजातगतिसङ्गुणितैकलिप्तो इत्यादि।

प्राचीनोक्त उदयान्तर कर्म में जो त्रुटि है वैसी ही त्रुटि भुजान्तर कर्म, और चरकर्म में भी है, वास्तवानयन भी एक ही तरह के है। उपर्युक्त वास्तव उदयान्तर स्वरूप में जो हर है वही हर वास्तवभुजान्तर और वास्तवचर में भी होगा, भाज्य में पूर्वकथित भुजान्तर, पूर्वकथित चर होगा इति

अथवा दूसरे प्रकार से वास्तव उदयान्तर साधन।

भुजांश — विषुवांश = उदयान्तर। चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये इत्यादि से

$$\frac{\text{ज्याभु} \cdot \text{कोज्यावि} - \text{कोज्याभु} . \text{ज्यावि}}{\text{त्रि}} = \text{उदयान्तरज्या} ।$$

$$\text{परन्तु} \quad \frac{\text{पद्यु} . \text{ज्याभु}}{\text{द्यु}} = \text{ज्यावि}$$

$$\frac{\text{कोज्याभु} . \text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{कोज्यावि}$$

$$\text{तब उत्थापन देने से } \frac{\text{ज्याभु} . \text{कोज्याभु} . \text{त्रि} - \text{कोज्याभु} . \text{ज्याभु} . \text{पद्यु}}{\text{त्रि} . \text{द्यु}} = \text{उदयान्तरज्या} ।$$

$$= \frac{\text{ज्याभु} . \text{कोज्याभु} (\text{त्रि} - \text{पद्यु})}{\text{त्रि} . \text{द्यु}} = \frac{\text{ज्याभु} . \text{कोज्याभु} . \text{ज्याजिउ}}{\text{त्रि} . \text{द्यु}}$$

यहां त्रि — पद्यु = जिनांशोत्क्रमज्या

हर और भाज्य को "त्रि + पद्यु" इससे गुणने से

$$\frac{(\text{त्रि} + \text{पद्यु})(\text{ज्याभु} . \text{कोज्याभु} . \text{ज्याजिउ})}{(\text{त्रि} + \text{पद्यु}) . \text{त्रि} . \text{द्यु} .} = \frac{\text{त्रि} . \text{ज्याभु} . \text{कोज्याभु} .}{(\text{त्रि} + \text{पद्यु}) \text{ त्रि} . \text{द्यु}} + \frac{\text{ज्याभु} . \text{कोज्याभु} . \text{पद्यु}}{(\text{त्रि} + \text{पद्यु}) \text{ त्रि} . \text{द्यु}}$$

$$= \frac{\text{ज्याजिउ} (\text{कोज्यावि} . \text{ज्याभु} + \text{ज्यावि} . \text{कोज्याभु})}{\text{त्रि} (\text{त्रि} + \text{पद्यु})} = \frac{\text{ज्याजिउ} \times \text{ज्या} (\text{वि} + \text{भु})}{\text{त्रि} + \text{पद्यु}} = \text{उदयान्तरज्या}$$

इससे

विषुवांश भुजांशयोगजीवा जिनभागोत्क्रमजीवया विनिघ्नी।
परमाल्प द्युज्यया विभक्ता त्रिभजीवायुतयोदयान्तरज्या॥

यह विशेषोक्त सूत्र उपपन्न हुआ।

पूर्वानीत उदयान्तरज्या $= \frac{\text{ज्याजिउ} \times \text{ज्या} (\text{वि} + \text{भु})}{\text{त्रि} + \text{पद्यु}}$, इसमें ज्याजिउ, तथा त्रि + पद्यु ये दोनों स्थिर है तब जहां पर ज्या (वि + भु) इसका परमत्व होगा वहीं पर उदयान्तर का भी परमत्व होगा। परन्तु कोई भी ज्या त्रिज्या से अधिक नहीं होती है इसलिये जहां ज्या(वि + भु) = त्रि अर्थात् वि + भु = ९० वहीं पर उदयान्तर का परमत्व होगा।

अतः $\frac{\text{ज्याजिउ} . \text{त्रि}}{\text{त्रि} + \text{पद्यु}}$ = परमोदयान्तरज्या। इसका चाप = परमोदयान्तर

तब संक्रमणगणित से $\frac{९० + \text{परमोदयान्तर}}{२} = ४५ + \frac{\text{परमोदयान्तर}}{२}$ = परमोदयान्तर

कालीन भुजांश

तथा $\frac{९०—परमोदयान्तर}{२} = ४५ — \frac{परमोदयान्तर}{२}$ = परमोदयान्तरकालीन विषुवांश।

अथवा परमोदयान्तरकालीन भुजांशानयन।

यहां क्षेत्र (नं० ११) देखिये, क्रान्तिवृत्त में र=रवि। सं=नाड़ीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पात संर=रविभुजांश। संन=विषुवांश। नाड़ीवृत्त में संर भुजांश तुल्य संम दान देकर मर वृत्त कर दीजिये। रसं म कोण के अर्धकारिवृत्त कर दीजिये तब सं च चाप मर चाप के ऊपर लम्ब होगा। सं च= कोणार्धकारिवृत्त चाप।

$<$रसंन=जिनांश, १८०—जिनांश=$<$रसंम,$<$रसंच=$<$मसंच= $\frac{१८०—जिनांश}{२}$

$= ९० — \frac{जिनांश}{२}$ = जिनार्ध कोटि

जब उदयान्तर का मान परम होता है तब भुजांश+विषुवांश=९० इसलिये परमोदयान्तर काल में मन चाप =भुजांश+विषुवांश=९० इसलिये नमर चापीय जात्यत्रिभुज में नम कोटि चाप के नवत्यंश के बराबर होने से रम कर्णचाप भी नवत्यंश तुल्य होगा, अतः चर=चम=४५ तब रचसं चापीय जात्य त्रिभुज में अनुपात से $\frac{ज्या \; ४५ + त्रि}{ज्या \left(९० — \frac{जि}{२}\right)}$ = परमोदयान्तर कालीन भुजज्या। चाप करने से परमोदयान्तर कालीन भुजांश प्रमाण होगा।

इससे अधोलिखित सूत्र उत्पन्न हुआ।

त्रिज्येषु वेदांशगुणेन ताड़िता जिनार्धकोट्यु त्थगुणेन भाजिता।
तदीयचापेन समा भुजांशका यदा तदा तत्र परोदयान्तरम्॥

इसके बल से "परमोदयान्तर ज्ञान से अहर्गणानयन कैसे होगा" इस प्रश्न का उत्तर बहुत लाघव से हो जायगा परमोदयान्तर ज्ञान से पूर्व प्रतिपादितरीति से तत्कालीन भुजांश ज्ञान हो जायगा, उस पर से "निरग्रचक्रादपि कुट्टकेन" इत्यादि के विलोम से अहर्गणज्ञान हो जायगा।

कमलाकर उदयान्तर नहीं मानते हैं बल्कि भास्कर कथित उदयान्तर का खण्डन करते हैं भास्करोक्तोदयान्तरानयन में "मध्यार्क भुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमानाः" इत्यादि में कमलाकर ने निरयणमध्यम रवि की गति कला तुल्यासु और सायनमध्यमरवि की गति कलोत्पन्नासु लेकर भास्करोक्तोदयान्तर का खण्डन करते हैं। जैसे कमलाकर कल्पना के अनुसार दोनों के (निरयण मध्यमरवि गतिकला तुल्यासु और सायन रविगतिकलोत्पन्नासु) अन्तर करने से अयनांशतुल्य उदयान्तर रहता है। इस परसे परमायनांश काल में अयनांशकला सम्बन्धी रवि और चन्द्र की चालनकला लाते हैं। यथा यदि अहोरात्रासु में

रविगति कला पाते हैं तो अयनांशकलातुल्य उदयान्तरासु में क्या आ जायगा अयनांशकला सम्बन्धी रवि चालनफल $= \frac{\text{रविगतिकला} \times \text{अयनांशकला}}{\text{अहोरात्रासु}}$, रविमध्यगतिकला $= ५९' । ८''$, परमायनांश $= २७^\circ$

एतत्सम्बन्धी कला $= २७ \times ६० = १६२०$, अहोरात्रासु $= २१६००$

$\therefore$ परमायनांशकला सम्बन्धी रविचालनकला $= \frac{(५९' । ८'') \times १६२०}{२१६००} = ४'$

स्वल्पान्तर से ।

इसी तरह परमायनांशकला सम्बन्धी चन्द्रचालनकला $= \frac{(७९०' । ३५'') \times १६२०}{२१६००}$

$= ५९'$ स्वल्पान्तर से अब "भुक्ताव्यर्कविधोर्लवा यमकुभिर्याता तिथिः इत्यादि से तिथिमान घटी
० । ४ । ० इसी तरह योगादियों में भी ।

इससे कमलाकर ने दिखलाया है कि यदि उदयान्तर स्वीकार करते हैं तो भास्करकथित रीति से परमायनांशकाल में पूर्व प्रदर्शित युक्ति से तिथियोगादि में चारघटी अन्तर पड़ता है अतः भास्करोक्तोदयान्तर ठीक नहीं है । लेकिन कमलाकरोक्त यह खण्डन ठीक नहीं है : भास्कराचार्य तो सायनमध्यमरवि की गतिकला तुल्यासु तथा सायन मध्यमरवि की गतिकलोत्पन्नासु के अन्तर रूप उदयान्तर कहते हैं उन दोनों के अन्तर करने से अयनांश नष्ट हो जायगा । कमलाकर अपने मन से निरयण मध्यमरवि की गतिकलासु लेकर खण्डन किया है भास्कराचार्य के पद्य "युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य" इत्यादि देखने से साफ हो जाता है कि कमलाकर मनगढ़न्त निरयणरवि की गतिकलासु लेकर तत्सम्बन्ध से खण्डन किया है जो कि बिलकुल ठीक नहीं है । भास्करोक्तोदयान्तर का खण्डन कमलाकर ने दूसरे ढङ्ग से भी किया है, लेकिन वह भी ठीक नहीं है, जो उदयान्तर को नहीं स्वीकार करते हैं उनमें यह दोष है। उदयान्तर संस्कार स्वीकार कर भास्कर ते अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है ॥ १ ॥

अथ लघ्वहर्गणतो मध्यमरविज्ञानमाह

लघुदिवागणतोऽब्द विवर्जिताद्रविचतुर्युगपर्यय ताड़ितात् ।
खरसपञ्च नगैक शिवाहृतै र्विरहिताद् गत भास्करपर्ययैः ॥ २ ॥
खगुणचन्द्र गुणाङ्क समुद्रकु त्रिशशिभिर्भजितादिनभादि तत् ।

वि. भा.—अब्दविवर्जितात् (गतवर्षरहितात्) लघुदिवागणतः (लघ्वहर्गणतः) रविचतुर्युग पर्ययताड़ितात् (युगपठित रविभगणगुणितात्) खरसपञ्च नगैक शिवाहृतैः (११७५६० एतद्गुणितैः) गतभास्करपर्ययैः (गतरविभगणैः) विरहितात् (हीनात्) खगुणचन्द्र गुणाङ्क समुद्रकु त्रिशशिभिः (१३१४९३१३० एतन्मितैरङ्कैः) भजितात् (भक्तात्) फलं यत्तत् इनभादि (राश्यादिकरविः) भवेदिति ॥

हि. भा—लघ्वहर्गण में गतवर्ष घटाकर जो हो उसको रवि के पठित युग भगण से गुण देना १११७५६० एतद्गुणितगतरविभगण घटा देना शेष को १३१४६३११३० इतने से भाग देने से राश्यादिक रवि होते हैं। २१½ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदियुगकुदिनैर्युगरविभगणा लभ्यन्ते तदालघ्वहर्गणेन किमित्यनुपातेन लघ्वहर्गणसम्बन्धिभगणादिको रविः $= \frac{\text{युगरविभगण} \times \text{लघ्वहर्गण}}{\text{युकुदि}} =$

$\frac{\text{युरविभगण}}{\text{युगकुदि}} \left(\frac{\text{३६४ गव} + \text{गव} \times \text{४५३१३}}{\text{३६०००}} \right)$

अत्र लघ्वहर्गणे यत्प्रथमखण्डं गतवर्षसम्बन्धि वर्त्तते तत्र गतवर्षरहितमेव लघ्वहर्गणं स्वीकृत्य रव्यानयनं क्रियते।

$$\frac{\text{युगरविभगण} \times (\text{लघ्वहर्गण} - \text{गव})}{\text{युगकुदिन}} = \text{गतरविभगण} + \frac{\text{शे}}{\text{युकुदिन}}$$

$$\frac{\text{युगरविभगण } (\text{लघ्वहर्गण} - \text{गव}}{\text{युगकु}} - \text{गतरविभगण} = \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण } (\text{लघ्वहर्गण} - \text{गव}) - \text{गतरविभगण} \times \text{युक}}{\text{युकु}} = \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$$

राश्यात्मक करणेन राश्यादिको रविः =

$$\text{१२} \times \left\{ \frac{\text{युगरविभगण(लघ्रहर्गण} - \text{गव}) - \text{गतरविभगण} \times \text{युकु}}{\text{युकु}} \right\} = \frac{\text{१२ शे}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण } (\text{लघ्रहर्गण} - \text{गव}) - \text{गुणकाङ्क} \times \text{गतरविभगण}}{\frac{\text{युकु}}{\text{१२}}} = \frac{\text{शे}}{\frac{\text{युक}}{\text{१२}}}$$

$$= \frac{\text{युगरविभगण } (\text{लघ्रहर्गण} - \text{गव}) - \text{गुणकाङ्क} \times \text{गतरविभ}}{\text{पठितहर}} = \frac{\text{शे}}{\text{पठितहर}} =$$

राश्यादिको रविः। स्वल्पान्तरात् अत उपपन्नम्।

उपपत्ति

युगकुदिन में युगरविभगण पाते हैं तो लघ्वहर्गण में क्या इस अनुपात से लघ्वहर्गण सम्बन्धी भगणादि रवि आ जायंगे, $\frac{\text{युगरविभगण} \times \text{लघ्वहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिरवि}$ पूर्वानीत लघ्वहर्गणस्वरूप में गतवर्ष सम्बन्धी जो फल है उसमें केवल गतवर्ष को लघ्वहर्गण में घटाकर जो शेष रहता है तत्सम्बन्धी मध्यम रवि लाते हैं $\frac{\text{युगरविभगण} \times (\text{लघ्वहर्गण} - \text{गव})}{\text{युकुदिन}}$

$$= \text{गरविभ} + \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}$$

$$\therefore \frac{\text{युगरविभगण(लघ्वहर्गण} - \text{गव})}{\text{युकुदि}} - \text{गरविभगण} = \frac{\text{शे}}{\text{युकु}} =$$

$\frac{\text{युगरविभगण (लघ्वहर्गण—गव)—गरविभगण} \times \text{युकुदिन}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ इसको राश्यात्मक

करने से $\left\{ \frac{\text{युरविभगण (लघ्वहर्गण—गव)—गरविभगण} \times \text{युकु}}{\text{युकु}} \right\} \times १२ = \frac{१२ \text{ शे}}{\text{युकु}}$

$= \frac{\text{युगरविभगण(लघ्वहर्गण—गव)—गतरविभगण} \times \text{युकु}}{\frac{\text{युकु}}{१२}} = \frac{\text{शे}}{\frac{\text{युकु}}{१२}}$

$= \frac{\text{युगरविभगण (लघ्वहर्गण—गव)—गुणकाङ्क} \times \text{गतरविभगण}}{\text{पठितहर}} = \frac{\text{शे}}{\text{पठितहार}}$

=राश्यादिरवि स्वल्पान्तर से

इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ।। $२\frac{१}{२}$ ।।

मध्यमचन्द्रानयनमाह

शशिचतुर्युग पर्यय ताड़िताज्जिनखषड् गजदोर्नव खेषुभिः ।। ३ ।।
विनिहतैर्गतवत्सरकैर्युताद्रवि चतुर्युगसावन भूदिनैः ।
विभजिताद्भगणादिशशी भवेत्त्रिकुहतेन समासहितं च तत् ।।४।।

वि. भा.—शशिचतुर्युग पर्यय ताड़ितात् (चन्द्रपठित युगभगण गुणिता-दहर्गणात्) जिनखषड्गजदोर्नवखेषुभिः (५०९२८६०२४) विनिहतैः (गुणितैः) गतवत्सरकैः (गतवर्षैः) युतात् (सहितात्) रविचतुर्युगसावनभूदिनैः (रवियुगकुदिनैः) विभजितात् (भक्तात्) भगणादिशशी (भगणादिकश्चन्द्रः) भवेत् । इति चन्द्रप्रमाणं त्रिकुहतेन समासहितं (त्रयोदशगुणितवर्षयुतं) तदा वास्तवः शशी भवेत् ।।३-४।।

हि. भा.—अहर्गण को चन्द्र के पठित युगभगण से गुण देना ५०९२८६०२४ एतद्गुणित गतवर्ष जोड़ देना रवि के युग सावन (युगकुदिन) से भाग देने से भगणादिक चन्द्र होते हैं । इनमें तेरह गुणित गतवर्ष जोड़ने पर वास्तव चन्द्र होते हैं ।।३-४।।

अत्रोपपत्तिः

अत्र लघ्वहर्गणस्वरूपम् $= ३६४ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००} = १३ \text{ गव} + ३५१ \text{ गव}$

$+ \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००}$ अत्र $३५१ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००} =$ एतदेव लघ्वहर्गणं मत्वा

तत्सम्बन्धि भगणादि चन्द्रमानीय १३ गव योजनेन वास्तव भगणादिचन्द्रो भवेत् ।

$$\frac{\left(३५१ \text{ गव} + \text{गव} \times \frac{४५३१३}{३६०००}\right) \text{युगचन्द्रभगण}}{\text{युकुदि}} = \frac{\text{गव}\left(३५१ + \frac{४५३१३}{३६०००}\right) \times \text{युचभ}}{\text{युकुदि}}$$

$$= \frac{\text{गव} \times १२६८१३१३ \times \text{युगचंभगण}}{\text{युकुदिन}} = \frac{\text{लघ्वहर्ग} \times \text{युचांभगण}}{\text{युकुदिन}}$$

एतन्मानं १३ गव योजितं तदा वास्तवश्चन्द्रो भवेदिति । अत्र "जिन-खषडगज-दोर्नव खेषुभिरित्यारभ्य युतादित्यन्तमसङ्गतमिव प्रतिभाति ।।३-४।।

उपपत्ति

पूर्वानीत लघ्वहर्गण का स्वरूप $=$ ३६४ गव $+$ गव $\times \frac{४५३१३}{३६०००}$ इसमें १३ गव छोड़ कर बाकी को अर्थात् ३५१ गव $+$ गव $\times \frac{४५३१३}{३६०००} =$ गव $\times \frac{१२६८१३१३}{३६०००}$ इसको लघ्वहर्गण मानकर अनुपात से जो भगणादि चन्द्र आवेंगे उनमें १३ गव जोड़ने से वास्तविक भगणादि चन्द्र होंगे। यहां पर "जिन खषड्गजदोर्नवखेषुभिः" इत्यादि से "युतात्" यहां तक निरर्थक मालूम पड़ता है ॥३-४॥

वेदत्तु गुणे द्युगणे परिकल्पित इष्टभगणसंगुणिते ।
भूदिनभक्ते शेषं यत्तद्गविवर्षसंगुणं क्षिपेत् ॥५॥

वि. भा.—द्युगणे (अहर्गणे) वेदत्तु गुणे (६४ एभिर्हते) परिकल्पिते, इष्टभगण संगुणिते (इष्टग्रहयुगभगणसंख्या गुणिते) भूदिनभक्ते (युग कुदिन भक्ते) शेषं यत्तत् गत सौरवर्षसंगुणितं तत्र क्षिपेत्तदा मध्यमग्रहः स्यादिति ॥५॥

हि. भा.—अहर्गण को चौंसठ से गुणा कर जो हो उसको एक विशिष्ट अहर्गण मानना, उस कल्पित विशिष्ट अहर्गण को इष्टग्रह के युगभगण से गुण देना, युगकुदिन से भाग देकर जो शेष रहे उसको गत सौरवर्ष से गुणकर जोड़ देने से मध्यमग्रह होता है ॥ ५ ॥

अत्रोपपत्तिः

लअहर्गण $\times$ ६४ $=$ विशिष्टाहर्गण तदाऽनुपातेन $\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{विशिष्टाहर्ग}}{\text{युकुदिन}} =$ भगणादिग्र $+ \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ अत्र शेषं गतवर्षगुणं योज्यं तदा मध्यमग्रहो भवेदिति ॥१॥

भास्करोक्त लघ्वहर्गण स्वरूपम् $=$ शोशुचां $- \frac{\left(\text{शोशुचां} + \frac{\text{शोशुचां}}{७०२} + \text{क्षेपदिन}\right)}{६४}$

$\therefore$ ६४ $\times$ लघ्वहर्गण $=$ ६४ शोशुचां $- \left(\text{शोशुचां} + \frac{\text{शोशुचां}}{७०२} + \text{क्षे दि}\right)$

इत्येव (६४ $\times$ लघ्वहर्गण) विशिष्टमहर्गणं प्रकल्प्यानुपातेन यो हि भगणादिकग्रहो भवेत्स च लघ्वहर्गणगुणकाङ्केन भजनीयो यश्चाग्रिमश्लोके वर्णितोऽस्ति ॥५॥

उपपत्ति

लअहर्गण $\times$ ६४ $=$ कल्पित अहर्गण इस पर से अनुपात करते हैं कि $\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{कल्पित अहर्गण}}{\text{युकुदि}} =$ भगणादिग्र $+ \frac{\text{शे}}{\text{युकुदि}}$ यहां शेष को गतवर्ष से गुणकर जोड़ देना चाहिए तब वास्तव मध्यमग्रह होता है ॥२॥

$$\text{शोशुचां} - \frac{\left(\text{शोशुचां} + \frac{\text{शोशुचां}}{७०२} + \text{क्षेपदिन}\right)}{६४} = \text{भास्करोक्त लघ्वहर्गण}$$

$\therefore$ ६४ × लघ्वहर्गण = ६४ × शोशुचां —(शोशुचां + $\frac{\text{शोशुचां}}{\text{७०२}}$ + क्षेपदि)

६४ × लघ्वहर्गण इसको एक विशिष्ट अहर्गण मानकर अनुपात से जो भगणादिग्रह होंगे उनको लघ्वहर्गण के गुणकाङ्क से अपवर्त्तन करना जिस बात को अग्रिम श्लोक को कहते हैं ।। ५ ।।

लघुदिन भगणाभिहतौ कुदिनाप्तमतः खगो भचक्रादिः ।
परिकल्पिताहवाप्तं गतवर्षगुणं विनिक्षिपेत्तत्र ।।६।।

वि. भा.—लघुदिन भगणाभिहतौ (लघ्वहर्गण युगग्रहगभगणघाते) कुदिनाप्तं (युगकुदिनभक्तं यल्लब्धं) भचक्रादिः (भगणादिकः) खगः (ग्रहः) भवेत् । परिकल्पितात् (पूर्वकल्पितादहर्गणात्) यत्फलं तद्गतवर्षगुणं (गतसौरवर्षसंख्यया गुणितं) तत्र ग्रहे योग्यं तदा वास्तवो मध्यग्रहः स्यादिति ।।६।।

हि.भा.—लघ्वहर्गण युगग्रह भगण के घात में युगकुदिन से भाग देने से भगणादि ग्रह होते हैं । इसमें पूर्वकल्पित अहर्गण मे जो फल हो उसको गतवर्ष संख्या से गुणाकर जोड़ देना चाहिए तब वास्तविक मध्यमग्रह होता है ।।६।।

अत्रोपपत्तिः पूर्ववदेव बोध्येति ।

इदानीमेकस्य भगणादिग्रहस्य ज्ञानेनाभीष्टद्वितीयग्रहसाधनमाह

इष्टग्रहभगणगुणो ग्रहः सभगणः एवपर्ययैर्भक्तः ।
भगणाद्यभीष्ट खचर कुदिनैरेवं दिनगणः स्यात् ।। ७ ।।

वि. भा.—सभगणः (भगणसहितः) ग्रहः (ज्ञातग्रहः) अर्थाज्ज्ञात-भगणादिग्रहः । इष्टग्रहभगणगुणः (साध्येष्टग्रहभगणगुणः) स्वपर्ययैः (निजभगणैरर्थाज्ज्ञात ग्रहभगणैः) भक्तः (भाजितः) तदा भगणाद्यभीष्ट खचरः (भगणादिक इष्टग्रहः) भवेत् । एवं कुदिनैः (युगकुदिनैः) विलोमेन दिनगणः (अहर्गणः) स्यात् ।

हि. भा.—ज्ञातभगणादि ग्रह को इष्टग्रह (साध्यग्रह) भगण से गुण देना, अपने युगभगण (ज्ञातग्रह) के युगभगण से भाग देने से भगणादिक अभीष्टग्रह होता है । इसी तरह युगकुदिन द्वारा विलोम विधि मे अहर्गण होता है ।।

उपपत्तिः

यदि युगकुदिनैर्ज्ञातग्रहभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन भगणादिको ज्ञातग्रहः—

(१)

$\frac{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदिन}}$ = भगणादिज्ञातग्रह । एवमेव युगकुदिनैर्यदीष्टग्रह युगभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन भगणादिक इष्टग्रह =

$\frac{\text{इष्टग्रहयुगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ .....(२) अतः (१) अस्मिन्)२) अनेन भक्ते

तदा $\frac{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}{\text{इष्टग्रहयुगभगण}} = \frac{\text{भगणादिज्ञातग्रह}}{\text{भगणादिइष्टग्रह}}$ पक्षौ "भगणादि इष्टग्रह"

गुणितौ तदा $\frac{\text{ज्ञातग्रह युगभगण} \times \text{भगणादिइष्टग्रह}}{\text{इष्टग्रहयुगभगण}}$ = भगणादि ज्ञातग्रह ।

$\therefore \frac{\text{भगणादिज्ञातग्रह} \times \text{इष्टग्रहयुगभगण}}{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}$ = भगणादि इष्टग्रहः ।

ग्रहादहर्गणज्ञानार्थं विलोमविधिर्यथा $\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ = भगणादिग्रह

$\therefore \frac{\text{भगणादिग्रह} \times \text{युगकुदिन}}{\text{युगग्रहभगण}}$ = अहर्गणश्च त आचार्योक्तमुपपन्नम् ।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में ज्ञातग्रह युगभगण पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से भगणादि ज्ञातग्रह = $\frac{\text{ज्ञातग्रह युगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$, इसी तरह $\frac{\text{इष्टग्रहयुगभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ = भगणादि इष्टग्रह

अतः $\frac{\text{भगणादि इष्टग्रह}}{\text{भगणादिज्ञातग्रह}} = \frac{\text{इष्टग्रह युगभगण}}{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}$ दोनों पक्षों को "भगणादि ज्ञातग्रह"

गुण देने से भगणादि इष्टग्रह = $\frac{\text{इष्टग्रहयुगभगण} \times \text{भगणादिज्ञातग्रह}}{\text{ज्ञातग्रहयुगभगण}}$, इसी तरह ग्रह पर से विलोम विधि से अहर्गण का ज्ञान होता है जैसे

$\frac{\text{युगग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = भगणादिग्रह $\therefore$ युगग्रहभगण $\times$ अहर्गण = युकु $\times$ भगणादिग्रह

$\therefore \frac{\text{युकु} \times \text{भगणादिग्र}}{\text{युगग्रहभगण}}$ = अहर्गण इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ७ ॥

अथाधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनं म. म. सुधाकरोक्तं प्रदर्श्यते ।

कल्पसौर तिथिघात संयुता स्वस्वभुक्त्यवमशेषसंहतिः ।
हीनिताऽप्यधिकमासशेषकैः संहृता च यदवाप्यते दिनैः ॥
चन्द्रार्कैर्भवति तत्स्वभुक्तिजं भागमानमिनचन्द्रयोः किल ।
चन्द्रामानमवधेहि संयुतं द्वादशघ्नतिथिभिः स्फुटं बुधाः ॥
रवीन्द्वोर्दिनसंख्याया कल्पे चेत्कल्प्यते समा ।
मद्विधौ भास्करस्येन्दुरव्योः स्वल्पान्तरान्मितिः ॥

अत्रोपपत्तिः

रव्यब्दान्तादिष्ट तिथ्यन्तं यावच्चान्द्राहाः = चं गति $-$ $\frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कसौ}}$ =

$\frac{\text{चंगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कसौ}}$ = इष्टचान्द्राहाः, एतत्सम्बन्धि सौर । व तिथ्य-

न्तेंऽशात्मको रविर्वर्षान्ते भगण पूर्त्तित्वात् । अतस्तिथ्यन्ते रविः $= \frac{\text{कसौ} \times \text{इचां}}{\text{कचां}} =$

$\frac{(\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०)}{\text{कचां} \times \text{कसौ}} = \frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}}$, अत-

स्तिथ्यन्ते चन्द्रः $= \text{र} + १२\text{चैगति} = \frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + १२\text{चैगति}$,

अथ तिथ्यन्तसूर्योदययोरन्तरं सावनात्मकम् $= \frac{\text{क्षशे}}{\text{कचां}}$ एतत्सम्बन्धि चालनं

रवेः $= \frac{\text{रगक} \times \text{क्षशे}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$

तथा चन्द्रस्य $\frac{\text{चंग} \times \text{क्षशे}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$ अतः सूर्योदयकालिकौ रवीन्दू

$\frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + \frac{\text{रगक} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}} = \text{रविः}$ ।

$\frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + \frac{\text{चंग} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}} + १२ \text{ चैगति} = \text{चन्द्रः}$

एतेन कल्पसौर तिथि घात संयुतेत्याद्यारभ्य स्फुटं बुधा इत्यन्तं सुधाकरोक्त-सूत्रमुपपद्यते ॥

अत्र यदि स्वल्पान्तरात् कसौ=कचां तदा रविचन्द्रौ समौ, वर्षान्ताधिशे= तिथ्यन्त कालिकाधिशे

तदा रविः $= \text{चैगति} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + \frac{\text{रग} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}} = \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\frac{\text{कचां}}{\text{रग}}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\frac{\text{कचां}}{३०}}$

$= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{पठितहार}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमा}} = \text{चैगति} + \text{रविधनफ} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमा}} =$

यतः $\frac{\text{क्षशे}}{\text{पठितहा}} = \text{रविधफ}$ । सूर्योदयकालिक रविः.....(१)

सूर्योदयकालिकचन्द्रः $= १३ \text{ चैगति} + \frac{\text{चंग} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} =$

$१३ \text{ चैगति} + \frac{\text{क्षशे} \times \text{चंग}}{\frac{\text{रग}}{\frac{\text{कचां}}{\text{रग}}}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\frac{\text{कचां}}{३०}}$

$= १३$ चैगति $+ \frac{\text{क्षशे} \times (१३ \times \frac{१३}{३५})}{\text{पठितहार}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमास}}$ । यतः $\frac{\text{चंग}}{\text{रग}} = १३ + \frac{१३}{३५}$

$= १३$ चैगति $+$ रविधफ $\times (१३ \times \frac{१३}{३५}) - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमास}} =$

१३ चैगति $+$ चन्द्रधनफ $- \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमा}} =$ सूर्योदयकालिकचन्द्र---- (२)

(१) (२) एतद्दर्शनेन 'कोट्याहतैर्यद्भवभैरित्यादि' भास्करोक्तमुपपद्यत इति ।।

उपपत्ति

वर्षान्त मे इष्ट तिथ्यन्त पर्यन्त चान्द्र दिन $=$ चैगति $- \frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कसौ}}$

$= \frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कसौ}} =$ इष्टचान्द्रदिन, एतत्सम्बन्धी सौरदिन ही तिथ्यन्तमें अंशात्मक रवि होते हैं क्योंकि वर्षान्त में रवि के भगण पूरा हो जाता है, इसलिए तिथ्यन्त में रवि $= \frac{\text{कसौ} \times \text{इचां}}{\text{कचां}} = \frac{\text{कसौ} (\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०)}{\text{कचां} \times \text{कसौ}} =$

$\frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}}$, अतस्तिथ्यन्त में चन्द्र $=$ र $+ १२$ चैगति $=$

$\frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + १२ \times$ चैगति, तिथ्यन्त और सूर्योदय के अन्तर सावनात्मक $= \frac{\text{क्षशे}}{\text{कचां}}$ एतत्सम्बन्धी रवि के चालन $= \frac{\text{रगक} \times \text{क्षशे}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$ और चन्द्र के चालन $=$

$\frac{\text{चंग} \times \text{क्षशे}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$, इसलिए सूर्योदय कालिक रवि

$= \frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + \frac{\text{रगक} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}} =$

$\frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३० + \text{रगक} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}}$, इसी तरह चन्द्र $=$ (१)

$\frac{\text{चैगति} \times \text{कसौ} - \text{वर्षान्ताधिशे} \times ३० + \text{चंगक} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}} + १२$ चैगति

यहां स्वल्पान्तर मे यदि कसौ $=$ कचां तब रवि और चन्द्र बराबर होंगे, वर्षान्ताधिशेष $=$ तिथ्यन्तकालिकाधिशे, रवि $=$ चैगति $- \frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + \frac{\text{रग} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}}$

तथा चन्द्र $= १३$ चैगति $- \frac{\text{वर्षान्ताधिशे} \times ३०}{\text{कचां}} + \frac{\text{चंग} \times \text{क्षशे}}{\text{कचां}}$

अथवा रवि $=$ चैगति $+ \frac{\frac{\text{क्षशे}}{\text{कचां}}}{\text{रग}} - \frac{\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचां}}}{३०}$

यहां $\frac{\text{कचां}}{\text{रग}} = २७११०००००० =$ हां

तथा चन्द्र $= १३ \times$ चैगति $+ \frac{\frac{\text{क्षशे} \times \text{चंग}}{\text{रग}}}{\frac{\text{कचां}}{\text{रग}}} - \frac{\frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचाँ}}}{३०}$, $\frac{\text{चंग}}{\text{रग}} = १३ + \frac{१३}{३५}$

$\frac{\text{क्षशे}}{\text{हा}} =$ रविधनफल, तथा $\frac{\text{क्षशे} \times \frac{\text{चंग}}{\text{रग}}}{\text{हां}} =$ चन्द्रधनफ $=$ रविधफ $(१३ + \frac{१३}{३५}$

इसलिए चैगति + रविधनफल $- \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमा}} =$ सूर्योदयकालिकरवि
तथा १३ $\times$ चैगति + रविधफ $(१३ + \frac{१३}{३५}) - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे}}{\text{कचांमा}} =$ सूर्योदयकालिकचन्द्र } (२)

(१) इससे "कल्पसौरतिथिघातसंयुता" इत्यादि म. म. सुधाकरोक्त सूत्र उपपन्न हुआ. ।

(२) इससे 'कोट्याहृतैर्यद्भवभैः' इत्यादि भास्करोक्त भी उपपन्न होता है । इति ॥

इदानीमधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनम् ।

अवमावशेषगुणिता युगाधिमासाः कुवासरविभक्ताः ।
लब्धयुतोऽधिकशेषः शशिमासहृतो दिनादिफलम् ॥८॥
कुदिनहृतमवमशेषं दिनादितद्वर्षमासदिनयोगः ।
पृथगभ्यस्तो विश्वै रधिकफलोनावुभा विनेन्दू वा ॥९॥

वि. भा.—युगाधिमासाः (युगपठिताधिमासाः) अवमावशेषगुणिताः (क्षयशेषैर्गुणिताः) कुवासरविभक्ताः (युगकुदिनहृताः) लब्धयुतः (लब्धफलेन सहितः) अधिकशेषः, शशिमासहृतः (युगचान्द्रमासभक्तः) फलं दिनादि ज्ञेयम् । अवमशेषं (क्षयशेषं) कुदिनहृतं (युगकुदिनभक्तं) फलं दिनाद्यात्मकम् । तद्वर्षमासदिनयोगः पृथक् स्थाप्यः । विश्वैः (त्रयोदशभिः) अभ्यस्तः (गुणितः) उभौ (त्रयोदशगुणितौ पृथक् स्थापित पृथक् स्थापितौ) अधिकफलोनौ अवमावशेषगुणिता इत्यादिनाऽऽनीतेनाधिफलेन हीनौ) तदा इनेन्दू (सूर्यचन्द्रौ) भवेतामिति ॥८९॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथाहर्गणानयने सौरात्मक क्षयशेषः $= \frac{\text{क्षयशे}}{\text{युचां}}$ एतस्य चान्द्रात्मक करणेन

$$\frac{\text{युचां} \times \frac{\text{क्षयशे}}{\text{युचां}}}{\text{युकुदिन}} = \text{क्षयशेषसम्बन्धिचान्द्र} = \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$$

। अतः सूर्योदयकालिक तिथिः $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ ततोऽनुपातेन $\frac{\text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}}$ = क्षयशेषान्तःपाति मासात्मकाधिशेषवृद्धिः ।

तिथ्यन्तकालिकोऽधिशेषः $= \frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}}$ अतो मासात्मको वास्तवाधिमासावयवः सूर्योदये $\frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}} + \frac{\text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युक}}}{\text{युसौ}}$ एतत्सम्बन्धिसौरदिनानि =

$$\frac{\text{युसौ} \left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचां} \times \text{युसौ}} = \frac{\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकुदि}}}{\text{युचां}}$$

परं सूर्योदय कालिकतिथिसंख्यक सौरे तात्कालिकाधिमासशेषोने तदा सूर्योदये रव्यंशाः, यतः सौरान्ते रव्यंशाः $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ अतः सूर्योदयेंऽशात्मको रविः =

$$\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \frac{\left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचां}} = \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \text{अधिशेफल}$$

परं पूर्वप्रदर्शित सूर्योदयकालिक तिथिः $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ द्वादश गुणिता तदा

रविचन्द्रान्तरांशाः $= १२ \left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$, अतश्चन्द्रः =

$$१२ \left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) + \text{रवि} = १२ \left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) + \left[\text{चैगति} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)\right]$$

$$=१३\ (\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}) - (\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}) = \text{चन्द्रः}$$

$$=१३\ (\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}} - \text{अधिशेफ}.$$ अत आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥८-९॥

अथवा म. म. प. सुधाकरद्विवेदिकृतोपपत्तिः

चैत्रादेर्यावन्तश्चान्द्रमासा गतास्तावन्तः सौरमासा रविराशयो यावन्ति च चान्द्रदिनानि तावन्तो रविभागाः कल्पितास्तत्रावमशेष सावनावयवाद्यश्चान्द्रदिनावयवस्तत्समो रविभागश्चौदयिकार्थं योजितः । चान्द्रदिनावयवार्थमनुपातो यदि युगकुदिनैर्युगचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदाऽवमशेषावयवेना $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचांदि}}$ नेन किं लब्धश्चान्द्रदिनावयवः $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ अयं दिनादिश्चै त्रादिगतमासदिनादौ योजितः स रविः कल्पितः।

अयं रविश्च तत्स्थचान्द्रसौरान्तरेणाधिशेषोत्पन्न रविराश्यादि चालनेनाधिको जातोऽतस्तच्छोधनेन वास्तवो मध्यमरविः स्यात् । अथ गणितागतं चान्द्रमधिशेषमवमशेषोत्थ चान्द्रदिन समसौरदिनावयवोत्थेनाधिशेषेण युतं तदा वास्तवाधिशेषं भवति तत्र पूर्वागतावमशेषसम्बन्धी चान्द्रदिनावयवः $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}$ अयं युगाधिमासैर्गुणितो युगसौरदिनैर्भक्तो लब्धं तज्जनितमधिशेषम् $=\frac{\text{युअमा. अवशे}}{\text{युसौदि. युकुदि}}$

$$=\frac{\frac{\text{युअमा. अवशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौदि.}}=\frac{\text{फ}}{\text{युसौदि}}$$ पूर्वगणितागतमधिशेषं च $=\frac{\text{अधिशे}}{\text{युसौदि}}$ द्वयोर्योगेन वास्तवाधिशेषम् $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युसौदि}}$ एतत्सम्बन्धिसौरं राश्यादि (यदि युगचान्द्रमासैर्युगसौरदिनानि लभ्यन्ते तदेष्टाधिशेष समचान्द्रमासैः किं लब्धानि सौरदिनानि $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचांमा}}$ एतानि त्रिंशद्भिर्भक्तानि तदा राश्यादि $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{३०\ \text{युमांचा}}=$

$$=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचांदि}}=\text{अधिशेफ}$$ अनेन पूर्वकल्पितो रविर्हीनस्तदौदयिको रविर्भवति स च तत्स्थ चान्द्रावयवेन कल्पित रविसमेन द्वादशगुणेन सहितश्चन्द्रो भवति चान्द्रदिने रविचन्द्रयोर्द्वादशभागान्तरत्वादत उपपन्नम् ।

इत्येव सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽपि कथ्यते, तद्वाक्यं च

कल्पाधिमासगुणितादवमावशेषात् क्ष्माहोद्धृतात्फलयुतं ह्यधिमासशेषम् ।
मासादिकं फलमतः शशिवासरैः स्यात्क्ष्माहै हृन्न दिवसाद्यवमावशेषात् ॥

चत्रादितो विगतमासदिनैर्युतं तत्कृत्वा दिनाद्यथ पृथक् गुणितं च विश्वैः।
मासादिना विरहिते विहिते क्रमेण यद्वा दिवाकरतुषारकरौ भवेताम्॥

हि. भा.—युग के अधिमास संख्या को अवमशेष से गुण कर युगकुदिन से भाग देना जो फल हो उससे अधिशेष को जोड़ना उसमें युगचान्द्र मास से भाग देना, फल दिनादि समझना। अवशेष को युगकुदिन से भाग देना फलदिनादि होता है अब उन सब का (वर्ष, मास, दिनादि) योग करना, इसका नाम योग रखना, इसको दो स्थान में रखना, एक स्थान में उसको तेरह से गुण देना, दोनों में (एक स्थान में योगफ, दूसरे स्थान में १३ गुणित योगफल) अधिकफल "अवमावशेषगुणिता इत्यादि से अधिमासमहृतः तक" को घटा देना तब रवि और चन्द्र होते है।

उपपत्ति

अहर्गण साधन में सौरात्मक क्षय शेष $= \frac{\text{क्षयशे}}{\text{युचां}}$ इसको चान्द्रात्मक करते हैं।

$$\frac{\text{युचां} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युचां}}}{\text{युकु}} = \frac{\text{क्षयशे}}{\text{युकु}} = \text{क्षयशेमं चान्द्र, अतः सूर्योदयकालिक तिथि} = \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$$

तब अनुपात से $\frac{\text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}} = \text{क्षयशेषान्तःपाति मासात्मक अधिशेष वृद्धि}$

तिथ्यन्तकालिक अधिशेष $= \frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}}$ इसलिये सूर्योदयकालिक मासात्मक वास्तवाधिशेषावयव

$$= \frac{\text{अमाशे}}{\text{युसौ}} + \frac{\text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौ}} \text{ एतत्सम्बन्धिसौरदिन } = \frac{\text{युसौ}\left(\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचां} \times \text{युसौ}}$$

$$= \frac{\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युचां}} = \text{अधिशेफल}$$

परन्तु सूर्योदय कालिक तिथि संख्यक सौरदिन से तात्कालिक अधिशेष घटाने से सूर्योदय काल में अंशात्मक रवि होंगे, $\because$ सौरान्त में अंशात्मक रवि $= \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ अतः

$$\text{सूर्योदय काल में अंशात्मक रवि} = \text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \left(\frac{\text{अमाशे} + \text{युअमा} \times \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}}{\text{युचां}}\right)$$

$$= \text{चैति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}} - \text{अधिशेफ}$$

लेकिन पहले कही हुई सूर्योदय कालिक तिथि $=$ चैगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ बारह से गुणने पर रविचन्द्र के अन्तरांश $=$ १२ $\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$

$$\therefore \text{चन्द्र}=\text{अन्तरांश}+\text{रवि}=\text{रवि}+१२\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$$

$$=\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-\frac{\left(\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)}{\text{युचां}}+१२\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$$

$$=१३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-\frac{\left(\text{अमाशे}+\text{युअमा}\times\text{क्षशे}\right)}{\text{युचां}}=\text{चन्द्र},।$$

$$=१३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-\text{अधिशेषफल}$$

इससे आचार्य का पद्य उपपन्न हुआ ।

अथवा म. म. सुधाकर द्विवेदीकृत उपपत्ति

चैत्रादि से जितने चान्द्रमासगत है उतने सौरमास (रविराशि) और जितने चान्द्रदिन उतने रवि का अंश मान लिये वहां सावनावयव अवमशेष चान्द्रदिनावयव है औदयिकार्थ तत्तुल्यरव्यंश जोड़िये । चान्द्रदिनावयव के लिये अनुपात करते हैं यदि युगकुदिन में युगचान्द्र दिन तो अवमशेषावयव में क्या आ जायगा चान्द्रदिनावयव $=\frac{\text{अवशे}\times\text{युचांदि}}{\text{युचांदि}\times\text{युकु}}=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$

इस दिनादि को चैत्रादिगतमास दिनादि में जोड़कर जो होता है उसको रविकल्पना कीजिये । यह रवि भी वहां के चान्द्र सौर के अन्तररूप अधिशेषोत्पन्न रविराश्यादि चालन करके अधिक हो गया है इसलिए उसको घटा देने से वास्तव मध्यम रवि होते हैं। गणितागत चान्द्राधिशे को अवमशेषजनित चान्द्रदिन तुल्य सौरदिनावयव जनित अधिशेष करके जोड़ने से वास्तवाधिशेष होता है। पूर्वागत अवमशेषसम्बन्धी चान्द्रदिनावयव $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युकु}}$ इसको युगाधिमास से गुणकर युगसौरदिन से भाग देने से तज्जनित अधिशेष प्रमाण हुआ $\frac{\text{युअमा. अवशे}}{\text{युसौदि. युकु}}=$

$$\frac{\frac{\text{युअमा. अवशे}}{\text{युकु}}}{\text{युसौदि}}=\frac{\text{फ}}{\text{युसौदि}}$$

पूर्व के गणितागत अधिशेष $=\frac{\text{अधिशे}}{\text{युसौदि}}$ दोनों के योग करने से वास्तावाधिशेप हुआ $\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युसौदि}}$ $=$ वास्तवाधिशे, अब अनुपात करते हैं, युगचान्द्रमास में युगसौरदिन पाते हैं तो इष्टाधिशेष-

तुल्य चान्द्रमास में क्या इस अनुपात से सौरदिन प्रमाण $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचांमा}}$ तीस से भाग देने से राश्यादि $=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{३० \text{ युचांमा}}=\frac{\text{अधिशे}+\text{फ}}{\text{युचांदि}}=$ अधिशेष फल इसको पूर्वकल्पित रवि में घटाने से औदयिक रवि होते हैं इसमें वहां के द्वादशगुणित रवि के बराबर चान्द्रावयव को जोड़ने से चन्द्र होते हैं इससे उपपन्न हुआ ।।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इस तरह कहते हैं उनके पद्य निम्नलिखित हैं—

कल्पाधिमासगुणितादवमावशेषादित्यादि ।

अथाधिशेषात्सूर्यचन्द्रयोरानयनमाह ।

अधिकफलमर्कगुणितं चन्द्रांशेभ्यो विशोध्य विश्वांशः ।
सूर्यो विश्वैर्गुणितः समन्वितः शीतगुर्वा स्यात् ॥१०॥

वि. भा.—अधिकमलं (८-९ श्लोकोपपत्तिप्रदर्शितमधिशेषफलं) अर्कगुणितं (द्वादशगुणितं) चन्द्रांशेभ्यः (अंशात्मकचन्द्रेभ्यः) विशोध्य (ऊनीकृत्य) अस्य विश्वांशः (त्रयोदशांशः) सूर्यः (रविः) स्यात् । सूर्यो (रविः) विश्वैर्गुणितः (त्रयोदशभिर्गुणितः, तेन फलेनार्थात् द्वादशगुणिताधिशेषफलेन समन्वितः (युक्तः) तदा शीतगुश्चन्द्रो भवेत् ।

हि. भा.—अधिक फल (८-९ श्लोकों की उपपत्ति में प्रदर्शित अधिशेष फल) को बारह से गुणकर अंशादि चन्द्रमा में घटाने से और तेरह से भाग देने से सूर्य का प्रमाण होता है । सूर्य को तेरह से गुणकर उस फल (बारहगुणित अधिशेष फल) करके जोड़ने से चन्द्र के प्रमाण होता है ।

उपपत्तिः

८-९ श्लोकोपपत्तिबलेन सूर्योदयकालिकोऽशात्मकरविः $=$ चैगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-$ अधिशेफल

तथा $१३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-$अधिशेफल $=$ अंशादिकश्चन्द्रः । अत्र यद्यंशात्मक चन्द्र द्वादशगुणितमधिशेषफलं विशोध्यते तदा $१३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-$अधिशेफल $-१२\times$अधिशेफ

$१३\times\left\{\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-\text{अधिशेफ}\right\}$ अस्य त्रयोदशांशः

चैगति $+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}-$अधिशेफ इति प्रत्यक्षमेवांशात्मक रविप्रमाणतुल्यं दृश्यते ।

तथा सूर्यस्त्रयोदशगुणितस्तदा $१३\left(\text{चैगति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)-१३$ अधिशेषफल

अत्र यदि द्वादशगुणिताधिशेष फलं योज्यते तदा १३ $\left\{ \left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) - \text{अधिशेषफल} \right.$ इति प्रत्यक्षमेवोपरिलिखित चन्द्रतुल्यं दृश्यते तेनाचार्योक्तं युक्ति-युक्तमिति ॥ १० ॥

उपपत्ति

(८-९) श्लोकों की उपपत्ति से अंशात्मक रवि $=$ चैगति $+ \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}})$ — अधिशेफ और १३(चैगति $+ \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}})$ — अधिशेफ $=$ अंशात्मकचन्द्र । यहाँ यदि चन्द्र में १२ बारह गुणित अधि-शेष फल को घटा देते हैं तो १३ (चैगति $+ \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$) — १३ अधिशेफ $=$ १३ $\left\{ \left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right) - \text{अधिशेफल} \right\}$ इसको तेरह से भाग देने से चैगति $+ \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}$ — अधिशेफ यह प्रत्यक्ष ही सूर्य के बराबर होता है । और इस सूर्य प्रमाण को तेरह से गुणने पर १३ $\left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$ — १३ अधिशेफ हुआ इसमें यदि बारह गुणित अधिशेष फल जोड़ देते है तो १३ $\left(\text{चैगति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{युकु}}\right)$ — अधिशेषफल यह उपरिलिखित चन्द्र के बराबर हो गया इसलिये आचार्य का कथन ठीक है ॥ १० ॥

गततिथि युतावमाद्यं द्वादश गुणितं च भागपूर्वं स्यात् ।
तेन विहीनश्चन्द्रोऽर्को युक्तो विधुर्वा स्यात् ॥११॥

वि. भा. —गततिथियुतावमाद्यं (चैत्रादिगततिथिसहितमवमशेषं) द्वादश-गुणितं तदा फलं भागपूर्वं (अंशादिकं) भवेत् । तेन फलेनानीतेन विहीन: (विशोधित:) चन्द्रोऽर्को (रवि:) भवेत् । तथा तेन फलेन युक्त: (सहित:) अर्क: (रवि:) वा विधु: (चन्द्र:) स्यादिति ॥११॥

हि. भा. —चैत्रादि गततिथि करके युत अवमशेष को बारह से गुण देने से फल अंशात्मक होते है । उस फल को चन्द्रमा में घटाने से रवि होते है और रवि में उस फल को जोड़ने से चन्द्र होते हैं ॥११॥

अत्रोपपत्ति:

अथ क्षयशेष: $= \frac{\text{क्षयशे}}{\text{कचां}}$ अयं सावनात्मकोऽतश्चान्द्रात्मकार्थमनुपात:

$\frac{\text{कचां} \cdot \text{क्षशे}}{\text{ककु} \times \text{कचां}} = \frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}} =$ क्षयशेषान्त:पातिचान्द्र, अत्र गततिथियोजनेनाहर्गणान्त

यावत्तिथिप्रमाणम् $=$ गतिथि $\frac{+\text{क्षशे}}{\text{ककु}}$ $=$ चैत्रामान्तादहर्गणान्तं यावत्तिथिः

यतः चं—र $=$ १२° तदैकातिथिरतोऽनुपातेन १२$\left(\text{गतति}+\frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}}\right)=$

अहर्गणान्ते रविचन्द्रान्तरांशाः ।

∴ चन्द्रः $=$ रवि $+$ अन्तरांश $=$ रवि $+$ १२ $\left(\text{गतति}+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)$

तथा रविः चन्द्र—१२ $\left(\text{गतति}+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)$ अत्र सर्वत्र ककु स्थाने युकु बोध्यम् ।

एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ।

भास्करेण रवि $+$ १२$\left(\text{गतति}+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)=$ रवि $+$ १२ गतति $+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}=$

रवि $+$ १२ गतति $+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{१३१४६३०३७५००}}$ पर "१३१४६३०३७५००" मिति स्थले

१३१४६०००००० हारो गृहीतो यत्सम्बन्धे स्वभाष्ये "आद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहारः पठितः । यतस्तथाकृत एकापि विकलानान्तरं भवति, लिखितं परमिति समीचीनं नास्ति, एतदुपपत्तिः सिद्धान्तशिरोमणिवासनायां या लिखिताऽस्ति साऽपि समीचीना नास्तीत्येतदर्थं मल्लिखितोपपत्तिरत्रैव विलोक्या वटेश्वराचार्येणतद्विषये नहि कोऽपि विचारः कृतः । केवलं भास्करेणैव भाष्ये हारसम्बन्धे लिखितो यश्च न समीचीन इति ।।

वस्तुतस्तु परमक्षयाहशेषं $=$ कचां $-$ १, तदा वास्तव परमक्षेपः $=\frac{\text{कचां}-\text{१}}{\text{हा}}$,

अवास्तव परमक्षे $=\frac{\text{कचां}-\text{१}}{\text{अवास्तवह}}$ अनयोरन्तरम् । हा $>$ अवास्तवहार $=$ अहा ।

$$\text{अतोऽन्तरम्}=\frac{\text{कचां}\times\text{हा}-\text{हा}-\text{कचां}\times\text{अहा}+\text{हा}}{\text{हा}\times\text{अहा}}$$

$$=\frac{\text{कचां }(\text{हा}-\text{अहा})-(\text{हा}-\text{अहा})}{\text{हा}\times\text{अहा}}$$

$$=\frac{(\text{हा}-\text{अहा})\ (\text{कचां}-\text{१})}{\text{हा}\times\text{अहा}}\ \ldots\ldots(\text{१})\quad \text{अत्र } \frac{\text{ककु}}{\text{१२}}=\text{हा}=\text{१३१४६३०३७५००}$$

तथा $\frac{\text{क्षशे}}{\text{हा}}=$ क्षेपः

वास्तवहारादल्पे हारे कथं भास्करेण ज्ञातं य १३१४६०००००० दीदृशहार ग्रहणेनैकापि विकलानान्तरं भवति तदर्थमुपायः ।

$$\text{अथ (१) स्वरूपम्} = \frac{(\text{हा}-\text{अवाहा})\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा}\cdot\ \text{अहा}}\ \text{कल्प्यतेऽत्र अहा} = \text{य}$$

$$\text{तदाऽन्तरम्} = \frac{(\text{हा}-\text{य})\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा}-\text{य}} = \frac{\text{हा}\ (\text{कचां}-१) - \text{य}\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा}-\text{य}}$$

विकलीकृतमेतत्

$$\frac{३६००\text{हा}\ (\text{कचां}-१) - ३६००\text{य}\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा}-\text{य}}\quad \text{एतद्रूपाल्पं स्वीकृत्य विषमीकरणम्}$$

$$\frac{३६००\ \text{हा}\ (\text{कचां}-१) - ३६००\text{य}\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा}-\text{य}} < १$$

$\therefore\ ३६००\text{हा}\ (\text{कचां}-१) - ३६००\ \text{य}\ (\text{कचां}-१) < \text{हा}\cdot\text{य}$ ततः समयोजनेन

$३६००\text{हा}\ (\text{कचां}-१) < \text{हा}\times\text{य} + ३६००\text{य}\ (\text{कचां}-१)$ वा

$३६००\text{हा}\ (\text{कचां}-१) < \text{य}\ \left\{\text{हा} + ३६००\ (\text{कचां}-१)\right\}$

$\therefore \dfrac{३६००\text{हा}\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा} + ३६००(\text{कचां}-१)} < \text{य}\cdot$ उत्थापनार्थं मानानि लिख्यन्ते

$३६००\times\text{हा} = ४७३३७४९३५००००००$

$३६००\times\text{हा}\ (\text{कचां}-१) = ७५८८१९५४७४२९५९१६२५०६५००००००$

$३६००\ (\text{कचां}-१) = ५७७०७९६३९९९९६४००$

$\text{हा} = १३१४९३०३७५००$

$३६००\ (\text{कचां}-१) + \text{हा} = ५७७०९२७८९३०३३९००$

तत उत्थापनेन

$$\frac{३६००\text{हा}\ (\text{कचां}-१)}{\text{हा} + ३६००(\text{कचां}-१)} = \frac{७५८८१९५४७४२९५९१६२५०६५००००००}{५७७०९२७८९३०३३९००}$$

$$= १३१४९००४१३७५ < \text{य}\times १३१४९३०३७५००$$

किन्तु १, २ संख्ययोरन्तर्वर्त्तिन्यः संख्या य मानम् । परं भास्करेण (१३१४९००४१३७५) अस्मादपि न्यूनो हारः स्वीकृतोऽत एतावताऽपि श्री भास्कर-स्वीकृतो ना "१३१४९००००००००" नेन हारेण क्षयाहशेषाधिक्ये कदाचिद्विकलास्थानं सान्तरं स्यादित्यनुमितं भवति । अतो १३१४९००४१३७५ ऽस्मादधिक उक्तगणिते गणितलाघवार्थं खाभ्र खाभ्र शरखाभ्र नन्दशक्र विश्वमितो १३१४९००५०००० वा लक्षाहतेन्दु खनन्दशक्र विश्वमितो १३१४९०१००००० ऽथवा प्रयुतघ्नैकनन्दशक्र-विश्वमितो १३१४९१०००००० हारश्चेद्गृहीतो भवेत्तदैकाऽपि विकलानान्तरं भवतीति सिद्धयति ।

परमक्षयाहशेषे भास्करोक्तं व्यभिचरतीति ।।

यद्यप्यस्य लेखस्याऽत्राऽऽवश्यकता नाइऽसीत्किन्तु सिद्धान्तशिरोमणेर्वासनायां केनापि भास्करोक्तभाष्यस्या "लाघवार्थमाद्ये षुसप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा

भागहारः पठितः। यतस्तथाकृतएकाऽपि विकलानान्तरं भवति" स्योपपत्तिरभिहिता साच मन्मते न समीचीनेति प्रौढ़गणकैर्निष्पक्षपातबुद्धया निर्णेतव्येति ॥११॥

उपपत्तिः

$\text{क्षयशे} = \frac{\text{क्षयशे}}{\text{कचां}}$ यह सावनात्मक है इसको चन्द्रात्मक करने के लिए अनुपात करते हैं

$\frac{\text{कचां. क्षशे}}{\text{ककु. कचां}} = \frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}$ = क्षयशेषान्तःपातिचान्द्र. यहां गत तिथि जोड़ने से अहर्गणान्तपर्यन्त तिथि प्रमाण होगा

$\text{गतति} + \frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}$ = चैत्रामान्त से अहर्गणान्त तक तिथि

$\therefore \frac{\text{चन्द्र} - \text{रवि}}{१२} = \text{तिथि} \therefore \text{चन्द्र} - \text{रवि} = १२\ \text{ति} = १२\left(\text{गतति} + \frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}\right)$

= अहर्गणान्त में रवि चन्द्रान्तरांश

$\text{अतः चन्द्रः} = \text{रवि} + १२\left(\text{गतति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}}\right)$

$\text{तथा रवि} = \text{चन्द्र} - १२ \times \left(\text{गतति} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{ककु}}\right)$ यहां सब जगह ककु के स्थान में युकु समझना चाहिए। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

यहां भास्कराचार्य ने $\text{रवि} + १२\ \text{गतति} + \frac{१२\text{क्षयशे}}{\text{ककु}} =$

$$\frac{\text{रवि} + १२\ \text{गति} + \frac{\text{क्षयशे}}{\text{ककु}}}{१२} = \text{रवि} + १२\ \text{गति} + \frac{\text{क्षयशे}}{१३१८९३०३७५००}$$

ऐसा किये हैं और १३१४९३०३७५०० इसके स्थान पर १३१८९००००००० यह हार लिये हैं इसके विषय में अपने भाष्य में "आद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहारः पठितः। यतस्तथाकृत एकापि विकलानान्तरं भवति" लिखे हैं। परन्तु यह समीचीन नहीं है। इस भाष्य की उपपत्ति सिद्धान्तशिरोमणि की वासना में जो लिखी गई है वह भी ठीक नहीं है इसके लिए मेरी लिखी हुई उपपत्ति यहीं देखिये। वटेश्वराचार्य हार के विषय में कुछ भी नहीं कहते हैं, केवल भास्कराचार्य ने ही हार के विषय में लिखा है जो ठीक नहीं है॥

वस्तुतः परमक्षयाहशे = कचां — १। तब वास्तव $\text{परमक्षे} = \frac{\text{कचां} - १}{\text{हा}}$,

$\text{अवास्तव परमक्षे} = \frac{\text{कचां} - १}{\text{अवास्तव हा}}$, हा > अवास्तवहा = अहा

क्षेपद्वयके; अन्तर करने से $\frac{\text{कचां. हा} - \text{हा} - \text{कचां. अहा} + \text{हा}}{\text{हा. अहा}} = \text{अन्तर} \ldots (१)$

यहां $\frac{\text{ककु}}{१२}$ = १३१४९३०३७५०० = हा । $\frac{\text{क्षयशे}}{\text{हा}}$ = क्षेप ।

वास्तव हर से अल्पहर में भास्कर ने कैसे समझा कि १३१४९०००००००० इतने हर लेने से एक विकला का भी अन्तर नहीं होता है। इसके लिए विचार करते हैं।

(१) इसके स्वरूप = $\frac{\text{कचां. हा — हा — कचां. अहा + हा}}{\text{हा. अहा}}$ = अन्तर । यहां कल्पना करते हैं अहा = य

$= \frac{\text{कचां (हा — अहा) — (हा — अहा)}}{\text{हा. अहा}}$

$\frac{\text{(हा — अहा) (कचां — १)}}{\text{हा. अहा}} = \frac{\text{(हा — य) (कचां — १)}}{\text{हा. य}}$

$= \frac{\text{हा (कचां — १) — य (कचां — १)}}{\text{हा. य}}$ विकलात्मक करने से

$\frac{\text{३६०० हा (कचां — १) — ३६०० य (कचां — १)}}{\text{हा. य}}$ इसको रूपाल्प स्वीकार कर विषमीकरण करने से

$\frac{\text{३६०० हा (कचां — १) — ३६०० य (कचां — १)}}{\text{हा. य}} < १$

∴ ३६०० हा (कचां — १) — ३६०० य (कचां — १) < हा. य समयोजन से

३६०० हा (कचां — १) < हा. य + (कचां — १) ३६०० य वा

३६०० हा (कचां — १) < य {हा + ३६०० (कचां — १)}

∴ $\frac{\text{३६०० हा (कचां — १)}}{\text{हा + ३६०० (कचां — १)}}$ < य उत्थापन के लिए मान लिखते हैं।

३६०० हा = ४७३३७४९३५००००००

३६०० हा (कचां — १) = ७५८८१९५४७४२९५९१६२५०६५००००००

३६०० (कचां — १) = ५७७०७९६३९९९९९६४०० । हा = १३१४९३०३७५००

३६०० (कचां — १) + हा = ५७७०९२७८९३०३३९००

उत्थापन देने से

$\frac{\text{३६०० हा (कचां — १)}}{\text{हा + ३६०० (कचां — १)}} = \frac{\text{७५८८१९५४७४२९५९१६२५०६५००००००}}{\text{५७७०९२७८९३०३३९००}}$

= १३१४९००४१३७५ < यं < १३१४९३०३७५००

किन्तु १, २ दोनों संख्याओं के अन्तर्वर्त्ती य का मान है लेकिन भास्कराचार्य १३१४६००४१३७५ इससे भी कम हार स्वीकार करते हैं, लेकिन भास्कर स्वीकृत इस हर १३१४६००००००० से भी क्षयाहशेष के आधिक्य में कदाचित् विकला स्थान सान्तर (अन्तर सहित) होता है। इसलिए १३१४६००४१३७५ इससे अधिक १३१४६००५०००० वा १३१४६०१००००० अथवा १३१४६१०००००० इस तरह का हर यदि स्वीकार किया जाय तब "एकापि विकला नान्तरं भवति" यह सिद्ध होता है। लेकिन परमक्षयाहशेष में भास्करोक्त का व्यभिचार होता है॥ यद्यपि यहां इस लेख की आवश्यकता नहीं थी किन्तु सिद्धान्तशिरोमणि की वासना में किसी ने भास्करभाष्य "लाघवार्थमाद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहारः पठितः, यतस्तथाकृत एकापि विकलानान्तरं भवति" की उपपत्ति लिखी है जो हमारे मत में ठीक नहीं है इसको प्रौढ़ ज्योतिषी लोग निष्पक्ष होकर विचार करें॥११॥

अथवाऽधिमासावमशेषाभ्यां चान्द्रार्कानयनम्

अर्केन्द्वोर्गति गुणितमवमशेषं विधुदिनस्थिता लिप्ता।
मासाहानि भभागा रविर्विधुर्विश्वसंगुणितः॥१२॥
अधिमास शेषकाद्यः शशाङ्कमासैरवाप्यतेंऽशादिः।
तेनोभावपि हीनौ गृहादिकौ वा रवीन्दू स्तः॥ १३॥

वि. भा.—अवमशेषं (क्षयशेषं) अर्केन्द्वोः (सूर्याचन्द्रमसोः) गतिगुणितं (गत्या गुणितं) विधुदिन स्थितालिप्ता (युगचान्द्रैर्भजनेन यत्फलं तत्कलादिकम्) मासाहानि भभागाः (गतमासतुल्यो राशिस्तथा दिनतुल्या अंशाः) इत्थं राश्यादिको रविर्भवति । स (रविः) विश्वसंगुणितः (त्रयोदशगुणितः) तदा विधुः (चन्द्रः स्यात्) अधिमासशेषकात्-शशाङ्कमासैः (युगचान्द्रमासैर्हृतात्) योंऽशादिः, अवाप्यते (लभ्यते) तेन फलेन, उभावपि (सूर्यचन्द्रौ) हीनौ तदा गृहादिकौ (राश्यादिकौ) रवीन्दू (सूर्यचन्द्रौ) स्तः (भवतः) इति॥ १२-१३।

हि. भा.—अवमशेष को रवि और चन्द्र की गति से गुणकर युगचान्द्र से भाग देने पर फल कलादि समझना, गतमास तुल्य राशि और गतदिन (तिथि) तुल्य अंश समझना इस तरह राश्यादि सूर्य होते हैं। और सूर्य को तेरह से गुणने से चन्द्र होते हैं। अधिमास शेष में युग चान्द्रमास से भाग देने से जो अंशादिफल होता है उसको ऊपर साधित सूर्य और चन्द्र में घटाने से तिथ्यन्तकालिक सूर्य और चन्द्र होते हैं॥ १२-१३॥

अत्रोपपत्तिः।

अत्र चैत्रादित इष्टतिथ्यन्तं यावच्चान्द्राह तुल्ये सौरे कल्पितेऽभीष्टसौरान्त-विन्दावंशात्मको मध्यमरविर्भवेदित्यहर्गणानयनोपपत्तिदर्शनेन स्फुटमेवाऽतोंऽशा-

त्मको मध्यमरविः सौरान्ते=चैत्रादिगतितिथिसंसौर तथा चाधिशेषप्रमाणं तिथ्यन्तसौरान्तर्गतं यच्चान्द्रात्मकमहर्गणानयने समागतं तत्सम्बन्धि सौरान्तकमानीय सौरान्तबिन्दुकेंऽशात्मके मध्यमरवौ विशोध्यं तदा तिथ्यन्ते मध्यमरविर्भवेद्यथा $\frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युसौदि}}$=चान्द्रात्मकमधिशेषम् ततः सौरात्मकाऽधिशेषज्ञानार्थमनुपातो यदि युगचान्द्रदिनैर्युग सौरदिनानि लभ्यन्ते तदा चान्द्रात्मकाधिशेषैः किं समागच्छति सौरात्मकमधिशेषम्=

$$\frac{\text{युसौ} \times ३० \times \text{अधिशे}}{\text{युसौ} \times \text{युचांदि}} = \frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युचांदि}} = \frac{\text{अधिशे}}{\frac{\text{युचांदि}}{३०}} = \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}}$$, सौरान्त बिन्दुकेंऽशात्मक मध्यमरवावेतस्य शोधनेन तिथ्यन्ते मध्यमरविः= चैगततिसंसौ$-\frac{\text{अशे}}{\text{युचांमा}}$

परन्तु १२×चैगति संसौ=तिथ्यन्ते रवि चन्द्रान्तरांशाः, अतः १२×चैगतिसंसौ +तिथ्यन्तकालिकरवि=तिथ्यन्तकालिक चन्द्रः

$$= १२ \times \text{चैगतिसंसौ} + \text{चगतिसंसौ} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}} = १३ \times \text{चैगतिमंसौ} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}} =$$

तिथ्यन्तकालिकचन्द्रः ।

तयोस्तिथ्यन्तकालिकरविचन्द्रयोः सूर्योदयकालिकज्ञानार्थमवमशेष सम्बन्धि तयोर्गतिफलमानीयते, यथा यद्येकेन दिनेन रविगतिर्लभ्यते तदाऽवमशेषैः किमित्यनुपातेनावमशेप सम्बन्धि रविगतिकला=

$$\text{रग} \times \frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}} = \text{रविकलासंज्ञका । एवं } \frac{\text{चंग} \times \text{अवशे}}{\text{युचां}} = \text{अवमशेसंचग} =$$

चन्द्रकला, तिथ्यन्तकालिक रविचन्द्रौ क्रमशो रविकला चन्द्रकलाभ्यां सहितौ तदा सूर्योदयकालिकौ भवेतामिति ।।

आचार्योक्तपद्ये "अर्केन्द्वोर्गतिगुणितमवमशेषं विधुदिन-स्थिता लिप्ताः" ऽस्मिन् विधुदिनस्थिता लिप्ता इत्यशुद्धं प्रतिभातीति ।।१२-१३

उपपत्ति

चैत्रादि मे इष्ट तिथ्यन्त पर्यन्त जितने चान्द्रदिन हैं तत्तुल्य सौरदिन मानने से इष्टसौरान्त विन्दु में मध्यम रवि होते हैं यह बात अहर्गणानयन की उपपत्ति देखने से साफ है इसलिये सौरान्त में अंशात्मक रवि=चैत्रादि गततिथि संख्यकसौर, तथा तिथ्यन्त और

सौरान्त के अन्तर्गत जो चान्द्रात्मक अधिशेष है अहर्गणानयन में तत्सम्बन्धी सौरात्मक अधिशेष लाकर सौरान्त विन्दुक अंशात्मक मध्यम रवि में घटाने से तिथ्यन्त में मध्यमरवि होते हैं। जैसे $\frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युमौ}}$ = चान्द्रात्मक अधिशे। इसको सौरात्मक करने के लिए अनुपात करते हैं यदि युग चान्द्रदिन में युगसौरदिन पाते हैं तो चान्द्रात्मक अधिशेष में क्या, इस अनुपात से सौरात्मक अधिशेष प्रमाण आया।

$$\frac{\text{युसौ} \times ३० \times \text{अधिशे}}{\text{युमौ} \times \text{युचांदि}} = \frac{३० \times \text{अधिशे}}{\text{युचांदि}} = \frac{\text{अधिशे}}{\frac{\text{युचांदि}}{३०}} = \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}} = \text{सौरात्मक अधिशेष}$$

अतः सौरान्त बिन्दुक अंशात्मक मध्यम रवि में उसको घटाने से तिथ्यन्त में मध्यमरवि होते हैं चैगति संसौ—$\frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}}$ = तिथ्यन्तकालिकरवि। परन्तु १२ × चैगतिसंसौ = तिथ्यन्तकालिक-रविचन्द्रान्तरांश

इसलिये १२ × चैगति संसौ + तिथ्यन्तकालिक रवि = तिथ्यन्तकालिकचन्द्र

$$= १२ \times \text{चैगतिसंसौ} + \text{चैगतिसंसौ} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}} = १३ \times \text{चैगतिसंसौ} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचांमा}}$$

इन तिथ्यन्तकालिक रवि और चन्द्र को सूर्योदयकालिक लाने के लिए अवमशेष सम्बन्धी उन दोनों के गतिकला लाते हैं जैसे रग × $\frac{\text{अवशे}}{\text{युवां}}$ = अवमशेसंरग = रविकला।

चंग × $\frac{\text{अवशे}}{\text{युवां}}$ = अयशेसंचंग = चन्द्रकला

तिथ्यन्तकालिक रवि में रविकला को और तिथ्यन्तकालिक चन्द्र में चन्द्रकला को जोड़ने से उदयकालिक रवि और चन्द्र होते हैं ।। आचार्योक्त 'अर्केन्द्वोर्गति गुणितमवमशेषं विधुदिनस्थिता लिप्ताः' इस पद्य में विधुदिन-स्थिता लिप्ता यह अशुद्ध मालूम होता है ।। १२-१३

पुनः प्रकारान्तरेणाह ।

वार्कघ्ना वमशेषा द्विश्वघ्न युगावमाप्तमर्ककलाः ।
इन्दोर्वेदसुरघ्ना द्युगावमैर्वा हृतैरवमशेषात् ।।१४।।
कुत्रिद्वीभदिगृक्षैर्नगकुरसभखाश्विभिस्त्ववमशेषात् ।
लब्धं कलारवीन्द्वोरुक्तवदेतौ द्युमासभागगृहैः ।।१५।।

वि. भा.—वा (अथवा) अर्कघ्नावशेषात् (द्वादशगुणितक्षयशेषात्) विश्वघ्न-

युगावमाप्त (त्रयोदशगुणितयुगावमभक्तलब्धं) अर्ककला: (अवमशेषसम्बन्धिकलात्मकरविगति:) वेदसुरघ्नात् (३३४ एतद्गुणितात्) अवमशेषात् (क्षयावशिष्टात्) युगावमैः (युगक्षयै:) हृतैः (भक्तैः) वा इन्दोः (चन्द्रस्य) कला अर्थादवमशेष सम्बन्धिचन्द्रगतिकला, अथवा—अवमशेषात् कुत्रिद्वीभदिगृक्षैः (२७१०८२३१) नगकुरसभखाश्विभि: (२०२७६१७) क्रमशोभक्ताल्लब्धं रवीन्द्वो: (सूर्यचन्द्रयो:) कला:, द्युमासभागगृहैः [गतदिनं (तिथिश्च) अंशं (भागं) गतमासं राशि ज्ञात्वा] उक्तवत् (पूर्ववत्) एतौ (रविचन्द्रौ) ज्ञातव्याविति ॥१४-१५॥

हि. भा.—बारहगुणित अवमशेष को तेरह गुणित युगावम मे भाग देने पर लब्धि अर्ककला (क्षयशेषसम्बन्धी रविगतिकला) होती है। और अवमशेष को ३३४ गुण कर युगावम से भाग देने से लब्धि चन्द्रमा की कला (अवमशेष सम्बन्धी चन्द्रगतिकला) होती है या अवमशेष को क्रमश: २७१०८२३१, २०२७६१७ भाग देने मे रवि और चन्द्र की कला होती है और गतदिन (तिथि) को अंश, गतमास को राशि समझकर पूर्ववत् रवि और चन्द्र समझना चाहिये ॥१४-१५॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथावमशेषमानम् $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ एतत्सम्बन्धि रविगति: $\frac{\text{रग}\times\text{अवशे}}{\text{युचां}}=\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}}$ हरभाज्य-

द्वादशभिर्गुण्यते तदा $\frac{\text{अवशे}\times१२}{\frac{\text{युचां}\times१२}{\text{रग}}}=\frac{\text{अवशे}\times१२}{१३\ \text{युगावम}}\ \because\ \frac{\text{युचां}\times१२}{\text{रग}}=१३\ \text{युगावम}$

$=$ रविफलम् ।

एवमवमशेषसम्बन्धि चन्द्रगति: $=\frac{\text{चंग}\times\text{अवशे}}{\text{युचां}}=\frac{\text{चंग}}{\text{रग}}\times\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}}=$

$$=१३\times\frac{\text{अवशे}\times१२}{\frac{\text{युचां}\times१२}{\text{रग}}}=\frac{१३\times\text{अवशे}\times१२}{१३\times\text{युगावम}}=\frac{\text{अवशे}\times१२}{\text{युगावम}}=\text{चंफलम्}\ ।$$

अथवा $\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}}=\frac{\text{अवशे}}{\text{पठिताङ्क}}=$ रविफलम् । तथा

$\frac{\text{अवशे}\times १२}{\text{युगावम}}$ = चन्द्रफल = $\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युगावम}}{१२}}$ = $\frac{\text{अवशे}}{\text{पठिताङ्क}}$ चन्द्रफलसाधने

इन्दोर्वेदसुरघ्नादिति स्थले "इन्दोर्द्वीन्दु परिघ्नादिति पाठः समीचीनः प्रतिभाति" अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१४-१५॥

उपपत्ति ।

अवमशेषमान = $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ एतत्सम्बन्धी रविगति = $\frac{\text{रग}\times\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ =

$\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}}$ हरभाज्य को बारह से गुणने से $\frac{\text{अवशे}\times १२}{\frac{\text{युचां}\times १२}{\text{रग}}}$ = $\frac{\text{अवशे}\times १२}{१३\ \text{युगावम}}$ = रविकला

∵ $\frac{\text{युचां}\times १२}{\text{रग}}$ = १३ युगावम, इसी तरह अवमशेष सम्बन्धी चन्द्रगति

= $\frac{\text{चंग}\times\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ = $\frac{\text{चंग}}{\text{रग}}\times\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}}$ = $\frac{१३\times\text{अवशे}\times १२}{\frac{\text{युचां}\times १२}{\text{रग}}}$ =

$\frac{१३\times\text{अवशे}\times १२}{१३\ \text{युगावम}}$ = $\frac{\text{अवशे}\times १२}{\text{युगावम}}$ = चन्द्रफल । अथवा

$\frac{\text{अवशे}\times १२}{१३\ \text{युगावम}}$ = रविफल = $\frac{\text{अवशे}}{\frac{१३\ \text{युगावम}}{१२}}$ = $\frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}}$ = रविफल ।

एवं $\frac{\text{अवशे}\times १२}{\text{युगावम}}$ = चन्द्रफल = $\frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युगावम}}{१२}}$ = $\frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}}$ = चन्द्रफल

इसमे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१४-१५॥

अथ सूर्यकलातो रविचन्द्रयोरानयनमाह

द्विरसघ्नाः सूर्यकला बाणविभक्ता रविघ्नतिथिभागैः ।
युक्ता विधोर्विशोध्याः सूर्यः सूर्योनितश्चन्द्रः ॥१६॥

वि. भा.—सूर्यकलाः (१४ श्लोकोक्ताः) द्विरसघ्नाः (६२ एभिर्गुणिताः) बाणविभक्ताः (पञ्चभक्ताः) रविघ्नतिथिभागैः (द्वादशगुणिततिथिभिः) युक्ताः (सहिताः) विधोः (चन्द्रात्) विशोध्याः (हीनाः) तदा सूर्यो भवेत् । सूर्यान्वितः

(सूर्ययुक्तः) चन्द्रो भवेदिति ॥१६॥

हि. भा.—सूर्यकला (१४ श्लोक में साधित सूर्यकला) को बासठ से गुणकर पांच से भाग देने पर जो फल हो उसे बारह गुणित तिथि में जोड़ देना, चन्द्रमा में घटा देने से सूर्य होते हैं। उसी में सूर्य को जोड़ने से चन्द्र होते हैं ॥१६॥

अत्रोपपत्तिः

अवमशेषसम्बन्धि सूर्यगतेर्नाम सूर्यकला, एतत्सम्बन्धि घट्यात्मकमानम्=

$\frac{\text{६० × सूर्यकला}}{\text{रविगतिकला}}$ = घट्यात्मकफलम्। तिथौ योजनेन सूर्योदय कालिक-

तिथिमानम् $= \text{ति} + \frac{\text{६० × सूकला}}{\text{रविगतिक}} = \frac{\text{चन्द्र} - \text{रवि}}{\text{१२}}$ द्वादशभिर्गुणनेन

$\text{१२ति} + \frac{\text{६० × सूकला × १२}}{\text{रविगक}} = \text{१२ति} + \frac{\frac{\text{६० × सूकला}}{\text{रविगक}}}{\text{१२}} = \text{१२ ति} + \frac{\text{६० × सूकला}}{\text{५}}$

स्वल्पान्तरात्

तथा च (६०) स्थाने स्वल्पान्तरात् ६२ गृहीतम् तदा $\text{१२ति} + \frac{\text{६२ सूकला}}{\text{५}}$

$= \text{चन्द्र} - \text{रवि}$

$\therefore \text{ १२ ति} + \frac{\text{६२ सूकला}}{\text{५}} + \text{रवि} = \text{चन्द्र}$

वा. $\text{रवि} = \text{चन्द्र} - \left(\text{१२ ति} + \frac{\text{६२ सूकला}}{\text{५}}\right)$ अत उपपन्नम् ॥१६॥

उपपत्ति

अवम शेष सम्बन्धी रविगति को सूर्यकला कहते हैं। सूर्यकला को घट्यात्मक करने के लिए अनुपात करते हैं। यदि रविगतिकला में साठ घटी तो सूर्य कला में क्या इस अनुपात से घट्यात्मक फल आया। $\frac{\text{६० × सूकला}}{\text{रविगकला}}$ = घट्यात्मक सूकला,

इसको तिथि में जोड़ने से सूर्योदय कालिक तिथि प्रमाण होगा।

$\text{ति} + \frac{\text{६० × सूकला}}{\text{रविगतिकला}} = \text{औदयिकतिथि} = \frac{\text{चन्द्र} - \text{रवि}}{\text{१२}}$ बारह से गुणने से

$\text{१२ति} + \frac{\text{६० × सूकला × १२}}{\text{रविगतिक}} = \text{१२ति} + \frac{\frac{\text{६० × सूकला}}{\text{रविगक}}}{\text{१२}} =$

$$१२ति + \frac{६० \times सूकला}{५} = १२ति + \frac{६२ \; सूकला}{५}$$ स्वल्पान्तर से

$$\therefore \; र + १२ति + \frac{६२ \; सूकला}{५} = चन्द्रः$$ । तथा $$चन्द्र - \left(१२ति + \frac{६२ \; सूकला}{५}\right)$$

= रवि ∴ सिद्ध हुआ ॥२६॥

अथ चन्द्रकलातश्चन्द्ररव्योरानयनमाह ।

खखकृतनवत्रिकोनाः शशिलिप्तास्तिथिहृतार्कभागयुताः ।
क्षेप्याः सवितरि चन्द्रश्चन्द्रात्संशोधितः सूर्यः ॥१७॥

वि. भा. — शशिलिप्ताः (पूर्वसाधितचन्द्रकलाः) खखकृतनवत्रिकोना. (३९४०० एभी रहिताः) तिथिहृतार्कभागयुताः (द्वादशगुणिततिथियुक्ताः) सवितरि (सूर्ये) क्षेप्याः (योज्याः) चन्द्रो भवेत्, चन्द्रात्संशोधितः (खखकृतनवेत्यादि-नाऽनीतसंस्कारश्चन्द्राद्रहितः) तदा सूर्यो भवेदिति ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अवमशेषसम्बन्धि चन्द्रगतेर्नाम चन्द्रकला, एतत्सम्बन्धि घट्यात्मकमानम् = $\frac{६० \times चन्द्रकला}{चन्द्रगक}$ तिथौ योजनेन सूर्योदयकालिकतिथिः $= ति + \frac{६० \times चन्द्रकला}{चंगक}$ $= \frac{चन्द्र - रवि}{१२}$ द्वादशभिर्गुणनेन $१२ \; ति + \frac{१२ \times ६० \times चन्द्रकला}{चंगक} = १२ \; ति +$

चद्रक = चन्द्र − सूर्य अत उदयकालिकश्चचन्द्रः =

१२ ति + चन्द्रकला + सूर्य = चन्द्र वा चन्द्र — (१२ ति + चंकला) = सूर्य उदयकालिकायाम् अत्र चन्द्रकलायां ३९४०० इति यद्विशोधितमाचार्येण तत्तथ्यं न प्रतिभाति अन्यत्सर्वं समीचीनमिति ॥१७॥

हि. भा.—पूर्वसाधित चन्द्रकला में ३९४०० घटाकर बारह गुणित तिथि को जोड़ देना तब जो हो उसको सूर्य में जोड़ने से चन्द्र होते हैं । चन्द्र में घटाने से सूर्य होते हैं ।

अवमशेष सम्बन्धी चन्द्रगति का नाम चन्द्रकला है । एतत्सम्बन्धी घट्यात्मक मान

$= \frac{६० \times चन्द्रकला}{चंगक}$ इसको तिथि में जोड़ने से उदयकालिक तिथि होगी

$ति + \frac{६० \times चन्द्रकला}{चंगक} = उदयकालिकतिथि = \frac{चन्द्र - रवि}{१२}$ बारह से

गुण देने से $१२ \; ति + \frac{१२ \times ६० \times चन्द्रकला}{चंगक} = १२ \; ति + \frac{७२० \times चंगक}{७९० । ३५}$

$= १२ \; ति + चंगक = चन्द्र - रवि$ (स्वल्पान्तर से)

अतः १२ ति + चंगक + रवि = सूर्योदयकालिक चन्द्र, सूर्योदयचं — (१२ ति + चंगक) = सूर्योदयकालिकरविः ।

यहां पर चन्द्रकला में ३६४०० इतना घटाकर जो आगे की क्रिया की गई है सो ठीक नहीं मालूम पड़ती है ।।१७।।

पुनश्चन्द्ररव्योरानयनमाह ।

त्रिखकुहुताशन-विकला गोघ्नावमहृताः कला गतैस्तिथिभिः ।
सूर्यघ्नैरंशयुताः सार्काश्चन्द्रो विधुस्तदूनोऽर्कः ।।१८।।

वि. भा.—त्रिखकुहुताशनविकलाः (३१०३ एतावत्यो विकलाः) गोघ्नावमहृताः (नवगुणितावमभक्ताः) तदा कलाः स्युः । सूर्यघ्नैर्गततिथिभिः (द्वादशगुणितगततिथिभिः) युताः (सहिताः) सार्काः (रविसहिताः) चन्द्रो भवेत् । तदूनः (तद्रहितः) विधुः (चन्द्रः) अर्कः (सूर्यः) भवेदिति ।।१८।।

अत्रोपपत्तिस्तु सुगमैव ।

हि. भा.—३१०३ इतनी विकला को नव गुणित अवम से भाग देने पर कला होती है । उसमें बारहगुणित गततिथि जोड़ देना इसमें रवि के जोड़ने से चन्द्र होते हैं । चन्द्र में घटाने से रवि होते हैं ।।१८।।

इसकी उपपत्ति सुगम ही है ।

अथाधिमासावमशेषाभ्यां सूर्यं ज्ञात्वा चन्द्रानयनम् ।

नगगुणतिथिगोकुभुजैः शशिमासैश्व क्षयाधिशेषाभ्याम् ।
लब्धकला विविरांशो रविगुणतिथिभिश्च संयुतः सविता ।। १९ ।।
भवति शशी, शीतांशुविवर्जितो वा सहस्रांशुः ।। १९$\frac{1}{2}$ ।।

वि. भा—क्षयाधिशेषाभ्यां (अवमाधिक शेषाभ्यां) क्रमशो, नगगुणतिथिगोकुभुजैः (२१९१५३९) शशिमासैः (चान्द्रमासैः) विभाजिताभ्यां लब्धकलाविवरांशः (लब्धकलान्तरांशः) रविगुणतिथिभिश्च (द्वादशगुणितगततिथिभिश्च) संयुतः (सहितः) सविता (सूर्यः) शशी (चन्द्रः) भवति । शीतांशुः (चन्द्रः) द्वादशगुणिततिथिभिर्विवर्जितः (रहितः) तदा सहस्रांशुः (सूर्यः) भवेदिति । अत्र लब्धकलाविवरांशैरिति पाठः साधुः प्रतिभाति ।।

हि. भा.—क्षयशेष और अधिशेष में क्रमशः २१९१५३९, इससे तथा चान्द्रमास से भाग देने से फलान्तर को रवि में जोड़ देना और बारह गुणित गततिथि को भी रवि में जोड़ना तब चन्द्र होते हैं। यदि चन्द्रमा में बारह गुणित तिथि घटा देते हैं तो रवि होते हैं ।। १९ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

चैत्रामान्तत इष्टतिथ्यन्तावधि यास्तिथयस्तत्तुल्ये सौरप्रमाणे—इष्टमास-

सौरान्त विन्दावंशात्मको मध्यमरविर्भवति। तेन सौरान्तेंऽशात्मको रविः=ति.। तथा सौरान्ततिथ्यन्तयोरन्तर्गतमधिशेषप्रमाणं चान्द्रात्मकं यदस्ति तत्सम्बन्धि सौरान् समानीय सौरान्तविन्दुकांशात्मकरवौ शोधनेन तिथ्यन्तकालिको मध्यमरविर्भवति। अत्र सौरात्मकाधिशेषज्ञानार्थमनुपातः क्रियते यदि युगचान्द्रैः युगसौरदिनानि लभ्यन्ते तदा चान्द्रात्मकाधिशेषैः किं जातं फलं सौरात्मकमधिशेषम्

$= \frac{३० \text{ अशे}}{\text{युसौ}} \times \frac{\text{युसौ}}{\text{युचां}} = \frac{३० \text{ अशे}}{\text{युचां}} = \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}}$ एतस्य तिथौ शोधनेन तिथ्यन्तकालिक

रविः $=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}}$। अथ चैकस्मिन् दिने यदि रविगतिर्लभ्यते तदाऽवमशेषैः

कुदिनात्मकैः किं जाता तत्सम्बन्धि रविगतिः $= \frac{\text{रविग} \times \text{अवशे}}{\text{युचां}}$ .....(१)

$\because$ ति $= \frac{\text{चं} - \text{र}}{१२}$ $\therefore$ १२ति $=$ चं $-$ र $\therefore$ र $+$ १२ ति $=$ चन्द्रस्तिथ्यन्तकालिकः

सूर्योदयकालिक रवि $+$ १२ ति $=$ सूर्योदयकालिकचन्द्रः।

परं तिथ्यन्तकालिक रवि $+$ अवमशेष संरविगति $=$ सूर्योदयकालिकरवि

$=$ रवि $+ \frac{\text{रविगति} \times \text{अवशे}}{\text{युचां}} =$ सूर्योदयकालिकरवि

$=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{रविगति} \times \text{अवशे}}{\text{युचां}} =$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}} =$

$=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{हर}} =$ ति $+ \frac{\text{अवशे}}{\text{हर}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} =$ सूर्योदय रविः।

सूर्योदयकालिक $+$ १२ ति $=$ सूर्योदयचन्द्रः $=$ १३ ति $+ \frac{\text{अवशे}}{\text{पठिताङ्क}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{कचां}}$

अतः सूर्योदय चं $-$ १२ ति $=$ सूर्योदय कालिकरविः

अत उपपन्नम्॥ १९$\frac{१}{२}$॥

हि. भा.—चैत्रामान्त से इष्टतिथ्यन्त तक जो तिथि है तत्तुल्यऔर प्रमाण रहने से इष्टमास के सौरान्त विन्दु में अंशात्मकरवि होते हैं। इसलिये सौरान्त में अंशात्मकरवि=ति। और सौरान्त तिथ्यन्त के अन्तर्गत जो चान्द्रात्मक अधिशेष है तत्सम्बन्धी सौर ले आकर सौरान्त विन्दु के अंशात्मक रवि में घटाने से तिथ्यन्त कालिक मध्यमरवि होते हैं। यहां सौरात्मक अधिशेष ज्ञान के लिये अनुपात करते हैं। यदि युगचान्द्र में युगसौर दिन पाते हैं तो चान्द्रात्मक अधिशेष में क्या फल सौरात्मक अधिशेष आया, । $\frac{३० \text{ अधिशे}}{\text{युसौ}} \times \frac{\text{युसौ}}{\text{युचां}} = \frac{३० \text{ अधिशे}}{\text{युचां}}$

$= \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}}$ तिथि में इसको घटाने से तिथ्यन्तकालिकरवि $=$ ति $- \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}}$। अब यदि एक

दिन में रविगति पाते हैं तो कुदिनात्मक अवम शेष में क्या इस अनुपात से अवमशेष सम्बन्धी रविगति =

रविग × $\frac{\text{अवशे}}{\text{युचां}}$ । परन्तु १२ ति = चं — र ∴ र + १२ ति = चद्र = तिथ्यन्त का चन्द्र

सूर्योदयकालिक र + १२ ति = सूर्योदय कालिकचन्द्र

लेकिन तिथ्यन्तकालिकरवि + अवमशेसं रविगति = सूर्योदयकालिकरवि

$$= \text{रवि} + \frac{\text{रविग} \times \text{अवशे}}{\text{युचां}} = \text{ति} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{रग} \times \text{अवमशे}}{\text{युचां}} =$$

$$\text{ति} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{अवशे}}{\frac{\text{युचां}}{\text{रग}}} = \text{ति} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} + \frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}}$$

$$= \text{ति} + \frac{\text{अवशे}}{\text{पठितहर}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} = \text{सूर्योदयकालिक रवि}$$

परं सूर्योदयकालिकरवि + १२ ति = सूर्योदयकालिकचन्द्र

$$\therefore \text{ १३ ति} + \frac{\text{अवशे}}{\text{पठितह}} - \frac{\text{अधिशे}}{\text{युचां}} = \text{सूर्योदयकालिकचन्द्र}$$

तथा सूर्योदयकालिक चन्द्र — १२ ति = सूर्योदयकालिक रवि

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १६- १६½ ॥

फलविवरं मध्यमतिथिः शेषकला द्वादशोद्धृता नाड्यः ॥ २० ॥

वि. भा.—फलविवरं (रविचन्द्रान्तरांशं) द्वादशोद्धतं मध्यमतिथिर्भवति । शेषकला द्वादशोद्धतास्तदा नाड्यः (घटिकाः) स्युः ॥ इति ॥

हि. भा.—रवि चन्द्रान्तरांश को बारह से भाग देने से मध्यमतिथि होती है । शेषकला को बारह से भाग देने से घटी होती है ॥ २० ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि द्वादशांशैरेका तिथिस्तदाशेषांशैः किमिति तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{१ ति} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}}$ =

$\frac{\text{६० घटी} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} = \frac{\text{शेषकला}}{\text{१२}}$ = घट्यात्मक फलम् । अतः शेषकला द्वादशोद्धृता नाड्य इति तथ्यमुक्तम् ॥ २० ॥

यदि बारह अंश में एक तिथि (६० घटी) तो शेषांश में क्या इस अनुपात से शेषांश सम्बन्धी घट्यात्मक फल आता है । $\frac{\text{१ ति} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} = \frac{\text{६० घटी} \times \text{शेषांश}}{\text{१२}} =$

$\frac{\text{शेषकला}}{\text{१२}}$ = शेसंघट्यात्मक फल । ∴ उपपन्न हुआ ॥ २० ॥

अथावमशेषघट्यानयनमाह

खरसघ्नात् कुदिनाप्तावम शेषात्तिथेर्नाड्यः ॥

वि. भा.—खरसघ्नात् (षष्टिगुणितात्) कुदिनाप्तावमशेषात् (कुदिनभक्तावमशेषात्) तिथेर्नाड्यः (क्षयघटिकाः स्युः) ।

हि. भा.—कुदिन मे भाग लिया हुआ अवमशेष को साठ से गुणने मे घट्यात्मक होता है ।

उपपत्तिः ।

अथावमशेषप्रमाणम् चान्द्रात्मकम् $=\frac{\text{अवशेष}}{\text{युकुदिन}}$, अत्रानुपातो यद्येकतिथौ षष्टिघटिकास्तदाऽवमशेषैः किं जातमवमशेषमानं घट्यात्मकम् $=$

$$\frac{६०\times\text{अवशे}}{\text{युकुदिन}}=\text{अवमशेष घटी ।}$$

चान्द्रात्मक अवमशेष $=\frac{\text{अवशे}}{\text{युगादिन}}$ । अब अनुपात करते हैं कि यदि एकतिथि में साठ दण्ड पाते हैं तो अवमशेष में क्या इस अनुपात से घट्यात्मक अवमशेष प्रमाण आया । $\frac{६०\times\text{अवशे}}{\text{युकुदि}}$ = अवमशे घटी । इससे आचार्योक्त सिद्ध हुआ ॥

अथ रविचन्द्रयोरानयनमाह

द्विगुणतिथिलिप्तिकाभ्यो नगत्तु लब्धाधिकाप्तरविहृतयुक् ।
तद्युगिनो विश्वगुणो विधुस्तदूनस्त्रयोदशहृदर्कः ॥ २१ ॥

वि. भा.—द्विगुणतिथिलिप्तिकाभ्यः (द्विगुणतिथिकलाभ्यः) नगत्तु लब्धाऽधिकाप्तरविहृतयुक् (६७ एतद्भक्ताः सन्तो यानि लब्धान्यधिकफलानि तैर्द्वादशगुणिततिथि र्योज्या) तद्युक् (तत्सहितः) विश्वगुणः (त्रयोदशगुणितः) इनः (सूर्यः) विधुः (चन्द्रः) भवेत्, विधुस्तदूनः (चन्द्रस्तत्फलरहितः) त्रयोदशहृत् (त्रयोदशभक्तः) तदा अर्कः (सूर्यः) भवेदिति ॥ २१ ॥

अत्रोपपत्ति रधिकाप्त फलेऽर्कगुणे इत्यादिवदेव बोध्येति ॥२१॥

हि. भा.—द्विगुण तिथिकला में ६७ से भाग देने से जो फल होता है उसको बारह गुणित अधिक फल में जोड़ देना उसमें तेरह गुणित सूर्य को जोड़ने से चन्द्र होते हैं । चन्द्र में उसको घटाकर तेरह से भाग देने से रवि होते है ॥ २१ ॥

इसकी उपपत्ति "अधिकाप्तफलेऽर्कगुणे" इत्यादि की उपपत्ति की तरह समझना ॥२१॥

पुना रविचन्द्रानयनमाह

अधिकाप्तहतो द्युगणः कुदिनहृतः पर्ययादिफललब्धिः ।
शशिवर्षैरप्येवं फलान्तरं विश्वहृद्वाऽर्कः ॥ २२ ॥
समाफलेनाशीतगोरिना हृतेन चन्द्रमाः ।
विवर्जितः सहस्रगुः सहस्रगुर्युतः शशी ॥ २३ ॥

वि. भा.—द्युगणः (अहर्गणः) अधिकाप्तहतः (अधिकफलगुणितः) कुदिनहृतः (युगकुदिनभक्तः) पर्ययादि फललब्धिः (भगणादिलब्धफलं) भवेत् । शशिवर्षैः (युगचन्द्रभगणैः) अपि एवं फलं साध्यं, फलान्तरं विश्वहृत् (त्रयोदशभक्तं) अथवाऽर्कः (सूर्यः) भवेत् । अशीतगोः (सूर्यस्य) इनाहतेन (द्वादशगुणितेन) समाफलेन (भगणफलेन) विवर्जितः (हीनः) चन्द्रमाः (चन्द्रः) सहस्रगुः (सूर्यः) भवेत् । तेन फलेन युतः सहस्रगुः (सूर्यः) शशी (चन्द्रः) भवेदिति ।।२२-२३।।

अत्रोपपत्तिः

यदि युगकुदिनैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन लब्धागताधिमासाः । $\frac{\text{युगाधिमा} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = गताधिमास, एवं युगाधिमासैर्युगचन्द्रभगणा लभ्यन्ते तदा गताधिमासैः किं लब्धं भगणादिकम् = $\frac{\text{युचंभ} \times \text{गताधिमा}}{\text{युगाधिमास}}$

परं $\frac{\text{युगचंभगण}}{\text{युगरविभगण}} = १३$ $\therefore$ युचंगभगण = १३ $\times$ युगरविभगण

अतोऽधिकफलसम्बन्धि यद्रवि भगणादि फलं तत् त्रयोदशगुणितं यद्यधिकफले योज्यते तदाऽधिकफल सम्बन्धि भगणादि चन्द्रो भवेत् । यदि चाधिकफलं चन्द्र विशोध्यते त्रयोदशभिर्भज्यते तदा रविर्भवेदिति । अतः श्लोकोक्तौ "समाफलेनाशीतगोरिनाहतेन चन्द्रमा" इति स्थले "समागतेनाशीतगोर्विश्वहतेन चन्द्रमा" इति पाठः साधुः प्रतीयते तथा शशिवर्षैरित्यत्र वर्षशब्देन भगणो बोध्य इति । ।।२२-२३।।

हि. भा.—अहर्गण को अधिक फल से गुणाकर युग कुदिन से भाग देने में भगणादि फल होता है । इसी तरह चन्द्र भगण में भी फल लाना, दोनों फलों के अन्तर करने से जो हो उसको तेरह से भाग देने से रवि होते हैं अर्थात् चन्द्रमा में अधिक फल को घटाने से जो हो उसको तेरह से भाग देने पर रवि होते हैं और तेरह गुणित रवि में अधिक फल जोड़ने से चन्द्र होते हैं ।।२२-२३।।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में युगाधिमास तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से जो फल आता है वही अधिक फल है । अधिक फल सम्बन्धी चन्द्रभगणादिफल लाइये अथवा युगाधिमास, युगकुदिन, युगचन्द्रभगण पर से अनुपात से भगणादि चन्द्र आते हैं उसमें अधिक फल को घटाने से तेरह गुणित रवि होते हैं क्योंकि $\frac{\text{युचंभगण}}{\text{युगरभगण}} = १३$

तथा युचंभगण — १३ युगरविभगण = युगाधिमास

अतः अधिकफल सम्बन्धिचन्द्र — अधिकफल = १३ रवि $\therefore \frac{\text{अधिकफलसंचन्द्र} - \text{अधिकफ}}{१३} =$ रविः ।।२२-२३।।

पुनस्तदानयनमाह ।

अधिकाप्तफलेऽर्कगुणे विश्वाहत भानुसंयुते चन्द्रः ।
चन्द्रो वा तद्धीनो विश्वहृतो मध्यमः सविता ॥२४॥

वि. भा.—अधिकाप्तफले (अधिकमाससम्भूतफले) अर्कगुणे (द्वादशगुणिते) विश्वाहतभानुसंयुते (त्रयोदशगुणितरविसहिते) तदा चन्द्रो भवेत् । तद्धीनः (तेन फलेन रहितः) चन्द्रः विश्वहृतः (त्रयोदशभक्तः) तदा मध्यमः सविता (मध्यमसूर्यो) भवेदिति ॥

अत्रोपपत्तिः

अधिकफलमर्कगुणितं चन्द्रांशेभ्यो विशोध्य विश्वांश इत्यादिना स्पष्टमेव । तत्र यत्कथितं ततः किञ्चिदप्यधिकमत्र न कथ्यतेऽतोऽत्रापि वासना तथैव ज्ञेयेति—केवलमधिकफलेऽन्तरमस्ति, तावता न काचिद्धानिरधिकफलस्थानेऽत्रात्रत्यमधिकं फलं ग्रहीतव्यमिति ॥२४॥

हि. भा.—अधिकफल को बारह से गुणकर तेरह गुणित रवि में जोड़ने से चन्द्र होते हैं । और चन्द्र में उस फल को (बारहगुणित अधिकफल को) घटाकर तेरह से भाग देने से मध्यम सूर्य होते हैं ।

उपपत्ति

"अधिकफलमर्कगुणितं चन्द्रांशेभ्यो विशोध्य विश्वांश" इत्यादि श्लोक की उपपत्ति जिस तरह की गई है उसी तरह यहां भी उपपत्ति करनी चाहिए । उससे यहां कुछ भी विशेष बातें नहीं हैं केवल अधिक फल में अन्तर है इसलिए उपपत्ति करने में यहां का अधिक फल लेना चाहिए । अधिकफलमर्कगुणितमित्यादि श्लोकोपपत्ति में वहां का अधिकफल ग्रहण करना चाहिए ॥इति॥२४॥

युगभोदयाहते वा युगकुदिनोद्धृते च भगणादि ।
सवितृगृहादिकं यद्भगणाश्च गतर्क्षपरिवर्त्ताः ॥२५॥

वि. भा.—अहर्गणे युगभोदयाहते (युगपठित भोदयगुणिते) युगकुदिनोद्धृते (युगकुदिनभक्ते) भगणादिफलं भवेत् ततः सवितृगृहादिकं (रविराश्यादिकं) भवेत् भगणाश्च (अनुपातागता गतभगणा.) गतर्क्षपरिवर्ताः (नक्षत्रगतभगणाः स्युः ॥इति॥

उपपत्तिः

अहर्गणतोऽनुपातेन यथा भगणादिग्रहानयनं तथात्रापि कार्यमर्थात्

$$\frac{\text{युगभोदय} \times \text{अहर्ग}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकु} + \text{युरभ})\text{अह}}{\text{युकु}} = \text{अह} + \frac{\text{युरभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \text{अह} + \text{भगणादिर}$$

अत्राहर्गणे शोधिते भगणादि रविस्ततो राश्यादिरविज्ञानं भवेत् ।

हि. भा.—अहर्गण को युगभोदय से गुण कर युगकुदिन से भाग देने से भगणादि फल होता है। अनुपात से जो गतभगण आता है वह नक्षत्रगत भगण है ॥२५॥

उपपत्ति

अहर्गण से अनुपात द्वारा जैसे भगणादि ग्रहानयन होता है यहां भी उसी तरह करना चाहिये अर्थात् $\frac{\text{युभोदय} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकु} + \text{युरभ}) \text{ अह}}{\text{युकु}} = \text{अ} + \text{रवि}$, अहर्गण को घटाने में शेष मध्यम रवि होंगे ॥२५॥

पुनश्चन्द्रार्कयोरानयनमाह

अधिमास हतो द्यु गणः कुदिनहृतः पर्ययादि तद्युक्तः।
विश्वघ्नोऽर्कश्चन्द्रोहीनस्त्रयोदशहृदर्कः ॥ २६ ॥

वि. भा.—द्युगणः (अहर्गणः) अधिमासहतः (युगाधिमासगुणितः) कुदिन-हृतः (युगकुदिनभक्तः) पर्ययादि (भगणादिफलं यत्) तद्युक्तः (तेन भगणादिफलेन सहितः) विश्वघ्नोऽर्कः (त्रयोदशगुणित रविः) तदा चन्द्रो भवेत्। चन्द्रस्तेन फलेन हीनः (आनीतेन फलेन रहितश्चन्द्रः) त्रयोदशहृत् (त्रयोदशभक्तः) तदाऽर्कः (रविः) भवेदिति ॥२६॥

अत्रोपपत्तिः।

इन्दुमण्डलगुणेन्दु संगुणब्रध्नचक्रविवरेऽधिमासका इत्युक्तेर्यु गाधिमास-स्वरूपम्=युचं भगण—१३ युरविभगण=युगाधिमास एतत्स्वरूपदर्शनेनैव स्पष्ट-मवसीयते यदहर्गणादनुपातेन यद्यु गाधिमास सम्बन्धी भगणादिफलं तत्र यदि त्रयो-दशगुणित रवि भगणादिफलं योज्यते तदा भगणादिकश्चन्द्रो भवेत्। यदि तदेवाधि-मास सम्बन्धि भगणादि फलं चन्द्रे विशोध्यते त्रयोदशभिर्हृते च रविर्भवे-देवेति ॥ २६ ॥

हि. भा.—अहर्गण को युगाधिमास से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से जो भग-णादि फल हो उसको तेरह गुणित रवि में जोड़ने से चन्द्र होते हैं। और उसी फल को चन्द्र में घटा कर तेरह से भाग देने से रवि होते हैं ॥२६॥

उपपत्ति

इन्दुमण्डल गुणेन्दुसंगुणब्रध्न चक्र विवरेऽधिमासकाः, इस उक्ति से युगचंभगण—१३ युगरविभगण=युगाधिमास, इसको देखने से स्पष्ट है कि अहर्गण से अनुपात द्वारा जो युगाधिमास सम्बन्धी भगणादि फल हो उसमें यदि तेरह गुणित रवि भगणादि फल को जोड़ देंगे तो भगणादिक चन्द्र होते हैं। यदि उसी अधिमास सम्बन्धी फल को चन्द्र में घटा कर तेरह से भाग देते हैं तो रवि होते हैं ॥ इति ॥ २६ ॥

अथचन्द्रपातेन रविचन्द्रयोरानयनमाह ।

शशिपातैर्वा द्युगणे निहते कुदिनोद्धृते च भगणादि ।
तत्सहितो रविरिन्दुर्विधुर्विहीनोऽथ घर्मांशुः ॥२७॥

वि. भा.—द्युगणे (अहर्गणे) शशिपातैः (युगपठितचन्द्रपातभगणैः) निहते (गुणिते) कुदिनोद्धृते (युगकुदिनभक्ते) भगणादिफलं भवेत् । तत्सहितो रविः (तत्फलयुक्तोरविः) इन्दुः (चन्द्रः) भवेत् विधुः (चन्द्रः) विहीनः (तेन फलेन रहितः) तदा घर्मांशुः (सूर्यः) भवेदिति ॥२७॥

अत्रोपपत्तिः

युगचान्द्रपातभगणैरनुपातेना " युगकुदिनैर्युगचन्द्रपातभगणा लभ्यते तदाहर्गणेन किमिति" नेन यत्फलमागच्छति तद्यदि रवौ योज्यते तदा चन्द्रो भवेत् । चन्द्रे च तत्फलं विशोध्यते तदा सूर्यो भवेदेवेति ॥ सूर्यस्य पाताभावाच्चन्द्रपातयुगभगणेनानुपातागतफलं क्रमशो रविचन्द्रे धनर्णं तदा तौ भवत इति ॥३७॥

हि. भा.—अहर्गण को युगपठित चन्द्रपात भगण से गुणाकर युगकुदिन से भाग देने से जो भगणादिफल होता है उसको रवि में जोड़ने से चन्द्र होते हैं यदि चन्द्र में उस फल को घटा देते हैं तो रवि होते हैं ॥ २७ ॥

उपपत्ति

युगचन्द्रपातभगण से अनुपात "युगकुदिन में युगचन्द्रपात भगण पाते हैं तो अहर्गण में क्या " से जो भगणादिफल आता है उसको यदि रवि में जोड़ते हैं तो चन्द्र होते हैं । यदि उस फल को चन्द्र में घटा देंगे तो रवि हो जायेंगे । रवि को अपना पात नहीं हैं, चन्द्रपात युगभगण से जो अनुपात द्वारा भगणादिफल होता है उसको रवि में जोड़ने से चन्द्र होते हैं । और चन्द्र में घटाने से रवि होते हैं । स्पष्ट ही बात है ।॥२७॥

युगव्यतीपातहतादहर्गणाद्युगक्षमावासरलब्धमब्दितम् ।
क्षपाकरोनं भगणादि भास्करो विवस्वतोनं रजनीकरो वा ॥२८॥

वि. भा.—अहर्गणात्—युगव्यतीपातहतात् (युगपठितव्यतीपातभगण गुणात्) युगक्षमावासरलब्धं (युगकुदिनभक्तं यत्फलं) तदब्दितं (द्वादशभक्तं) यत्फलं क्षपाकरोनं (चन्द्ररहितं) तदा भगणादिभास्करः (भगणादिसूर्यो भवेत्) विवस्तोनं (तत्रैव फले सूर्यहीनं) तदा रजनीकरः (चन्द्रः) भवेदिति ॥२८॥

अत्रोपपत्तिः पूर्ववदेव बोध्येति

हि. भा.—अहर्गण को युगपठित व्यतीपात भगण से गुणाकर युगकुदिन से भाग देने से जो फल होता है उसको बारह से भाग दीजिए, इसमें चन्द्रमा के घटाने से सूर्य होते हैं और उसी फल में सूर्य को घटाते हैं तो चन्द्र होते हैं ॥

उपपत्ति पूर्ववत् समझनी चाहिये ॥२८॥

प्रकारान्तरेण रविचन्द्रयोरानयनम् ।

शशाङ्कमासाप्तफलोनसंयुतं पृथक् तमर्धीकृतमर्कशीतगू ।

वि. भा.—शशाङ्कमासाप्तफलोनसंयुतं (अहर्गणसम्बन्धि यच्चान्द्रमासफलं तद्रहितं युतं) पृथक् (स्थानद्वये स्थापितं) तं (रविचन्द्रयोगं) अर्धीकृतं (द्वाभ्यां भक्तं) तदाऽर्कशीतगू (सूर्याचन्द्रमसौ) भवेतामिति ।। सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैतद्विषयेऽतिस्पष्टं सुन्दरं प्रतिपादितमस्तीति ।।

अस्योपपत्तिः

यदि युगकुदिनैर्युगचान्द्रमासा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गण सम्बन्धि चान्द्रमासफलम् $= \frac{\text{युचांमा} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युचंभ} - \text{युरभ})\ \text{अह}}{\text{युकु}} =$

$\frac{\text{युचंभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युरभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} =$ भगणादिचं — भगणादिरवि = अन्तरम्

रविचन्द्रयोगः = योग

अतः $\frac{\text{यो} - \text{अन्तर}}{२} =$ र । $\frac{\text{योग} + \text{अन्तर}}{२} =$ चन्द्रः ।

अत उपपन्नम् ।

हि. भा.—चान्द्रमास सम्बन्धी फल को दो जगहों में रखे हुए रविचन्द्र योग में घटाना और जोड़ना, आधा करना तब क्रमशः रवि और चन्द्र होते हैं ।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने इस विषय में बहुत अच्छा प्रतिपादन किया है ।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में युगचान्द्र मास पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से चान्द्रमास सम्बन्धी फल आया, $\frac{\text{युचांमा} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युचंभ} - \text{युरभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$

$= \frac{\text{युचंभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युरभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिचं — भगणादिरवि = अन्तर

रवि और चन्द्र के योग = यो

तब $\frac{\text{यो} - \text{अन्तर}}{२} =$ रवि । $\frac{\text{यो} + \text{अन्तर}}{२} =$ चन्द्र, अतः उपपन्न हुआ ।

अधिमासाप्तफलेन वर्जितश्चतुर्दशांशः सविताऽथवा भवेत् ।।२६।।

वि. भा.—अधिमासाप्तफलेन (अहर्गणसम्बन्ध्यधिमासफलेन) वर्जितः (हीनस्तयोश्चन्द्ररव्योर्योगः) चतुर्दशांशः (चतुर्दशभक्तः) अथवा सविता (सूर्यः) भवेदिति ।।२६।।

अस्योपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गण-सम्बन्ध्यधिमासफलम् $= \frac{\text{युगाधिमा} \times \text{अह}}{\text{युकु}} =$

$\frac{(\text{युचंभ}—१३\ \text{युरभ})\ \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{\text{युचंभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} - \frac{१३\ \text{युरभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} =$ भगणादिचं — १३

भगणादिर = अन्तरं कल्पितम् = चं — १३ र

रविचन्द्रयोर्योगः = यो = चं + र

$\therefore$ यो — अन्तर = चं + र — चं + १३ र = १४ र

$\therefore \frac{\text{यो}—\text{अन्तर}}{१४} =$ रविः । अतः सिद्धम् ॥

हि. भा.—अधिमाससम्बन्धी फल को रविचन्द्र के योग में घटाकर चौदह से भाग देने से रवि होते हैं ।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में युगाधिमास पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से अहर्गण सम्बन्धी अधिमास फल आया । $\frac{\text{युअमा} \times \text{अहर्ग}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युचंभ}—१३\ \text{युरभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$

$= \frac{\text{युचंभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{१३\ \text{युरभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$ भगणादिचं — १३ भगणादिर

= चं — १३ र = अन्तर मान लिया ।

रवि और चन्द्र के योग = चं + र = यो

अतः योग — अन्तर = १४ र $\therefore \frac{\text{यो}—\text{अन्तर}}{१४} =$ र

$= \frac{\text{यो}—\text{अधिमासफल}}{१४} =$ र

अतः आचार्योक्त सिद्ध हुआ ॥२९॥

प्रकारान्तरेण रविचन्द्रयोरानयनम् ।

युगावमघ्नो द्युगणः क्वहोद्धृतो वासरादिसहिताद्दिनौघतः ।
प्रोक्तवद्रविरनुष्णदीधितिर्वा भवेद्विकलमंशकादिकः ॥३०॥

वि. भा.—द्युगणः (अहर्गणः) युगावमघ्न (युगक्षयदिनगुणितः) क्वहोद्धृतः (युगकुदिनभक्त.) वासरादि (दिनादि) फलं दिनौघतः (अहर्गणात्)

सहितात् (युक्तात्) ततः प्रोक्तवत् (पूर्वकथितरीतिवत्) अंशकादिकः (भागादिकः) रविः (सूर्यः) अनुष्णादीधितिः (चन्द्रः) वा (अथवा) भवेदिति ॥३०॥

हि. भा.—अहर्गण को युगावमदिन से गुण कर युगकुदिन से भाग देना दिनादि फल को अहर्गण में जोड़ देना उससे पूर्वकथित रीति से अंशादिक रवि और चन्द्र होते हैं ॥३०॥

उपपत्तिः

(१) यदि युगकुदिनैर्युगचान्द्रदिनानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनाहर्गणसम्बन्धीनि चान्द्रदिनानि तत्स्वरूपम्=

$$\frac{\text{युचां}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\frac{(\text{युकु}+\text{युअवम})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\frac{\text{युकु}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकु}}+\frac{\text{युअव.}\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\text{अहर्गण}+\frac{\text{युअव.}\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$

एतद्वशतो रविचन्द्रौ साध्याविति ।

उपपत्ति

(२) यदि युगकुदिन में युगचान्द्रदिन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से अहर्गण सम्बन्धी चान्द्रदिन आते हैं।

$$\frac{\text{युचां}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\frac{(\text{युकु}+\text{युअवम})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=$$

$$\frac{\text{युकु}\times\text{अहर्गण}}{\text{युकु}}+\frac{\text{युअवम.}\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\text{अहर्गण}+\frac{\text{युअवम.}\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$

इसके वश से रवि और चन्द्र के साधन करना ॥३०॥

वियोगराशिर्द्युगणेन ताड़ितः क्वहैरवाप्तं भगणादि तद्युतः ।
ग्रहोऽल्पभुक्तिर्हि भवेद्बृहद्गतिर्बृहद्गतिर्वा वियुतोऽल्पभुक्तिकः ॥३१॥

वि. भा.— वियोगराशिः (युगीयग्रहान्तर समूहः) द्युगणेन (अहर्गणेन) ताड़ितः (गुणितः) क्वहैरवाप्तं (युगकुदिनं भक्तं) फलं भगणादिकं यत्तद्युतः (तेन सहितः) अल्पभुक्तिग्रहः (मन्दगतिर्ग्रहः) तदा बृहद्गतिः (शीघ्रगतिग्रहो भवेत्) बृहद्गतिर्ग्रहः, वियुतः (तेन फलेन रहितः) तदाऽल्पभुक्तिको ग्रहः (मन्दगतिग्रहः) भवेदिति ॥३१॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैर्युगीय शीघ्रमन्दगतिग्रहयोरन्तरं लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन फलम् $=\frac{(\text{युगशीघ्रगतिग्र}-\text{युगमन्दगतिग्र})\ \text{अहर्गण}}{\text{युगकुदिन}}$ एतत्फलं यदि मन्दगति

ग्रहे योज्यते तदा शीघ्रगतिर्ग्रहो भवेद्यदि च शीघ्रगतिग्रहे विशोध्यते तदा मन्दगति-र्ग्रहो भवेदिति ॥ ३१ ॥

हि. भा.—दो ग्रहों के अन्तर को अहर्गण से गुणकर युगकुदिन से जो फल हो उसको मन्दगतिग्रह में जोड़ने से शीघ्रगतिग्रह होते हैं। उसफल को शीघ्रगति ग्रह घटाने से मन्दगति ग्रह होते हैं ॥३१॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में युगीय शीघ्रगतिग्रह मन्दगतिग्रह का अन्तर पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से जो फल आता है उसको मन्दगतिग्रह में जोड़ने से शीघ्रगतिग्रह होंगे और उस फल को यदि शीघ्रगतिग्रह में घटा देंगे तो मन्दगतिग्रह होते हैं ॥३१॥

स्वपर्ययैक्याहतवासरौघत क्षितिद्यु लब्धं भगणादिकं द्विधा ।
वियोगलब्धोनयुतं तथार्धितं वियत्सदौ वा भवतोऽत्र मध्यमौ ॥३२॥

वि. भा.—स्वपर्ययैक्याहतवासरौघतः (निजभगणयोगगुणिताहर्गणात्) क्षितिद्यु लब्धं (युगकुदिनभक्तात्फलं) भगणादिकं यत्तद् द्विधा (स्थानद्वये) वियोग-लब्धोनयुतं (युगभगणान्तरजनितफलेन हीनं युतं) अर्धितं (द्विभक्तं) तदा मध्यमौ वियत्सदौ (मध्यमौ ग्रहौ) भवत इति ।

अत्रोपपत्तिः

शीघ्रग्रहभगण + मन्दगतिग्रहभगण = भगणयोग

शीघ्रग्रहभगण — मन्दगतिग्रहभगण = भगणान्तर

ततोऽनुपातो यदि युगकुदिनैर्भगणयोगो लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन फलम् =

$$\frac{\text{भगणयोग} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{शीग्रभ} + \text{मंग्रभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिशीग्र} + \text{भगणादिमंग्र} = \text{भगणयोगजग्रह}$$

एवमेव $\frac{\text{भगणान्तर} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{शीग्रभ} - \text{मंग्रभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिशीग्र} - \text{भगणादि मंग्र} = \text{भगणान्तरजग्रह}$

अनयोर्योगः

भगणादिशीग्र + भगणादिमंग्र + भगणादिशीग्र — भगणादिमंग्र = २ भगणादिशीग्र
= भगणयोगजग्र + भगणान्तर ज ग्रह = २ भगणादिशीग्र

$$\text{अतः}\ \frac{\text{भगणयोगजग्र} + \text{भगणान्तर जग्रह}}{2} = \text{भगणादिशीग्र}$$

तथा तयोरेवान्तरेण भगणादिशीग्र + भगणादिमंग्र — (भगणादिशीग्र — भगणादिमंग्र)

= २ भगणादिमंग्र = भगणयोगजग्र — भगणान्तरजग्र

$\therefore \frac{\text{भगणयोगजग्र}-\text{भगणान्तरजग्र}}{२}=\text{भगणादिमंग्र}$।

ययोर्ग्रहयोर्भगणयोगेन भगणान्तरेण च तदानयनं कृतम्।
तयोरेकः शीघ्रगतिग्रहोऽन्यो मन्दगतिग्रह इति, अत उपपन्नम् ॥ ३२ ॥

हि. भा.—दो ग्रहों के भगण योग से अहर्गण को गुणाकर युगकुदिन से भाग देना जो भाग फल हो उसको दो जगहों में भगणान्तर पर से जो फल हो इस फल करके एक जगह हीन करना, दूसरी जगह जोड़ देना, दोनों को दो से भाग देने से दोनों मध्यम ग्रह (शीघ्रगति ग्रह, मन्दगति ग्रह) होते हैं ॥ ३२ ॥

उपपत्ति

दो ग्रहों के भगण योग भगणान्तर से उनके साधन करते हैं। दोनों ग्रहों में एक शीघ्रगति ग्रह है दूसरे मन्दगति ग्रह हैं।

$\text{शीग्रभगण}+\text{मन्दग्रभगण}=\text{भगणयोग}$

$\text{शीग्रभगण}-\text{मन्दग्रभ}=\text{भगणान्तर}$

तब अनुपात से $\frac{(\text{शीग्रभ}+\text{मंग्रभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\text{भगणादिशीग्र}+\text{भगणादिमंग्र}$

$=\text{भगणयोगजग्र}$

इसी तरह $\frac{(\text{शीग्रभ}-\text{मंग्रभ})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}=\text{भगणादिशीग्र}-\text{भगणादिमंग्र}=\text{भगणान्तरजग्र}$

दोनों के योग करने से $\text{भगणयोजग्रह}+\text{भगणान्तरजग्र}=२\ \text{भगणादि शीग्र}$

उन्हीं दोनों के अन्तर करने से $\text{भगणयोग्रह}-\text{भगणान्तरजग्र}=२\ \text{भगणादिमंग्र}$

अतः $\frac{\text{भगणयोगजग्र}+\text{भगणान्तरजग्र}}{२}=२\ \text{भगणादिशग्र}$

$\frac{\text{भगणयोगजग्र}-\text{भगणान्तरजग्र}}{२}=\text{भगणादिमंग्र}$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥३२॥

तदूनभुक्तिना हीनं खेचरेण बृहद्गतिः।
शीघ्रभुक्तिग्रहेणोनं मृदुभुक्तिग्रहो भवेत् ॥३३॥

वि. भा.—ऊनभुक्तिना खेचरेण (मन्दगतिग्रहेण) तत्फलं (भगणयोगजफलं) हीनं (रहितं) तदा बृहद्गतिः (शीघ्रगतिः) ग्रहो भवेत्, तदेव फलं शीघ्रभुक्तिग्रहेण (शीघ्रगतिग्रहेण) ऊनं (रहितं) तदा मृदुभुक्तिग्रहः (मन्दगतिग्रहः) भवेदिति ॥ ३३ ॥

अस्योपपत्तिस्तु ३२ श्लोकोपपत्त्यैव सिद्धा यतस्तदुपपत्तौ
$\text{भगणयोगजग्रह}=\text{भगणादिशीग्र}+\text{भगणादिमंग्र}$

∴ भगणयोगजग्र—भगणादिमंग्र = भगणादिशीग्र
तथा भगणयोगजग्र—भगणादिशीग्र = भगणादिमंग्र

अतः सिद्धम् ।। ३३ ।।

हि. भा.—भगणयोगजफल में मन्दगतिग्रह को घटा देने से शीघ्रगतिग्रह होते हैं तथा उसी में शीघ्रगति ग्रह को घटाने मे मन्दगतिग्रह होते हैं ।।३३।।

इसकी उपपत्ति तो ३२ श्लोक की उपपत्ति से ही सिद्ध है । क्योंकि उसकी उपपत्ति से भगणयोग्र = भगणादिशीग्र + भमंग्र

∴ भगणयोग्र—भमग्र = भगणादिशीग्र

तथा भगणयोग्र—भगणादिशीग्र = भमंग्र

अतः सिद्ध हो गया ।।३३।।

प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह ।

ग्रहोदयघ्नो द्युगणः क्वहोद्धृतो गतोदयो भाद्यवशेषकाद् गृहे ।
क्षयस्वमर्काद् बृहदल्पभुक्तिग्रहे ग्रहोऽप्येवमिनोऽथवा भवेत् ।। ३४ ।।

वि. भा.—द्युगणः (अहर्गणः) ग्रहोदयघ्नः (युगग्रहसावनगुणितः) क्वहोद्धृतः (युगकुदिनभक्तः) तदा गतोदयः (गतस्वसावनतुल्य भगणादिग्रहः) अवशेषकात् (शिष्टात्) यद्भादिफलं (राश्यादिफलं) तत् अर्कात् (रवितः) बृहदल्पभुक्तिग्रहे सति (अधिकगतिग्रहेऽल्पगतिग्रहे च सति) गृहे (रविराश्यादिके) क्षयस्वं (ऋणं धनं) कार्यं तदा ग्रहो भवेत् । अथवैवमिनः (सूर्यः) भवेदिति ।। ३४ ।।

अत्रोपपत्तिः

$$\frac{\text{युग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिग्रह ।}$$

पर युभभ्रम—युग्रभ = युग्रकुदिन
∴ युभभ्रम—युग्रकुदि = युग्रभ

उत्थापनेन

$$\frac{(\text{युभभ्रम}-\text{युग्रकुदि}).\text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकुदि}+\text{युरभ}-\text{युग्रकुदि}).\text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

$$\text{अहर्गण} + \frac{\text{युरभ}.\text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रकुदि}.\text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

= अहर्गण + गरभगण + र राश्यादि— (गतस्वसावनतुल्यभ + राश्यादि)
= अहर्गण + गरभ + र राश्यादि—गतस्वसावन तुल्यभगण—राश्यादि

भगणानां प्रयोजनाभावाद् गतभगणास्त्यक्तास्तदा
रविराश्यादि—राश्यादि = ग्रहराश्यादि

$$\frac{\text{युग्रहकु} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{गतस्वसावनतुभ} + \frac{\text{शे}}{\text{युकु}}, \text{अत्रै} \frac{\text{शे}}{\text{युकु}} \text{तत्सम्बन्धि राश्यादि:}$$

$$= \frac{१२ \times \text{शे}}{\text{युकु}} = \text{राश्यादि} = \frac{\text{शे}}{\frac{\text{युकु}}{१२}} = \frac{\text{शे}}{\text{हर}}$$

एतवताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । यदि च युगकुदिनादिस्थाने कल्पीय कुदिनादि प्रमाणं गृह्येत तदाऽनेनैव "अर्कसावनदिवागणो हतः स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजै-" रित्यादि भास्करोक्तमप्युपपद्यते इति ।। ३४ ।।

हि. भा.—अहर्गण को युग ग्रह सावनदिन से गुणाकर युगकुदिन से भाग देने से गत स्वसावनतुल्यभगण आदि ग्रह होते हैं शेष से जो राश्यादि फल होता है उसको रवि से अधिक गतिग्रह और अल्पगतिग्रह रहने पर रवि राश्यादि में धन ऋण करने से राश्यादिग्रह होते हैं, अथवा इसी तरह रवि होते हैं ।। ३४ ।।

उपपत्ति

$$\frac{\text{युग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{भगणादिग्रह ।} \qquad \text{लेकिन युभभ्र—युग्रकुदि} = \text{युग्रभ}$$

उत्थापन देने से

$$\frac{(\text{युभभ्रम—युग्रकुदि}).\text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युकुदि} + \text{युरभ—युग्रकुदि})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

$$\text{अहर्गण} + \frac{\text{युरभ.अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रकुदि.अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

$$= \text{अहर्गण} + \text{गतरभगण} + \text{र राश्यादि} - (\text{ग स्वसावन तुल्य भ} + \text{राश्यादि})$$

$$= \text{अहर्गण} + \text{गत र भगण} + \text{र राश्यादि} - \text{ग स्वसावन तुल्य भ} - \text{राश्यादि}$$

यहां भगणों के प्रयोजनाभाव से छोड़ देते हैं,

तब रवि राश्यादि—राश्यादि = ग्रहराश्यादि

$$\frac{\text{युग्रकुदि.अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{गत स्वसावन तुल्यभगण} + \frac{\text{शे}}{\text{युकु}} \text{यहां} \frac{\text{शे}}{\text{युकु}} \text{एतत्सम्बन्धी राश्यादिकफल}$$

$$= \frac{१२\ \text{शे}}{\text{युकु}} = \frac{\text{शे}}{\frac{\text{युकु}}{१२}} = \text{राश्यादि} = \frac{\text{शे}}{\text{हर}}$$

आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ, यदि युगकुदिनादि के स्थान पर कल्प कुदिनादि प्रमाण ग्रहण किया जाय तब "अर्कसावनदिवागणो हतः स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजैः" इत्यादि भास्करोक्त भी उपपन्न होता है ।। ३४ ।।

अर्कवत्खचरभोदयैर्गताः स्वोदयास्तदुदयावधिर्ग्रहः ।
प्रोक्तवद्रविविधूत्वनेकधा स्वावमाप्तिविकलोक्तकर्मणा ।।३५।।

वि. भा.—अर्कवत् (यथा युगरविसावनदिनैर्भोदयैश्च रव्यानयनं तथैव) खचरभोदयैः (युगग्रहसावनदिनैर्भोदयैश्च) गताः स्वोदयाः (गतभगणादिका ग्रहा भवन्ति) ग्रहस्तदुदयावधिः (यस्य भगणैर्यो ग्रह आनीयते स तस्यैवोदयकालिको भवति) प्रोक्तवत् स्वावमाप्तिविकलोक्तकर्मणा (अवमफल-शेषकथित पद्धत्या) अनेकधा रविविधू (सूर्याचन्द्रमसौ) भवत इति ।।३५।।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैः युगस्वोदया लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन गत-स्वोदयाः समागताः । ततो यदि युगकुदिनैर्युगनक्षत्रभवा ग्रहा लभ्यन्ते तदाहर्गणेन किमिति समागतागतनक्षत्रभगणभवग्रहाः, ततो यदि युग नक्षत्र भगणभवग्रहे युगस्वोदयशोधनेन युगग्रहभगणालभ्यन्ते तदेष्टनक्षत्रभगणभवग्रहे इष्टग्रहस्वोदय शोधनेन क इतीष्टग्रहो लभ्यते इति ।।३५।।

अथवा

$$\frac{\text{युगग्रहकुदि} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{युभोदय}-\text{युग्रभ})\text{अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

$$\frac{\text{युभोदय अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रभ. अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{गत नक्षत्र भगणभवग्रह}-$$

भगणादिग्र = इष्टग्रहः ।।३५।।

हि. भा.—रवि साधन के सदृश (जैसे युग रवि सावन दिन और युग रविभोदय से रवि का साधन होता है उसी प्रकार) युग ग्रह सावन दिन और भोदय पर से ग्रह का साधन करना वह ग्रह अपने सावनान्त कालिक होते हैं अपने अवमफल और शेष से कथित रीति के द्वारा अनेक प्रकार के रवि और चन्द्र होते हैं ।।३५।।

उपपत्ति

यदि युग कुदिन में युग स्वोदय पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गत स्वोदय आते हैं । फिर अनुपात करते हैं यदि युग कुदिन में युग नक्षत्र भगण जनित ग्रह पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गत नक्षत्र भगणोत्पन्न ग्रह आते हैं। तब युग नक्षत्र भगण जनित ग्रह में युग स्वोदय घटाने से युग ग्रह भगण पाते हैं तो इष्टनक्षत्रभगण जनितग्रह में इष्ट ग्रह स्वोदय घटाने से क्या आ जायगा इष्ट ग्रह प्रमाण इति ।

अथवा

$$\frac{\text{युग ग्रकुदि} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}} = \frac{(\text{युग भोदय}-\text{युग ग्रह भगण}).\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{युभोदय} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} - \frac{\text{युग्रह भगण. अहर्गण}}{\text{युकु}} =$$

गत नक्षत्र भगण जनितग्र—भगणादिग्र = इष्टग्रहः ।।३५।।

इदानीमनुलोमगतीन् ग्रहान् विलोमान् विलोमांश्चानुलोमान् कर्त्तुमुपायद्वयमाह।

द्युगणोन भूदिनघ्नः पठित ग्रहपर्ययो महीद्युहृतः।
भगणादि विलोमगतिर्ग्रहोऽनुलोमश्च्युतश्चक्रात् ॥३६॥

वि. भा.—पठित ग्रहपर्ययः (युगपठित ग्रहभगणः) द्युगणोनभूदिनघ्न (अहर्गण रहित युगकुदिन गुणितः) महीद्युहृतः (युगकुदिन भक्तः) तदा भगणादि विलोमगतिः (भगणादिको विपरीतगतिको) ग्रहो भवेत्-चक्रात् (भगणात्) च्युतः (शोधितः) तदाऽनुलोमगः (क्रमगतिको ग्रहः) भवेदिति ॥३६॥

अत्रोपपत्तिः।

यदि युगकुदिनैर्युग ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणोन युगकुदिनैः किमित्यनुपातेन भगणादिको विलोमगतिको ग्रहः समागतस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रभ} \times (\text{युकु} - \text{अहर्गण})}{\text{युकु}}$

यतः युकुदिन—अहर्गण इत्यहर्गणान्ताद्युगान्तं यावद्दिनानि सन्ति, ततोऽनुपातेन पूर्वोक्तेन ये भगणादिका ग्रहाः समागच्छेयुस्ते विलोमगतिका एव, एते एव विलोमगतिकग्रहा भगणाच्छुद्धास्तदाऽनुलोमगतिका ग्रहा भवन्तीति समुचितमेवेति ॥३६॥

यदि अहर्गण रहित युगकुदिन को युग ग्रह भगण से गुण कर युग कुदिन से भाग देते हैं तो भगणादि विलोमगतिक ग्रह होते हैं, भगण में विलोमगतिक ग्रह घटाने से अनुलोम (क्रमिक) गतिक ग्रह होते हैं ॥३६॥

उपपत्ति

हि. भा—यदि युग कुदिन में युग ग्रह भगण पाते हैं तो अहर्गण रहित युग कुदिन में क्या इस अनुपात से भगणादि विलोमगतिक ग्रह आते है उसका स्वरूप ऐसा है $\frac{\text{युग्रभ} \times (\text{युकु} - \text{अहर्गण})}{\text{युकु}}$ यतः युकु—अहर्गण = शे वह अहर्गणान्त से युगान्त तक दिन-समूह है इससे पूर्वोक्तानुपात द्वारा जो भगणादिक ग्रह आते हैं वे विलोमगतिक ही होंगे। इन्हीं (विलोमगतिक ग्रह) को भगण में घटाने से क्रमिक गतिग्रह (अनुलोम गतिक ग्रह) हो जायेंगे उचित ही हैं यह आचार्य का कथन युक्ति-युक्त है ॥ ३६ ॥

भूदिनैः खगभगणोनैर्हते द्युराशौ युगक्षमाद्युहृते।
भगणादिर्व्यस्तगतिर्भगणाच्छुद्धो ग्रहोऽनुलोमगतिः ॥ ३७ ॥

वि. भा.—द्युराशौ (अहर्गणे) खगभगणोनैर्भूदिनैः (युगग्रहभगणरहितैर्युगकुदिनैः) हते (गुणिते) युगक्षमाद्युहृते (युगकुदिनभक्ते) फलं भगणादि व्यस्तगतिः (विलोमगतिः) ग्रहो भवेत्। आनीतो विलोमगतिको ग्रहो भगणाच्छुद्धस्तदा अनुलोमगतिः (मार्गगतिः) ग्रहो भवेदिति ॥ ३७ ॥

अस्योपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैर्युग ग्रहभगणोन कुदिन प्रमाणं लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन भगणादि विलोमगतिक ग्रहः समागतस्तत्स्वरूपम्=

$\frac{(\text{युकुदिन-युगग्रह भगण})\ \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$=भगणादि विलोमगतिग्रहः । युकुदि-युग्रभगण अस्मादनुपातेन यो ग्रहः समागच्छति तस्य विलोमगतित्वं समुचितमेव । क्रमिकगतिग्रहार्थं स एवानीतो विलोमगतिकग्रहो भगणाच्छुद्धस्तदाऽनुलोमगतिग्रहो भवेदिति ।। ३७ ।।

हि. भा.—अहर्गण को युग ग्रहभगण रहित युगकुदिन से गुणकर युगकुदिन से भाग देने से भगणादि विलोमगतिक ग्रह आते हैं । भगण में घटाने से क्रमिकगति ग्रह होते हैं ।। ३७ ।।

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में युगग्रहभगण रहित युगकुदिन पाते हैं तो अ र्गण में क्या इस अनुपात से भगणादि विलोमगतिक ग्रह आते हैं ।

$\frac{(\text{युकु—ग्रभगण})\ \text{अह}}{\text{युकु}}$= भगणादि व्यस्तगतिग्रह । युकु युग ग्रहभगण इस पर से अनुपात द्वारा जो ग्रह आते हैं उनमें व्यस्तगतित्व होना समुचित ही है । मार्गगतिग्रह के लिये उन्ही व्यस्तगतिग्रह को भगण में घटा देना चाहिये तब मार्गगतिकग्रह होते हैं ।। ३७ ।।

भावर्तैर्भगणाद्यं ग्रहोदयैश्चान्तरे तयोर्द्युचरः ।
यस्य गतोदयसिद्धं भावर्त्तफलं स एव सद्द्युचरः ।। ३८ ।।

वि. भा.—भावर्त्तैः (युगनक्षत्रभगणैः) ग्रहोदयैश्च (युगग्रह सावनदिनैः) भगणाद्यं फलं यद्भवति तयोरन्तरे द्युचरः (ग्रहः) भवेत् । यस्य ग्रहस्य गतोदयसिद्धं भावर्त्तफलं स एव सद्द्युचरः (शोभनग्रहः) भवेदिति ।।

अस्योपपत्तिः ३५ श्लोकोपपत्तिदर्शनेन स्फुटेति ।।३८।।

हि. भा.—युग नक्षत्र भगणों से और युगग्रह सावन से भगणादि फल जो होता है उन दोनों के अन्तर करने से ग्रह होते हैं अर्थाद् भभ्रम जनितग्रह में सावनदिन जनितग्रह को घटाने से इष्ट मध्यमग्रह होते हैं । भावर्त्तफल (नक्षत्रभगण जनित फल) जिस ग्रह के उदय (सावनदिन से) सिद्ध होता है वही शोभनग्रह है ।।

इसकी उपपत्ति ३५ श्लोक की उपपत्तिसे स्पष्ट है ।। ३८ ।।

उदय समासाद् ग्रहयोर्भोदयहीनात्तथैतयोरुदयैः ।
भगणाद्यल्पग उदयस्तद्वियुजोऽन्योऽल्पगोऽथवाऽन्यस्य ।। ३९ ।।

वि भा—ग्रहयोः (द्वयोर्ग्रहयोः) भोदयहीनात् (युगपठित भोदयरहितात्) उदयसमासात् (युगसावनदिनयोगात्) तथैतयोः (ग्रहयोः) उदयैः (सावनदिनैः) भगणादिफलं यत् तद्वियुजः (तद्रहितः) अल्पगः उदयः (मन्दगतिग्रह सावनदिन निकरः) तदाऽन्यः (अन्यग्रहभगणः) अथवा अन्यस्य सावनदिननिकरे यदि तद्भगणादिफलं विशोध्वते तदाऽल्पगतिग्रहभगणः स्यात्ततो ग्रहानयनं सुगममिति ।। ३९ ।।

अत्रोपपत्तिः

युमन्दगतिग्रहसावनदि + युशीघ्रगतिग्रहसा—युभोदय = मन्दगतिग्रसा—शीगग्रभ यदि मन्दगतिग्रह सावने तत्फलं विशोध्यते तदा शीगग्रहभगण ततः शीघ्रगति ग्रहानयनं सुगमम् । अथवा शीघ्रगतिग्रसा— मन्दगतिग्रभ इति यदि शीघ्रगतिग्रह सावने विशोध्यते तदा मन्दगतिग्रहभगणस्ततो मन्दगतिग्रहज्ञानं सुगममिति ।।३९।।

हि. भा.—युगपठित भोदय करके हीन दो ग्रहों के युग सावनदिन योग से तथा उन ग्रहों के युग सावन दिनों से भगण फल को मन्दगतिग्रह के सावन दिन में घटाने से शीघ्रगति ग्रह का भगण होता है अथवा शीघ्रगतिग्रह सावनदिनों में भगण फल को घटाते हैं तो मन्दगतिग्रह भगण होता है उस पर से ग्रहानयन सरल है ।। ३९ ।।

उपपत्ति

युमन्दगतिग्रहसावन + युशीघ्रगतिग्रसा —युभोदय = युमन्दगगिग्रसा— युशीगग्रभगण इसको युमन्दगतिग्रसावन में घटाने से युशीघ्रग्रह भगण होता है इस पर शीघ्रगतिग्रह ज्ञान हो जायगा । एवं युमंगग्रसा + युशीगग्रसा—युभोदय = शीगग्रसा—मंगग्रभ इसको शीग्रसावन में घटाने से मन्दगतिग्रहभगण होगा, इस पर से मन्दगतिग्रह ज्ञान हो जायगा ।। ३९ ।।

इदानीं स्वसावनदिनवशेन ग्रहाणामेकदिनगत्यानमाह ।

निजभगणोदययोगो भावर्त्तास्तद्वियोगोनभगणैः ।
द्युकैरितराभ्युदयैर्मन्दग्रहशीघ्रग्रहाभ्युदयैः ॥४०॥
चक्र कलाघ्ना भगणा द्युभिरुदयैर्यस्य भाजितास्तस्य ।
एकदिनावच्छिन्ना गतिर्ग्रहस्योदयावधिका ॥४१॥

वि. भा.—निजभगणोदययोगः (स्वभगणसावनदिनयोगः) भावर्त्ताः (भोदयाः) तद्वियोगोनभगणैः (ग्रहभगण सावनदिनान्तररहितग्रहभगणैः) इतराभ्युदयैर्द्युकैः (ग्रहसावनदिनैः) मन्दग्रहशीघ्रग्रहाभ्युदयैः (मन्दगतिग्रहशीघ्रगतिग्रह सावनदिनैः) चक्रकलाघ्ना भगणाः (चक्रकलागुणिता ग्रहयुगभगणाः) यस्य ग्रहस्योपर्युक्तैरुदयैर्द्युकैः (सावनदिनैः) भाजिताः (भक्ताः) तस्य (ग्रहस्य) उदयावधिका (औदयिका) एकदिनावच्छिन्ना (एकदैनिका) गतिर्भवेदिति । ।।४०-४१।।

अत्रोपपत्तिः ।

युगग्रहभगण + युगग्रहकुदिन = युगभभ्रम ।

तथा युगग्रहभगण—युगग्रहसावन = अन्तरम् ।
अतः युगग्रहभगण—अन्तरं = युगग्रहसावन

ततोऽनुपातो यद्येकग्रहभगणांशैश्चक्रकला लभ्यन्ते तदा ग्रहयुगभगणांशैः कमित्यनुपातेन समागच्छन्ति ग्रहभगणकलास्तत्स्वरूपम् =

$\frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{१}$ = चक्र कला × ग्रहयुगभगण ततोऽनुपातो यदि ग्रहयुगकुदिनैर्ग्रहयुगभगणकला लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपाते नैकदिनजा ग्रहगतिकला भवेत् $\frac{\text{ग्रहयुगभगणकला} \times १}{\text{ग्रहयुगकुदिन}} = \frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{\text{ग्रहयुगकुदिन}}$ = एकदिनसम्बन्धिनी ग्रहकला । यद्यप्येतया ग्रहगत्या किमपि कार्यं न चलेद्यतो हि ग्रहगतिः स्वसावनान्तर्गता पठिता नास्ति, रविसावनान्तर्गता पठितास्ति, तथापि स्वसावनसम्बन्धेन कथं ग्रहाणां गतिरागच्छत्येतदर्थं ग्रन्थकारेण युक्तिः प्रदर्शिता ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ।। ४०-४१ ।।

हि. भा.—अपने भगण और सावनदिन के योग भभ्रम होते हैं याने युगग्रहभगण और ग्रहयुग सावनदिन के योग युगभभ्रम है । युगग्रहभगण और ग्रहयुगसावनदिन के अन्तर करके रहित ग्रहयुगभगण ग्रहयुगसावन दिन होते हैं, मन्दगतिग्रह और शीघ्रगतिग्रह युगसावन दिनों से उनकी एक दिन सम्बन्धिनी गति लाते हैं । चक्रकलागुणित ग्रहयुगभगण को जिस ग्रह के उपर्युक्त युगसावन दिन से भाग देते हैं उनकी एक दिन सम्बन्धी गतिकला प्रमाण आ जाता है जो कि औदयिक होती है ।। ४०-४१ ।।

उपपत्ति

ग्रहयुगभगण + ग्रहयुगसावनदिन = युभभ्रम ।
ग्रहयुगभगण—ग्रहयुगसावनदि = अन्तरम् ।

अतः ग्रहयुगभ—अन्तर = ग्रहयुगसावनदिन, इससे एक दिन सम्बन्धी ग्रहगति साधन करते हैं ।

यदि एक भगणांश में चक्रकला पाते हैं तो ग्रहयुगभगणांश में क्या इस अनुपात से ग्रहयुगभगण कला प्रमाण आया । $\frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{१}$ = चक्रकला × ग्रहयुगभगण = ग्रहयुगभगणकला । इस पर से पुनः अनुपात करते हैं ।

यदि ग्रहयुगसावन दिन में ग्रहयुगभगणकला पाते हैं तो एक दिन में क्या इस अनुपात से एक दिन सम्बन्धी ग्रहगतिकला आई ।

$\frac{\text{ग्रहयुगभगण} \times १}{\text{ग्र युगसावनदिन}} = \frac{\text{चक्रकला} \times \text{ग्रहयुगभगण}}{\text{ग्रहयुगसावन}}$ = एकदिनसंग्रहगति । यद्यपि

इस ग्रहगति से कोई काम नहीं होगा। क्योंकि रविसावनान्तर्गत ग्रहगति पठित है। स्व-ाव-नान्तर्गत नहीं। तथापि अपने सावन दिन से कैसे ग्रहगतिज्ञान होता है इसके लिए आचार्य ने यह विधि दिखलाई है ॥४०-४१॥

अथैकग्रहज्ञानेन द्वितीयग्रहज्ञानमाह।

अन्यग्रहभगण गुणा इष्टग्रह मण्डलोद्धृताः खेटाः।
हारान्यगुणाभ्यस्ताद् द्युगुणादिष्टग्रहो भवति ॥४२॥

हि. भा.—खेटाः (इष्टग्रहाः) अन्यग्रहभगणगुणाः (साध्यग्रहभगण गुणिताः) इष्टग्रहमण्डलोद्धृताः (सिद्धग्रहभगणभक्ताः) हारान्यगुणाभ्यस्तात् (स्वकीयहारादन्यगुणगुणितात्) द्युगणात् (अहर्गणात्) इष्टग्रहो भवति ॥४२॥

अस्योपपत्तिः

इष्टग्रहः = सिद्धग्रहः । अन्यग्रहः = साध्यग्रहः । सिद्धग्रहभगणः = सिग्रभ साध्यग्रहभगणः = साग्रभ । अथग्रहानयनरीत्या ।

$$\frac{\text{युगसिग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युगकु}} = \text{सिद्धग्र}\text{। तथा } \frac{\text{युगसाग्रभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}} = \text{साध्यग्र}$$

$$\text{तदा } \frac{\text{सिद्धग्र}}{\text{साध्यग्र}} = \frac{\text{युगसिग्रभ}}{\text{युगसाग्रभ}} \text{ ततः}$$

$$\text{सिग्र} \times \text{युसाग्रभ} = \text{साग्र} \times \text{युसिग्रभ} \;\therefore\; \frac{\text{सिग्र} \times \text{युसाग्रभ}}{\text{युसिग्रभ}} = \text{साग्र}$$

$$= \frac{\text{इष्टग्रह} \times \text{युअन्यग्रभ}}{\text{युइग्रभ}} = \text{अग्रह, एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम्।}$$

भास्कराचार्येणापि "साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्यः" इत्यादिना तदेव कथ्यते यदेतेन ग्रन्थकारेण "अन्यग्रह-भगणगुणाः" इत्यादिना कथ्यते। सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनापि "विज्ञातकल्पभगणै-विहृतेषु साध्यचक्रेषु यद्भगणपूर्वकमित्यादिना" तदेवकथ्यते न कश्चिद्विशेष इति ॥४२॥

हि. भा.—इष्ट ग्रह को अन्यग्रह युगभगण से गुणाकर युगइष्टग्रह भगण से भाग देने से अन्यग्रह होते हैं। अपना हार दूसरे के गुणक से गुणने से अहर्गण से इस तरह ग्रह होते हैं ॥४२॥

उपपत्ति

यहां इष्टग्रह = विदितग्रह = सिद्धग्रह। अन्यग्रह = अविदितग्रह = साध्यग्रह

$$\text{तब ग्रहानयनरीति से } \frac{\text{युसिग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{सिग्र,}$$

तथा $\frac{\text{युगसाग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = साग्रह

अतः $\frac{\text{सिग्र}}{\text{साग्र}} = \frac{\text{युसिग्रभ}}{\text{युसाग्रभ}}$ छेदगम से सिग्र × युसाग्रभ = साग्र × युसिग्रभ

अतः $\frac{\text{सिग्र} \times \text{युसाग्रभ}}{\text{युसिग्रभ}}$ = साग्र = $\frac{\text{इष्टग्र} \times \text{युग्रन्यग्रभ}}{\text{युइग्रभ}}$ = अग्रह

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य भी यही विषय कहते हैं, यथा

"साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्यः ।" इत्यादि, सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी यही विषय कहते हैं । जैसे—

"विज्ञातकल्पभगणैर्विहृतेषु साध्यचक्रेषु" इत्यादि ॥४२॥

इदानीमिष्टगुणगुणितग्रहयोर्ग्रहाणां वा योगोऽन्तरं वेष्टहरभक्तग्रहयोर्ग्रहाणां वा योगोऽन्तरं ज्ञात्वाऽभीष्टग्रहानयनार्थमाह ।

द्वयोर्बहूनामथवा यथेच्छया हतोद्धृतानां युतिरन्तरं तथा ।
सपर्ययाणां हतमिष्टपर्ययैर्ग्रहस्तथा भूत भसंघ भाजितम् ॥ ४३ ॥

वि. भा.—द्वयोर्ग्रहयोर्भगणसहितयोरर्थाद्भगणादिग्रहयोर्यथेच्छया (स्वेच्छया) इष्टगुण गुणितयोर्युतिरुद्दिष्टा तथा तयोरेवान्तरमुद्दिष्टम् तथा द्वयोरिष्टहारकोद्धृतयोर्युतिरुद्दिष्टाऽन्तरं वोद्दिष्टम् । अथवा बहूनां ग्रहाणामिष्टगुणगुणितानां युतिरुद्दिष्टाऽन्तरं वोद्दिष्टम् तथा बहूनामिष्टहारकोद्धृतानां युतिरुद्दिष्टाऽन्तरं वोद्दिष्टम् । इष्टपर्ययैः (इष्टग्रहयुगभगणैः) पूर्वोक्तोद्दिष्टसमूहं हतं (गुणितं) तथाभूतभसङ्घभाजितम् (इष्टगुणगुणितयोरिष्टहारभक्तयोर्वा ग्रहद्वयभगणयोर्योगेनान्तरेण वा तथेष्टगुणगुणितानामिष्टहरभक्तानां वा (बहूनां ग्रहाणां) भगणानां योगेनान्तरेण वा भक्तम् तदा ग्रहः (इष्टग्रहः) भवेदिति ।

अत्रैतदुक्तं भवति द्वयोर्ग्रहयोर्भगणादिमानं यथा प्राप्तमेवादाय—एकरूपेष्टगुणकाराभ्यां संगुणय संयुज्य स्थापयेत् । तत्र भगणादिविलिप्तान्ताः पञ्चगुणकारा भवन्ति तैर्गुणकैरिष्टग्रहयुगभगणं पृथक् पृथक् संगुणय स्वहरैर्भगणान्तमारोपयेत् । ततो याभ्यां गुणकाराभ्यां गुणितौ ग्रहौ योजितौ ताभ्यामेव (गुणकाराभ्यां) गुणितौ तयोरेव भगणौ संयुज्य तेन योगरूपेण हारेण भजेत्तदेष्टमध्यमग्रहो भवेत् । तथेष्टगुणगुणितयोर्ग्रहयोरन्तरेणेष्टग्रहयुगभगणं पृथक् पृथक्- भक्त्वोपर्यारोप्य ययोर्मध्यमग्रहाविष्टगुणकगुणितौ विश्लेषितौ तयोरेव तद्गुणगुणितयोर्भगणयोरन्तरेण भजेत्तदेष्टग्रहो भवेत् । एवं बहूनामपि ज्ञेयम् ॥४३॥

अत्रोपपत्तिः

यदीष्ट गुणगुणितयोर्ग्रहभगणयोर्योगेनान्तरेण वेष्टग्रह युगभगणा लभ्यन्ते

तदा तद्गुणगुणतियोर्भगणादिविलिप्तान्तयोर्योगेनान्तरेण वा किमित्यनुपातेनेष्टग्रहः समागच्छति, एवं बहूनां योगेऽन्तरेऽपि त्रैराशिकेनेष्टग्रहो भवेत् । तथेष्टहारभक्तयोर्भगणयोर्योगेनान्तरेण वेष्ट ग्रहयुगभगणा लभ्यन्ते तदेष्टहारभक्तयोर्भगणादि ग्रहयोर्योगेनान्तरेण वा किमित्यनुपातेनेष्टग्रहो भवेत् । एवं बहूनामपि ज्ञेयमिति ॥ ४३ ॥

हि. भा.—इष्टगुण गुणित दो भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तथा इष्टहर से भक्त दो भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो, अथवा इष्टगुण गुणित बहुत भगणादिग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो, तथा इष्टहर से विभक्त बहुत ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तो उन सब को इष्टग्रह (साध्यग्रह) के युगभगण से गुण देना और इष्ट गुणगुणित ग्रहद्वय के भगण योग वा अन्तर से भाग देना तथा इष्टहर भक्त ग्रहद्वय के भगणयोग वा अन्तर से भाग देना इष्टगुणगुणित बहुत भगणादिग्रह के भगणयोग वा अन्तर से भाग देना तथा इष्टहर भक्त बहुत ग्रहभगणों के योग या अन्तर से भाग देना तब इष्टग्रह होता है ।

इष्टगुण गुणित ग्रहद्वय को योग करके स्थापन करना, उस गुणक से इष्टग्रह के युग भगण को गुण देना, और इष्टगुणगुणित ग्रहद्वय के भगणयोग से भाग देने से इष्टग्रह होते हैं । इस तरह इष्टगुणगुणित ग्रहद्वय के अन्तर करके रखना, उस इष्टगुणक से इष्टग्रह के युग भगण को गुण देना, इष्टगुणगुणितग्रहद्वय के भगणान्तर से भाग देने से इष्टग्रह होता है । इसी तरह बहुत ग्रहों में भी जानना चाहिए ।

उपपत्ति

यदि इष्टगुणगुणित ग्रहद्वय भगण योग या अन्तर में इष्टग्रह युग भगण पाते हैं तो उस इष्टगुणक से गुणित ग्रहद्वय योग या अन्तर में क्या इस अनुपात से इष्टग्रह आते हैं । इस तरह बहुत ग्रहों के योग या अन्तर में भी अनुपात से इष्टग्रह का साधन होता है । तथा इष्टहार से विभक्त भगणद्वय के योग या अन्तर में इष्टग्रह युगभगण पाते हैं तो इष्टहार विभक्त ग्रहद्वय के योग या अन्तर में क्या इस अनुपात से इष्टग्रह आते हैं । इस तरह बहुत ग्रहों में जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

द्व्यादीनामिष्टैस्तैः पृथगिच्छाघ्नैर्युतोनितं वाच्यम्
इष्टाभिहत युतयोनितया द्व्यादिग्रहसंख्यया भक्तम् ॥ ४४ ॥
सर्वधनं तत्तेषां भगणैक्यविभाजितं पृथग्गुणयेत् ।
गुणैः स्वैस्त्वयनानि त्विष्टैरिष्टस्य वा भवति ॥ ४५ ॥

वि. भा.—द्व्यादीनां (द्व्यादिग्रहाणां) ऐक्यम् (युतिः) पृथक् इच्छाघ्नैः (इष्टगुणितैः) तैरिष्टैर्ग्रहैर्युतोनितं कार्यम् । इष्टाभिहतयुतयोनितया (इष्टगुणक सहितया रहितया च) द्व्यादिग्रहसंख्यया, भक्तं (भाजितं) तत्फलं तेषां (ग्रहाणां) सर्वधनं (योगः) भवेत् । स्वैः (स्वकीयैः) गुणैः (इष्टगुणकैः) पृथक् गुणयेत् भग-

णैक्यविभाजितं (भगणयोगेन भक्तं) तदा अयनानि स्युः । वा इष्टैर्गुणकैरिष्टस्य भवतीति । पृथक् स्थिता ग्रहा न ज्ञायन्ते तदैक्यं च न ज्ञायते किन्तु एतावत् ज्ञायते तस्मादैक्यादिष्टगुणगुणितो यदा प्रथमो ग्रहो योज्यते विशोध्यते वा तदैतावत्संख्यमैक्य कार्यमूनानां वैक्यं कार्यम् । ततो ग्रहसंख्यया तदैक्यं विभजेत्तदेष्टगुणकारो ग्रहसंख्या च ज्ञायते ।

यदि गुणगुणितानामुद्दिष्टानां योगस्तदा गुणक-ग्रहसंख्यायोगो हरः । तथा गुणगुणितै रहितानामुद्दिष्टानां योगस्तदा गुणकग्रहयोरन्तरेण भजेत्तदा ग्रहैक्यं भवेत् । एतस्माद् ग्रहैक्याद् ग्रहज्ञानं कार्यमिति ।। ४४-४५ ।।

अत्रोपपत्तिः

यदा ग्रहैक्यं ग्रहसंख्या स्थानगतमेकत्र क्रियते तदा ग्रहैक्यं ग्रहसंख्यया गुणितं भवति यदीष्ट गुणितैर्ग्रहैरधिकं पृथक् पृथगेकत्र क्रियते तदा तदैक्यं गुणग्रहैक्याधिकं भवति तेन ग्रहसंख्यया गुणयुतया विभज्यते—यदा चेष्टगुणितैर्ग्रहैः पृथक् पृथगूनमेकत्र क्रियते तदा तदैक्यं गुणगुणितग्रहैक्योनं भवत्यतो गुणकोनग्रहसंख्यया विभज्यते तदा सर्वग्रहयोगो भवति ततो ग्रहज्ञानं स्वयमेव कार्यमिति ।। ४४-४५ ।।

हि. भा.—दो आदि ग्रहों के योग को पृथक् इष्टगुणित उन ग्रहों करके युत और हीन करना, इष्ट गुणक करके युत और हीन दो आदि ग्रहसंख्या से भाग देने से फल उन ग्रहों का सर्वधन (योग) होता है । इस योग को गुणक से पृथक् गुण देना भगण योग से भाग देने से ग्रह होते हैं ।। ४४-४५ ।।

अलग अलग स्थित ग्रह नही जानते हैं, और उनके योग भी नहीं जानते हैं, लेकिन इतना जानते हैं कि उस ग्रहैक्य में यदि गुणगुणित प्रथम ग्रह को जोड़ते हैं या घटाते हैं तो इतने संख्यक ग्रहों के ऐक्य करना, जितने ग्रह को घटाते हैं उनका भी योग करना, बाद में ग्रहसंख्या से ऐक्य को भाग देने से इष्ट गुणक और ग्रहसंख्या विदित होती है यदि गुणगुणित उद्दिष्टों का योग हो तो गुणक और ग्रहसंख्या के योग हर होता है, यदि गुणगुणित उद्दिष्टों का अन्तर है तो गुणक और ग्रहसंख्या के अन्तर हर होता है, इससे ग्रहैक्य आता है, इस पर से ग्रहज्ञान करना चाहिये ।।

उपपत्ति

यदि ग्रहैक्य को ग्रह संख्या स्थान में रखकर जोड़ते हैं तो ग्रहैक्य ग्रहसंख्या से गुणित होता है, यदि ग्रहैक्य में इष्टगुणित ग्रहों को जोड़ते है तो ग्रहैक्य गुणक और ग्रहों के योग से युत होता है । इसलिये गुणक युत ग्रहसंख्या से भाग देते हैं, यदि ग्रहैक्य में इष्टगुणित ग्रहों को घटाते हैं तो ग्रहैक्य गुणक और ग्रहों के योग करके हीन होता है इस-

लिये वहां गुणकोन ग्रहसंख्या से भाग देते हैं। तब ग्रहैक्यहोता है। इस पर से ग्रहानयन करना चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

इदानीं ग्रहैक्यज्ञानेन पृथक् पृथग् ग्रहानयनमाह ।

पदस्वमिष्टसंगुणैर्ग्रहैर्यु तोनमुद्धृतं
पृथक् पृथग् निजैर्गु णैर्यु तिस्ततो विभाजिता ।
पदप्रमाणरूपकैर्गु णैर्हृ तैर्भु वायुतं
युतोनितैः पदं भवेत्ततो विशेषमानयेत् ॥ ४६ ॥

वि. भा.—पदस्वं (सर्वधनं ग्रहैक्यं वा) इष्टसंगुणैर्ग्रहैः (इष्टगुणगुणितग्रहैः) युतोनं पृथक् पृथक् निजैर्गु णैः (स्वगुणकाङ्कैः) उद्धृतं (भक्तं) तदा युतिर्भवेदर्थात् (एकमारभ्यानवान्ता यावन्तो ग्रहा जिज्ञासितास्तेषां तावतां भगणानां मध्यमग्रहाणां वा यथाक्रममैक्यं कृत्वा पृथक् स्थापयेत्। तानेव पृथक् स्थितान् यया कयाऽपीष्टसंख्यया पृथक् पृथक् सङ्गुणय्य प्रतिराश्येकत्र स्थितेषु ग्रहैक्यं युक्त्वा तदपि प्रतिराश्येकतः सर्वान् योजयेत्। सा युतिशब्दवाच्या) गुणैः (इष्टगुणकैः) युतोनितैः (सहितरहितैः) पदप्रमाणरूपकैः (पदसंख्यकग्रहैः) सा (पूर्वानीता) युतिः, विभाजिता (भक्ता) पदं (सर्वधनं भगणैक्यं वा) भवेत्ततो विशेषं (ग्रहं) आनयेत्। यदीष्टगुणगुणितग्रहायोजितास्तदा ग्रहस्थाने गुणकं युक्त्वा तद्युतिं भाजयेत्। अन्यथा केवलमेकेन युक्तेन ग्रहस्थानेन भाजयेत्तदा ग्रहैक्यं भगणैक्यं वा समागच्छति, तस्मादैक्यात् यथा स्वमुद्दिष्टांस्त्यक्त्वा शिष्टं पूर्वगुणकेन हरेत् योजिता ग्रहभगणास्तन्मध्यमग्रहा वा पृथक् पृथक् सिद्ध्यन्ति। अथवा इष्टसंख्यागुणितान् प्रतिराशि तद्ग्रहैक्यात्त्यक्त्वा शिष्टं प्रतिराश्येक स्थानगमुद्दिष्टत्वेन स्थापयेत्। अपरत्र स्थितं यथाक्रमं योजयेत् सा तद्युतिः। तामेव युतिं पूर्वगुणक हीनैर्ग्रहस्थानैर्भाजयेत्तदा ग्रहैक्यं भवेत्। ततो ग्रहैक्योद्दिष्टयोर्विश्लेषं गुणकेन हरेत् पृथक् पृथग् भगणा ग्रहा वा आगच्छन्तीति ॥ ४६ ॥

हि. भा.—सर्वधन या ग्रहयोग में इष्टगुणितग्रह को जोड़ना या घटाना, अलग अलग अपने गुणाङ्कों से भाग देना तब युति होती है अर्थात् एक से लेकर जितने ग्रह ज्ञातव्य हों उनमें उतने भगणों को या मध्यमग्रहों के यथाक्रम से योग कर अलग रखना चाहिये। उन्हीं पृथक् स्थितों को जिस किसी इष्ट संख्या से पृथक् पृथक् गुणकर एकत्र स्थित प्रतिराशि में ग्रहयोग को जोड़कर उन सब को भी प्रतिराशि में जोड़ना वही युति कहलाती है। पदसंख्यक ग्रह में इष्ट गुणक को जोड़कर या घटाकर जो हो उससे पूर्वानीत युति में भाग देने से सर्वधन या भगणयोग होता है. उस पर से ग्रह को साधन करना।

यदि इष्टगुणगुणित ग्रह जोड़ते हैं तब ग्रहस्थान में गुणक को जोड़कर युति में भाग देना चाहिये। अन्यथा ग्रहस्थान में एक जोड़कर भाग देना चाहिये। तब ग्रहयोग आता है। तब ग्रहयोग और उद्दिष्ट के अन्तर में गुणक से भाग देने से ग्रह होते हैं ॥४६॥

इदानी मिष्टगुणगुणितग्रहद्वयस्य ग्रहत्रयादेर्वेष्टहरभक्तग्रह द्वयस्य ग्रहत्रयादेर्वा योगान्तरं ज्ञात्वेष्टग्रहानयनमाह ।

इच्छाहतोद्धृतानां ग्रहभगणानां युतिर्विशेषो वा ।
कुदिनमन्वितो विहीनः साध्यग्रहपर्ययैः कुदिनभक्तः ॥४७॥

शेषवियुग्युतमस्मात्स्वमृणं चेदन्यपर्ययैर्लब्धम् ।
इष्टभगणैर्युतोना इष्टघ्नहताः स्युरन्यभगणास्ते ॥४८॥

वि. भा.—ग्रहभगणानां (ग्रहपर्ययाणां) इच्छाहतोद्धृतानां (इष्टगुणगुणितानां भक्तानां वा) युतिः (योगः) वा विशेषः (अन्तरं) कुदिनभक्तः (युगकुदिनभाज्यः) शेषवियुग्युतं (शेषेण रहितं सहितं च) कुदिनं कार्यं, अन्यपर्ययैर्लब्धम् (अन्यभगणफलं) स्वमृणं चेत् (यदि प्रश्नाधारेऽन्यभगणफलं धनं ऋणं वा) तदा कुदिनं शेषहीनं, शेषयुतं कुर्यात् । तादृशेषु कुदिनेषु साध्यग्रहपर्ययैः (इष्टग्रहभगणैः) अन्वितः (सहितः) विहीनः (रहितः) अन्यभगणफलं प्रश्नाधारे चेद्धनं तदेष्टग्रहभगणा अपि कुदिनेषु योज्याः, अन्यभगणफलमृणं चेत्कुदिनेषु इष्टग्रहभगणास्त्याज्याः, इष्टगुणभक्तास्तदा ते अन्यभगणा जायन्ते ततोऽन्यग्रहानयनं सुगममिति ॥४७-४८॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगग्रहभगणा इष्टगुणकुदिनैर्युता वा हीनास्तदा तेभ्योऽपि राश्यादिकग्रहः स एव भवति । यतस्तेऽहर्गणगुणा युगकुदिनैर्भक्तास्तदा इष्टसमभगणाधिकोनाः पूर्वभगणा भवन्ति । भगणशेषमपि पूर्वसममेव भवेत् । तेनेष्टगुणगुणितानां ग्रहभगणानां योगान्तरं कुदिनाधिकं चेत्कुदिनैर्भाज्यं तदा शेषप्रमाणमेव ग्रहभगणाः कल्पनीयाः । येभ्यो राश्यादिग्रह इष्टगुणगुणित ग्रहयोगान्तरसम एव भवेत् । यदाऽन्यभगणग्रहो धनं तदाऽन्यभगणयुतशेष इष्टग्रहभगणासमस्तेन तदा शे+अन्यभगण =इष्टभगण ∴ समशोधनेन इभगण — शे=अन्यभगण=इभ — शे + युकुदि (यदा चान्यभगणोत्पन्नग्रहश्चर्णं तदा शे—अन्यभगण=इभगण ∴ शे—इभगण =अन्यभगण=शे—इभगण+युकुदि । अत उपपन्नम् ॥

हि. भा.—इष्ट गुणगुणित या भक्त ग्रहभगणों के योग या अन्तर को युगकुदिन से भाग देने से जो शेष हो उस करके हीन और युत कुदिन को करना चाहिये । यदि प्रश्न के आधार पर अन्यभगणफल धन हो तब तो कुदिन में शेष घटा देना चाहिये, यदि प्रश्न के आधार पर अन्य भगणफल ऋण हो तो कुदिन में शेष को जोड़ देना चाहिये, शेष रहित सहित कुदिन में इष्टग्रहभगण को जोड़ना और घटाना चाहिये, अन्यभगणफल यदि प्रश्नाधार में धन हो तब इष्टग्रहभगण को कुदिन में जोड़ना, यदि अन्यभगणफल ऋण हो तब इष्टग्रहभगण को कुदिन में घटाना चाहिये, इष्टगुणक से भाग देने से अन्यग्रह भगण होता है इस पर से अन्य ग्रह साधन सुलभ है ॥४७-४८॥

उपपत्ति ।

यदि इष्टगुणित कुदिन करके इष्टग्रह भगण को जोड़ते हैं या घटाते हैं तो उस पर से भी राश्यादि ग्रह वही होते हैं । क्योंकि उसको अहर्गण से गुण कर युगकुदिन से भाग देने से इष्टतुल्य भगण करके अधिक और हीन पूर्वभगण होता है । भगणशेष भी पूर्व भगणशेष के बराबर होता है । इसलिए इष्टगुणगुणित ग्रहभगणों के योग या अन्तर कुदिन से अधिक रहने

से कुदिन से भाग देना चाहिये, शेष जो रहे उसी को ग्रहभगण कल्पना करना जिससे राश्यादि-ग्रह इष्ट गुणगुणित ग्रहों के योगान्तर के बराबर हो, जब अन्य भगणग्रहधन है तब अन्य भगण-युत शेष इष्टग्रहभगण के बराबर होता है, इसलिये शेष + अन्यभगण = इभगण, समशोधन करने से अन्यभगण = इभगण — शे = इभगण — शे + युकुदिन । यदि अन्यभगणोत्पन्नग्रह ऋण है तब शेष — अन्यभगण = इभगण अतः शे — इभगण = अभगण = शे — इभगण + युकु अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ४८ ॥

अथ गतचान्द्रदिनान्तकालिकग्रहानयनमाह

गतचन्द्रवासरघ्ना ग्रहभगणायुगशशाङ्कदिनभक्ताः ।
भगणादि द्युचरः स्याद्रजनीकरवासरावधिकः ॥४६॥

वि. भा.—ग्रहभगणाः (युगग्रह पठित भगणाः) गतचन्द्रवासरघ्नाः (गत-चान्द्राहर्गणगुणिताः) युगशशाङ्कदिनभक्ताः (युगपठित चान्द्रदिनभाजिताः) रजनीकरवासरावधिकः (चन्द्रदिनान्तिकः) भगणादिद्युचरः स्यात् (भगणादिग्रहः स्यात्) इति ॥४६॥

अत्रोपपत्तिः

यदि युगचान्द्रदिनैर्युगग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा गतचान्द्रदिनैः किमित्यनु-पातेन भगणादिको ग्रहः समागतस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रभ} \times \text{गतचांदि}}{\text{युचां}}$ परमयं ग्रहः गतचान्द्र दिनान्त कालिक इति स्पष्टमेवेति ॥ ४६ ॥

हि. भा.—युगग्रहभगण को गतचान्द्र दिन से गुण देना युगचान्द्र दिन से भाग देने से भगणादिग्रह होते हैं वे चान्द्रदिनान्त कालिक होते हैं ॥४६॥

उपपत्ति

यदि युगचान्द्र दिन में युगग्रह भगण पाते हैं तो गतचान्द्र दिन में क्या इस अनुपात से भगणादिग्रह आये उनका स्वरूप $= \frac{\text{युग्रभ} \times \text{गचांदि}}{\text{युचां}}$ ये ग्रह चान्द्रदिनान्त कालिक होते हैं ॥४६॥

अथ गतसौरदिनान्तकालिकग्रहानयनमाह

सौरदिनैर्वा गुणिता ग्रहभगणा भाजिता युगार्कदिनैः ।
भगणादिफलं द्युचरो दिनकरगतवासरस्यान्ते ॥५०॥

वि. भा.—ग्रहभगणाः (युगग्रहपठितभगणाः) सौरदिनैः (गतसौराहर्गणैः) गुणिताः, युगार्कदिनैः (युगपठित सौरदिनैः) भाजिताः (भक्ताः) फलं दिनकर-गतवासरस्यान्ते (गतसौरदिनावसाने) भगणादिद्युचरः (भगणादिग्रहः) भवेदिति ॥५०॥

अस्योपपत्तिः

यदि युगसौरदिनैर्युगग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा गतसौराहर्गणैः किमित्यनुपातेन भगणादिको ग्रहस्तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{युग्रहभगण}\times\text{गतसौराहर्गण}}{\text{युसौदि}}$ अयं ग्रहोऽत्रत्याहर्गण (गतसौराहर्गण) न्तकालिको भवेदेवेति ।।५०।।

हि. भा.—ग्रह के युग पठित भगण को गतसौरदिन से गुणकर युगसौरदिन से भाग देने से भगणादि ग्रह होते हैं, ये गतसौर दिनान्तकालिक होते हैं ।। ५० ।।

उपपत्ति ।

यदि युगसौर दिन में युगग्रहभगण पाते हैं तो गतसौर दिन में क्या इस अनुपात से भगणादिग्रह आये, $\frac{\text{युगग्रहभगण}\times\text{गतसौरदिन}}{\text{युगसौरदि}}$ = गतभगणादिग्रह । ये ग्रह गतसौर दिनान्त कालिक होते हैं । ग्रह अहर्गणान्तकालिक आते हैं, यहां अहर्गण गतसौरदिन है इसलिये ग्रह गतसौर दिनांतकालिक होंगे ।। ५० ।।

इदानीं देवासुरयोरुदयास्तकालिकग्रहानयनमाह ।

यातार्काब्दाभ्यस्ता द्युचरभसङ्घा युगार्कवर्षहृताः ।
मण्डलपूर्वः खचरः सुरासुरार्कोदयास्तसमये स्यात् ।। ५१ ।।

वि. भा.—द्युचरभसङ्घाः (युगग्रहभगणाः) यातार्काब्दाभ्यस्ताः (गतसौरवर्षगुणिताः) युगार्कवर्षहृताः (युगसौरवर्षभक्ताः) तदा सुरासुरार्कोदयास्तसमये (देवराक्षसोदयास्तकाले) मण्डलपूर्वः खचरः (भगणादिग्रहः) भवेदिति ।। ५१ ।।

अस्योपपत्तिः ।

यदि युगसौरवर्षैर्युग ग्रह भगणा लभ्यन्ते तदा गतसौरवर्षैः किमित्यनुपातेन गतभगणादिको ग्रहस्तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{युग्रभगण}\times\text{गतसौवर्ष}}{\text{युसौव}}$ अयं ग्रहो गतसौरवर्षान्तकालिकः (देवराक्षसाहोरात्रान्तकालिकः) भवेदिति ।। ५१ ।।

हि. भा.—ग्रह के युगभगण को गतसौर वर्ष से गुणकर युगसौरवर्ष से भाग देने से भगणादिग्रह गतसौरवर्षान्तकालिक (देव और राक्षस के अहोरात्रान्तकालिक) होते हैं ।।५१।।

उपपत्ति

यदि युगसौरवर्ष में युगग्रहभगण पाते हैं तो गतसौर वर्ष में क्या इस अनुपात से गतसौरवर्षान्तकालिक ग्रह आते हैं $\frac{\text{युग्रभगण}\times\text{गसौव}}{\text{युसौव}}$ = भगणादि ग्रह ।। ५१ ।।

इदानीं बार्हस्पत्यवर्षान्तिकालिकग्रहानयनं ब्रह्मदिनादिकालिकग्रहानयनं चाह ।

गुरुगतवर्षभवा गुरुवर्षमुखे ग्रहाः कदिवसादौ ।
साध्या मृदूच्चपाता ग्रहाश्च मीनाजसन्धिस्थाः ।। ५२ ।।

वि. भा.—गुरुगतववर्षभवा ग्रहाः (बृहस्पतिगतवर्षसम्बन्धिनो ग्रहाः) गुरुवर्षमुखे (बृहस्पतिवर्षादौ) भवन्ति । कदिवसादौ (ब्रह्मदिनादौ) मीनाजसन्धिस्थाः (अश्विन्यादौ रेवत्यन्ते वा) मृदूच्चपाताः (मन्दोच्चपातादयः) ग्रहाश्च साध्या इति ।। ५२ ।।

हि. भा.—बृहस्पति के गत वर्ष सम्बन्धी ग्रह बृहस्पति के वर्षादि में होते हैं अर्थात् बृहस्पति के वर्षान्तिकालिक होते हैं । ब्रह्मदिनादि में अश्विन्यादि या रेवत्यन्त में मन्दोच्च पातादि और ग्रहों के साधन करना चाहिये ।। ५२ ।।

इदानीं कलियुगादौ ग्रहानयनमाह

स्वखहृतलब्धयुतभगणाः कल्पादौ ते ग्रहादयो नन्दाः ।
भगणघ्नाः खखखाभ्रेन्दु हृतलिप्तायुताः कलियुगादौ ।।५३।।

वि. भा.—स्वखहृतलब्धयुतभगणाः (स्वशून्यभक्तलब्धयुतभगणाः) कल्पादौ ते ग्रहादयः स्युः । नन्दाः (नव) भगणघ्नाः (कल्पभगणगुणिताः) खखखाभ्रेन्दु (१००००) हृतलिप्तायुताः (१०००० भक्तकलासहिताः) तदा कलियुगादौ ग्रहादयो भवन्ति ।।५३।।

अस्योपपत्तिः

द्वापरान्तकालिकग्रहाद्यानयनार्थं सत्ययु + त्रेतायु + द्वापर=३८८८००० कल्पवर्षाणि = ४३२०००००० तदोऽनुपातेन ।। यदि कल्पवर्षैः कल्पोक्तग्रहादि भगणा लभ्यन्ते तदै ३८८८००० भिः किमित्यनुपातेन द्वापरान्तकालिका ग्रहाद्यास्तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ३८८८०००}{४३२००००००}$ अपवर्त्तनेन

$\frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ९}{१००००}$ =द्वापरान्तकालिकग्रहा ध्रुवसंज्ञकाः । तथा अहर्गण—

द्वापरान्तहर्गण अस्मादुग्रहादिप्रमाणान्यानीय यदि द्वापरान्तग्रहे ध्रुवाख्ये योज्यते तदा कल्यादौ ग्रहाद्या भवन्तीति अत्र स्वखहृतलब्धयुतभगण इत्ययुक्तं प्रतिभाति ।।५३।।

हि. भा.—अपना शून्य भक्त फल करके युतभगण कल्पादि में ग्रहादि होते हैं ।। नौगुणित भगण को १०००० इतने से भाग देने से जो फल हो उसको उसमें जोड़ने मे कलियुगादि में ग्रहादि होते हैं ।।

उपपत्ति

सत्ययु+त्रेतायु+द्वापरयु=३८८८०००, कल्पवर्षप्रमाण=४३२०००००० इस पर से अनुपात करते हैं कि यदि कल्पवर्ष में कल्पग्रहादिभगण पाते हैं तो ३८८८००० इसमें क्या इस अनुपात से द्वापरान्त में ग्रहादि प्रमाण आया ।

$$\frac{\text{ग्रहादि भगण} \times ३८८८०००}{४३२००००००० } = \frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ३८८८}{४३२००००} = \frac{\text{ग्रहादिभगण} \times ९}{१००००}$$

अथवा अहर्गण-द्वापरान्ताहर्गण इस पर से ग्रहादि साधन कर द्वापरान्तकालिक ग्रहादि में जोड़ने से कलयुगादि में ग्रहादि होते हैं। अथवा पूर्वप्रदर्शित फल को कल्पादि ग्रहादि में जोड़ने से कलियुगादि में ग्रहादि होते हैं। यहां "स्वखहृतलब्ध युतभगणाः" यह पाठ ठीक नहीं मालूम होता है ॥ ५३ ॥

इदानीं त्रैराशिकानीतपदार्थेषु लघुकरणं भाज्यभाजकयोर्दृढत्वलक्षणञ्चाह।

त्रैराशिकेन सर्वं ज्ञाताज्ज्ञेयं प्रसाधयेद्बहुना।
अपवर्त्तितैर्लघुः स्याद् गुणहारैरेतदेव पूर्वोक्तम् ॥५४॥
अन्योन्यभक्तशिष्ट्या तावपवर्त्यौ लघू दृढ़कसंज्ञौ।
कल्पादाविन्दूच्चे त्रिभं क्षिपेत्षड्गृहाणि शशिपाते ॥५५॥

वि. भा.—बहुना त्रैराशिकेन (अनेकत्रैराशिकद्वारा) ज्ञातात् (विदितविषयात्) ज्ञेयं (ज्ञातव्यं) सर्वं प्रसाधयेत् (आनयनं कृत्वाऽऽनयेत्) अपवर्त्तितैः (समाङ्कभक्तैः) (गुणकभाजकैः) लघुः स्यात् (तत्स्वरूपमल्पं भवति) एतदेव पूर्वोक्तम्। अन्योन्य-भक्तशिष्ट्या (परस्परभजनावशेषेण) तौ लघू (गुणकहारौ) अपवर्त्यौ (भजनीयौ) तदा तौ दृढ़कसंज्ञौ भवतः। कल्पादौ (सृष्ट्यादौ) इन्दूच्चे (चन्द्रमन्दोच्चे) त्रिभं (राशित्रयं) क्षिपेत् (योजयेत्) शशिपाते (चन्द्रपाते) षड्गृहाणि (षड्राशयः) क्षिपेयुरिति ॥५४-५५॥

हि. भा.—अनेक त्रैराशिद्वारा विदित पदार्थ से ज्ञातव्य सब विषय का साधन करना, गुणक और हर में समाङ्क से भाग देने से उसका स्वरूप छोटा होता है। यही पहले कहा गया है। गुणक और हर इन दोनों में परस्पर भाग देने से जो शेष रहता है उससे लघु गुणक और लघु हर को भाग देने से जो होता है अर्थात् गुणक और हर में परस्पर भाग देने से जो शेष रहता है उससे भक्त गुणक और हर दृढ़ संज्ञक होते हैं। कल्पादि में चन्द्र-मन्दोच्च में तीन राशि जोड़ना चाहिये और चन्द्रपात में छः राशि जोड़ना, इति ॥५४-५५॥

इदानीं ग्रहादीनां क्षेपानाह।

द्वौ धृतिरेकशरा नगरामा क्षेप्या गृहादि रवितुङ्गे।
वेदाधयः खबाणाः खशराः क्षेप्या गृहादि कुजमन्दे ॥५६॥
मुनयोऽष्ट द्विवेदाः कृतेषवो भादि चन्द्रजस्योच्चे।
विषया द्विदृशोऽष्टकृताः कुगुणा राश्यादि जीवोच्चे ॥ ५७॥
यमलौ नखास्त्रयोदश यमलायोज्याः सितस्य भाद्युच्चे।
मुनयोऽक्षदिशोऽङ्गशरा देयाः शनेर्गृहाद्युच्चे ॥५८॥
ककुभो नखादिशोऽर्का राश्याद्यसृजः प्रयोजयेत्पाते।
रुद्रा दिशोऽङ्कचन्द्राः कृतेषवो भादिबुधपाते ॥५९॥
अष्टौ नखाः खं वा निपाते भादिसंयोज्यम्।
काद्युभव कुदिनाप्ताः कलिगतदिनपर्यया हतास्ते स्युः ॥६०॥

इति सर्वतोभद्रश्चतुर्थः ॥

वि. भा.—द्वौ (२) धृतिः (१८) एकशराः (५१) नगरामाः (३७) इति राश्यादिका गृहादि रवितुङ्गे राश्यादि रविमन्दोच्चे) क्षेप्याः (योज्याः)। तथा

वेदाः (४) धयः (५) खबाणाः (५०) खशराः (५०) गृहादिकुजमन्दे (राश्यादि मङ्गलमन्दोच्चे) क्षेप्याः (योज्याः) ॥ ५६ ॥

मुनयः (७) अष्टयः (१६) द्विवेदाः (४२) कृतेषवः (५४) भादिचन्द्रजस्योच्चे (राश्यादि बुधमन्दोच्चे) क्षेप्याः (योज्याः)।

विषयाः (५) द्विदृशः (२२) अष्टकृताः (४८) कुगुणाः (३१) राश्यादिजीवोच्चे (राश्यादि बृहस्पति मन्दोच्चे) योज्याः ।. ५७ ॥

यमलौ (२) नखाः (२०) त्रयोदश (१३) यमलाः (२) सितस्य (शुक्रस्य) भाद्युच्चे (राश्यादि मन्दोच्चे) योज्याः ।

मुनयः (७) अक्ष (५) दिशः (१०) अङ्गशराः (५६) शनैः (शनैश्चरस्य) ग्रहाद्युच्चे (राश्यादि मन्दोच्चे) देयाः (क्षेप्याः) ॥ ५८ ॥

ककुभः (१०) नखाः (२०) दिशः (१०) अर्काः (१२) इति राश्यादि, असृजः पाते (कुजस्य पाते) प्रयोजयेत् ।

रुद्राः (११) दिशः (१०) अङ्कचन्द्राः (१९) कृतेषवः (५४) भादिबुधपाते (राश्यादि बुधपाते) क्षेप्याः ॥ ५९॥

वा अष्टौ (८) नखाः (२०) खं (०) राश्यादिपाते योज्यम् । ते भगणाः (ब्रह्मदिनादिग्रहादि भगणाः) कलिगतदिनपर्ययाहता (कलिगतदिनभगणगुणाः) ब्रह्मदिनोत्पन्न कुदिन भक्ताः) तदा कलिगतदिनान्तिकास्ते ग्रहाद्या भवन्तीति ॥६० ॥

अत्र युक्तिस्तु स्पष्टैवास्ति ॥ यथा—

सौरवर्षान्ते ग्रहानयनाय कल्पगताहर्गणस्य खण्डद्वयं (कल्पादितः कल्यादिं यावत्प्रथमखण्डं कलियुगादित इष्टवर्षपर्यन्तं द्वितीयं खण्डं प्रकल्प्यानुपातः क्रियते यदि कल्पकुदिनैर्ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा कल्पगताहर्गणैः किमित्यनुपातेनाभीष्टवर्षान्ते भगणादिग्रहः =

$$\frac{\text{कल्पात्कल्यादिं यावदहर्गण} \times \text{ग्रभ}}{\text{कक}} + \frac{\text{कलिगताहर्गण} \times \text{ग्रभ}}{\text{कक}}$$ अत्र प्रथमखण्डे

यद्भगणशेषं तस्यैव नाम क्षेपः। एतन्नियमेन सर्वेषां ग्रहादीनां क्षेपा उत्पाद्याः कलिगताहर्गणानां ग्रहभगणानां घातात् स्वस्वपठितक्षेपयुतात्कल्पकुदिनैर्भक्ताद् भगणादिफलं रविमण्डलान्तिका ग्रहा भवन्ति, अत्र मेषादिद्युगणफलेन (लघ्वहर्गणोत्पन्नग्रहेण) योजनेनेष्टदिने ग्रहा भवन्ति, ग्रहानयनार्थमेव क्षेपाणां पाठः कृतो वर्षसम्बन्धेनाप्यनुपातेन भगणादिग्रहानयनं भवितुमर्हति पूर्वमहर्गणेन यथाऽनुपातोऽभिहितस्तथैव वर्षैरप्यनुपातः कार्यो यथा—

$\frac{\text{कल्पात्कल्यादिं यावद्वर्ष.ग्रभ}}{\text{कल्पवर्ष}} + \frac{\text{कलेर्गतव} \times \text{ग्रभ}}{\text{कव}}$ पूर्वं कल्पगताहर्गणस्य खण्डद्वयं कृतमत्र कल्पगतवर्षाणां खण्डद्वयं कृतमन्यत्पूर्ववदिति ॥

इति श्रीवटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे सर्वतोभद्रनामकश्चतुर्थोऽध्यायः ।

हि. भा.— राश्यादि रवि मन्दोच्च में २ । १८ । ५१ । ३७ ये राश्यादि जोड़ना चाहिये ।

,, मङ्गल मन्दोच्च में	४ ।	५ ।	५० ।	५०	ये राश्यादि	जोड़ना	चाहिये ।
,, बुधमन्दोच्च में	७ ।	१६ ।	४२ ।	५४	,,	,,	,,
,, बृहस्पति मन्दोच्च में	५ ।	२२ ।	४८ ।	३१	,,	,,	,,
,, शुक्र मन्दोच्च में	२ ।	२० ।	१३ ।	२	,,	,,	,,
,, शनैश्चरमन्दोच्च में	७ ।	५ ।	१० ।	५६	,,	,,	,,
,, मङ्गल पात में	१० ।	२० ।	१० ।	१२	,,	,,	,,
,, बुधपात में	११ ।	१० ।	१६ ।	५४	,,	,,	,,

अथवा ८ । २० । ० राश्यादि पात में जोड़ना चाहिये । ब्रह्मदिनादि में ग्रहादि भगणों को कलिगत दिन भगण से गुणकर ब्रह्मदिनादिक कुदिन से भाग देने से कलिगत दिनान्तकालिक ग्रहादि होते हैं ॥ ५६-६०

यहां युक्ति स्पष्ट है । जैसे —

सौर वर्षान्त में ग्रहानयन के लिये कल्पगताहर्गण के दो खण्ड (कल्पादि से कल्यादि तक प्रथमखण्ड, कलियुगादि से इष्टवर्षपर्यन्त द्वितीय खण्ड) मानकर अनुपात करते हैं । यदि कल्पकुदिन में ग्रहभगण पाते हैं तो कल्पगताहर्गण में क्या इस अनुपात से इष्टवर्षान्त में भगणादिग्रह $= \frac{\text{कल्पादि से कल्यादि तक अहर्गणग्रभ}}{\text{ककु}} + \frac{\text{कलिगताहर्गण} \times \text{ग्रभ}}{\text{ककु}}$ यहां प्रथमखण्ड में जो भगण शेष रहता है उसी के नाम क्षेप है । इस नियम से सब ग्रहादियों के क्षेप लाना चाहिये । वर्ष से भी अनुपात हो सकते हैं ।जैसे —

$\frac{\text{कल्पादि से कल्यादि तक वर्ष.ग्रभ}}{\text{कव}} + \frac{\text{कलिगतव.ग्रभ}}{\text{कव}}$ पहले कल्पगताहर्गण के दो खण्ड किये थे । यहां कल्पगतवर्ष के दो खण्ड किये हैं । शेष बात पूर्ववत् ॥

इति श्री वटेश्वरसिद्धान्त मे मध्यम अधिकार में सर्वतोभद्र नामक चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पञ्चमोऽध्यायः

अथप्रत्यब्दशुद्धिः

इदानीमब्दादावधिदिनादि-दिनादिक्षयाहादिसाधनमाह ।

शुद्धिशब्दस्य शोधनारिक्तैकत्रीकरणादयोऽर्था अपि सम्भवन्ति, तेष्वत्रैकत्रीकरणार्थ एवास्ति, तथाहि, इष्टवर्षान्ते प्रत्यब्दसम्बन्धीनां सावनाद्यवमादीनामेकत्रीकरणं प्रत्यब्दशुद्धिः, ततो यस्मिन् कुदिनेऽब्दप्रवेशः स तदब्दपतिरिति परिभाषां हृदि संधार्य कुदिनानामेकत्रितानां सप्ततष्टितानां सप्ताल्पो यः सावयवो दिनगणोऽवमशेषो वा पृथक्-पृथक् सप्ततष्टितानामेवैकत्रितानां सम्भवे सति पुनः सप्ततष्टितानां तेषां योऽवशेषस्तत्र रव्यादिगणनया यो वारः सोऽब्दपतिरित्याचार्यो वदति ।

वेदाग्नित्रिगुणैस्त्रिभूगुणविलैर्भू पक्षखाङ्काश्विभिः ।
याताब्दा गुणिताः क्रमादपहृताः खाभ्राङ्गनन्दोन्मितैः ॥
लब्धान्यध्यहवासरावमगणा याताः खखाङ्गाङ्ककैः ।
शेषेभ्यो घटिका फलानि च भवेयुः शेषकेभ्योऽपि हि ॥ १ ॥

वि. भा.—याताब्दाः (गतसौरवत्सराः) वेदाग्नित्रिगुणैः (३३३४ एभिः) त्रिभूगुणविलैः (८३१३ एभिः) भूपक्षखाङ्काश्विभिः (२९०२१ एभिः) गुणिताः क्रमात् (क्रमशः) खाभ्राङ्गनन्दोन्मितैः (९६०० एभिः) अपहृताः (भक्ताः) लब्धानि (फलानि) याताः (गताः) अध्यहवासरावमगणाः (गताधिदिनादि सावनदिनादि-क्षयदिनाद्याः) भवन्ति, पुनः खखाङ्गाङ्ककैः (९६०० एभिः) शेषेभ्यः फलानि घटिका भवेयुः, तच्छेषकेभ्योऽपि पूर्ववत्फलानि भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

एकस्मिन् सौरवर्षे पठित सावनदिनादि—क्षयदिनाद्यधिदिनादीनि ९६०० वर्षैराचार्य पठिताधिदिनादि गुणका उत्पद्यन्ते, अथवा भास्करोक्त प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनाद्यवमाद्यानयनवदत्रापि कार्यं किन्तु सर्वत्र (स्थानत्रये) खाभ्ररसनवभिः सवर्णनं कार्यमिति ॥ १ ॥

वि. भा.—प्रत्यब्दशुद्धि नाम के अध्याय को प्रारम्भ करते हैं ।

शुद्धि शब्द का अर्थ शोधन याने घटाना होता है किन्तु उसके अलावा एकत्रीकरण (एक जगह मिलाना) आदि अर्थ भी होते हैं। उन अर्थों में यहां एकत्रीकरण ही अर्थ है, इष्टवर्षान्त में प्रतिवर्ष सम्बन्धी सावनादि अवमादियों का एकत्रीकरण करने को "प्रत्यब्धशुद्धि" कहते हैं। जिस दिन में वर्षप्रवेश होता है वही वर्षपति होता है यह परिभाषा है। इसको

अपने हृदय में रखकर एकत्रित कुदिनों को सात से भाग देने से सात से अल्प अहर्गण या अवम शेष पृथक् पृथक् सात से विभक्त एकत्रित उन सब के जो शेष रहते हैं रवि आदि गणना से जो दिन आता है वही वर्षपति होता है ये बातें आचार्य लोग कहते हैं ।

गतसौरवर्ष को तीन जगह रखकर ३३३४, ८३१३, २९०२१ इसे गुणकर क्रमशः ९६०० इतने से भाग देने से गताधिदिन, गतसावनदि, गतावमदिन होते हैं, शेष में ९६०० इनसे जो फल होती है घटी होती है, पुनः उसके शेष से पूर्ववत् ही पलादि फल होते हैं ॥१॥

उपपत्ति

एक वर्ष में पठित सावन दिनादि, क्षयदिनादि, अधिदिनादियों ९६०० वर्षों में आचार्य पठित गुणाङ्क उत्पन्न होते हैं। अथवा भास्करकथित प्रत्यब्दशुद्धिस्थ दिनादि क्षयाहादि की तरह यहां भी करना चाहिये लेकिन तीनों स्थानों में ९६०० इनसे सवर्णन करना चाहिये ॥१॥

इदानीमधिमासानयनं शुद्धिं चाह ।

हीनराशिदिनसंयुतिर्युता दिग्घ्नवत्सरगणेन भाजिता ।
खाग्निभिस्त्वधिकमासकाः फलं शुद्धिरत्र विकलं दिनादिकम् ॥२॥

वि. भा.—हीनराशिदिनसंयुतिः (क्षयाहादि दिनादियुतिः) दिग्घ्नवत्सरगणेन (दशगुणित गतवर्षसमूहेन) युता (सहिता) खाग्निभिः (त्रिंशद्भिः) भाजिता (भक्ता) फलं (लब्धं) अधिकमासकाः स्युः । विकलं दिनादिकं (दिनाद्यवशिष्टं त्रिंशद्भक्तावशिष्टं वा) अत्र शुद्धिः (शुद्धिसंज्ञं दिनं भवति) ॥२॥

अस्योपपत्तिः

एकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्यम्=३६५ । १५ । ३० । २२ । ३०=३६५
+१ वर्ष संदिनाद्यं

एकस्मिन् वर्षेऽवमानि=५ । ४८ । २२ । ७ । ३० =५+१ वर्षसं अवमघ

अत एकवर्षे चान्द्राहाः=३७१ । ३ । ५२ । ३० । ०=३७०+१ वर्षसंदि
+१ वर्षसं अवमदि

एकस्मिन् वर्षे सौराहाः=३६० । =३६० ।

अनयोरन्तरेण

एकस्मिन् वर्षेऽधिदिनानि=११ । ३ । ५२ । ३० । ०=१०+१ वर्षसं दिनादि
+१ वर्षसं अवम

ततोऽनुपातेन

$$\text{गताधिमासाः} = \frac{\text{१ वर्षसं अधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{\text{१ वर्ष} \times \text{३०}}$$

$$= \frac{(१० + १ \text{ वर्षसंदिनादि} + १ \text{ वर्षसंअवमादि}) \text{ गव}}{३०}$$

$$= \frac{१० \text{ गव} + १\text{वर्षसंदिनादि} \times \text{गव} + १ \text{ वर्षसंअवमादि} \times \text{गव}}{३०}$$

$$= \frac{१० \text{ गव} + \text{गतवर्षसंदिनादि} + \text{गतवर्षसंअवमादि}}{३०}$$

अत्राधिशेषस्य शुद्धिसंज्ञा कृताऽऽचार्येणैतावताऽचार्योक्तमुपपद्यते । सिद्धान्त-शिरोमणौ भास्कराचार्येणाऽप्येतदनुरूप एव प्रकारोऽभिहितः । यथा, दिनादिक्षयाहादिदिग्घ्नाब्दयोगः खरामैर्हृताः स्युः प्रयाताधिमासाः । भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्राव-शिष्टमित्यादि, सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनापि "दशगुणाब्ददिनावम संयुतिः खदहनैर्विहृता अधिमासकाः । भवति शुद्ध्यभिधं खलु शेषकमित्यादि" वटेश्वराचार्योक्तानुरूपमेव कथ्यते इति ॥२॥

वि. भा.—क्षयाहादि और दिनादि के योग में दशगुणित गतवर्ष जोड़ कर तीस से भाग देने से अधिमास होता है, अवशेष शुद्धिसंज्ञक है ॥ २॥

उपपत्ति

एक वर्ष में सावनदिनादि = ३६५ । १५ । ३० । २२ । ३० = ३६५ + १ वर्षसंदिनादि

एक वर्ष में अवम = ५ । ४८ । २२ । ७ । ३० = ५ + १ वर्षसंक्षयाहादि

दोनों के योग करने से

एक वर्ष में चान्द्रदि = ३७१ । ३ । ५२ । ३० । ० = ३७० + १ वर्षसंदिनादि + १ वसंक्षयाहादि

एक वर्ष में सौरदि = ३६० । = ३६०

दोनों के अन्तर करने से

एक वर्ष में अधिदिन = ११ । ३ । ५२ । ३० । ० = १० + १ वर्ष संदिनादि + १ वर्षसंक्षयाहादि

अब अनुपात से

$$\text{गताधिमास} = \frac{१ \text{ वर्षसंअधिदिन} \times \text{गतवर्ष}}{१ \text{ वर्ष} \times ३०}$$

$$= \frac{(१० + \text{ वर्षसंदिनादि} + १ \text{ वर्षसंक्षयहादि}) \text{ गव}}{३०}$$

$$= \frac{१० \text{ गव} + १ \text{ वर्षसंदिनादि} \times \text{गव} + १ \text{ वर्षसंक्षयाहादि} \times \text{गव}}{३०}$$

$$= \frac{१० \text{ गव} + \text{ गतवर्षसंदिनादि} + \text{ गतवर्षसंक्षयाहादि}}{३०}$$ यहां आचार्य अधिशेष का नाम 'शुद्धि' रखा है । सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य भी इसी तरह कहते हैं, जैसे—

"दिनादि क्षयाहादि दिग्घ्नाब्दयोगः खरामैर्हृतः स्युः प्रयाताधिमासाः भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्रावशिष्टमित्यादि" और सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। जैसे—

"दश गुणाब्द दिनावम संयुतिः खदहनैर्विहृता अधिमासकाः। भवति शुद्धयभिधं खलु शेषकमित्यादि" श्रीपति के कथनानुसार ही वटेश्वराचार्य और भास्कराचार्य ने भी अधिमासानयन किया है, कुछ भी अन्तर नहीं हैं इति ॥२॥

इदानीं पुनरप्यधिमासानयनं शुद्धिं चाह।

अध्यहानिशिवनिघ्नहायनैरन्वितानि खदहनोद्धृतानि वा।
लभ्यतेऽधिकगणोऽवशिष्टकं शुद्धिभद्रमथवा दिनादि यत् ॥३॥

वि. भा.—अध्यहानि (अधिदिनानि) शिवनिघ्नहायनैः (एकादशगुणितगतवर्षैः) अन्वितानि (युक्तानि) खदहनोद्धृतानि (त्रिंशद्भक्तानि) वा (अथवा) अधिकगणः (अधिकमासगणः) लभ्यते (प्राप्यते) अवशिष्टकं (शेषं) दिनादि यत् (दिनाद्यवयवं यत्) शुद्धिभद्रम् (शुद्धिसंज्ञकम्) इति ॥ ३ ॥

अस्योपपत्तिः।

पूर्वश्लोकोपपत्तिप्रदर्शितान्येकवर्षेऽधिदिनानि = ११। ३। ५२। ३०। ०

$$\text{ततोऽनुपातेन गताधिमासाः} = \frac{(११।३।५२।३०।०)\text{गव}}{१ \text{ वर्ष} \times ३०} =$$

$$= \frac{११\text{गव} + (३।५२।३०।०\text{ गव})}{३०} = \frac{११\text{ गव} + \text{गतवर्ष सं अधिदिन}}{३०} = \text{गताधिमास}$$

एतावताचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ ३ ॥

हि. भा.—अधिदिन को ग्यारह गुणित गतवर्ष में जोड़कर तीस से भाग देने से अधिमास होता है। दिनादि शेष जो रहता है वह शुद्धिभद्र (शुद्धिसंज्ञक) है ॥

उपपत्ति।

पूर्व श्लोक की उपपत्ति में प्रदर्शित एक वर्ष में अधिदिन = ११। ३। ५२ ३०। ०

$$\text{इससे अनुपात द्वारा गताधिमास} = \frac{(११।३।५२।३०।० \text{ गव}}{१ \text{ वर्ष} \times ३०}$$

$$= \frac{११ \text{ गव} + (३।५२।३०।०) \text{ गव}}{३०} = \frac{११ \text{ गव} \times \text{गतवर्ष सं अधिदिन}}{३०}$$

इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥ ३ ॥

इदानीं पुनस्तदेवाह।

गोवसु त्रिरसषड्हताः समाः खाभ्रखाभ्रधृति भाजिताः फलम्।
मासकाद्यधिकसंज्ञकं तथा शुद्धिसंज्ञमथवा दिनादिकम् ॥ ४ ॥

वि. भा.—समाः (गताब्दाः) गोवसुत्रिरसषड्हताः (६६३८९ गुणिताः) खाभ्रखाभ्रधृतिभाजिताः (१८०००० भक्ताः) फलं (लब्धं) मासकाद्यधिकसंज्ञकं (अधिमासनामकं) भवेत्। दिनादिकमवशिष्टं शुद्धिसंज्ञकमिति ॥ ४ ॥

अस्योपपत्तिः।

यदि युगरविभगणैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदा गतवर्षैः किमित्यनुपातेन गताधिमासास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गतवर्ष}}{\text{युगरविभगण}} = \frac{१५९३३३६ \times \text{गव}}{४३२००००}$

हरभाज्यौ चतुर्विंशत्यापवर्त्तितौ तदा $\frac{६६३८९ \times \text{गव}}{१८००००} =$ गताधिमासाः।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥

हि. भा—गतवर्ष को (६६३८९) इससे गुणकर १८०००० इतने से भाग देने से अधिमास होता है। दिनादिशेष का नाम शुद्धि है ॥

उपपत्ति

यदि युगरवि भगण में युगाधिमास पाते हैं तो गतवर्ष में क्या इस अनुपात से गताधिमास आता है, $\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{गतवर्ष}}{\text{युरविभगण}} = \frac{१५९३३३६ \times \text{गव}}{\text{युगभगण} = ४३२००००}$ यहां हर और भाज्य को चौबीस (२४) से अपवर्तन देने से $\frac{६६३८९ \times \text{गव}}{१८००००} =$ गताधिमास, इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥ ४ ॥

इदानीं पुनरपि तदेवाह।

रुद्रनिघ्न निजहार संयुतैरध्यहानि गुणकैः प्रसाधयेत्।
तानि खाग्निभजिताधिमासका वाऽवशिष्टदिवसा विशुद्धयः ॥ ५ ॥

वि. भा.—अध्यहानि (अधिदिनानि) रुद्रनिघ्ननिजहारसंयुतैः (अधिदिनगुणहारैः) प्रसाधयेत्, तानि (अधिदिनानि) खाग्निभजिताधिमासकाः (अधिदिनानि त्रिशद्भक्तानि तदाऽधिमासकाः) भवन्ति, अवशिष्टदिवसाः (शेषदिनानि) विशुद्धयः (शुद्धिसंज्ञकाः) भवन्तीति ॥५॥

अत्रोपपत्तिस्तु अस्यैवाध्यायस्य तृतीयश्लोकोपपत्तिं हृदि निधाय बोध्याऽत्र किमपि विशेषं वस्तु न कथयति ग्रन्थकार इति ॥ ५ ॥

हि. भा—अधिदिन अपने गुणक हर आदि के द्वारा साधन करना, अधिदिन को तीस से भाग देने से अधिमास होता है। शेष दिन शुद्धिसंज्ञक है ॥५॥

उपपत्ति

इसकी उपपत्ति इसी अध्याय के तीसरे श्लोक की उपपत्ति को मन में रखकर समझनी चाहिये। कुछ विशेष बातें ग्रन्थकार नहीं कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ वर्षपतिज्ञानमाह ।

वत्सरान्वितदिनेषु सप्तभिर्भक्तशेषमिह वत्सराधिपः ।
स्युस्ततो रविभसंघकान्तिका मध्यमा दिविचराः सुखेन हि ॥ ६ ॥

वि. भा.—वत्सरान्वितदिनेषु (गताब्ददिनयोगेषु) सप्तभिर्भक्तं शेषं वत्सराधिपः (वर्षेशः) भवति । मध्यमादिविचराः (मध्यमग्रहाः) रविभसङ्घकान्तिकाः (रविभगणान्तकालिकाः) सुखेन स्युरिति ॥ ६ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथकस्मिन् वर्षे सावनदिनाद्याः=३६५ । १५ । ३१ । १५=३६५+दिनानि, तत इष्टवर्षान्ते सावनदिनाद्यम्=३६५×गव+गव×दिनादि,=कल्पादितोऽभीष्ट वर्षान्ते सावयवः सावनाहर्गगणः, अत्र प्रथमखण्डे सप्तभक्ते यच्छेषं द्वितीय खण्डेऽपि सप्तभक्ते यच्छेषं तयोरेकत्रीकरणं भवति, एतेन रव्यादि वारगणनया वर्षपतिज्ञानं सुखेनैव भवेदिति ॥ शेषस्य वासना सुगमैव यतः कल्पवर्षैः कल्पग्रह-भगणा लभ्यन्ते तदा गतवर्षैः किमित्यनुपातेन सौरभगणान्ते ग्रहाः समागच्छन्तीति ॥ ६ ॥

हि. भा.—गतवर्ष और दिन के योग में सात से भाग देने से जो शेष रहता है वह वर्षपति होता है। और रविभगणान्त में मध्यमग्रह सुगम ही से होते है ॥ ६ ॥

उपपत्ति ।

एक वर्ष में सावनदिनादि=३६५ । १५ । ३१ । १५ । ०=३६५+दिनादि इस पर से इष्टवर्षान्त में सावनदिनादि=३६५×गव+गव×दिनादि=कल्पादि से इष्टवर्षान्त में सावयव सावनाहर्गण, यहां प्रथमखण्ड में सात से भाग देने से जो शेष रहता है और द्वितीय खण्ड में सात से भाग देने से जो शेष रहता है दोनों के संमिश्रण हैं इससे रवि आदि वारगणना से वर्षपति ज्ञान सुगम ही है । अवशिष्ट की उपपत्ति सरल ही है क्योंकि कल्पवर्ष में कल्पग्रह-भगण पाते हैं तो गतवर्ष में क्या इस अनुपात से रवि भगणान्त में मध्यमग्रह आते हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तदेवाह ।

पञ्चवत्सरहतिर्युतावमैर्वर्जिताऽधिकदिनैर्हृतानगैः ।
शेषसप्त विवरं समाधिपो वा दिनाधिप समाधिपः स्फुटः ॥७॥

वि. भा.—पञ्चवत्सरहतिः (पञ्चगुणितगतवत्सरः) अवमैः (क्षयदिनैः) युता (सहिता) अधिकदिनैः (अधिकमासदिनैः) विवर्जिता (रहिता) नगैः (सप्तभिः) हृता (भक्ता) शेषसप्तविवरं समाधिपः (वर्षपतिः) अथवा दिनाधिप समाधिपः स्फुटः (दिनपतिर्वर्षपतिश्च) स्फुटः कथ्यतेऽग्रे इति ॥७॥

अस्योपपत्तिः ।

अथैकवर्षे क्षयाहाद्यम्=५ । ४८ । २२ । ७ । ३० ततो गतवर्षसम्बन्धि क्षयाहाद्यम्=गव (५ । ४८ । २२ । ७ । ३०) =५ गव+गव (० ।४८ । २२ । ७ । ३०)

तथैकवर्षेऽधिघट्यात्मकम्=० । ३ । ५२ । ३० । ० गतवर्ष सम्बन्ध्यधिक घट्यात्मकम्=गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०) अतोऽनयोरन्तरम्= गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)—गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०) = गतवसं अवमघट्यादि—गतवसंअधिदिघ.

∴ ५ गव+गतवसंअयमघट्यादि—गवसंअधिदिघ. सप्तघ्निते शेषो रव्यादि-वारगणनया वर्षपतिर्भवेदिति ।।७।।

हि. भा.—गतवर्ष और पाँच के घात में क्षयदिन जोड़ देना अधिदिन घटाकर सात से भाग देने से जो शेष रहे उसे सात में घटाने से वर्षपति होता है । अथवा स्फुट दिनपति और वर्षपति के विचार आगे कहते हैं ।।७।।

उपपत्ति ।

एक वर्ष में क्षयहादि=५ । ४८ । २२ । ७ । ३० गतवर्षसम्बन्धिक्षयाहादि=गव (५ । ४८ । २२ । ७ । ३०) = ५ गव+गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)
एक वर्ष में अधिक दिन घट्यादि=० । ३ । ५२ । ३० । ०
गतवर्ष सम्बन्धी अधिकदिन घट्यादि=गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०)
अतः दोनों के अन्तर=गव (० । ४८ । २२ । ७ । ३०)—गव (० । ३ । ५२ । ३० । ०)

=गवसं अवम घट्यादि—गवसं अधिदिघ

∴ ५ गव+गतवसं अवम घट्यादि—गवसं अधिदिघ सात से भाग देने से शेष रवि आदि गणनाक्रम से वर्षपति होगा ।।७।।

इदानीमब्दपत्यानयनमाह

द्विनिघ्नेवत्सरनिकरेऽधिकोनिते युतेऽवमनिकरेण हीनिता शुद्धिः ।
स्वभागहार-युतगुणैर्यथोक्तवद्दिनादितेष्वगहृतशेषमब्दपः ।।८।।

वि. भा.—वत्सरनिकरे (गतवर्षसमूहे) अधिकोनिते (अधिमासहीनिते) द्विनिघ्ने (द्विगुणिते) अवमनिकरेण (क्षयदिनसमूहेन) युते (सहिते) एतेन फलेन शुद्धिः हीनिता (रहिता) स्वभागहारयुतगुणैः पूर्ववद्यद्दिनादिफलं तेषु अवहृतशेषं (सप्तभक्तावशिष्टं) अब्दपः (वर्षपतिः) भवेदिति ।।८।।

अस्योपपत्तिः ।

३६०×गव=गतवर्ष सम्वन्धिसौदि, परंगतवर्षसं अधिमादि=३० गवसंअ +अशे अतो गतवर्ष संचान्द्रदि=गवसंसौदि+गवसंअमादि
=३६० गव+३० गवसं अमादि+अशे

अतः गवसंसावन=गतवसंचन्द्रदि — गतवर्षसम्वन्धिक्षयाहाः सावयवाः
=३६० गव+३० गवसंअमा+अशे—(५ गव+क्षयदि+क्षशे)
=३६० गव+३० गवसंअमा+अशे—५ गव—क्षदि—क्षशे

यथायोग्यं सप्ततष्टखण्डग्रहणेन

$\frac{\text{गतवससा}}{७}$ =गवसंसा₁=३ गव+२ गवसंअमा+अशे—५ गव—क्षदि—क्षशे

=३ गव+२ गवसंअमा+(अशे—क्षशे)— ५ गव—क्षदि

=३ गव+२ गवसंअमा+शुद्धि—५ गव—क्षदि

=शुद्धि—२ (गव—गवसंअमा)—क्षदि

=शु— { २ (गव—गवसंअमा)+क्षदि }

अयं सप्ततष्टः सन् रव्यादिगणनया वर्त्तमानवारबोधकोऽङ्को भवेदिति सुस्पष्टमेव। परं निरवयवशुद्धिः > २९ ईदृशी कदापि न स्यात्। गव—गअमा+क्षदि >२९ इति बहुधा सम्भाव्यते, अतः ऋणखण्डं प्रथमं सप्ततष्टितं कृत्वा शेषं शुद्धेर्विशोध्य पुनः सप्ततक्षणं विधेयमिति ॥८॥

हि. भा.—गतवर्ष में अधिकमास को घटाकर द्विगुणित करना अवमदिन जोड़ देना तब जो फल हो उसको शुद्धि में घटा देना अपना भागहार जोड़ गुणक द्वारा पूर्ववत् दिनादि-फल जो हो उसमें सात से भाग देने से जो शेष रहे वह वर्षपति होता है ॥८॥

उपपत्ति

३६०×गव=गतवर्षसंसौरदि, परं गतवर्षसंअमादि=३० गवसंअमा+अशे
इसलिए गवसंचाँदि=गवसं सौदि+गवसंअमादि=
=३६० गव+३० गवसंअमादि+अशे

अतः गवसंसावन=गवसंचांदि—गतवर्षसंक्षयाहाः सावयवाः
=३६० गव+३० गवसंअमा+अशे—(५ गव+क्षदि+क्षशे)
=३६० गव+ ३० गवसंअमा+अशे—५ गव—क्षदि—क्षशे
सात से भाग देने से

गतवसंसावन₁=गवसंसावन=३ गव+२ गवसंअमा+अशे—५ गव—क्षदि—क्षशे
=३ गव+२ गवसंअमा+(अशे—क्षशे)—५ गव—क्षदि
=३ गव+२ गवसंअमा+शुद्धि—५ गव—क्षदि
=शुद्धि—२(गव—गवसंअमा)—क्षदि
=शुद्धि— { २ (गव—गवसंअमा)+क्षदि }

इसको सात से भाग देने से रव्यादि गणना क्रम से वर्त्तमान वारबोधक अङ्क होता है। पर निरवयव शुद्धि >२९ ऐसी कदापि नहीं होती है। गव—गअमा+क्षदि > २९ यह बहुधा हो सकता है इसलिए ऋण खण्ड को पहले सात से भाग देकर जो शेष रहे उस का शुद्धि में घटाकर फिर सात से भाग देना चाहिए ॥८॥

इदानीं चान्द्रवर्षसम्बन्धेन वर्षपतिज्ञानार्थमतिदिशति ।

इत्यब्दपोऽयमभिहितोऽधुना विधोः समापतिर्मधुसितपूर्ववासरे ।
समागणाद्दिननिकरं यथोक्तवत् प्रसाध्य चेह गतवत्सराधिपः ।।९।।

वि. भा. — इति (एवं) अयं (पूर्वोक्तः) अब्दपः (वर्षपतिः) अभिहितः (कथितः), अधुना (इदानीं) विधोः (चन्द्रस्य) मधुसितपूर्ववासरे (चैत्रशुक्लादि-दिने) समापतिः (वर्षपतिः कथ्यते इति शेषः। यथोक्तवत् (पूर्वकथितवत्) समागणात् (वर्षसमूहात्) दिननिकरं (अहर्गणं) प्रसाध्य (साधनं कृत्वा) गतवत्सराधिपः (गतवर्षपतिः) बोध्य इति ।। ९ ।।

हि. भा.— इस तरह पूर्वोक्त वर्षपति कहा गया है। इस समय चन्द्र का चैत्रशुक्ल प्रतिपदादि में वर्षपति कहते हैं। पूर्ववत् गतवर्ष से अहर्गण साधन कर गतवर्षपति ज्ञान करना चाहिये ।।९।।

इदानीं तदाह।

वाऽवमद्विकहतेः फलं च यत्प्रोज्झ्य वर्षशरघाततोऽब्दपः ।
शुद्धिहीनदिवसेषु वाऽब्दपो हीनरात्रघटिकाब्दसंयुतः ।।१०।।

वि. भा.— वा अवमद्विकहतेः फलं यत् (द्विगुणितमवमं यत्) वर्षशरघाततः (पञ्चगुणितगतवर्षतः) प्रोज्झ्य (शोधयित्वा) शुद्धिहीनदिवसेषु (शुद्धिरूपावमदिनेषु) प्रोज्झ्याब्दपतिर्भवेत्। अथवा हीनरात्रघटिकाब्दसंयुतः (अवमघटीरूपशुद्धिदिनवर्षयोगः) अब्दपः स्यात्। हीनरात्रघटिकाशब्देन शुद्धिदिनान्युच्यन्ते ।

अत्रोपपत्तिः ।

कल्यादेरिष्ट सौरवर्षान्तं सावनदिनानि = ३६५ गव + दिनादि एभ्योऽमान्तव्यब्दान्त मध्ये यानि सावनानि शुद्धि मितानि तानि विशोध्य तदा चैत्रादौ सावन दिनानि = ३६५ गव + दिनादि — शुद्धि एतानि सप्तभिर्भक्तानि वर्त्तमानवारार्थं सैकानि तदा रवितो वारः = गव + दिनानि — शुद्धि + १, कदाचिद्रूपयोगंविनापि वारो जायते यदि शुद्धिः सशेषा भहैत्तदैव दिनाब्दयुतौ रूपं योज्यमन्यथा (शेषरहितशुद्धौ) रूपयोजनस्यावश्यकता न भवेदिति ।। १० ।।

हि. भा. — वा अवम और दो के घातफल जो हो उसको पञ्चगुणित गतवर्ष में घटाकर या शुद्धि रहितदिनादि में या अवमघटीरूपशुद्धिदिनवर्ष जोड़ने से वर्षपति होते हैं ।।१०।।

उपपत्तिः ।

पूर्वार्ध की उपपत्ति सरल ही है ।

कल्पादि से इष्टसौरवर्षान्त तक सावनादि = ३६५ गव + दिनादि इससे अमान्त और सौरवर्षान्त के मध्य में जो सावन शुद्धि है उनको घटा देने से चैत्रादि में सावन दिन होते हैं ३६५ गव + दिनादि — शु. इसको सात से भाग देना और वर्त्तमान वार के लिए एक सहित करना तब रवि से वार होते हैं गव + दिनादि — शु + १ कभी-कभी बिना रूप जोड़ने से

भी वार हो जाते हैं यदि शुद्धिस शेष (शेष सहित) हो तभी दिनादि और वर्ष योग में एक जोड़ना चाहिये अन्यथा नहीं ॥१०॥

इदानीं चान्द्रवर्षपतिज्ञानार्थमाह ।

एवमर्कभगणाब्द प्रेरितैरैन्दवस्य करणैः प्रसाधनम् ।
हीनाह नाड़ी वियुता विशुद्धया नव्यः शशाङ्काब्दपतिस्तु सौरः ॥११॥
स नाड़ियुक्तोऽथवारूपयुक्तः शुद्धया विहीनो विधुवर्षपः स्यात् ।

वि.भा.—एवं (अनया वा रीत्या) अर्कभगणाब्दप्रेरितैः (सूर्यभगणवर्षसञ्चालितैः) करणैः (क्रियाभिः साधनैर्वा) ऐन्दवस्य (चान्द्रमसः) प्रसाधनं (वर्षपत्याद्यानयनं) भवेत् । हीनाहनाड़ी (क्षयघटी) विशुद्धया (पूर्वोक्तशुद्धिसंज्ञकेन) वियुता (रहिता) कार्या तदा नव्यः (नवीनः) शशाङ्काब्दपतिः (चन्द्रवर्षपतिः) भवेत् । स सौरः (अब्दः) नाड़ियुक्तः (दिनाद्येन युक्तः) रूपयुक्तः (एकसहितः) शुद्धया विहीनः (शुद्धिरहितः) तदा विधुवर्षपः (चन्द्रवर्षपतिः) स्यादिति ॥ $११\frac{१}{२}$ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

शुद्धिहीनदिवसेषु वाब्दप इत्याद्युपत्तिवदस्याप्युपपत्तिर्बोध्येति ॥$११\frac{१}{२}$॥

हि. भा.—इस तरह सूर्यभगण और वर्ष से प्रेरित साधनों द्वारा चन्द्रवर्षपति आदि का साधन होता है । क्षयघटी में पूर्वकथित शुद्धि को घटाने से चन्द्र वर्षपति होते हैं । गतसौरवर्ष में दिनादि जोड़ देना, एक जोड़कर शुद्धि को घटाने से चन्द्र वर्षपति होते हैं ॥$११\frac{१}{२}$॥

उपपत्तिः ।

शुद्धिहीनदिवसेषु वाब्दप इत्यादि की उपपत्ति की तरह इसकी भी उपपत्ति समझनी चाहिये ॥$११\frac{१}{२}$॥

इदानीमुपयुक्तान् ग्रहध्रुवकानाह ।

प्राग्वद्रविवर्षैः सिद्धिः खेचराणां सूर्याहतशुद्धिर्भागादिकशशी वा ॥१२॥

वि. भा.— प्राग्वत् (पूर्ववत्) रविवर्षैः (सौरवर्षैः) खेचराणां (ग्रहाणां) सिद्धिः, वा सूर्याहतशुद्धिः भागादिशशी (द्वादशगुणितशुद्धिः सौरवर्षादौ) चन्द्रो भवेदर्थाद् भागाद्यश्चन्द्रस्य ध्रुवको भवेत् ॥१२॥

सर्वप्रथमं सूर्यध्रुवककथनमेवोचितमस्ति परं सौरवर्षादौ रवेर्ध्रुवकाभावान्न कथ्यते ॥१२॥

अत्रोपपत्तिः ।

रविचन्द्रयोर्द्वादशांशान्तरेणैका तिथिर्भवति तेन तिथयो द्वादशगुणितास्तदा रविचन्द्रयोरन्तरांशा भवेयुस्ते सूर्ये योज्यास्तदा चन्द्रः स्यात् । सौरवर्षादौ भुक्तास्तिथयः शुद्धिमिता अतो द्वादशगुणाशुद्धिरन्तरांशाः, परं सौरवर्षादौ रवेश्चक्रपूर्त्तित्वाद्राश्यादिसूर्यस्य शून्यतुल्यत्वेन सूर्यध्रुवकाभावाद्रविचन्द्रान्तरांशा एव चन्द्रस्य भागादिका ध्रुवक इति ॥१२॥

हि. भा.—पूर्ववत् सौरवर्षों से ग्रहों की सिद्धि होती है या बारह से गुणित शुद्धि अंशादिचन्द्र होते हैं अर्थात् अंशादि चन्द्र ध्रुवक होते हैं ।।

उपपत्ति

यहां सबसे पहले सूर्य के ध्रुवक कहने चाहियें, पर सूर्य के ध्रुवक को नहीं कहते हैं इसका कारण यह है कि सौरवर्षादि में रवि के ध्रुवक के अभाव होने से नहीं कहा गया, रवि और चन्द्र के बारह अंश अन्तर होने से एक तिथि होती है। तिथि को बारह से गुणने से रवि और चन्द्र के अन्तरांश होते हैं उसको रवि में जोड़ने से चन्द्र होते हैं। सौर वर्षादि में भुक्ततिथि-शुद्धि के बराबर है इसलिये शुद्धि को बारह से गुणने से रवि और चन्द्र के अन्तरांश हुए। लेकिन सौरवर्षादि में रवि के भगण पूरा होने के कारण राश्यादि रवि के शून्य होने से सूर्य के ध्रुव का भाव हुआ अतः रवि और चन्द्र के अन्तरांश ही भागादिक चन्द्र ध्रुवक हुए ।।१२।।

अथ सौरवर्षादौ ग्रहादिध्रुवकानाह ।

चन्द्रोच्चपातावथ वर्षराशिं व्योमाश्रमैर्गोरजनीकरैश्च ।
शीतांशुवेदैः कुभुजैः कुचन्द्रैः पयोधिरामैः खखपक्षभागैः ।।१३।।
भौमः कुनन्देन्दुभिरिन्दुजस्य शीघ्रं तथा वेदशरैः सुरेज्यः ।
व्योमाग्निभिस्तत्त्वयमैः सितस्य शीघ्रं शनिर्भानुभिरब्दराशिम् ।।१४।।

वि. भा.—स्पष्टार्थाः ।

ग्रहादीनामेकवर्षसम्बन्धीया भागादि का ध्रुवकाः पठिता इति । ।।१३-१४।।

हि. भा.—इनके अर्थ स्पष्ट है।

ग्रहों के तथा चन्द्रपात और चन्द्रमन्दोच्च के एक सौरवर्ष के आदि में भागात्मक ध्रुवक पठित हैं। चन्द्रोच्च का ४०। चन्द्रपात का १९, एवं चन्द्रोच्च का ४१, पात का २१। चन्द्रोच्च का ११, चन्द्रगत ३४, चन्द्रोच्च का २००। चन्द्रपात=०। मङ्गल के ११९, बुधशीघ्रोच्च के ५४, गुरु के ३० शुक्रशीघ्रोच्च का २२५। शनि के १२ ।। १३-१४ ।।

ग्रह चन्द्रपातमन्दोच्चों के एक वर्ष सम्बन्धी ध्रुवक पठित किये गये हैं ।।१३-१४।।

पूर्वं चन्द्रानयनमुक्तमिदानीं कुजादीनां तदानयनमाह ।

तत्रादौ कुजानयनम्

सप्तव्योमाक्षिवेदाग्निहतात्सूर्यात्फलं क्षिपेत् ।
तच्छून्यखखखाष्टाभ्रभूमिभिर्भूजो रवेर्दले ।। १५ ।।

वि. भा.—सप्तव्योमाक्षिवेदाग्नि (३४२०७ एतैः) हतात् (गुणितात्) सूर्यात्, शून्यख-खखाष्टाभ्रभूमिभिः (१०८००००) भजनाद्यत्फलं तद्रवेर्दले (सूर्यार्द्धे) क्षिपेत्तदा भूजः (कुजोऽर्थात्कुजो भवेत्) ।। १५ ।।

अत्रोपपत्तिः

कुजस्यैकवर्षभवान् ध्रुवकान् गतवर्षेण संगुणितान् कृत्वा गुणनभजना-

दिना तदीयमानमुपपद्यते सर्वेषां ग्रहादीनामेकवर्षभवध्रुवकं गतवर्षैः संगुणय गुणनभजनादिना ग्रहाद्या उपपद्यन्ते ॥ १५ ॥

हि. भा.—सूर्य को ३४२०७ इतने से गुणकर १०८०००० इनसे भाग देने से जो फल हो उसको रवि के आधे में जोड़ने से कुज के मान होते हैं।

कुज के एक वर्षसम्बन्धी पठित ध्रुवक को गतवर्ष से गुणकर गुणन-भजनादि से उनके ध्रुवक उपपन्न होते हैं। सब ग्रहों के लिये यही क्रम है हर एक ग्रह के पठित ध्रुवक को गतवर्ष से गुणकर गुणन भजनादि से उनके मान उपपन्न होते हैं॥ १५ ॥

इदानीं बुधशीघ्रोच्चानयनमाह ।

सुरपक्ष नखहताद्यत्खखाभ्र पश्चाग्निशशिभिराप्तं यत् ।
क्षेप्यं वेदहतेतद् बुधशीघ्रं वा भवत्येवम् ॥ १६ ॥

वि. भा.—गतवर्षात् सुरपक्ष नखहतात् (२०५३३ एतैर्गुणितात्) खखाभ्र-पश्चाग्निशशिभिः (१३५००० एतैर्भजनात्) यदाप्तं (यल्लब्धं तद्वेदहते) (चतुर्गुणिते) गतवर्षे क्षेप्यं तदा बुधशीघ्रं (बुधशीघ्रोच्चं) भवति ॥

उपपत्त्यर्थं कुजानयने प्रक्रिया प्रतिपादितैवेति ॥ १६ ॥

हि. भा.—गतवर्ष को २०५३३ इनसे गुणकर १३५००० इनसे भाग देकर जो फल हो उसको चार से गुणित गतवर्ष में जोड़ने से बुध शीघ्रोच्च होते हैं ॥ १६ ॥

इदानीं शुक्रशीघ्रोच्चानयनमाह ।

शिवतत्त्वगुणहतोनादयुतद्वयभाजितादाप्तं यत् ।
तद्भृगुपुत्रचलोच्चं भवतीह मुनीरितं वापि ॥ १७ ॥

वि. भा.—गतवर्षात्-शिवतत्त्वगुणहतोनादयुतद्वयभाजितात्—आप्तं भृगुपुत्रचलोच्चं (शुक्रशीघ्रकेन्द्रं) भवति, इति मुनीरितं (मुनिकथितं) अस्तीति ।

$$\text{गव} \times ३२५११ - \frac{\text{गव} \times ३२५११}{२००००} = \text{शुक्रशीघ्रोच्चम्} ।$$

हि. भा.—गतवर्ष को ३२५११ इनसे गुणकर २०००० इनसे भाग लेकर जो हो उसको उसमें घटाने से बुध शीघ्रोच्च होता है $\text{गव} \times ३२५११ - \frac{\text{गव}\ ३२५११}{२००००} = \text{शुक्रशीघ्रोच्च}$ ।

इदानीं शनेरानयनमाह ।

रविखाग्न्यं योज्यं लब्धं नगखैकताड़िताद्भानोः ।
खचतुष्टयाष्टशशिभिर्वा रविसूनुर्भवत्येवम् ॥ १८ ॥

वि. भा.—रविखाग्न्यं (रवेस्त्रिशदशं) नगखैकताड़िताद्भानोः (१०७ एतद्-

गुणितसूर्यात्) खचतुष्टयाष्टशशिभिर्भक्ताद्यल्लब्धं (१८०००० एभिर्भक्ताद् यत्फलं) तैर्योज्यं तदा रविसूनुः (शनैश्चरः) भवेदिति।

$$\frac{\text{रवि}}{३०}+\frac{१०७\ \text{रवि}}{१८००००}=\text{शनिः}\ ॥\ १८\ ॥$$

हि. भा.—रवि के तीसवें अंश में १०७ गुणित रवि में १८०००० इतने से भाग देकर जो फल हो उसको जोड़ने से शनि होते हैं ॥

$$\frac{\text{रवि}}{३०}+\frac{१०७\ \text{रवि}}{१८००००}=\text{शनि}\ ॥\ १८\ ॥$$

इदानीं चन्द्रमन्दोच्चानयनमाह।

रविनवभागे योज्यं नगैकचन्द्राष्टताड़िताद्भानोः।
खचतुष्टयवेदेन्द्रै र्हिमगूच्चं वा भवत्येवम् ॥ १९ ॥

वि. भा.—रविनवभागे (रविनवांशे) नगैकचन्द्राष्टताड़िताद्भानोः (८११७ एतद्गुणितसूर्यात्) खचतुष्टयवेदेन्द्रैः (१४४०००० एभिः) एभिर्भाजिताद् यल्लब्धं तद्योज्यं तदा हिमगूच्चं (चन्द्रमन्दोच्चं) भवेत् ॥

$$\frac{\text{रवि}}{९}+\frac{८११७\ \text{रवि}}{१४४००००}=\text{चन्द्रमन्दोच्चम्}\ ॥\ १९\ ॥$$

हि. भा.—रवि के नवम अंश में ८७१७ एतद्गुणित रवि को १४४०००० इनसे भाग देने से जो फल हो उसको जोड़ने से चन्द्रमन्दोच्च होता है ॥ १९ ॥

प्रकारान्तरेण तदानयनमाह।

सवितृनखांशे योज्यं नगैकचन्द्राष्टताड़िताद् भानोः।
खचतुष्टयवेदेन्द्रै र्हिमगूच्चं वा भवत्येवम् ॥ २० ॥

वि. भा.—सवितृनखांशे (सूर्यविंशत्यंशे) नगैकचन्द्राष्टताड़िताद् भानोः (८११७ एतद्गुणितसूर्यात्) खचतुष्टयवेदेन्द्रैः। (१४४००००) भक्ताद्यल्लब्धं तद्योज्यं तदा चन्द्रमन्दोच्चं भवेत् ॥ २० ॥

$$\frac{\text{रवि}}{२०}+\frac{८११७\ \text{रवि}}{१४४००००}=\text{चन्द्रमन्दोच्चम्}।$$

हि. भा.—रवि के बीसवें अंश में ८११७ एतद्गुणित रवि को १४४०००० इनसे भाग देकर जो फल हो उसको जोड़ने से चन्द्रमन्दोच्च होता है ॥ २० ॥

$$\frac{\text{रवि}}{२०}+\frac{\text{रवि}\ ८११७}{१४४००००}=\text{चन्द्रमन्दोच्च}\ ॥\ २०\ ॥$$

इदानीं चन्द्रपातानयनमाह

अयुतरसैकभुजैः शशधरपातोऽथवा लब्धम्।

वि. भा—अयुतरसैकभुजैः (२१६००००) एतैर्भक्ताद्वर्षाल्लब्धं शशधरपातः (चन्द्रपातः) स्यादिति।

एतेषामुपपत्तयो मङ्गलानयनलिखितपद्धत्या कार्याः ।

हि. भा.—२१६०००० इतने से गतवर्ष को भाग देने से चन्द्रपात प्रमाण होता है ॥ इन सब की उपपत्तियां कुजानयन में लिखी हुई रीति से करनी चाहिये ॥

इदानीं मध्यमरविमेषादिकस्य सावनाहर्गणस्यानयनमाह ।

चैत्रादिस्तिथिनिकरः शुद्धिविहीनः पृथग्गुणो रुद्रैः ॥२१॥
अवमघटीभ्यः षष्टया लब्धयुतस्त्रिखनगहृताभ्यः ।
त्रिखनगहृतावमोनो द्युगणोऽब्दावमघटीसमेतः स्यात् ॥२२॥

वि. भा.—चैत्रादिस्तिथिनिकरः (चैत्रशुक्लप्रतिपदादित इष्टदिनपर्यन्तं तिथिसमूहः) शुद्धिविहीनः (पूर्वोक्तशुद्धिदिनादिना रहितः) पृथक् (स्थानद्वये स्थापनीयः) एकत्र रुद्रैः (एकादशभिः) गुणः (गुणितः) त्रिखनगहृताभ्योऽवमघटीभ्यः (७०३ गुणितावमघटीभ्यः) षष्टया लब्धयुतः (षष्टया भागे हृते यत्फलं तेन सहितः) त्रिखनगहृतावमोनः (त्रिखनग ७०३ हृताप्तैरवमैर्दिनादिघटिकान्तै रहित उपरिस्थापितो राशिः) अब्दावमघटीसमेतः (वर्षान्तक्षयघटीयुक्तः) तदा द्युगणः (अहर्गणः) भवेदिति ॥२१-२२॥

अत्रोपपत्तिः

चैत्र शुक्लाद्यास्तिथयो यदि शुद्धि सावनदिनैर्विशोध्यन्ते तदा चैत्राद्यवमशेषं रव्युदयामावास्यान्तयोरन्तरे ते द्वे अप्येकत्रावमांशत्वं भजतः । अवमांशा अधिकाः शुद्धयूनास्तिथिषु द्रष्टव्याः । यतश्चैत्रादितिथिभ्यो सौरवर्षान्तिचैत्रशुक्लाद्योरन्तरं चान्द्रं शुद्धं भवति, केवलं सर्वं समांशा अद्यापि न शुद्धयन्ते । ततोऽनुपातो यदि त्रिव्योमनग (७०३) तुल्यैश्चान्द्रदिनैरेकादशावमानि लभ्यन्ते तदा सौरवर्षान्ताद्गततिथिभिः किमित्यनुपातेन सौरवर्षान्ते यदवमशेषं समागतं तत्तत्रैव योज्यते । यतः शुद्धिशोधनावसरे न शोधितं तद्योज्यते तदेव शुध्यति । चान्द्रदिनान्युपरि शुद्धानि भवन्ति । अतोऽवमांशा ७०३ गुणिताः सवर्णीभवन्ति, एवं यदाप्तमेकादश गुणाः तिथिषु यावदवमांशास्तेष्वेव तिथिष्वधिकास्तिष्ठन्ति । ते च तिथिभिः सह एकादशगुणा जाताः । एवं यत्फलं समागतं तदेकादशगुणिततिथिषु प्रयोज्यावमं भवति । ततः ७०३ विभज्य ऊनरात्रा लभ्यन्ते शेषमिष्टदिने सावन लब्धोनरात्रांश्च सौरवर्षान्ततिथिगणाद्विशोध्याहर्गणो भवतीति ॥२१-२२॥

हि. भा.—चैत्र शुक्ल प्रतिपदादि से इष्टदिन पर्यन्त जो तिथि समूह है उसमें पूर्वोक्त शुद्धि दिन को घटाकर दो जगहों में रखना, एक स्थान में ग्यारह से गुण देना, ७०३ गुणित अवमघटी में साठ से भाग लेने से जो लब्धि हो उसे जोड़ देना, ७०३ भक्त अवमफलकरक उपरि स्थापित राशि में घटा देना अवमघटी जोड़ देना तब अहर्गण होता है ॥२१-२२॥

उपपत्ति

चैत्रादि तिथि में शुद्धि सावन दिन का घटा देते हैं तो सूर्योदयामान्त काल के अन्तर चैत्रादि अवमशेष रहता है शुद्धि रहित तिथि अवमांश होता है । चैत्रशुक्लादि तिथि से सौर-

वर्षान्त और चैत्रशुक्लादि का अन्तर शुद्धि चान्द्रतिथि है। अब अनुपात करते है, यदि ७०३ चान्द्रदिनों में ११ ग्यारह अवम पाते हैं तो सौरवर्षान्त से गततिथि में क्या इस अनुपात से वर्षान्त में जोड़ अवमशेष आता है उसको वहीं पर जोड़ते हैं। चान्द्रदिन शुद्धि हैं इसलिए अवमांश को ७०३ गुणने से सवर्णन हो जाता हैं। इस तरह जो फल आता है उसको ग्यारह गुणित तिथि में जोड़ देने से अवम होता है। बाद में ७०३ से भाग देने से जो क्षय घटी शेष आती है उसको सौरवर्षान्तकालिक तिथिगण (चान्द्राहर्गण) में घटाने से सावनाहर्गण होता है ॥२१-२२॥

प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम् ।

मध्वाद्यास्तिथयो वा सावननाड्योऽथ शुद्ध्यूनाः ।
पृथगजनिघ्नास्तिथिभिर्हीनघटीभिस्त्रिखाद्रि गुणिताभिः ॥२३॥
लब्धयुतास्त्रिखमुनिभिर्लब्धावमवर्जितो द्युगणः ।

वि. भा.—वा मध्वाद्यास्तिथयः (चैत्रशुक्ल प्रतिपदादितस्तिथिनिकरः) सावननाड्यः शुद्ध्यूनाः (शुद्धिदिनरहिताः) पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्याः) अजनिघ्नाः (एकादश गुणिताः) त्रिखाद्रिगुणिताभिः (७०३ एतैर्गुणिताभिः) तिथिभिर्हीनैः घटीभिः (क्षयशेषतिथिघटीभिः) लब्धयुताः (एकादशगुणित शुद्धिरहिततिथौ लब्धफल सहिताः) त्रिखमुनिभिर्लब्धावमवर्जितः (७०३ भजनेन यल्लब्धमवमं तेन पृथक् स्थापितः शुद्धिरहिततिथिनिकरो रहितः) तदा द्युगणः (अहर्गणः) भवेदिति ॥२३॥

अत्रोपपत्तिः

लघ्वहर्गणेऽवमानयनार्थं त्रिखनगचान्द्रदिनैरेकादशमितान्यवमानि स्वल्पान्तरात्प्रकल्प्याऽनुपातो यदि ७०३ चान्द्रदिनैरेकादश तुल्यान्यवमानि लभ्यन्ते तदा शुद्ध्यूनतिथिभिः किमित्यनुपातेन यत्फलं तत्र वर्षान्तक्षयशेषयोजनेनावमानि भवन्ति

$$\frac{११ (\text{चैति}-\text{शुद्धि})}{७०३} + \text{क्षयशे} = \text{अवमानि}$$

$$= \frac{११ (\text{चैति}-\text{शुद्धि})}{७०३} + \frac{७०३ \text{ क्षयशे}}{७०३} = \frac{११ (\text{चैति}-\text{शु}) ७०३ \text{ क्षयशे}}{७०३}$$

एतान्येवावमानि शुद्धिरहिततिथौ रहितानितदाऽहर्गणो भवेदिति ॥

हि. भा—चैत्रशुक्लादि तिथियों में शुद्धि घटाकर जो हो उनको दो स्थानों में स्थापन करना, एक स्थान में ग्यारह से गुण देना ७०३ गुणित अवमशेष घटी जोड़ कर ७०३ इससे भाग देने से जो फल अवम हो उसको द्वितीय स्थान में रखे हुए शुद्धि रहित तिथि में घटाने से अहर्गण होता है ॥२३॥

उपपत्ति ।

लघ्वहर्गण में अवमानयन के लिये ७०३ चान्द्रदिनों से ग्यारह अवम को स्वल्पान्तर से मानकर अनुपात करते हैं। यदि ७०३ चान्द्रदिनों में ग्यारह अवम पाते हैं तो शुद्धिरहित तिथि में क्या इस अनुपात से जो फल आवेगा उसमें क्षय शेष जोड़ने से अवम प्रमाण होंगे।

$$\frac{११ (\text{चैत}-\text{शु})}{७०३}+\text{क्षशे}=\text{अवम}=\frac{११ (\text{चैति}-\text{शु}+७०३ \text{ क्षशे})}{७०३}$$

इसको द्वितीय स्थान में रखे हुए शुद्धिरहित तिथि में घटाने से लघ्वहर्गण प्रमाण होता है ।। २३ ।।

पुनः प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनमाह ।

शुद्ध्यूना वा तिथयश्चैत्राद्यास्त्रिरधस्त्रिखस्वरैर्भक्ताः ।। २४ ।।
मध्यफलेषु च युक्तास्त्रिख सप्तहृतावमघटीभ्यः ।
हीनाभ्योऽष्टकृति हृदवमोनोऽन्योऽवमनाड़िकायुतो द्युगणः ।। २५ ।।

वि. भा.—वा शुद्ध्यूनाश्चैत्राद्यास्तिथयः (शुद्धिरहित चैत्रादितिथिनिकरः) त्रिः (स्थानत्रये स्थाप्याः) एकत्र त्रिखस्वरैः (७०३ एभिः) भक्ताः (विभाजिताः) मध्यफलेषु (द्वितीयस्थानस्थापित पूर्वोक्तेषु) योज्याः, त्रिखसप्तहृतावमघटीभ्यो हीनाभ्यः (७०३ एतद्विभक्तावमतिथिघटीभ्यो रहिताभ्यः) अष्टकृतिहृदवमोनः (अष्टवर्ग ६४ भजनेन यदाप्तमवमं तेन रहितः) अन्यः (तृतीयस्थानस्थापितः पूर्वोक्तः) अवमनाड़िकायुक्तस्तदा द्युगणः (अहर्गणो) भवेत् ।। २४-२५।।

अत्रोपपत्तिः ।

वर्षान्तादिष्टदिनपर्यन्तं दिनसमूहो लघ्वहर्गणोऽर्थाद् वर्षान्तकालिकेष्टकालिकयोरहर्गणयोरन्तरं लघ्वहर्गणः । एतस्यैवानयनं क्रियते ।

वर्षान्तकालिक-सावनाहर्गणः=गतचां+अधिशे—क्षयदि+दिघ...(१)

अत्र गतचां=कल्पादितो युगादितो वा चैत्रामान्तं यावच्चान्द्रदिनानि ।
दिघ=सूर्योदयतो वर्षान्तं यावद्दिनादिघट्यः ।

तथेष्टाहर्गणः= गतचां+ चैति—$\text{क्ष}_{१}$दि......(२)

(१) (२) अनयोरन्तरेण लघ्वहर्गणः=चैति—शुद्धि+क्षदि— $\text{क्ष}_{१}$दि
=चैति—शु—($\text{क्ष}_{१}$दि—क्षदि)=चैति—शु—क्षयदिनान्तर...(क)

अथाऽधुना क्षयदिनान्तरानयनार्थमनुपातः क्रियते

$$\frac{\text{कल्पावम}\times\text{इचां}}{\text{कचां}}=\text{इष्टचान्द्रसम्बन्धीयावमानि}$$ ।

इचां=वर्षान्तादिष्टतिथ्यन्तं यावत् ।

एतानि वर्षान्तक्षयघटीभिरन्तरितानि (वर्षान्ते क्षयदिनपूर्त्तेरभावात्) अतएव क्षयघटी सम्बन्धिदिनैः सहितानि तान्यवमानि वास्तवमेवावमदिनपूर्तिस्थानात् (क) स्थितं सावनात्मकमवमदिनप्रमाणं भवेत् ।

$$\frac{\text{कअव}\times\text{इचां}}{\text{कचां}}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}=\text{क्षयदिनान्तर}=\frac{\text{कअव}\times\text{इचां}\times६४}{\text{कचां}\times६४}+\frac{\text{क्षघ}\times६४}{६०\times६४}$$

$$=\frac{\text{कअव}\times६४}{\text{कचां}}\times\frac{\text{इचां}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}\times६३}{६०\times६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times६४}$$

$$= \left(१ + \frac{शे}{कचां}\right)\frac{इचां}{६४} + \frac{क्षघ}{६० \times ६४} + \frac{क्षघ \times २१}{२० \times ६४}$$

$$= \left(१ + \frac{१}{७०३}\right)\frac{इचां}{६४} + \frac{क्षघ}{६० \times ६४} + \frac{क्षघ \times २१}{२० \times ६४}$$

$$= \frac{इचां + \frac{इचां}{७०३} + \frac{क्षघ}{६०} + क्षघ}{६४} = \frac{चैति - शु + \frac{इचां}{७०३} + क्षघ}{६४}$$

$$= \frac{चैति - शु + \frac{इचां}{७०३} + क्षघ + \frac{क्षघ}{७०३ \times ६०} - \frac{क्षघ}{७०३ \times ६०}}{६४}$$

$$= \frac{चैति - शु + \frac{चैति - शु}{७०३} + क्षघ - \frac{क्षघ}{७०३ \times ६०}}{६४}$$

∴ चैति—शु—(क्षयदिनान्तर) . ... (क) एतत्स्वरूपमुत्थापनेन

$$चैति - शु - \frac{\frac{चैति - शु}{७०३} + क्षघ - \frac{क्षघ}{७०३ \times ६०}}{६४} = लघ्वहर्गणः$$

अत्र यास्त्रुटयस्ता उपपत्तिदर्शनेनैव स्पष्टाः

∴ उपपन्नम् ॥ २४·२५॥

हि· भा.—चैत्रादि तिथि में शुद्धि घटाकर जो हो उसको तीन स्थान में रखना, एक स्थान में ७०३ इतने से भाग देकर जो फल हो उसको द्वितीय स्थान में जोड़ देना अवमघटी जोड़ना, अवमघटी को ७०३ इतने से भाग देकर उसमें घटा देना, चौंसठ से भाग देकर जो फल हो उसको तृतीय स्थान में स्थापित पूर्वोक्त (शुद्धिरहित चैत्रादितिथि) में घटाने से लघ्वहर्गण होता है ।

उपपत्ति ।

वर्षान्त से इष्टदिनपर्यन्त दिन समूह को लघ्वहर्गण कहते हैं अर्थात् वर्षान्तकालिक अहर्गण इष्टकालिक अहर्गण के अन्तर लघ्वहर्गण है । इसका आनयन करते हैं ।

वर्षान्तकालिक सावनाहर्गण=गतचां+अधिशे—क्षयदि+दिघ ···(१)

यहां गतचां=कल्पादि या युगादि से चैत्रामान्त तक चान्द्राहर्गण

दिघ=सूर्योदय से वर्षान्त तक दिनादि घटी

और इष्टाहर्गण=गतचां+चैति—$क्ष_1$दि ·····(२)

(१) (२) इन दोनों के अन्तर करने से लघ्वहर्गण=चैति—शुद्धि+क्षदि | $क्ष_1$दि

$$=\text{चैति}-\text{शु}-(\text{क्ष}_1\text{दि}-\text{क्षदि})=\text{चैति}-\text{शु}-\text{क्षयदिनान्तर}\cdots(\text{क})$$

क्षयदिनान्तरानयन के लिये अनुपात करते हैं

$\frac{\text{कल्पावम}\times\text{इचां}}{\text{कचां}}$=इचां सं अवम। यहां इचां=वर्षान्त से इष्टतिथ्यन्त तक यह वर्षान्त क्षयघटी करके अन्तरित है (वर्षान्त में क्षयदिन पूर्ति के अभाव से) इसलिये दिनोक्त क्षयघटी करके उन अवम को जोड़ने से वास्तव ही अवमदिन पूर्तिस्थल से (क) स्थित सावनात्मक अवमदिन प्रमाण होते हैं।

$$\frac{\text{कअव}\times\text{इचां}}{\text{कचां}}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}=\text{क्षयदिनान्तर}=\frac{\text{कअव}\times\text{इचां}\times ६४}{\text{कचां}\times ६४}+\frac{\text{क्षघ}\times ६४}{६०\times ६४}$$

$$=\frac{\text{कअव}\times ६४}{\text{कचां}}\times\frac{\text{इचां}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}\times ६३}{६०\times ६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ६४}$$

$$=\left(१+\frac{\text{शे}}{\text{कचां}}\right)\frac{\text{इचां}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ६४}+\frac{\text{क्षघ}\times २१}{२०\times ६४}$$

$$=\left(१+\frac{१}{७०३}\right)\frac{\text{इचां}}{६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ६४}+\frac{\text{क्षघ}\times २१}{२०\times ६४}$$

$$=\frac{\text{इचां}+\frac{\text{इचां}}{७०३}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}+\frac{\text{क्षघ}\times २१}{२०}}{६४}=\frac{\text{चैति}-\text{शु}+\frac{\text{इचां}}{७०३}+\frac{\text{क्षघ}\times २१}{२०}}{६४}$$

$$=\frac{\text{चैति}-\text{शु}+\frac{\text{इचां}}{७०३}+\text{क्षघ}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ७०३}-\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ७०३}}{६४}$$

$$=\frac{(\text{चैति}-\text{शु})+\frac{(\text{चैति}-\text{शु})}{७०३}+\text{क्षघ}-\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ७०३}}{६४}=\text{क्षयदिनान्तर}$$

अतः (क) इसमें उत्थापन देने से

$$(\text{चैति}-\text{शु})-\frac{(\text{चैति}-\text{शु})+\frac{(\text{चैति}-\text{शु})}{७०३}+\text{क्षघ}-\frac{\text{क्षघ}}{६०\times ७०३}}{६४}=\text{लघ्वहर्गण}$$

इसमें क्या क्या त्रुटि हैं उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है।
इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ २४-२५ ॥

पुनः प्रकारान्तरेण लघ्वहर्गणानयनमाह।

अथवा तिथयश्चैत्राद्याः शुद्ध्यूनितास्त्रिरघ्नः।

त्रिखनग हृतफलसहितो मध्यः कुभुजहृतावमघटीभ्यः ॥ २६ ॥
खभुजाप्तयुगब्धिरसैर्लब्धावमर्वजितो द्यु गणः ।

वि. भा—अथवा चैत्राद्यास्तिथयः (चैत्रशुक्लादि तिथिनिकराः) शुद्ध्यूनिता (शुद्धिरहिताः) त्रिः (स्थानत्रये स्थाप्याः) त्रिखनग हृतफलसहितो मध्यः (एकत्र ७०३ एभिर्भजनेन यत्फलं तेन सहितो द्वितीयस्थानस्थापितः) कुभुजहृतावमघटीभ्यः (२१ गुणितावमघटीभ्यः) खभुजाप्तयुक् (विंशत्या भजनेन यत्फलं तेन युक्) अब्धिरसैर्लब्धावमवर्जितः (६४ एभिर्भजनेन यल्लब्धमवमं तेन तृतीयस्थानस्थापितो रहितः) तदा द्युगणः (अहर्गणः) भवेत् ॥ २६ ॥

अत्रोपपत्तिः

अथ पूर्वश्लोकोपपत्तौ क्षयदिनान्तरम्=

$$\left(१+\frac{१}{७०३}\right)\frac{इचां}{६४}+\frac{क्षघ}{६०\times६४}+\frac{क्षघ\times२१}{२०\times६४}$$

$$= इचां+\frac{इचां}{७०३}+\frac{क्षघ}{६०\times६४}+\frac{क्षघ\times२१}{२०\times६४}$$

$$=\frac{इचां+\frac{इचां}{७०३}+\frac{क्षघ}{६०}+\frac{क्षघ\times२१}{२०}}{६४}=\frac{(चैति-शु)+\frac{इचां}{७०३}+\frac{क्षघ\times२१}{२०}}{६४}$$

$$\therefore (चैति-शु)-\frac{(चैति-शु)+\frac{इचां}{७०३}+\frac{क्षघ\times२१}{२०}}{६४}=लघ्वहर्गणः$$

अत्रापि $\frac{चैति-शु}{७०३}=\frac{इचां}{७०३}$ इति तुल्यं कल्पितमाचार्येणेति त्रुटिः ।

$\frac{क्षघ\times२१}{२०}$ एतस्यैव नाम भास्करेण क्षेपदिनं कथ्यते इति ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ २६ ॥

हि. भा.—अथवा चैत्रादि तिथि में शुद्धि घटा कर जो हो उसको तीन स्थान में स्थापित करना, एक स्थान में ७०३ इससे भाग देकर जो फल हो उसको द्वितीय स्थानमें जोड़ देना। अवमघटी को २१ इससे गुण कर बीस से भाग देकर जो फल हो उसे उस में जोड़ना चौंसठ से भाग देकर जो लब्धावम हो उसको तृतीय स्थान में स्थापित फल में घटाने से अहर्गण होता है ॥२६॥

उपपत्ति

पहले श्लोक की उपपत्ति में क्षयदिनान्तर लाया गया है।

$$\left(१+\frac{१}{७०३}\right)\frac{इचां}{६४}+\frac{क्षघ}{६०\times६४}+\frac{क्षय\times२१}{२०\times६४}=क्षयदिनान्तर$$

$$=\text{इचां}+\frac{\text{इचां}}{७०३\times६४}+\frac{\text{क्षघ}}{६०\times६४}+\frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०\times६४}$$

$$=\frac{\text{इचां}+\frac{\text{इचां}}{७०३}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}+\frac{\text{क्षग}\times२१}{२०}}{६४}=\text{क्षयदिनान्तर}$$

अतः (क) इसमें उत्थापन देने से लघ्वहर्गण =

$$(\text{चैति}-\text{शु})-\frac{\left(\text{इचां}+\frac{\text{इचां}}{७०३}+\frac{\text{क्षघ}}{६०}+\frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०}\right)}{६४}$$

$$=(\text{चैति}-\text{शु})-\left\{\frac{(\text{चैति}-\text{शु})+\frac{\text{इचां}}{७०३}+\frac{\text{क्षघ}\times२१}{२०}}{६४}\right\}=\text{लघ्वहर्गण}$$

यहां आचार्य $\frac{\text{इचां}}{७०३}=\frac{\text{चैति}-\text{शु}}{७०३}$ मानते हैं इसलिए यह आनयन भी ठीक नहीं है।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२६॥

पुनः प्रकारान्तरेणाहर्गणानयनम् ।

शुद्ध्यूनस्तिथिनिकरश्चैत्राद्द्विष्ठो दिनाहताद्युक्तः ॥२७॥
विश्वक्षणहतावमघटिकातः खभुजलब्ध्या ।
गोत्रिरसहृदवमोनो दिननिकरोऽवमघटीसमेतो वा ॥२८॥

वि. भा.—चैत्रात्तिथिनिकरः (चैत्रशुक्लादितिथिसमूहः) शुद्ध्यूनः (शुद्धिरहितः) द्विष्ठः (स्थानद्वये स्थाप्यः) अवमघटीसमेतः (अवमघट्या युक्तः) दिनाहतात् (सप्तगुणितात्), विश्वक्षणहतावमघटिकातः (२१३ एतद्गुणितावमघटीतः) खभुजलब्ध्या (विंशत्या भजनेन या लब्धिस्तया) युक्तः (सहितः) गोत्रिरसहृदवमोनः (६३९ एभिर्भजनेन यल्लब्धमवमं तेनरहितः पृथक् स्थापितः पूर्वोक्तः) तदादिननिकरः (अहर्गणः) भवेदिति ॥२७-२८॥

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोकोपपत्तिपर्यालोचनया स्फुटेति ।

हि. भा.—चैत्रादि से जो तिथिसमूह है उसमें शुद्धि को घटा कर दो स्थानों में रखना, एक स्थान में उसमें अवमघटी जोड़ देना, अवमघटी को सात से गुण कर बीस से भाग देकर उसमें जोड़ना तथा २१३ इससे गुणित अवमघटी को बीस से भाग देकर उसमें जोड़ देना ६३९ से भाग देकर जो अवम हो उसको पृथक् स्थापित पूर्वोक्त (शुद्धिरहित चैत्रादितिथि) में घटाने से अहर्गण होता है ॥

इसकी उपपत्ति पूर्वश्लोकों की उपपत्तियों से स्पष्ट है ॥२७-२८॥

प्रकारान्तरेण लघ्वहर्गणानयनमाह।

वाऽवमघटिकायुक्तस्तिथिनिकरः शुद्धिहीनोऽधः।
दिग्घ्नाऽवमघटिकाभ्यः खरसाप्तयुतोऽङ्कभुजरसहताभ्यः ॥२६॥
नवगुणरसैर्विभक्तः फलावमोनो भवेद्द्युगणः।

वि. भा.— वा तिथिनिकरः (चैत्रादितिथिसमूहः) शुद्धिहीन· (शुद्धिरहितः) अधः (पृथक् स्थाप्यः) अवमघटिकायुक्तः, दिग्घ्नाऽवमघटिकाभ्यः (दशगुणिताऽवमघटीभ्यः) तथा अङ्कभुजरसहताभ्योऽवमघटिकाभ्यः (६२६ गुणितावमघटिकाभ्यः) खरसाप्तयुतः (षष्ट्या भजनेन यल्लब्धं तेन युतः) नवगुणरसैर्विभक्तः (६३६ एभिर्भक्तः) फलावमोनः (लब्धावमेन पृथक् स्थापितो रहितः) तदा द्युगणः (अहर्गणः) भवेदिति ॥

अस्याप्युपपत्तिः पूर्ववदेव ज्ञेयेति।

हि. भा.—चैत्रादितिथि में शुद्धि को घटाकर दो जगह रखना, एक जगह में अवमघटी जोड़ना। दशगुणित अवमघटी में तथा ६२६ गुणित अवमघटी में साठ से भाग देकर जो फल हो उसे उसमें जोड़ देना, ६३६ इतने से भाग देने से जो लब्ध अवम हो उसको पूर्वोक्त पृथक् स्थापित (शुद्धिरहिततिथि) में घटाने से अहर्गण होता है।

इसकी भी उपपत्ति पूर्ववत् समझनी चाहिये ॥२६॥

अथ रविमासान्तेऽधिमासानयनम्।

विश्वाग्नि नन्दाष्टकुभिर्मूर्च्छनाभ्राङ्कखाक्षिभिः ॥ ३० ॥
रविमासा हता भक्ताः खखाभ्रद्वित्रिसागरैः।
दिनावमानि तद्योगः खाग्निभक्तोऽधिमासकाः ॥३१॥
शेषं दिनादिशुद्धिर्वा विकलं दिनशेषतः।
दिग्घ्नमासस्य योगात्स्यात्स्फुटश्चाधिकमासकः ॥३२॥

वि. भा.—विश्वाग्निन्दाष्टकुभिः (१८६३१३) मूर्च्छनाभ्राङ्कखाक्षिभिः (२०६०२१) रविमासाः (इष्टसौरमासाः) हताः (गुणिताः) खखाभ्रद्वित्रिसागरैः (४३२०००) भक्ताः (भाजिताः) दिनावमानि स्युः (एकत्र दिनाद्यं परत्रावमाद्यम्) तद्योगः (तयोर्दिनादिक्षयाद्योर्योगः) खाग्निभक्तः (त्रिंशद्भक्तः) तदाऽधिमासाः स्युः दिग्घ्नमास्ययोगात् (दशगुणितसौरमासयोजना) स्फुटः (सूक्ष्मः) अधिमासको भवेत्। शेषं दिनादिशुद्धिः स्यात्।

अत्रोपपत्तिः।

कलियुगे दिनाद्यम् = १८६३१३। अवमाद्यम् = २०६०२१ तदाऽनुपातात्सौरमान्तकालिकं दिनाद्यमवमाद्यं चानेतव्यम्। यदि कलिवर्षैः पूर्वकथितं दिनाद्यमवमाद्यं च लभ्यते तदा रविमासैः किमित्यनुपातेन रविमासान्तिकं दिनाद्यमवमाद्यं भवेत्। अत्र सौरवर्षेणानुपात उचितः सौरमासान्नहि। ततो "दिनादिक्षयाहादिग्घ्नाब्दयोग"

इत्यादिवत्सौरमाससम्बन्धेन गताधिमासाः सौरमासान्तिकाः समागमिष्यन्तीति ॥

*हि. भा.*१—८६३१३, २०६०२१ इनको सौरमास से गुणकर ४३२००० इतने से भाग देने से दिनादि और अवमादि होते हैं। दोनों के योग में तीस से भाग देने से अधिमास होता है। दशगुणितमास जोड़ने से स्फुट अधिमास होता है। शेष दिनादि शुद्धि होती है ॥३०-३२॥

उपपत्ति

कलियुग में दिनादि=१८६३१३। अवमादि=२०६०२१ तब अनुपात से इष्ट सौरमासान्तकालिक दिनादि और अवमादि लानी चाहिये। यदि कलिवर्ष में उपरिलिखित दिनादि और अवमादि पाते हैं तो इष्ट सौरमास में क्या इस अनुपात से सौरमासान्तकालिक दिनादि और अवमादि का प्रमाण आजायगा। यहां सौरवर्ष पर से अनुपात करना उचित है। परन्तु सौरवर्ष से अनुपात करने से सौरवर्षान्तकालिक होगा तब दिनादि और अवमादि से "दिनादि क्षयाहादि दिग्घ्नाब्दयोगः" इत्यादि के तरह इष्टसौरमास सम्बन्ध से सौरमासान्त कालिक अधिमास होता है ॥३०-३२॥

इदानीं लघ्वहर्गणानयनमाह।

शुद्ध्यूना दिवसा मासाद्गताः शिवहताः पृथक्।
अवमविकलाद्द्विगोरसनिघ्नात्स्वच्छेदसंयुतात् ॥३३॥
त्रिखनगहतात्फलोनाद्द्युगणे मासाधिपस्ततो ज्ञेयः।

वि. भा.—मासात् (गतसौरमासात्) गतदिवसाः (गतसौरदिवसाः) शुद्धच्यूनाः (शुद्धिदिनरहिताः) शिवहताः (एकादशगुणिताः) पृथक् (स्थानद्वये स्थाप्याः) अवमविकलात् (अवमशेषात्) द्विगोरस निघ्नात् (६६२ गुणितात्) स्वच्छेदसंयुतात्, त्रिखनगहतात् (७०३ भक्तात्) फलोनात् (फलरहितात्) द्युगणः (अहर्गणः) भवेत्, ततोऽहर्गणान्मासाधिपः (मासेशः) ज्ञेय ॥३३॥

अस्योपपत्तिः (२१-२२) श्लोकोपपत्तिवद्बोध्या, तत्र तिथिसम्बन्धेनोपपत्तिरत्रगतसौरमासदिन सम्बन्धेनोपपत्तिः कार्येत्येतावदेवान्तरमिति, तत्र यादृशी विदशवर्णनशैली न तादृशी वर्त्ततेऽत्र किन्तु विषयस्त्वेक एव तत्र वर्षपतिविचारोऽत्र मासपतेरिति ॥

हि. भा.—गतसौरमास सम्बन्धी दिनों (गतसौरदिनों में) शुद्धिदिन को घटा कर ग्यारह से गुण देना उसको दो स्थानों में रखना, अवमशेष को ६६२ से गुणकर अपना हर जोड़कर ७०३ से भाग देकर जो फल हो उसको घटाने से अहर्गण होता है। उस पर से मास पति का ज्ञान करना चाहिए ॥३३॥

इनकी उपपत्ति (२१-२२) श्लोक की उपपत्ति की तरह समझनी चाहिए, वहां तिथि के सम्बन्ध से उपपत्ति की गई है यहां गतसौरदिनों से उपपत्ति करनी चाहिए यही अन्तर है लेकिन जिस तरह प्रतिपादन शैली वहां है यहां कुछ संकुचित रूप में है। विषय

वही कहते हैं किन्तु कहने की रूपरेखा कुछ संकुचित है वहां वर्षपति का विचार है यहां मासपति का विचार है दोनों में अहर्गण की जरूरत होती है इसलिये वहां भी अहर्गण का ज्ञान किया गया है यहां भी अहर्गण का ज्ञान किया गया है ॥३३॥

द्विखेभैः कुगुणैर्नन्दजिनैर्बाणैर्नगाङ्ककैः ॥३४॥
द्वाभ्यां तु सौराहर्गणं हन्याल्लिप्ता निशाकरात् ।

वि. भा.—द्विखेभैः (८०२) कुगुणैः (३१) नन्दजिनैः (२४९) बाणैः (५) नगाङ्ककैः (९७) द्वाभ्यां सौराहर्गणं हन्यात् (गुणयेत्) तदा निशाकरात् (चन्द्रादारभ्य सर्वेषां ग्रहाणां) लिप्ताः (कलाः) स्युरिति ।

अत्र युक्तिः ।

कल्पसौरदिनैः कल्पग्रहभगणकला लभ्यन्ते तया गतसौरदिनैः किमित्यनुपातेन तेन सौरदिनान्तकालिका ग्रहाः समागच्छन्ति ; $\frac{\text{कल्पग्रभक} \times \text{गतसौदि}}{\text{कसौदि}}$ =ग्रहकला अत्र कल्पभगणकलायां कल्पसौरदिनैर्भजनेन श्लोकोक्ता गुणकाङ्काः समागच्छन्ति तदा सौराहर्गण × गुणकाङ्क = चन्द्रादिग्रहकला, एते कलात्मकग्रहाः सौराहर्गणान्तकालिका भवन्ति । अतः सिद्धम् ॥३४॥

हि. भा.—८०२, ३१, २४९, ५, ९७, २ इन अंकों से सौराहर्गण को गुणने से चन्द्रादिग्रहों की कला होती है अर्थात् कलात्मक चन्द्रादिग्रह सौराहर्गणान्त कालिक होते हैं ॥३४॥

उपपत्तिः ।

यदि कल्पसौरदिन में कल्पग्रहभगण कला पाते हैं तो सौराहर्गण में क्या इस अनुपात से सौरदिनान्तकालिक ग्रहकला आती है , $\frac{\text{कल्पग्रहभगणक} \times \text{सौराहर्गण}}{\text{कसौरदि}}$ =ग्रहकला ।

यहां पर कल्पग्रहभगणकला में कल्पसौरदिन से भाग देने से क्रमशः श्लोकोक्त चन्द्रादि ग्रहों के गुणकाङ्क होते हैं तब सौराहण × गुणकाङ्क = चन्द्रादिग्रहकला सौराहर्गणान्तकालिक ।

इदानीं सौरदिनान्तकालिकचन्द्रादिग्रहपाताद्यंशानाह ।

वेदाग्नित्रिभुजैः सप्तव्योमबाहुभिः सैककैः ॥३५॥
वेदाङ्गाक्षिभुजैः पञ्च पञ्च व्योम निशाकरैः ।
कृतनन्दशराङ्कैश्च द्विवेदांगैर्द्विधास्थितैः ॥३६॥
खखव्योमाष्टभिरुच्चपातांशैर्निजसंगुणैः ।
शिवनेत्राङ्गविशिखैर्वेदाग्न्यक्षिरसैककैः ॥३७॥
खखखाक्षिनगांशैर्वा दिनकृद्दिवसान्तिकाः ।

वि. भा.—वेदाग्नित्रिभुजैः (२३३४) सप्तव्योमबाहुभिः सैककैः (एकसहितः सप्तशून्यभुजैः २०८) वेदाङ्गाक्षिभुजैः (२२६४) पञ्चपञ्चव्योमनिशाकरैः (१०५५)

कृतनन्दशराङ्कैः (६५६४) द्विवेदाङ्कैः (६४२) द्विधास्थितम् (स्थानद्वये स्थापितैरर्थादुपरि प्रोक्तैश्चन्द्रादिग्रहगुणकाङ्करधः) प्रदर्शितैश्चन्द्रमन्दोच्चगतबुधपातशुक्रपात गुणकाङ्कैः) खखव्योमाष्टभिः (८०००) शिवनेत्राङ्ग विशिखैः (३६२११) वेदाग्न्यक्षिरसैककैः (१६२३४) खखखाक्षिनगांशैः (७२००० अंशैः) निजसङ्गुणैः (स्वगुणकाङ्कैः) उच्चपातांशैः (चन्द्रमन्दोच्चपाताद्यंशैः) दिनकृतदिवसान्तिकाः (सौराहर्गणान्तकालिकाः) चन्द्रादिग्रहमन्दोच्चपातादयो भवन्तीति ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि कल्पसौरदिनैः कल्पग्रहमन्दोच्चपातादि भगणांशा लभ्यन्ते तदा सौराहर्गणेन किमित्यनुपातेन सौराहर्गणान्तकालिकाश्चन्द्रादिग्रहास्तदुच्चपातादयोंशात्मका भवेयुरिति तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{कल्पग्रहादि भगणांश} \times \text{सौराहर्गण}}{\text{कसौरदि}}$ चन्द्रादिग्रहमन्दोच्चपातभगणांशग्रहणेन गुणकाङ्क $\times$ सौराहर्गण $=$ चन्द्रादिग्रहमन्दो पातांशाः सौराहर्गणान्ते, गुणकाङ्काः सर्वेषां चन्द्रादिग्रहाणां मन्दोच्चपातानां स्वस्वभगणांश वशेन भिन्ना भिन्ना भवन्ति, ते च गुणकाङ्का श्लोकोक्ताः सन्तीत्यतः सिद्धम् ॥३५-३७॥

हि. भा.—२३३४, २०८, २२६४, १०५५, ६५६४, ६४२ चन्द्रादिग्रहों के लिये इन गुणकांकों से और चन्द्रमन्दोच्चपातों के लिये (८०००), ३६२११, १६२३४, ७२०००, इन गुणकाङ्कों से ये ग्रह सौराहर्गणान्तकालिक होते हैं ॥

उपपत्ति

यदि कल्पसौरदिन में कल्पग्रहादिभगणांश पाते हैं तो सौराहर्गण में क्या इस अनुपात से सौराहर्गणान्तकालिक चन्द्रादिग्रहों का तथा उनके मन्दोच्चपातों के अंशात्मक प्रमाण आता है। $\frac{\text{कल्पग्रहादिभगणांश} \times \text{सौराहर्गण}}{\text{कल्पसौदि}}$ $=$ ग्रहादि के अंशात्मक मान। यहां कल्पभगणांश के स्थान में चन्द्रादिग्रहों में से या मन्दोच्च, पातों में से जिसका भगणांश ग्रहण करेंगे उनको अंशात्मक प्रमाण आते हैं। सौराहर्गण $\times$ गुणक $=$ अंशात्मक चन्द्रादिग्रह या पातमन्दोच्च, भगणांश के भिन्न-भिन्न होने से गुणकाङ्क भी भिन्न-भिन्न होता है, वे गुणकाङ्क श्लोक कथित हैं। इस तरह सौराहर्गणान्तकालिक सब ग्रह, चन्द्रमन्दोच्च, पात, बुध और शुक्र के पात होते हैं ॥३५-३७॥

इदानीं चन्द्रवर्षपतिज्ञानार्थमहर्गणानयनार्थमवतरणमाह ।

प्राग्वद्रविदिवसेभ्यो गुणकेभ्यः खाग्निसङ्गुणहरेण
दिवसावमात्र शुद्धिरिनदिवसयुतिर्दिनाधिपश्च तथा ॥३८॥

वि. भा.—प्राग्वत् (चैत्रादितिथिनिकर इत्यादिवत्) रविदिवसेभ्यो गुणकेभ्यः (सौराहर्गण रूपाहर्गण गुणकादिभ्यः) खाग्निसङ्गुणहरेण (त्रिंशद्गुणितहरेण) अत्र दिवसावमा (अवमदिनं) शुद्धिः (दिनादिशुद्धिः) इनदिवसयुतिः (सौराहर्गण-

युतिः) अर्थाद्यथा चैत्रादितिथिनिकर इत्यादिनाऽहर्गणानयनं विधाय दिनपतिज्ञानं भवति तथैवाऽत्रापि सौराहर्गणान्ते दिनपतिज्ञानं भवतीत्यहर्गणानयनयावतरण-रूपमस्ति, श्लोकेष्वग्रिमेष्वेतदनुसारमेवाहर्गणानयनं क्रियते इति ॥३८॥

हि. भा.—पहले की तरह (चैत्रादितिथिनिकर इत्यादि की तरह) सौरदिनरूप अहर्गण के गुणक से और तीस गुणित हर से कार्य करना चाहिये यहां अवमदिन शुद्धि है। शुद्धि—सौरदिन के योग पर से दिनपति का ज्ञान करना। कहने का अभिप्राय यह है कि "चैत्रादितिथिनिकरः" इत्यादि से अहर्गणानयन कर जिस तरह दिनपति-ज्ञान किया गया है उसी तरह यहाँ भी सौराहर्गणान्त में दिनपति ज्ञान करना चाहिये यह अहर्गणानयन के लिये अवतरण है आगे के श्लोकों में इसी के अनुसार अहर्गणानयन किया जाता है ॥३८॥

इदानीं चन्द्रवर्षपतिज्ञानार्थमहर्गणानयनमाह।

भांशविभक्तदिनेभ्यो वर्षाण्यवमशेषतः खगुणात् ॥३९॥
मासाश्चैत्रसिताद्याः शेषदिवसास्ततोऽभीष्टाः।
दिवसशुद्धिविहीनाः कार्यास्तेभ्यो युगवमपि ॥४०॥
ऊनासावनद्युशुद्धिर्भानोर्वर्षान्तजैर्दिनैरूनैः।
शेषं शोध्यं द्युगणो वर्षपतेर्ज्ञानमस्माद्वै ॥४१॥

वि. भा.—भांशविभक्तदिनेभ्यः (३६० विभक्तसौरदिनेभ्यः) वर्षाणि (सौर-वर्षाणि) भवन्ति खगुणैः (त्रिंशद्भिर्गुणितादिति शेषः) अवमशेषतः (अवमशेषात्) चैत्रसिताद्या ये मासास्तदन्तर्गता दिवसास्ततः शेषदिवसाश्चाभीष्टा दिवसा अर्थाच्चैत्र शुक्लप्रतिपदादित इष्टदिनं यावदिष्टदिवसाः, दिवसशुद्धिविहीनाः (शुद्धदिनरहिताः) कार्याः, तेभ्योऽवमपि (वर्षान्तकालिकं दिनक्षयशेषं) युक् (योज्यम्) ऊना (क्षयशेषा) सावनद्युशुद्धिः (सावनदिनशुद्धिः) भवति, भानोर्वर्षान्तजैः (सूर्यस्य वर्षान्तकालिकैः) ऊनैः (दिनक्षयैः) शोध्यं (विहीनं) शेषं (अवशिष्टं) द्युगणः (अहर्गणः) भवेत्। अस्मात् (अहर्गणात्) वर्षपतेर्ज्ञानं कार्यमिति।

अत्रोपपत्तिः

चैत्रशुक्लप्रतिपदादितो ये मासागतास्तत्सम्बन्धीनि यानि दिनानि तथा वर्त्तमानमासस्येष्टदिनं यावत् यावन्ति दिनानि, इति मिलित्वेष्टदिनानि भवन्ति तेषु यदि शुद्धिदिनानि विशोध्यन्ते तदा चैत्राद्यवमशेषं सूर्योदयामान्तयोरन्तरं भवति तत्र वर्षान्तकालिकमवमशेषं योज्यम्। यतः शुद्धिदिनशोधनावसरे न शोधितं तद्योज्यते तदेव शुध्यति, तथा तत्र वर्षान्तकालजावमदिनैर्विशोधनेनाहर्गणो भवेत्स च सप्तभक्ता-वशिष्टो वर्षपत्यादिरिति ॥३९-४१॥

हि. भा.—तीन सौ साठ से सौर दिनों में भाग देने से सौर वर्ष होते हैं। तीसगुणित अवम शेष से चैत्रशुक्लादि जो मास हैं तदन्तर्गत दिन और शेष दिन(वर्त्तमान मास का इष्टदिन तक दिन-संख्या) मिलकर अभीष्ट दिन है। अभीष्ट दिन संख्या में शुद्धि दिन को घटा देना उसमें

वर्षान्त कालिक क्षयशेष जोड़ देना, वर्षान्तिकालिक क्षय दिन घटा देने से अहर्गण होता है। इस पर से वर्षपति का ज्ञान करना चाहिये ।।

उपपत्ति

चैत्र शुक्ल प्रतिपदादि से जो मास है (गतमास) सम्बन्धी दिनों में वर्त्तमान मास के इष्टदिन तक संख्या जोड़ने से जो दिन होते हैं वे इष्टदिन हैं। उनमें दिनशुद्धि को घटा देने से शेष चैत्राद्यवम शेष होता है। इसमें वर्षान्तिकालिक अवमशेष को जोड़ना चाहिये क्योंकि शुद्धिदिन घटाने के समय नही घटाया गया उसका जोड़ना वही घटाना होगा। उसमें वर्षान्त कालोत्पन्न दिनक्षय को घटा देने से अहर्गण होता है, इसमें सात से भाग देने से शेष वर्ष-पत्यादि होते हैं ।। ३९-४१ ।।

इदानीमहर्गणानयने विशेषमाह ।

द्विनवरसघ्नाद्भक्तात्स्वच्छेदेनावमाद् विशुद्धयति न चेत् ।
शोध्यं द्युगणाद्रूपे शुद्धे गुणखागसंयुताश्छेद्याः ।। ४२ ।।
शेषं तद्दिवसोत्थं विकलं त्ववमस्य विज्ञेयम् ।

वि. भा.—द्विनवरसघ्नात् (६९२ गुणितात्) स्वच्छेदेन विभक्तात् (स्वहरेण भक्तात्) अवमात् (क्षयदिनात्) चेद्यदि शुद्धिः (दिनशुद्धिः) न विशुद्धयति तदाऽवम शेषाः गुणखाग (७०३) संयुताः कार्यास्ततः शुद्धिं शोधयेत्। छेद्याः (हरेण भाज्याः) शेषं तद्दिवसोत्थं (सौरदिनान्तकालिकं) अवमस्य विकलं (अवमशेषं) विज्ञेयम्। एतस्मात्साधितात् द्युगणात् (अहर्गणात्) रूपे शुद्धे (एकहीने) वास्तवोऽहर्गणो भवेदिति ।।

अत्रोपपत्तिस्तु यद्यपि "चैत्रादिस्तिथिनिकर" इत्यादि पर्यालोचनया) स्फुटाऽस्ति तथापि किञ्चिदुच्यते। "मासाश्चैत्रसिताद्याः शेषदिवसास्ततोऽभीष्टाः। दिवसशुद्धिविहीनाः" अत्रेष्टदिनसंख्यायां शुद्धिशोधनं कृत्वा तदुपपत्तिः प्रतिपादिता, यदि शुद्धिर्न शुध्यति तदा किं कार्यमित्येवात्र कथ्यते। चैत्रादिस्तिथिनिकर इत्यादेरुपपत्तौ "यदि शुद्धिसावनदिनैश्चैत्र शुक्ल प्रतिपदादितिथय ऊनीक्रियन्ते तदा चैत्राद्यवम शेषं सूर्योदयामान्तयोरन्तरं भवति, अवमांशा अधिकाः शुद्ध्यूना द्रष्टव्याः। ततो यदि ७०३ संख्यकैश्चान्द्रदिनैरेकादशावमानि लभ्यन्ते तदा वर्षान्ताद् गततिथिभिः किमित्यनुपातेन सशेषावम प्रमाणमायाति, वर्षान्ते यदवमशेषं तत्त त्रैव योज्यते यतः शुद्धिशोधनावसरे न शोधितं तद्योज्यते तदेव शुध्यति, चन्द्रदिनान्युपरि शुद्धानि सन्ति, अतोऽवमांशाः ७०३ गुणिताः सवर्णीभवन्ति, एवं यल्लब्धमेकादश-गुणतिथिषु यावदवमांशास्तेष्वेव तिथिष्वधिकास्तिष्ठन्ति ते च तिथिभिः सहैकादश-गुणा भवन्ति यतः ७०३ एभ्य एकादश विशोधनेन ६९२ एतावन्तोऽवमांशा जाता गुणकाः। स्वच्छेदो भागहारः फलमेकादशगुणिततिथिषु योज्यमवमं भवति" इति हृदि निधायात्र विचारकरणेन स्फुटं भवति। द्विनवरघ्नात्स्वहरेण विभक्तादवम शेषाच्छुद्धिर्न शुध्यति तदा ७०३ युक्तादवमशेषाच्छोधयेत्। अर्थादवमशेषे ७०३

संयोज्य पश्चाच्छुद्धिं शोधयेत् । शुद्धिशब्देनात्रावमदिनानि कथ्यन्ते । ततः पूर्वोक्त-क्रियाकरणेन वर्षान्तावमशेषं भवति । अत्र योऽहर्गणः समागच्छति तत्राप्येकयोजनं कार्यमिति ।। ४२ ।।

हि॰ भा.—यदि ६६२ से गुणित अपने हर से विभक्त अवमशेष में शुद्धि नहीं घटे तो अवम-शेष में ७०३ इतना जोड़कर शुद्धि को घटाना उस पर से जो शेष रहे उसको अपने हर से भाग देना तब वर्षान्तकालिक अवम शेष होता है । इस पर से जो अहर्गण होता है उसमें एक जोड़ना चाहिये ।।

इसकी उपपत्ति यद्यपि "चैत्रादिस्तिथिनिकरः" इत्यादि को देखने से साफ है तथापि कुछ कहते हैं, "मासाश्चैत्रसिताद्याः शेषदिवसास्ततोऽभीष्टाः । दिवसशुद्धिविहीना" यहां इष्टदिन संख्या से शुद्धि को घटाकर उपपत्ति कही गई है । लेकिन यदि शुद्धि न घटे तब क्या करना चाहिये वही बात यहां कहते हैं । "चैत्रादिस्तिथिनिकरः" इत्यादि की उपपत्ति में यदि चैत्र शुक्ल प्रतिपदादि तिथियों में शुद्धि सावन दिन को घटा देते हैं तो सूर्योदय और अमान्त के अन्तर्गत, चैत्राद्यवम शेष रहता है । तब यदि ७०३ इतने चान्द्र दिनों में ११ अवम पाते हैं तो वर्षान्त से गततिथि में क्या इस अनुपात से शेष सहित गतावम प्रमाण आता है । वर्षान्त में जो अवम है उसको वहीं जोड़ना चाहिये क्योंकि शुद्धि घटाते समय न घटाया गया उसका जोड़ना शोधन का काम करता है । चान्द्रदिन शुद्ध हैं । इसलिये अवमांश को ७०३ गुणने से सजातीय हो जाता है । इस तरह जो लब्ध होता हैं ग्यारह गुणित जो अवमांश हैं वे उन्हीं तिथियों में अधिक हैं वे तिथियों के साथ ग्यारह गुणित होते हैं क्योंकि ७०३ इनमें ११ ग्यारह घटाने से ६६२ इतने अवमांश गुणक होते हैं । हर से भाग देने पर जो होता है उसको ग्यारह गुणित तिथि में जोड़ने से अवम होता है ।" इनको अपने हृदय में रख कर विचार करने से सब बातें साफ हो जाती हैं । यदि ६६२ से गुणित अपने हर से विभक्त अवम शेष में शुद्धि न घटे तो अवम शेष में ७०३ जोड़कर शुद्धि को घटाना चाहिये । शुद्धि से यहां अवमदिन ली गयी है । इस पर से पूर्वोक्त क्रिया द्वारा वर्षान्तकालिक अवम-शेष होता है । इस पर से जो अहर्गण आवे उसमें एक जोड़ना चाहिये ।। ४२ ।।

इदानीं चान्द्रमाससम्बन्धेन मासपतिज्ञानमाह ।

त्र्यग सप्तनभोऽब्धि त्रिहता रजनीश मासका भक्ताः ।
नन्दाष्टाग्नि रसाक्षि द्विभुजैर्मासाधिपो मासात् ।। ४३ ।।

वि. भा.—रजनीशमासकाः (गतचान्द्रमासाः) त्र्यगसप्तनभोऽब्धित्रिहताः (३४०७७३ एतैर्गुणिताः) नन्दाष्टाग्नि रसाक्षि द्विभुजैः (२२२६३८६ एभिः) भक्ताः (विभाजिताः) तदा मासात् मासाधिपो भवेत् ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अत्रानुपातः क्रियते यदि युगचान्द्रमासैर्युगसावनदिनानि लभ्यन्ते तदेष्टचान्द्रमासैः किमित्यनुपातेनेष्टचान्द्रमाससम्बन्धिसावनदिनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युकुदिन} \times \text{गतचान्द्रमास}}{\text{युचांमा}}$ अत्र हरभाज्यस्थयोर्युगचान्द्रमास युगकुदिनयोरपवर्त्तनेन हरगुणावुत्पद्येते । ततो मासपतिज्ञानं सुगममिति ।।

हि. भा.—गतचान्द्रमास को ३४०७७३ इतने से गुणाकर २२२६३८६ इनसे भाग देने से जो फल होता है उससे मासपति होते हैं (अर्थात् मासपति का ज्ञान होता है) ॥ ४३ ॥

उपपत्ति

यहां अनुपात करते हैं यदि युग चान्द्रमास में युगकुदिन पाते हैं तो गतचान्द्रमास में क्या इस अनुपात में गतचान्द्रमाससम्बन्धी सावन दिन प्रमाण आ जायेंगे।

$\frac{\text{युकुदिन} \times \text{गतचान्द्रमास}}{\text{युचांमा}}$ = गतचान्द्रमाससम्बन्धी कुदिन। यहाँ हर और गुणक को अपवर्त्तन देने से पठितहर और गुणक होते हैं, तब मासपति ज्ञान सुलभ है॥ ४३ ॥

इदानीं चान्द्रवर्षपतिदिनपत्योर्ज्ञानमाह।

स्वच्छेदेन युगाधिमासनिहता मासा गता भास्करा
भानोर्मासगणोद्धृताः फलयुताश्चान्द्राः शरैस्ताड़ितात्।
शेषादङ्कशरेषु बाणखनवस्तम्बेरमाप्तांशकै-
रूनश्चैत्रसितादि मासकगणो रव्याद्यचन्द्रद्युपौ ॥ ४४ ॥

वि. भा.—स्वच्छेदेनेत्यस्य पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः। गता भास्करा मासाः (गतसौरदिवसाः) युगाधिमासनिहताः (युगपठिताधिमासगुणिताः) भानोर्मासगणोद्धृताः (युगपठित सौरमासभाजिताः) फलयुता गता भास्करा मासाः (फलसहिता गतसौरमासाः) तदा चान्द्राः (इष्ट चान्द्रमासाः) भवन्ति, शरैः (पञ्चभिः) ताड़ितात् (गुणितात्) शेषात्, अङ्कशरेषु बाणखनवस्तम्बेरमाप्तांशकैः (८६०५५५६ एभिर्भजनेन यत्फलं) तैरूनः (वर्जितः) चैत्रसितादिमासकगणो भवेत्। ततो रव्यादिकश्चान्द्रवर्षपतिर्दिनपतिश्च भवेदिति ॥ ४४ ॥

अत्रोपपत्तिः।

यदि युगसौरमासैर्युगाधिमासा लभ्यन्ते तदा गतसौरमासैः किमित्यागता गताधिमासाः सशेषास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युअमा} \times \text{गतसौमा}}{\text{युसौमा}} = \text{गअमा} + \frac{\text{अशे}}{\text{युसौमा}}$

गतसौरमासे गताधिमासयोजनेनेष्ट चान्द्रमासा भवन्ति। ततोऽनुपातो यदि ८६०५५५६ चान्द्रमासैः पञ्चक्षयमासा लभ्यन्ते तदाऽऽनीतचान्द्रमासैः किमित्यनुपातेन गतावमः सशेषाः समागच्छन्ति, एभिरूनिताः पूर्वानीत चान्द्रमासा इष्टसावनमासा भवन्ति ततो दिनपत्यादिज्ञानं सुगममिति ॥

हि. भा.—गत सौरमास को युगपठित अधिमास से गुणाकर युगपठित सौरमास से भाग देने से जो फल हो उसको गतसौरमास में जोड़ने से इष्टचान्द्रमास होते हैं। पञ्चगुणित शेष में ८६०५५५६ से भाग देने पर जो फल हो उसको इष्टचान्द्रमास में घटाने से इष्ट सावन मास होता है इस पर से रव्यादि चन्द्रवर्षपत्यादि होते हैं॥ ४४ ॥

उपपत्ति

यदि युगसौरमास में युगाधिमास पाते हैं तो गतसौरमास में क्या इस अनुपात से सशेषगताधिमास प्रमाण आते हैं। $\frac{\text{युअम} \times \text{गसौमा}}{\text{युसौमा}} = \text{गअमा} + \frac{\text{अशे}}{\text{युसौमा}}$ गतसौरमास में गताधिमास जोड़ने से इष्टचान्द्रमास होते हैं। तब अनुपात करते हैं कि ८९०५५५६ चान्द्रमास में ५ पांच क्षयमास पाते हैं तो आनीत चान्द्रमास में क्या इस अनुपात से सशेष गतावम प्रमाण आता है। इसको पूर्वानीत चान्द्रमास में घटाने से इष्टसावनमास होते हैं। इस पर से रव्यादि वर्षपति दिनपति का ज्ञान सुलभ है ॥ ४४ ॥

इदानीं चन्द्रादिग्रहादीनां प्रतिमासक्षेपानाह।

तिथयोऽष्टदृशो देयाः प्रतिमासमंशकादिकुजे ॥
एवं शशिसुतशीघ्रे खार्काः खशराः शरेषवोमासि ॥४५॥
पूर्ववदमरपतीज्ये वाह्वग्नि धिष्ण्यानि सनवकानि ॥
दानववन्दितशीघ्रे नगवेदा त्रीन्दवोऽब्धिकृताः ॥४६॥
लिप्तादिभास्करसुते नवविषयाः पञ्चशीतकराः ॥
शिशिरकरेंऽशादौ शिखिनो विधृतिर्निशाकरकराश्च ॥४७॥
ग्रहणविचीर्ये पाते कलादि खगुणाः खसागराः सूर्याः ॥
भूदेवा रामशराः पाते गजमूर्च्छना हि लिप्तोनाः ॥४८॥

वि. भा.—तिथयः (१५) अष्टदृशः (२८) प्रतिमासं अंशकादिकुजे (अंशादि-मङ्गले) क्षेप्यमिति। एवं खार्काः (१२०) खशराः (५०) शरेषवः (५५) मासि (प्रत्येकमासे) शशिसुतशीघ्रे (बुधशीघ्रोच्चे) क्षेप्याः। पूर्ववत् अमरपतीज्ये (बृहस्पतौ) बाह्वग्नि (३२) धिष्ण्यानि (२७) सनवकानि (नवसहितानि तानि) प्रतिमासं क्षेप्यानि, नगवेदाः (४७) त्रीन्दवः (१३) अब्धिकृताः (४४) प्रतिमासं दानव वन्दितशीघ्रे (शुक्रशीघ्रोच्चे) क्षेप्याः। नवविषयाः (५९) पञ्चशीतकराः (१५) लिप्तादिभास्करसुते (कलादिशनैश्चरे) क्षेप्याः। शिखिनः (३) विधृतिः (१७) निशाकरकराः (२१) शिशिरकरेंऽशादौ (चन्द्रांशादौ) क्षेप्याः। खगुणाः (३०) खसागराः (४०) सूर्याः (१२) ग्रहणविचीर्ये पाते (राहौ) कलादौ क्षेप्याः। पाते भूदेवाः (३३१) रामशराः (५३) गजमूर्च्छनाः (१०८) लिप्तोनाः (एतावन्तोऽङ्काः कलादिषु हीनाः कार्याः) इति ॥४५-४८॥

अत्रोपपत्तिः।

यदि कल्पसौरमासैः कल्पग्रहादिभगणांशा लभ्यन्ते तदैकेन सौरमासेन किमिति फलमेकमानसम्बन्धि ग्रहाद्यंशास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{कल्पग्रहादिभगणांश} \times १}{\text{कल्पसौमा}}$

$= \frac{\text{कल्पग्रहादिभगणांश}}{\text{कल्पसौमा}}$ अत्र चन्द्रादिग्रहाणां पातस्य च कल्पपठितभगणानां

कल्पसौरमासप्रमाणस्य च मानग्रहणेनोपर्युक्तानां ग्रहाणां पातस्य च प्रतिमासक्षेपाः समागमिष्यन्ति ये च श्लोकोक्ताः सन्ति। युगसौरमासैर्युगग्रहभगणवशेनापि पूर्ववन्मासक्षेपप्रमाणानयनं कार्यमिति ॥

हि॰ भा॰—१५, २८ प्रतिमास अंशादिमङ्गल में जोड़ना, १२० । ५० । ५५ प्रत्येक मास में बुधशीघ्रोच्च में जोड़ना, बृहस्पति में ३२ । २७ । ६ प्रतिमास जोड़ना, शुक्रशीघ्रोच्च में ४७ । १३ । ४४ प्रत्येक महीना जोड़ना, ५६ । १५ कलादि शनैश्चर में जोड़ना । ३ । १७ । २१ अंशादि चन्द्रमा में जोड़ना, ३० । ४० । १२ कलादि राहु में जोड़ना । ३३१ । ५३ । २१८ कलादिपात में घटाना चाहिये ॥४५-४८॥

उपपत्ति

यदि कल्पसौरमास में कल्प चन्द्रादिग्रह और पात के भगणांश पाते हैं तो एक सौरमास में क्या इस अनुपात से एक सौरमास में उनके अंशात्मक प्रमाण आ जायेंगे ।

$\frac{\text{कल्पग्रहादिभगणांश} \times १}{\text{कल्पसौमा}} = \frac{\text{कल्पग्रहादिभगणांश}}{\text{कल्पसौमा}}$ यहां चन्द्रादिग्रहों के और पात के पठित भगणों के मान और कल्पसौरमास से उत्थापन देने से चन्द्रादिग्रहों के और पात के प्रति मासक्षेप प्रमाण आ जायेंगे जो कि श्लोकों में कहे गये हैं । यहां युगपठित भगण और सौरमास से भी पूर्ववत् अनुपात द्वारा उक्त ग्रहादियों के प्रतिमासक्षेप आजायेंगे ॥ इति ॥
॥४५-४७॥

इदानीं कुजादीनां ग्रहाणां प्रतिमासक्षेप (धनकला) कलासम्बन्धे तद्गतिज्ञानमाह ।

गोऽर्कैर्नागनखैः पयोधिखसुरैः पक्षाष्टिभिर्मासजा ।
स्त्रिद्व्यङ्गैः शरधीकुभिः सुरगजैर्भूजादिक स्वंकलाः ॥
हानिर्जीवबुधार्कजेषु कलिका मासोपभोगा हृताः ।
खाज्यांशैरिनवासरे ग्रहगतिर्ज्ञेया ततः सावना ॥ ४६ ॥

हि॰ भा॰—गोऽर्कैः (१२६) नागनखैः (२०८) पयोधिखसुरैः (३३०४) पक्षाष्टिभिः (१६२) त्रिद्व्यङ्गैः (६२३) शरधीकुभिः (१५५) सुरगजैः (८३३) मासजाः (मासोत्पन्नाः) भूजादिक स्वकलाः (कुजादिग्रहधनकलाः) भवन्ति । जीवबुधार्कजेषु (बृहस्पतिबुधशीघ्रोच्चशनैश्चरेषु) हानिः (एतेषां कथितकला हीनाः कार्याः) मासोपभोगाः कलिकाः (मासभोग्यकला उपर्युक्ताः) खाज्यांशैः (त्रिशद्भिः) हृताः (भक्ताः) तदा इनवासरे (एकसौरदिने) ग्रहगतिः, ततः सावना गतिर्ज्ञेयेति ॥

अस्योपपत्तिः ।

इतः पूर्वं ग्रहादीनां प्रतिमासक्षेपांशा आनीताः । अधुना प्रतिमासक्षेपकला आनीयन्ते । पूर्ववत् ग्रहादिपठित भगणकलाभिः पठितसौरमासैश्चानुपातेन प्रतिमासक्षेपकला आगच्छन्ति, एतासामेव नाम धनकलाः, ततोऽनुपातेनैकसौरदिनेतद्गतिः $= \frac{\text{पठितग्रहप्रतिमासक्षेपकला} \times १}{\text{३० दिन}} = \frac{\text{पठितग्रहप्रतिमासक्षेपकला}}{३०}$

ततः सावनदिने ग्रहगतिर्ज्ञेयेति ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे प्रत्यब्दशुद्धिः समाप्ता ।

हि॰ भा॰—१२९, २०८, ३३०४, १६२, ६२३, १५५, ८३३ ये मङ्गलादिग्रहों की मासिक धनकला (क्षेपकला) बृहस्पति बुधशीघ्रोच्च, शनैश्चर इन ग्रहों में इनकी क्षेपकलाओं को ऋण करना चाहिये। प्रतिमास क्षेपकलाओं को तीस से भाग देने से एक सौरदिन में ग्रहगति होती है उससे सावनदिन में ग्रहगति जाननी चाहिये ॥४९॥

उपपत्ति

इससे पहले ग्रहादियों के प्रतिमास क्षेपांश लाये गये हैं। यहां प्रतिमास क्षेपकला लाते हैं। पूर्ववत् ग्रहादि के पठित भगणकला और पठित सौरमास से अनुपात द्वारा प्रतिमासक्षेपकला आती है। इन्हीं का नाम धनकला है उस पर से अनुपात करने से एक सौरदिन में उनकी गति $= \frac{\text{ग्रहपठित प्रतिमासक्षेपकला} \times १}{\text{३० दिन}} = \frac{\text{ग्रहपठित प्रतिमाक्षेक}}{\text{३०}}$ इससे सावनदिन में ग्रहगति जानना ॥४९॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में प्रत्यब्दशुद्धि नामक पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



षष्ठोऽध्यायः

अथ करणविधि

इदानीमहर्गणं विना रविचन्द्रयोरानयनाय करणविधिमाह ।

अधिमासाप्तविकल ग्रहमण्डलशेषकाणि चैत्रादौ ।
अधिमासावमभगणैः प्रोक्तैर्निजमुद्धरेद्दिनादिफलम् ॥१॥
रविचन्द्रभूमिदिवसा अधिकावमपर्ययोद्धृता हाराः ।
बहुतरशेषे स्वधिया गुणकं सञ्चिन्त्य गुणा हतं विभजेत् ॥२॥
देयं गुणा करवधे हारः क्षेप्यो गुणाहतं क्षेप्यम् ।
तद्भागहारशकलादधिकं शेषं तदा हरेद्वारात् ॥३॥
सैकश्छिन्नो हारैः शेषं च धनं क्षयाद्यमितरं स्यात् ।
तद्भक्ताः क्षितिदिवसाः प्रोत्पन्नहरा हताः क्षयस्य गुणाः ॥४॥

वि. भा.—अधिमासाप्तविकल ग्रहमण्डलशेषाणि (अधिमासात्प्राप्तग्रहभगणादि शेषाणि भवन्ति) प्रोक्तैः (कथितैः) अधिमासावमभगणैः (अधिमासावमशेषैः) निजमुद्धरेत् तदा चैत्रादो दिनादिफलं भवेत् । रविचन्द्रभूमिदिवसाः (युगसौरदिन-युगचान्द्रदिन युगकुदिनानि) अधिकावमपर्ययोद्धताः (अधिकावमशेषभक्ताः) हाराः बहुतरशेषे (अनेकशेषे) स्वधिया (स्वबुद्धचा) गुणकं सञ्चिन्त्य (विचार्य) गुणाहतं (गुणगुणितं) हरेण विभजेत् देयं गुणाकरवधे इत्यादि स्पष्टम् ॥१-४॥

हि. भा.—अधिमास से प्राप्त ग्रहभगण शेष होते हैं कथित अधिमास अवमशेष से भाग देना तब चैत्रादि में दिनादिफल होता है । युगसौरदिन युगचान्द्रदिन, युगकुदिन को अधिशेष, अवमशेष से भाग देकर हार होता है । बहुतरशेष शेष में अपनी बुद्धि से विचार कर गुणक से गुण देना हार से भाग देना, आगे के श्लोकों के अर्थ साफ हैं ॥१-४॥

इदानीमधिमासावमशेषाभ्यां रविचन्द्रयोरानयनार्थ विधिमाह ।

अधिमासावमजाभ्यामेव गुणकाभ्यां हता रवीन्दुगतयः ।
भक्ता निजहाराद्वा विशोधयेच्छेषफलसंज्ञम् ॥५॥

वि. भा.—अधिमासावमजाभ्यामेव गुणकाभ्यां (अवमशेषाधिशेषाभ्यां)

रवीन्दुगतयः (रविचन्द्रगतयः) हताः (गुणिताः) निजहरात् (स्वाकीयहरात्) भक्ता (विभाजिता) वा विशोधयेत् तदा शेषफलसंज्ञं स्यात् ।

यद्यप्यधिशेषावमशेषाभ्यां रविचन्द्रयोरानयनेऽधिशेषेण रविचन्द्रयोर्गतेर्गुणन न भवति किन्त्वौदयिकार्थमधिशेषस्य प्रयोजनं भवति, आचार्योक्तपद्यमत्राशुद्धं प्रतिभातीति ।।५।।

हि. भा.—अधिमास शेष और अवमशेष रूपगुणक से रवि और चन्द्रगति को गुण कर अपने हर से भाग देना या हत में घटाना जो शेष रहता है वह शेषफल संज्ञक है ।।

यद्यपि अधिशेष और अवमशेष से रवि और चन्द्र के आनयन के लिये अधिशेष से रविगति और चन्द्रगति को नहीं गुणन किया जाता है रवि और चन्द्र को औदयिक करने के लिये उसकी जरूरत होती है । यहां आचार्योक्त पद्य अशुद्ध मालूम होता है ।।५।।

इदानीमेकाहर्गणेन सिद्धान् ग्रहानन्याहर्गणे समानीयते ।

इष्टाब्ददिनसमूहाः पृथग्गुणकताड़िता द्विधा विभक्ताः ।
क्षयधनगणेन लब्धा वियुतयुता मध्यमा भूयः ।। ६ ।।

वि. भा.—इष्टाब्ददिनसमूहाः (इष्टवर्षीयाहर्गणाः) पृथक् गुणकताड़िताः (स्वगुणेन गुणनीयाः) क्षयधनगणेन (ऋणाहर्गणेन धनाहर्गणेन च) विभक्ताः (भाज्याः) तदा भूयो द्विधा वियुतयुताः (ऋणात्मकाः धनात्मकाश्च) मध्यमग्रहा भवन्तीति ।।६।।

हि. भा.—इष्टवर्ष सम्बन्धी अहर्गण को अलग-अलग गुणक से गुण कर ऋणाहर्गण और धनाहर्गण से भाग देने से दो प्रकार के ऋण मध्यमग्रह और धनमध्यमग्रह होते हैं ।।६।।

एक अहर्गण से सिद्धग्रहों से द्वितीय अहर्गण सम्बन्धी लाने के लिये अनुपात किया जायगा $\frac{\text{सिद्धभगणादिग्र} \times \text{अहर्गण}}{\text{अहर्गण}}$ = अहर्गण सम्बन्धी भगणादिग्र इति ।।६।।

इदानीमहर्गणार्थं करणविधिमाह ।

क्षेप्ययुता हीना वा शोध्येन विभाजिताश्च हारेण ।
अधिमासाः शशिदिवसैरवमान्येवं तदूनिता द्युगणः ।।७।।

वि. भा.—क्षेप्ययुताः (क्षेपणयोग्यपदार्थाः सहिताः) शोध्येन (शोधनयोग्येन) हीनाः (रहिताः) हारेण विभाजिता यथाऽधिमासा भवेयुस्तथा कार्यं, एवं शशिदिवसैः (चान्द्रदिनैः) यथाऽवमानि भवेयुस्तथा कार्यं तदा चान्द्रदिने तदूनिताः (अवमरहिता सन्तः) द्युगणः (अहर्गणः) भवेदिति ।।

पूर्वं "यातावमेन्दुदिनराशिचयः स्वशिष्ट्या युक्तोनितोऽवमहतो विधुवासरा वा । एवं गताधिकगुणाश्च रविविधुराशिरन्योऽन्यतोवमदिनानि गताधिमासाः" इत्यत्र यथा कार्यकरणप्रक्रिया प्रतिपादिताऽस्ति तथैवाऽवाप्यधिमासावमदिनयोर्ज्ञानार्थं कार्या ततोऽहर्गणसिद्धिर्भवेत् ।।७।।

हि. भा.—जोड़ने योग्य पदार्थ को जोड़ने से घटाने योग्य को घटाने से हर से भाग देने से जैसे अधिमास ज्ञान हो करना चाहिये। इस तरह चान्द्रदिन से अवमदिन के ज्ञान जैसे हो करना चाहिये, चान्द्रदिन में अवमदिन को घटाने से अहर्गण होता है ॥७॥

इदानीमहर्गणान्मध्यमग्रहानयनार्थं करणविधिमाह।

द्युगणे गुणकभ्यस्ते धनयुजि मध्योनितेऽथवा भक्ते।
हारेण भगणपूर्वो ग्रहो द्युराशेः क्षयस्वगणवृद्धया ॥८॥

वि. भा.—द्युगणे (अहर्गणे) गुणकाभ्यस्ते (यथायोग्यगुणकगुणिते) धनयुजि मध्योनिते (अर्थाद्विलोमगतिग्रहार्थमनुपातस्थ मध्यमफलेन ग्रहभगणेन हारे हीनिते) हारेण विभक्ते तदा द्युराशेः (अहर्गणात्) क्षयस्वगणवृद्धया (ऋणाहर्गणधनाहर्गणवृद्धया) भगणपूर्वो ग्रहः (भगणादिग्रहः) भवेदिति ॥ ग्रहानयने केषां केषां गुणहारादीनामावश्यकता भवन्तीत्येवानेन कथ्यतेऽऽचार्येणेति ॥८॥

हि. भा.—अहर्गण को अपने गुणक से गुण देना विलोमगति ग्रहज्ञान के लिये हार में मध्यफल (ग्रहभगण) को घटाना, अपने हार से भाग देना तब ऋणात्मक और धनात्मक अहर्गण के वश से भगणादि ग्रह होते हैं ॥८॥

ग्रहानयन में किन-किन गुण, हर और क्षेपकादि की ज़रूरत होती है वही यहां कहा है। यद्यपि इन सब की कहने की आवश्यकता नहीं है पर आचार्य ने इन सब के लिये एक अध्याय ही बनाया है ॥८॥

भगणादिकेनोनयुते मध्यः स्यादेवमेव द्युगणान्ते।
विधिवत्केन्द्रफलानि तु कृत्वा द्युचरोऽनुपाततः स्पष्टः ॥९॥

वि. भा.—एवमेव (अनेनैव पूर्वोक्तविधिना) भगणादिके फले ऊनयुते (ऋणधने) द्युगणान्ते (अहर्गणान्तेऽर्थादहर्गणादनुपातेन समागतो भगणादिमध्यमग्रहोऽहर्गणान्ते) मध्यः स्यात् विधिवत् अनुपाततः (त्रैराशिकात्) केन्द्रफलानि (केन्द्रज्योत्पन्नानि मन्दफलशीघ्रफलादीनि) कृत्वा स्पष्टः (प्रत्यक्षीभूतः) द्युचरः (ग्रहः) साध्य इति ॥

स्पष्टग्रहाः कथमागच्छन्ति तदर्थमुपकरणानि कथ्यन्ते ग्रन्थकारेणेति ॥९॥

हि. भा.—इसी तरह पूर्वोक्त नियम से भगणादिफल धन ऋण रहने पर अर्थात् धनाहर्गण और ऋणाहर्गण से साधित भगणादिग्रह के ऋण और धन रहने से वे अहर्गणान्त विन्दु में ऋण और धन मध्यम ग्रह होते हैं उसके बाद विधिपुरस्सर अनुपात से केन्द्रज्योत्पन्न मन्दफलादि करके स्पष्टग्रह साधन करना, इति ॥९॥

इससे स्पष्टग्रह साधन के लिये उपकरण कहते हैं ॥९॥

इदानीमुपसंहारमाह।

युगाधिमासावमपर्ययाणां निरग्रतः यत्र युगे स्फुटानाम्।
कार्यं सुसंक्षिप्तमनन्यदृष्टं सुखावमेयं करणं जड़ानाम् ॥१०॥

वि. भा.—यत्र युगे स्फुटानां युगाधिमासावमपर्ययाणां (युगाधिमासभगणानां, क्षयमासभगणानां च) निरग्रता (निःशेषता) भवेत् तथा कार्यं, इति सुसंक्षिप्तं (अतिशयेन लघुः) अनन्यदृष्टं (अन्यैराचार्यैर्नावलोकितम्) जड़ानां (कुण्ठधियां) सुखावमेयं (सुखपूर्वकवेद्ययोग्यं) करणं प्रोक्तं मयेति ।।१०।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे करणविधिर्नामकः षष्ठोध्यायः समाप्तः।

हि. भा.—जिस युग में युगाधिमास भगण और अवममास भगणों की निःशेषता होती है उस तरह करना चाहिए। बहुत संक्षिप्त और जिसको अन्य आचार्यों ने नहीं देखा, जड़ लोगों के सुगम तरह समझने के लायक करण (करणविधि नाम के अध्याय) को मैंने कहा ।।१०।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में करणविधि नामक षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ ।।



सप्तमोऽध्यायः

अथ प्रमाणविधिः

इदानीमण्वादिप्रमाणकथनपुरःसरं योजनप्रमाणं वदन् खकक्षाप्रमाणमाह ।

रवेर्गृहान्तः स्थितरश्मितोयं प्रकाश आयात्यणवोऽष्टभिस्तैः ।
कचाग्रमष्टौ खलु तानि लिक्षा ताभिश्च यूकाऽष्टभिरेवमुक्ता ॥१॥
यवोऽष्टयूकोऽङ्गुलमष्टभिस्तैरथाङ्गुलद्वादशभिर्वितस्तिः ।
वितस्तियुग्मेन करः करैर्धनुश्चतुर्भिरेको द्विसहस्रमुक्तः ॥ २ ॥
क्रोशस्तुतैर्बन्धुसमैर्हि योजनं तैर्व्योमवृत्तं कथयन्ति सन्तः ।
खव्योमपूर्णर्तुनगेषु खाक्षि ग्रहाब्धि भूतत्त्वस्वपक्षचन्द्रैः ॥ ३ ॥

वि. भा.—रवेः (सूर्यस्य) गृहान्तःस्थितरश्मितः (गृहाभ्यन्तरस्थितकिरणतः) अयं प्रत्यक्षीभूतः प्रकाश आयाति तत्र यद्रज आलोक्यते, तैरष्टभिः (अष्टभी रजोभिः) अणवो भवन्ति, अष्टौ अणवः कचाग्रं (केशाग्रम्) तान्यष्टौ लिक्षा, अष्टभिस्ताभिः (अष्टलिक्षाभिः) यूका उक्ता, अष्टयूकः (अष्टसंख्यकयूकः) यवः कथितः, तैरष्टभिः (अष्टसंज्ञकयवैः) अङ्गुलम्, अङ्गुलद्वादशभिः (द्वादशाङ्गुलैः) वितस्तिः, वितस्तियुग्मेन (वितस्तिद्वयेन) करः (हस्तः) चतुर्भिः करैः एकं धनुः । तद्द्विसहस्रं (धनुःसहस्रद्वयम्) एकः क्रोशः उक्तः (कथितः), तैः (क्रोशैः) बन्धुसमैः (चतुर्भिस्तुल्यैः) एकं योजनम् । तैर्योजनैः खव्योमपूर्णर्त्तुनगेषु खाक्षि ग्रहाब्धिभूतत्त्व स्वपक्ष चन्द्रैः (१२२२५१४९२०५७६०००)व्योमवृत्तं(खकक्षावृत्तप्रमाणं) सन्तः (साधवः) कथयन्तीति ॥ सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैतत् सम्बन्धे एवं कथ्यते । यथा

वेश्मान्तःपतितेषु भास्करकरेष्वालोक्यते यद्रजः,
स प्रोक्तः परमाणुरष्ट गुणितैस्तैरेव रेणुर्भवेत् ।
तैर्बालाग्रमथाष्टभिः कचमुखैर्लिक्षा च यूकाष्टभिः,
स्यात्ताभिश्च तदाष्टकेन च यवोऽष्टाभिश्च तैरङ्गुलम् ॥
तैः स्याद् द्वादशभिर्वितस्तिरुदितो हस्तश्च द्वाभ्यां पुन-
श्चापं हस्तचतुष्टयेन धनुषां क्रोशः सहस्रद्वयम् ।
एकं क्रोशचतुष्टयेन गदितं साम्वत्सरैर्योजनं
कक्षा भूग्रहधिष्ण्यबिम्बपरिधि व्यासादि संचिन्तयेदिति ॥
अण्वादि प्रमाणार्थमाचार्यकथनमेव प्रमाणमिति १-३ ॥

हि. भा.—गृह के अन्दर पतित सूर्य किरणों में जो रज देखने में आता है, उस आठ रज के एक अणु प्रमाण होता है, आठ अणुओं से केश का अग्र होता है, आठ केशाग्र से एक लिक्षा (लीख) होती है, आठ लिक्षा से एक यूका (ढील) होती है, आठ यूका से एक यव (जौ) होता है, आठ यव के एक अङ्गुल होता है, बारह अङ्गुल के एक वितस्ति (वीता) होती है, दो वितस्ति से एक हाथ होता है, चार हाथ से एक धनुष होता है, दो हजार धनुष के एक कोश होता है, चार कोश से एक योजन होता है, उस योजन मान से १२२२५१४६२०५७६००० इतने व्योमवृत्त (खकक्षा) सज्जन लोग कहते हैं। सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इस विषय में इस प्रकार कहते हैं। यथा

"वेश्मान्तःपतितेषु भास्करकरेष्वालोक्यते यद्रजः।" इत्यादि

अणु आदि के प्रमाणों के विषय में आचार्य कथन ही प्रमाण है ॥ १-३ ॥

खकक्षाप्रमाणाद्यर्थमुपपत्तिः ॥

आकाशे यन्मिते भागे सूर्यकिरणाश्चतुर्दिक्षु गच्छन्ति स भागो वृत्ताकारको भवति तस्यैव नाम खकक्षा, एतस्याः प्रमाणज्ञानार्थं कोप्येको गोलाकारको मणिर्गृहीतस्तस्य प्रकाशः पृथिव्यां चतुर्दिक्षु वृत्ताकारे गच्छति तस्य वृत्तस्य (मणिप्रकाशवृत्तस्य) व्यासार्धं परिधिप्रमाणञ्च मापनेन ज्ञातुं शक्यते गोलाकारमणेर्व्यासार्धमपि मापनेन विदितमस्ति, ततो यद्येतावति गोलाकारमणेर्व्यासार्धे एतावान् मणिगोल-प्रकाशप्रसारो लभ्यते तदा सूर्यबिम्बव्यासार्धे किमित्यनुपातेन समागच्छति सूर्य-बिम्ब-किरणप्रसारप्रमाणं खकक्षा (खमाकाशं कषति घर्षति ग्रहो यावत्कल्पे तन्मितमाकाशखण्डं खकक्षेत्यन्वर्थं नाम) संज्ञकमिति, परमेतदानयनं तदैव समीचीनं भवितुमर्हति यदा च मणिगोलप्रकाशसूर्यबिम्बप्रकाशयोः साजात्यं भवेत्तत्रापि व्यासार्धसम्बन्धेन योऽनुपातोऽभिहितः स न समीचीनो यतो "वृत्तयोः फल-सम्बन्धो भवतीह सदा समः। तद्व्यासवर्गजातेन सम्बन्धेन विदां स्फुट" मित्युक्त्या व्यासार्धवर्गसम्बन्धेनानुपातः कर्त्तव्यस्तदा समीचीनं भवितुमर्हति, यदि च मणि-गोलप्रकाशसूर्यबिम्बप्रकाशयोर्वैजात्यं तदा व्यासार्धवर्गवशेनाप्यनुपातेन खकक्षाप्रमाणं समीचीनं न भवितुमर्हतीति ॥

अथ खकक्षाप्रमाणं किमाकारकमिति निरूप्यते।

नव्यमतेनाऽकाशे रविकिरणद्वारा यावती तमोहानिस्तदाकारः कीदृश इत्येतदर्थं विचार्यते। सूर्यो दीर्घवृत्ते भ्रमति खकक्षाकृतिरपि तादृश्येव भवितु-मर्हति।

आचार्योक्तेन खकक्षाप्रमाणेन सूर्यकेन्द्रात्तमोहानिजनितवृत्तपर्यन्तं यद्रेखा-प्रमाणं तस्मिन् दीर्घवृत्तबृहद्व्यासप्रमाणं योज्यमधोभागेऽपि, एवं दीर्घ-वृत्तलघुव्यास प्रमाणमप्यूर्ध्वभागेऽधोभागेऽपि योजितं यद्रेखाप्रमाणं भवेदेत-द्द्वयं (दीर्घवृत्तबृहद्व्यासयोजनेन, तथा दीर्घवृत्तलघुव्यासयोजनेन च यद्रेखा-द्वयं) तदबृदद्व्यासं लघुव्यासञ्च स्वीकृत्य मन्निर्मितदीर्घवृत्त लक्षणस्थ दीर्घवृत्त-

रचनाप्रकारेण यदि दीर्घवृत्तरचना क्रियते तदा रचितदीर्घवृत्ताकार एव तमोहानिजनितमार्गो (खकक्षा) भवेत्परन्त्वनन्तदूरे स्थितत्वात्तत्र दीर्घवृत्तं वृत्तमिव प्रतिभात्यतः प्राचीनाचार्यैः खकक्षाऽऽकृतिर्वृत्ताकारैव स्वीकृतेति ॥ भास्कराचार्येण "कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि—

ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः ।"

इत्यादिना खकक्षामानं कथ्यते, चतुर्वेदाचार्येणापि "द्विच्छिद्रषट्केत्यादिना" भिन्नमेव तत्प्रमाणमाचार्योक्तात्कथ्यते इति ॥१-३॥

हि. भा.—आकाश में चारों ओर सूर्य का प्रकाश जितने भाग में जाता है वह वृत्ताकार है उसी का नाम खकक्षा है, इस खकक्षा के मानज्ञान के लिये, एक गोलाकार मणि लेते हैं। उसका प्रकाश पृथ्वी पर चारों तरफ वृत्त के रूप में फैलता है, मापन से उस वृत्त का व्यासार्ध और वृत्तपरिधिप्रमाण विदित हो जायगा, मणिगोल का भी व्यासार्ध मापनद्वारा विदित है, तब अनुपात करते हैं मणिगोल व्यासार्ध में मणिगोल प्रकाश वृत्तपरिधिमान पाते हैं तो सूर्यबिम्बव्यासार्ध में क्या इस अनुपात से सूर्यबिम्ब प्रकाशवृत्त (खकक्षा) का ज्ञान हो जायगा। परन्तु इस तरह खकक्षा ज्ञान तभी ठीक हो सकता है जबकि मणिगोल प्रकाश में और सूर्यबिम्ब प्रकाश में साजात्य होगा, यदि दोनों प्रकाशों में साजात्य नहीं रहेगा तब उक्त नियम से खकक्षा ज्ञान नहीं हो सकता है। दोनों प्रकाशों में सजातीयत्व में भी व्यासार्ध पर से जो अनुपात किया गया है सो ठीक नहीं है क्योंकि दो वृत्तों के फलसम्बन्ध दोनों वृत्तों के व्यासवर्ग के सम्बन्ध के बराबर होता है इसलिये व्यासार्धवर्ग से अनुपात करना चाहिये तब खकक्षा प्रमाण ठीक आ सकता है अन्यथा नहीं। इति।

खकक्षा की आकृति (आकार) कैसी है इसके विषय में विचार करते हैं।

नवीन मत से सूर्य किरण द्वारा आकाश के जितने भाग की तमोहानि होती है उसका आकार कैसा है इस पर विचार करना है। सूर्य दीर्घवृत्त में भ्रमण करते हैं, खकक्षा का आकार भी उसी आकार का होना चाहिये। आचार्योक्त खकक्षा प्रमाण से सूर्यकेन्द्र से तमोहानि जनित वृत्त पर्यन्त जो रेखा है उसका ज्ञान है। उसमें दीर्घवृत्त बृहद्व्यास प्रमाण ऊर्ध्व और अधो भाग में भी जोड़ने से जो रेखा होगी उसको वृहद्व्यास मान कर तथा दीर्घवृत्त के लघु व्यास को भी ऊर्ध्वभाग एवं अधोभाग में जोड़ने से जो रेखा होगी उसे लघुव्यास मान कर हमारी दीर्घवृत्तलक्षण पुस्तक की दीर्घवृत्त रचना प्रकार से जो दीर्घवृत्त होगा वही तमोहानि जनित मार्ग (खकक्षा) होगा, परन्तु अनन्त दूर में रहने के कारण वहां दीर्घवृत्त-वृत्त के तरह मालूम होता है इसलिये प्राचीनाचार्य लोग खकक्षा को वृत्ताकार स्वीकार करते हैं ॥

भास्कराचार्य खकक्षा मान के विषय में कहते हैं कि "कोटिघ्नैर्नख-नन्द-षट्कनखभू" इत्यादि वटेश्वराचार्योक्त से भिन्न है, चतुर्वेदाचार्य भी "द्विच्छिद्रषट्" इत्यादि से आचार्योक्त खकक्षा मान से भिन्न कहते हैं ॥ १-३ ॥

इदानीं तस्या एवाऽऽकाशकक्षायाः संस्थानप्रकारमाह ।

गगने गगनस्थावितयो वितयो नयत्प्रकुर्वन्ति ।
यावत्तावदिह नभोद्दीप्ता भानवो भानोः ॥ ४ ॥

हि. भा.—यावत् (यत्पर्यन्तं) गगने (आकाशे) गगनस्थावितयः (आकाशस्थोल्कादयः) वितयः (दिग्दाहादय.) नयत्प्रकुर्वन्ति (इतस्ततो भ्रमन्ति) तावत् (आकाशस्य तद्भागं यावत्) भानोः (सूर्यस्य) भानवः (किरणाः) नभोद्दीप्ताः आकाशोज्जलीभूताः) भवन्ति अर्थादाकाशस्य यद्भागपर्यन्तमुल्कादिग्दाहादिकं भवति तद्भागपर्यन्तं सूर्यकिरणा गच्छन्ति, सूर्यकिरणा आकाशे चतुर्दिक्षु यद्भागपर्यन्तं गच्छन्ति स एव भागः खकक्षेति । इतः पूर्वं खकक्षामानं कथितमाचार्येण परं का नाम खकक्षेति कथ्यतेऽनेन श्लोकेन, श्रीपतिनापि खकक्षासम्बन्धे इत्थमेव कथ्यते । यथा

रविगभस्तिनिरस्ततमोनभः परिधियोजनमानमिदं भवेत् ।

भास्करेणापीदमेव कथ्यते । यथा—

दिनकरकरनिकरनिहततमसः स परिधिरुदितस्तैरिति ॥ ४ ॥

हि. भा.—जहां तक अकाश में उल्का-दिग्दाहादि परिभ्रमण होता है आकाश के उस भाग तक सूर्य की किरणें आकाश में उज्ज्वलीभूत होती हैं अर्थात् आकाश के जितने भाग तक उल्का दिग्दाहादि है उतने भाग तक सूर्य किरणें जाती हैं, चारों तरफ आकाश में सूर्यकिरणें जितनी दूर तक जाती हैं वही भाग खकक्षा है । इससे पहले श्लोक में खकक्षामान कहा गया है। परन्तु खकक्षा क्या है सो इससे आचार्य कहते हैं । खकक्षा के बिषय में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं । जैसे—

"रविगभस्तिनिरस्ततमोनभ" इत्यादि ।

भास्कराचार्य भी यही कहते हैं—

"दिनकरकरनिकरनिहत" इत्यादि ॥ ४ ॥

इदानीं कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनं वक्तुं खकक्षानयनं ततो ग्रहकक्षानयनं कुर्वन् भकक्षानयनं चाह ।

रविशशियुगघातः खाक्षिभक्तः खकक्ष्या शशिभगणहता वा दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ताः ।
निजभगणविभक्ताः सा ग्रहस्य स्वकक्ष्या भवति खरसनिघ्नः सूर्यकक्ष्या भकक्ष्याः ॥५॥

वि. भा.—रविशशियुगघातः खाक्षिभक्तः (विंशतिहृतः) खकक्ष्या भवति, वा (अथवा) दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ताः (दशगुणितस्वकक्षाकलाः) शशिभगणहताः (चन्द्रभगणगुणिताः) निजभगणविभक्ताः (चन्द्रभगणभक्ताः) तदा सा ग्रहस्य स्वकक्ष्या (ग्रहकक्षा) भवति, खरसनिघ्ना, (षष्टिगुणिता) सूर्यकक्ष्या, भकक्ष्या (नक्षत्रकक्ष्या) भवनीति । एतेनाऽऽचार्येण श्रीपतिनापि खकक्ष्या इत्यादि कथ्यते भास्करादिभिः कक्ष्यास्थाने कक्षा कथ्यते यथा खकक्षा, भकक्षेत्यादि ॥ ५ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ ३ चंभगण = भकक्षा । तथा ६० × रविकक्षा = भकक्षा

$\therefore$ ३ चंभगण = ६० × रविकक्षा ततः $\frac{३ \text{ चंभगण}}{६०}$ = रविकक्षा = $\frac{\text{चंभगण}}{२०}$

परं खकक्षा = रविकक्षा × रविभगण अतः $\frac{\text{चंभगण} \times \text{रविभगण}}{२०}$ = खकक्षा

अत्र रविशशियुगघातः (रविचन्द्रयुगभगणघातः) बोध्यः ।

"ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि । यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः" इति भास्करोक्त्या ग्रहभगण × ग्रहकक्षा = खकक्षा,

अतः चन्द्रभगण × चन्द्रकक्षा = खकक्षा, तेन ग्रहभ × ग्रहक = चन्द्रभगण × चंकक्षा

$\therefore$ $\frac{\text{चंभगण} \times \text{चंकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$ = ग्रहकक्षा, अत्र १० चंभगण = चन्द्रकक्षा ।

तथा ६० × सूर्यकक्षा = भकक्षा अत्रागम एव प्रमाणमत उपपन्नम् ॥५॥

हि.भा.—रविचन्द्रभगण घात को बीस से भाग देने से खकक्ष्या होती है । दसगुणित खकक्ष्या कला को चन्द्रभगण से गुणकर अपने भगण (ग्रहभगण) से भाग देने से ग्रहकक्ष्या होती है । सूर्यकक्ष्या को साठ से गुणने से भकक्ष्या होती है ॥

वटेश्वराचार्य और श्रीपति भी कक्ष्या कहते हैं, जैसे भकक्ष्या, खकक्ष्या इत्यादि, लेकिन भास्कराचार्यादि उसको कक्षा कहते हैं जैसे भकक्षा, खकक्षा इत्यादि ।

उपपत्ति ।

३ चंभगण = भकक्षा । तथा ६० रविकक्षा = भकक्षा

$\therefore$ ३ चंभगण = ६० रविकक्षा इसलिये $\frac{३ \text{ चंभगण}}{६०} = \frac{\text{चंभगण}}{२०}$ = रविकक्षा

परन्तु खकक्षा = रविकक्षा × रविभगण इसलिये $\frac{\text{चंभगण} + \text{रविभगण}}{२०}$ = खकक्षा

यहां रविशशि युग घात से रविचन्द्र के युग भगण का गुणनफल समझना चाहिये ।

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि । यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः" इस भास्करोक्ति से ग्रहभगण × ग्रहकक्षा = खकक्षा

एवं चन्द्रभगण × चंकक्षा = खकक्षा $\therefore$ ग्रभ × ग्रकक्षा = चंभ × चंकक्षा

इसलिये $\frac{\text{चंभ} \times \text{चंकक्षा}}{\text{ग्रभ}}$ = ग्रकक्षा, यहां १० चंभगण = चंकक्षा

तथा ६० × सूर्यकक्षा = भकक्षा इसमें आगम ही प्रमाण है ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥५॥

इदानीं भकक्ष्याखकक्ष्यादिसम्बन्धे पुनरप्याह ।

खखनगमुनिभक्ता वा खकक्ष्या भकक्ष्या त्रिगुण विधुभसंघो वोडुवृत्तं प्रदिष्टम् ।
नखहृतरविवर्षैश्चन्द्रकक्ष्या हिमांशोर्नखहृतपरिवर्तैर्भास्वतो धाम धाम ॥ ६ ॥

वि. भा.—अथवा खकक्ष्या खखनगमुनि (७७००) भक्ता (हृता) तदा भकक्ष्या भवति, वा त्रिगुणविधुभसङ्घः (त्रिगुणितचन्द्रभगणः) उडुवृत्तं (नक्षत्रवृत्तं भकक्ष्या वा) प्रदिष्टम् (कथितम्) नखहृतरविवर्षैः (विंशतिसूर्यभगणैः) चन्द्रकक्ष्या भवति । हिमांशोः (चन्द्रस्य) नखहृतपरिवर्तैः (विंशतिगुणितभगणैः) भास्वतः (सूर्यस्य) धाम धाम (किरणमन्दिरं सूर्यकिरणावरणपरिधिर्वेति) ॥६॥

अस्योपपत्तिः ।

$\frac{\text{खकक्षा}}{७७००}$ = भकक्षा । कक्षाप्रमाणं पठितमेवास्ति तेन $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{पठिताङ्क}}$ = भकक्षा ।

अथवा ३ × चंभगण = भकक्षा । यतः $\frac{\text{भकक्षा}}{\text{चंभगण}}$ = ३ ।

$\frac{\text{रविभगण}}{२०}$ = चन्द्रकक्षा । २० × चन्द्रभगण = खकक्षा इति सर्वं परीक्षणीयं वस्तु विद्यते, सर्वेषां पठिताङ्कान् संगृह्य द्रष्टव्यं यदिति भवति नवेति ॥६॥

हि. भा.—अथवा खकक्षा को ७७०० इतने से भकक्ष्या होती है वा त्रिगुणित चन्द्रभगण भकक्ष्या होती है । बीस से भक्त रविभगण चन्द्रकक्षा होती है । बीस गुणितचन्द्रभगण सूर्य किरणावरणपरिधि (खकक्षा) प्रमाण होता है ।

उपपत्ति ।

$\frac{\text{खकक्षा}}{७७००}$ = भकक्षा । खकक्षा प्रमाण विदित है इसलिये $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{पठिताङ्क}}$ = भकक्ष्या ।

अथवा ३ × चंभगण = भकक्षा । यतः $\frac{\text{भकक्षा}}{\text{चंभगण}}$ = ३ ।

$\frac{\text{रविभगण}}{२०}$ = चंकक्षा । २० × चंभगण = खकक्षा, यहां चन्द्रभगणादि का मान लेकर गणित द्वारा इसको देखना चाहिये ॥ ६ ॥

इदानीं ग्रहाणां कक्षां भकक्षां च निर्दिशति

पञ्चाशोननगाङ्कर्त्तुनगगजनागाक्षियोजनैर्भानोः ।
कक्ष्या शशिनो दिग्घ्ना भगणा कलाधरणितनयस्य ॥७॥
नेत्रवसुरविहुताशनजलधिशरैः षड्भुजङ्गैश्च ।
भूमिख यमाब्धि धराधरशराशकैश्च शशधरसुतस्य ॥८॥
नेत्रागवेदसायकयमर्त्तुभिर्जित समुद्रशशिचन्द्रैः ।
सुरशरखाङ्गाक्षिलवैर्हिरसुरगुरोर्योजनैः कक्ष्या ॥९॥
नवखेषु खतत्त्वद्वित्रिभिरर्णधराभ्रजलधियुगवर्गैः ।
शिवनेत्राष्टकुभार्गैर्जिनवेदागधरणिधरचन्द्रैः ॥१०॥

रविकुशरैः सप्ताग्नि स्तम्भेरम दिग्नवैर्भृगुसुतस्य ।
रविजस्य खनगचन्द्रशराशेषु गजैः खचन्द्रवसुचन्द्रैः ॥११॥
पर्वतदिग्रसमार्गैर्योजनसंख्याभचक्रवृत्तस्य ।
वसुगगनाभ्रनभोग द्वित्र्यगचन्द्रैः समस्तस्य ॥१२॥

एषामर्थाः स्पष्टा एवेति ।

कथमेषां रव्यादीनां ग्रहाणां नक्षत्रस्योपर्युक्तानि कक्षामानानि सन्ति तज्ज्ञानार्थं युक्तिः स्पष्टैवास्ति, यतः पूर्वं सर्वेषां भगणाः पठिताः सन्ति ।

∴ पठितभगणैः खकक्षामितानि योजनानि लभ्यन्ते तदैकेन भगणेन किं समागमिष्यति ग्रहकक्षामानम् $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$ एतेनैव नियमेन सर्वेषां ग्रहाणां कक्षामानानि समानेतुं शक्यन्ते यानि चोपरि लिखितानि सन्ति, परमेतमाचार्योक्तानि कक्षामानानि भास्करादिकथितग्रहकक्षामानेभ्यो भिन्नानि सन्तीति प्रत्यक्षमेवास्तीति ग्र कक्षायोजनमानपाठोऽपि समोचीनो न प्रतिभातीति ॥७-१२॥

हि. भा.—इन सब के अर्थ स्पष्ट ही हैं ।

रव्यादि ग्रहों की और नक्षत्र की क्यों इतनी कक्षामिति है इसके ज्ञान के लिये युक्ति सरल है । पहले सब के भगण पठित हैं, इसलिये पठितभगण में खकक्षा योजन पाते हैं तो एक भगण में क्या इस अनुपात से ग्रहकक्षमान आ जायेंगे $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$ = ग्रहकक्षा इस नियम से सब ग्रहों के कक्षामान तथा नक्षत्र कक्षामान ला सकते हैं जो कि ऊपर लिखित हैं। पर इनके पठित ग्रहकक्षामान तथा नक्षत्र कक्षामान भास्करादि पठित ग्रहादि कक्षामान से भिन्न है कक्षायोजन मानों का पाठ भी समीचीन नहीं मालूम पड़ता हैं ॥७-१२॥

इदानीं ग्रहाणामेकदिनयोजनगत्यानयनं गतयोजनानयनं चाह ।

क्वहैः खकक्ष्या विहृता ग्रहाणां गतिस्तदिष्टद्युगणाहतिः स्युः ।
ग्रहोपभुक्तानि तु योजनानि खवृत्तमानद्युगणाहतेर्वा ॥ १३ ॥

वि. भा.—खकक्षा (पूर्वोक्ता) क्वहैः (युगकुदिनैः) विहृता (भक्ता) तदा-ग्रहाणां गतिः (योजनगतिः) स्यात् तदिष्टद्युगणाहतिः (योजनगत्यहर्गणघातः) ग्रहोपभुक्तानि योजनानि (ग्रहगतयोजनानि) स्युः । वा (अथवा) खवृत्तमानद्युगणाहतेः (खकक्षाऽहर्गणघातात् क्वहैर्भक्तात्) ग्रहगतयोजनानि स्युरिति ॥१३॥

अस्योपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैः खकक्षा योजनानि लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातेन समागच्छति गतियोजनम् $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$, ततोऽनुपातो यद्येकेन दिनेनेदं गतियोजनं लभ्यते तदाऽहर्गणेन किमिति समागच्छति गतयोजनम् $= \frac{\text{गतियोजन} \times \text{अहर्ग}}{1}$

$$=\text{गतियोजन}\times\text{अहर्गण, वा } \frac{\text{खकक्षा}\times\text{अहर्गण}}{\text{कुदि}}=\text{गतयोजन}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥

श्रीपतिनाप्येतदेव कथ्यते "कल्पभूदिनहृताम्बरकक्षा स्याद् ग्रहस्य खलु योजनभुक्तिः। तद्गुणाद्दिनगणाद् द्युचराणां योजनानि हि गतानि भवन्ति ।

खकक्षया वा निहतो द्युराशिः क्वहैर्विभक्तो गतयोजनानीति"

भास्करेणापि "कल्पोद्भवैः क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्ये" त्यादिना तदेव कथ्यते। श्रीपतिना भास्करेण च कल्पसम्बन्धेन कथ्यन्ते एतेनाचार्येण (वटेश्वरेण) युगसम्बन्धेन कथ्यते। एतावदेवान्तरमिति ॥ १३ ॥

हि. भा.—खकक्षा को कुदिन से भाग देने से ग्रहों की योजन गति होती है। उसका और अहर्गण का घात करने से गतयोजन प्रमाण होता है। अथवा यह गतयोजनमान खकक्षा और अहर्गण के घात में कुदिन से भाग देने से होता है ॥ १३ ॥

उपपत्ति

यदि युगकुदिन में खकक्षा योजन पाते हैं तो एक दिन में क्या इस अनुपात से गति योजन प्रमाण आया, $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}=\text{ग्रहगतियोजन}$। फिर अनुपात करते हैं। यदि एक दिन में यह गति योजन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गतयोजन आया, $\frac{\text{गतियोजन}\times\text{अहर्गण}}{१}=\text{गतियो}\times\text{अहर्गण वा }\frac{\text{खकक्षा}\times\text{अहर्गण}}{\text{कुदि}}=\text{गतयोजन}$। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥

श्रीपति भी सिद्धान्तशेखर में ये ही बातें कहते हैं।

कल्पभूदिन हृताम्बर कक्षा स्याद् ग्रहस्य खलु योजनभुक्तिः। तद्गुणाद् दिनगणाद्द्युचराणां योजनानि हि गतानि भवन्ति ॥ खकक्षया वा निहतो द्युराशि : क्हैर्विक्तो गतयोजनानीति। भास्कराचार्य भी सिद्धान्तशिरोमणि में "कल्पोद्भवै : क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्येत्यादि" से उसी विषय को कहते हैं, श्रीपति और भास्कराचार्य कल्प सम्बन्ध से कहते हैं और वटेश्वराचार्य युगसम्बन्ध से कहते हैं, इतना ही अन्तर है ॥१३॥

इदानीं ग्रहाणामेकदिनयोजनगतिं संख्यया निर्दिशति

शरगुणशरेषु वसुरसखैरगधरैः खेनत्तु द्विनभोगैः।
शरखनवागैर्युक्तै योजनभुक्तिर्ग्रहस्य सर्वस्य ॥१४॥

हि. भा.—ग्रहाणां योजनात्मकगति प्रमाणं 'शरगुणशरेषु वसुरसखैरगधरैरित्यादिना,' कथ्यते, इयं योजनात्मकगतिः सर्वेषां ग्रहाणां तुल्यैव भवति, इति ॥१४॥

उपपत्तिः ।

पूर्वं योजनात्मकगतिप्रमाणमानीतं $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ = योजनात्मकगतिः = पठिताङ्क एतयोः स्थिरत्वात्सर्वेषां ग्रहाणां योजनात्मगतिः समैव भवितुमर्हति, कलात्मिका गतिः सर्वेषां ग्रहाणामतुल्या भवति, श्रीपतिनापि "तुल्या गतिर्योजनवर्त्मनैषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्रभावः, सिद्धान्तशेखरे प्रतिपादितम् । भास्कराचार्येणापि "समागतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत् । कलादिकल्पनावशान्मृदु द्रुता च सा स्मृते" त्यादिना तदेव कथ्यते इति ॥१४॥

हि. भा.—शरगुणशरेषु इत्यादि से ग्रहों की योजनात्मकगति प्रमाण कहते हैं ॥१४॥

उपपत्ति

पहले योजनात्मकगति प्रमाण लाया गया है, $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ = योजनात्मक गति = पठिताङ्क, इसमें खकक्षा, युकुदि इन दोनों के स्थिर रहने के कारण हर एक ग्रह की योजनात्मक गति प्रमाण बराबर होगा, हर एक ग्रह का योजनात्मकगति प्रमाण अनुपात से $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ यही आता है

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी यही विषय कहते हैं —

तुल्या गतिर्योजनवर्त्मनैषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्रभावः ।

भास्कराचार्य भी इस बात को कहते हैं । "समागतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत् । कलादि कल्पनावशादित्यादि" इति ॥१४॥

एवं साधनान्यभिधाय कक्षाप्रकारेण मध्यग्रहानयनमाह

अभीष्टखेटपर्ययैरसूनि तानि भाजयेत् ।
खवृत्तियोजनैर्ग्रहः स एव पर्ययादिकः ॥ १५ ॥

वि. भा.—अभीष्टखेटपर्ययैः (इष्टग्रहभगणैः) तानि असूनि भाजयेत्तदा यो हि ग्रहो भवति स एव खवृत्तियोजनैः (खकक्षायोजनैः) पर्ययादिकः (भगणादिकः) ग्रहो भवेदिति ॥१५॥

अस्योपपत्तिः ।

यदि खकक्षायोजनैर्ग्रहभगणा लभ्यन्ते तदा गतयोजनैः किमित्यनुपातेन भगणादिमध्यमस्तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{ग्रभ} \times \text{गतयो}}{\text{खक}}$,

$$= \frac{\text{गतयो}}{\frac{\text{खक}}{\text{ग्रभ}}} = \frac{\text{गतयो}}{\text{ग्रहकक्षा}} \quad \Big| \quad \text{यतः} \ \frac{\text{खक}}{\text{ग्रभ}} = \text{ग्रहकक्षा.}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ।

श्रीपतिनापि "स्वकक्षया वा गतयोजनानि हृतानि मध्या भगणादिकाः स्युः। इत्यादिना सिद्धान्तशेखरे तदेव प्रतिपादितम् ॥१५॥

हि.भा.—इष्ट ग्रह भगण से गतयोजन में भाग देना, उस पर से जो ग्रह आते हैं वही खकक्षा योजन से मध्यम ग्रह भगणादिक होते हैं ॥१५॥

उपपत्ति ।

यदि खकक्षा योजन में ग्रह भगण पाते हैं तो गत योजन में क्या इस अनुपात से भगणादि मध्यमग्रह आते हैं $\frac{\text{ग्रभ} \times \text{गतयो}}{\text{खक}} = \frac{\text{गयो}}{\frac{\text{खक}}{\text{ग्रभ}}} = \frac{\text{गयो}}{\text{ग्रकक्षा}}$ ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

सिद्धान्तशेखर में "स्वकक्षया वा गतयोजनानि हृतानि मध्या भगणादिकाः स्युः" इत्यादि से उसी विषय को कहते हैं ॥१५॥

पुनरपि ग्रहानयनमाह ।

योजनानि निजकक्ष्ययाऽथवा भाजितानि भगणादि खेचरः ।
व्योमवृत्तगुणितद्युराशितो भाजिताद्धि कुदिनघ्नकक्ष्यया ॥१६॥

वि. भा.—अथवा योजनानि (गतयोजनानि) निजकक्ष्यया (स्वकक्षामित्या) भाजितानि (भक्तानि) तदा भगणादि खेचरः (भगणादि ग्रहः) भवेत् । व्योमवृत्तगुणितद्युराशितः (खकक्षागुणिताहर्गणात्) कुदिनघ्नकक्ष्यया (कुदिनगुणितस्वकक्षया) भाजितात् (भक्तात्) वा भगणादिग्रहो भवेदिति ॥१६॥

अस्योपपत्तिः ।

पूर्वमेव सिद्धं यत् $\frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$ = भगणादि मध्यमग्रह । परं $\frac{\text{खकक्षा} \times \text{ग्रह}}{\text{कुदि}}$ = गतयो

अतः $\frac{\text{खकक्ष} \times \text{ग्रहर्गण}}{\text{कुदि} \times \text{ग्रहकक्षा}}$ = भगणादिमग्र । अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।

हि भा.—अथवा गत योजन को अपनी कक्ष्या से भाग देने से भगणादिग्रह होते हैं । वा खकक्षा गुणित अहर्गण में कुदिन गुणित ग्रहकक्ष्या से भाग देने से भगणादि ग्रह होते हैं ॥१६॥

उपपत्ति ।

पहले सिद्ध हुआ कि $\frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$ = भगणादिमध्यम ग्रह ।

परन्तु $\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}}$ = गतयो $\therefore$ $\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि} \times \text{ग्रहक}}$ = भगणादिग्र ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१६॥

युगे ग्रहाः कियन्ति योजनानि भ्रमन्तीत्याह ।

भवृत्ततुल्यानि हि योजनान्यमी व्रजन्ति पूर्वाभिमुखं स्ववृत्तगाः ।
इनात्मषष्ट्या समगा दिवौकसः खवृत्ततुल्यानि युगस्य वत्सरैः ॥१७॥

वि. भा.—स्ववृत्तगाः (स्वकक्षास्थिताः) अमी (ग्रहाः) पूर्वाभिमुखं भवृत्ततुल्यानि (क्रान्तिवृत्तप्रमाणानि) योजनानि व्रजन्ति, इनात्मषष्ट्या (एकदिनेन) दिवौकसः (ग्रहाः) समगाः (समगतिकाः) भवन्ति, युगस्य वत्सरैः (युगवर्षैः) खवृत्ततुल्यानि योजनानि व्रजन्तीति । एतेनेदमेव कथ्यते यदेकभगणे योजन मानेन स्वकक्षाप्रमितं ग्रहचलनं भवति, एकदिने च योजनात्मकगतिः सर्वेषां तुल्यैव भवति, युगवर्षे खकक्षायोजनमितं ग्रहचलनं भवतीति ॥१७॥

हि. भा.—अपनी कक्षा में पूर्वाभिमुख चलते हुए एक भगण पूरा होने पर अपनी कक्षास्थित योजन के बराबर चलते हैं। एक दिन में ग्रहों के योजनमान से चलन (योजनात्मक गति) बराबर है। और युगवर्ष में ग्रहों के चलन योजनमान से खकक्षा योजन के बराबर होता है ॥१७॥

बुधशुक्रयोः कक्षाविषये विशेषमाह ।

रविभगणहता बुधसितचलकक्ष्यायोजनैर्युगाब्दाः स्युः ।
बुधसितयोर्यत एवं लिप्ता भोगतोऽनयोः सौरः ॥ १८ ॥

वि. भा.—बुधसितचलकक्ष्यायोजनैः (बुधशुक्रशीघ्रोच्चकक्ष्यायोजनैः) रवि भगणहताः (रविभगणगुणिताः) तदा युगाब्दाः स्युः (युगवर्षाणि स्युः) यतः (यस्मात् कारणात्) अनयोर्बुधसितयोः (बुधशुक्रयोः) चलकक्ष्यायां (शीघ्रोच्चकक्षायां) भ्रमतोः एवं सौरः (सूर्यसम्बन्धि) लिप्ता भोगतो भवत्यर्थाद् बुधशुक्रयोः कलात्मकभोगः शीघ्रोच्चकक्षायां रविगत्यैव भवतीति ॥१८॥

अस्योपपत्तिः ।

बुधशुक्रयोः युग भगण × कक्षा > खकक्षा

तथा बुधशुक्रशीघ्रोच्चयोः युगभगण × कक्षा = स्वकक्षा

अन्यग्रहाणां शीघ्रोच्चानां तु युभ × कक्षा >< खकक्षा

अतोऽत्र $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युगभगण}}$ इति स्वकक्षासमं न भवति, तदोच्चानां शुद्धमानयनं न भविष्यति । परं येषां कक्षा शुद्धाऽऽगता तेषां तच्छुद्धकक्षावलम्बेन यथा शुद्धमानयनं भवति तथात्राप्येतदशुद्धकक्षावलम्बेनैवैतेषामपि शुद्धमानयनं कर्त्तव्यमिति चेत्तदा कल्प्यतां तावदशुद्धकक्षायामेव भ्रमणं तदा $\frac{\text{खक} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$ = अहर्गणसं खकक्षा, पुनरनुपातः

$\frac{\text{१ भगण} \times \text{अहर्गण संखक}}{\text{अशुद्धकक्षा}} = \frac{\text{खक} \times \text{अहर्गण} \times \text{१ भग}}{\text{युकु} \times \text{अशुद्धक}}$ = अहर्गणसं खकक्षा जनित भगणादिग्रह

परन्तु अशुद्धोच्चकक्षा $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{युगोच्चभ}}$ उत्थापनेन

$\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अह} \times \text{युउभ} \times \text{१ भगण}}{\text{खकक्षा} \times \text{युकु}} = \frac{\text{अह} \times \text{युउभ}}{\text{युकु}}$ = अहर्गणसं उच्चभगणादिग्र.

अत्राशुद्धमूलभूतखकक्षयोर्हरगुणकयोर्नाशेऽन्तिमस्वरूपे दोषाभावाच्छुद्धमेवानयनं जातम् । एवं बुधशुक्रयोरप्यशुद्धावलम्बनमेव शरणम् ।

परं युरभ = युवुभ = युशुभ ∴ मर = मवु = मशु इति दर्शनात्

$\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युवुभ}} = \frac{\text{खक}}{\text{युशुभ}} = \frac{\text{खक}}{\text{युरभ}}$ = वुकक्षा = शुक = रकक्षा इति ग्रहणं कृत्वा पूर्वोक्त्या रव्यानयनं कार्यं तदा तत्तुल्यावेव मध्यमौ बुधशुक्रौ भवेताम् । परं वास्तवावेतावनन्तरोक्तरीत्याऽऽनेतव्यौ तदा स्वस्वशीघ्रोच्चकक्षायां रविगत्या तौ भ्रमत इति ॥१८॥

हि. भा.—बुध और शुक्रशीघ्रोच्च कक्षा योजन से रवि भगण को गुणने से युगवर्ष होते हैं, क्योंकि अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में भ्रमण करते हुए बुध और शुक्र का कलात्मक भोग सूर्यसम्बन्धी है अर्थात् शीघ्रोच्च कक्षा में उनके भ्रमण रविगति से होता है ॥१८॥

उपपत्ति ।

बुध और शुक्र के युग भगण × कक्षा > खकक्षा तथा बुध को शीघ्रोच्च के युग भगण × कक्षा = खकक्षा, अन्य ग्रहों के शीघ्रोच्च के युगभ × कक्षा >< खकक्षा इसलिये यहां $\frac{\text{खक}}{\text{युभगण}}$ यह स्वकक्षा के बराबर नहीं होता है । तब तो उच्चों का शुद्ध आनयन नहीं होगा, लेकिन जिनकी कक्षा शुद्ध आई है उन सब के शुद्ध कक्षावश जिस तरह शुद्ध आनयन होता है उसी तरह यहां भी अशुद्ध कक्षावश से इन सब का शुद्ध आनयन करना चाहिये, यह यदि आग्रह है तब तक अशुद्ध कक्षा ही में भ्रमण स्वीकार कीजिये तब $\frac{\text{खक} \times \text{अहर्गण}}{\text{यु कु}}$ = अहर्गणसं खकक्षा, फिर अनुपात कीजिये

$$\frac{\text{१ भगण} \times \text{अहर्गणसं खकक्षा}}{\text{अशुद्धकक्षा}} = \frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्ग} \times \text{१ भगण}}{\text{युकु} \times \text{अशुद्धक}} =$$

अहर्गणसं खकक्षा जनित भगणादिग्र.

परञ्च $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{युगोच्चभ}}$ = अशुद्ध उच्चकक्षा, उत्थापन देने से

$$\frac{\text{खक} \times \text{अह} \times \text{युउभ} \times \text{१ भगण}}{\text{खकक्षा} \times \text{युकु}} = \frac{\text{युउभ} \times \text{अह}}{\text{युकु}}$$ = अहर्गण सं उच्च भगणादिग्र.

इस तरह शुद्ध ही आनयन होगया । इस तरह बुध और शुक्र के लिये भी अशुद्ध का अवलम्बन करना ही शरण है ।

परन्तु युरभ = युवुभ = युशुभ ∴ मर = मवु = मशु

अतः $\frac{\text{खक}}{\text{युवुभ}} = \frac{\text{खक}}{\text{युशुभ}} = \frac{\text{खक}}{\text{युरभ}}$ = वुकक्षा = शुकक्षा = रविकक्षा इस पर से रवि का आनयन करने से रवि ही मध्यम बुध और शुक्र होंगे । अर्थात् अपनी अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में रविगति से भ्रमण करते हैं यह सिद्ध हुआ ॥ १८ ॥

इदानीं कुजगुरुशनीनां विशेषमाह ।

चलकक्ष्यायां भ्रमतोः कुजगुरुशनैश्चराः कक्ष्याः ।
इतरभगणाहता अध्वा तच्छीघ्राणामतश्चार्कः ॥ १९ ॥

वि. भा.—चलकक्ष्यायां भ्रमतोरित्यस्य पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः । कुजगुरुशनैश्चराः कक्ष्याः (मङ्गलबृहस्पतिशनैश्चरकक्ष्याः) इतरभगणाहताः (भिन्नभगणगुणिताः) तदा खकक्षामानं भवति, अतः कारणात् तच्छीघ्राणां (तेषां शीघ्रोच्चानां) अध्वा (मार्गः) अर्कः (रविः) भवतीति ॥

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोकोपपत्त्यन्तर्गता बोध्या ।

हि. भा.—मङ्गल, बृहस्पति, शनैश्चर इन सब की कक्षा को दूसरे ग्रहभगण से गुणने से खकक्षा के मान होते हैं इसलिए उन सब की शीघ्रोच्चमार्ग रवि (रविकक्षा) है ।

इसकी उपपत्ति पूर्वश्लोक की उपपत्ति में दिखलाई गई है ॥ १९ ॥

शशिज्ञ-शुक्रार्क-महीसुताङ्गिरः शनैश्चरार्क्षाणि यथाक्रमं क्षितेः ।
ऋक्षैः परिव्याप्तसुरक्षसां पुरि भ्रमन्ति तिर्यक् क्वितरे हि भूतले ॥२०॥

वि. भा.—शशिज्ञ शुक्रार्कमहीसुताङ्गिरः शनैश्चरार्क्षाणि (चन्द्र बुध शुक्र रवि-कुजगुरुशनैश्चरनक्षत्राणि) यथाक्रमं क्षितेः (पृथिव्याः) उपरिस्थितानि सन्ति, अर्थात्पृथिवीत उपरि ऊर्ध्वक्रमेण स्वस्वकक्षायां पूर्वोक्तग्रहनक्षत्राणि सन्ति, ऋक्षैः परिव्याप्तसुरक्षसां पुरि (राक्षसव्याप्तलङ्कानगर्यां) क्वितरे भूतले (पृथिवीभिन्न-धरातले) तिर्यक् (तिर्यग्रूपेण) भ्रमन्तीति ॥ शशिज्ञशुक्रार्कादीनां कथमीदृग्रूपेण तदवस्थितिस्तत्कारणं मङ्गलश्लोक एव प्रदिपादितमतस्त तत्रैव द्रष्टव्यमिति ॥२०॥

हि. भा.—चन्द्र बुध शुक्र रवि मङ्गल बृहस्पति शनैश्चर और नक्षत्र ये सब पृथिवी से ऊपर पृथ्वी को चारों तरफ जिनकी कक्षा घेरे हुए हैं उनमें (कक्षावृत्तों में) स्थित है । जो ग्रह और नक्षत्र लङ्कापुरी में पृथिवी से भिन्न धरातलों में भ्रमण करते हैं ॥

चन्द्र बुध शुक्र रवि मङ्गलादि ग्रहों की स्थिति जिस क्रम में लिखी गई है उसमें क्या कारण है सो मङ्गलश्लोक ही में वर्णित है इसलिये ये बातें वहीं पर देखनी चाहियें ॥२०॥

इदानीं दिनपतिमासपतिवर्षपतिहोरापतिज्ञानार्थं विधीनाह

होरेश्वराः सप्त शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाश्चतुर्थः ।
दिनाधिपः सावनमासनाथः स्यात्सप्तमोऽब्दाधिपतिस्तृतीयः ॥ २१ ॥

विधोर्यथोर्ध्वं द्युपतिस्तु पञ्चमो भवेच्च षष्ठोऽब्दपतिस्तु सावनः ।
अनन्तरो मासपतिश्च सप्तमो भवेच्च होराधिपतिर्यथाक्रमम् ॥ २२ ॥

वि. भा.—शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाः (कक्षाक्रमेण स्थिताः शनैश्चरादि क्रमिकशीघ्रगतिकाः) सप्तग्रहा होरेश्वराः (होराधिपतयः) स्युः । चतुर्थो दिनाधिपतिः (वारेशः), सप्तमः सावनमासनाथः (सावनमासपतिः) तृतीयः अब्दाधिपतिः (वर्षपतिः) भवेत् । विधोः (चन्द्रात्) यथोर्ध्वं (ऊर्ध्वक्रमेण) पञ्चमो द्युपतिः (दिनपतिः) षष्ठः सावनोऽब्दपतिः (सावनवर्षेशः), अनन्तरः (चन्द्रादूर्ध्वक्रमिकः) मासपतिः (मासेशः) अत्र भवेच्च सप्तमः होराधिपतिश्च यथाक्रमं भवेदिति ॥ २१-२२ ॥

यथा

कक्षाक्रमेणोपर्युपरिस्थिता श्चन्द्रादयो ग्रहाः	शनैश्चरतोऽधः क्रमेण, होरेशाः	चन्द्रत उपरि क्रमेण सप्तमः सप्तमो ग्रहो होरेश्वरः
चन्द्रः	शनिः	चन्द्रः
बुधः	वृहस्पतिः (गुरुः)	शनैश्चरः
शुक्रः	मङ्गलः	गुरुः
रविः	रविः	मङ्गलः
मङ्गलः	शुक्रः	रविः
वृहस्पतिः (गुरुः)	बुधः	शुक्रः
शनैश्चरः ।	चन्द्रः	बुधः

शनैश्चरातोऽधः क्रमेण चतुर्थश्चतुर्थो दिनपतिः	चन्द्रत उपरिक्रमेण पञ्चान्तरितग्रहा दिनपतयः	शनैश्चरतोऽधोऽधः क्रमेण सप्तमः सप्तमो मासेशः	सोमत उपरिक्रमेण ग्रहा मासेशाः
शनिः	सोमः	शनिः	सोमः
रविः	मङ्गलः	सोमः	बुधः
सोमः	बुधः	बुधः	शुक्रः
कुजः	वृहस्पतिः (गुरुः)	शुक्रः	रविः
बुधः	शुक्रः	रविः	मङ्गलः
गुरुः	शनिः	मङ्गलः	गुरुः
शुक्रः ।	रविः ।	गुरुः ।	शनैश्चरः

शनैश्चरतोऽधःक्रमेण तृतीयस्तृतीयो ग्रहो वर्षेश्वरः ।	चन्द्रत उपरिक्रमेण षष्ठः षष्ठो ग्रहो वर्षेशः ।
शनिः	सोमः
मङ्गलः	गुरुः
शुक्रः	रविः

सोमः	बुधः
गुरुः	शनैश्चरः
रविः	मङ्गलः
बुधः ।	शुक्रः

एतेनाचार्येण होराधिपति मासपति वर्षपत्याद्यर्थं कथमीदृशी गणना कृता तत्र युक्तिः केत्यर्थम्

अत्रोपपत्तिः

राश्यर्धम्=होरा, तेन मेषादितो राशीनां यादृश्यवस्थितिस्तादृश्येव होराणामपि भवेत् ग्रहकक्षास्थित्या यस्य ग्रहस्य कक्षा सर्वोर्ध्वगता स एव ग्रहः प्रथमहोरेशो भवितुमर्हति तेन सर्वोर्ध्वकक्षायां शनैश्चरस्य स्थितत्वात्प्रथमहोरेशः स एव भवेत्, द्वितीयादिहोरेशास्तु तस्मादधोऽधः कक्षास्थग्रहा भवितुमर्हन्त्यत एतदनुसारेण शनि गुरु मङ्गल रवि शुक्र बुध चन्द्राः प्रथमादि होरेशा; सिद्ध्यन्त्यतः होरेश्वराः सप्तशनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाः, आचार्योक्तमिदं युक्तियुक्तम् अथच होरामानम्=२$\frac{1}{2}$ घटी, मध्यममानेनाहोरात्रप्रमाणम्=६०, तेनाहोरात्रे होरासंख्याः=२४ होरेश ग्रह संख्या=७, तेन $\frac{\text{होरसं}}{७}=\frac{२४}{७}$ अत्र भजनाच्छेषमानम्=३=गत होरेशाः, तदग्रिमे दिने प्रथमहोराधिपतिश्चतुर्थग्रहो भवेत्स एव च दिनाधिपतिरपि प्रथमाधिकारपरिपूर्णत्वादतः 'चतुर्थो दिनाधिपः' आचार्योक्तं युक्तिसङ्गतम् ।

वर्षेश विचारार्थं वर्षारम्भे यो दिनपतिः स एव वर्षपतिरपि भवति तेनैकसावनवर्षदिनसंख्यायां सप्तभक्तायां शेषम्=३, (एकसावनवर्षदिनसंख्याः = ३६० दि.) अतः प्रत्येक-वर्षे गतदिनाधिपतयस्त्रयः, तदग्रिमवर्षारम्भे गतवर्षेशाच्चतुर्थग्रहो दिनपतिर्भवति, अधोऽधः कक्षास्थितिवशात्स च चतुर्थग्रहस्तृतीयो भवत्यतः 'अब्दाधिपतिस्तृतीयः' आचार्योक्तमिदं तथ्यमिति ।

मासेश्वरविचारार्थम् 'सावनमासनाथः स्यात्सप्तमः' इत्याचार्योक्तं शोभनं न प्रतिभाति ।

सूर्यसिद्धान्तेऽपि—'मन्दादधःक्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः ।

वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाः परिकीर्त्तिताः ॥
ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः ।
होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा ॥

पूर्वकथितवटेश्वराचार्योक्त मासेश्वर ज्ञानविधि सूर्यसिद्धान्तोक्त तज्ज्ञानविध्योः पार्थक्यं स्पष्टमेवास्ति परं 'विधोर्यथोर्ध्वं द्युपतिरि' त्यादौ मासेश्वरगणनक्रमः सूर्यसिद्धान्तकारोक्तसदृश एव । "षष्ठोऽब्दपतिस्तु सावनः—अनन्तरो मासपतिश्च सप्तमो भवेच्च होराधिपतिर्यथाक्रम' मित्यत्राऽऽचार्योक्तगणन-

क्रमेण यथाक्रममिति न सिद्धयति तथा च होरेशज्ञानार्थं चन्द्रादूर्ध्वक्रमेण सप्तमः सप्तमो ग्रहो होरेशो भवतीत्याचार्येण यत्कथ्यते तत्र यदि चन्द्रादूर्ध्वस्थितः सप्तमो ग्रहः (शनिः) प्रथमहोरेशस्ततः सप्तमो द्वितीयहोरेश इत्यादि तदा 'होरेश्वराः सप्तशनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाः', इत्येव सिद्धयति, यदि प्रथमहोरेशश्चन्द्रस्ततः सप्तमः शनिर्द्वितीयहोरेश इत्यादि गणनक्रमस्तदाऽयं क्रमविलक्षण एव विज्ञैरिति विचार्य ज्ञेयम् ।।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिना त्वेतद्भिन्नमेव कथ्यते यथा—
सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम् ।
वासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु हौरिकमीशम् ।।

अत्र युक्तिः । सावनवर्षप्रमाणे ३६० सप्तहृते च त्रीण्यवशिष्यन्ते ततश्चार्काच्चतुर्थः सावनवर्षपतिः (रविवारे कल्पारम्भत्वात्) त्रयाणां गतत्वाद् वर्त्तमानस्य चतुर्थत्वात् । त्रिंशतो मासप्रमाणस्य सप्तभिर्हरणे द्वयमवशिष्यते तत्र द्वौ व्यतीतौ वर्त्तमानस्तृतीयः मासाधिपतिः । तथा रविदिने प्रथमः कालहोरेशो रविरेव द्वितीयो रविमारभ्य षष्ठस्तस्मात्षष्ठस्तृतीय इति, दिनान्तरे तु तत्तद्दिनाधिपतिरेव प्रथमहोरेशो द्वितीयस्तस्मात्षष्ठ इत्यादि चिन्त्यमिति ।।

त्रिचतुरनन्तरषष्ठाः सावनमासाब्ददिवसहोरेशा इति ब्रह्मगुप्तोक्तिरपीति ।। २१-२२ ।।

हि० भा०—कक्षाक्रम से स्थित शनैश्चरादि क्रमिक शीघ्रगति ग्रह होराधिपति होते हैं । चौथे चौथे ग्रह (शनैश्चर से अधोऽधः क्रम से) दिनपति होते हैं । सातवें सातवें ग्रह सावनमासपति होते हैं, तीसरे तीसरे ग्रह वर्षपति होते हैं । चन्द्र से उपरिक्रम से पांचवें पांचवें ग्रह दिनपति होते हैं, छठे छठे ग्रह सावन वर्षपति होते हैं । चन्द्र से ऊर्ध्व क्रम से मासपति और सप्तम होराधिपति होते हैं ।। २१-२२ ।।

यथा

कक्षा क्रम से उपर्युपरि स्थित चन्द्रादिग्रह ।	शनैश्चर से अधोऽधः क्रम से होरेश	चन्द्र से उपरिक्रम से सातवे सातवे ग्रह होरेश
१. चन्द्र	१. शनि	१. चन्द्र
२. बुध	२. गुरु	२. शनैश्चर
३. शुक्र	३. मङ्गल	३. गुरु
४. रवि	४. रवि	४. मङ्गल
५. मङ्गल	५. शुक्र	५. रवि
६. गुरु	६. बुध	६. शुक्र
७. शनि	७. चन्द्र	७. बुध

शनैश्चर से अधोऽधः क्रम से चौथे चौथे ग्रह दिनपति	चन्द्र से उपरिक्रम से पांचवें पांचवें ग्रह दिनपति	शनैश्चर से अधोऽध क्रमसे सातवें सातवें ग्रह मासेश होते हैं	सोम से उपरि क्रमसे मासेश होते हैं ।
१. शनि	१. सोम	१. शनि	१. सोम
२. रवि	२. मङ्गल	२. सोम	२. बुध
३. सोम	३. बुध	३. बुध	३. शुक्र
४. मङ्गल	४. बृहस्पति	४. शुक्र	४. रवि
५. बुध	५. शुक्र	५. रवि	५. मङ्गल
६. बृहस्पति	६. शनि	६. मङ्गल	६. गुरु
७. शुक्र	७. रवि	७. गुरु	७. शनि

शनैश्चर से अधः क्रमसे तीसरे तीसरे ग्रह वर्षेश होते हैं ।	चन्द्र से उपरि क्रम से छठे छठे ग्रह होते हैं ।
१. शनि	१. सोम
२. मङ्गल	२. गुरु
३. शुक्र	३. रवि
४. सोम	४. बुध
५. बृहस्पति	५. शनि
६. रवि	६. मङ्गल
७. बुध	७. शुक्र

वटेश्वराचार्य ने होरादिपति ज्ञान के लिये क्यों इस तरह की गणना की है इसमें क्या युक्ति है उसके लिए

उपपत्ति

रात्र्यर्ध=होरा इसलिये मेषादि राशियों की ऊर्ध्वाधर स्थिति के अनुसार ही होराओं की भी स्थिति होगी, ग्रहकक्षा स्थिति के अनुसार शनैश्चर की कक्षा सब ग्रहों की कक्षाओं से ऊपर हैं इसलिये प्रथम होराधिपति शनैश्चर हुए, द्वितीयादि होराधिपति शनैश्चर से अधोऽधः कक्षा स्थित ग्रह होते हैं इसलिए इसके अनुसार शनैश्चर, गुरु, मङ्गल, रवि, शुक्र, बुध, चन्द्र ये ग्रह प्रथमादि होरेश सिद्ध हुए । अतः 'होरेश्वराः सप्त शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाः" यह आचार्योक्त युक्तियुक्त है ।

होरामान=२½ घटी, मध्यम मान से अहोरात्र मान=६० घ, इसलिए अहोरात्र में होरा संख्या=२४ होरेशग्रहसंख्या=७ अतः होरा संख्या में सात से भाग देने से शेष =३=गत होरेश, अगले दिन में प्रथम होराधिपति चौथे ग्रह होते हैं वही प्रथमाधिकार से दिनाधिपति होते हैं इसलिये 'चतुर्थो दिनाधिपः' यह आचार्योक्त ठीक है ।

वर्षेश के लिये वर्षारम्भ में जो दिनपति है वही वर्षपति भी होते हैं इसलिए एक सावनवर्ष दिनसंख्या ३६० में सात से भाग देने से शेष=३ अतः हर एक वर्ष में गत दिनाधिपति=३, उससे अगले वर्षारम्भ में गतवर्षेश से चौथा ग्रह दिनपति होता है, अधोऽधः

कक्षास्थितिवश से वह चौथा ग्रह तीसरा होता है अतः 'अब्दाधिपतिस्तृतीयः यह आचार्योक्त सिद्ध हुआ।

मासेश्वर विचार के लिये 'सावनमासनाथः स्यात्सप्तमः, यह आचार्योक्त ठीक नहीं मालूम पड़ता है।

सूर्यसिद्धान्त में भी 'मन्दादधःक्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः।

वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाः परिकीर्त्तिताः ॥

ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः।

होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा ॥'

पूर्वकथित वटेश्वराचार्योक्त मासेश्वर ज्ञानविधि और सूर्यसिद्धान्तोक्त मासेश्वर ज्ञानविधियों में अन्तर स्पष्ट है। लेकिन 'विधोर्यथोर्ध्वं द्युपतिः' इत्यादि में मासेश्वर गणना-क्रम सूर्यसिद्धान्तोक्तानुसार ही है 'षष्ठोऽब्दपतिस्तु सावनः, अनन्तरो मासपतिश्च सप्तमो भवेच्च होराधिपतिर्यथाक्रमम्, इस आचार्योक्त गणनाक्रम से यथाक्रम जो कहते हैं उसकी सिद्धि नहीं होती है और होरेश ज्ञान के लिए चन्द्र से ऊर्ध्वक्रम से सप्तम-सप्तम ग्रह होरेश होते हैं इस आचार्योक्ति में यदि चन्द्र से ऊर्ध्वस्थित सातवें ग्रह (शनि) प्रथम होरेश उससे सातवें ग्रह (गुरु) इत्यादि गणना क्रम हो तब तो 'होरेश्वराः सप्तशनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्रजवाः' यही सिद्ध होता है, यदि प्रथम होरेशचन्द्र होते हैं द्वितीय होरेश उससे सातवें ग्रह (शनि) होते हैं इत्यादि गणनाक्रम रक्खा जायगा तब एक विलक्षण ही गणनाक्रम होगा, इसको विज्ञ लोग विचार कर समझें ॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इनसे भिन्न ही कहते हैं। जैसे,

सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम्।

वासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु हौरिकमीशम् ॥

इसकी युक्ति यह है कि सावन वर्ष प्रमाण को ३६० सात से भाग देने से तीन शेष रहता है इसलिये रवि से चौथे ग्रह सावनवर्षपति होते हैं। (कल्पारम्भ में रविवार होने के कारण रवि से गणना करते हैं), तीस दिन के मास होते हैं इसलिये उसमें सात से भाग देने से दो शेष रहता है, उसमें दो गत है वर्त्तमान तृतीयमासाधिपति होते हैं। तथा रविदिन में प्रथम काल होरेश रवि ही होते हैं द्वितीय काल होरेश रवि से छठे ग्रह होते हैं, इसी तरह छठे ग्रहकाल होरेश होते हैं। दूसरे दिन में वही दिन प्रथमकाल होरेश होता है। उससे छठे छठे ग्रह द्वितीयादि काल होरेश होते हैं।

ब्रह्मगुप्त भी इसी बात को कहते हैं यथा

त्रिचतुरनन्तरषष्ठाः सावनमासाब्ददिवसहोरेशाः ॥ इति ॥

इदानीं ग्रहाणां गतावतुल्यत्वे कारणमाह।

अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ताः स्वल्पा महत्यो महतीन्दुरस्मात्।
अल्पेन कालेन लघु स्ववृत्तं भ्रमत्यनल्पं महतार्कसूनुः ॥ २३ ॥

प्राणेन लिप्ताभमुदेति पूर्वे भूजे हरेऽस्तं व्रजति ग्रहश्च।
स्वभुक्तिलिप्तायुतचक्रलिप्ता भोगैस्समं तेन यतो जवत्वम् ॥ २४ ॥

*वि.*भा.—हि (यतः) अल्पे वृत्ते (लघुनि वृत्ते) भचक्रलिप्ताः (भचक्रकलाः) स्वल्पाः (लघ्व्यः) महति वृत्ते (बृहद्वृत्ते) महत्यः कलाः सन्ति। अस्मात् कारणात् इन्दुः (चन्द्रः) अल्पेन कालेन (अल्पीयसा समयेन) लघु स्ववृत्तं (लघु स्वकक्षावृत्तं) भ्रमति, अर्कसूनुः (शनैश्चरः) महता कालेन अनल्पं (महत्स्वकक्षावृत्तं) भ्रमति। लिप्ताभं (कलादिनक्षत्रबिम्बं) पूर्वे भूजे (पूर्वक्षितिजे) उदेति (उदयं गच्छति) परे भूजे (पश्चिमक्षितिजे) अस्तं व्रजति, (अस्तं प्राप्नोति), ग्रहश्च स्वभुक्तिलिप्तायुतचक्रलिप्ताभोगैः (स्वगतिकलायुतचक्रकलातुल्यभोगैः) तेन नक्षत्रेण समं (सार्धं) पूर्वे भूजे व्रजति, यतो जवत्वम् (गतित्वं)अस्ति, एतावताऽनेन कथ्यते यत्केन चिन्हक्षत्रेण सह ग्रहः पूर्वक्षितिजे उदितः, नक्षत्रंतु नाक्षत्रघटीनां षष्ट्या पुनस्तत्रैवो-दयं गच्छति, परं ग्रहस्य स्वगतिरस्तीत्यतो नक्षत्रोदयानन्तरं गतिकलोत्पन्नासुभि र्ग्रहोदयो भवति तेन ग्रहस्पष्टसावनम्

=चक्रकला+ग्रहगतिकलोत्पन्नासु=अहोरात्रासु+गतिकलोत्पन्नासु

यतः चक्रकला=२१६००=चक्रासु।

६० घटी+ग्रहगतिकला अथवा तुल्यासु=मध्यमसावनम्

६०+ग्रहगतिकलोत्पन्नासु=स्पष्टसावनम्।

अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ता इत्यादिना कलात्मकगतौ न्यूनाधिकत्वं सावन-मानेष्वपि न्यूनाधिकत्वं प्रदर्शयत्याचार्यः। योजनात्मकगतिः सर्वेषां ग्रहाणां तुल्यै-वास्ति किन्तु कलात्मकगतिर्भिन्ना भिन्ना भवति तद्वशेनैव ग्रहेषु शीघ्रगतित्वं मन्द-गतित्वं च भवतीति। भास्कराचार्येणाप्येतदेव कथ्यते—

समागतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत्।
कलादि कल्पनावशान्मृदु द्रुता च सा स्मृता ॥
'कक्षाः सर्वा अपि द्विविषदां चक्रलिप्ताङ्किताास्ता
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः।
तस्मादेते शशिज भृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण ॥ २३-२४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे कक्ष्याविधानग्रहानयनविधिः सप्तमो-ध्यायः समाप्तः ॥

हि.भा.—छोटे वृत्त में भचक्र कला छोटी है और बड़े वृत्त में भचक्रकला बड़ी है, इसलिये चन्द्रमा अपने छोटे वृत्त का भ्रमण स्वल्प ही काल में करते हैं और शनैश्चर अपने बड़े वृत्त (अपनी बड़ी कक्षा) का भ्रमण बहुत अधिक काल में करते हैं।

नक्षत्र पूर्व क्षितिज में उदित होता है और पश्चिम क्षितिज में अस्तंगत होता है, ग्रह अपनी गतिकला युत भचक्रकला करके पूर्व क्षितिज में उदित होते हैं अर्थात् किसी नक्षत्र के साथ ग्रह पूर्व क्षितिज में उदित हुए द्वितीय उदय पहले नक्षत्र का होगा (क्योंकि नक्षत्र को गति नहीं है,) बाद में ग्रह का उदय ग्रहगतिकलोत्पन्नासु करके होगा इसलिये भचक्रकला + ग्रहगतिकलोत्पन्नासु = ग्रहस्पष्टसावन और ग्रह मध्यम सावन = ६० + ग्रहगतिकलातुल्यासु।

'अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ता' इत्यादि से कलात्मक गतियों में न्यूनाधिकत्व दिखलाते हैं, ग्रहों की योजनात्मक गति बराबर है किन्तु कलात्मक गति बराबर नहीं है इसी कारण से ग्रहों में शीघ्र गतित्व और मन्दगतित्व होता है। इस विषय में भास्कराचार्य भी यही बात कहते हैं। यथा—

"समागतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत्।" इत्यादि

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में कक्ष्याविधान ग्रहानयनविधि सप्तम अध्याय समाप्त हुआ॥



अष्टमोऽध्यायः

अथ देशान्तरविधिः

अधुना लङ्कामारभ्य मेरुपर्यन्तसमरेखास्थितान् प्रसिद्धदेशानाह ।

लङ्का कुमारी तु ततस्तु काञ्ची पानाटमर्यास्य पुरी महीष्मती ।
श्वेतोऽचलोऽस्मादपि वत्स गुल्मं पू. स्यादवन्ती त्वनु गर्गराटम् ॥१॥
आश्रमं पतनमालवनगरे पट्टशिवमेव पुरोहितकम् ।
स्थाण्वीश्वरस्तु हिमवान् हिमेरलेखाध्वकर्मणि नास्त्यपरम् ॥२॥

वि. भा.—अर्यास्यपुरी (स्वामिकार्त्तिकस्थानम्) महिष्मती (माहिष्मती) श्वेतोऽचलः (सितपर्वतः) अत्र लेखाशब्देन रेखा बोध्या, श्लोकद्वयस्यार्थो रेखास्थित-देशप्रसिद्ध नाम विषयत्वान्नोच्यते ॥१-२॥

हि. भा.—उपर्युक्तश्लोकद्वय में रेखास्थित देशों का वर्णन है, जिन देशों के नाम प्रसिद्ध हैं। इसलिये श्लोकों के अर्थ नहीं लिखते हैं ॥१-२॥

अधुना देशान्तरसंस्कारं वक्तुं तदुपयोगिनौ भूपरिधिव्यासावाह ।

कृतनगदिग्भिर्भूमेर्व्यासः स्याद्योजनैर्भगोऽग्निहतः ।
खशरार्कहृतः परिधिः स्पष्टोऽतो दशकरणिका स्यात् ॥३॥

वि. भा.—कृतनगदिग्भिः (१०७४) समः, योजनैः (योजनमानैः) भूमेर्व्यासः (पृथिव्या विस्तृतिः) स्यात् व्यासः भगोऽग्निहतः (३९२७ गुणितः) खशरार्कहृतः (१२५० भक्तः) तदा परिधिः (भूपरिधिः) भवेत्, अतः दशकरणिका (दशमूलं) स्पष्टः परिधिरिति ॥३॥

अस्योपपत्तिः

भूव्यासज्ञानं मङ्गलश्लोके ग्रहकक्षास्थितिनिर्णयावसरे प्रदर्शितमेव ततो भूपरिध्यानयनं "व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खबाणसूर्यै" रित्यादिना स्फुटमेव । अत्र व्यासः=१०७४ तत उक्तरीत्या भूपरिधिः $=\frac{\text{भूव्या}\times ३९२७}{१२५०}$

$=\frac{१०७४\times ३९२७}{१२५०}=\frac{५३७\times ३९२७}{६२५}=\frac{२१०८७९९}{६२५}=३३७४+\frac{४९}{६२५}$ अत्र

शेषं त्यज्यते तदा भूपरिधिः$=३३७४$ $\therefore$ $\frac{\text{भूपरि}}{\text{भूव्या}}=\frac{३३७४}{१०७४}=३+\frac{१५२}{१०७४}$

$\therefore \frac{\text{भूप}^2}{\text{भूव्या}^2} = \left(३ + \frac{१५२}{१०७४}\right)^2 = १०$ स्वल्पान्तरात्

$\therefore$ भूप^2 = भूव्या$^2 \times १०$ ततो मूलेन भूप = भूव्या $\sqrt{१०}$ यदि भूव्या = १ तदा भूप = $\sqrt{१०}$ अतः स्पष्टोऽतो दशकरणिका स्यादित्युक्तम् । परमाचार्योक्तव्यासे भूप = व्या$\sqrt{१०}$ सूर्यसिद्धान्ते तद्वर्गतो दशगुणादित्यादिना यद् भूपरिध्यानयनं कृतं तदप्युपपन्नम् । परं $\left(३ + \frac{१५२}{१२५०}\right)^2 < १०$ अतः सूर्यसिद्धान्तस्य सुधावर्षिण्यां टीकायां "तद्वर्गतोऽदशगुणा" दित्यादि पाठः समुचित इति म. म. पण्डित सुधाकर-द्विवेदिना लिखितः । तत्र "अदशगुणादर्थात्किञ्चिन्न्यूनदशगुणादि" त्यर्थः कर्त्तव्यः" इति ।

व्यासात्परिध्यानयनं परिधेर्वा व्यासानयनं समीचीनं न भवितुमर्हति । यथा

चापम् > ज्या < स्पर्शरेखा

$\frac{\text{परिधि}}{१२} >$ ज्या ३० $\therefore$ परिधि > ज्या ३० $\times$ १२ वा परिधि > $\frac{\text{त्रि}}{२} \times १२$

वा परिधि > त्रि $\times$ ६ वा परिधि > $\frac{\text{व्या}}{२} \times ६$

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} > ३$

तथा $\frac{\text{परिधि}}{८} <$ स्प ४५ $\therefore$ परिधि < स्प ४५ $\times$ ८ वा परि < त्रि $\times$ ८

वा परिधि < $\frac{\text{व्या}}{२} \times ४८$ वा परि < व्या $\times$ ४

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} < ४$

अतः $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} > ३ < ४$ इति दर्शनात्सिद्धं यत्परिधिव्यासयोः सम्बन्धस्यास्थिरत्वान्नियतव्यासान्नियतपरिधिज्ञानं भवितुमर्हतीति व्यासमानमनेन श्रीपत्यादि-व्यासमानाद्भिन्नं कल्पितमिति ॥३॥

हि. भा.—१०७४ इतना योजन भूव्यास है, भूव्यास को ३९२७ इतने से गुण कर १२५० इससे भाग देने से भूपरिधि प्रमाण होता है । अतः दश के मूल स्पष्ट भूपरिधि प्रमाण है ॥३॥

उपपत्ति

भूव्यास ज्ञान मङ्गलश्लोक में ग्रहकक्षा स्थिति क्रम के निर्णयावसर में दिखला चुके हैं । भूव्यास से भूपरिधि ज्ञान "व्यासे भनन्दाग्निहते" इत्यादि रीति से स्पष्ट है, यथा यहां भूव्यास = १०७४ तब उक्त रीति से

$$\frac{\text{भूव्या}\times ३६२७}{१२५०}=\frac{१०७४\times ३६२७}{१२५०}=\frac{५३७\times ३६२७}{६२५}=\frac{२१०८७६६}{१२५०}=३३७४+\frac{४६}{१२५०}$$

शेष के त्याग करने से भूप $=३३७४$ $\therefore \frac{\text{भूप}}{\text{भूव्या}}=\frac{३३७४}{१०७४}=३+\frac{१५२}{१०७४}$

तब $\frac{\text{भूप}^२}{\text{भूव्या}^२}=\left(३+\frac{१५२}{१०६४}\right)^२=१०$ स्वल्पान्तरात् $\therefore$ भूप^२ = भूव्या$^२\times १०$

यदि भूव्या $=१$ तदा भूप$^२=१०$ $\therefore$ भूप $=\sqrt{१०}$ पर आचार्योक्त व्यास में

भूप = व्या$\sqrt{१०}$, तद्वर्गतो दशगुणादित्यादि सूर्यसिद्धान्तोक्त भूपरिध्यानयन भी उपपन्न हुआ। लेकिन $\left(३+\frac{१५२}{१२५०}\right)^२<१०$ इस लिये सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका में "तद्वर्गतोऽदशगुणादित्यादि" पाठ समुचित है, म. म. पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है वहां "अदशगुणात् अर्थात्किञ्चिन्न्यून दस से गुणना" इत्यादि अर्थ करना चाहिये।

व्यास पर से परिधि का आनयन वा परिधि से व्यास का आनयन ठीक नहीं हो सकता है यथा चा > ज्या < स्पर्शरे

$\frac{\text{परिधि}}{१२}>$ ज्या ३० $\therefore$ परिधि > ज्या ३० $\times$ १२ वा परिधि $>\frac{\text{त्रि}}{२}\times १२$

वा परिधि > त्रि $\times$ ६ वा परिधि $>\frac{\text{व्या}}{२}\times ६$

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}>३$

और $\frac{\text{परिधि}}{८}<$ स्प ४५ $\therefore$ परिधि < स्प ४५ $\times$ ८ वा परिधि < त्रि $\times$ ८

वा परिधि $<\frac{\text{व्या}}{२}\times ८$ वा परिधि < व्या $\times$ ४

$\therefore \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}<४$, अतः $\frac{\text{परि}}{\text{व्यास}}>३<४$ इससे सिद्ध होता है कि परिधि और व्यास के सम्बन्ध की अस्थिरता के कारण नियत व्यास से नियत परिधि नहीं आ सकती या परिधि से व्यास भी ठीक नहीं आ सकता है ।।३।।

इदानीं पुरान्तरयोजनज्ञानमाह ।

तिर्यक् लेखा पत्तनपलनिजपलयोर्विशेषशेषांशैः ।
क्षितिपरिणाहो निघ्नश्चक्रांशहृदध्ववाहः स्यात् ।।४।।

वि. भा.—तिर्यग्लेखा पत्तनपल निजपलयोर्विशेषशेषांशैः (तिर्यक् स्थित-रेखादेशाक्षांश स्वदेशाक्षांशयोरन्तरजनितशेषांशैः) क्षितिपरिणाहः (भूपरिधिः) निघ्नः (गुणितः) चक्रांशहृत् (३६० भक्तः) तदा अध्ववाहः (रेखापुर-स्वपुरान्तर-योजनं) स्यादिति ।। ४ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

रेखापुरस्वपुरयोरक्षांशान्तरैरनुपातः, यदि भांशैर्भूपरिधि-योजनानि लभ्यन्ते तदाऽक्षांशान्तरांशैः किमित्यनुपातेन तयोः पुरयोरन्तरयोजनानि तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{भूपरिधियोजन} \times \text{अक्षांशान्तर}}{३६०} =$ पुरान्तरयोजनम् ।

अत उपपन्नम् ॥ ४ ॥

हि. भा.—रेखापुर और अपने पुर के जो अक्षांश है दोनों के अन्तर से भूपरिधि को गुणकर ३६० अंश से भाग देने से दोनों पुरों के अन्तर योजन होता है ॥ ४ ॥

उपपत्ति ।

रेखापुर स्वपुर के अक्षांशान्तर = अक्षांशान्तर तब अनुपात करते हैं कि यदि भांश में में भूपरिधि योजन पाते हैं तो अक्षांशान्तरांश में क्या इस अनुपात से पुरान्तर योजन प्रमाण आता है । $\frac{\text{भूपरिधियो} \times \text{अक्षांशान्तर}}{३६०} =$ पुरान्तरयोजन $\therefore$ सिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

इदानीं देशान्तरसंस्कारमनुभाषते

लेखा स्वपुरान्तर्योजनसंख्या श्रुतिस्तु लोकोक्ता ।
तद्दोः कृतिविवरपदं कोटिदेशान्तरं प्रोक्तम् ॥ ५ ॥
देशान्तरगतिघातात्कुवृत्तलब्धं विशोधयेत्पुरतः ।
देयं कलादिपश्चाल्लेखाया मध्यमे द्युचरे ॥ ६ ॥

वि. भा.—लेखा स्वपुरान्तर्योजनसंख्या (समरेखास्थितनगरतिर्यक्स्थित-स्वनगरयोरन्तरयोजनसंख्या) लोकोक्ता (लोककथिता) श्रुतिः (कर्णः) अर्थादस्मदीयदेशात्समरेखा स्थितास्मदेकदेशस्थनगरस्येयन्ति योजनानीति लोककथनेन ज्ञातानि, इति कर्णः, तद्दोः कृतिविवरपदं (कर्णवर्ग-पुरान्तरयोजनरूप-भुजवर्गान्तरमूलं) कोटिदेशान्तरं प्रोक्तम् (आत्मदेशरेखास्थदेशयोरन्तरे ऋज्वीभूतं योजनमानं कथितम्) ॥

देशान्तरगतिघातात् (आनीतदेशान्तरग्रहगतिगुणनफलतः) कुवृत्तलब्धं (स्फुटभूपरिधिभजनाद्यत्फलं) कलादितद्रेखायाः पुरतः (रेखातः पूर्वदेशे) मध्यमे द्युचरे (मध्यमग्रहे) विशोधयेत्, पश्चात् (रेखातः पश्चिमदेशे) मध्यमे द्युचरे देयं (योज्यं) तदा स्वदेशमध्यमग्रह उन्मण्डले भवतीति ज्ञेयम् ॥

अस्योपपत्तिः ।

स्वदेशेन सह तुल्याक्षो समरेखास्थितो यो देशस्तस्याभीष्टरेखास्थस्य ज्ञाताक्षस्य देशस्य चान्तरे कियन्ति योजनानीति जिज्ञासितम् । तन्नानुपातो यदि भांशैर्भूपरिधियोजनानि लभ्यन्ते तदा स्वदेशेन सह तुल्याक्षसमरेखास्थितदेशस्य

लोकप्रसिद्धसमरेखास्थितदेशस्य चान्तरे कियन्ति योजनानि फलं दक्षिणोत्तर-योजनात्मिका भुजा रेखान्तस्य देशस्वदेशयोरन्तरं तत्र स्वदेशस्य ज्ञाताध्वरेखास्थ-देशस्य चान्तरं कर्णः । तत्कृत्योरन्तरमूलं योजनात्मिका पूर्वापरा स्वदेशेन सह तुल्याक्षस्य समरेखास्थितदेशस्य स्वदेशस्य चान्तरात्मिका कोटिरिति ।।

अथ स्फुटपरिधियोजनैर्ग्रहगतिर्लभ्यते तदा देशान्तरयोजनैः किमित्यनु-पातेन कलादिकं फलं समरेखायाः प्राग्देशेषु ग्रहमध्ये शोध्यं यतो रेखातः पूर्वे यो द्रष्टा स रेखास्थद्रष्टुः सकाशात्पूर्वमेवोद्यन्तं रविं पश्यत्यतो देशान्तरफलं विशोध्यते । पश्चात्तु दीयते तत्रत्यानां तावति भुक्ते रवेर्दर्शनात्तदा स्वदेशोदयकालीनमध्यग्रहः स्यादिति ।। उक्तोपपत्तौ स्पष्टभूपरिधिवशेन देशान्तरयोजनसम्बन्धिग्रहगतिकला-प्रमाणमानीतं परं स्पष्टभूपरिधिज्ञानं कथं भवेत्तदर्थं विचार्यते ।

भूकेन्द्राल्लम्बांशवृत्ताधारा सूची कार्या, तत्सूचीकर्णा भूगोले यत्र यत्र लगन्ति तदाकृतिर्वृत्ताकारा भवति तस्यैव नाम स्पष्टभूपरिधिः । तन्निष्ठयोजनं स्पष्टभूप-रिधियोजनम् । भूपृष्ठस्थानाद् ध्रुवयष्ट्युपरि यो लम्बस्तदेव स्पष्टभूपरिधिव्या-सार्धम् । भूव्यासार्धमेको भुजः । स्पष्टभूपरिधिव्यासार्ध द्वितीयो भुजः । ध्रुवयष्टि-खण्डं तृतीयो भुजः । अत्र त्रिभुजे भूकेन्द्रलग्नकोणः = लम्बांशः । स्पष्टभूपरिधि-व्यासार्धमूलविन्दुलग्नकोणः = ९०, तदा यदि त्रिज्यया भूव्यासार्धं लभ्यते तदा लम्बज्यया किमिति कोणानुपातेन समागतं स्पष्टभूपरिधिव्यासार्धम्

$= \frac{\text{भूव्या} \frac{1}{2} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रि}}$ ततोभूव्यासार्धेन भूपरिधिमानं लभ्यते तदा स्पष्टभूपरिधि-व्यासार्धेन किं समागच्छति स्पष्टभूपरिधिप्रमाणं तत्स्वरूपम्

$$= \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{स्पष्टभूपरिधि व्या} \frac{1}{2}}{\text{भूव्या} \frac{1}{2}}$$

$= \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{भूव्या} \frac{1}{2} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रि} \times \text{भूव्या} \frac{1}{2}} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रि}}$ एतेन स्पष्टभूप-रिधिप्रमाणं विदितं जातं, सूर्यसिद्धान्ते "लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधि-" रित्यादिना सिद्धान्तशिरोमणौ "लम्बजा गुणितो भवेत्कुपरिधि" रित्यादिना भास्करेणापि तदेवानीतमिति ।। ५-६ ।।

हि. भा.—समरेखा स्थित नगर तिर्यक् स्थित स्वनगर की अन्तर योजन संख्यालोककथित कर्ण है, पुरान्तर योजन रूप भुज है, दोनों के वर्गान्तर मूल कोटि देशान्तर कथित है, देशान्तर योजन और ग्रहगति के घात में स्पष्ट भूपरिधियोजन से भाग देने से जो फल होता है उसको रेखा से स्वदेश के पूर्व तरफ रहने से मध्यमग्रह में घटाने से रेखा से स्वदेश के पश्चिम रहने पर मध्यम ग्रह में जोड़ने से स्वदेशोदय कालीन मध्यम ग्रह होते हैं ।। ५-६ ।।

उपपत्ति ।

अपने देश के अक्षांश के बराबर अक्षांश वाला समरेखा स्थित जो देश है उसका १५ र अभीष्ट रेखास्थित विदित अक्षांश वाले देश के अन्तर में कितने योजन है सो जानना

है। वहां अनुपात करते हैं कि यदि भांश (३६०) में भूपरिधि योजन पाते हैं तो स्वदेशाक्षांश तुल्य-अक्षांश वाले समरेखास्थित देश और लोकप्रसिद्ध समरेखास्थित देश के अन्तर में क्या इस अनुपात से फल दक्षिणोत्तर योजनात्मक भुज आया, रेखादेश स्वदेश का अन्तर वहां अपने देश और विदिताध्वरेखा देश के अन्तर कर्ण है, दोनों के वर्गान्तर मूल पूर्वापर देशान्तर (कोटिदेशान्तर) कोटि प्रमाण हुआ। अब अनुपात करते हैं कि स्फुटपरिधि योजन में ग्रहगतिकला पाते हैं तो देशान्तर योजन में क्या इस अनुपात से जो कलादि फल आता है रेखा से स्वदेश के पूर्व रहने पर स्वरेखोदयकालिक मध्यमग्रह में घटाने से रेखा से स्वदेश के पश्चिम रहने से स्वरेखोदयकालिक मध्यमग्रह में जोड़ने से स्वदेशोदयकालिक मध्यमग्रह होते हैं॥

इस उपपत्ति में स्पष्ट भूपरिधि योजन पर से देशान्तर योजन सम्बन्धी ग्रहगतिकला प्रमाण लाया गया है पर स्पष्टभूपरिधि योजन का ज्ञान कैसे होता है इसके लिये विचार करते हैं। भूकेन्द्र से लम्बांश वृत्त के प्रतिबिन्दु में रेखायें लाने से लम्बांश वृत्त के आधार पर एक सूची बन जायगी, सूचीकर्ण (भूकेन्द्र से लम्बांश वृत्त के प्रति बिन्दु में लाई हुई रेखायें) सब भूपृष्ठ में जहां जहां लगता है उसका आकार वृत्ताकार होता है, उसी वृत्त का नाम स्पष्ट भूपरिधि है। भूपृष्ठ स्थान से ध्रुवयष्टि के ऊपर जो लम्ब होता है वही स्पष्टभूपरिधि व्यासार्ध है। यहां एक जात्य त्रिभुज बनता है, भूव्यासार्ध कर्ण, स्पष्ट भूपरिधिव्यासार्ध कोटि, ध्रुव सूत्र का खण्ड भुज, इस त्रिभुज में भूकेन्द्र लग्नकोण=लम्बांश, स्पष्ट भूपरिधिव्यासार्ध मूल बिन्दु लग्न कोण=९० तब उक्त त्रिभुज में कोणानुपात करते हैं, यदि त्रिज्या में भूव्यासार्ध पाते हैं तो लम्बज्या में क्या इस अनुपात से स्पष्टभूपरिधिव्यासार्ध प्रमाण आया $\frac{\text{भूव्या}\ \frac{1}{2} \times \text{लंज्या}}{\text{त्रि}}$ = स्पष्टभूपरिधि व्या $\frac{1}{2}$। तथा भूव्यासार्ध में यदि भूपरिधि पाते हैं तो स्पष्ट भूपरिधिव्यासार्ध में क्या आ गया स्पष्ट भूपरिधि प्रमाण

$$\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{स्पष्टभूपरिधि व्या}\ \frac{1}{2}}{\text{भूव्या}\ \frac{1}{2}} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{भूव्या}\ \frac{1}{2} \times \text{लंज्या}}{\text{त्रि} \times \text{भूव्या}\ \frac{1}{2}} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लंज्या}}{\text{त्रि}}$$

इससे स्पष्ट भूपरिधि प्रमाण विदित हो गया, सूर्यसिद्धान्त में "लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः" इत्यादि से तथा सिद्धान्तशिरोमणि में "लम्बज्यागुणितो भवेत्कुपरिधिः स्पष्टस्त्रिभज्याहृतः" इत्यादि से भास्कराचार्य भी उसी विषय को कहते हैं॥ ५-६॥

इदानीं प्रथमपक्षोक्तदूषणं प्रदर्शयन् पूर्वपक्षान्तरमनुभाषते

श्रुतियोजनास्फुटत्वाद् वक्रत्वात्कुपरिधेश्च नेष्टमिदम्।
स्वपदांश्च वर्जितान् केचिच्छ्रवणे देशान्तरं जगुः प्रोक्तम्॥ ७॥
पलयोजनं तथान्ये भावशतो हि घर्मांशोः।
कोटिलघुत्वात्पूर्वं मिथ्यार्षाद्विशेषतोऽन्यच्च॥ ८॥

वि. भा.—श्रुतियोजनास्फुटत्वात् (लोकोक्तश्रुतियोजनानिश्चयत्वात्) पूर्वं भुजकोटिकर्णयोजनसम्बन्धेन यद्देशान्तरानयनं कृतं तत्स्फुटं न भवतीत्यर्थः,

तत्र कारणमाह कुपरिधेः (भूपरिधेः) वक्रत्वात्, नहि सुनिपुणमतिरपि कश्चित् हस्तेन दण्डरज्जुभ्यां वा लोकप्रसिद्धानि योजनानि निर्णीतवान् तस्माज्जनप्रसिद्धेरनैकान्तिकत्वात्, इदं मतं नेष्टं (शोभनं नास्तीति भावः)। केचित् (आचार्याः) स्वपदान् (अपसारयोजनमार्गान्) वर्जितान्। श्रवणे (पूर्वोक्तकर्णे) प्रोक्तं देशान्तरं (कथितदेशान्तरं) जगुः (कथितवन्तः) अन्ये (आचार्याः) घर्मांशोः (सूर्यस्य) भावशतः (छायासम्बन्धतः) पलयोजनं (देशान्तरयोजनं कृतवन्तः) पूर्वं (पूर्वकथितं श्रुतियोजनादित्यादिनाऽभिहितं) अन्यत् (भिन्नं सूर्यच्छाया सम्बन्धेन कथितं) कोटिलघुत्वात् आर्षाद्विशेषतः (आर्षग्रन्थान्तरादर्थादार्षग्रन्थविरोधात्) मिथ्या (निरर्थकमिति)

अत्रैतदुक्तं भवति। जलसमीकृतभूमौ मध्याह्नकाले छायां यथावदवगम्य तच्छायया "छायातोऽर्कानयनविधिना" रविमानयेत्। तथा वक्ष्यमाणविधिना समरेखानिवासिनां मध्याह्नकाले स्फुटं रविं कुर्यात्। तयो रव्योर्यदन्तरं तद्देशान्तरप्रमाणम्। ततो रव्यन्तरांशप्रमाणेनानुपातेन देशान्तरयोजनज्ञानं सुगमम्। उपर्युक्तयोः पक्षयोः स्थौल्यं प्रदर्शयत्याचार्यः। भुजकोटिकर्णत्वेन कल्पितानि देशान्तरयोजनानि स्थूलानि तथैव छायावशतोऽपि देशान्तरयोजनानि स्थूलानीति। कोटिलघुत्वादित्यत्र कोटिशब्देन यदि क्रान्तिग्रहणं क्रियेत तदा श्रीपत्युक्तेन सहाऽस्याचार्योक्तस्य समाञ्जस्यं भवेद्यथा श्रीपत्युक्तम्।

मध्यप्रभागतरवेर्गणितागतस्य स्यादन्तरं यदिह तत् क्षितिवेष्टनघ्नम्।
भक्तं लवेन विषयान्तरयोजनानि स्थूलानि तान्यपि भवन्त्यपमाल्पकत्वात्॥

कुतश्चिद्देशात् समपूर्वापरेऽन्यस्मिन् देशे द्वित्रा देशान्तरघटिकास्तावतीभिरपि घटिकाभिरिहापक्रमस्य न वृद्धिर्नापि ह्रासः। यत्र तु पञ्चदशघटिकाः परमदेशान्तरं यमकोटिलङ्कादौ तत्राप्यपक्रमस्य वृद्धिर्ह्रासो वा षट्कलाः। तत्र त्रैराशिकं यदि त्रिज्यया परमक्रान्तिर्लभ्यते। तदा पञ्चदशघटिकाभिः किं समागच्छन्ति षट्कलाः तावतीभिरपक्रमलिप्ताभिर्नैव छायागतौ विशेष उपलभ्यते। अतश्छायार्कगणितागतार्कयोरन्तरं न भवति तेन देशान्तरयोजनानयनं गगनग्रासकल्पमिति॥ ७-८॥

हि. भा.—लोकप्रसिद्ध श्रुतयोजन के अनिश्चितत्व से भूपरिधि की वक्रता के कारण से भुजकोटि कर्ण सम्बन्ध से देशान्तर योजनानयन ठीक नहीं है। क्योंकि कोई भी निपुण बुद्धि वाला आदमी हाथ से दण्ड (लग्गा) से या रस्सी से लोकप्रसिद्ध योजन का निर्णय नहीं किया है। कोई कोई आचार्य अपसार योजन को वर्जित कर कर्ण ही को देशान्तर कहते हैं। अन्य आचार्य सूर्य की छाया सम्बन्ध से देशान्तर कहते हैं। कोटि अपक्रम के लघुत्व के कारण पहले का देशान्तर और आर्ष के साथ अन्तर होने से दूसरा देशान्तर भी व्यर्थ है॥

यहां इस तरह कहा गया है कि जल से समान की हुई पृथ्वी पर मध्यान्हकाल में छाया जान कर उस पर से वक्ष्यमाण बिधि (आगे कही हुई रीति) से रवि का साधन करना

और वक्ष्यमाण विधि से समरेखावासियों के मध्यान्ह काल में रवि का साधन करना, दोनों रवियों के अन्तर करने से देशान्तर प्रमाण होता है। उस रवि के अन्तरांश पर से अनुपात द्वारा देशान्तर योजन ज्ञान सुगम है। भुज कोटि और कर्ण योजन पर से कल्पित देशान्तर योजन स्थूल है, उसी तरह छायावश से देशान्तर योजन स्थूल है। कोटिलवुत्वात् इत्यादि में यदि कोटि शब्द से अपक्रम (क्रान्ति) का ग्रहण किया जाय तब श्रीपतिकथित विषयों के साथ वटेश्वराचार्य-कथित उपर्युक्त विषयों का सामञ्जस्य हो जायगा।

श्रीपति इस विषय में इस तरह कहते हैं जैसे—

मध्यप्रभागतरवेर्गणितागतस्य स्यादन्तरं यदिह तत् क्षितिवेष्टनिघ्नम्।
भक्तं लवेन विषयान्तरयोजनानि स्थूलानि तान्यपि भवन्त्यपमाल्पकत्वात्॥

किसी देश से भिन्न समपूर्वापर देश में दो तीन देशान्तर घटी लेने से उतनी ही घटी में अपक्रम (क्रान्ति) में न कुछ ह्रास या वृद्धि होती है। जहां पर पन्द्रह घटी परम देशान्तर है यमकोटि या लङ्का आदि में, वहां भी क्रान्ति की वृद्धि या ह्रास ६ कला है वहां अनुपात कीजिये कि यदि त्रिज्या में परमक्रान्ति पाते है तो पन्द्रह घटी में क्या इस अनुपात से छः कला आती है इतनी क्रान्ति कला में छायागति में कोई विशेषता नहीं उपलब्ध होती है। इसलिये छायार्क और गणितागतार्क का अन्तर नहीं है इसलिये देशान्तर योजनानय खग्रास कल्प के बराबर है। इति ॥ ७-८ ॥

इदानी स्वाभिमतं देशान्तरं प्रतिपाद्यग्रहेषु तत्फल-(देशान्तरफल)-संस्कार-ज्ञानमाह।

गणितागतशीतांशोः प्रग्रहकालं प्रसाध्य निजविषये।
प्रत्यक्षेण तदन्तरकालो देशान्तरं स्पष्टम्॥ ९॥
तत्खेचरगतिघातात् षष्ट्याप्तकलोनसंयुतः प्राग्वत्।
खचरः स्वधाम्नि मध्या मध्यमतिथिनाड़िकास्वेवम्॥१०॥

वि० भा.—निजविषये (स्वदेशे) गणितागतशीतांशोः प्रग्रहकालं (चन्द्र-गणितागतं स्पर्शकालं) प्रसाध्य (साधयित्वा) प्रत्यक्षेण (दृष्ट्या-वेधेन वा) प्रग्रह-कालोऽवलोकनीयः, तदन्तरकालः (गणितागतस्पर्शकालवेधागतस्पर्शकालान्तरकालः) स्पष्टं देशान्तरं भवति (दोषरहितं देशान्तरं भवति)।

तत्खेचरगतिघातात् (स्पष्टदेशान्तरग्रहगतिवधात्) षष्ट्याप्तकलोन-संयुतः (षष्ट्या विभक्ताल्लब्धं यत्कलादिफलं तेन रहितः सहितश्च) प्राग्वत् (रेखातः पूर्वपश्चिमक्रमेण) खचरः (ग्रहः) कार्यस्तदा स्वधाम्नि मध्या ग्रहा भवन्ति। एवं मध्यतिथिनाड़िकासु फलं (देशान्तरयोजनघटीफलं) संस्कर्त्तव्यमिति ॥९-१०॥

अत्रोपपत्तिः।

गणितेन चन्द्रस्य स्पर्शकालः साध्यः। यदि गणितसाधितस्पर्शकालान्तरं वेधेन स्पर्शकालो दृष्टस्तदा द्रष्टा रेखातः पूर्वदिशि भवेद्यतो द्रष्टा रेखातः पूर्वदिशि यथा यथा गच्छति तथा तथा रेखोदयात्पूर्वमेव रव्युदयं पश्यति। इतोऽन्यथात्वे

द्रष्टा पश्चिमदिशि भवेत्। दृग्ग्रहणकालयोरन्तरमर्थाद् गणितागतस्पर्शकालवेधागतस्पर्शकालयोरन्तरं, देशान्तरघटिकाः।

ततोऽनुपातो यदि घटीषष्ट्या ग्रहगतिर्लभ्यते तदा देशान्तरघटीभिः किं समागता देशान्तरघटीसम्बन्धि ग्रहगतिकला, फलमेतत्पूर्ववद्रेखातः प्रागृणं पश्चाद्धनमिति ॥

तथाच यदि स्पष्ट-भूपरिधियोजनैः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा देशान्तरयोजनैः किमित्यनुपातागतफलं कर्मयोग्यासु तिथिषु ऋणं धनं वा कार्यमिति ॥९-१०॥

हि. भा.—अपने देश में चन्द्रमा के गणित द्वारा स्पर्शकाल साधन करना और वेध से भी स्पर्शकाल लाना दोनों कालों के अन्तर स्पष्ट देशान्तर होता है। देशान्तर और ग्रहगति के घात में साठ से भाग देकर जो फल हो उसको पूर्ववत् ग्रह में ऋण धन करने से स्वदेशोदयकालिक मध्यम ग्रह होते हैं। मध्यम तिथि में भी देशान्तर योजन सम्बन्धी घटी फल संस्कार करना चाहिए ॥९-१०॥

उपपत्ति

गणित से चन्द्रमा के स्पर्शकाल साधन करना, यदि गणितागत स्पर्शकाल के बाद वेध से स्पर्शकाल देखने में आवे तब द्रष्टा रेखादेश से पूर्व दिशा में होता है। क्योंकि द्रष्टा रेखा से पूर्व दिशा में ज्यों ज्यों जाता है त्यों त्यों रेखोदय से पहले ही रवि को उदित देखता है, इससे अन्यथा द्रष्टा रेखा से पश्चिम में होता है। गणितागत स्पर्शकाल वेधागत स्पर्शकाल का अन्तर देशान्तर घटी है। अब इस पर से अनुपात करते हैं यदि साठ घटी में ग्रह गतिकला पाते हैं तो देशान्तर घटी में क्या इस अनुपात से जो कलात्मक फल आता है उसको पूर्ववत् ग्रह में ऋण और धन करने से स्वदेशोदयकालिक ग्रह होते हैं। और यदि स्पष्ट भूपरिधि योजन में साठ घटी पाते हैं तो देशान्तर योजन में क्या "$\frac{६ \times \text{देशान्तरयो}}{\text{स्पभूपयो}}$ = देशान्तरयो संघटी" इस अनुपात से जो घट्यादि फल आता है उसको मध्यम तिथिघटी में संस्कार करना चाहिये ॥९-१०॥

इदानीं स्पष्टदेशान्तरफलसंस्कारमुक्त्वा वारप्रवृत्तिज्ञानमाह

षष्टिहृतः क्षितिपरिधिर्देशान्तरनाड़िकाहतः स्पष्टा।
योजनसंख्याऽध्वमितौ फलमस्याः पूर्ववत्खचरे ॥११॥
षष्ट्यभ्यधिकोने संख्यागतकाले रेखापरपूर्वे द्रष्टा।
क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिः प्राग्लेखाया इनोदये पश्चात् ॥१२॥
वारप्रवृत्तिरुक्ता पश्चात्स्वार्कोदयात्पूर्वम्।

वि. भा.—क्षितिपरिधिः (स्पष्टभूपरिधिः) देशान्तरनाड़िकाहतः (देशान्तरघटीगुणितः) षष्टिहृतः (षष्टिभक्तः) तदा फलं स्पष्टा योजनसंख्या अध्वमितौ (देशान्तरघटिकायां) भवत्यर्थात्स्पष्टदेशान्तरयोजनसंख्या भवतीति। स्पष्ट-

देशान्तरकथनस्येदं तात्पर्यं यत्पूर्वं "तद्दो: कृतिविवरपदं कोटिदेशान्तरं प्रोक्त"-मित्यादिनाऽऽनीतं देशान्तरं स्थूलं तेनैवात्र स्पष्टा देशान्तरयोजनसंख्या कथ्यते। अस्याः (देशान्तरयोजनसंख्यातः) आनीतं फलं कलात्मकं खचरे (ग्रहे) पूर्ववदृणं धनं विधेयम्।

संख्यागतकाले (देशान्तरघटीमिते) षष्टयभ्यधिकोने (षष्टितोऽधिकेऽल्पे च) द्रष्टा रेखापरपूर्वे (रेखातः पश्चिमायां पूर्वस्यां च) भवति।

लेखायाः प्राग्देशे (रेखातः पूर्वदेशे) क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिः, इनोदयः (सूर्योदयः) प्राग्भवति, वारप्रवृत्तिः पश्चाद् भवति, लेखायाः पश्चात् सूर्योदयो देशान्तरघटीभिः पश्चाद्भवति, वारप्रवृत्तिः स्वार्कोदयात्पूर्वं भवतीति ॥११-१२॥

अत्र युक्तिः स्पष्टैवास्ति ॥

हि. भा.—स्पष्ट भूपरिधि को देशान्तर घटी से गुणकर साठ से भाग देने से जो फल होता है वह स्पष्ट देशान्तर योजनसंख्या है, यहां स्पष्ट शब्द देने का तात्पर्य यह है कि पहले जो "तद्दोः कृतिविवरपदं कोटिदेशान्तरं प्रोक्तम्" इत्यादि से जो देशान्तरानयन किया गया है वह स्थूल है, यहां स्पष्ट शब्द सूक्ष्मत्वसूचक है, इस देशान्तर योजन पर से जो ग्रहगति फल होता है उसको पूर्ववत् ग्रह में ऋण और धन करना चाहिये। देशान्तर घटी साठ से अधिक और न्यून रहने से द्रष्टा क्रमशः रेखा से पश्चिम और पूर्व होता है। रेखा से पूर्व देश में देशान्तर घटी काल करके सूर्योदय पहले होता है, वारप्रवृत्ति पश्चात् होती है, रेखा से पश्चिम देश में देशान्तर घटी करके सूर्योदय पीछे होता है, वारप्रवृत्ति पूर्व होती है ॥ ११-१२ ॥

यहां युक्ति स्पष्ट ही है।

वारादिज्ञानमेवाह।

दक्षिणगोले पूर्वं लेखायाश्चरदलेन वारादिः ॥१३ ॥
उत्तरगोले पश्चाद्दिनोदयाच्चरदलेनैव।

वि. भा.—दक्षिणगोले चरदलेन (चरखण्डकालेन) लेखायाः पूर्वं वारादिरर्थाद्रेखा सूर्योदयात्पूर्वं चरखण्डकालेन दिनवारप्रवृत्तिर्भवति। सूर्योदयः पश्चाद्दिनवारप्रवृत्तिः पूर्वमित्यर्थः" उत्तरगोले चरदलेनैव (चरखण्डकालेनैव) सूर्योदयात्पश्चाद्दिनवारप्रवृत्तिः, सूर्योदयः पूर्वं दिनप्रवृत्तिः पश्चादित्यर्थः" ॥ १३½ ॥

अत्रोपपत्तिः।

पूर्वश्लोके कथितं यत्प्राच्यां देशान्तरघटीभिर्दिनवारप्रवृत्तिः सूर्योदयादूर्ध्वं भवति, प्रतीच्यां ततोऽधो यतो लङ्कोदये वारादिः। अतएवोत्तरगोलगे रवौ चरखण्ड घटीभिरूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः यतस्तदोन्मण्डलं क्षितिजादूर्ध्वम्। दक्षिणे त्वधस्तत्रोदयादधो वारप्रवृत्तिरिति।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येवमेव कथ्यते यथा—

लङ्कोदग्याम्यसूत्रात् प्रथममपरतः पूर्वदेशे च पश्चा-
दध्वोत्थाभिर्घटीभिः सवितुरुदयतो वासरेशप्रवृत्तिः ।
ज्ञेया सूर्योदयात् प्राक् चरशकलभवैश्चासुभिर्याम्यगोले
पश्चात्तैः सौम्यगोले युतिवियुतिवशाच्चोभयोः स्पष्टकाल इति ।

सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेणापीत्थमेव कथ्यते—

अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्तिः ।
ऊर्ध्वं तथाऽधश्चरनाड़िकाभी स्यातुदग्दक्षिणगोलसंस्थे ।। इति ।। १३$\frac{1}{2}$ ।।

हि. भा.—दक्षिण गोल में रेखा से पूर्व रेखा सूर्योदय से पहले ही चरखण्ड घटी करके दिन वार प्रवृत्ति होती है । (सूर्योदय पीछे और दिन वार प्रवृत्ति पहले होती है), उत्तर गोल में उसी चरखण्ड घटी करके सूर्योदय से पीछे दिन वार प्रवृत्ति होती है (सूर्योदय पहले और दिनवार प्रवृत्ति पीछे होती है) ।। १३$\frac{1}{2}$ ।।

उपपत्ति

पहले श्लोक में कहा गया है कि रेखा से पूर्व में देशान्तर घटी करके दिनवार प्रवृत्ति होती है, पश्चिम देश में पीछे दिनवार प्रवृत्ति होती है। इसलिये उत्तर गोल में रवि के रहने से चरखण्ड घटी करके पहले दिनप्रवृत्ति होती है जिसलिये वहां अपने क्षितिज से उन्मण्डल ऊपर है । दक्षिण गोल में विपरीत स्थिति होती है ।।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं । यथा—

"लङ्कोदग्याम्यसूत्रात् प्रथममपरतः" इत्यादि ।

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य भी इसी तरह कहते हैं —

"अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः" इत्यादि ।

इदानीं ग्रहाणां दिनगतिज्ञानमाह ।

भूदिवसैर्भगणेभ्यः कलादिलब्धिस्तु वारभोगोऽस्मात् ।। १४ ।।

वि. भा.—भूदिवसैः (युगकुदिनैः कल्पकुदिनैर्वा) भगणेभ्यः (युगपठितभगणेभ्यः कल्पभगणेभ्यो वा) कलादिलब्धिः (कलादिफलं) वारभोगः (ग्रहगतिः) भवेदिति । अस्मादित्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध इति ।। १४ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि युगकुदिनैर्युगग्रहभगणा लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यागतैकदिनजग्रहगतिस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{युग्रभ} \times 1}{\text{युकु}} = \frac{\text{युग्रभ}}{\text{युकु}} =$ ग्रहगतिः ।। अत आचार्योक्तमुपपन्नम् ।। १४ ।।

हि. भा.—युग कुदिन या कल्पकुदिन से तथा ग्रहभगरा से कलादिक जो फल होता है वह ग्रहभोग याने ग्रहगति होती है; "अस्मात्" इसको अगले श्लोक से सम्बन्ध है ॥१४॥

उपपत्ति ।

यदि युगकुदिन में युगग्रह भगरा पाते हैं तो एक दिन में क्या इस अनुपात से एक दिन की ग्रहगति आती है, $\frac{\text{युग्रभ} \times १}{\text{युकु}} = \frac{\text{युग्रभ}}{\text{युकु}}$ = ग्रहगति इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १४ ॥

इदानीं भुजान्तरफलादिसंस्कारं प्रतिपाद्य वर्षाधिपतिज्ञानमाह ।

ग्रहवद् भुजान्तरफलं देशान्तरचरदलेनापि ॥
कार्यं कल्पगतेभ्यो द्युगरोभ्यः खरसाग्निभाजिताल्लब्धम् ॥१५॥
त्रिघ्नमगभक्तशेषं सावनसमाधिपः सैकम् । ½ ।

वि. भा.—देशान्तर चरदलेनापि (देशान्तर चरदलेन संस्कृतेनापि) अस्माद् ग्रहाद् भुजान्तरफलं ग्रहवत्कार्यं, देशान्तरचरदलसंस्कृतग्रहे भुजान्तर-फलं संस्करणीयमित्यर्थः । कल्पगतेभ्यो द्युगरोभ्यः (कल्पगताहर्गरोभ्यः) खरसाग्नि-भाजिताल्लब्धं (३६० भजनात्फलं) त्रिघ्नं (त्रिगुणितं) अगभक्तशेषं (सप्तभक्ता-वशिष्टं) सैकं (रूपसहितं) तदा सावनसमाधिपः (सावनवर्षपतिः) भवेदिति ॥ १५½ ॥

अथ भुजान्तरकर्मोपपत्तिः ।

मध्यमार्कोदयिका ग्रहा येन कर्मणा स्पष्टार्कोदयिका भवेयुस्तस्यैव नाम भुजा-न्तरम् । मध्यमस्पष्टरव्योरन्तरं मन्दफलम् । अतो रविमन्दफलकला सम्बन्ध्यसु-प्रमाणमानीयते तत्रानुपातो यदि राशिकलाभिर्निरक्षोदयासवो लभ्यन्ते तदा रवि-मन्दफलकलाभिः किमित्यनुपातेनागता रविमन्दफलासवस्तत्स्वरूपम्=

$\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रमंफकला}}{१८००}$ तत एतत्सम्बन्धि ग्रहगतिकलाप्रमाणमानीयते यद्यहोरात्रासुभिर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदा रविमन्दफलकलासुभिः किमित्यनुपातेन रविमन्दफलासु सम्बन्धि ग्रहगतिः= $\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{रविमन्दफलासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$

$= \frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रविमंफकला} \times \text{ग्रगतिक}}{१८०० \times \text{अहोरात्रासु}}$ एतत्फलं यदि मध्यमार्कोदय-कालिकग्रहे संस्क्रियते तदा स्फुटार्कोदयकालिका ग्रहा भवन्तीति ।

अथ मन्दफलासुमध्येऽपि ग्रहाणां काचिद् गतिर्भवति सा च न गृहीताऽतः पूर्वोक्तमानयनं न समीचीनमतो वास्तवानयनम् ।

अथ वास्तवभुजान्तरप्रमाणम् = य

तदानुपातेन $\frac{\text{ग्रग} \times \text{य}}{\text{अहोरात्रासु}}$ = १ असुजगति × य तथा

$\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{\text{१८००}}$ = १ कलोत्पन्नासु × य = फलकलासु ततः

$\frac{\text{ग्रग} \times \text{फलासु}}{\text{अहोरात्रासु}} = \frac{\text{ग्रग} \times \text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{\text{१८००} \times \text{अहोरात्रासु}}$ = १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु × य

एतत्फलं यदि पूर्वानीतभुजान्तरफले संस्क्रियते तदा वास्तवभुजान्तरं भवेत्।
पूर्वानीतभुजान्तर ± १ असुजगति × १कलोत्पन्नासु × य = य समशोधनेन
पूर्वानीत भुजान्तर = य ∓ १ असुजग × १ कलोत्पन्नासु × य
= य (१ ∓ १ असुजगति × १ कलोत्पन्नासु)

$\therefore \frac{\text{पूर्वानीत भुजान्तर}}{\text{१} \mp \text{१ असुजगति} \times \text{१ कलोत्पन्नासु}}$ = य = वास्तवभुजान्तरम् ॥

आचार्येण भुजान्तर फलसाधनं स्पष्टाधिकारे कृतमत्र प्रसङ्गवशात्स्थौल्यं प्रदर्श्य वास्तवानयनमपि प्रदर्शितं मयेति। अथ कल्पगताहर्गणं ३६० एभिर्विभक्तं यदि शेषाणि स्युस्तदा रूपाधिकं त्रिगुणितं लब्धं कर्त्तव्यं नान्यथा। ततः सप्त-भक्ते शेषं रविमारभ्य सावनवर्षपतिर्भवेत्। शेषदिनानि च वर्षाधिपतेः प्रवृत्तस्य च गतानि दिनानि तान्येव ३६० एभ्यो विशोध्य गम्यदिनानि, त्रिगुणं तल्लब्धं क्रियते यतो ३६० अत्र सप्तभक्ते त्रीण्यवशिष्यन्ते, अतश्चतुर्थश्चतुर्थो वर्षपतिर्भवति, वर्षाधिपतिरागमप्रामाण्याद् भवतीति ॥ १५$\frac{१}{२}$ ॥

हि. भा.—देशान्तर चर खण्ड संस्कार करने पर भी उस ग्रह में भुजान्तर फल संस्कार करना चाहिये, कल्पगताहर्गण को ३६० से भाग देने से जो फल हो उसको तीन से गुण कर सात से भाग देने से जो शेष हो उसमें एक जोड़ देना चाहिये तब सावन वर्षपति होते है ॥ १५$\frac{१}{२}$ ॥

भुजान्तर कर्म की उपपत्ति।

मध्यमार्कोदय कालिक ग्रह में जितना संस्कार करने से स्पष्टार्कोदयकालिक ग्रह होते हैं उसी का नाम भुजान्तर है। मध्यमार्क और स्पष्टार्क का अन्तर रविमन्दफल है। इसलिये रवि मन्दफल कलासम्बन्धी असु प्रमाण लाते हैं। यदि १८०० कला में (एक राशिकला में) निरक्षोदयासु पाते हैं तो रवि मन्द फल कला में क्या इस अनुपात से रविमन्दफलकलासु-प्रमाण आया, $\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रमंफ}}{\text{१८००}}$ = रविमन्दफलासु। इस पर से फिर अनुपात करते हैं, यदि अहोरात्रासु में ग्रहगति कला पाते हैं तो रवि मन्दफलासु में क्या आ जायगा रविमन्द-फलासु सम्बन्धी ग्रहगति प्रमाण, $\frac{\text{ग्रंग} \times \text{मन्दफलासु}}{\text{अहोरात्रासु}}$ = रविमन्दफलासु सं ग्रहगति

$= \frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{रमंफ} \times \text{ग्रग}}{१८०० \times \text{अहोरात्रासु}}$ इस फल को यदि मध्यमार्कोदय कालिक ग्रह में संस्कार करते हैं तब स्पष्टार्कोदय कालिक ग्रह होते है। लेकिन यहां मन्दफलासु के भीतर जो ग्रहगति है उसका ग्रहण नही किया गया है इसलिये यह आनयन ठीक नहीं है इसलिये वास्तवानयन करते हैं।

कल्पना करते हैं वास्तव भुजान्तर प्रमाण = य

तब अनुपात से $\frac{\text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{१८००} = १ \text{ कलोत्पन्नासु} \times \text{य}$, फिर अनुपात से = **फलासु**

$\frac{\text{ग्रग} \times \text{फलासु}}{\text{अहोरात्रासु}} = \frac{\text{ग्रग} \times \text{निरक्षोदयासु} \times \text{य}}{१८०० \times \text{अहोरात्रासु}} = १ \text{ असुजगति} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु} \times \text{य}$

इसको पूर्वानीत भुजान्तर में संस्कार करने से वास्तव भुजान्तर प्रमाण होगा।

पूर्वानीत भुजान्तर $\pm$ १ असुजग $\times$ १ कलोत्पन्नासु $\times$ य = य समशोधन करने से

पूर्वानीत भुजान्तर = य $\mp$ १ असुजग $\times$ १ कलोत्पन्नासु $\times$ य

= य (१ $\mp$ १ असुजगति $\times$ १ कलोत्पन्नासु)

$\therefore \frac{\text{पूर्वानीत भुजान्तर}}{१ \pm १ \text{ असुजग} \times १ \text{ कलोत्पन्नासु}} = \text{य}$ ।

अतः सिद्ध हो गया ॥

आचार्य ने भुजान्तर फल साधन स्पष्टाधिकार में किया है, यहां प्रसङ्गवश उस साधन में स्थूलता दिखा कर वास्तवानयन भी हमने दिखलाया है।

कल्पगताहर्गण को ३६० से भाग देने से यदि शेष रहे तो उसमें एक जोड़कर त्रिगुणित कर देना चाहिये यदि शेष नही रहे तब नहीं, बाद में सात से भाग देने से शेष रवि से लेकर सावन वर्षपति होते हैं। शेष दिन वर्षाधिपति और प्रवृत्त का भी गतदिन होते हैं उन्हीं को ३६० में घटाने से गम्य दिन होते हैं। लब्धि को तीन से इसलिये गुणते हैं क्योंकि ३६० में सात से भाग देने से तीन शेष रहता है, इसलिये चौथे चौथे वर्षपति होते हैं। वर्षाधिपति आगमप्रामाण्य से होते हैं॥ १५½॥

इदानीं सावनमासपतिज्ञानार्थमाह

क्रमशो हि भास्कराद्यो मासाधिपतिः खहव्यभुग्भक्ताः ॥१६॥
द्युगणाः फलं द्विनिघ्नं सैकं नगभक्तविफलं स्यात् ॥½॥

वि. भा.—क्रमशो हि भास्कराद्य एतस्य पूर्वश्लोकेनैतेन श्लोकेनापि सम्बन्धः। पूर्वश्लोके त्रिघ्नमगभक्तशेषं सैकं क्रमशो भास्कराद्यः सावनसमाधिप इत्यन्वयः कार्यः ॥

द्युगणाः (कल्पगताहर्गणाः) खहव्यभुग्भक्तः (त्रिशद्विभाजितः) फलं द्विनिघ्नं कार्यं (द्विगुणितं) कार्यं त्रिशताहृते यदि शेषाणि भवन्ति तर्हि द्विनिघ्नं सैकं

लब्धं कार्यं नान्यथा ततो नगभक्तविकलं (सप्तभक्तावशिष्टं) क्रमशो भास्कराद्यः (सूर्यादिकः) मासाधिपतिर्भवेत्। शेषदिनानि च मासाधिपतेः प्रवृत्तस्य च गतानि तान्येव त्रिंशतो विशोध्य गम्यदिनानि, तस्यैव मासाधिपतेर्भवन्ति, द्विगुणं च लब्धं क्रियते यतः सप्तभिस्त्रिंशतो हृते द्वयमवशिष्यते, तृतीयस्तृतीयो मासपतिरागमप्रामाण्याद्भवतीति ॥१६½॥

हि. भा.—अहर्गण को तीस मे भाग देने से जो फल हो उसको दो से गुण देना चाहिये, तीस से भाग देने से यदि शेष रहे तो लब्धि को दो से गुण कर एक जोड़ना चाहिये, अन्यथा नहीं। सात से भाग देने से जो शेष रहता है सूर्यादिमासाधिपति होते हैं। शेष मासाधिपति प्रवृत्त का गत दिन है, उसी को तीस में घटा देने से गम्य दिन होते हैं। लब्धि को दो से इसलिए गुणते हैं कि तीस में सात से भाग देने से दो शेष रहता है। तीसरे तीसरे मासपति आगम प्रमाण से होते हैं ॥ १६½ ॥

इदानीं कालहोरेशज्ञानमुक्त्वा वर्षमासहोरेशानां क्रमप्रदर्शनमाह ।

ऊर्ध्वं वारप्रवृत्तेर्दिनगतघटिका द्व्याहतिः पञ्चभक्ता
होरेशाः सैकमाप्तं नगहृतविकलं वासरेशाच्च षष्ठाः ।
पञ्चाभ्यस्तं फलं वा हिमकरसहितं स्यात्क्रमेण द्युनाथो
मासेशः स्यात्तृतीयोऽब्दपतिदिनपतिस्तच्चतुर्थो द्वितीयः ॥१७½॥

वि भा.—वारप्रवृत्तेरूर्ध्वं (वारप्रवृत्तितोऽनन्तरं) दिनगतघटिका द्व्याहतिः (द्विगुणितदिनगतघटिकाः) पञ्चाहृताः) आप्तं (लब्धं) सैकं (रूपसहितं) नगहृतविकलं (सप्तभक्तावशिष्टं) षष्ठाः (षष्ठषष्ठक्रमिकाः) वासरेशात् (वारेश्वरात्) होरेशा भवन्ति। अथवा फलं (पूर्वलब्धं) पञ्चाभ्यस्तं (पञ्चगुणितं) हिमकरसहितं (रूपयुक्तं) क्रमेण द्युनाथः (वारेशः) भवति । तृतीयः (तृतीयस्तृतीयः) मासेशः (मासाधिपतिः) अब्दपतिर्दिनपतिः (वर्षपतिः सूर्यः) द्वितीयः (द्वितीयवर्षपतिः) तच्चतुर्थः (सूर्याच्चतुर्थः) इति ॥१७½॥

अत्रोपपत्तिः ।

अहोरात्रमध्ये चतुर्विंशत्यः कालहोरा भवन्ति अहोरात्रप्रमाणम्=६० घटी ।
तदाऽनुपातो यदि षष्टिर्घटिकाभिश्चतुर्विंशत्यः कालहोरा लभ्यन्ते तदा वारादिदिनगतघटिकाभि किमित्यनुपातेन सशेषा गतकालहोरास्तत्स्वरूपम्=

$$\frac{२४\times \text{वारादिदिनगतघ}}{६०}=\frac{२\times \text{वारादिदिनगतघ}}{५}=\text{गतकालहोरा}+\frac{\text{शे}}{५}$$

अत्र शेषस्य शोधनेन $\frac{२\times \text{वारादिदिनगतघ}-\text{शे}}{५}$=गतकालहो, एतद्गतकालहोराप्रमाणं सैकं सप्तभक्तं शेषप्रमितः वारेशात् षष्ठः षष्ठः कालहोरेश्वरो भवति। अत्र $\frac{२\times \text{वारादिदिनगघ}}{५}$=गतकालहो + $\frac{\text{शे}}{५}$ आचार्येण $\frac{\text{शे}}{५}$ इति न गृह्यते ।

अथवैककालहोरायां पञ्चान्तरितग्रहः कालहोरेशो भवति तदा गतकाल-होरायां किमित्यनुपातेन गतकालहोरा सम्बन्धि कालहोरेशः समागच्छति वर्त्तमान-कालहोरेशार्थं तत्र सैकः कार्यः ।

तृतीयस्तृतीयो मासपतिः, रविवर्षपतिः, द्वितीयो वर्षपती रवितश्चतुर्थः । तृतीयो वर्षपतिस्तस्माच्चतुर्थ इत्यादि "त्रिचतुरनन्तरषष्ठाः सावनमासाब्ददिवसहोरेशा" इति ब्रह्मगुप्तोक्त" सावनमासवर्षादिपतिज्ञानार्थं गणानक्रम आचार्योक्तिसदृश एव वर्षपतिमासपत्यादिगणनसम्बन्धे सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येतदेव कथ्यते ।

"सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम् ।
वासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु हौरिकमीशम् ।। इति ।।१७$\frac{1}{2}$।।

हि. भा.—वार प्रवृत्ति के बाद दिनगत घटी को दो से गुण कर पांच से भाग देने से जो फल हो उसमें एक जोड़कर सात से भाग देने से जो शेष रहता है वह वारेश से छठे छठे क्रम से होरेश होते हैं । अथवा पूर्वानीत फल को पांच से गुणकर एक जोड़ने से क्रम से वारेश होते हैं । तीसरे तीसरे मासेश होते हैं, वर्षपति सूर्य होते है, द्वितीय वर्षपति उनसे चौथे ग्रह होते हैं तृतीय वर्षपति उनसे चौथे ग्रह होते हैं, इत्यादि ।। १७$\frac{1}{2}$ ।।

उपपत्ति ।

अहोरात्र में चौबीस काल होरा होती हैं, अहोरात्र का मान ६० दण्ड है तब अनुपात करते है यदि साठ घटी में चौबीस काल होरा पाते हैं तो वारादि दिनगत घटी में क्या इस अनुपात से सशेष गतकाल होरा प्रमाण आया, $\frac{२४ \times \text{वारादि दिनगघ}}{६०}$

$= \frac{२ \times \text{वारादि दिगतघ}}{५}$ = गतकाल होरा + $\frac{\text{शे}}{५}$ दोनों पक्षों में $\frac{\text{शे}}{५}$ घटाने से

$= \frac{२ \times \text{वारादिग्रघ}}{५} - \frac{\text{शे}}{५}$ = गतकाल हो, इस गतकाल होरा में एक जोड़कर सात से भाग देने से शेष तुल्य 'प्रथम काल होरेश (वारेश) से छठे छठे ग्रहकाल होरेश होते हैं । $\frac{२ \times \text{वारादि दिनगघ}}{५}$ = गतकाल हो + $\frac{\text{शे}}{५}$ यहां आचार्य $\frac{\text{शे}}{५}$ इसका ग्रहण नहीं करते हैं । अथवा एक काल होरा में पांच अन्तरित ग्रहकाल होरेश होते हैं तो गतकाल होरा में क्या इस अनुपात से गतकाल होरा सम्बन्धी काल होरेश आते है वर्त्तमान काल होरेश के ज्ञानार्थ उसमें एक जोड़ देना चाहिये सात से अधिक रहने पर सात से भाग देना चाहिये तब वर्त्तमानकाल होरेश ज्ञान हो जायगा ।

तृतीय तृतीय ग्रह मासपति होते हैं, रवि प्रथम वर्षपति होते है, द्वितीय वर्षपति रवि से चौथे ग्रह होते हैं, तृतीय वर्षपति उनसे चौथे ग्रह होते हैं इत्यादि; "त्रिचतुरनन्तरषष्ठाः सावन मासाब्द दिवस होरेशा." यह ब्रह्मगुप्त कथित सावन मासेश-वर्षेश आदि ज्ञान के लिए गणना क्रम वटेश्वराचार्योक्त सदृश ही है ।

वर्षपतिमासपत्यादि के गणना विषय में सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी यही बातें कहते हैं—

सावनाब्दपतिमत्र चतुर्थं मासनाथमपि विद्धि तृतीयम् ।
वासरेश्वरमनन्तरमर्कात् षष्ठमेव खलु हौरिकमीशम् ।। १७$\frac{1}{2}$ ।।

इदानीं पुनरपि होरेशज्ञानमाह

सूर्योदयलग्ने होराः द्विघ्ना पञ्चगुणाः पर्वतोद्धृताः ।
शेषाः सैकः दिवसाधिपतिक्रमेण होरापतिः षष्ठः ।। १८$\frac{1}{2}$ ।।

वि. भा.—यस्मिन्निष्टकाले कालहोरां ज्ञातुमिच्छति तस्मिन् काले तात्कालिकं लग्नं कार्यं तस्मात्तात्कालिकरविं विशोध्य शिष्टानि ग्रहाणि द्विघ्नानि सन्ति होरा भवन्ति, शेषाः सैकाः (रूपयुक्ताः) पञ्चगुणा रूपयुक्ताः कार्याः, शेषाभावे पञ्चगुणासु होरासु रूपं न योजयेत् । ते सप्तभक्ता अवशेषाङ्कसमः दिवसाधिपतिक्रमेण होराधिपतिर्भवति ।।

सूर्योनलग्नस्य राशीन् भागीकृत्याधस्तनभागैः संयुज्य पञ्चदशभिर्हरेत्, यत्फलं ता होरा इत्युच्यन्ते । यदि पञ्चदशभिर्हृते शेषमस्ति तदा लब्धं पञ्चगुणं कृत्वा रूपं योज्यम् । शेषाभावे रूपं न योजयेत् । तस्मात्सप्तभक्तावशिष्टाङ्कसमो दिनपतिक्रमेण होराधिपनिर्भवति ।

अत्रोपपत्तिः ।

क्रान्तिवृत्ते यत्र रविस्तस्माल्लग्नं यावत्क्रान्तिवृत्ते यावन्तोंऽशास्तावन्तः पञ्चदशभक्ताहोरात्वं व्रजन्ति, यतो राश्यर्धेनैता होरा भवन्ति, लब्धाश्च पञ्चगुणाः क्रियन्ते । यतः षष्ठः षष्ठः कालहोरेशो भवति तेन द्वयोर्होरेशयोरन्तरं पञ्च, अतो होराः पञ्च गुणाः सर्वे वारा भवन्ति, अत्रागमप्रामाण्याद्दिनपादिगणना । यदि लब्धहोराः सशेषा भवेयुस्तदा तत्र वर्त्तमानार्थं रूपं योज्यते इति ।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाप्येवं कथ्यते—

अर्कोनलग्नस्य गृहाणि होरा द्विघ्नानि ताः पञ्चगुणाः सशेषाः ।
चेद्रूपयुक्ता दिनपादयस्ते होराधिनाथाः क्रमशो भवेयुः ।। १८$\frac{1}{2}$ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्यमाधिकारे देशान्तरविधिरष्टमोध्यायः समाप्तः ।

हि. भा.—जिस काल में कालहोराज्ञान करना है उस काल में लग्नानयन प्रकार से तात्कालिक लग्न साधन करना उसमें तात्कालिक रवि को घटा कर शेष राशि द्विगुणित होरा है, शेष सहित रहने से एक जोड़कर पांच से गुण देना रूप जोड़ देना चाहिये, शेषाभाव में पञ्चगुणित होरा में एक नहीं जोड़ना चाहिये, उसको सात से भाग देने से शेषाङ्कतुल्य दिनपति क्रम से होराधिपति होते हैं । सूर्य रहित लग्न में जो राशि है उसको अंश बना कर नीचे के अंश को जोड़कर पन्द्रह से भाग देना, जो फल होता है वह होरा है । पन्द्रह से भाग देने से यदि शेष रहता है तब लब्धि को पांच से गुण कर रूप जोड़ देना

चाहिये। शेष के अभाव में रूप नहीं जोड़ना चाहिये। उसमें सात से भाग देने से जो शेष रहता है तत्तुल्य दिनपति क्रम से होराधिपति होते हैं।। १८½ ।।

उपपत्ति।

क्रान्तिवृत्त में जहां रवि है वहाँ से लग्न तक जितने अंश हैं उतने को पन्द्रह से भाग देने से होरा होती है, क्योंकि राशि के आधे को होरा कहते हैं। लब्धि को पांच से गुणते हैं क्योंकि छठे छठे ग्रहकाल होरेश होते हैं। इसलिये दो काल होरेश का अन्तर पांच होता है, अतः होरा को पांच से गुणने से सब दिन हो जायंगे। यहां दिनपति क्रमगणना में आगम प्रमाण ही है। यदि लब्ध होरा सशेष हो तो वर्त्तमान के लिये उसमें एक जोड़ देना चाहिये।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं—

अर्कोनलग्नस्य गृहाणि होरा इत्यादि ।। १८½ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में देशान्तरविधि नामक अष्टम अध्याय समाप्त हुआ ।।



नवमोऽध्यायः

अथ प्रश्नविधिः

तत्रादौ तदारम्भ प्रयोजनमाह ।

आकर्ण्य कुतन्त्रविदः प्रश्नान् ग्लानिमुपयान्ति नष्टशिरसः ।
यस्मादतः स्वधीभिः प्रश्नाध्यायं समुच्यते वक्तुम् ॥ १ ॥

वि. भा.—यस्मात्कारणात् कुतन्त्रविदः (अधमज्योतिःशास्त्रज्ञाः) प्रश्नान् (त्रिविधप्रश्नकदम्बकान्) आकर्ण्य (श्रुत्वा) नष्टशिरसः (मस्तिष्कशून्याः) ग्लानिं (लज्जां) उपयान्ति (प्राप्नुवन्ति) अतोऽस्मात्कारणात् स्वधीभिः (निजबुद्धिभिः) प्रश्नाध्यायं (प्रश्नप्रकरणं) वक्तुम् (कथयितुं) समुच्यते (कथ्यते) मयेति ॥ १ ॥

हि. भा.—जिस कारण से अल्पज्ञ ज्योतिषी लोग नाना प्रकार के प्रश्नों को सुनकर मस्तिष्कशून्य होकर लज्जा को पाते हैं, इस कारण अपनी बुद्धि के अनुमार प्रश्नाध्याय को हम कहते हैं ॥ १ ॥

इदानीं प्रश्नमाह ।

आनयति यो द्युराशिं विनाधिमासैस्तथा तिथिप्रलयैः ।
रविदिवसेभ्योऽस्माद् द्युचराद्यं सो हि तन्त्रज्ञः ॥२॥

वि. भा.—यो व्यक्तिविशेषः अधिमासैर्विना तथा तिथिप्रलयैः (क्षयदिनैः) विना रविदिवसेभ्यः (सौरदिनेभ्यः) द्युराशिं (अहर्गणं) आनयति (साधयति) अस्मात् (अहर्गणात्) द्युचराद्यं (ग्रहाद्यं) आनयति स तन्त्रज्ञः (गणकः) अस्तीति ॥२॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिः ।

अथैकस्मिन् सौरवर्षे सावनदिनाद्यम्=३६५। १५।३१।१५।०

अत्रावयवान् १५।३१।१५ त्यक्त्वा ३६५ केवलमित्येव गृहीतानि । ततोऽनुपातेन गतवर्षसम्बन्धिदिनादि=३६५×गव । अथ युगसौरवर्षैर्युगसौरसावनदिनान्तराणि लभ्यन्ते तदैकेन सौरवर्षेण किमित्यनुपातेनैकस्मिन् सौरवर्षे सौरसावनदिनान्तराणि समागतानि ततोऽनुपातो यद्येकवर्षे इदमन्तरं तदा गतवर्षैः किमित्यनुपातेन यत्फलं मागच्छेत्तत्पूर्वफले ३६५ गव योज्यं तदाऽहर्गणे भवेत् । ततो ग्रहज्ञानं सुलभमिति ।

हि. भा.—जो व्यक्ति अधिमास और अवम को छोड़ कर सौरदिन से अहर्गण साधन करता है वह तन्त्रज्ञ (ज्योतिषी) है।

इस प्रश्न के उत्तर के लिए उपपत्ति

एक सौर वर्ष में सावनदिनादि = ३६५।१५।३१।१५।० यहां १५।३१।१५ इनको छोड़ कर केवल ३६५ दिन ग्रहण करते हैं तब अनुपात से गतवर्ष सम्बन्धी सावनदिन = ३६५ × गतवर्ष। अब युगसौर वर्ष में यदि युग सौरदिन और सावन दिन का अन्तर पाते हैं तो एक सौरवर्ष में क्या इस अनुपात से एक सौर वर्ष में सौरदिन और सावनदिन के अन्तर आ गये। तब अनुपात करते हैं कि यदि एक सौरवर्ष में यह अन्तर पाते हैं तो गतवर्ष में क्या इस अनुपात से जो फल होगा उसको पूर्वानीत "३६५ गव" फल में जोड़ने से अहर्गण प्रमाण आजायेंगे। इस पर से ग्रहानयन सुगम है। इति ॥३॥

इदानीमन्यप्रश्नमाह ।

अधिमासैः शशिमासैरवमैः कुदिनैर्विनाऽत्र य आनयति ।
द्युगणं रविदिवसेभ्यो वेत्ति प्रकटं स मध्यगतिम् ॥३॥

वि. भा.—यः (व्यक्तिविशेषः) अधिमासैः (प्रसिद्धैर्मलमासैः) शशिमासैः (चान्द्रमासैः) अवमैः (तिथिक्षयैः) कुदिनैः (प्रसिद्धैः सावनदिनैः) विना रविदिवसेभ्यः (सौरदिनेभ्यः) द्युगणं (अहर्गणं) आनयति (साधयति) स प्रकटं मध्यगतिं वेत्तीति ॥३॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिस्तु द्वितीयश्लोकोपपत्त्यैव स्फुटेति ॥

हि. भा.—जो व्यक्ति विशेष अधिमास, चान्द्रमास, अवम और कुदिन इन सब के बिना अहर्गण साधन करता है वह मध्यगति को जानता है ॥३॥

इसके उत्तर के लिए उपपत्ति द्वितीयश्लोक की उपपत्ति से साफ है ॥३॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

कुदिनैः शशिदिवसैश्च खरांशुदिवसान् करोति तर्भाहान् ।
अधिकैः सविकलैरवममवमैरधिकमानयति यः स तन्त्रज्ञः ॥४॥

वि. भा.—यः कुदिनैः, शशिदिवसैः (चान्द्रदिनैः) खरांशुदिवसान् (सूर्यवासरान्) करोति (आनयति) तैर्भाहान् (नक्षत्रदिवसान्) आनयति, तथा अधिकैः सविकलैः (सशेषाधिकमासैः) अवमं सशेषैः अवमैश्चाधिकं य आनयति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥४॥

अत्र प्रथमप्रश्नस्य द्वितीयप्रश्नस्य चोत्तरं स्फुटमेव । तृतीयचतुर्थप्रश्नयोरुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

गतावमतस्तच्छेषाच्चानुपातेन गतचान्द्राहानयनस्य स्फुटा युक्तिः । सौर-

दिनेभ्यश्चान्द्रदिनेभ्यश्च गताधिमासाः समा एव लभ्यन्ते तच्छेषमपि सममेकत्र युग-सौरदिनहरोऽन्यत्र युगचान्द्रदिनहर इति सर्वं सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासा-स्तदैन्दवा." इत्यादि भास्करोक्तेन स्फुटम् । ततश्चान्द्राहत आगतैर्गताधिमासैर्दिनी-कृतैश्चान्द्राहा विहीना गतसौराहा भवन्ति तेभ्यः पुनर्गताधिमासाहर्गणेनेष्टग्रहाद्यं सुखेन ज्ञायते गतसौरदिनेभ्यो गताधिमासशेषतः समीकरणम् ।

गसौदि. युअमा=युसौदि.गअमा+अधिशे, पक्षयोः ३० युअमा.गअमा योजनेन युअधिमा (गसौदि+गअधिमादि)=गचांदि.युअमा ।
=गअधिमा (युसौदि+युअधिमादि)+अधिशे
=युचांदि. गअधिमा+अधिशे

अतः सौरचान्द्रेभ्यः समागताधिमासा लभ्यन्तेऽधिशेषं च सममिति ।।४।।

हि. भा.—जो व्यक्ति विशेष युगकुदिन और युग चान्द्र दिन से सौर दिन के आनयन करते हैं और उस पर से नाक्षत्र दिन के साधन करते हैं तथा सशेष अधिमास से अवम और सशेष अवम से अधिमास के आनयन करते हैं वे तन्त्रज्ञ हैं ।।४।।

यहां प्रथम और द्वितीय प्रश्न के उत्तर सरल ही हैं ।

तृतीय और चतुर्थ प्रश्नों के उत्तर के लिए उपपत्ति

गतावम से और उसके शेष से अनुपात द्वारा गतचान्द्र दिनानयन स्पष्ट ही है । सौर-दिन और चान्द्रदिन से गताधिमास बराबर ही आते हैं उसके शेष भी बराबर होते हैं । एक स्थान में युगसौरदिन हर होते हैं द्वितीय स्थान में युगचान्द्रदिन हर होते हैं । ये सब बातें "सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्सवाः" इत्यादि भास्कर कथित से स्पष्ट है । चान्द्रदिन से जो गताधिमास दिन आये उसे चान्द्र दिन में घटाने से गतसौर दिन होते हैं उससे फिर गताधिमासाहर्गण से इष्टग्रहादि का ज्ञान सुलभ ही हो जायगा ।

गतसौरदिन और गताधिमास शेष से समीकरण
गसौदि.युअधिमा=युसौदि.गअमा+अधिशे दोनों पक्षों मे ३० युअमा.गअमा जोड़ने से
युअधिमा (गसौदि+गअधिमादि)=गचांदि.युअमा
=गअधिमा (युसौदि+युअधिमादि) +अधिशे
=युचांदि.गअधिमा+अधिशे
इसलिये सौर और चान्द्र से तुल्य ही गताधिमास और अधिशेष आये ।। ४ ।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

द्युगणाहते रवीन्दू ताभ्यामिष्टं ग्रहं चान्यम् ।
बहुधा यः शशिन इनं रवेरिन्दुं करोति गणकः सः ।। ५ ।।

वि. भा.—द्युगणाहते (अहर्गणगुणिते) रवीन्दू (सूर्याचन्द्रमसौ) उद्दिष्टौ वर्त्तेते, ताभ्यां (अहर्गणगुणित-रविचन्द्राभ्यां) यः (व्यक्तिविशेषः) अन्यं (भिन्नं)

इष्टं ग्रहं करोति तथा शशिनः (चन्द्रात्) इनं (सूर्यं) रवेः (सूर्यात्) इन्दुं (चन्द्रं) यो बहुधा करोति सः गणकोऽस्तीति ॥ ५ ॥

एतेषां प्रश्नानामुत्तरार्थमुपपत्तयः ।

रवि × अहर्गण । चन्द्र × अहर्गण आभ्यां पृथक् पृथक् चन्द्ररव्योर्ज्ञानं क्रियते यथा प्रथमं तयोर्योगः कार्यस्तदा रवि × अहर्गण + चन्द्र × अहर्गण = अहर्गण (रवि + चन्द्र) तथा च अहर्गण × युगरविभगण + अहर्गण × युचंभगण = अह (युरभ + युचंभ) ततोऽनुपातेन अह (युरभ + युचंभ)एभिर्युगचन्द्रभगणा लभ्यन्ते तदा अह (रवि + चन्द्र) अनेन किमिति समागतश्चन्द्रः $= \frac{\text{अह (रवि + चन्द्र)} \times \text{युचंभ}}{\text{अह (युरभ + युचंभ)}}$

$$= \frac{(\text{अह} \times \text{रवि} + \text{अह} \times \text{चन्द्र})\ \text{युचंभ}}{\text{अह} \times \text{युरभ} + \text{अह} \times \text{युचंभ}} = \text{चन्द्र}$$

$$\text{वा}\ \frac{\text{अह (रवि + चन्द्र) युरभ}}{\text{अह (युरभ + युचंभ)}} = \text{रवि} = \frac{(\text{अह} \times \text{रवि} + \text{अह} \times \text{चन्द्र})\ \text{युरभ}}{\text{अह} \times \text{युरभ} + \text{अह} \times \text{युचंभ}}$$

एतेन रविचन्द्रयोर्ज्ञानं जातम् । ततो रविचन्द्रयोर्मध्ये एकं सिद्धग्रहं साध्यग्रहमिष्टग्रहं मत्वा "साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः" इत्यादिनाऽन्यस्येष्टग्रहस्य ज्ञानं सुशकमिति ॥ ५ ॥

हि. भा.—अहर्गण गुणित रवि और चन्द्र उद्दिष्ट है इन दोनों से जो (व्यक्तिविशेष) अन्य ग्रह के साधन करते हैं । चन्द्र से रवि, और रवि से चन्द्र के साधन अनेक प्रकार से करते हैं वे ज्योतिषी हैं ॥५ ॥

इन प्रश्नों के उत्तर के लिये उपपत्ति

अहर्गण × रवि । अहर्गण × चन्द्र ये दोनों विदित है तब इन दोनों पर से पृथक्-पृथक् रवि और चन्द्र के ज्ञान करते हैं ।

अहर्गण × रवि + अहर्गण × चन्द्र = योग । तथा अहर्गण × युरविभगण + अह· युचंभगण तब अनुपात करते हैं कि यदि अह·युरभ + अह·युचंभ इसमें = यो$_1$ युग चन्द्रभगण पाते हैं तो अह.रवि + अह.चन्द्र इसमें क्या इस अनुपात से चन्द्र के मान आ जायंगे ।

$\frac{(\text{अह.रवि} + \text{अह.चन्द्र})\ \text{चंभगण}}{\text{अह·युरभ} + \text{अह·युचंभ}} = \text{चन्द्र}$ । इसी तरह अनुपात से

$\frac{(\text{अह.रवि} + \text{अह·चन्द्र})\ \text{युरभगण}}{\text{अह·युरभ} + \text{अह·युचंभ}} = \text{रवि}$ । इस तरह रवि और चन्द्र के ज्ञान हो गये हैं । तब इन दोनों में से किसी एक को सिद्ध ग्रह और साध्यग्रह को इष्टग्रह मानकर "साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः" इत्यादि भास्करोक्त से इष्टग्रह के ज्ञान हो जायेंगे ॥ ५ ॥

इदानीमन्यौ प्रश्नावाह

अश्विन्यौदयिकानथवेष्टदिवौकसाभ्युदयकाले ।
साधयति दिविचरान् यो गणको मुख्यः स तन्त्रविदाम् ।।६।।

वि. भा.—यो गणकः (ज्यौतिषिकः) अश्विन्यौदयिकान् (अश्विन्युदयकालिकान्) दिविचरान् (ग्रहान्) अथवेष्टदिवौकसाभ्युदयकाले (इष्टग्रहोदयकाले) दिविचरान् साधयति (आनयति) स तन्त्रविदां (तन्त्रज्ञानां ज्योतिर्विदां वा) मुख्यः (प्रधानः) अस्तीति ।।६।।

अत्रोपपत्तिः

ग्रहभगणैरूनानि भदिनानि ग्रहसावनदिनानि भवन्ति । ततः स्वसावनैरिष्टाश्विन्यौदयिका मध्यमग्रहा भवन्त्यर्थाद् यदीष्टग्रहौदयिका ग्रहाः साध्यास्तदेष्टग्रहसावनाहर्गणतो यद्यश्विन्यौदयिकास्तदेष्टभदिनतो मध्यमा ग्रहाः पूर्ववत्साध्याः 'भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा' इत्यादि भास्करोक्तमेतदनुरूपमेवेति। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तोक्तमप्येतत्सदृशमेव, यथा ब्रह्मगुप्तोक्तवाक्यम्—

"भदिनानि ग्रहभगणैरूनानि भवन्ति सावनदिनानि ।
इष्टाश्विन्यौदयिकाः स्वसावनैः पूर्ववन्मध्याः ।। इति ।।६।।

हि भा.—जो ज्योतिषी अश्विनी के उदयकालिक ग्रहों को अथवा इष्टग्रहोदय कालिक ग्रहों के साधन करते हैं वे ज्योतिषियों में प्रधान हैं ।।६।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति

भदिन में ग्रहभगण को घटाने से ग्रह सावन दिन होते हैं। तब अपने सावन से पूर्ववत् अर्थात् यदि इष्ट ग्रहोदकालिक ग्रह साधन करना हो तो इष्ट ग्रह सावनाहर्गण पर से यदि अश्विनी के उदयकालिक ग्रह साधन करना हो तो इष्ट भदिन पर से मध्यम ग्रह पूर्ववत् साधन करना । "भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा" इत्यादि भास्करोक्त इसके अनुरूप ही है । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्तोक्त भी इसी के सदृश है । उनका वचन निम्नलिखित है—

"भदिनादि ग्रहभगणैरूनानि भवन्ति सावनदिनानि ।
इष्टाश्विन्यौदयिकाः स्वसावनैः पूर्ववन्मध्याः ।। इति ।।६।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

वारं विलोमविधिना स्पष्टतमाद्यः करोति संक्षेपात् ।
द्युसदां च विलोमगतिं मध्यगतिं च विमलांशम् ।।७।।
महदल्पगती द्युचरावन्योऽन्यं यः प्रसाधयेद् बहुधा ।
ग्रहमर्कमर्कमथवा करोति खचरं स तन्त्रज्ञः ।।८।।

वि. भा.—यः (व्यक्तिविशेषः) स्पष्टतमात् (अतिशयस्पष्टात्) संक्षेपात् (संक्षेपतः) विलोमविधिना (उत्क्रमपद्धत्या) वारं (दिनं) प्रसाधयेदित्येकः प्रश्नः। द्युसदां (ग्रहाणां) विलोमगतिं (अनुलोमगतिग्रहं विलोमगतिं) यः प्रसाधयेदिति द्वितीयः प्रश्नः। ग्रहाणां मध्यगतिं विमलांशं (स्पष्टगतिं) यः प्रसाधयेदिति तृतीयचतुर्थप्रश्नौ। महदल्पगती द्युचरौ (शीघ्रमन्दग्रहौ) अन्योऽन्यं (परस्परं) यः प्रसाधयेदिति पञ्चमः प्रश्नः।

ग्रहम् अर्कं (रविं) वा अर्कं खचरं (ग्रहं) यः करोति (इति षष्ठः प्रश्नः) स तन्त्रज्ञः (ज्योतिर्विज्ञः) अस्तीति। ७-८॥

प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थमुपपत्तिः

अहर्गणे सप्तभक्ते यदि शेषप्रमाणम् $=$ शे$_1$ तथा सप्तभक्तः '७ कुदि — अहर्गण' अयं शेषमानं यदि शे कल्प्यते तदा ७ — शे$_1$ $=$ शे। अतः — शे$_1$ अस्माद् या रवितः क्रमगणना सैव ७ — शे$_1$ अस्मात् शन्यादेर्विपरीतगणना भवेद्यथा—

यदि शे$_1$ $=$ १ तदा क्रमगणनया वर्तमानवारः सोमो भवेत्तथा शे $=$ ६

अस्मात् रविः। शनिः। शुक्रः। गुरुः। बुधः। कुजः। इति विपरीतगणनया वर्त्तमानवारः सोम एव जातोऽतः सिद्धम्॥

हि. भा.—जो व्यक्ति संक्षेप से अतिशय स्फुट विलोम रीति से दिन साधन करते हैं यह एक प्रश्न हुआ। ग्रहों की विलोम गति (क्रमिक गति ग्रह को विलोमगति करना) के साधन जो करते हैं यह दूसरा प्रश्न हुआ। ग्रहों की मध्यम गति और स्पष्ट गति के साधन जो करते हैं ये तृतीय और चतुर्थ प्रश्न हैं। शीघ्रगति ग्रह और मन्दगति ग्रह के परस्पर साधन (शीघ्रगति ग्रह से मन्द गति ग्रह, और मन्द गति ग्रह से शीघ्र गति ग्रह) जो करते हैं यह ५वां प्रश्न है।

ग्रह को रवि और रवि को ग्रह जो करते हैं वे तन्त्रज्ञ (ज्योतिषी) हैं॥७-८॥

यहां प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति

अहर्गण में सात से भाग देने से जो शेष रहता है उसका नाम शे$_1$ और '७ कुदि—अहर्गण' इसमें सात से भाग देने से शेष का नाम शे रखते हैं तब ७—शे$_1$ $=$ शे इसलिए—शे$_1$ इससे जो रव्यादि से क्रम गणना होती है वही ७—शे$_1$ इस पर से शन्यादि से विपरीत गणना होती है। जैसे—

यदि शे$_1$ $=$ १ तब क्रमगणना से वर्त्तमान वार सोम आया। और शे $=$ ६ इस पर से रवि। शनि। शुक्र। गुरु। बुध। कुज विपरीत गणना से भी वर्त्तमान वार सोम ही आया। इति॥

द्युसदां च विलोमगतिमित्यस्योत्तरार्थमुपपत्तिः

इष्टग्रहयुगभगणोनेभ्यो युगकुदिनेभ्यो ये शेषास्तत्समैर्युगभगणैरहर्गणादनुपातेन यो मध्यमग्रहः स्यात्स यद्यनुलोमगस्तदा विलोमो भवेद्विलोमगो वा-

ऽनुलोमगतिर्भवतीति ॥ यथा युकुदि—इग्रयुगभगण एतेऽहर्गणगुणा युगकुदिनभक्ता लब्धभगणादिके भगणानपास्य राश्यादिको ग्रहः क्रियते तदेष्टग्रहश्चक्रशुद्धो भवत्यतो ऽनुलोमगो विलोमो भवतीति ॥

अथवा

अहर्गणोनानां युगकुदिनानां यानि शेषाणि तैः शेषैर्गम्याहर्गणैर्ग्रहयुगभगणैश्चानुपातेन पूर्ववत्कृतोऽनुलोमगो ग्रहो विलोमगतिर्भवति विलोमश्चानुलोमगो मध्यो वा भवतीति यथा यदि गम्याहर्गुणेनानेन 'युकुदि—अहर्गण' भगणात्मको ग्रहः साध्यते तदा $\frac{\text{ग्रहयुभगण (युकुदि — अहर्गण)}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रयुभगण — $\frac{\text{ग्रयुभ} \times \text{अहर्ग}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रह

अत्रापि भगणानां त्यागाद्राश्यादिको ग्रहश्चक्रशुद्ध उत्पद्यतेऽतोऽनुलोमगो विलोमगो विलोभगश्चानुलोभगो भवतीति ।

ब्रह्मगुप्तोप्येवमेव कथयति । यथा—
"इष्टभगणेन भूदिनशेषैर्भगणैः कृतो मध्यः ।
अनुलोमगो विलोमो विलोमगो वाऽनुलोमगतिः ॥"
सिद्धांतशेखरे श्रीपतिनाप्येवमेव कथ्यते । यथा च तद्वाक्यम्—
"चक्रोनितक्षितिदिनप्रकरावशेषैश्चक्रैः कृतोऽयमनुलोमगतिर्विलोमः ।
प्राग्वद्विलोमगतिरप्यनुलोमगःस्याद् यद्वा द्यु राशिरहितैः कुदिनैः स्वचक्रैः ॥"

"द्युसदां च विलोमगतिं" इस प्रश्न के उत्तर के लिये उत्पत्ति ।

युग कुदिन में इष्ट ग्रह युग भगण को घटाने से जो शेष रहता है तत्तुल्य युग भगण से अहर्गण द्वारा अनुपात से मध्यम ग्रह होता है वह यदि क्रमिकगतिक है तो विलोमगतिक होता है और यदि विलोमगतिक है तो क्रमिकगतिक होता है ॥

जैसे युकुदि—इग्रयुभगण इसको अहर्गण से गुण कर युग कुदिन से भाग देने से जो भगण विफल होता है उसमें भगण को घटाकर राश्यादिक ग्रह करते हैं तब इष्टग्रह चक्र शुद्ध होते हैं। इसलिए अनुलोमग ग्रह विलोमग होते हैं।

अथवा

युग कुदिन में अहर्गण को घटा कर जो शेष (गम्याहर्गण) रहते हैं उससे और ग्रह युग भगण से अनुपात द्वारा पूर्ववत् किये हुये क्रमिक गति ग्रह विलोमगतिक होते हैं और विलोमगतिक मध्यम ग्रह क्रमिकगति ग्रह होते हैं । यथा—

युकुदिन — अहर्गण इस गम्याहर्गण से मध्यम ग्रह साधन करते हैं—

$\frac{\text{ग्रयुभगण} \times \text{(युकुदि — अहर्गण)}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रयुभगण — $\frac{\text{ग्रयुभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकुदि}}$ = ग्रह ।

यहां भी भगणों के छोड़ने से राश्यादिक ग्रहचक्र शुद्ध होते हैं । इसलिये अनुलोमग ग्रह विलोमग और विलोमग ग्रह अनुलोमग होते हैं ।

ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं।

"इष्टभगरगोन भूदिनशेषैर्भगरगैः कृतो मध्यः।

अनुलोमगो विलोमो विलोमगोवाऽनुलोमगतिः ॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। यथा—

"चक्रोनितक्षितिदिनप्रकारावशेषैश्चक्रैः" इत्यादि।

अथ मध्यगतिं च विमलांशमित्यस्योत्तरार्थमुपपत्तिः।

अथ रविचन्द्रानयनप्रकारेण सूर्योदयेऽभीष्टदिने चैत्रादितः सावयवं चान्द्र-मासादिः=मा+दि+क्षयशेल । रवि=मा+दि+क्षशेल—अधिमाल

चन्द्र=१३ (मा+दि+क्षयशेल)—अधिमाल । अधिमाल=अधिमासफल ततः स्वफलसंस्कृतं रविं स्वफलसंस्कृतचान्द्राद्विशोध्य स्पष्टरविचन्द्रान्तरं साधितं तद्द्वादशभक्तं चान्द्रं मासादि स्यात्। एवं द्वादशभक्तं रविमन्दफलं व्यस्तं द्वादशभक्तं चन्द्रफलं च दिनादि यथागतं मध्यमचान्द्रमसादिकेऽस्मिन् 'मा+दि+क्षशेल' संस्कृतं भवति। एवं तिथेर्भुक्तं घट्यात्मकं लङ्कायां चान्द्रात्मकं जातम्। सावन-घट्यर्थमेकस्मिन् सावनदिने रविचन्द्रगत्यन्तरं द्वादशभक्तं फलं चान्द्रं प्रसाध्यानुपातो यद्येतच्चान्द्रावयवेन सावनाः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा तिथिविकलेन किं लब्धा लङ्कायां स्फुटास्तिथिमुक्तघटिकास्तत्र देशान्तरचरसंस्कारेण स्वदेशे स्फुटार्कोदये स्फुटास्तिथिमुक्ता घटिका भवन्तीति। अत्रोपरिलिखित मध्यमरवि चन्द्रवशेन मध्यमतिथिज्ञानं सुगममेव। प्रश्ने "विमलांशम्" वर्तते—विमलांशशब्देन यदि स्पष्टान्तरांशास्तदाऽप्युपर्युक्तोपपत्त्यैव सर्वं स्फुटमिति ॥

अथ महदल्पगती द्युचरावन्योन्यं यः प्रसाधयेदित्युत्तरार्थमुपपत्तिः

शीघ्रग्रहभगरग+मन्दग्रहभगरग=भगरगयोग=योग

शीघ्रग्रहभगरग—मन्दग्रभगरग=भगरगान्तर=अन्तर

ततः संक्रमरगेन $\frac{\text{यो}+\text{अं}}{२}$ =शीघ्रग्रहभगरग ततोऽनुपातेन

$$\text{शीघ्रगतिग्रहः}=\frac{(\text{यो}+\text{अं})\ \text{अहर्गरग}}{२\times\text{युकुदि}}=\frac{\text{यो}\times\text{अहर्गरग}}{२\ \text{युकु}}+\frac{\text{अं}\times\text{अहर्गरग}}{२\ \text{युकु}}=$$

$$\frac{\text{योगजग्रह}}{२}+\frac{\text{अन्तरजग्रह}}{२}=\text{शीघ्रगतिग्रहः}।$$

एवमेव $\frac{\text{यो}-\text{अं}}{२}$ =मन्दगतिग्रहभगरग ततोऽनुपातेन

$$\text{मंदगतिग्रह}=\frac{(\text{यो}-\text{अं})\ \text{अहर्गरग}}{२\times\text{युकु}}=\frac{\text{यो}\times\text{अहर्गरग}}{२\ \text{युकु}}-\frac{\text{अं}\times\text{अहर्गरग}}{२\ \text{युकु}}=$$

$$\frac{\text{योगजग्रह}}{२}-\frac{\text{अन्तरजग्रह}}{२}=\text{मन्दगतिग्रह}।$$

यदि शीघ्रगतिग्र—अन्तरजग्र=मन्दगतिग्र। मन्दगति+अन्तरजग्र=शीघ्रग्रह।

ग्रहमर्कमर्कमथवा खचरमिति प्रश्नस्योत्तरमपि पूर्वोक्तोपपत्तिबलेनैव जातं यतः शीघ्रमन्दगतिग्रहयोरेकं ग्रहमन्यं रविं प्रकल्प्य पूर्ववदेवोपपत्तिः कार्येति ।। ७-८ ।।

"मध्यगतिं च विमलांशम्" इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

रवि और चन्द्र के आनयन प्रकार से अभीष्ट दिन में सूर्योदयकाल में चैत्रादि से सावयव चान्द्रमासादि = मा + दि + क्षयशेल । रवि = मा + दि + क्षयशेल — अधिमाल । अमाल = अधिफल चन्द्र = १३ (मा + दि + क्षयशेल) — अधिमाफल । अपने मन्दफल

संस्कृत रवि को अपने मन्दफल संस्कृत चन्द्र में घटाकर स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र के अन्तर साधन कर बारह से भाग देने से चान्द्रमासादि होता है। इस तरह बारह से भक्त रविमन्द फल व्यस्त द्वादशभक्त चन्द्रमन्दफल पूर्वागत मध्यम चान्द्रमासादि (मा + दि + क्षशेल) में संस्कृत होता है। इस तरह तिथिभुक्त घट्यात्मक लङ्का में चान्द्रात्मक हुआ। सावन घटी के लिये एक सावन दिन में रविचन्द्रगत्यन्तर को बारह से भाग देने से जो चान्द्र फल होता है उस पर से अनुपात करते हैं यदि इस चान्द्रावयव में सावन साठ घटी पाते है तो तिथि शेष में क्या फल लङ्का में स्पष्टतिथि भुक्त घटी प्रमाण होता है इसमें देशान्तर-भुजान्तर-चर कर्म संस्कार करने से अपने देश में स्पष्ट रव्युदयकाल में स्पष्ट तिथिभुक्त घटी होती है। उपरिलिखित मध्यम रवि और मध्यमचन्द्रवश मध्यमतिथि ज्ञान सुलभ ही है। तथा प्रश्न में "विमलांशम्" इससे यदि स्पष्टान्तरांश लेते हैं तो भी उपर्युक्त उपपत्ति से उसका ज्ञान सुलभ ही है ।।

५ वें प्रश्न के लिये उपपत्ति ।

शीघ्रग्रहभगण + मन्दग्रहभ = भगणयोग = यो

शीघ्रग्रहभगण — मन्दग्रहभ = भगणान्तर = अं

तब संक्रमण से $\frac{\text{यो} + \text{अं}}{2}$ = शीघ्रग्रभ । तथा $\frac{\text{यो} - \text{अं}}{2}$ = मन्दग्रभगण

$$\text{अब अनुपात से } \frac{(\text{यो} + \text{अं})\text{अहर्गण}}{2 \times \text{युकु}} = \frac{\text{शीघ्रग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{2\ \text{युकु}} + \frac{\text{अं} \times \text{अहर्गण}}{2\ \text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{योगजग्रह}}{2} + \frac{\text{अन्तरजग्र}}{2} = \text{शीघ्रग्रह}$$

$$\text{तथा} \frac{\text{मन्दग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}} = \frac{(\text{यो} - \text{अं})\ \text{अहर्गण}}{2\ \text{युकु}} = \frac{\text{यो} \times \text{अहर्गण}}{2\ \text{युकु}} - \frac{\text{अं} \times \text{अहर्गण}}{2\ \text{युकु}}$$

$$= \frac{\text{योगजग्रह}}{2} - \frac{\text{अन्तरजग्र}}{2} = \text{मन्दगतिग्रह ।}$$

यदि शीघ्रगतिग्रह — अन्तरजग्रह = मन्दगतिग्रह

मन्दगतिग्रह + अन्तरजग्रह = शीघ्रगतिग्रह ।

छठे प्रश्न का उत्तर ५ वें प्रश्न की उपपत्ति से ही हो जायगा क्योंकि शीघ्रगतिग्रह और मन्दगतिग्रह में एक को ग्रह और दूसरे को रवि मानकर ५ वें श्लोक की उपपत्ति केवल से ग्रह और रवि के ज्ञान हो जायंगे ।। ७-८ ।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह

प्रत्युदयं प्रतिपादं ग्रहभुक्तिं वेत्ति यो ग्रहाभ्युदयात् ।
बहुधा करोति तेभ्यो भावर्त्ताद्यं स तन्त्रज्ञः ॥ ९ ॥

वि. भा.—यः ग्रहाभ्युदयात् (ग्रहसावनात्) प्रत्युदयं प्रतिपादं ग्रहभुक्तिं (ग्रहगतिं) वेत्ति (जानाति) तेभ्यो भावर्त्ताद्यं (नक्षत्रभगणाद्यम्) बहुधा करोति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ॥ ९ ॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिः ।

अथ यदि युगकुदिनैर्युगग्रहसावनदिनानि लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेन समागतानि गतसावनदिनानि, भभ्रमोत्पन्नग्रह एतेनानीतेन फलेन हीनः कार्यस्तदा मध्यमग्रहो भवति । यस्य भगणैर्यो ग्रह आनीयते स तस्यैवोदयकालिको भवति, नक्षत्रपरिवर्त्तैरानीतो नक्षत्रौदयिकालिको भवति । तथा स इत्यश्विनीनक्षत्राणां प्रथमं तदुदयकालिको ग्रहो भवति, अस्मादश्विन्यौदयिकाद् भगणात् यस्योदयाः शोध्यन्ते शिष्टस्तस्यैव मध्यमो भवति ततस्तद्गतिज्ञानं नक्षत्रभगणादिज्ञानं सुलभमिति ॥९ ॥

हि. भा.—जो व्यक्ति विशेष ग्रहसावन दिन से प्रत्युदय और प्रतिपद में ग्रहगति को जानते हैं और उनसे अनेक प्रकार नक्षत्र भगणादि को लाते हैं वे ज्योतिषी हैं ॥९॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यदि युगकुदिन में युगग्रह सावनदिन पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गतसावनदिन आते हैं । इसको भभ्रम से जायमान ग्रह में घटाने से मध्यम ग्रह होते हैं । जिसके भगणों द्वारा जो ग्रह साधित होते हैं वे उसी के उदयकालिक होते हैं, नक्षत्रपरिवर्त्त (नक्षत्रभगण) से साधितग्रह नक्षत्र के उदयकालिक होते हैं, इस तरह अश्विनी नक्षत्रोदय कालिक ग्रह होते हैं । इस अश्विनी के उदयकालिक भगण में जिसके उदय (सावन) को घटाते हैं शेष उसी का मध्यम होता है इस पर से इस गति और नक्षत्र भगणादि ज्ञान सुलभ है ॥ ९ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

अन्यभगण-गुणाद्द्युगणात्प्रश्नाक्षराहतादथवा ।
कुरुते यो ग्रहमिष्टं सच्छेदगुणापवर्त्तज्ञः ॥ १० ॥

वि. भा.—यः (व्यक्तिविशेषः) अन्यभगणगुणात् (साध्यग्रहेतरभगणगुणितात्) द्युगणात् (अहर्गणात्) अथवा प्रश्नाक्षराहतात् (प्रश्नकथितगुणकगुणितात् द्युगणात्) इष्टं (साध्यं) ग्रहं कुरुते स छेदगुणापवर्त्तज्ञः (हरगुणभजनपण्डितः) अस्तीति ॥ १० ॥

उपपत्तिः

साध्यग्रहः=इग्र । अन्यग्रहः=अग्र, अन्यभगण × अहर्गण एतस्मादिष्टग्रहानयनं कर्त्तव्यमस्ति ।

अथ युगकुदिनैरन्यग्रहभगणा लभ्यन्ते तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनान्यग्रह-स्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु}}$, तथा यद्यन्यग्रहभगणैरन्यग्रहो लभ्यन्ते तदेष्टग्रह-भगणैः किं समागत इष्टग्रहः $= \frac{\text{अन्यग्र} \times \text{इग्रभ}}{\text{अग्रभ}}$ अत्रान्यग्रहस्वरूपेणोत्थापनात्

$$\frac{\text{अग्रभ} \times \text{इग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{युकु} \times \text{अग्रभ}} = \text{इग्र}$$ छेदगमेन

$\text{अग्रभ} \times \text{इग्रभ} \times \text{अहर्गण} = \text{युकु} \times \text{अग्रभ} \times \text{इग्र}$ पक्षौ इग्रभ भक्तौ तदा

$$\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण} = \frac{\text{युकु} \times \text{अग्रभ} \times \text{इग्र}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर} \times \text{इग्र} \text{ । } \frac{\text{युकु} \times \text{अग्रभ}}{\text{इग्रभ}} = \text{हरः}$$

$$\text{ततः } \frac{\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{हर}} = \text{इग्र} \quad \therefore \text{ सिद्धम् ।।}$$

हि. भा.—जो व्यक्तिविशेष अन्यभगण गुणित अहर्गण से अथवा प्रश्न कथित गुणकगुणित अहर्गण से इष्टग्रह के साधन करते हैं वे गुणक और हार के अपवर्त्तन में पण्डित हैं ।। १० ।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

साध्यग्रह=इग्र । अन्यग्रह=अग्र । अन्यभगण × अहर्गण इस पर से इष्टग्रहानयन करना है ।

यदि युग कुदिन में अन्यग्रहभगण पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से अन्य ग्रह आते हैं, $\frac{\text{अग्रभ.अहर्गण}}{\text{युकु}} = \text{अग्र}$ । तथा यदि अन्यग्रहभगण में अन्यग्रह पाते हैं तो इष्टग्रह-भगण में क्या आ गये इष्टग्रह $= \frac{\text{अग्र} \times \text{इग्रभ}}{\text{अग्रभ}}$ इसमें अन्यग्रह स्वरूप को उत्थापन देने से

$\frac{\text{अग्रभ.इग्रभ. अहर्गण}}{\text{युकु} \times \text{अग्रभ}} = \text{इग्र}$, छेदगम से $\text{अग्रभ.इग्रभ.अहर्गण} = \text{युकु.अग्रभ.इग्र}$ दोनों पक्षों को इग्रभ से भाग देने से $\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण} = \frac{\text{युकु.अग्रभ.इग्र}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर} \times \text{इग्र}$ । $\frac{\text{युकु.अग्रभ}}{\text{इग्रभ}} = \text{हर}$

$$\text{अतः } \frac{\text{अग्रभ} \times \text{अहर्गण}}{\text{हर}} = \text{इग्र}$$

∴ सिद्ध हो गया ।। १० ।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह

इष्टग्रहावमेभ्यो मध्यतिथिं तद्दिवौकसाभ्युदयात् ।
रविशीतगू च बहुधा यो वेत्ति स वेत्ति मध्यगतिम् ।। ११ ।।

हि. भा.—य इष्टग्रहावमेभ्यः (इष्टग्रहादवमाच्च) तद्दिवौकसाभ्युदयात् (तद्ग्रहोदयकालात्) मध्यतिथिं वेत्ति (जानाति) तथा रविशीतगू (सूर्याचन्द्रमसौ) वेत्ति स मध्यगतिं वेत्तीत्यहं मन्ये ।। ११ ।।

अत्रोत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यथा रविज्ञानेनावमेन च चन्द्रं ज्ञानं भवति स चन्द्रः सूर्योदयकालिको भवति तथैव ग्रहज्ञानेनावमज्ञानेन च चन्द्रानयनं कार्यं परमयं चन्द्रो ग्रहोदयकालिको भवेत् । तद्ग्रहज्ञानेनैव "साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्यः" अनेन विधिना रविज्ञानं कृत्वा ततस्तिथिज्ञानं कार्यमिति ।। ११ ।।

हि. भा.—इष्टग्रह और अवम से उस ग्रह के उदयकाल से (ग्रहोदयकाल में) जो मध्यम तिथि को जानता है और रवि, चन्द्र को जानता है वह मध्यगति को जानता है ।।११।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

जैसे रवि और अवम से चन्द्रज्ञान होता है पर वह चन्द्र सूर्योदयकालिक होते हैं । उसी तरह इष्टग्रह और अवम से चन्द्रज्ञान करना चाहिये पर यह चन्द्रग्रहोदयकालिक होंगे । उस ग्रह से "साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथवा प्रसाध्यः" इस नियम से रवि ज्ञान करके तिथिज्ञान करना चाहिये ।। ११ ।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

अपवर्त्तितगुणहारे यो द्युगणादीन् करोति संक्षेपात् ।
कल्पाब्जजन्मनो वा कृतात्कलेर्वा स तन्त्रज्ञः ।। १२ ।।

वि. भा.—यो (व्यक्तिविशेषः) अपवर्त्तितगुणहारे संक्षेपात् कल्पाब्जजन्मनः (ब्रह्मदिनादितः) वा कृतात् (सत्ययुगादितः) वा कलेः (कलियुगादितः) द्युगणादीन् (अहर्गणादीन्) करोति (साधयति) स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ।। १२ ।।

अत्रोत्तरार्थमुपपत्तिः ।

आचार्येण स्वयमेव पूर्वं कल्पादितः कल्यादिं यावदहर्गणानयनं कृत्वा तत्र कल्यादित इष्टदिनपर्यन्तमहर्गणमानीय संयोज्य कल्पादित इष्टदिनपर्यन्तमहर्गणानयनं कृतमस्ति । कलियुगादितः कृतयुगादितो वाऽहर्गणज्ञानं सुगममेवेति ।। १२ ।।

हि. भा.—जो व्यक्ति-विशेष अपवर्त्तित गुण और अपवर्त्तित हर से ब्रह्मदिनादि से या सत्ययुगादि से वा कलियुगादि से संक्षेप से अहर्गण साधन करते हैं वे तन्त्रज्ञ हैं ।।१२।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

आचार्य स्वयं पहले कल्पादि से कलियुगादि तक अहर्गण साधन कर उसमें कलियुगादि से इष्टदिन तक अहर्गण साधन कर जोड़कर इष्टदिन तक अहर्गण लाये हैं । कृतयुगादि से या कलियुगादि से अहर्गणानयन सुलभेन होंगे ।। १२ ।।

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोर्योगादष्टोद्धृताज्ज्ञहीनाद्यात् ।
आनयतीष्टद्युचरं करामलकवत्स वेत्ति मध्यगतिम् ।। १३ ।।

वि. भा.—द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोः (द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितयोः सूर्याचन्द्रमसोः) योगात्, ज्ञहीनाढ्यात् (बुधरहिताद्युक्तात्) अष्टभक्तात् य इष्टद्युचरं (इष्टग्रहं) आनयति (साधयति) स करामलकवत् (हस्तस्थधात्रीफलवत्) मध्यगतिं वेत्तीत्यहं मन्ये ।। १३ ।।

एतत्प्रश्नोत्तरार्थमुपपत्तिर्द्वयोर्बहूनामथवेत्याद्यनुसारेण कार्येति ।

हि. भा.—द्विगुणित रवि और त्रिगुणित चन्द्र के योग में बुध को हीन या युत करके आठ से भाग फल से जो (व्यक्तिविशेष) इष्टग्रह के साधन करते हैं वे हाथ में रखे हुये धात्रीफल की तरह मध्यगति को जानते हैं ।। १३ ।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति "द्वयोर्बहूनामथवा" इत्यादि के अनुसार करनी चाहिये ।। १३ ।।

इदानीमन्यप्रश्नमाह ।

नवधो गोहत भूमिज गुरुशनि योगाद् दिगीशगुणिताभ्याम् ।
ज्ञसिताभ्यां युक्ताद् यो वेत्तीष्टखगं स तन्त्रज्ञः ।। १४ ।।

वि. भा.—नवधी गोहत भूमिज गुरुशनियोगात् (नव पञ्चनव-गुणित-कुज-गुरु-शनियोगात्) दिगीशगुणिताभ्यां ज्ञसिताभ्यां (दशैकादशगुणित बुधशुक्राभ्यां) युक्ताद्य इष्टग्रहं वेत्ति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ।।

एतस्योपपत्तिरपि "द्वयोर्बहूनामथवे" त्याद्यनुसारेण कार्येति ।।

हि. भा.—नव पांच नव गुणित कुज, गुरु और शनि के योग में दश और ग्यारह गुणित बुध, शुक्र जोड़ने से जो होता है उस पर से इष्टग्रह को जो जानते हैं वे ज्योतिषी हैं ।। १४ ।।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति "द्वयोर्बहूनामथवा" इत्यादि के अनुसार करनी चाहिये ।।१४।।

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

रवि शशि कुज बुधयोगः पृथक् पृथक् त्रिगुणितैश्च तैर्हीनः ।
युक्तो वा तद्योगात् स्वधनगुरुं वेत्ति यः स तन्त्रज्ञः ।। १५ ।।

वि. भा.—रवि शशि कुजबुधयोगः (रवि चन्द्र मङ्गल बुध योगः) पृथक् पृथक् त्रिगुणितैस्तैर्हीनो युक्तो वा तदा स्वधनगुरुं (बृहस्पतिं) पृथक् पृथक् ग्रहान् वा यो वेत्ति (जानाति) स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ।। १५ ।।

अस्योत्तरार्थं मुपपत्तिः ।

रवि + चन्द्र + मं + बुध + ३ रवि + ३ चन्द्र + ३ मं + ३ बु = ४ रवि + ४ चं + ४ मं + ४ बु = यो

तथा ४ रयुभगण + ४ चंयुभ + ४यु = मं भगण + ४ बुयुभगण = $यो_1$

ततोऽनुपातो यद्य "$यो_1$" भिर्गु रुयुगभगणा लभ्यन्ते तदा योऽनेन किमित्यनुपातेन समागतो गुरुः $= \frac{यो \times युगुभगण}{यो_1}$

$$= \frac{(४ \text{ रवि} + ४ \text{ चं} + ४ \text{ मं} + ४ \text{ बु}) \text{ युगुभगण}}{४ \text{ रयुभ} + ४ \text{ चंयुभ} + ४\text{युमंभ} + ४\text{युबुभ}} = \text{गुरुः} ।$$

तथा चैतेन नियमेनैव रव्यादीनां प्रश्नोक्तानामपि ज्ञानं भवितुमर्हति। एवमेव त्रिगुणितैश्च तैर्हीन इति प्रश्नस्याप्युत्तरमिति ॥ १५ ॥

अथ रवि शशि कुजबुध योग इत्यादेरुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

सर्वेषामेकजातीयानामिष्टग्रहाणां योगः सर्वधनसंज्ञकम् । इष्टगुणगुणितप्रथमग्रहो यदि सर्वधने विशोध्यते योज्यते वा यो भवति स ज्ञायते । तेनैवेष्टगुणेन गुणितो द्वितीयग्रहो यदि सर्वधने विशोध्यते योज्यते वा यो भवति सोऽपि ज्ञायते। एवमेवाभीष्टान् सर्वान् ग्रहान् तेनैव गुणेन गुणितान् सर्वधनाद्विशोध्य संयोज्य वा या याः संख्या भवन्ति तास्ताः पृथक् पृथक् ज्ञायन्ते, धनानि पृथक् पृथक् ग्रहमानानि, यावन्त इष्टा ग्रहास्तत्पदं गच्छमानं वा, एतेनेदं प्रतिफलति गच्छधनमिष्टगुणितैर्धनैर्ग्रहैर्युतोनं सद्व्यक्तमस्ति पृथक् पृथक् तत्सहितं कार्यं गुणकेन गुणं ग्रहमानं सर्वधने युतोनं कृतं तेन गुणकेन युतोनं पदं कार्यं तेन हृतं लब्धं सर्वधनं भवति, अतोऽस्मादवशेषाणि पृथक् पृथक् ग्रहमानानि ज्ञायन्ते ।

कल्प्यन्ते ग्रहमानानि $ग्र_1, ग्र_2, ग्र_3, ग्र_4 \ldots$, इष्टगुणः = इ, सर्वधनम् = स युतोने कृते संख्या $ह_1, ह_2 \ldots$

तदा $स \pm इ. ग्र_1 \pm ह_1$, $स = इ.ग्र_2 = ह_2$, $स \pm इ. ग्र_3 = ह_3$

सर्वयोगेन

$$ह_1 + ह_2 + ह_3 \ldots = प. स \pm इ (ग्र_1 + ग्र_2 + ग्र_3 + \ldots)$$
$$= प. स \pm इ. स = स (ह \pm इ)$$

$$\text{अतः} \frac{ह_1 + ह_2 + ह_3}{प \pm इ} = स \therefore \text{ सिद्धम्} ।$$

यतः $स \pm इ. ग्र_1 = ह_1 \therefore ग्र_1 = \frac{स \sim ह_1}{इ}$ एवं सर्वेषां ग्रहाणां मानानि स्युः ॥१५॥

हि. भा.—रवि, चन्द्र, मङ्गल, और बुध इनके योग में त्रिगुणित उन्हीं को पृथक् पृथक् जोड़ने और घटाने से जो होता है उससे गुरु (बृहस्पति) या अलग-अलग ग्रहों के मान जो जानते हैं वे ज्योतिषी हैं ॥

इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यथा प्रश्नोक्ति से

रवि + चन्द्र + मं + बु + ३ र + ३ चं + ३ मं + ३ बु = ४ र + ४ चं + ४ मं + ४ बु = यो

तथा ४ रयुभ + ४ चंयुभ + ४ मं युभ + ४ बुयुभ = $यो_1$

तब अनुपात करते हैं कि यदि $यो_1$ इसमें गुरु के युगभगण पाते हैं तो यो इसमें क्या इस अनुपात से गुरु के प्रमाण आ जायंगे ।

$$\frac{यो \times युगुभगण}{यो_1} = \frac{(४\ रवि + ४\ चं + ४\ मं + ४\ बु)\ युगुभगण}{४\ रयुभ + ४\ युचंभ + ४\ मं\ युभ + ४\ बुयुभ} = गुरु$$

इसी तरह प्रश्नोक्त रवि आदि ग्रहों के ज्ञान भी हो जायंगे। और हीन पक्ष में भी इसी तरह उपपत्ति करनी चाहिये ।।

रवि शशि मंगल बुध योग इत्यादि के उत्तर के लिए उपपत्ति

एक जातीय सब ग्रहों के योग सर्वधनसंज्ञक हैं । यदि सर्वधन में इष्टगुण गुणित प्रथम ग्रह को घटाते हैं या जोड़ते हैं तब जो होता है सो जानते हैं। उसी गुणक से गुणित द्वितीय ग्रह को यदि सर्वधन में घटाते हैं या जोड़ते हैं तब जो होता है वह भी जानते हैं। इस तरह उसी गुणक से गुणित सब इष्टग्रहों को सर्वधन में घटाने से या जोड़ने से जो जो संख्या होती है वे सब जानते हैं, धन सब पृथक् पृथक् ग्रहमान है। जितने इष्टग्रह हैं वे पद या गच्छमान हैं। इससे यह सूचित होता है कि गच्छधन में जिस इष्ट गुणितग्रह को युत या हीन करने से व्यक्त है अलग अलग उसको जोड़ना चाहिए। ग्रहमान को इष्ट गुणक से गुण कर सर्व धन में युत और हीन करते हैं तो उस गुणक करके पद को युत और ऊन कीजिये उससे भाग देने से लब्धिमान सर्वधन होते हैं । इस पर से शेषों के मान पृथक् पृथक् ग्रहमान होते हैं ।

कल्पना करते हैं ग्रहों के मान $ग्र_1$, $ग्र_2$, $ग्र_3$, $ग्र_4$ . . . [इष्टगुणः = इ] सर्वधन = स

युत ऊन करने पर संख्या में $द_1$, $द_2$ . . .

तब स ± इ., $ग्र_1 = द_1$ । स ± इ. $ग्र_2 = द_2$ । स ± इ. $ग्र_3 = द_2$

सब के योग करने से

$$द_1 + द_2 + द_3 + \dots = प.\ स \pm इ\ (ग्र_1 + ग्र_2 + ग्र_3 + \dots)$$
$$= प.\ स \quad इ.\ स = स\ (प \pm इ)$$

$$अतः \frac{द_1 + द_2 + द_3}{प \pm इ} = स ।$$

क्योंकि स ± इ. $ग्र_1 = द_1$ अतः $\frac{स \sim द_1}{इ} = ग्र_1$ इस तरह सब ग्रहों के मान होते हैं ।।१५।।

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

सर्वग्रहयोगो वा सप्तगुणैस्तैः पृथक् पृथग्युक्तः ।
हीनो वा तद्योगात् के सर्वे स्वधनगुरवः ।। १६ ।।

वि. भा.—वा सर्वग्रहयोगः सप्तगुणैस्तैरेव सर्वग्रहैः पृथक् पृथक् युक्तो हीनो वा तदा सर्वे स्वधनगुरवः के इति प्रश्नः।

अस्योपपत्तिः पूर्ववदेव स्फुटेति ॥ १६ ।

हि. भा.— सब ग्रहों के योग में सप्तगुणित उन ग्रहों को पृथक् पृथक् जोड़ने या घटाने से जो होता है उससे उन ग्रहों के मान क्या हैं यह प्रश्न है।

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति पूर्ववत् स्पष्ट है ॥ १६ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

दशगुणितः शीतांशुस्त्रिगुणेन युतोऽन्यपर्ययाप्तेन ।
विदाहतेन मिश्रः शनिर्विहीनोऽथवान्यभगणाः के ॥ १७ ॥

वि. भा.—शीतांशुः (चन्द्रः) दशगुणितः, त्रिगुणेनान्यभगणफलेन युतः, विदाहतेन (बुधगुणितेन) मिश्रः (युक्तः) शनिः विहीनस्तदाऽन्यभगणाः के ? ॥१७॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि युगग्रहभगण इष्टगुणकुदिनैर्युता वा हीनास्तदा तेभ्योऽपि राश्यादिको ग्रहः स एव भवति यतस्तेऽहर्गणगुणाः कुदिनैर्भक्ता इष्टसमभगणाधिकोनाः पूर्वभगणा भवन्ति भगणशेषं तु पूर्वसममेव। अतोऽत्रेष्टगुणगुणानां ग्रहभगणानामैक्यान्तरं कुदिनाधिकं तदा कुदिनैर्भक्तशेषमेव ग्रहभगणाः कल्प्या येभ्यो राश्यादिर्ग्रहोऽभीष्टगुणगुणग्रहयोगान्तसम एवोपपद्यते । अथान्यभगणग्रहो यदा धनं तदाऽन्यभगणयुतः शेषो दृष्टग्रहभगणसमोऽतस्तदा शे+अभे=इभ ∴ अभ=इभ —शे=इभ+युकुदि—शे । एवं यदाऽन्यभगणभवोग्रहश्चर्णं तदा शे—अभ=इभ ∴ अभ=शे—इभ=शे+युकुदि—इभ ।

एतेनैव यथोत्तरं कार्यमिति ॥

हि. भा.—चन्द्र को दश से गुणाकर त्रिगुणित अन्य भगण फल करके जोड़ना, बुधगुणित जोड़ना शनि को घटा देना तब अन्य भगण क्या होता है ॥ १७ ॥

इसके उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यदि युगग्रहभगण में इष्टगुणगुणित कुदिन जोड़ने या घटाने से जो होता है उस पर से राश्यादिग्रह वही होता है क्योंकि उसको (युगग्रहभगण को) अहर्गण से गुणाकर युगकुदिन से भाग देने से इष्टसमभगण करके युतहीन पूर्व भगण होते हैं और भगण शेष भी पूर्वतुल्य ही होता है। इसलिये यहां इष्टगुणगुणित ग्रह भगणों के योग या अन्तर कुदिन से अधिक हो तो कुदिन से भाग देना, शेष ही को ग्रहभगण मानना जिससे राश्यादिकग्रह अभीष्टगुणगुणित ग्रहयोग या अन्तर ही उपपन्न हो, यदि अन्य भगणग्रह धन है तो अन्यभगण युत शेष दृष्टग्रह-

भगण तुल्य होता है इसलिये शे + अभ = इभ ∴ अभ = इभ — शे = इभ + युकुदि — शे । ऐसे ही जब अन्यभगणोत्पन्न ग्रह ऋण है तब शे — अभ = इभ

∴ अभ = शे — इभ = शे + युकुदि — इभ इसी तरह उत्तर करना चाहिये ॥ १७ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

भौमस्त्रिभुजाभ्यस्तस्त्रिगुणगुरूनोऽन्यभगणलब्धेन ।
हीनो रविः समतो मन्दो वाऽन्यग्रहभगणाः के ॥१८॥

वि. भा.—भौमः (कुजः) त्रिभुजाभ्यस्तः (२३ गुणितः) त्रिगुणगुरूनः त्रिगुणितबृहस्पतिर्हीनः) अन्यभगणलब्धेन हीनः, रविः समेतः (युक्तः) वा मन्दः (शनैश्वरः) समेतस्तदाऽन्यग्रहभगणाः के ॥१८॥

अस्योत्तरार्थमुपपत्तिः १७ श्लोकोपपत्तिदर्शनेन स्फुटेति ।

हि. भा.—मङ्गल को २३ गुण देना, त्रिगुणित गुरु को घटा देना, अन्य भगणफल को घटाना रवि या शनैश्वर को जोड़ देना तब इस पर से अन्य ग्रहों के भगण क्या होंगे ॥१८॥

इसके उत्तर के लिये १७ श्लोक की उपपत्ति देखनी चाहिए ॥१८॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

सम्वत्सरादिशुद्धिं करोति बहुधा ततश्च दिनराशिम् ।
द्युगणाद्रविं च बहुधा दिवसक्षयशेषकाच्च रजनीशम् ॥१९॥

वि. भा.—सम्वत्सरादिशुद्धिं ततो दिनराशिं (अहर्गणं) द्युगणात् (अहर्गणात्) रविं, ततः दिवसक्षयशेषकाच्च (अवमशेषाच्च) रजनीशम् (चन्द्रं) यः करोति स तन्त्रज्ञोऽस्तीति ।

एतस्योत्तरार्थमुपपत्तिः

शुद्धिदिनज्ञानं तु पूर्वकृतमेव ततो लघ्वहर्गणज्ञानं कार्यं यथा

लघ्वहर्गणेऽवमानयनार्थं ७०३ चान्द्रदिनैरुद्र ११ मितान्यवमानि स्वल्पान्तरतः प्रकल्प्यानुपातः कृतस्तद्यथा—

वर्षादिर्गततिथयः = इति — अधिशेति एता रुद्रगुणाः ७०३ भक्ता वर्षादिक्षयशेषयुतास्तदाऽवमानि $= \frac{११ (\text{इष्टति} - \text{अधिशेति})}{७०३} + \frac{\text{वक्षशे}}{९६००}$

$$= \frac{११(\text{इति} - \text{अधिशेति}) + \frac{७०३\ \text{वक्षशे}}{९६००}}{७०३}$$

$$= \frac{११\ (\text{इति} - \text{अधिशेति}) + \frac{११\ \text{वक्षशे}}{९६००} + \frac{६९२\ \text{वक्षशे}}{९६००}}{७०३}$$

$$= \frac{११ \left\{ इति - \left(अधिशेति - \frac{वक्षशे}{६६००} \right) \right\} + ६६२ \text{ वक्षशे}}{७०३}$$

$$= \frac{११ (इति — शु) + \frac{६६२ \text{ वक्षशे}}{६६००}}{७०३}$$ इत्येव शोधितचान्द्रे (शुद्ध्यून चान्द्रे)

विशोध्यते तदा लघ्वहर्गणो भवेत् । एतद्वशतो रविज्ञानं कार्यम् ।

ततो मध्यमरवितोऽवमशेषाच्च मध्यमचन्द्रानयनम् । यथा

इष्टदिने सूर्योदये सावयवाश्चान्द्राहाः $= इति + \frac{क्षयशे}{युकुदि}$ एते द्वादशगुणास्तदा

रविचन्द्रान्तरांशा भवन्ति ते रवौ शिष्यन्ते तदा चन्द्रो भवतीति ॥

हि. भा.—वर्षादि शुद्धिज्ञान उस पर से अहर्गणज्ञान, अहर्गण से रविज्ञान, रवि और क्षयशेष से चन्द्रज्ञान जो करते है वे तन्त्रज्ञ हैं ॥

इसके उत्तर के लिए उपपत्ति

शुद्धिदिनज्ञान तो पहले किया जा चुका है । इससे (शुद्धिदिन से) लघ्वहर्गण ज्ञान करते हैं।

लघ्वहर्गण में अवम के लिये ७०३ चान्द्र दिनों में ११ अवम स्वल्पान्तर से मानकर अनुपात करते हैं यथा वर्षादिगतति = इष्टति — अधिशेति इसको ग्यारह से गुणकर ७०३ से भाग देकर जो हो उसमें वर्षादि क्षयशेष जोड़ने से अवम होता है।

$$\frac{११ \text{ (इष्टति—अधिशेति)}}{७०३} + \frac{वक्षशे}{६६००} = \text{अवम}$$

$$= \frac{११ \text{ (इति—अधिशेति)} + \frac{७०३ \text{ वक्षशे}}{६६००}}{७०३}$$

$$= \frac{११ \text{ (इति—अधिशेति)} + \frac{वक्षशे \times ११}{६६००} + \frac{६६२ \text{ वक्षशे}}{६६००}}{७०३}$$

$$= \frac{११ \left\{ इति — \left(अधिशेति — \frac{वक्षशे}{६६००} \right) \right\} + \frac{वक्षशे. ६६२}{६६००}}{७०३}$$

$$= \frac{११ \text{ (इति—शुद्धि)} + \frac{वक्षशे. ६६२}{६६००}}{७०३}$$ इसके शोधित चान्द्र (शुद्धिरहित चान्द्र) में

घटाने से लघ्वहर्गण होता है। इस पर से रविज्ञान सुलभ ही है।

अब मध्यम रवि और क्षय शेष से मध्यम चन्द्रानयन करते हैं। इष्ट दिन के सूर्योदय काल में सावयव चान्द्रदिन $=$ इति $+\frac{\text{क्षयशे}}{\text{युक्रुद}}$ इसको बारह से गुणने से रवि और चन्द्र के अन्तरांश होते हैं, इसको रवि में जोड़ने से मध्यम चन्द्र होते हैं ।।१९।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह

द्युगणाद् ग्रहा दिनाद् वा समाधिपसावनद्युमासेशौ ।
यः सो गणको होरेशं वारादि वेत्ति निजविषये ।।२०।।

स्पष्टार्थम् ।

एतेषामुत्तरार्थमुपपत्तयः ।

दिनत्रिंशतैकः सावनमासो भवति । अतोऽहर्गणस्त्रिंशद्भक्तस्तदा लब्धा गताः सावनमासास्ते द्विगुणिताः कार्या यतस्त्रिंशद्दिनात्मके सावनमासे सप्तभक्ते द्वयमवशिष्यते वर्त्तमानमासेशार्थं सैकाः कार्यास्ततः सप्तभक्ते रव्यादिमासमाधिपतिर्भवति, यतः कल्यादौ मासपतिरर्क एवाऽऽसीदतो रव्यादितो गणना समुचितेति । तथा च ३६० दिनैरेकः सावनवत्सरः कल्पितः प्राचीनैस्ततस्तैर्दिनैर्भक्तोऽहर्गणो लब्धा गतवत्सरास्ते त्रिगुणिता यतः ३६० दिनात्मके एकस्मिन् सावनवर्षे सप्तभक्ते त्रयमवशिष्यते वर्त्तमानवर्षपत्यर्थं त्रिसंगुणाः सैकाश्च कार्या इति ।

होरेशज्ञानार्थम्

प्रथमा होरा दिनपतेर्द्वितीया दिनपतेः षष्ठस्यैवं षष्ठः षष्ठःकालहोरेशो भवति, अतो द्वयोर्होरेशयोरन्तरं पञ्च तेन होराः पञ्चगुणाः सर्वे वारा भवन्ति यदि होराः सावयवास्तदा वर्त्तमानहोरेशानयनार्थं ते पञ्च गुणाः सैकाः कार्यास्ततः सप्तभक्ते दिनपाद् होरेशो भवतीति । अत्र चतुर्वेदाचार्येणार्कोनलग्नभागाः पञ्चदशभक्ता होरा भवन्तीति काललवान् सार्धद्विघटीभवान् पञ्चदशलवान् प्रकल्प्य क्षेत्रांशान्तरैरर्कलग्नान्तरभागैरनुपातः कृतः स च गणितयुक्तितो न युक्त इति शेषं स्पष्टमिति ।। २० ।।

हि. भा.—श्लोक का अर्थ स्पष्ट है ।

इन प्रश्नों के लिए उपपत्ति ।

तीस दिनों का एक सावन मास होता है इसलिए अहर्गण को तीस से भाग देने से लब्ध गत सावन मास होता है, उनको (गत सावन मास को) दो से गुण देना चाहिए क्योंकि तीस दिनात्मक सावन मास में सात से भाग देने से दो शेष रहता है । वर्त्तमान मासपति के लिए उसमें एक जोड़कर सात से भाग देने से रवि आदि मासाधिपति होते हैं । कल्याणादि में मासपति रवि थे इसलिए रवि आदि गणना समुचित है ।

तथा ३६० दिनों के एक सावन वर्ष प्राचीनों ने माना है इसलिए उन दिनों से

अहर्गण में भाग देने से लब्ध गतवर्ष होते हैं इनको तीन से गुणना चाहिए क्योंकि ३६० दिनात्मक एक वर्ष में सात से भाग देने से शेष तीन रहता है। वर्त्तमान वर्षपति के ज्ञान के लिए तीन से गुण कर एक जोड़ना चाहिए।

होरेश ज्ञान के लिए विधि

प्रथम होरा दिनपति की होती है। द्वितीय होरा दिनपति से छठे ग्रह की होती है इस तरह छठे-छठे ग्रह काल होरेश होते हैं इसलिए दो काल होरेश के अन्तर पांच है। अतः होरा को पांच से गुणने से सब वार होते हैं यदि होरा सावयव होता हो तो वर्त्तमान होरेश के लिए उसको पांच से गुणा कर एक जोड़ देना चाहिए तब सात से भाग देने से दिनपति क्रम से होरेश होते हैं। यहां चतुर्वेदाचार्य रवि और लग्न के अन्तरांश को पन्द्रह से भाग देकर होरा कहते हैं। अढ़ाई दण्ड से उत्पन्न कालांश को पन्द्रह अंश मानकर लग्न और रवि के अन्तरांश से अनुपात किया है जो गणित युक्ति से ठीक नहीं है। शेष विषय स्पष्ट है ॥ २० ॥

इदानीमन्यौ प्रश्नावाह।

प्रतिकक्ष्यातः खचरान् तस्माद्देशान्तरं स्फुटं वेत्ति।
यः सोऽब्धिमेखलायां भुवि तन्त्रविदां भवेन्मुख्यः ॥ २१ ॥

वि. भा.—यः प्रतिकक्ष्यातः (कक्ष्याप्रकारात्) खचरान् (ग्रहान्) स्फुटं देशान्तरं वेत्ति (जानाति) सः अब्धिमेखलायां भुवि (समुद्रवेष्टितपृथिव्यां) तन्त्रविदां (ज्योतिःशास्त्रज्ञानां) मुख्यः (प्रधानः) भवेदिति ॥ २१ ॥

अत्रोत्तरार्थमुपपत्तिः।

यदि कुदिनैः खकक्षा योजनानि लभ्यन्ते तदैकेन दिनेन किमित्यनुपातेन योजनात्मिका ग्रहगतिस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ ततोऽनुपातो यद्येकदिनेनेयं योजनात्मिका ग्रहगतिस्तदाऽहर्गणेन किमित्यनुपातेनागतानि गतयोजनानि $= \frac{\text{योजनात्मकग्रग} \times \text{अहर्गण}}{१}$ अत्र योजनात्मकग्रहगतेरुत्थापनेन

$$\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}} = \text{गतयोजन}$$

$$\text{तदा} \quad \frac{\text{ग्रहभगण} \times \text{गतयो}}{\text{खकक्षा}} = \text{भगणादि मध्यमग्रह।}$$

$$\frac{\text{गतयोजन}}{\frac{\text{खकक्षा}}{\text{गहभगण}}} = \frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}} = \text{भगणादि मध्यमग्रहः।}$$

ततो ग्रहज्ञानेन देशान्तरज्ञानं सुलभमेवेति ॥ २१ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते मध्माधिकारे प्रश्नविधिर्नामको नवमोध्यायः समाप्तः ॥

हि. भा.—जो कक्षा प्रकार से ग्रहों को जानता है उस पर से (ग्रह पर से) स्पष्ट देशान्तर को जानता है। वह समुद्रवेष्टित पृथिवी में ज्योतिषियों में प्रधान है ॥ २१ ॥

इनके उत्तर के लिए उपपत्ति।

यदि कुदिन में खकक्षा योजन पाते तो एक दिन में क्या इस अनुपात से एक दिन की यह योजनात्मकगति आयी, $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{कुदि}}$ = योजनात्मकगति। अब इस पर से अनुपात करते हैं कि यदि एक दिन में यह योजनात्मक गति पाते हैं तो अहर्गण में क्या इस अनुपात से गत योजन प्रमाण आई, $\frac{\text{योजनात्मग्रग} \times \text{अहर्गण}}{१}$ = गतयोजन = $\frac{\text{खकक्षा} \times \text{अहर्गण}}{\text{कुदि}}$
तब अनुपात करते हैं कि यदि खकक्षा योजन में ग्रहभगण पाते हैं तो गतयोजन में इस अनुपात से भगणादि मध्यम ग्रह आते हैं।

$$\frac{\text{ग्रभगण} \times \text{गतयो}}{\text{खकक्षा}} = \text{भगणादि मध्यमग्रह} = \frac{\text{गतयो}}{\frac{\text{खक}}{\text{ग्रभगण}}} = \frac{\text{गतयोजन}}{\text{ग्रहकक्षा}}$$

ग्रह से देशान्तर ज्ञान सुलभ है ॥ २१ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में मध्यमाधिकार में प्रश्नविधि नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ ॥



दशमोऽध्यायः

अथ दूषणानि

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तिदूषणकथनार्थमवतरणमाह ।

दिव्यशास्त्रमपहाय यदन्यत्प्राह जिष्णुतनयो निजबुद्ध्या ।
तस्य शास्त्रलवमधीततयोऽहं दूषणानि कतिचित्कथयामि ॥१॥

वि. भा.—जिष्णुतनयः (ब्रह्मगुप्तः) दिव्यशास्त्रं (देवादिप्रणीतं शास्त्रं) अपहाय (त्यक्त्वा) निजबुद्ध्या (स्वबुद्ध्या) अन्यद्यच्छास्त्रं (भिन्नं यच्छास्त्रं) प्राह (कथितवान्) तस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) शास्त्रलवं (शास्त्रांशं) अधीततया (अध्ययनत्वेन) अहं (वटेश्वरः) कतिचिद्दूषणानि कथयामि (ब्रह्मगुप्तप्रणीतग्रन्थस्यांशमध्ययनत्वेनाहं तत्रत्यानि कियन्ति दूषणानि कथयिष्ये) ॥१॥

हि. भा.—ब्रह्मगुप्त दिव्यशास्त्र (देव-मुनि प्रणीत शास्त्र) को छोड़ कर अपनी बुद्धि से जो भिन्न शास्त्र कहा है उस शास्त्र के कुछ अंश को पढ़ने के कारण मैं कुछ दोषों को कहता हूं ॥१॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तयुगचरणखण्डनं निर्दिशति

जिष्णुपुत्रकथितैर्युगाङ्घ्रिभिः खेचरा नहि यतः स्वपर्ययैः ।
भुञ्जते सममतो युगांघ्रयः श्रीमदार्यभटकीर्त्तिताः स्फुटाः ॥२॥

वि. भा.—यतः (यस्मात्कारणात्) जिष्णुपुत्रकथितैः (ब्रह्मगुप्तोक्तैः) युगाङ्घ्रिभिः (युगचरणैः) खेचराः (ग्रहाः) स्वपर्ययैः समं (स्वभगणैस्तुल्यं) नहि भुञ्जते (नहि भोगं कुर्वते) अतः (अस्मात्कारणात्) श्रीमदार्यभटकीर्त्तिताः (श्रीमदार्यभटकथिताः) युगाङ्घ्रयः (युगपादाः) स्फुटाः (सूक्ष्माः) अत्र ग्रन्थे गृह्यन्ते ॥२॥

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तोक्तयुगपदा अधोलिखिताः सन्ति

युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता ।
द्विगुणौ द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति ॥

एतदनुसारेण कृतयुगपादः=१७२८००० त्रेतायुगपादः=१२९६०००, द्वापरयुगपाद=८६४०००, कलियुगपादः=४३२०००, एते युगपादाः सौरवर्षमानेन पठिताः सन्ति ।

ब्रह्मसिद्धान्ते ब्रह्मणा युगपादा अधोलिखितक्रमेण कथिताः—

दिव्याब्दानां सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम् ।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः ।
क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः ।

एतदनुसारेण चतुर्युगमानम्=१२००० दिव्यवर्षाणि
कृतयुगचरणमानम्= ४८०० दिव्यवर्षाणि
त्रेतायुगचरणमानम्= ३६०० "
द्वापर " " " = २४०० "
कलि " " " = १२०० "

यदि दिव्यवर्षाणि ३६० एभिर्गुण्यन्ते तदा सौरवर्षाणि भवन्ति तथाकृते सौरवर्षात्मकानि कृतादियुगचरणमानानि

कृतयुचरणमानम्=४२०० × ३६०=१७२८००० सौरवर्षाणि
त्रेतायुगचरणमानम्=३६०० × ३६०=१२९६००० "
द्वापर " " " =२४०० × ३६०=८६४००० "
कलि " " " =१२०० × ३६०=४३२००० "

ब्रह्मगुप्तेन भास्कराचार्येण चेमान्येव युगचरणमानानि स्वस्वसिद्धान्ते कथितानि । ब्रह्मगुप्तोक्तानि युगचरणमानानि, भास्कराचार्योक्तयुगचरणमानार्थं निम्नलिखितानि पद्यानि सन्ति । यथा—

'खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः । इत्यादि ब्रह्मगुप्तेन भास्कराचार्येण च सौरवर्षमानेन युगचरणमानानि कथितानि ब्रह्मणा दिव्यवर्षमानेन सर्वेषु सामञ्जस्यमस्ति न कश्चिद्दोषः । सूर्यसिद्धान्तेऽपि ब्रह्मकथितसदृशान्येव दिव्यमानेन युगचरणमानानि कथितानि सन्ति । यथा—

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः ।
सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥

मनुस्मृतावपि दिव्यमानेन युगचरणानि पठितानि सन्ति । यथा—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ।
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥

ब्रह्मसिद्धान्तोक्तयुगचरणमानान्येव सूर्यसिद्धान्तोक्तानि मनुस्मृत्युक्तानि च युगचरणमानानि सन्ति तानि दिव्यवर्षमानेन कथितानि सन्ति, ब्रह्मगुप्तकथितानि भास्करकथितानि च युगचरणमानानि सौरवर्षमानेनैतावता ब्रह्मगुप्तोक्तौ न कश्चिद्दोषः सर्वेषु सामञ्जस्यमेवास्ति, मन्मते ब्रह्मगुप्तोक्तं समीचीनमेवास्तीति ॥

युगचरणसम्बन्धे यस्याऽर्यभटस्य मतं स्वीकृत्य ग्रन्थकारो ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति, तस्यैवार्यभटमतस्य खण्डनं ब्रह्मगुप्तेनेत्थं कृतं, यथा—

युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानि कृतयुगादीनि।
यदभिहितवान् न तेषां स्मृत्युक्तसमानमेकमपि ।।

महायुगस्य चतुर्थांशतुल्यानि कृतयुगादीनि चत्वारि युगचरणमानानि कथ्यन्ते आर्यभटेन, तेषु युगचरणेष्वेकमपि स्मृत्युक्तयुगचरणसमं नास्ति, मनुस्मृत्यादौ कृतादयो युगपादाः समानाः, अत आर्यभटोक्ताः समा युगपादाः स्मृतिविरुद्धाः, तथा चार्यभटः 'युगपादा ग ३ च' इति पौलिशसिद्धान्ते च दिव्यमानेन कृतादीनामब्दा मनुस्मृत्यादिवत्पठिताः ।

तद्वाक्यं च—

अष्टाचत्वाशित् पादविहीना क्रमात्कृतादीनाम्।
अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्ययुगं तदेकत्वम् ।।

ब्रह्मगुप्तमतस्य खण्डनं वटेश्वरेण यत्कृतं तद्दुराग्रहपूर्णमिति ।।

हि. भा.—जिस कारण से ब्रह्मगुप्तकथित युगचरणवश अपने अपने भगण को पूरा भोग नहीं करते हैं इसलिये आर्यभट कथित स्पष्ट युगचरण मैं ग्रहण करता हूँ।

उपपत्ति

ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त कथित युगचरण अधोलिखित है—

युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता।
द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति ।।

इसके अनुसार कृतयुगचरण मान=१७२८०००, त्रेतायु=१२९६०००, द्वापरयु=८६४०००, कलियुच=४३२०००, ये सौरवर्षमान से पठित हैं। ब्रह्मसिद्धान्त में ब्रह्मा दिव्यवर्षमान के युगचरणों को कहते हैं। जैसे—

दिव्याब्दानां सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम्। इत्यादि

इस नियम से चतुर्युगमान=१२००० दिव्यवर्ष

कृतयुगचरण=४८००, त्रेतायुच=३६००, द्वायुच=२४००, कयुच=१२०० यदि दिव्यवर्ष को ३६० इससे गुणते हैं तो सौरवर्ष हो जाते हैं अतः सौरवर्षमान से कृतयुच=४८००×३६० = १७२८०००, त्रेयुच=१२९६०००, द्वायुच = २४००×३६०=८६४०००, कलियुच= १२००×३६०=४३२०००

ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने अपने अपने सिद्धान्त में ये ही युगचरणमान पठित किये हैं। ब्रह्मगुप्त कथित युगचरणमान पहले ही कहे जा चुके हैं। भास्कराचार्य लिखित युगचरणमान निम्नलिखित हैं।

'खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः । क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः ।'

इत्यादि ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने सौरवर्षमान से युगचरण कहे हैं और ब्रह्मा दिव्यमान से इससे कुछ भी दोष नहीं है। सब में सामञ्जस्य है।

सूर्यसिद्धान्त में भी ब्रह्मकथित के सदृश ही है। यथा—

"तद्द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।" इत्यादि

मनुस्मृति में भी दिव्यमान से युगचरणमान कहे गये हैं। यथा—

"चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम्।" इत्यादि

युग चरण के विषय में जिन आर्यभट के मत को स्वीकार कर ग्रन्थकार ब्रह्मगुप्त मत के खण्डन करते हैं उन्हीं आर्यभट मत का खण्डन ब्रह्मगुप्त इस प्रकार करते हैं। यथा—

"युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानि कृतगुगादीनि।" इत्यादि

महायुग के चतुर्थांश के बराबर कृतयुगादि चारों युगचरण के मान बराबर आर्यभट कहते हैं उनके कथित युगचरणों में एक भी स्मृतिकथित युगचरण के तुल्य नहीं है, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में सब युग चरण समान नहीं हैं इसलिये आर्यभटोक्त समान चारों युगचरण स्मृति के विरुद्ध हैं। जैसे आर्यभट का वाक्य है—'युगपादा ग ३ च' इति।

पौलिशसिद्धान्त में दिव्यमान से कृतादि युगचरणों के वर्ष मनुस्मृति आदि की तरह पठित हैं उनके वाक्य ये हैं।

"अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात्कृतादीनाम्। इत्यादि

ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन वटेश्वर जो करते हैं वह दुराग्रहपूर्ण है॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तयुगं खण्डयते।

स्मार्तमस्य युगमेव चेत्कथं नो रवेरुपरि शीतदीधितिः।
तत्स्मृत्युक्तवदिहापि नेष्यते हन्त ! सापि युगकल्पना मृषा॥ ३॥
कल्पमेव युगमुच्यते त्वया तत्कथं युगमपेशलं न ते।
प्राप्यते युगमिदं त्वयैव नो त्वत्कृतं मुनिगणैरसततः॥ ४॥

वि. भा.—चेत् (यदि) अस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) युगं (महायुगं) स्मार्तम् (स्मृत्युक्तं) तदैतन्मते शीतदीधितिः (चन्द्रः) रवेरुपरि (सूर्यादुपरि) कथं नो ? "स्मृतिकारैः सूर्यादुपरि चन्द्रोऽस्तीति कथ्यते, स्मृत्युक्तयुगमानस्वीकरणे ब्रह्मगुप्तमतेऽपि सूर्यादुपरि चन्द्रो भवितुमर्हति परं तथा तत्कृतग्रन्थे नास्तीति दोषः" यदि स्मृत्युक्तवत् (स्मृत्युक्तानुसारम्) इह (अस्मिन् ब्रह्मगुप्तग्रन्थे) नेष्यते (न कथ्यते) तदा हन्त ! (खेदे) सापि पूर्वोक्तापि युगकल्पना मृषा (व्यर्था) जाता यदि त्वया (ब्रह्मगुप्तेन) कल्पमेव युगं (महायुगं) उच्यते (कथ्यते) तदा ते (तव) तत् युगं (कथितमहायुगं) अपेशलं (अतथ्यं) कथं न, इदं युगं त्वयैव प्राप्यते (लभ्यते)

त्वत्कृतं ग्रहभगणादिकं मुनिगणैः नो प्राप्यते ततः (तस्मात् कारणात्) त्वत्कृतं असत् (अशोभनम्) इति ॥ ४ ॥

हि. भा.—यदि ब्रह्मगुप्त कथित युगमान स्मृति कथित युगमान है तब ब्रह्मगुप्त के मत से चन्द्रमा सूर्य से ऊपर क्यों नहीं है, अर्थात् स्मृतिकार चन्द्रमा को सूर्य से ऊपर मानते हैं । स्मृति कथित युगमान स्वीकार करने से ब्रह्मगुप्त के मत में भी सूर्य से चन्द्रमा को ऊपर होना चाहिये पर वैसा ब्रह्मगुप्तकृत ग्रन्थ में नहीं है, यह दोष है. यदि इस ग्रन्थ (ब्रह्मसिद्धान्त) स्मृतिकथित युगमान नहीं कथित हैं तब तो युगकल्पना ही करना मिथ्या है । यदि कल्प ही को आप युग कहते हैं तब तो आपका युग अतथ्य क्यों नहीं है । इस युग को आप ही प्राप्त करते हैं मुनिगण इसको नहीं प्राप्त करते हैं अर्थात् मुनिगण इस युग को नहीं लेते हैं, जिसको आप लेते हैं, इसलिये मुनिगणों के साथ विरोध होने के कारण आपका युग असत् है ॥ ४ ॥

पुनरपि ब्रह्मगुप्तोक्तयुगचरणान् निराकरोति

पुलिश रोमक सूर्य पितामह प्रकथितैर्मृतकल्पयुगाङ्घ्रिभिः ।
नहि समाः खलु जिष्णुसुतेरिताः कथमपीह यतो न ततः स्फुटाः॥ ५ ॥

वि. भा.—यतः (यस्मात्) पुलिश रोमक सूर्य पितामहप्रकथितैः (पुलिश-रोमकादिग्रन्थकारप्रोक्तैः) मृतकल्पयुगाङ्घ्रिभिः (मृतप्राययुगचरणैः) समाः (तुल्याः) जिष्णुसुतेरिताः (ब्रह्मगुप्तकथिता युगाङ्घ्रयः) कथमपि नहि सन्ति ततः (तस्मात् कारणात्) स्फुटाः (सूक्ष्माः) नेति । अर्थाद्यद्यपि पुलिशरोमकसूर्यादिकथिता युगाङ्घ्रयो मृतप्रायाः सन्ति तथापि तत्तुल्या अपि ब्रह्मगुप्तोक्तयुगाङ्घ्रयो न सन्ति तेनैव कारणेन ब्रह्मगुप्तोक्तयुगाङ्घ्रयः सूक्ष्मा न सन्ति । यदि पुलिशरोमकादि-कथितयुगाङ्घ्रयो मृतकल्पाः सन्ति तदा तत्तुल्यब्रह्मगुप्तोक्त युगचरणेऽपि तत्र सूक्ष्मताभावोऽत आचार्यकथनमिति शोभनं न प्रतिभाति । सूर्यकथितयुगचरण एव ब्रह्मगुप्तेन स्वीकृतास्तदा कथं सूर्यकथितयुगचरणतुल्या ब्रह्मगुप्तोक्ता युगचरणा न सन्तीत्याचार्येण कथ्यन्ते । पितामहसिद्धान्तेनापि न कश्चिद्विरोधोऽस्तीति ॥ ५ ॥

हि. भा.—जिस हेतु से पुलिश रोमक सूर्य पितामह ग्रन्थकारों ने जिन मृतप्राय (मुर्दा के बराबर) युग चरणों को कहे हैं उनके बराबर ब्रह्मगुप्त कथित युगचरण नहीं है, इस कारण से उनके कथित युगचरण स्पष्ट (सूक्ष्म) कथमपि नहीं हैं अर्थात् यद्यपि पुलिशरोमक सूर्यादि कथित युगचरण मुर्दा के बराबर हैं तथापि उनके बराबर भी ब्रह्मगुप्तोक्त युगचरण नहीं है इसलिये सूक्ष्म नहीं है । यहां मुझे कहना है कि जब पुलिश रोमकादि आचार्य कथित युगचरण मृतप्राय है तब तो ब्रह्मगुप्तोक्त युगचरण उनके बराबर होने पर भी सूक्ष्म नहीं हो सकता, इसलिये मुझे आचार्य का यह कथन ठीक नहीं मालूम पड़ता है, सूर्य कथित युगचरणों को ही ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ में लिखा है तब वटेश्वराचार्य क्यों कहते हैं कि सूर्योक्त युग-चरण के बराबर ब्रह्मगुप्तोक्त युगचरण नहीं है । पितामहसिद्धान्त से भी ब्रह्मगुप्तोक्ति में कोई विरोध होता है ॥ ५ ॥

ब्रह्मगुप्तोक्तसन्ध्यामानं खण्डयति

**मनुरपि यदि सन्ध्ययैकया स्याद् द्वितयमसद् द्वयमेव चेन्न चैका ।
निजमतिपरिकल्पितयाश्च सन्ध्या न च मनुना पुलिशेन वा स्मृतास्ताः ॥६॥**

वि. भा.—यदि मनुरपि (मनुप्रमाणमपि) एकया सन्ध्यया सिद्धोऽस्ति भवन्मते तदा द्वितयं (युगचरणप्रमाणं मनुप्रमाणं च) असत् (अशोभनम्) द्वयमेव चेच्छोभनं तदैका सन्ध्या न शोभना अर्थात्सन्ध्याद्वयं भवति तत्र भवद्भिर्ब्रह्मगुप्तैः "युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः" इत्यादिना सन्ध्याद्वयस्य ग्रहणं न कृतं केवलमेकस्या एव सन्ध्याया ग्रहणं क्रियते, युगचरणेषु मन्वन्तरादिषु सन्ध्याद्वयप्रमाणं योज्यते, एकस्याः सन्ध्याया ग्रहणे दोष इति, चेद्भवन्मते द्वयमपि "युगचरणमानं मनुमानञ्च" शोभनं तदैकसन्ध्याग्रहणं न युक्तं सन्ध्याद्वयमानयोजनेन तन्मानस्य समीचीनत्वात् । निजमतिपरिकल्पिता याः सन्ध्याः (स्वबुद्धिकल्पिताः याः सन्ध्याः) ता मनुना पुलिशेन वा स्मृताः (कथिताः) अर्थादिताः सन्ध्या भवत्कल्पिता एव नान्यैर्मन्वादिभिः कथिता इति ॥६॥

हि. भा.—यदि मनु का प्रमाण एक सन्ध्या से आपके मत से सिद्ध है तब दोनों (युग-चरण और मनुप्रमाण ठीक नहीं हैं । यदि दोनों (युगचरण और मनुमान) ठीक है तो एक सन्ध्यामान स्वीकार करना ठीक नहीं है । सन्ध्या दो होती हैं । परन्तु 'युगस्य दशमो भागश्च-तुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः' इत्यादि से आप (ब्रह्मगुप्त) ने दोनों सन्ध्यामान नहीं ग्रहण किया, केवल एक ही सन्ध्यामान ग्रहण किया है । परन्तु युग-चरणों में और मनु प्रमाण में दोनों सन्ध्यामान जोड़ा जाता है, एक सन्ध्यामान जोड़ने से दोष होता है, यदि आपके मत से दोनों (युगचरणमान और मनुमान) ठीक है तो एक सन्ध्याग्रहण करना ठीक नहीं है । आप अपनी बुद्धि से जिस सन्ध्यामान की कल्पना करते हैं वह सन्ध्यामान न मनु से कहा गया है, और न पुलिशाचार्य से कहा गया है, अतः आपसे कथित सन्ध्यामान ठीक नहीं है ॥ ६ ॥

इदानीं पुनरपि युगचरणान् निराकरोति ।

**चरणश्चतुरंशकः स्मृतो यो बत लोकेन दशांशकः क्वचित् ।
युगकल्पसमानवाच्यतानयतस्तत्स्फुटताभितः कृता ॥ ७ ॥**

वि. भा.—चतुरंशकः (चतुर्थांशः) चरणे यः स्मृतः (कथितः) बत (अहो !) लोकेन (केनापि जनेन) क्वचित् (कुत्रचित्स्थले) दशांशकः (दशमांशः) कथितः । युगकल्पसमानवाच्यतानयतः (युगकल्पयोस्तुल्यत्वस्वीकारजनितदोषन्यायेन) अभितः (सर्वतोभावेन) तत्स्फुटता कृता (तत्सूक्ष्मता कृतेति) अर्थाद्युगस्य दशमो भाग इत्यादिना महायुगदशांशवशेन यानि युगचरणान्यभिहितानि तैर्युगकल्पतुल्यता स्वीकारजनितदोषस्य स्पष्टीकरणं कृतं तेन ब्रह्मगुप्तेन । एकस्य दोषस्य युगकल्पयोस्तुल्यतास्वीकरणजनितस्य दोषान्तरेण महायुग-

दशांशवशेन कथितयुगचरणजनितदोषेण परिमार्जनं कृतमिति ब्रह्मगुप्तो पर्याक्षेपः। वटेश्वराचार्येण कथ्यते यन्महायुगस्य चतुर्थांशतुल्यान्येव युगचरणानि भवितुमर्हन्ति तत्र ब्रह्मगुप्तेन दशांशवशेन युगचरणान्यभिहितानि इति तन्मते दोष एतेन दोषान्तरेण युगकल्पयोस्तुल्यत्वकल्पनाजनितदोषस्य स्पष्टीकरणं ब्रह्मगुप्तेन क्रियते इत्याक्षिपतीति ब्रह्मगुप्तेन यस्यार्यभटमतस्य खण्डनं "युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानिष्टकृतयुगादीनि' यदभिहितवान्न तेषां स्मृत्युक्तसमानमेकमपि" श्लोकेनानेन क्रियते तदेवार्यभटमतं स्वीकृत्य वटेश्वरेण ब्रह्मगुप्तमतं खण्ड्यते महदाश्चर्यमिति ॥

हि. भा.—चतुर्थांश चरण को कहते हैं। युग चरण याने युग चतुर्थांश इसको कहीं पर दशांश कहा गया है इससे युग और कल्प के तुल्यता स्वीकार करने में जो दोष था उसका स्पष्टीकरण किया गया है ब्रह्मगुप्त से, अर्थात् युगचरण महायुग का चतुर्थांश होना चाहिये परन्तु 'युगस्य दशमो भागः' इत्यादि से ब्रह्मगुप्त ने जो युगचरणमान कहे हैं ठीक नहीं है। एक दोष तो ब्रह्मगुप्त में यह था कि युगमान और कल्पमान में तुल्यता स्वीकार करना, दूसरे दोष "युगस्य दशमो भागः" इत्यादि से "युगचरणों का मान स्वीकार करना" द्वारा इस दोष का स्पष्टीकरण करते हैं अर्थात् एक दोष का स्पष्टीकरण दूसरे दोष द्वारा ब्रह्मगुप्त ने किया है यह ब्रह्मगुप्त के ऊपर आक्षेप है। ब्रह्मगुप्त जिस आर्यभटमत का खण्डन "युगपादानार्यभटश्चत्वारि समानिष्टकृतयुगादीनि। यदभिहितवान्न तेषां स्मृत्युक्तसमानमेकमपि" इस श्लोक द्वारा करते हैं उसी आर्यभटमत को स्वीकार कर वटेश्वराचार्य ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन करते हैं यह बहुत आश्चर्य है ॥ ७ ॥

इदानीं ब्रह्मोक्तसृष्टिप्रलयौ न समीचीनाविति निर्दिशति

जगदुत्पत्तिप्रलयौ कमलजनित उवाच यत्तदसत्।
वेदानां नित्यत्वाच्छ्रुति वाक्यानां गतिर्भवति ॥ ८ ॥

वि. भा.—कमलजनितः (ब्रह्मगुप्तः) जगदुत्पत्तिप्रलयौ यदुवाच (यत्कथितवान्) तदसत् (तदशोभनम्) वेदानां नित्यत्वात् (अपौरुषेयत्वात्) श्रुतिवाक्यानां (वेदोक्तवचनानां) गतिर्भवति (आस्था भवति) वेदाः पुरुषकृता न सन्ति तेन वेदोक्तवचनेषु लोकानामास्था भवतीति।

उपपत्तिः

"ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि प्रतिकल्पं चराचरम्। कृताद्रिवेदैर्दिव्याब्दैः शतघ्नैः सृज्यते मया" इत्यादि ब्रह्मोक्तस्य खण्डनं क्रियतेऽनेन वटेश्वराचार्येण, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदि" त्यादि वेदोक्तवाक्यमाश्रित्याऽचार्येण कथ्यते यद्ब्रह्मदिनादावेव सर्वेषां भूस्थानामाकाशस्थानां जीवानां सृष्टिर्भवति तथा तद्दिनान्ते लयश्च भवति, ब्रह्मणा कथ्यते यद्ब्रह्मदिनाद्यनन्तरं ४७४०० दिव्याब्देषु व्यतीतेषु ग्रहादीनामाकाशस्थानां सृष्टिर्भवति। वेदवाक्ये इति तु लिखितं न वर्त्तते यद्ब्रह्मदिनादावेव ब्रह्मद्वारा ग्रहादिसृष्टिर्भवति। ब्रह्मणा यत्कथ्यते सूर्यसिद्धान्तेऽपि तथैवास्ति। यथा

"ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ॥

मन्मते तु ब्रह्मकथनं समीचीनमेवास्ति वेदोक्तवचनस्य चर्चाऽऽचार्येण या कृता ब्रह्मोक्तौ तावतां न काचिदापत्तिरिति विज्ञै विवेचनीयमिति ।। ८ ।।

हि. भा.—ब्रह्मा ने संसार की उत्पत्ति और प्रलय जो कहा है वह ठीक नहीं है, वेदों के नित्यत्व के कारण वेद कथित वाक्यों में गति (आस्था) होती है ।। ८ ।।

उपपत्ति

वटेश्वराचार्य "ग्रहर्क्ष देव दैत्यादि प्रतिकल्पं चराचरम् । कृताद्रिवेदैर्दिव्याब्दैः शतघ्नैः सृज्यते मया" इत्यादि ब्रह्मोक्त का खण्डन करते हैं। आचार्य का कहना है कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इत्यादि वेदोक्त वचन से ब्रह्मदिनादि में भूस्थित और आकाशस्थित ग्रहादियों की सृष्टि होती है और ब्रह्मदिनान्त में उन सब का लय होता है" ब्रह्मा का कहना है कि ब्रह्मदिनादि के बाद ४७४०० इतने दिव्य वर्ष बीतने पर ग्रहादि की सृष्टि होती है, वेदवाक्य में यह तो लिखा हुआ नहीं है कि ब्रह्मदिनादि में ग्रहादि सृष्टि होती है। ब्रह्मा जो कहते हैं सूर्यसिद्धान्त में भी वैसा ही है। यथा—

ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि-सृज्यतेऽस्य चराचरम् ।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ।।

हमारे विचार से ब्रह्मोक्त सृष्टि प्रलय ठीक ही है, वेदोक्त वचन से उसमें कुछ भी दोष नहीं आता है इस विषय को विज्ञ लोग स्वयं भी विचार करें ।। ८ ।।

इदानीं ब्रह्मोक्तदिनमासवर्षहोरापतीन् खण्डयति

शीघ्रक्रमान्निरुक्ता होरादिनमासवर्षपा धात्रा ।
मन्ददिनार्कादिर्वेत्ति नवा तत्स्वरूपमपि ।। ९ ।।

वि. भा.—धात्रा (ब्रह्मणा) मन्ददिनार्कादिः (मन्दगतिग्रहरव्यादेः) शीघ्रक्रमात् (शीघ्रगतिग्रहक्रमेण) होरादिनमासवर्षपाः (होरेशदिनेशमासेशवर्षेशाः) निरुक्ताः (कथिताः)तत्स्वरूपमपि (होरादीनां स्वरूपमपि) न वेत्ति (न जानाति) ।।९।।

उपपत्तिः

ब्रह्मसिद्धान्ते होरेशादि ज्ञानार्थमाचार्यकथित (शीघ्रक्रमादित्यादि) क्रमो न दृश्यते किन्त्वार्यभटीये आर्यभटेन होरेशादि ज्ञानार्थमयं क्रमोऽङ्गीकृतो यथा तद्वाक्यम् ।

सप्तैते होरेशाः शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्राः ।
शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयाद् दिनपाः ।।

शीघ्रक्रमः कालहोरायामपि । शीघ्रक्रमाच्चतुर्था एव दिनपाः । तच्च कालहोरानुसारेणैव दिनाधिपत्यं, यतोऽहोरात्रे चतुर्विंशतिः कालहोराः तासु सप्तभिः क्षयितासु तिस्र एवावशिष्यन्ते ततश्चतुर्विंशत्याः परायाः परेद्युरादिभूताया आधिपत्यं शीघ्रक्रमाच्चतुर्थस्यैव हि युज्यत इति, आदिकालहोराधिपतेरेव दिनाधिपत्याच्चतुर्थ एव दिनाधिपतिः परेद्युः । एवं मासाधिपत्यमपि, वर्त्तमानसावनमासे य आद्यः कालहोराधिपः (तस्यैव) । एवमब्दाधिपतिश्च ।

अतएवाह सूर्यसिद्धान्ते

"लब्धोनरात्ररहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः ।
सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः ॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ।
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥

यो हि विषयो ब्रह्मसिद्धान्ते नास्ति तत्खण्डनमाचार्येण क्रियते परन्तु तेषामेव (शीघ्रक्रमाद्धोरेशादीनां) आर्यभटोक्तानां खण्डनं न क्रियते इति महदाश्चर्यम् ॥९॥

हि. भा.—मन्ददिन रव्यादि से शीघ्रगतिग्रह क्रम से होरेश, दिनेश, वर्षेश ब्रह्मा से जो कहा गया है वे उनके स्वरूप को भी नहीं जानते हैं ॥ ९ ॥

उपपत्ति

ब्रह्मसिद्धान्त में होरेशादि ज्ञान के लिये 'शीघ्रक्रमादित्यादि' क्रम नहीं देखते हैं किन्तु आर्यभटीय में आर्यभट ने होरेशादि ज्ञान के लिये इस क्रम को स्वीकार किया है । जैसा कि उनका वाक्य है —'सप्तैते होरेशाः' इत्यादि ।

काल होरा में भी शीघ्र क्रम है । शीघ्र क्रम से चौथे ही दिनपति होते हैं । कालहोरा के अनुसार ही उसका दिनाधिपतित्व होता है । क्योंकि अहोरात्र में चौबीस काल होराएं होती हैं । उनमें सात से भाग देने पर तीन ही शेष रहता है । इसलिये चौबीसवीं होरा के बाद दूसरे दिन में प्रथम होरा के आधिपत्य शीघ्रक्रम से चौथे ही उपयुक्त है । आदिकाल होराधिपति दिनाधिपति हीं से दूसरे दिन में चौथे ग्रह दिनाधिपति होते हैं । इसी तरह मासाधिपति और वर्षपति के लिये भी विचार करना ।

अतः सूर्यसिद्धान्त में कहते हैं—

"लब्धोनरात्ररहिता" इत्यादि ।

ब्रह्मसिद्धान्त में जो विषय नहीं कहा गया है उसका खण्डन आचार्य (वटेश्वर) करते हैं परन्तु शीघ्र क्रम से होरेशादि ज्ञान के लिये आर्यभटोक्त कथन के खण्डन नहीं करते हैं यह बहुत ही आश्चर्य का विषय है ॥ ९ ॥

इदानीं कल्पं खण्डयति ।

**कल्पादौ यद्यर्कः कल्पान्ते भास्करिः कथं न भवेत् ।
निजवचनव्याघातात्स्वबुद्धिकल्पः कृतः कल्पः ॥ १० ॥**

वि. भा.—कल्पादौ यदि अर्कः (सूर्यः) तदा कल्पान्ते भास्करिः (शनैश्चरः) कथं न भवेत् । इति निजवचनव्याघात् स्वबुद्धिकल्पः (स्वबुद्ध्यनुसारकल्पितकल्पः) कल्पः कृतस्तेनेति ॥ १० ॥

उपपत्तिः

कल्पान्ते सर्वे ग्रहा पातमन्दोच्चादय एकस्मिन्नेव सूत्रे प्रोता मणय इवोर्ध्वाधरक्रमेण स्थिता भवन्ति कल्पान्ते शनैश्चरो भवत्येव तावता कल्पे को दोष आगच्छतीति ग्रन्थकारः(वटेश्वरः) एव ज्ञातुं शक्नोति खण्डनमिति वाग्बलमात्रमिति ॥

आर्यभटोऽपि मनुसन्धिसमं युगं कथयति यतस्तन्मते शखयुग एकमनुः। अर्थात् द्विसप्ततियुगैस्तन्मते एको मनुर्भवति, वर्गाक्षराणि वर्गे, इत्याद्यार्यभटसङ्केतेन श=७०। ख=२ द्वयोर्योगेन शख=७२, आर्यभटेन द्विनगैः ७२ युगैरेको मनुः स्वीकृतोऽतस्तन्मते मनुसन्धिर्युगसमफलितार्थ इत्यनुमीयते।

तन्मतेऽप्येकस्मिन् कल्पे चतुर्दश मनवोऽतस्तन्मतेनैककल्पमानम्=७२ यु × १४=१००८ यु आर्यभटोक्तवाक्यं च।

दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युगं द्विषट्कगुणम्।
अष्टोत्तरं सहस्रं ब्राह्मो दिवसो ग्रहयुगानाम्॥ (कालक्रिया पा. ८ श्लो.)

अन्येषां ब्रह्म-ब्रह्मगुप्तादीनां मतेनैककल्पमान्=१४ मनवः=१४×७१ यु=९९४ यु अत्र मनुसन्धिमान ६ यु योजनेन ९९४ यु+६ यु=१००० यु=१ कल्प=ब्रह्मदिनम्।

इत्येव स्मृतिपुराणादावपि "चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते" कथितमस्ति। अनयोर्मतयोर्मध्ये कतरं मतं समीचीनमित्येतस्य निर्णयोऽतीव कठिनोऽस्ति, तर्हि ग्रन्थकारेण (वटेश्वरेण) कल्पादौ यद्यर्कः कल्पान्ते भास्करिः" रित्यादिना यत्खण्डचते तन्मह्यं न रोचते॥ १०॥

हि. भा.—कल्पादि में यदि रवि है तो कल्पान्त में शनैश्चर क्यों न होंगे यह अपने वचन व्याघात से अपनी बुद्धि के अनुसार कल्प माना गया है॥ १०॥

उपपत्ति

कल्पान्त में सब ग्रह और पात मदोच्चादि एक ही सूत्र में ऊर्ध्वाधः क्रम से स्थित रहते हैं। कल्पान्त में शनैश्चर भी रहते ही हैं इससे कल्प कल्पना में क्या दोष आता है इस विषय को वटेश्वराचार्य ही जान सकते हैं। यह खण्डन वाग्बल से है।

आर्यभट भी युगसमान ही मनुसन्धि कहते हैं, क्योंकि उनके मत में 'शख युग एक मनुः' अर्थात् ७२ युग का एक मनु होता है, 'वर्गाक्षराणि वर्गे' इत्यादि आर्यभट के सङ्केत से श्=७०, ख=२ दोनों के योग करने से श् ख=७२,

७२ युगों के आर्यभट एक मनु मानते हैं। ब्रह्मगुप्तादि आचार्य ७१ युग के एक मनु मानते हैं अतः आर्यभटमत से एक कल्प के मान=१४×७२ यु=१००८ यु। आर्यभट भी एक कल्प में चौदह मनु मानते हैं।

आर्यभट के वचन हैं—

दिव्यं वर्षसहस्रं ग्रहसामान्यं युगं द्विषट्कगुणम्। इत्यादि

ब्रह्म-ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों के मत में एक कल्पमान=७१ युग=१४ मनु
=१४×७१ यु=९९४ यु

इसमें मनुसन्धिमान ६ यु जोड़ देने से ९९४ यु + ६ यु = १००० यु = १ कल्प = ब्रह्मदिन यही स्मृति और पुराणादि में भी 'चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते' कथित हैं। इन दोनों मतों में कौन मत ठीक है यह कहना बहुत कठिन है। तब ग्रन्थकार (वटेश्वर) 'कल्पादौ यद्यर्कः कल्पान्ते भास्करिः कथं न भवेत्।' इत्यादि से जो खण्डन करते हैं वह मेरे मत से ठीक नहीं है ॥ १० ॥

इदानीम् आर्यभटमतेन कल्पादौ वारो न समीचीन इत्येतत्समाधानं करोति।

ओंकारो दिनवारे ह्यतीतकल्पसंद्युयुताद् द्युगणात्।
नासौ घटते यस्मादोङ्कारो विस्तरस्तस्मात् ॥११॥

वि. भा.—यस्मात्कारणात् अतीतकल्पद्युसंयुताद् द्युगणात् (गतकल्पदिन-युतादहर्गणात्) दिनवारे (कल्पाद्यौदयिकगुरुदिने) असौ ओङ्कारः (स्वीकारः) न घटते तस्मादोङ्कारो विस्तर इति ॥११॥

उपपत्तिः

आर्यभटेन स्वतन्त्रे 'गुरुदिवसात् भारतात् पूर्वं' मित्यनेन कल्पादौ गुरुवारः स्वीकृतस्तत्खण्डनं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन निम्नलिखितश्लोकेन कृतम्।

ओङ्कारो दिनवारो गुरुरौदयिकोऽस्य भवति कल्पादौ।
न भवत्यर्को यस्मादोङ्कारो विस्तरस्तस्मात् ॥

यस्मादस्यार्यभटस्योङ्कारः (स्वीकारः) कल्पादावौदयिको दिनवारो गुरुर्भवति रविर्न भवति तस्मादस्योङ्कारः स्वीकारो विस्तर आधाररहितोऽर्थाद-प्रामाणिकः (स्तरः स्तरणमास्तरणम् विगतः स्तरो यस्य स विस्तर इति)।

आर्यभटमतेन कलियुगारम्भात्पूर्वं वर्त्तमानकल्पे ६ मनवो व्यतीता युगपादत्रयं च। तन्मते ७२ युगैरेको मनुः कृतादयश्च युगपादाः सर्वे समा अतस्तन्मतेन कल्पादौ गतयुगानि $= ७२ \times ६ + \frac{३}{४} = ४३२\frac{३}{४}$ = द्वापरान्ते कल्पाद् गतयुगानि, एतानि युगसावनदिवसैः १५७७९१७५०० गुणितानि जातः सावनाहर्गणः।

$४३२ \times १५७७९१७५०० + ३९४४७९३७५ \times ३$ अयं सप्ततष्टो जातो द्वापरान्ते वारः $= ५ \times ५ + ३ \times ३ = २५ + ९ = ३४$ पुनः सप्ततष्टिते शेषम् $= ६$ अयं सैकः कलियुगादौ वारः $= ७ = ०$ अतो यदि गुरुवाराद् गणनाऽऽरभ्यते तदा कलियुगादौ गतवारः $= ०$ वर्त्तमानो गुरुरेव सिध्यत्यत आर्यभटमतेन कल्पादौ गुरुवार आयाति।

ग्रन्थकारेणाऽऽर्यभटमतस्य समाधानं क्रियते परमेतत्समाधानं न समीचीनं। वस्तुत आर्यभटस्य मतं न समीचीनं ब्रह्मगुप्तेन यत् खंड्यते तत्तथ्यमेवेति ॥११॥

हि. भा.—जिस कारण से गतकल्पदिनयुत अहर्गण से कल्पादि में औदयिक गुरुदिन

में जो ओङ्कार (स्वीकार) कहा गया है सो नहीं घटता है इसलिए बहुत विस्तर ओङ्कार (स्वीकार) समझना चाहिये ॥११॥

उपपत्ति

आर्यभट ने अपने सिद्धान्त में 'गुरुदिवसात् भारतात् पूर्वम्' इस युक्ति से कल्पादि में गुरुवार किया है उसका खण्डन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने निम्नलिखित श्लोक द्वारा किया है। "ओङ्कारो दिनवारो" इत्यादि ।

जिस कारण से आर्यभट का स्वीकार कल्पादि में औदयिक दिन वार गुरु होते हैं रवि नहीं होते हैं इस कारण से इनका स्वीकार विस्तर (आधाररहित अर्थात् अप्रामाणिक) है ।

ब्रगुप्ह्मत अधोलिखित युक्ति से खण्डन करते हैं ।

आर्यभटमत से कलियुगारम्भ से पहले वर्तमान कल्प में ६ मनु बीत गये हैं और तीन युगचरण और उनके मत से ७२ युग के एक मनु होते हैं, सब गुण चरण बराबर होते हैं इसलिए उसके मत से कलि के आदि में गतयुगमान $= ७२ \times ६ + \frac{३}{४} = ४३२\frac{३}{४} =$ द्वापरान्त में कल्प से गतयुग इनको युग सावन दिन से गुणने से सावनाहर्गण होते हैं ।

$$४३२ \times १५७७९१७५०० + \frac{१५७७९१७५०० \times ३}{४} = ४३२ \times १५७७९१७५००$$

$+ ३९४४७९३७५ \times ३$ इसको सात से भाग देने से द्वापरान्त में वार होते हैं $५ \times ५ + ३ \times ३ = २५ + ९ = ३४$ इसको फिर सात से भाग देने से शेष $= ६$ इसमें एक जोड़ने से कलियुगादि में वार $= ७ = ०$ इसलिए गुरुवार से गणना प्रारम्भ करते हैं तो कलियुगादि में गतवार $= ०$, वर्त्तमान वार गुरु ही सिद्ध होते हैं इसलिए आर्यभटमत से कल्पादि में गुरुवार आते हैं यही ब्रह्मगुप्त का खण्डन है ।

वटेश्वराचार्य (ग्रन्थकार) आर्यभट मत का समाधान करते हैं पर वह समाधान ठीक नहीं है, वस्तुतः आर्यभट मत ठीक नहीं है, ब्रह्मगुप्तकृत खण्डन ठीक ही है ॥११॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तं दूषयति ।

तिथिकरणधिष्ण्ययोगा ग्रहणादौ व्यभिचरन्ति दृष्टेन ।
रविशशिनोरज्ञानात्तिथेर्न पञ्चाङ्गमपि वेत्ति ॥ १२ ॥

वि. भा.—रविशशिनोः (सूर्याचन्द्रमसोः) ग्रहणादौ तिथिकरणधिष्ण्ययोगाः (साधिततिथिकरणनक्षत्रयोगाः) दृष्टेन (प्रत्यक्षेण) व्यभिचरन्ति, तिथेरज्ञानात् (तिथिज्ञानाभावात्) स (ब्रह्मगुप्तः) पञ्चाङ्गमपि (तिथिपत्रमपि) न वेत्ति (न जानाति) ब्रह्मगुप्तेन चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणकालिकतिथिस्पष्टीकरणं सूर्यचन्द्रयोश्च तात्कालिकीकरणं स्वसिद्धान्ते कृतमेव गणितागततिथ्यादीनां वेधागतैः सह को भेदो भवति वटेश्वरेण न कथ्यते केवलमित्येव कथ्यते यद्वेधेन तत्रान्तरं पतति तिथ्यादितात्कालिकीकरणं यथाऽन्यैः (सूर्यादिभिः) कृतं तथैव ब्रह्मगुप्तेनापि कृतं तदाऽन्यकृत-

तिथ्यादिषु दोषो नास्ति, केवलं ब्रह्मगुप्तकृततिथ्यादावेव दोषः कथं भवतीत्यत्राऽऽचार्योक्तकथनमेव प्रमाणं नान्यत्कारणं वक्तुं शक्यतेऽस्माभिरिति ॥ १२ ॥

हि. भा.—सूर्य और चन्द्र का ग्रहणादि में तिथि, करण, नक्षत्र, योग प्रत्यक्ष के साथ व्यभिचरित होते हैं। तिथि के अज्ञान के कारण से ब्रह्मगुप्त पञ्चाङ्ग (तिथिपत्र) को भी नहीं जानते हैं। ब्रह्मगुप्त ने ग्रहणकाल में सूर्य और चन्द्र के तात्कालिकीकरण अपने सिद्धान्त में लिखा है तात्कालिक रवि और चन्द्रवश से तिथ्यादि का भी स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। तब वेधागत उनके मानों से गणितागत मानों में क्या अन्तर पड़ता है यह विषय वटेश्वराचार्य नहीं कहते हैं, केवल इतना ही कहते हैं कि तिथ्यादि ग्रहण में व्यभिचरित होती है। जैसे सूर्यसिद्धान्तकारादि ने अपने अपने ग्रन्थ में ग्रहणकालिक रवि और चन्द्र के लिये तात्कालिकीकरण किया है वैसे ही ब्रह्मगुप्त ने भी किया है, तब ब्रह्मगुप्त ही के मत का खण्डन क्यों करते हैं और इनके तिथ्यादि में क्या दोष है इसमें केवल वटेश्वराचार्य का कहना ही प्रमाण है कोई दूसरा कारण नहीं कह सकते हैं ॥

इदानीं पुनरपि ब्रह्मगुप्तस्य युगादि दूषयति ।

खब्रह्मोक्त्या घटते न जिष्णुसुरोक्तं युगादि किञ्चिदपि।
यस्मान्मृषैव तस्माद् ब्रह्मोक्तमिति यच्चकार तदसच्च ॥ १३॥

वि. भा.—यस्मात्कारणात् जिष्णुसुतोक्तं (ब्रह्मगुप्तोक्तं) किञ्चिदपि युगादि (युगचरणमानादि) खब्रह्मोक्त्या (आकाशस्थस्य ब्रह्मणः कथनेन) न घटते अर्थादेकमपि युगचरणादिमानं ब्रह्मगुप्तोक्तं ब्रह्मकथित युगादिमानैः सह न मिलति कस्मात्कारणात् मृषैव (मिथ्यैव) ब्रह्मोक्तं (ब्रह्मकथितं) इत्येवं यच्चकार (युगचरणादिमानं कृतवान्) तदसत् (तदशोभनम्) वटेश्वरेण कथ्यते यद ब्रह्मगुप्तेन यद्युगचरणादिमानमभिहितं तद् ब्रह्मोक्तं नहि ब्रह्मोक्तेन सहैकमपि न मिलति तेन ब्रह्मगुप्तोक्तं युगादिमानं न शोभनमिति ।

उपपत्ति

युगचरणसम्बन्धे ब्रह्मगुप्तोक्त ब्रह्मोक्तवचनानि क्रमशो निम्नलिखितानि सन्ति—

खचतुष्टयरदवेदा रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति ।
सन्ध्या सन्ध्यांशैः सह चत्वारि पृथक्कृतादीनि ॥
युगदशभागो गुणितः कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता ।
द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुणः कलियुगं भवति ॥

तथा च ब्रह्मोक्तवचनम् —

दिव्याब्दानां सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम् ।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः ।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः ॥

ब्रह्मगुप्तेन सौरवर्षमानेन युगचरणानि कथ्यन्ते ब्रह्मणा दिव्यवर्षप्रमाणेनैतावता ब्रह्मगुप्तोक्तौ न कश्चिद्दोष इति वटेश्वरेण व्यर्थमेव खण्ड्यते ॥ १३ ॥

हि. भा.—जिस कारण से ब्रह्मगुप्तकथित युगचरणादि मान कुछ भी ब्रह्मकथित युगचरणादि के साथ नहीं मेल खाता है, इसलिये ब्रह्मोक्त को जो कहते हैं वह मिथ्या (झूठ) है और वह ठीक नहीं है।

आचार्य (वटेश्वर) कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने जो युगचरणादि मान कहा है वह ब्रह्मकथित युगचरणादि मानों के साथ कुछ भी नहीं मेल खाता है इसलिये ब्रह्मगुप्त के कथन झूठ है और ठीक नहीं हैं।

उपपत्ति

युगचरणों के विषय में निम्नलिखित ब्रह्मगुप्त के वचन हैं। "खचतुष्टयरदवेदा" इत्यादि।

निम्नलिखित ब्रह्मोक्त वचन है। "दिव्याब्दानां सहस्राणि" इत्यादि।

ब्रह्मगुप्त सौरवर्षमान से युगचरण कहते हैं और दिव्यवर्षमान से ब्रह्मा जी कहते हैं इससे ब्रह्मगुप्त कथन में कोई दोष नहीं आता है, वटेश्वराचार्य व्यर्थ ही खण्डन करते हैं ॥ १३ ॥

इदानीं कलियुगादौ ब्रह्मगुप्तोक्तगतयुगचरणान् खण्डयति

युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत्।
तस्य द्वापरपादो युगगतये वै स्फुटो नातः ॥ १४ ॥

वि. भा.—जिष्णुसतः (ब्रह्मगुप्तः) कलियुगादौ (कलियुगचरणप्रारम्भे) यातान् (गतान्) त्रीन् युगपादान् (कृतत्रेताद्वापरयुगचरणान्) यत्प्राह (कथितवान्) तस्य (युगत्रयचरणस्य) द्वापरपादः (द्वापरयुगचरणः) युगगतये (युगगत्यर्थमस्ति तेन तद्गणना न भवति) अतो ब्रह्मगुप्तस्यायं पक्षः स्फुटो नेति।

उपपत्तिः

आचार्येण कथ्यते यत्कलियुगादौ युगचरणत्रयं व्यतीतमासीदिति ब्रह्मगुप्तेन यत्कथ्यते तच्छोभनं नास्ति, यतो द्वापरयुगचरणकलियुगस्य गत्यर्थमस्ति, कलेरेक एव चरणः। एकेन चरणेन कोऽपि चलितुं न शक्नुयादतो द्वापरचरणस्य सतयुगचरणे गणना न भवितुमर्हति तेन ब्रह्मगुप्तकथनं न समीचीनमिति। परं वटेश्वरेणापि पूर्वं लिखितं यत्—

"कजन्मोऽष्टौ सदलाः समाययुस्तथा समामा मनवो दिनस्य षट्।
युगत्रिवृन्दं सदृशाङ्घ्रयस्त्रयः कलेर्नवागैकगुणाः शकावधेः ॥"

कलियुगादौ युगचरणत्रयं व्यतीतमित्यनेन "वटेश्वरेण" अपि पूर्वं स्वीकृतमेव तर्ह्यत्र ब्रह्मगुप्तमतखण्डनं कथं क्रियते इत्यादि ज्ञातुं न शक्यते ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेनाऽधोलिखितपद्धत्यार्यभटमतं खण्ड्यते तत्पक्षपातिना (आर्यभटपक्षपातिना) वटेश्वरेण तस्मिन्नेव विषये ब्रह्मगुप्तमतं खण्ड्यते।

आर्यभटो युगपादांस्त्रीन् यातानाह कलियुगादौ यत् ।
तस्य कृतान्तर्यस्मात् स्वयुगाद्यन्तौ न तत् तस्मात् ।।

आर्यभटः कलियुगादौ त्रीन् युगपादान् यातान् कथितवान् । यच्च प्रसि तद्ग्रन्थतः । यस्मात् कारणात् तन्मते तस्य स्वयुगाद्यन्तौ तदेकस्यादिरन्यस्यान्त इति द्वौ कृतान्तः कृतयुगमध्ये भवतस्तस्मात् तद्युगं न सत् ।

आर्यभटमतेन एकयुगान्तादन्यस्यारम्भात् कलियुगादिपर्यन्तं त्रयोयुगपादाः

$= \frac{३ \times ४३२००००}{४} = ३२४००००$, आचार्य (ब्रह्मगुप्तमते च)

कृ + त्रे + द्वा $= \frac{४३२०००० \times ९}{१०} = ३८८८०००$ द्वयोरन्तरे वर्षाणि ६४८०००

एतानि चाचार्यमतेन संख्याधिकत्वात् कृतयुगमध्येऽत्र आर्यभटोक्तयुगाद्यन्तौ कृतयुगान्तः । इहाचार्येण स्वकृतयुगमध्ये आर्यभटोक्तौ युगाद्यन्तौ प्रतिपादितौ । तत्र यदि आचार्योक्तयुगादौ ग्रहाणां मेषमुखे स्थितिः स्यात् तदेदं खण्डनं युक्तियुक्तमन्यथा वाग्बलमेतदिति ज्योतिर्विदां स्फुटमेव ।

उभयोर्ब्रह्मगुप्तकृतखण्डनवटेश्वरकृत - ब्रह्मगुप्तमतखण्डनयोस्तुलनां कृत्वा कस्य कथनं समीचीनमिति सुधियो विभावयन्तु । मन्मते तु ब्रह्मगुप्तमतमत्र विषये समीचीनं वटेश्वरेण विद्वेषबुद्धया खण्डयते ।। १४ ।।

हि. भा.—ब्रह्मगुप्त ने कलियुगादि में 'तीन युग चरण बीत गया था' यह जो कहा है सो ठीक नहीं है क्योंकि उन गत तीन युग चरणों में द्वापर चरण युगगति के लिये है इसलिये द्वापरचरण की गणना उसमें नहीं होनी चाहिये ।

उपपत्ति

आचार्य का कहना है कि कलि के एक चरण होने के कारण वह चल नहीं सकता है क्योंकि एक चरण से कोई भी नहीं चल सकता है । द्वापर युग चरण उसके दूसरे चरण का काम करता है, इसलिये व्यतीत युग चरणत्रय में द्वापर की गणना नहीं होनी चाहिये । अतः ब्रह्मगुप्त का मत ठीक नहीं है । लेकिन पहले वटेश्वराचार्य भी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं । यथा "कजन्योऽष्टौ सदलाः" इत्यादि

यहां ब्रह्मगुप्तमत के खण्डन का कारण नहीं मालूम होता है ।।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में अधोलिखित क्रम से ब्रह्मगुप्त आर्यभटमत का खण्डन करते हैं; आर्यभट के पक्षपाती वटेश्वराचार्य उसी विषय में उल्टे ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन करते हैं । "आर्यभटो युगपादांस्त्रीन्" इत्यादि ।

आर्यभट ने कलियुगादि तीन गत युग चरणों को कहा है । जो उनके ग्रन्थ से प्रसिद्ध है । जिस कारण उनके मत में एक के आरम्भ से दूसरे का अन्त ये दोनों कृत युग के मध्य ही में होता है, इसलिये वह युग ठीक नहीं है ।।

आर्यभटमत से एक युग के अन्त से द्वितीय के प्रारम्भ से कलियुगादि पर्यन्त तीन युगचरण= $\frac{४३२००००\times ३}{४}$ = ३२४००००, ब्रह्मगुप्त के मत से

$$कृ+त्रे+द्वा = \frac{४३२००००\times ९}{१०} = ३८८८००० \text{ दोनों के अन्तर में वर्ष} = ६४८०००$$

इतने वर्ष ब्रह्मगुप्त के मत में कृतयुग के मध्य में है, इसलिये आर्यभटोक्त युगाद्यन्त कृतयुगान्त है। यहां ब्रह्मगुप्त ने स्वकृत युगमध्य में आर्यभट कथित युगाद्यन्त को कहा है। यदि ब्रह्मगुप्त कथित युगादि में मेषादि में ग्रहों की स्थिति हो तब तो ब्रह्मगुप्तकृत खण्डन ठीक है अथवा नहीं।

आर्यभट मत के ब्रह्मगुप्तकृत खण्डन और ब्रह्मगुप्त मत के वटेश्वराचार्य द्वारा खण्डन इन दोनों में क्या ठीक है इसको पण्डित लोग विचार करें। मेरे विचार से इस विषय में ब्रह्मगुप्त मत ठीक है। वटेश्वर द्वेषबुद्धि से उनके मत का खण्डन करते हैं ॥ १४ ॥

लङ्कासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः।
जिष्णुसुतेनोक्तं यत्तत्स्फुटं विषुवतोऽन्यत्र ॥ १५ ॥
दिनवारादिप्रवृत्तिः पश्चादुज्जयिनो दक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
चरदलसंस्कारवशान्न तत्स्फुटं गोलबाह्यस्य ॥ १६ ॥

वि. भा.—लङ्का समयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्या इति जिष्णुसुतेन (ब्रह्मगुप्तेन) यदुक्तं (यत्कथितं) तत् विपुवतः (विषुवद्रेखातः) अन्यत्र (भिन्नस्थले) स्फुटं भवेत्। उज्जयिनी दक्षिणोत्तरायाः (अवन्तिसमरेखासूत्रात्) पश्चात् (पश्चिमदेशे) प्राक् (पूर्वदेशे) चरदलसंस्कारवशात् दिनवारादिप्रवृत्तिर्गोलबाह्यस्य (गोलबहिर्भूतस्य गोलानभिज्ञस्य वा मते) भवति तत्स्फुटं (सूक्ष्मं) नेति।

उपपत्तिः

अथ लङ्का समरेखातः पश्चिमे देशे देशान्तरघटीभिः पूर्वं वारप्रवृत्तिर्भवति, सूर्योदयः पश्चाद्भवति, पूर्वदेशे देशान्तरघटीभिर्वारप्रवृत्तिः पश्चाद्भवति; सूर्योदयः पूर्वं भवति। दक्षिणगोले चरखण्डासुभिः प्राक् दिनवारप्रवृत्तिरर्थात् सूर्योदयः पश्चाद्दिनवारप्रवृत्तिः पूर्वं भवति। उत्तरगोले चरखण्डासुभिः पश्चाद्दिनवारप्रवृत्तिः, सूर्योदयः पूर्वं भवत्यर्थाच्चरखण्डदेशान्तरघटीभिर्युतिवियुतिवशाद्दिनतदीशयोः स्पष्टकालो भवतीति।

एतेनाचार्येणापि पूर्वं "द्रष्टा क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिरित्यारभ्योत्तरगोले पश्चाद्दिनोदयादित्याद्यन्तं यावत्" विषयोऽयमेवाभिहितः। परमत्र ब्रह्मगुप्तकथितस्य तस्यैव (वटेश्वरेणापि स्वीकृतस्य) खण्डनं क्रियते। अत्र तु केवलमित्येव कथ्यते यत् "न तत्स्फुटं गोलवाह्यस्य", कारणमग्रिमश्लोके कथ्यते इति।

अत्र विषये ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तवाक्यम्—

लङ्कासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः ।
देशान्तरोनयुक्ता रेखायाः प्रागपरदेशेषु ॥

लङ्कासमयाम्योत्तररेखायामर्थाल्लङ्कायाम्योत्तररेखायां ये तिष्ठन्ति तेषां भास्करोदये मध्यमरव्युदयकाले मध्यमा ग्रहा अहर्गणेन भवन्तीत्यर्थः । रेखायाः प्रागपरदेशेषु च गणिता गताग्रहा देशान्तरफलेन क्रमेणोनयुतास्तदा स्वनिरक्षौदयकालिका भवन्ति । अत्रोदयान्तरसंस्कारेण वास्तवाः स्वनिरक्षोदये ग्रहा भवन्तीति भास्करेणोदयान्तरसंस्कार आनीत इति । आर्यभटेन ग्रन्थद्वयं रचितं तत्र प्रथमग्रन्थेनौदयिको ग्रहो य आगच्छति तस्माद् द्वितीयग्रन्थागत आर्धरात्रिको ग्रहो दिनगतिचतुर्थांशेनोनो भवति, अर्थाद् द्वयोर्ग्रहयोरन्तरे ग्रहगतिचतुर्थांशकला भवन्ति यतोऽनयोः कतरं वास्तवमित्यार्यभटेन न निश्चितमतस्तन्मतेनैकमपि न स्फुटमिति ब्रह्मगुप्तेनार्यभटमतं खण्डितं तद्विरुद्धं वटेश्वरेण ब्रह्मगुप्तमतं खण्डचते ॥ १५ ॥

हि. भा.—"लङ्कासमयाम्योत्तरेखायां भास्करोदये मध्याः" इत्यादि ब्रह्मगुप्त ने जो कहा है वह विषुवत् रेखा से भिन्न स्थान में स्फुट होता है, उज्जयिनी समरेखा सूत्र से पश्चिम देश में और पूर्व देश में चर खण्ड संस्कारवश से जो दिनवार प्रवृत्ति कही गई है वह गोल शून्यों के मत में है, वह सूक्ष्म नहीं है ।

उपपत्ति

लङ्का समरेखा से पश्चिम देश में देशान्तर घटी करके पहले वारप्रवृत्ति होती है, सूर्योदय पश्चात् होता है । पूर्वदेश में देशान्तर घटी करके पीछे वारप्रवृत्ति होती है, सूर्योदय पहले होता है । दक्षिणगोल में चरखण्ड काल करके पहले दिनवार प्रवृत्ति होती है, सूर्योदय पीछे होता है । उत्तरगोल में चर खण्ड काल करके पश्चात् दिनवार प्रवृत्ति होती है सूर्योदय पहले होता है । अर्थात् चर देशान्तर घटी योग वियोगवश से दिन दिनपति का स्पष्टकाल होता है ।

वटेश्वराचार्य भी पहले "द्रष्टा क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिः" इत्यादि से "उत्तरगोले पश्चादिनोदयात्" इत्यादि तक यही बातें कही हैं लेकिन ब्रह्मगुप्त कथित उसी विषय का खण्डन यहां पर करते हैं । यहां केवल इतना ही कहते हैं कि "न तत्स्फुटं गोलवाह्यस्य" इसका कारण आगे के श्लोकों में कहते हैं ।

लङ्कासमयाम्योत्तर रेखा में अर्थात् लङ्का याम्योत्तर रेखा में जो लोग रहते हैं उनके रव्युदयकाल में मध्यमग्रह अहर्गण से आते हैं । रेखा से पूर्व और पश्चिम देश में गणितागत ग्रह में देशान्तर फल क्रम से उन और सहित करने से वास्तव अपने निरक्षोदयकालिक ग्रह होते हैं । इसमें उदयान्तर संस्कार से अपने निरक्षोदय में वास्तव ग्रह होते हैं इसीलिये भास्कराचार्य उदयान्तर संस्कार लाये हैं ॥

आर्यभट ने दो ग्रन्थ बनाये प्रथमग्रन्थ से औदयिक ग्रह जो आते हैं उससे द्वितीय ग्रन्थागत

अर्धरात्रि का ग्रह दिनगति चतुर्थांश करके हीन आते हैं अर्थात् दोनों ग्रहों के अन्तर करने से ग्रहगति के चतुर्थांश कला होती है । इन दोनों ग्रहों (ग्रन्थद्वयानीत ग्रहों) में कौन ग्रह वास्तव है इसका निश्चय आर्यभट ने नहीं किया इसलिये उनके मत से एक भी ग्रह ठीक नहीं है—यह ब्राह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त में आर्यभट मत का खण्डन किया है । जिसके उत्तर में ग्रन्थकार (वटेश्वर) यहां ब्रह्मगुप्त मत के खण्डन करते हैं, यह खण्डन विद्वेष-बुद्धि वश किया जाता है ॥ १५ ॥

आर्यभटस्य वारादिं दूषयति ब्रह्मगुप्तः—

सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा यदुवाच तदसदार्यभटः ।
लङ्कोदये यतोऽर्कस्यास्तमयं प्राह सिद्धपुरे ॥

आर्यभटेन 'शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्योदयो दिनपाः'' इति स्वतन्त्रे लिखितम् चं[1], बु[2], शु[3], र[4], कु[5], गु[6], श[7] । कक्षाक्रमेण ग्रहाणां संस्थाः ।

तत्र शीघ्रक्रमात् सूर्यादयो ग्रहाः र, चं, मं, बु, गु, शु, श उपरिष्टा ग्रहा मन्दगतयोऽधःस्थाः शीघ्रगतयो भवन्ति, ते च रवितः शीघ्रक्रमादधःस्थ ग्रहगणनया (विपरीतगणनया) रवेरनन्तरं बुध इत्यादि गणनयेति स्फुटम् ।

अथ गोलपादे च तेनैवार्यभटेन 'उदये यो लङ्कायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे' इत्युक्तम् । तेनायमर्थः सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा दिनपा भवन्तीति यदार्यभट उवाच तदसत् । यतः स एव लङ्कोदये सिद्धपुरेऽर्कस्यास्तमयं प्राह । अर्थाद्यदि लङ्कोदये वारादिस्तदा सिद्धपुरेऽपि कथं न स एव वारादिरत आर्यभटोक्तवारगणना न स्थिरा अथ चार्यभटरचितग्रन्थद्वये एकस्मिन् युगसावनदिनानि=१५७७९१७५०० लङ्कायामर्कोदये सृष्टिः । अन्यस्मिन् युगसावनदिनानि=१५७७९१७८०० लङ्कायामर्धरात्रे सृष्टिः । ग्रन्थद्वयतो वारगणनायामेकं दिनमन्तरं पतत्यत आर्यभटोक्तवारादिर्न समीचीन इति ब्रह्मगुप्तेन तन्मतं खण्डितम् ।

आर्यभटपक्षपातिना वटेश्वरेण वारादिसम्बन्धे ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयते । वारादिसम्बन्धे ब्रह्मगुप्तमतं समीचीनमेवेति सुधियो विभावयन्तु ॥ १६ ॥

आर्य भटोक्त वारादि का ब्रह्मगुप्त खण्डन करते हैं—

सूर्यादयश्चतुर्था दिनवारा यदुवाच तदसदार्यभटः ।
लङ्कोदये यतोऽर्कस्यास्तमयं प्राह सिद्धपुरे ॥

आर्यभट ने 'शीघ्रक्रमाच्चतुर्था भवन्ति सूर्यादयो दिनपाः' अपने सिद्धान्त में लिखा है—कक्षा क्रम से ग्रहस्थिति इस प्रकार है च, बु, शु, र, कु, गु, श शीघ्र क्रम से सूर्यादिग्रह र, सो, मं, बु, गु, शु, श, उपरिस्थित ग्रह मन्दगतिग्रह, और अधःस्थ ग्रह शीघ्रगति होते हैं । वे रवि से शीघ्र क्रम से अधःस्थ ग्रह गणना के अनुसार रवि के बाद शुक्र उनके बाद बुध इत्यादि गणना क्रम से होते हैं । गोलपाद में उन्हीं आर्यभट ने 'उदये यो लङ्कायां

सोऽस्तमयः सवितुः सिद्धपुरे' इस तरह कहा हैं। इसलिये सूर्यादि चतुर्थ दिनवार दिनपति होते हैं—यह जो आर्यभट ने कहा है सो ठीक नहीं है। क्योंकि उन्हीं आर्यभट ने लङ्कोदय में सिद्धपुर में अस्त कहा है। अर्थात् यदि लङ्कोदय में वारादि है तो सिद्धपुर में क्यों वही वारादि नहीं होगा इसलिये आर्यभटोक्त वार गणना ठीक नहीं है। आर्यभटरचित ग्रन्थद्वय में एक में युगसावनदिन=१५७७९१७५००, लङ्का सूर्योदयकाल में सृष्टि। दूसरे ग्रन्थ में युगसावन दिन= १५७७९१७८००, लङ्कार्ध रात्रिकाल में सृष्टि, ग्रन्थद्वय से वारगणना में एक दिन का अन्तर पड़ता है। इसलिये आर्यभटोक्त वारादि ठीक नहीं है। आर्यभट पक्षपाती ग्रन्थकार (वटेश्वर) यहां ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन करते हैं। वस्तुतः ब्रह्मगुप्तमत ठीक ही है। दुराग्रहवश खण्डन किया जाता है ॥ १६ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तसृष्ट्यादिकालं खण्डयति

तत्कालायनचलनं भगणविशेषे प्रकल्पितं सवितुः ।
तत्रांशाश्चन्द्रादिग्रहे प्रदेयास्ततः स्फुटाः सर्वे ॥ १७ ॥
अतएव विनष्टमतिः प्रागुदये भास्करस्य मेषादौ ।
कथयति शास्त्राज्ञानात्तत्रायनचलनमभिहितं मुनिभिः ॥ १८ ॥

वि. भा.—सवितुः (सूर्यस्य) भगणविशेषे अयनचलनं (अयनगतिः) प्रकल्पितम्, तत्र अंशाः (अयनांशाः) चन्द्रादिग्रहे प्रदेयाः (अर्थादयनगतिना सर्वे चन्द्रादयो ग्रहा युक्ताः कार्याः) तदा सर्वे ग्रहाः स्फुटाः स्युः। अतएव विनष्टमतिः (भ्रष्ट बुद्धिको ब्रह्मगुप्तः) भास्करस्य (सूर्यस्य) मेषादौ प्रागुदये शास्त्राज्ञानात् कथयति, तत्र (तस्मिन् स्थले) मुनिभिः अयनचलनं (अयनगतिः) अभिहितं (कथितम्)।

आचार्येण (वटेश्वरेण) कथ्यते यद्ब्रह्मगुप्तेन "लङ्कासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः" इत्यादि यत्कथ्यते तत्रायनगतिसंस्कृतरव्युदये कथनमुचितमासीत् यतस्तत्र काप्ययनगतिस्तु भवेदेव तद्ग्रहणं ब्रह्मगुप्तेन न कृतमतस्तन्मतं न युक्तमिति। एतस्यैतत्कथनं समीचीनं प्रतिभातीति ॥१७-१८॥

हि.भा.—सूर्य के भगणविशेष में अयनगति कल्पित की गई है। वहां पर अयनांश-चन्द्रादिग्रह में जोड़ने से वे सब ग्रह स्पष्ट होते हैं। इसलिए नष्ट बुद्धि वाले ब्रह्मगुप्त ने "प्रागुदये भास्करस्य मेषादौ" यह शास्त्र के न जानने के कारण कहा है, वहां पर मुनियों से अयनगति कही गई है। वटेश्वराचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने "लंकासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः" यह जो कहा है। वहां अयनगति संस्कृत रव्युदय कहना उचित था; क्योंकि वहां पर कुछ भी तो अयनगति होगी, परन्तु वे उसका ग्रहण नहीं किये इसलिए उनका मत ठीक नहीं है। इनका यह कथन ठीक मालूम पड़ता है। वहां पर अयनगति अनिर्वाच्य रही होगी जिसका ग्रहण करना अतीव दुर्घट था इसलिए वहां पर अयनगति संस्कार नहीं किये मुझे तो यही मालूम होता है ॥१७-१८॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तकल्पगतं गतयुगचरणांश्च खण्डयति

न समा युगकल्पाः कल्पादिगतं कृतादियातश्च ।
ब्रह्मोक्तं जिष्णुसुतो नातो जानाति मध्यगतिम् ॥१९॥

वि. भा.—युगकल्पाः कल्पादिगतं (कल्पगतवर्षमानं) कृतादियातं (सत्ययुगादि गतयुगचरणमानं) ब्रह्मोक्तैः (ब्रह्मकथितैः) समाः (तुल्याः) न सन्ति, अतोऽस्मात् कारणात् जिष्णुसुतः (ब्रह्मगुप्तः) मध्यगतिं न जानातीति। वटेश्वराचार्येण कथ्यते ब्रह्मगुप्तकथित युगकल्प-कल्पगत-गतयुगचरणमानानि ब्रह्मकथितैस्तैस्तु-ल्यानि न सन्ति तेन ब्रह्मगुप्तमतं न शोभनम् ।

उपपत्तिः

ब्रह्मणा सृष्टिकालः (४७४०० दिव्यवर्षाणि) कथितोऽस्ति, ब्रह्मगुप्तेन सृष्टिकालो नाभिहितोऽतः कल्पगतवर्षे तु पार्थक्यं भवेदेव। ब्रह्मगुप्तेन युगमानानि सौर-वर्षमानैर्ब्रह्मणा दिव्यवर्षमानैः कथ्यन्ते तयोः सामञ्जस्यं भवेदेव। ब्रह्मणा कियन्ति युगचरणानि गतानि तत्र स्पष्टीकरणं न क्रियते, ब्रह्मगुप्तेन त्रीणि कृतादियुगचरणानि गतानीति कथ्यन्ते। ब्रह्मोक्तस्य सूर्यसिद्धान्तोक्तेन सहैक्यं वर्त्तते। वटेश्वराचार्यकथनं कियत्स्वंशेषु तथ्यं कियत्स्वंशेषु चातथ्यमिति विवेचनीयं विवेचकैरिति ॥१९॥

हि. भा.—युगमान, कल्पमान, कल्पादिगतवर्ष, सत्ययुगादि युगचरण ब्रह्मगुप्त ने जो कहा है वे ब्रह्मकथित युग-कल्पादि मानों के साथ मेल नहीं खाते हैं याने दोनों (ब्रह्मा-ब्रह्मगुप्त) से कथित युगादिमानों में अन्तर पड़ते हैं इसलिये ब्रह्मगुप्त मध्यगति को नहीं जानते हैं ॥१९॥

उपपत्ति

ब्रह्मा ने सृष्टिकाल (४७४०० दिव्यवर्ष) कहा है, ब्रह्मगुप्त ने नहीं कहा है इसलिए कल्पगतवर्ष में अन्तर अवश्य होगा। युगमान ब्रह्मगुप्त सौर वर्षमान से कहते हैं और ब्रह्मा दिव्यवर्षमान से कहते हैं। इसलिये ब्रह्मगुप्त कथित युगमान में दोष नहीं कहा जा सकता है। गत युगचरण के सम्बन्ध में ब्रह्मा स्पष्टीकरण नहीं किया है लेकिन ब्रह्मगुप्त साफ कहते हैं कि कृतादि तीन युगचरण बीत चुके हैं, सूर्यसिद्धान्तोक्त के साथ ब्रह्मोक्त का ऐक्य है। इनमें कितने अंश में वटेश्वराचार्य का कथन ठीक है कितने अंश में नहीं ठीक है। इस बात के ऊपर स्वयं बुद्धिमानों को विचार करना चाहिए ॥१९॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तग्रहभगणान् खण्डयति

वास्तवभगणैर्द्युचरो यादृक् तादृङ् न कल्पितैर्भवति ।
कल्पितभगणैर्द्युचरः स्याद्यादृशस्तथैव स्यात् ॥२०॥

वि. भा.—द्युचरः (ग्रहः) वास्तवभगणैर्यादृक् (वास्तवयुगभगणैर्यदृशो भवति) कल्पितैर्भगणैः (अवास्तवभगणैः) तादृक् न भवति (तादृशो न भवति) कल्पितभगणैः (अवास्तवभगणैः) यादृशो ग्रहः स्यात् तथैव स्यादर्थादवास्तवभगणै-र्यादृशोऽवास्तवग्रहो भवितुमर्हति, तथैव भवतीति ॥२०॥

अत्रोपपत्तिः ।

आचार्यकथनस्य तात्पर्यमिदमस्ति यद्युगमानस्यासमीचीनत्वाद्युग-पठितग्रहभगणा अपि समीचीना न भवितुमर्हन्ति तदाऽसमीचीन भगणद्वारा साधिता ग्रहा अपि न वास्तवाः, अवास्तवभगणद्वारा ये ग्रहा आगच्छेयुस्तेऽवास्तवा

एवातो ब्रह्मगुप्तोक्ताऽवास्तवभगणसाधितग्रहाणामवास्तवत्वात्तन्मतं न समीचीनमिति ॥२०॥

हि.भा.—वास्तव भगण से जैसे ग्रह होते हैं अवास्तव भगण से वैसे नहीं होते हैं, अवास्तव भगण (कल्पित भगण) से जैसा ग्रह होना चाहिए वैसा ही होता है ॥२०॥

उपपत्ति

आचार्य (वटेश्वर) के कहने का तात्पर्य यह है कि युगमान के ठीक नहीं रहने से युगपठित ग्रह भगण भी ठीक नहीं हो सकता है। तब अशुद्ध भगण द्वारा जो साधित यह होंगे वे भी अशुद्ध ही होंगे। अतः ब्रह्मगुप्त कथित कल्पित भगण (अवास्तव भगण) से साधित ग्रह के अवास्तवत्व होने के कारण उनका (ब्रह्मगुप्त का) मत ठीक है ॥२०॥

इदानीं कुजस्य भगणचतुष्टयकल्पनं खण्डयति

भगणाद्यं चतुष्कं कुजस्य भगणेषुदृगृक्षधियः।
शरगुणरसपञ्चाथवा द्वीषुशरागा द्विगो द्विनन्दा वा ॥२१॥
अनया दिशाऽसृजोऽन्ये भगणाः कल्प्याः सहस्रशोन्यस्य।
द्यु चरस्योच्चस्य तथा परमार्था नात्र केचित्स्युः ॥२२॥

वि.भा.—कुजस्य (मङ्गलस्य) भगणेषुदृगृक्षधियः (५२७२) शरगुणरसपञ्च (५६३५) अथवा द्वीपुशरागाः (७५५२) वा द्विगोद्विनन्दाः (९२९२) इति चतुष्कं भगणाद्यं जिष्णुसुतेन कल्पितम्। अनया दिशा (कथितपद्धत्या) असृजः (कुजात्) अन्यस्य द्युचरस्य (भिन्नग्रहस्य तथोच्चस्य) सहस्रशोऽन्ये भगणाः कल्प्याः (अर्थाद्यथा कुजस्य भगणचतुष्टयं कल्पितं तथैव कुजातिरिक्तान्यग्रहस्योच्चस्य वा सहस्रशो भगणाः कल्पनीयाः) अत्र केचित् परमार्था न स्युः (अत्र किमपि परमतत्त्वं नास्ति) इति ॥२१-२२॥

अत्रोपपत्तिः

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते मङ्गलस्य भगणचतुष्टयं पठितं नास्ति यथाऽऽचार्येण कथ्यते तर्हि केनाऽऽधारेण ग्रन्थकारणोपयुक्तभगणचतुष्टयमानं कथयित्वा खण्डचते ब्रह्मगुप्तमतमिति वटेश्वराचार्य एव ज्ञातुं शक्नोतीति ॥२१ २२॥

हि.भा.—मंगल के ५२७२ या ५६३५, अथवा ७५५२ वा ९२९२ ये चार तरह के भगण ब्रह्मगुप्त ने कहा है इस तरह मंगल से भिन्न ग्रह अथवा उच्च के हजारों भगण की कल्पना हो सकती है। इस तरह की भगण कल्पना में कोई तत्त्व नहीं है ॥ २१-२२ ॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में मंगल के चार तरह के भगण पठित नहीं देखने में आते हैं। जैसे कि बटेश्वराचार्य कहते हैं। तब किस आधार पर आचार्य पूर्वकथित भगण चतुष्टय मान लिख कर खण्डन करते हैं, ये बातें बटेश्वर ही जान सकते हैं।

यह समझ में नहीं आती है कि जिस विषय का उल्लेख ब्रह्मगुप्तसिद्धांत में नहीं है उसका भी खण्डन किया जाता है। बहुत आश्चर्य की बात है।। २१-२२ ।।

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तदेशान्तरयोजनं खण्डयति।

भूपरिधिः खखखभराः स्थूलः स्थाण्वीश्वरोज्जयिन्यासु।
अक्षान्तरेण सिद्धा योजनसंख्या न सम्यगतः ।।२३।।

वि. भा.—खखखशराः (५०००) स्थूलः (अवास्तवः) भूपरिधिः (भूगोल-परिधिः) अतोऽस्मात्कारणात् स्थाण्वीश्वरोज्जयिन्यासु (एतेषु पूर्वोक्तप्रसिद्ध-नगरेषु) अक्षान्तरेण (अक्षांशान्तरेण) सिद्धाः (साधिताः) योजनसंख्या सम्यक् (शोभना) नास्तीति।

उपपत्तिः

अत्राचार्येण कथ्यते यद्ब्रह्मगुप्तेन स्थूलं भूपरिधिमानं ५००० योजनमितं स्वीकृत्य चक्रांशैः (३६०) भूपरिधियोजनानि लभ्यन्ते तदाऽक्षांशान्तरेण किमित्यनुपातेन यानि योजनान्यागच्छन्ति तानि न शोभनानि तेन ब्रह्मगुप्तमतं न शोभनमिति, भूगोलपरिधियोजनमानं तु सर्वेषां मते स्थूलमेव भवितुमर्हति तेन भूगोलपरिधिवशेन खण्डनमिदं शोभनं नास्तीति ।।२३।।

हि. भा.—भूपरिधिमान ५००० स्थूल है। इसलिये स्थाण्वीश्वर और उज्जयिनी नगरों में अक्षांशान्तर से सिद्ध जो योजनसंख्या (देशान्तर योजनसंख्या) ठीक नहीं है।

उपपत्ति

वटेश्वराचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त भूगोलपरिधि का मान ५००० योजन स्थूल स्वीकार कर तीन सौ साठ (३६०) में भूपरिधि योजन तो अक्षांशान्तर में क्या इससे योजनात्मक मान (देशान्तर योजन) आता है सो ठीक नहीं है क्योंकि भूगोल परिधिमान स्थूल है। अतः ब्रह्मगुप्त मत ठीक नहीं है । भूगोल योजनमान प्रत्येक आचार्य के मत में स्थूल ही हो सकता है। इसलिये भूगोल परिधि सम्बन्ध से खण्डन करना ठीक नहीं मालूम पड़ता है।

इदानीं ब्रह्मगुप्तं दूषयति

भूपरिधेरज्ञानाद् व्यर्थं देशान्तरं तदज्ञानात्।
न स्फुटतिथ्यन्तज्ञानं तन्नाशाद्ग्रहणयोर्नाशः ।।२४।।
भूपरिधिखण्डवर्गैर्देशान्तरयोजनैः कृतं तेन।
तदतीव गणितजाड्यं प्रदर्शितं जिष्णुतनयेन ।।२५।।

वि. भा.—भूपरिधेः (स्पष्टभूपरिधेः) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) देशान्तरम्- (देशान्तरकलादिफलं) व्यर्थं (निरर्थकम्) तदज्ञानात (देशान्तरकलादिफला-ज्ञानात्) स्फुटतिथ्यन्तज्ञानं) न भवेत् तन्नाशात् (स्पष्टतिथ्यन्ताज्ञानात्) ग्रहणयोः (सूर्यचन्द्रग्रहणयोः) नाशो भवेदर्थाद् ग्रहणयोर्ज्ञानं न भवेदिति ।।

स्पष्टभूपरिज्ञानाभावाद्देशान्तरफलस्य "स्पष्टभूपरिधियोजनैर्ग्रहगति-कला लभ्यन्ते तदा देशान्तरयोजनैः किमित्यनुपातागतदेशान्तरसम्बन्धिकलात्मक-

फलस्य" ज्ञानमसम्भवम् । देशान्तरसम्बन्धिकलात्मकफलाज्ञानात्स्पष्टतिथ्यन्त ज्ञानं न भवितुमर्हति । स्पष्टतिथ्यन्ताज्ञाताद् ग्रहणयोः (सूर्यचन्द्रग्रहणयोः) इतरेषां ग्रहणोपयोगिपदार्थानां ज्ञानं न भवेदतो ब्रह्मगुप्तमतं न युक्तमित्याचार्यकृतखण्डनं समीचीनमस्ति ।। २४ ।।

तेन (ब्रह्मगुप्तेन) भूपरिधिखण्डवर्गैः (भूगोलपरिध्यर्धवर्गैः) देशान्तरयोजनैश्च कृतं (देशान्तरकलाफलमानीतम्) तदतीव गणितजाड्यं (अत्यन्तगणितजडत्वं) जिष्णुतनयेन (ब्रह्मगुप्तेन) प्रदर्शितम् ।।

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्तेनाधोलिखितयुक्तया देशान्तरफलानयनं कृतं यथा—

भूपरिधिः खखखशरा रेखा स्वाक्षान्तरांशसङ्गुणिताः ।
भगणांशहृता फलकृतहीना देशान्तरस्य कृतिः ।
शेषपदगुणितभुक्तिर्भूपरिधिहृता कलादिलब्धमृणम् ।
उज्जयिनी याम्योत्तररेखायाः प्राग्धनं पश्चात् ।।

उपर्युक्तपद्येन देशान्तरयोजनानयनस्यासमीचीनत्वात्ततो भूपरिधिवशेन देशान्तरकलाफलस्यासमीचीनत्वाच्च "उज्जयिनीयाम्योत्तरेखायाः प्राग्धन" मित्यादिना यः स्वदेशोदयकालिको ग्रहो भवेत्तस्याप्यसमीचीनत्वमेवातो ब्रह्मगुप्तमतं न तथ्यम् ब्रह्मगुप्तेन स्पष्टभूपरिधिज्ञानमन्तरैव भूपरिधिवशेन देशान्तरकलाफलं साधितमिति महती त्रुटिः कृता तेन, वटेश्वराचार्येण युक्तियुक्तमेव खण्डयते इति ।। २५ ।।

हि. भा.—स्पष्ट भूपरिधि के अज्ञान से देशान्तर कलादि फल निरर्थक है, देशान्तर कलादिफल के निरर्थक होने से (देशान्तर कलादिफल के अज्ञान से) स्पष्टतिथ्यन्त ज्ञान नहीं होता है । स्पष्टतिथ्यन्त के ज्ञान न होने से ग्रहण (सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण) का ज्ञान नहीं हो सकता है अर्थात् दोनों ग्रहण नष्ट हो जायगा ।।

स्पष्ट भूपरिधि के अज्ञान से "स्पष्ट भूपरिधि योजन में ग्रहगति कला पाते हैं तो देशान्तर योजन से क्या" इस अनुपात से देशान्तर योजन सम्बन्धी कलात्मक फल का ज्ञान असम्भव है । देशान्तर कलात्मक फल के ज्ञान न रहने से स्पष्ट तिथ्यन्त का ज्ञान नहीं हो सकता । स्पष्टतिथ्यन्त के ज्ञान न होने से और जो ग्रहणोपयोगी विषय है उनका ज्ञान नहीं हो सकता है । तब तो ग्रहण का ज्ञान (स्पर्शादि का ज्ञान) हो ही नहीं सकता है । इसलिये ब्रह्मगुप्त का मत ठीक नहीं है । यह आचार्यकृत खण्डन ठीक है ।।२३।।

भूपरिध्यर्ध वर्ग से और देशान्तर योजन से देशान्तर कलात्मक फल ब्रह्मगुप्त से लाया गया है यह अत्यन्त गणित जड़ता उन्होंने दिखलायी है ।

उपपत्ति

निम्नलिखित युक्तियों द्वारा ब्रह्मगुप्त ने देशान्तर फलानयन किया है—

"भूपरिधि; खखखशरा रेखा स्वाक्षान्तरांश संगुणिताः ।" इत्यादि ।

उपरिलिखित पद्यों से देशान्तर योजनानयन के असमीचीनता के कारण उस पर से भूपरिधि योजनवश से देशान्तर कलात्मक फल की असमीचीनता के कारण "उज्जयिनी-

याम्योत्तररेखायाः प्राग्धनं" इससे जो स्वदेशोदयकालिक होता है वह भी ठीक नहीं होता है इसलिए ब्रह्मगुप्तमत ठीक नहीं है । ब्रह्मगुप्त ने बिना स्पष्ट भूपरिधि के भूपरिधि से देशान्तर फलानयन किया है यह बड़ी त्रुटि उन्होंने की है। वटेश्वराचार्य का यह खण्डन बहुत ठीक है ॥२५॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तस्य सूर्यसंक्रान्तिं दूषयति

संक्रान्तिर्घर्मांशोः समस्तसिद्धान्ततन्त्रवाह्या हि।
कुदिनानामज्ञानान्मन्दोच्चस्य स्फुटो नार्कः ॥२६॥

वि. भा.—घर्मांशोः (सूर्यस्य) संक्रातिः (संक्रान्तिकालः) समस्तसिद्धान्ततन्त्रवाह्या (सम्पूर्णसिद्धान्तग्रन्थ तन्त्रग्रन्थबहिर्भूता) कथमिति चेत्तदाह। मन्दोच्चस्य कुदिनानां (युगकुदिनानां) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) स्फुटोऽर्कः (स्पष्टसूर्यः) न भवति। अर्थाद्रविमन्दोच्चज्ञानं रवियुगपठितकुदिनेभ्यः कृतमुचितं तु युगपठितमन्दोच्चकुदिनेभ्यस्तज्ज्ञानं, तदा रविपठितयुगकुदिनेभ्यः साधितरविमन्दोच्चवशेन यद्रविमन्दफलं तदवास्तवं तेन संस्कृतो मध्यमरविः स्फुटरविरप्यवावास्तव एव, एतदस्फुटरविवशेन यः संक्रान्तिकालः सोप्यवास्तव एवेत्याचार्यकृतखण्डनम् । परमत्र विचारणीयं वस्त्विदं वर्त्तते यत्सिद्धान्तादिग्रन्थेषु सर्वत्रैव "पठितरवियुगकुदिनवशेनैव यत्र यत्र पठितयुगकुदिनस्यावश्यकता भवति तत्र तत्र" कार्याणि क्रियन्ते ग्रहादीनां स्वस्वकुदिनवशेन कार्याणि न क्रियन्तेऽतः पूर्वोक्तदोषो बहुषु स्थलेषु समागच्छति तर्हि केवलं रविसंक्रान्तावेव कथं दोषो दीयते। यदि ब्रह्मगुप्तकथितयुगस्याचार्यमतेऽसमीचीनत्वाद् युगमन्दोच्चकुदिनादीनामप्यसमीचीनत्वमतस्तत्साधितस्य मन्दोच्चस्यासमीचीनत्वात्स्फुटरविरप्यवास्तव एवागमिष्यति तेन तत्संक्रान्तिकालोप्यवास्तव एव। अयमपि दोषः सर्वत्रैव समागमिष्यति, आचार्योक्तमिदं समीचीनं न प्रतिभातीति ॥२६॥

हि. भा.—सूर्य का संक्रान्तिकाल सम्पूर्ण सिद्धान्त और तन्त्रग्रन्थ से बहिर्भूत है क्योंकि रवि मन्दोच्च के कुदिन (युगकुदिन) के अज्ञात के कारण स्पष्ट रवि के ज्ञान नहीं होता है । वटेश्वराचार्य के कहने का अभिप्राय यह है कि रवि मन्दोच्च का ज्ञान रवि के युग पठित कुदिनों से किया गया है । लेकिन उचित तो है कि युगपठित मन्दोच्च कुदिन पर से उसका ज्ञान किया जाय, परन्तु सो नहीं किया जाता है । तव तो रविपठित युग कुदिन से साधित रवि मन्दोच्चवश जो रवि मन्दफल होगा वह अवास्तव होगा, उसको मध्यम रवि से संस्कार करने से जो स्पष्ट रवि होते हैं वह भी अवास्तव होते हैं यही आचार्य खण्डन करते है परन्तु यहां विचारणीय विषय यह है कि सिद्धान्तादि ग्रन्थों में जहां जहां पठित युग कुदिन की आवश्यकता हुई है वहां वहां पठित रवि युग कुदिन ही से सब कार्य किये गये हैं । इसलिए पूर्वकथित दोष बहुत जगहों में आ सकता है तव केवल रविसंक्रान्ति ही में क्यों दोष होते हैं। यदि ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान आचार्य के मत में असमीचीन जहां है तब तो मन्दोच्च युग कुदिनादि के ठीक होने के कारण उस पर से साधित मन्दोच्च की असमीचनता के कारण

स्पष्ट रवि ठीक नहीं होते हैं इसलिए रविसंक्रान्ति काल भी ठीक नहीं है। यह दोष भी बहुत जगहों में होगा इसलिए आचार्य का कथन ठीक नहीं मालूम होता है ॥२६॥

पुनर्ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति

कल्पितभगणैर्द्युचरः कल्पितकुदिनैः प्रकल्पितैश्च युगैः।
परिधीनामज्ञानाद् दृष्टिविरोधात्स्फुटा नातः ॥२७॥

वि. भा.—कल्पितभगणैः (अशुद्धभगणैः) कल्पितकुदिनैः (अशुद्धकुदिनैः) प्रकल्पितैश्च युगैः (अशुद्धयुगमानैः) द्युचराः (ग्रहाः) अतोस्मात् कारणात्स्फुटा न परिधीनां (स्पष्टभूपरिध्यादीनां) अज्ञानात् (अविदितत्वात्) दृष्टिविरोधात् (दर्शनायोगत्वात्)। अत्र स्पष्टभूपरिधिज्ञानं ब्रह्मगुप्तेन कृतमेव नहि। मध्यमभूपरिधिरपि ५००० योजनमितः स्थूल एव गृहीतो वास्तवमध्यमभूपरिधिरप्यविदित एवातः (परिधीनाम्) कथ्यते। यद्येतद् (वटेश्वर) मते ब्रह्मगुप्तोक्त युगमानमवास्तवं तदा युगकुदिनं, युगभगणमानप्यवास्तवमेवातस्तत्साधितग्रहा अप्यवास्तवा एव, परं ब्रह्मगुप्तकथित, युगमानमवास्तवमिति वटेश्वरेणैव कथ्यते नान्यैरिति ॥२७॥

हि. भा.—कल्पित भगणों (अशुद्ध भगणों) से कल्पित कुदिनों (अशुद्ध कुदिनों) से प्रकल्पित युगों (अशुद्ध युगों) से साधित ग्रह स्पष्ट नहीं होते हैं। क्योंकि परिधि (स्पष्ट भूपरिधि मध्यम परिधि) के अज्ञान के कारण और प्रत्यक्ष से विरोध होने के कारण स्पष्ट ग्रह नहीं होते ॥२७॥

स्पष्ट भूपरिधि का ज्ञान ब्रह्मगुप्त ने किया ही नहीं, मध्यम भूपरिधि भी ५००० योजन स्थूल ही ग्रहण की है इसलिए वास्तव मध्यम भूपरिधि भी अविदित ही है। यदि वटेश्वराचार्य के मत में ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान अवास्तव है तब युग कुदिन, युग ग्रह भगण मान भी अवास्तव होगा इसलिए उन पर से साधित ग्रह भी अवास्तविक होंगे। लेकिन ब्रह्मगुप्तोक्त युगमान अवास्तविक है यह बात वटेश्वराचार्य ही कहते हैं, अन्य आचार्य नहीं कहते ॥२७॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्त-भूव्यासार्धं खण्डयति

त्यक्ते भूव्यासार्धे सहस्रप्रसंमिते गणितसौक्ष्म्यात्।
कर्त्तव्यं व्यासार्धं खनवमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम् ॥२८॥

वि. भा.—गणितसौक्ष्म्यात् (गणितसूक्ष्मत्वात्) सहस्रप्रसंमिते (१००० तुल्ये) भूव्यासार्धे (भूव्यासखण्डे) त्यक्ते खनवमुनिः (७९०) व्यासार्धं कर्त्तव्यमर्थात् १००० एतत्तुल्ये भूव्यासार्धस्वीकरणे गणितसूक्ष्मत्वं विहाय किं ७९० व्यासार्धस्वीकरणमेव त्वत्कर्त्तव्यं भवेत्। अतोऽस्मात्कारणात् इदं (७९० एतत्तुल्यभूव्यासार्धं स्वीकरणम्। अतिगणितजाड्यम् (अतिशयगणितजड़त्वं) अस्तीति, १००० एतत्तुल्यमेव भूव्यासार्धस्वीकरणं गणितसूक्ष्मत्वदृष्टितो ग्रहणमुचितमासीत्। तदपहाय ७९० एतत्तल्यं यत्स्वीकृतं तद् भवद्गणितजाड्यमस्तीति ॥२८॥

हि. भा—एक हजार तुल्य भूव्यासार्धमान त्याग करने से गणितसूक्ष्मता के कारण ७९० एतत्तुल्य भूव्यासार्ध स्वीकार करना ही आपका कर्त्तव्य है यह तो अत्यन्त गणितजड़ता है। अर्थात् १००० इतना भूव्यासार्ध गणितसूक्ष्मता को ख्याल से लेना चाहता था, उसको छोड़ कर ७९० इतना भूव्यासार्ध जो स्वीकार किया है यह तो आपकी गणितजड़ता है ॥२८॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तज्यानयनखण्डनमाह

जिनजीवासंग्रहः स्याद्रसाङ्कभागो भमण्डलस्य समः।
यदभिहितवान् न तच्छरस्तत्र तत्स्फुटं मुनिसमस्तस्य ॥ २९ ॥
भमण्डलसमभागं परपुरुषवदाख्यातं तत्र।
याति यतः समन्दो द्वितयं विबुधः कथं भवति ॥ ३० ॥
नातोऽस्ति ज्यानियमः शरसौक्ष्म्यादन्तिवर्तनं युक्तम्।
सप्तकशरे निवृत्तिर्जिष्णुसुतस्यैव युक्ततमा ॥ ३१ ॥

वि. भा.—भमण्डलस्य (क्रान्तिवृत्तस्य) रसाङ्कभागः (९६ अंशः) जिनजीवासंग्रहः (अर्थात् चक्रकलायाः षण्णवतिभागः २२५ प्रथमचापमेतत्तुल्यचतुर्विंशतिप्रमितचापानां तत्संख्यकज्यानां संग्रहः स्यात्) यदभिहितवान् (कथितवान्) तत्र तच्छरः (तेषां चापानामुत्क्रमज्यासंग्रहो न स्यात्) तत् मुनिसमस्तस्य (मुनिकदम्बकस्य) स्फुटं मतमस्त्यर्थादुत्क्रमज्यासंग्रहोऽपि कार्यः। तत्र (तस्मिन् स्थले) भमण्डलसमभागं (क्रान्तिवृत्तसमानखण्डं) परपुरुषवत् आख्यातं (कथितम्) यतो समन्दः (मन्दबुद्धियुक्तः) द्वितयं (मार्गद्वयं) यात्यर्थादेकत्र भमण्डलस्य ९६ एतत्प्रमिताः समानाः कथिता द्वितीयस्थले भमण्डलस्य समविभागा एव कथिता इति भिन्नां भिन्नामुक्तिं विलोक्याल्पज्ञः सन्देहमुपयाति, विबुधः (पण्डितः) कथं द्वितयं (मार्गद्वयाश्रयणं) भवति, अर्थात्पण्डितस्त्वेकमेव मार्गावलम्बी भवति। अतो ज्यानियमो न शरसौक्ष्म्यात् (उत्क्रमज्यासूक्ष्मत्वात्) तदन्तिवर्त्तनं (ज्याव्यवहारकार्यं) युक्तम् (तथ्यम्) सप्तकशरे (प्रथमचापतः सप्तमचापपर्यन्तमुत्क्रमज्यायां) निवृत्तिर्जिष्णुसुतस्यैव (ब्रह्मगुप्तस्यैव) युक्ततमेति ॥

उपपत्तिः

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते यत्र चतुर्विंशज्ज्याखण्डानि पठितानि तत्रोत्क्रमज्याखण्डान्यपि पठितानि सन्ति, तत्र ये दोषाः सर्वेषामाचार्याणां ग्रन्थे सन्ति तेऽत्रापि वर्त्तन्ते, वटेश्वरेण भिन्नां भिन्नां कल्पनां मनसि कृत्वा निरर्थकमेव ब्रह्मगुप्तमतं खण्ड्यते। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तदर्शनेनैतत्कथनमेकमपि न मिलति। नाऽतोऽस्ति ज्यानियम इत्यादि यत्कथ्यते तदन्येषामप्याचार्याणां जीवाविषये भवितुमर्हति। मन्मते तु निरर्थकमेव खण्ड्यतेऽनेन। न किमपि ब्रह्मगुप्तकथितादन्येषु कथनेषु वैलक्षण्यमिति ॥ २९-३१ ॥

हि. भा—क्रान्तिवृत्त के छियानवे भाग करने से अर्थात् भचक्रकला को ९६ से भाग देने से जो लब्धि होती है वह प्रथम चाप है। ऐसे ऐसे चौबीस चापों की ज्याओं के संग्रह को ब्रह्म-

गुप्त ने जो कहा है वहां शर (उन चापों की उत्क्रमज्यायें) नहीं कहा है। वहां उत्क्रमज्या भी कहनी चाहिये ये बातें हर एक मुनि के विचार सम्मत हैं। वहां पर क्रान्तिवृत्त के समभाग पर पुरुष की तरह जो कहा गया है उसमें मन्दबुद्धि लोग दो तरह के मार्ग में जाते हैं याने एक जगह क्रान्तिवृत्त के ९६ से भाग देकर जो होता है उसी को प्रथम चाप कहते हैं ऐसे ऐसे चौबीस चापों की ज्याओं के संग्रह कहे गये हैं। दूसरी जगह केवल क्रान्तिवृत्त के समभाग कहे गये हैं इन दोनों के देखने से दो तरह की कल्पना मन में आती है। परन्तु पण्डित तो वैसे नहीं कर सकते, वे क्यों वैसे करेंगे। इसलिये ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त में ज्याओं के लिये कोई नियम नहीं है। उत्क्रमज्याओं की सूक्ष्मता से ज्याओं का व्यवहार हो सकता है। प्रथम चाप से सप्तम चाप में निवृत्ति ब्रह्मगुप्त ही के लिये ठीक हो सकती है ॥ २९-३१ ॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भचक्रकला २१६०० के छियानवे से भाग देने से २२५ लब्धि आती है यही प्रथम चाप है। वृत्तपरिधि के चतुर्थांश = ९० अंश है। इसकी कला ५४०० है इसमें २२५ से भाग देने से २४ आता है अर्थात् नवत्यंश कला में २२५ कला तुल्य चौबीस चाप होंगे अर्थात् प्रथम चाप = २२५, द्वितीय चाप = २२५ × २, तृतीय चाप = २२५ × ३ इत्यादि इन चापों की ज्याखण्डायें और उत्क्रमज्याखण्डायें ब्रह्मगुप्त ने लिखी हैं। वटेश्वराचार्य कहते हैं कि वहां न उत्क्रमज्या खण्डा और न उत्क्रमज्या की सूक्ष्मता कही गई है। पर ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में जहां पर ज्याखण्ड पठित है वहीं उत्क्रम खण्ड भी पठित है। और सिद्धान्तों में जिस तरह ज्याखण्डाओं के साथ उत्क्रमज्या खण्डायें रहती हैं इसमें भी उसी तरह हैं। उत्क्रम खण्ड की जरूरत जहां होगी वहां इन खण्डाओं से काम लिये जाते हैं। उनकी सूक्ष्मता की जरूरत वहां नहीं है, वटेश्वराचार्य अपने मन में नयी नयी बातें कल्पना कर ब्रह्मगुप्त के नाम पर खण्डन करते हैं। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त देखने से इनकी कही हुई एक भी बात नहीं मिलती। जिन बातों को ब्रह्मगुप्त ने नहीं कहा है उन बातों को भी, उनके नाम से कह कर अर्थात् यह ब्रह्मगुप्तकथित है, खण्डन करते हैं। ब्रह्मगुप्त के विषय में जो बातें कहते हैं वे अन्य आचार्यों के विषय में भी लागू हो सकती हैं, किन्तु दूसरों के नाम से खण्डन नहीं करते हैं। हमारे मत में वटेश्वर के खण्डन निरर्थक हैं ॥ २९-३१ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तमतं खण्डयति

लम्बाक्षज्यानयनेऽतो नतज्या प्रकारवचनं यत् ।
प्रोवाच क्षेत्रफलं जिनजीवासङ्गतं तदसत् ॥ ३२ ॥
पूर्वाचार्यस्पष्टीकरणमदृष्टं यतस्तेन ।
न भवति दृग्गणितैक्यं गणितसमं गोलबाह्यस्य ॥ ३३ ॥

वि. भा.—लम्बाक्षज्यानयने (लम्बज्याक्षज्ययोः साधने) अतोऽग्रे नतज्याप्रकारवचनं यत् तथा जिनजीवासङ्गतं (चतुर्विंशज्ज्यासम्बद्धं) क्षेत्रफलं यत्प्रोवाच (कथितवान्) तदसत् (तच्छोभनं न) तथा यतः (यस्मात्कारणात्) तेन (ब्रह्मगुप्तेन) पूर्वाचार्यस्पष्टीकरणं (प्राचीनाचार्यकृतग्रहादिस्पष्टीकरणं) अदृष्टं (न दृष्टम्) तस्माद् गोलबाह्यस्य (गोलबहिर्भूतस्य गोलानभिज्ञस्य वा) गणितसमं (गणितागतग्रहतुल्यं) दृग्गणितैक्यं न भवतीति ॥ ३२-३३ ॥

उपपत्तिः

ब्रह्मगुप्तकृत ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते लम्बाक्षज्ययोः साधनावसरे नहि कस्या अपि नतज्यायास्तत्साधनस्य वा चर्चाऽस्ति तथा च चतुर्विंशतिसंख्यकज्यासम्बन्धेनापि तत्र पुस्तके क्षेत्रफलसाधनं नास्ति ब्रह्मगुप्तकृत स्पष्टीकरणे प्राचीनोक्तस्पष्टीकरणापेक्षया कां त्रुटिं विलोक्य वटेश्वरेण कथ्यते यत्पूर्वाचार्योक्तस्पष्टीकरणं ब्रह्मगुप्तेन नहि दृष्टं तेन तत्कृतग्रहादिगणितेन दृग्गणितैक्यं न भवति। ब्रह्मगुप्तेनापि स्वतः प्राचीनस्याऽऽर्यभटस्य बहुषु स्थलेषु खण्डनं कृत्वा कथ्यते यदेतस्य दोषस्य पारावारो नास्ति तर्हि ब्रह्मगुप्तेन स्वतः कस्य पूर्वाचार्यस्य स्पष्टीकरणं नावलोकितम्। यद्यपि ब्रह्मगुप्तेन बहुत्र स्थले व्यर्थमेवाऽऽर्यभटमतस्य खण्डनं कृतं तथैव वटेश्वरेणापि व्यर्थमेव दुराग्रहवशतो ब्रह्मगुप्तमतं खण्ड्यते। येषां विषयाणां ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते चर्चाऽपि नास्ति तानपि विषयान् तदुक्तान् (ब्रह्मगुप्तकथितान्) कथयित्वा खण्ड्यते। उपर्युक्तश्लोकयोर्येषां विषयाणां खण्डनं वटेश्वरेण क्रियते तेष्वेकोऽपि विषयो ब्रह्मस्फुटसिद्धान्ते नास्ति ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तावलोकनेन सर्वं स्फुटं भवतीति ॥ ३२-३३ ॥

हि. भा.—लम्बज्या और अक्षज्या के साधन में आगे नतज्या प्रकार वचन जो है तथा चौबीस संख्यक जीवा के सम्बन्ध से क्षेत्रफल जो कहा गया है सो असत् है। जिस कारण से ब्रह्मगुप्तने पूर्वाचार्यों के स्पष्टीकरण को नहीं देखा है अतः उनके गणित से दृग्गणितैक्य नहीं होता है याने वेधागत ग्रहादियों में और ब्रह्मगुप्त गणित द्वारा ग्रहादियों में समता नहीं होती है अतः ब्रह्मगुप्तकृत गणित ठीक नहीं है। ब्रह्मगुप्त मत के खण्डन वटेश्वराचार्य करते हैं॥ ३२-३३ ॥

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्तकृत ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में लम्बज्या और अक्षज्या के साधन स्थल में नतज्या या उसके साधन की चर्चा नहीं की गई है। और चौबीस संख्यक ज्यासम्बन्ध से भी क्षेत्रफल उस पुस्तक में नहीं है। ब्रह्मगुप्त कृत ग्रहादि स्पष्टीकरण में प्राचीनोक्त स्पष्टीकरण की अपेक्षया क्या त्रुटि को देखकर वटेश्वराचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने पूर्वाचार्यों के स्पष्टीकरण को नहीं देखा, इसलिये ब्रह्मगुप्त गणित द्वारा जो ग्रहादि आते हैं उनमें दृक् तुल्यता नहीं होती है याने वेधागत ग्रहादियों के साथ ब्रह्मगुप्तकृत गणित से आए हुये ग्रहादियों की समता नहीं होती है। ब्रह्मगुप्त भी अपने से प्राचीन आर्यभट मत के खण्डन में कहते हैं कि आर्यभट के दोषों का पारावार नहीं है। तब ब्रह्मगुप्त ने किन पूर्वाचार्यो के स्पष्टीकरण को नहीं देखा यद्यपि जिस तरह बहुत स्थलों में ब्रह्मगुप्त ने व्यर्थ आर्यभट मत का खण्डन किया है उसी तरह वटेश्वर ने भी निरर्थक बहुत स्थलों में ब्रह्मगुप्त मत का खण्डन किया हैं। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में जिन विषयों का उल्लेख नहीं हैं उन विषयों को ब्रह्मगुप्तोक्त कह कर खण्डन करते हैं। उपर्युक्त श्लोकों में जिन विषयों को लेकर वटेश्वराचार्य खण्डन करते हैं उनमें से एक भी विषय ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में प्रतिपादित नहीं है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त देखने से स्पष्ट है ॥ ३२-३३ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तभौमशीघ्रपरिधिभागस्फुटीकरणखण्डनमाह।

यदि मन्ये संस्कारश्चलपरिधौ भूसुतस्य किं न तथा।
चन्द्रसितादेः कस्मादागमभासात् स्फुटा नातः ॥३४॥

वि. भा.—यदि भूसुतस्य (कुजस्य) चलपरिधौ (शीघ्रपरिधौ) संस्कार इत्यहं मन्ये तदा तथा (तादृशः संस्कारः) कस्मादागमभासात् (कस्मात्कल्पितादागमात्) चन्द्रसितादेः किं नार्थाद्यादृशेनागमेन कुजचयपरिधौ ब्रह्मगुप्तेन संस्कारोऽभिहितस्तादृशेनैवागमेन चन्द्रशुक्रादिग्रहचलपरिधौ कथं न संस्कारोऽभिहितोऽतस्तद्वशेन साधिता स्फुटा गतिः स्फुटा नेति ॥३४॥

उपपत्तिः

कुजस्य शीघ्रकेन्द्रं यस्मिन् पदे स्यात्तत्र गतगम्ययोर्येऽल्पा भागास्तेषां ज्या कार्या सा त्रिभागोनैः सप्तभिरंशैर्गुणिता पञ्चवेदभागज्यया भक्ता लब्धांशैर्मृगकर्यादिशीघ्रकेन्द्रे कुजमन्दोच्चं क्रमेणाधिको हीनश्च कार्यस्तदा स्पष्टीकरणोपयोगि कुजमन्दोच्चं स्फुटं भवति। भौमस्य मन्दपरिधिभागाः=७० । त्र्यंशोना वेदजिना २४३°।४०′ भागा मन्दोच्चसंस्कारार्थं ये पूर्वमाप्ता भागास्तैः सर्वदा ऊनास्तदा भौमस्य स्फुटः शीघ्रपरिधिः स्यात् ततोऽधोलिखितक्रमेण तत् स्फुटीकरणं भवति। गणितागते मध्यमभौमे प्रथमं मन्दफलार्धं यथागतं धनं वा ऋणं देयम्। ततोऽर्धमन्दफलसंस्कृतमध्यमभौमेऽर्धमन्दफलसंस्कृतान्मध्यमभौमाद्यच्छीघ्रफलं तदर्धं यथागतं धनमृणं वा देयम्। पुनरर्धफलद्वयसंस्कृतान्मध्याद्यन्मन्दफलं तत्संस्कृतान्मध्याद् यच्छीघ्रफलं च ते सम्पूर्णे गणितागते भौमे देये यथा बुधगुरुशनीनां कृतेऽसकृत्कर्मकरणं भवति तथाऽत्रापि कार्यमेवं भौमः स्पष्टो भवति। ततः स्फुटा गतिश्च ग्रहवत्साध्येति।

ग्रन्थकारेण कथ्यते यद्यादृशः संस्कारः कुजचलपरिधौ ब्रह्मगुप्तेन कृतस्तादृश एव संस्कारेऽन्येषां बुधादीनां चलपरिधौ कथं न कृतस्तत्र काऽपि तादृशी युक्तिर्न मिलति येन तदुक्तिः स्वीकार्या, केवलं ब्रह्मगुप्तेन कथ्यते यदागमप्रामाण्यादेवं क्रियते। यादृशमागमप्रामाण्यं कुजस्य कृते तादृशं बुधादीनां कथं न मिलत्यतस्तत्कल्पितमागमप्रमाणस्यासमीचीनत्वाद्ब्रह्मगुप्तस्फुटीकृतचलपरिधिवशतः साधिता स्पष्टगतिः स्फुटा नेत्यतस्तन्मतं न समीचीनम्। वस्तुतो ब्रह्मगुप्तकथनं समीचीनं वटेश्वराचार्यकथनं वेति कथनमतीव दुर्घटं, यत्र युक्तिर्न मिलति तत्र त्वागममेवाऽऽश्रयणीयं भवति। तदागमप्रमाणं मान्यामान्यं वेति विवेचकाः स्वयमेव विचारयन्त्विति॥ चन्द्रसितादेरिति पाठोऽसमीचीनः प्रतिभाति चन्द्रस्य शीघ्रपरिधेरभावादिति ॥३४॥

हि. भा.—यदि मंगल की शीघ्र परिधि में संस्कार को मानते हैं तो किस कल्पित आगम प्रमाण से चन्द्र, शुक्र आदि ग्रहों की चल परिधि में उस तरह का संस्कार नहीं किया गया। अतः उस पर से साधित ग्रह की स्पष्ट गति ठीक नहीं है ॥३४॥

उपपत्ति

मंगल के शीघ्र केन्द्र जिस पद में हैं वहां गत और गम्य में जो भाग अल्प है उसकी ज्या करनी चाहिये उसको ६°।४०′ इसकी ज्या से गुण कर ४०° पैंतालीस अंश के ज्या से भाग देना, जो भागफल अंशात्मक हो उसे मृगादि और कर्कादि केन्द्र में शीघ्र केन्द्र रहने पर कुज मन्दोच्च में युत और हीन करना तब स्पष्टीकरणोपयुक्त कुज मन्दोच्च स्फुट होता है। मंगल के मन्दपरिध्यंश=७०; त्र्यंशोन २४४° अंश अर्थात् २४३°।४५′ अंश मन्दोच्च संस्कार के वास्ते जो पहले प्राप्त अंश हैं उस करके हीन करने से मंगल की स्फुट शीघ्र परिधि होती है इस पर से मंगल का स्पष्टीकरण इस तरह होता है। गणितागत मध्यम मंगल में यथागत धन या ऋण मन्द फल के आधा संस्कार करना तब अर्ध मन्द फल संस्कृत मध्यम मंगल पर से जो शीघ्र फल हो उसके आधे को यथागत धन या ऋण को अर्ध मन्द फल संस्कृत मध्यम मंगल में संस्कार करना। फिर अर्ध फलद्वय संस्कृत मध्यम से जो मन्द फल साधिक हो तत्संस्कृत मध्यम पर से जो शीघ्र फल हो वे दोनों फल (मन्दफल और शीघ्रफल) सम्पूर्ण गणितागत मध्यम मंगल में देना। उसके बाद बुध, गुरु, शनि की तरह असकृत्कर्म करने से स्पष्ट मंगल होते हैं। स्पष्टगति ग्रहवत् साधन करना। अर्थात् दिनान्तर स्पष्ट खगान्तर ही उस समय के अन्तर में स्पष्टगति होती है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मंगल की शीघ्र परिधि में ब्रह्मगुप्त ने जैसा संकार किया है वैसा ही अन्य ग्रहों (बुधादि) की शीघ्र परिधि में क्यों नहीं किया गया। ब्रह्मगुप्त का कहना है कि आगम प्रमाण से इस तरह के संस्कार करते हैं। जिस तरह के आगम प्रमाण मंगल के लिए है उसी तरह के बुधादिग्रहों के लिए क्यों नहीं है इसलिये ब्रह्मगुप्त-स्वीकृत कल्पित आगम प्रमाण के असमीचीनत्व से ब्रह्मगुप्तकथन ठीक नहीं है। वस्तुतः ब्रह्मगुप्तकथन ठीक है या वटेश्वराचार्य कथन, यह कहना बहुत कठिन है। जहां युक्ति नहीं मिलती है वहां आगम प्रमाण ही का आश्रयण करना होता है। आगमप्रमाण मान्य है या नहीं इस विषय को विवेचक लोग स्वयं विचार करें। 'चन्द्रसितादेः' यह पाठ ठीक नहीं मालूम होता है क्योंकि चन्द्रमा को शीघ्र परिधि नहीं होती है ॥३४॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तं वृत्तं छायाभ्रमणं खण्डयति ।

दृङ्मात्रमेव कथिता छायासिद्धिर्हि मन्दान्वितौघधिया ।
प्रज्ञाज्वरप्रचलितं छायात्रितयाद्धि यद्भ्रमणम् ॥३५॥
अस्तावेधादन्यज्जिष्णोस्तनयस्य भाभ्रमणम् ।
वलये तद्भिनशोभनमिति नहि तुच्छबुद्धिभिर्दृष्टम् ॥३६॥
जिष्णुसुतैर्नान्यत्र तुसोतो जानाति तद्भ्रमणम् ।
अस्तावेधादन्यान्जिष्णोस्तनयस्य भाविनो भापि ॥३७॥

वि. भा.—मन्दान्वितौघधिया (मन्दयुक्तदूषितबुद्ध्या) दृङ्मात्रमेव छाया सिद्धिः कथिता। प्रज्ञाज्वरप्रचलितं (बुद्धिप्रयुक्तज्वरचलितं) छायात्रितयाद् भ्रमणं यत् (कालत्रयजनितच्छायात्रयाग्रभ्रमणं यत्) तद्भाभ्रमणमर्थात्तत् छायात्रयाग्रं यत्र भ्रमति तदेव भाभ्रमणम्। जिष्णोस्तनयस्य (ब्रह्मगुप्तस्य)

अस्तावेधात् (मेरोः) अन्यद्वलये (वृत्ते) तत् (छायाभ्रमणं) शोभनं न (समीचीनं नास्ति) इति तुच्छबुद्धिभिः (अल्पबुद्धिभिर्ब्रह्मगुप्तैः)न दृष्टम् । अतोऽन्यत्र (मेरोर्भिन्नस्थले) सः (ब्रह्मगुप्तः) तद्भ्रमणं (छायाभ्रमणं) न जानाति, जिष्णोस्तनयस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) भाविनी भापि (आगामिनी छायाऽपि) अस्तावेधात् (मेरोः) अन्येति ।। ३५--३७ ।।

अत्रोपपत्तिः

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन वृत्ताकारभाभ्रमरेखासम्बन्धेन दिग्ज्ञानं कृतमस्ति यथा ।

त्रिच्छायाग्रजमत्स्यद्वयमध्मगसूत्रयोर्युतिस्त्र्यं ।
सोत्तरगोले याम्या शङ्कुतलाद्दक्षिणे सौम्या ।।
छायाग्रभ्रमरेखा सूत्रयुतेर्वृत्तपरिधिरग्रस्पृक् ।
मध्यच्छायाऽन्तरमुदगितरद्वा शङ्कुमण्डलयोः ।।

इष्टदिने दिग्मध्यस्थशङ्कोश्छायात्रयं ज्ञात्वा तदग्रैर्मत्स्यद्वयमुत्पाद्य तन्मुखपुच्छमध्यगरेखयोर्यत्र युतिस्ततो यो वृत्तपरिधिः सोऽग्रस्पृक् भवति । अतः परिधिरेखैव छायाग्रभ्रमरेखा भाभ्रमरेखा भवति ।

वटेश्वराचार्येणापि वृत्त एवच्छायाभ्रमणं स्वीक्रियते तर्हि ब्रह्मगुप्तोक्तस्य खण्डनं स्वोक्तस्यापि खण्डनं भवेदिति खण्डनेनालम् । वस्तुतश्छायाभ्रमणमार्गः कुत्र कुत्र कीदृश इति प्रदर्श्यते ।

रविकेन्द्राच्छङ्क्वग्रगता रेखा पृष्ठक्षितिजधरातले यत्र लगति ततः शङ्कुमूलं यावत् छाया । एकस्मिन् दिने रविक्रान्तिर्यदि स्थिरा कल्प्यतेऽर्थादिकमेवाहोरात्रवृत्तं कल्प्यते तदा तदहोरात्रवृत्तस्थप्रतिरविकेन्द्रविन्दुतः शङ्क्वग्रगता रेखा यत्र-यत्र पृष्ठक्षितिजधरातले लगन्ति ततः शङ्कुमूलं यावत् छायाः । छाया स्वरूपदर्शनेन सिध्यति यच्छङ्क्वग्रादहोरात्रवृत्ताधारा सूची कार्या सा विषमसूची । पृष्ठक्षितिजधरातलेन छिन्ना यादृशं वक्रमुत्पादयति तादृश एव च्छाया भ्रमणमार्गः ।

अथ मेरौ छायाभ्रमणमार्गः कीदृश इति विचार्यते । शङ्क्वग्रं ध्रुवसूत्रेऽस्ति, शङ्क्वग्रादहोरात्रवृत्ताधारा विषमसूची पृष्ठक्षितिजधरातलेन (नाड़ीवृत्तधरातलसमानान्तरधरातलेन) छिन्ना सती छेदितप्रदेशो वृत्ताकार एव भवति (मेरुवासिनां क्षितिजं नाड़ीवृत्तम्) । नाड़ीवृत्तधरातलाहोरात्रवृत्तधरातलयोः समानान्तरत्वादहोरात्रवृत्ताधारविषयसूची आधारवृत्तधरातल (अहोरात्रवृत्तधरातल) समानान्तरधरातलेन पृष्ठक्षितिजधरातलेन (नाड़ीवृत्तधरातलसमानान्तरधरातलेन) छिन्ना सती छेदितप्रदेशो वृत्ताकार एव भवितुमर्हति, प्रतिभाबोधकयुक्त्या, अतः सिद्धं मेरौ सदैव भाभ्रममार्गो वृत्ताकार एव भवेत् । साक्षदेशे न्यूनाधिकशङ्कुवशेन रेखा, वृत्तम्, दीर्घवृत्तम्, परवलयम्, अतिपरवलयम्' इति पञ्चधा छायाभ्रमणमार्गो भवति । निरक्षेविषुवद्दिने छायाभ्रमणमार्गो रेखाकारो भवति । ग्रन्थकारेण (वटेश्वरेण) यत्खण्डयते तत्समीचीनमेव । सूर्यसिद्धान्तेऽपि 'इष्टेऽन्हिमध्ये प्राक्

पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः । वचनेनानेन च्छायाभ्रमणमार्गो वृत्ताकार एव सूर्येण स्वीकृतं यत्खण्डनं सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करेण 'भात्रितयाद् भाभ्रमण' मित्यादिना कृतम् । छायाभ्रमणसम्बन्धे विशेषार्थं भाभ्रमरेखानिरूपणं द्रष्टव्यमिति ।

हि. भा.—मन्दयुक्त दूषित बुद्धि से छायासिद्धि कही गई है। बुद्धि प्रयुक्त ज्वर से प्रचलित तीनकालिक छायाग्रभ्रमण जहां होता है वहीं भाभ्रमण (छायाभ्रमण) है । ब्रह्मगुप्त के छायाभ्रमण मेरु से भिन्न स्थल में वृत्त में ठीक नहीं है (अर्थात् ब्रह्मगुप्त जो वृत्ताकार छायाभ्रमण मार्ग मानते हैं सो मेरु में ठीक है। मेरु से भिन्न स्थल में ठीक नहीं है) इस विषय को तुच्छ बुद्धि वाले ब्रह्मगुप्त नहीं देखते । इसलिये मेरु से भिन्न स्थल में छायाभ्रमण को ब्रह्मगुप्त नहीं जानते हैं। उनकी आगे की छाया भी मेरु से भिन्न-स्थान ही के लिए है ।।३५-३७।।

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने वृत्ताकार भाभ्रम रेखा सम्बन्ध से दिशा का ज्ञान किया है जो अधोलिखित है ।

"त्रिच्छायाग्रजमत्स्यद्वयमध्यगसूत्रयोर्युतिर्यत्र" । इत्यादि

इष्ट दिन में दिग्मध्यस्थशङ्कु के छायात्रय जानकर उनके अग्रों से मत्स्यद्वय (दो मछली के आकार) बनाकर उनके मुख पुच्छ मध्यगत रेखाद्वय का जहां योग होता है वहां से जो वृत्तपरिधि होती है वह छायाग्रगत होती है। अतः वृत्तपरिधि रेखा ही छायाग्रभ्रम रेखा होती है। ब्रह्मगुप्त तीन कालिक छायाओं के परस्पर अग्रगत रेखाओं से जो त्रिभुज बनता है तदुपरिगत जो वृत्त होता है उसी को छाया भ्रमण मार्ग कहते हैं। आचार्य (वटेश्वर) इसका खण्डन करते हैं। तब बहुत अच्छा समझा जाता यदि ये स्वयं वृत्ताकार छायाभ्रमण नहीं मानते । वस्तुतः छाया भ्रमण मार्ग कहां कहां कैसा होता है सो मैं दिखलाता हूं।

रवि केन्द्र से शङ्कु के अग्रगत रेखा पृष्ठक्षितिज धरातल में जहां लगती है वहां से शङ्कुमूल तक रेखाछाया है। एक दिन में यदि रवि की क्रान्ति स्थिर मानी जाय याने एक दिन में एक ही अहोरात्र वृत्त माना जाय तब अहोरात्र वृत्त के प्रति बिन्दुस्थ रवि केन्द्र से शङ्कु के अग्रगत रेखायें पृष्ठ क्षितिज धरातल में जहां-जहां लगती है वहां-वहां से शङ्कु मूल तक छाया में हैं। छाया के स्वरूप देखने से सिद्ध होता है कि शङ्क्वग्र से अहोरात्रवृत्त के आधार पर जो विषमसूची होगी उसको पृष्ठ क्षितिज धरातल से काटने पर जैसी उसकी आकृति होगी वैसा ही छायाभ्रमण मार्ग होगा। मेरु में छायाभ्रमण मार्ग के लिए विचार करते हैं। मेरुवासियों के क्षितिज वृत्त नाड़ीवृत्त है। नाड़ीवृत्त और अहोरात्र वृत्त समानान्तर है इसलिए शङ्क्वग्र से अहोरात्र वृत्ताधारा विषमसूची को पृष्ठ क्षितिज धरातल (नाड़ीवृत्त धरातल के समानान्तर धरातल) से काटने से कटित प्रदेश वृत्ताकार होगा (प्रतिभाबोधक की युक्ति से) अतः मेरु में सर्वदा छायाभ्रमण मार्गवृत्ताकार ही होगा, यह सिद्धान्त हुआ। साक्ष देश में न्यूनाधिक शंकुवश से रेखा, वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय, अतिपरवलय,

ये पांच तरह के छायाभ्रमण मार्ग होते हैं, निरक्ष देश में विषुवद्दिन में छायाभ्रमण मार्ग रेखाकार होता है। आचार्य (वटेश्वर) का खण्डन ठीक है। सूर्यसिद्धांत में "इष्टेऽह्नि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे। मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः" इससे सूर्य भगवान् (सूर्यांशपुरुष) ने भी छायाभ्रमणमार्ग वृत्ताकार ही कहा है। लल्ल आदि आचार्य ने भी इसी तरह कहा है जिनका खण्डन सिद्धांतशिरोमणि में भास्कराचार्य "भात्रितयाद्भाभ्रमणम्" इत्यादि से किया हैं। छायाभ्रमण के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए "भाभ्रमरेखा निरूपण" पुस्तक देखनी चाहिये ।।३५-३७ ।।

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्त-चन्द्रभां खण्डयति।

अन्यद्योजनबिम्बैर्निरागमैश्चेन्दुभा कुवद्या सा।
निजकर्णे यातीति ग्रहणे प्रतिवेत्ति नो किञ्चित् ।।३८।।
नावगतो वा गोलो ग्रहादिकस्थानमपि नो क्षेत्रम्।
नापि रविग्रहहृदयं जिष्णुसुतो गोलबाह्योऽयम् ।।३९।।

वि.भा.—निरागमैः (अप्रामाणिकैः) अन्यद्योजनबिम्बैः कुवत् (पृथिवी-सदृशी, अर्थाद्यथा पृथिव्या छाया (भूभा) भवति तथैव) येन्दुभा (या चन्द्रच्छाया) सा ग्रहणे निजकर्णे (चन्द्रभाकर्णे) याति, इति हेतोर्जिष्णुसुतः (ब्रह्मगुप्तः) किंचित् नो प्रतिवेत्ति (जानाति)। गोलो नावगतः (न विदितः) ग्रहादिकस्थानमपि (ग्रह-मन्दोच्चशीघ्रोच्चादिस्थानमपि) न वेत्ति, तथा क्षेत्रम् (तत्तद्विषयसाधनार्थमुपयुक्तं क्षेत्रम्) रविग्रहहृदम् (सूर्यमध्यग्रहणादिकमपि) जिष्णुसुतो ब्रह्मगुप्तो नो वेत्त्यतोऽयं ब्रह्मगुप्तः, गोलबाह्यः (गोलज्ञानबहिर्भूतः) अस्तीति ।।३८-३९।।

उपपत्तिः

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन चन्द्रभासम्बन्धेन किमलिखितमस्ति किन्तु ब्रह्मसिद्धान्ते ब्रह्मणा यत्र भूभानयनमस्ति तत्रैव चन्द्रभाकर्णसाधनमपि कृतमस्ति, यथा तद्वाक्यानि।

भूच्छायेलागतस्याथ तरणिभ्रमणे विधोः।
सूचीमध्यमकक्षायां कियतीति महीश्रवः ।।
स्फुटसूर्येन्दुभक्तिघ्नो भक्तो मध्यमया फलम्।
स्फुटार्कचन्द्रकर्णाप्तं फलमर्कमृगांकयोः ।।
मानेच्छमध्यकर्णास्तु प्रोज्भय सूच्यापि भाश्रवः।
तिथ्यः कलायां सन्त्येवमेतदर्धं विधोः श्रवः ।।

एतत्पद्यदर्शनेन "निजकर्णे यातीत्यादि" वटेश्वरकथनं न सिध्यति। चन्द्रभाकर्णसाधनं ब्रह्मणा कृतं तावता तस्य को दोषः, ब्रह्मगुप्तेन तु चन्द्रभायाश्चर्चा कुत्रापि न कृता आचार्यकथनमिदं तथ्यहीनमिति ।।३८-३९।।

हि.भा.—अप्रामाणिक दूसरे योजन बिम्ब से पृथिवी की तरह अर्थात् जैसी पृथिवी की छाया उसी तरह चन्द्रभा होती है। वह चन्द्रभा ग्रहण में अपने कर्ण (चन्द्रभाकर्ण) में जाती है। ब्रह्मगुप्त कुछ भी नहीं जानते हैं।

ब्रह्मगुप्त गोल नहीं जानते हैं, ग्रह आदि मन्दोच्च शीघ्रोच्च और पातों के स्थान नहीं जानते हैं। क्षेत्र को (उन-उन विषयों के साधन के लिए उपयुक्त क्षेत्र) नहीं जानते हैं। सूर्य के मध्य ग्रहणादि को भी नहीं जानते हैं। वे (ब्रह्मगुप्त) गोलज्ञान से बहिर्भूत हैं ॥३८--३९॥

उपपत्ति

ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में ब्रह्मगुप्त ने चन्द्रमा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है। चन्द्रमा के विषय में ब्रह्मसिद्धांत में ब्रह्मा ने लिखा है जो अधोलिखित है—

"भूच्छायेला गतस्याथ तरणिभ्रमणे विधोः।" इत्यादि

इन पद्यों के देखने से "निजकर्णे यातीत्यादि" इससे जो वटेश्वराचार्य खण्डन करते हैं वह ठीक नहीं मालूम पड़ता है। ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में उपर्युक्त विषय की कहीं भी चर्चा नहीं है, इसलिये यह आचार्य का खण्डन स्वकपोलकल्पित कहना चाहिये ॥३८-३९॥

इदानीं राहुकृतग्रहणं भवतीत्याह।

खण्डयति तमोऽर्धेन क्षमाकरं विधुदलेन तिग्मांशुम्।
राहुकृतं च ग्रहणं प्राहुस्ते समस्त आचार्याः ॥४०॥

वि.भा.—तमः (राहुः) अर्धेन क्षपाकरं (चन्द्रं) खण्डयति विधुदलेन (चन्द्रबिम्बप्रविष्टेन राहुणा चन्द्रबिम्बार्धेन) तिग्मांशुम् (सूर्यं) खण्डयति, ते समस्त आचार्याः (सर्वे आचार्याः) राहुकृतं ग्रहणं प्राहुः (कथितवन्तः) ॥४०॥

उपपत्तिः

चन्द्रग्रहणे पूर्वतः स्पर्शः पश्चिमतो मोक्षः। सूर्यग्रहणे चैतद्विपरीतम्। राहोर्गतेरनिश्चयात् (राहोः कस्यां दिशि गतिर्यथाऽन्येषां सूर्यादीनां ग्रहाणां पूर्वाभिमुखं गतिस्तथा राहोर्नास्ति) सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणे स्पर्शमोक्षदिशोर्निश्चयत्वाद्राहुकृतं ग्रहणं न भवतीति सिद्धान्तम्। पुराणादौ राहुकृतग्रहणस्य वर्णनमस्ति तेनैव हेतुना भास्करेण सिद्धान्तशिरोमणौ केनापि रूपेण ज्यौतिषमतयोः समन्वयः कृतस्तद्वाक्यं यथा—

राहुः कुभा मण्डलगः शशाङ्कं शशाङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्ः।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥

वस्तुतो ग्रहणेन सह राहोर्न कोऽपि सम्बन्धः। सूर्यबिम्बभूबिम्बयोः क्रमस्पर्शरेखा यत्र यत्र चन्द्रकक्षायां लगन्ति तज्जनितमार्गो वृत्ताकारो भवति तदेव भूभावृत्तम्, वर्धितरविकर्णैश्चन्द्रकक्षायां यत्र लगति तत्र तद्वृत्तकेन्द्रं भवति, पूर्णान्ते रवितः षड्भान्तरे चन्द्रो भवति रवितः षड्भान्तरे सदैव भूभाकेन्द्रम्। तेन यस्यां पूर्णिमायां मानैक्यार्धादूनः शरो भवति तस्यां ग्रहणं भवति, मानैक्यार्धतुल्ये शरे वहिः स्पर्शो भवति छाद्यच्छादकबिम्बयोश्चन्द्रबिम्बभूभाबिम्बयोः अतश्चन्द्रग्रहणे चन्द्रश्छाद्यो भूभा छादिका, दर्शः सूर्येन्दुसंगम इत्युक्तेरमायां सूर्याचन्द्रमसो-

रेकसूत्रे ऊर्ध्वाधःक्रमेण स्थितत्वाद् यस्याममायां तयोर्मानैक्यार्धतुल्यश्चन्द्रशरो भवेत्तस्यां तयोर्बिम्बयोर्बहिःस्पर्शो भवति मानैक्यार्धान्न्यूने शरे ग्रहणं भवति, सूर्यग्रहणे चन्द्रश्छादकः सूर्यश्छाद्यो भवत्येतत्प्रसंगे भास्करेण कथ्यते। यथा—

"पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्यचन्द्रो
भानोर्बिम्बं स्फुटदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात्स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्याथ एव
क्वापि च्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात्॥"

सूर्यचन्द्रग्रहणयोः स्पर्शमोक्षादिस्थितिविलोकनेन राहुकृतं ग्रहणं न भवतीति सिद्धान्तितम्। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन।

आर्यभटो जानाति ग्रहाष्टगतिं यदुक्तवांस्तदसत्।
राहुकृतं न ग्रहणं तस्मातो नाष्टमो राहुः॥

इत्यादिनाऽऽर्यभटीयराहुकृतग्रहणस्य खण्डनं क्रियते। आर्यभटेन राहुकृतं नोक्तं ब्रह्मगुप्तवाग्बलमेतत्। तथा च तद्वाक्यम्।

छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूछाया। (गोल पा. श्लो. २७)

राहुकृतग्रहणस्य तु बहूनि खण्डनानि सन्ति, वटेश्वराचार्येणापि राहुकृतं सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणं स्वीक्रियते कथ्यते च यदत्र समस्तानामाचार्याणां सम्मतिरस्ति, मन्मते तु कोऽपि सिद्धान्तग्रन्थप्रणेताऽऽचार्यः स्वसिद्धान्ते राहुकं ग्रहणं लिखितवान्। वस्तुतो राहुकृतं ग्रहणमयुक्तमिति ॥४०॥

हि. भा.—राहु आधे बिम्ब से चन्द्रबिम्ब को खण्डित करता है, चन्द्रबिम्बार्ध से सूर्य को खण्डित करता है। राहुकृत (राहु द्वारा) ग्रहण को सब आचार्य कहते हैं ॥४०॥

उपपत्ति

चन्द्रग्रहण में पूरब से स्पर्श और पश्चिम से मोक्ष होता है, सूर्यग्रहण में इसके विपरीत होता है। जैसे सूर्य आदि ग्रहों की गति पूर्वाभिमुख है वैसे राहुगति का कोई निश्चय नहीं है इसलिये राहुकृत ग्रहण नहीं होता है। लेकिन पुराणादि में राहुकृत ग्रहण के वर्णन है इसलिये पुराणादि कथित ग्रहण और ज्योतिष में कथित ग्रहण के समन्वय के लिये भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि में कहते हैं—

"राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं शशाङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्। इत्यादि।

अर्थात् शंकर जी के वरप्रदान से अन्धकारमय राहु भूभाबिम्ब में प्रवेश कर चन्द्रमा को ढकता है और सूर्यग्रहण के समय चन्द्रबिम्ब में प्रवेश कर राहु सूर्यबिम्ब को ढकता है। इस तरह किसी को ग्रहण में कुछ कहने का अवसर नहीं होगा। लेकिन यदि ठीक से देखा तो ग्रहण के साथ राहु का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। सूर्यविम्ब और भूबिम्ब की क्रमस्पर्शरेखायें चन्द्रकक्षा में जहां-जहां लगती हैं वह प्रदेश वृत्ताकार होता है उसी को भूभावृत्त कहते हैं। वर्धित रविकरणं चन्द्रकक्षा में जहां लगता है वही बिंदु उस वृत्त का केन्द्र

(भूभा केन्द्र) होता है। पूर्णिमा में सूर्य से ६ राशि पर चन्द्र रहते हैं और सूर्य से बराबर भूभा केन्द्र ६ राशि पर रहता है। इसलिए पूर्णान्त में चन्द्रबिम्ब और भूभाबिम्ब के एक जगह रहने के कारण ग्रहण की सम्भावना हो सकती है। तब प्रत्येक पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण क्यों नहीं होता ? इसका कारण यह है चन्द्रबिम्ब और भूभाबिम्ब का मानैक्यार्ध (व्यासार्धयोग) चन्द्रशर के बराबर जब होता है। तब दोनों बिम्बों का बहिःस्पर्श होता है। मानैक्यार्ध से चन्द्रशरके न्यून रहने से ग्रहण होता है यह स्थिति प्रत्येक पूर्णिमा में नहीं होती है। जिस पूर्णिमा में वैसी स्थिति होती है उसमें ग्रहण होता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र छाद्य और भूभा छादिका है।

सूर्यग्रहण में सूर्य छाद्य और चन्द्र छादक होते हैं, इस प्रसंग में भास्कराचार्य कहते हैं—

"पश्चाद्भागांजलदवधः संस्थितोऽभ्येत्य" इत्यादि।

सूर्य और चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श और मोक्षादिस्थिति देखने से साफ मालूम होता है कि राहुकृत ग्रहण नहीं होता है। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त

'आर्यभटो जानाति ग्रहाष्टगतिम्" इत्यादि।

इससे आर्यभटीय राहुकृत ग्रहण का खण्डन करते हैं, ब्रह्मगुप्त का यह व्यर्थ खण्डन है। आर्यभट ने राहुकृत ग्रहण नहीं कहा है जैसा कि उनका वचन है—

"छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूछाया।" (गोलपाद श्लो २७)

राहुकृत ग्रहण का बहुत खण्डन है। ग्रन्थकार वटेश्वर भी राहुकृत सूर्य और चन्द्र के ग्रहण मानते हैं और कहते हैं कि इस विषय को सब आचार्य कहते हैं। लेकिन मेरा विचार है कि ज्योतिःसिद्धान्त ग्रन्थ के रचयिता किसी भी आचार्य ने अपने सिद्धान्त में राहुकृत ग्रहण को नहीं लिखा होगा। अगर किसी ग्रन्थ में लिखा भी होगा तो वह अयुक्त समझना चाहिये। वस्तुतः राहुकृत ग्रहण अयुक्त है ॥ ४० ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तवित्रिभलग्ननतांशं खण्डयति

वित्रिभलग्नापक्रमपलांश योगान्तरं त्रिभोनलग्नस्य।
नरभागास्तदयुक्तं दृक्षेपं वित्रिभस्य यतः ॥ ४१ ॥

वि. भा.—वित्रिभ लग्नापक्रम पलाशयोगान्तरं (वित्रिभलग्नक्रान्त्यक्षयोर्योगान्तरं) त्रिभोनलग्नस्य (वित्रिभलग्नस्य) नतभागाः (नतांशाः) इति यदुक्तं तदयुक्तं (तन्न तथ्यम्) यतस्तद्वित्रिभस्य दृक्षेपमस्तीति ॥ ४१ ॥

उपपत्तिः

अनेन ब्रह्मगुप्तोक्तस्याधोलिखितस्य खण्डनं क्रियते—

तस्य कान्तिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समा न तदा ॥
अवनतिरतोऽन्यथा भवति सम्भवे तदुदयैर्विलग्नसमम्।
कृत्वा तदुदितघटिकास्तच्छङ्कुस्तच्चरप्राणैः ॥

अवनतेरानयस्य दृक्क्षेपाधीनत्वाद्यदा दृक्क्षेपाभावस्तदाऽवनतेरभावः। आचार्येण (ब्रह्मगुप्तेन) स्वल्पाक्षदेशे याम्योत्तरवृत्त एव स्वल्पान्तराद्वित्रिभस्थितिं प्रकल्प्य तस्य दिनार्धवत् क्रान्त्यक्षसंस्कारेण नतांशप्रमाणमानीतं तत्समीचीनं नास्तीति प्रत्यक्षमेव दृश्यते वटेश्वरेण यत्खण्डयते तत्समीचीनं परं तत्र कीदृशेन भाव्यमिति न कथ्यत इति ।। ४१ ।।

हि. भा.—वित्रिभलग्न की क्रान्ति और अक्षांश के योग और अन्तर करके वित्रिभ-लग्न नतांश प्रमाण जो कहा गया है सो ठीक नहीं है । क्योंकि वह वित्रिभ का दृक्क्षेप है ।

उपपत्ति

इससे अधोलिखित ब्रह्मगुप्तोक्त का खण्डन करते हैं—

"तस्य क्रान्तिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समान तदा ।" इत्यादि

नति के आनयन दृक्क्षेप के अधीन है इसलिये जब दृक्क्षेप का अभाव होगा तब नति का अभाव होगा । ब्रह्मगुप्त स्वल्पाक्ष देश में याम्योत्तर वृत्त ही में स्वल्पान्तर से वित्रिभ स्थिति को मान कर दिनार्ध काल की तरह वित्रिभ क्रान्ति और अक्षांश के संस्कार करके नतांश प्रमाण लाये हैं। अक्षांश क्रान्ति के समत्व में वित्रिभनतांशाभाव होगा । वित्रिभ नतांशा-नयन ठीक नहीं है यह प्रत्यक्ष ही देखते हैं । ग्रन्थकार (वटेश्वराचार्य) जो खण्डन करते हैं वह ठीक है, परन्तु वहां क्या होना चाहिये सो नहीं कहते हैं ।। ४१ ।।

इदानीं ब्रह्मगुप्तोक्तदृक्कर्मसंस्कृतग्रहः समीचीनो नेति खण्ड्यते ।

उदयास्तमयभानोरि टे काले ग्रहस्य दृक्कर्म ।
कृतवान् जिष्णुसुतो यस्त्वौदयिके सुगणितजाड्यं तत् ।। ४२ ।।

वि. भा.—इष्टे काले (इष्टसमये) उदयास्तसमयभानोः (सूर्योदयास्त कालयोः) ग्रहस्य दृक्कर्म औदयिके ग्रहे जिष्णुसुतः (ब्रह्मगुप्तः) यत्कृतवान् तत् सुगणितजाड्यमस्तीति ।। ४२ ।।

उपपत्तिः

ब्रह्मगुप्तेनाऽयनदृक्कर्मानयनं कृत्वा तत्संस्कृतग्रहं कृत्वा पश्चादक्षजदृक्कर्म-साधनं कृतम् । तत उत्तरे शरेऽक्षजदृक्कर्मकलाभिरूनो दक्षिणे शरे युतः कृतायन-दृक्कर्मफलो ग्रह उदयाख्यलग्नं भवति । अस्तलग्नसाधने तु उत्तरे शरेऽक्षज दृक्कर्मकलासहितो दक्षिणे रहितः सषड्भः कृतायनफलः खेटो ग्रहे पश्चिम-क्षितिजेऽस्तं गते पूर्वक्षितिजे यल्लग्नं तदस्तलग्नं भास्करमते । अत्र ब्रह्मगुप्तेन तस्मात् षड्राशिं विशोध्य पश्चिमक्षितिजे ग्रहेऽस्तंगते यदस्तलग्नं तदेव ग्रहास्त-लग्नं कल्पितम् ।

ब्रह्मगुप्तोक्तमायनदृक्कर्म साधनम्—

विक्षेप सत्रिराशि क्रान्तिवधो व्यासदलहृतो लिप्ताः ।
शोध्यास्तयोः समदिशोर्यद्यन्यदिशोस्तयोः क्षेप्याः ।।

अक्षजदृक्कर्मसाधनम्—

विषुवच्छाया गुणिताद्विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्सौम्यात् ।
फलमृणधनं धनमृणं याम्यादुदयास्तमयलग्ने ॥

दृक्कर्मानयने किं स्थौल्यमिति न प्रतिपादितं ग्रन्थकारेण (वटेश्वरेण) किन्तु तत्संस्कृतग्रहे दोषो दीयते तत्र किं भवेदित्यपि न कथ्यते इति । आर्यभटोक्ताऽऽयनाक्षदृक्कर्मणोः खण्डनं ब्रह्मगुप्तेन यत्कृतं तत्समाधानं तत्पक्षपातिनाऽनेन ग्रन्थकारेण न क्रियते केवलं तदुक्तं (ब्रह्मगुप्तोक्तं) खण्ड्यते तत्र स्वमतं प्रतिपाद्यते नहि, दृक्कर्मसंस्कारे ब्रह्मगुप्तेन यदभिहितं तद्भिन्नक्रियाकरणे न काऽपि युक्तिरिति ॥ ४२ ॥

हि. भा.—इष्ट समय में सूर्योदय और सूर्यास्तकाल में औदयिक ग्रह में ग्रह के दृक्कर्मसंस्कार ब्रह्मगुप्त ने जो किया है सो ठीक नहीं है ॥

उपपत्ति

ब्रह्मगुप्त ने पहले आयन दृक्कर्म साधन करके ग्रह में उसके संस्कार कर पीछे अक्षज दृक्कर्म साधन किये हैं। उत्तरशर में आयनदृक्कर्म संस्कृतग्रह में अक्षज दृक्कर्मकला को घटाने से दक्षिण शर में जोड़ने से उदयलग्न होता है। अस्त लग्न साधन में उत्तरशर में आयनदृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षज दृक्कर्म कला को जोड़ने से दक्षिण शर में घटाने से और सषड्भ (६ राशि जोड़ने से) ग्रह पश्चिम क्षितिज में अस्त रहने पर पूर्व क्षितिज में जो लग्न होता है वह भास्कर के मत में अस्त लग्न है। यहां ब्रह्मगुप्त ने उसमें ६ राशि घटाकर पश्चिम क्षितिज में ग्रहास्त रहने पर जो लग्न होता है उसी को ग्रहास्त लग्न माना है। यहां पर ब्रह्मगुप्तोक्त आयन दृक्कर्म साधन अधोलिखित है—

"विक्षेपसत्रिराशि क्रान्तिवधो व्यासदलहृतो लिप्ताः ।" इत्यादि

अक्षज दृक्कर्म साधन—

"विषुवच्छाया गणिताद् विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्सौम्यात् ।" इत्यादि

दृक्कर्म साधन में क्या त्रुटि है इस बात को वटेश्वर नहीं कहते किन्तु दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में दोष देते हैं वहां क्या होना चाहिये सो भी नहीं कहते हैं। आर्यभटोक्त आयन दृक्कर्म और अक्षज दृक्कर्म का खण्डन ब्रह्मगुप्त ने जो किया है उनका समाधान आर्यभट पक्षपाती वटेश्वराचार्य ने नहीं किया केवल खण्डन करते हैं। अपना मत कुछ भी नहीं कहते हैं। दृक्कर्म-संस्कार के विषय में ब्रह्मगुप्त ने जो कहा है उसके सिवाय दूसरा क्या हो सकता है ॥ ४२ ॥

इदानीं चन्द्रशृङ्गोन्नतौ ब्रह्मगुप्तोक्तस्पष्टभुजं खण्डयति

भानुभुजादियोगाच्चन्द्रे शुक्ले प्रकल्पितं तेन ।
नो लग्नभुजानुगतं वेत्ति न शुक्लं सुतो जिष्णोः ॥ ४३ ॥

वि. भा.—भानुभुजादियोगात् (रविभुजचन्द्रभुजयोः संस्काररूपात्स्पष्टभुजात्) तेन (ब्रह्मगुप्तेन) चन्द्रे शुक्लं प्रकल्पितं, लग्नभुजानुगतं (लग्नभुजसम्ब-

न्वितं) नो ग्रतो जिष्णोः सुतः (जिष्णुपुत्रो ब्रह्मगुप्तः) शुक्लं (शुक्लाङ्गुलं) न वेत्तीति ॥ ४३ ॥

उपपत्तिः

प्रथममेतदर्थं ब्रह्मगुप्तमतं प्रतिपाद्यते। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते तदुक्तवाक्यम्—

पृथगन्तरसंयोगौ भुजो यतोऽर्कात् शशी समान्यदिशोः।
दृग्ज्यावर्गात् स्वात् पृथक् स्ववर्गं विशोध्य पदे ॥
वियुतसहिते रवीन्द्वोरेकान्यकपाल संस्थयो राद्यः।
रविशशिदृक्शङ्क्वन्तरमन्योऽदृग् दृश्यशङ्क्वैक्यम् ॥
आद्यान्यवर्गयोर्युतिमूलं पूर्वापरा भुजात्कोटिः।
भुजकोटिकृतियुतिपदं तिर्यक् कर्णोऽस्य चन्द्रोऽग्रे ॥

रविचन्द्रयोर्भुजयोः समान्यदिशोरन्तरसंयोगो क्रमशः स्पष्टभुजो भवेत्। रवितो यद्दिशि चन्द्रः सैव स्पष्टभुजदिग् ज्ञेया। स्वस्वदृग्ज्यावर्गे स्वस्वभुजवर्ग-विहीने पदे तदा पूर्वापररेखायां तयो रवीन्द्वोः कोटी भवतः। एकान्यकपाल-संस्थयो रवीन्द्वोः कोट्योर्वियुतसहिते ये भवतः स आद्यः। रविचन्द्रदृक्शङ्क्वन्तर मन्यसंज्ञकः। अर्थाद् यदि रविचन्द्रौ क्षितिजादुपरि भवेतां तदा तयोर्दृक्शंकू एक-जातीयौ भवतोऽतस्तयोरन्तरमन्यसंज्ञं भवति। यद्येकः क्षितिजादुपरि, अन्यः क्षिति-जादधस्तदाऽधःस्थस्यादृक्शंकुरूर्ध्वस्थस्य दृक्शङ्कुः। ओतऽनयोरैक्यं तदाऽन्यो भवति। भुजकोटिवर्गयोगपदं तिर्यक् कर्णः। कर्णाग्रे चन्द्रबिम्बमस्तीति ॥

अत्रैकस्मिन् गोले रविचन्द्रौ प्रकल्पबिम्बान्तरसूत्ररूपः कर्णः साध्यते। रविकेन्द्राच्चन्द्रशङ्कूपरि यो लम्बस्तन्मूलाच्चन्द्रबिम्बकेन्द्रपर्यन्तमन्यसंज्ञम्। लम्बमूलात्पूर्वापररेखायाः समानन्तरा या रेखा तदुपरि रविकेन्द्रात्कृतो यो द्वितीयो लम्बस्तन्मूलात्प्रथमलम्बमूलपर्यन्तमेवाऽऽद्यसंज्ञा। तयोराद्यान्ययोर्वर्गयुतेः पदं द्वितीयलम्बमूलाच्चन्द्रबिम्बकेन्द्रपर्यन्तं रेखा द्वितीयलम्बोपरि लम्बरूपा भवेत् (रे० ११ अ० युक्तया) द्वितीयलम्बश्च पूर्वसाधितस्पष्टभुजसमः। तयोर्वर्गयोग-पदमेकगोलीय-रविचन्द्रयोर्बिम्बान्तरसूत्रं कर्णो भवति। एवमत्र भुजकोटिकर्णा यस्मिन् धरातले तत् क्षितिजधरातले समप्रोतधरातलवन्न लम्बरूपमतो द्रष्टुः संमुखे नेदं क्षेत्र मादर्शवत्। अतएवाऽस्यक्षेत्रस्य स्वशृङ्गोन्नतौ भास्करेण खण्डनं कृतम्। शृङ्गोन्नत्युत्तराधिकारे ब्रह्मगुप्तेन—

व्यर्केन्द्वर्धभुजज्या द्विगुणाऽर्केन्द्वन्तरं भवति कर्णः।
तद्वर्गान्तरपदमिदमिन्दुभुजाग्रान्तरं कोटिः ॥'

इत्यनेन प्रकारान्तरं प्रदर्शितम्। इत्यपि समीचीनं नास्ति। भास्करब्रह्म-गुप्तयोः प्रकारेण शृङ्गोन्नतिर्न समीचीनेति कमलाकरेण सिद्धान्ततत्त्वविवेके

स्पष्टं प्रतिपादितम् । एकगोलस्थरविचन्द्राभ्यां यत्सर्वं कार्यं कृतं तन्न युक्तं स्वस्वगोलस्थिताभ्यामेव ताभ्यां सर्वं कार्यं (परिलेखादिकं) समीचीनं भवेत् वटेश्वराचार्यकथनमत्र समीचीनमिति पूर्वोपपत्तिदर्शनैव स्फुटमिति ।।

हि. भा.—रवि और चन्द्र के भुजसंस्कार रूप स्पष्ट भुज से चन्द्र में जो शुक्लाङ्गुल की कल्पना ब्रह्मगुप्त ने की है लग्नभुज का अनुसरण नहीं किया गया अतः ब्रह्मगुप्त शुक्ल को नहीं जानते हैं ।।

उपपत्ति

पहले इसके लिये ब्रह्मगुप्त मत का प्रतिपादन करते हैं । इसके सम्बन्ध में उनका निम्नलिखित वाक्य है—

"पृथगन्तरसंयोगौ भुजो यतोऽर्कात् शशी सामान्यदिशोः" इत्यादि ।

रवि और चन्द्र के भुजों के एक दिशा में अन्तर भिन्न दिशा में योग करने से स्पष्ट भुज होता है । रवि से जिधर चन्द्र रहते हैं वही स्पष्टभुज की दिशा है । अपने अपने दृग्ज्या वर्ग में अपने अपने भुजवर्ग को घटाकर मूल लेने से पूर्वापर रेखा में रवि और चन्द्र की कोटि होती है । एक कपाल में रवि और चन्द्र के रहने से कोटि के अन्तर भिन्न कपाल में योग करने से जो होते हैं वह आद्य संज्ञक है । रवि और चन्द्र के दृक्शङ्क्वन्तर अन्य संज्ञक है । अर्थात् यदि रवि और चन्द्र दोनों क्षितिज से ऊपर हैं तो दोनों दृक्शङ्कु एकजातीय होते हैं इसलिये उन दोनों का अन्तर अन्य संज्ञक होता है । यदि रवि और चन्द्र में एक क्षितिज से ऊपर और दूसरे क्षितिज से नीचे हैं तब नीचे वाले के अदृकशङ्कु और ऊपर वाले के दृक्शङ्कु होते हैं । इसलिये दोनों के योग यहां अन्य होता है । आद्य और अन्य के वर्ग योग मूल पूर्वापर कोटि होती है । भुज और कोटि के वर्गयोग मूल तिर्यक्रूप कर्ण होता है । इस कर्ण के अग्र में चन्द्रबिम्ब केन्द्र है ।।

एक गोल में रवि और चन्द्र को मान कर बिम्बान्तर सूत्ररूप कर्ण साधन करते हैं । रवि केन्द्र चन्द्रशङ्कु के ऊपर जो लम्ब होता है उसके मूल से चन्द्रबिम्ब केन्द्र तक अन्य संज्ञक है । लम्बमूल से पूर्वापर रेखा की जो समानान्तर रेखा होती है रविकेन्द्र से उससे ऊपर जो द्वितीय लम्ब होता है उसके मूल से प्रथम लम्बमूल पर्यन्त रेखा आद्य संज्ञक है (रेखा गणित युक्ति से) आग और अन्य के वर्ग योगमूल द्वितीय लम्ब मूल से चन्द्र बिम्ब केन्द्र पर्यन्त रेखा द्वितीय लम्ब के ऊपर लम्ब रूप होती है (रे० ११ अ० युक्ति से) और द्वितीय लम्ब स्पष्ट भुज के बराबर है ।

दोनों के वर्ग योगमूल एकधरातलीय रवि चन्द्र का बिम्बान्तर सूत्र कर्ण होना है । यहां भुजकोटि और कर्ण जिस धरातल में है वह क्षितिज धरातल में सम प्रोत धरातल की

तरह लम्ब रूप नहीं है। इसलिये दर्शक के सामने यह क्षेत्र ऐनक की तरह नहीं होता है। इसलिये इस क्षेत्र का खण्डन भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में किया है। शृङ्गोन्नति के उत्तराधिकार में ब्रह्मगुप्त ने—

"व्यर्केन्द्वर्धभुजज्या द्विगुणाऽर्केन्द्वन्तरं भवति कर्णः।" इत्यादि

इससे प्रकारान्तर दिखलाया है। परन्तु यह भी ठीक नहीं है। भास्कर और ब्रह्मगुप्त के प्रकार से शृङ्गोन्नति ठीक नहीं होती है। ये बातें सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कमलाकर ने स्पष्ट कही हैं। एक गोलस्थ रवि और चन्द्र से सब काम किये गये हैं उचित तो था स्वस्वगोलस्थ रवि और चन्द्र पर से परिलेखोपयुक्त उपकरण का साधन करना पर ऐसा नहीं किया गया है। यहां पर ग्रन्थकार (वटेश्वर) का खण्डन ठीक है। यद्यपि वे कारण नहीं बतलाते हैं तथापि उनका कथन ठीक है ॥ ४३ ॥

इदानीं ब्रह्मगुप्तं दूषयति

जिष्णुसुतदूषणानां संख्यां वक्तुं न शक्यते यस्मात्।
तस्मादयमुद्देशो बुद्धिमताऽन्यानि योज्यानि ॥ ४४ ॥
एकमपि न वेत्ति यतो जिष्णुसुतो गणितगोलानाम्।
न मया प्रोक्तानि ततः पृथक् पृथक् दूषणान्येषाम् ॥ ४५ ॥

वि. भा.—यस्मात् कारणात् जिष्णुसुतदूषणानां (ब्रह्मगुप्तदोषाणां) संख्यां (परिमितिं) वक्तुं (कथयितुं)मया न शक्यते, तस्मात् कारणात् अयं पूर्वप्रतिपादितो दोषोच्चय उद्देश उदाहरणरूप एव ज्ञेय; तदुदाहरणबलेन बुद्धिमताऽन्यानि दूषणानि योज्यानि। जिष्णुसुतः (ब्रह्मगुप्तः) यतः (यस्मात्कारणात्) गणितगोलानाम् (गणितानां गोलानां च) एकमपि विषयं न वेत्ति (जानाति) ततः (तस्मात् कारणात्) एषां (ब्रह्मगुप्तानां) पृथक् पृथक् दूषणानि (दोषकदम्बकानि) मया न प्रोक्तानि (न कथितानि) ॥ ४४—४५ ॥

हि. भा.—जिस कारण से ब्रह्मगुप्त के दोषों की संख्या हम नहीं कह सकते हैं इसलिये बुद्धिमान लोग दूसरे उपदेशों की योजना करें ॥ ४४ ॥

जिस कारण से ब्रह्मगुप्त गणित और गोल के एक विषय को भी नहीं जानते हैं इसलिये इनके दोषों को हमने अलग अलग नहीं कहा है ॥ ४५ ॥

इदानीं पुनर्ब्रह्मगुप्तं दूषयति

नो कालविधि गोलं नो तद्भ्रमणं न चाऽपि प्रत्यक्षम्।
गोलानुगतं सर्वं भ्रमणाज्ञानाद्दशेयमीदृशो ह्यस्य ॥ ४६ ॥

वि. भा.—जिष्णुसुतः कालविधि (कालगणनादिकं) नो वेत्ति, गोलं नो वेत्ति तद्भ्रमणं (गोलभ्रमणं) प्रत्यक्षमपि न किमपि वेत्ति सर्वं वस्तु पूर्वप्रतिपादितं कालविध्यादिकं गोलानुगतं (गोंधीलनं) अस्ति, भ्रमणाज्ञानात् (गोलभ्रमणाज्ञानात्) अस्य (ब्रह्मगुप्तस्य) इयमीदृशी दशा (वस्त्वनभिज्ञता) अस्तीतिः ।।४६।।

इति श्रीमदानन्दपुरीयमहदत्तसुतवटेश्वरविरचिते स्वनामसंज्ञिते स्फुटसिद्धान्ते मध्यगतिः प्रथमोऽधिकारः समाप्त ।।

इति दशमोऽध्यायः

हि. भा.—ब्रह्मगुप्त कालविधि को नहीं जानते हैं और गोल को तथा गोलभ्रमण को नहीं जानते हैं और प्रत्यक्ष (ग्रहणादि) को भी नहीं जानते हैं। सर्वविषय गोलाधीन है गोल के अज्ञान के कारण ब्रह्मगुप्त की इस तरह की दशा (हर एक विषय की अनभिज्ञता) है ।।

इति श्रीमदानन्दपुरीय महदत्त सुत वटेश्वर-विरचित अपने नाम वाले स्फुट-सिद्धान्त (वटेश्वरसिद्धान्त) में मध्यगति नामक प्रथम अधिकार समाप्त हुआ ।।

दसवां अध्याय समाप्त



वटेश्वर सिद्धान्तः

स्पष्टाधिकार

वटेश्वर सिद्धान्तः

स्पष्टाधिकारः

तत्रादौ स्फुटीकरणस्य प्रयोजनमाह ।

नीचोच्चवशाद् द्युचरः कक्ष्यायां दृश्यते न मध्यसमः ।
यस्मादतः स्फुटत्वं नीचोच्चविधानतो वक्ष्ये ॥१॥

वि. भा.—यस्मात्कारणात् नीचोच्चवशात् (नीचोच्चाकर्षणवशात्) द्युचरः (स्पष्टग्रहः) कक्ष्यायां (कक्षावृत्ते) मध्यसमः (मध्यग्रहतुल्यः) न दृश्यतेऽतो नीचोच्चविधानतः (नीचोच्चनियमतः) स्फुटत्वं (स्पष्टीकरणं) वक्ष्ये ॥

अत्र तदुक्तं भवति कक्षावृत्ते मध्यमग्रहः परिकल्पितः । न च कक्षावृत्ते पारमार्थिको ग्रहो मध्यमगत्या प्रतिवृत्ते भ्रमति, किन्तु स्पष्टगत्या प्रतिवृत्ते परिभ्रमन् कक्षावृत्ते दृष्यते, अतोऽहं तादृशं स्पष्टीकरणं वक्ष्ये येन प्रतिवृत्तस्थो ग्रहः कक्षावृत्ते दृक्तुल्यो भवेदिति ॥१॥

हि. भा.—अब स्फुटगति अध्याय आरम्भ किया जाता है इसमें पहले स्पष्टीकरण के प्रयोजन कहते हैं ।

जिस कारण नीच और उच्च के वश से स्पष्टग्रह कक्षावृत्त में मध्यमग्रह के बराबर नहीं देखे जाते हैं इसलिए नीच और उच्च के नियम से स्फुटीकरण को मैं कहता हूं ॥१॥

कक्षावृत्तस्थ स्पष्ट ग्रह मध्यमगति से प्रतिवृत्त में भ्रमण करते हैं, किन्तु स्फुटगति से प्रतिवृत्त में भ्रमण करते हुए ग्रह कक्षावृत्त में देखे जाते हैं इसलिए मैं उस तरह के स्पष्टीकरण को कहता हूं जिससे प्रतिवृत्त स्थितग्रह कक्षा वृत्त में दृकतुल्य हो ॥१॥

इदानी स्पष्टीकरणादि-सर्वग्रहगणितस्य ज्यामूलकत्वात्प्रथमं ज्या कथ्यन्ते

अर्धज्या रसबाणः करशशिशशिनो गजाङ्कचन्द्रमसः ।
वेदोत्कृत्यो व्योमस्तम्बेरम बाहवो रसाग्निगुणाः ॥२॥

नेत्र नवहुतभुजो गजजलधिकृताः कृतनभो बाणाः ।
नन्दशिलीमुखबाणाः शरशश्यृतवः खपर्वताङ्गानि ॥३॥

तत्त्वागाः खाष्टनगाः शराग्निनागा नवाष्ट पवनभुजः ।
रामाग्न्यङ्का अगगजनन्दाः कुवेद शून्य हरिणाङ्काः ॥४॥

शरखशिवाः स्तम्बेरम तिथिभुवः शशिधृति शशाङ्काः ।
सप्तर्तु सप्त शशिन स्थितिधृतयो द्व्यङ्ग नागहरिणधृतः ॥५॥

नवखाङ्क भुवो रस शर नव चन्द्राः करखशून्य कराः ।
नगकृत खकरा द्विनव व्योम भुजाः सप्त विश्व नेत्राणि ।। ६ ।।

खधृति यमा वेद भुजा द्विभुजा रसषड् भुजाक्षीणि ।
वसुखाग्नि यमाः खशरत्रिभुजा आकाश नन्द गुणयमलाः ।। ७ ।।

खगुण जिनाः खागजिना नवाभ्रतत्त्वान्यगाब्धि तत्त्वानि ।
वेदाष्टेषुयमाः शशिद्वचङ्गभुजा नगेषु रस यमलाः ।। ८ ।।

द्विनव रस यमाः सप्तद्विनग भुजाश्चन्द्र षट् नगाक्षीणि ।
वेदाङ्क भानि रस यमवसु नेत्राण्यष्ट पक्ष वसु यमलाः ।। ९ ।।

नव वस्वष्ट भुजा नवशशि नन्द यमा गजाब्धि नवदस्राः ।
नग सप्ताङ्कभुजाः कृत खखरामाः शशि गुणाभ्रहव्यभुजः ।। १० ।।

सप्त विशिखा भ्ररामास्त्रिनाग खगुणा नवाभ्रशशिरामाः ।
भूगुण भूगुणा अष्टाब्ध्येकगुणा रसधरा धरैकगुणाः ।। ११ ।।

विशिख विशिख बाह्वग्नयो बाहु धरित्री धराक्षि हव्यभुजः ।
क्रमपरिपाट्या जीवाश्छिद्रस्तम्भेरम द्विगुणाः ।। १२ ।।

शर खसुरा नखदेवा वेद त्रिसुरा नगाब्धि गुण रामाः ।
खाङ्ग त्रिगुणा भूनग नाकगृहा नेत्र नाग गुण रामाः ।। १३ ।।

शशिनन्दाग्निगुणा भूखाब्धिगुणा रसकराब्धिहव्यभुजः ।
खाग्नि समुद्र हुताशीस्त्रित्र्यब्धिगुणाः शराग्नि युग रामाः ।। १४ ।।

रसवह्निवेदरामा पर्वत वडवानाब्धि हुतभुजः ।
सप्त गुण वेदरामा नग गुण वेदाग्नयो लिप्ताः ।। १५ ।।

आसां विकलास्तिथयो नन्दभुजः खब्धयः पयोदशराः ।
रस विशिखाः सप्तसरा अग्निशरास्त्रिकृताः शराक्षीणि ।।१६।।

नवविशिखाः पञ्चयमाः खकृताः पञ्चाब्धयो द्विरदरामाः ।
धृतिरिषु वेदा मङ्गल विशिखाः पक्षेषवस्तुरङ्गगुणाः ।।१७।।

भूबाणारसबाणास्तत्त्वानि जलाग्नयः कुभुजः ।
नगवेदा नन्दकृता वसुनेत्राण्यग्नि जलधयो दन्दाः ।। १८ ।।

विशिख शरा नेत्रशराः कुभुजाः द्वियमा हुताशनावेदे- ।
षवोऽलनेत्राण्यब्धियमा द्वीषवो रससमुद्राः ।। १९ ।।

अङ्गान्यग्नि पृषेत्का वेदा नव वह्नयोऽङ्कागुणाः ।
रूपं सायकवेदाः कुशरा गजभूमयः शराः सूर्याः ।।२०

गजरामा नेत्रयमास्तत्त्वानि कृताब्धयः कुनेत्राणि ।
विश्वे भुजाः सायकनिगमा गुणबाहवस्तिथयः ।।२१ ।।

खभुजा नन्दगुणा दश त्रिशरा नन्दाऽब्धयोऽक्षशराः ।
विश्वे कुधृता अतिधृतिरङ्गानि गुण अब्धिनेत्राणि ॥ २२ ॥

सप्ताध्वर्यो धृतिर्नगविशिखा गुणसागराः शरगुणाश्च ।
दन्ता रामा रामकृता रामेषवो वासराः कुकृताः ॥ २३ ॥

सूर्यानन्द समुद्रा रदा नखा वह्नि चन्द्रमसः ।
ईशा मनवोऽग्निभुजा रसाग्नयो वेदसायका विधृतिः ॥ २४ ॥

वेदकृता वियदिषवः खं भूर्वेदा नगा रुद्राः ।
अष्टिर्नेत्रभुजा नव नेत्राण्यगवह्नयो विशिखवेदाः ॥ २५ ॥

पञ्चशराः षड्तवो नग मुनयो नन्द कुञ्जरास्त्रिदशः ।
नगरुद्रा रदचन्द्रा वसु मनवो वेदरस चन्द्राः ॥ २६ ॥

द्व्यष्टभुवः शून्य नखाः खाक्षिभुजा खाब्धिनेत्राणि ।
कृतकृतयस्त्र्यष्टभुजा रसखगुणा व्योमगीर्वाणाः ॥ २७ ॥

वेदेषुगुणा नवनगरामाः शराब्धयो रससमुद्राः ।
खाङ्गाब्धयोऽङ्क कुञ्जरवेदा धृतिसायका गजाब्धिशराः ॥ २८ ॥

नवनग विशिखा जलधर शश्यृतवो गुणकृताऽङ्गानि ।
रसनगरसाः खशशधरनागाः पृषत्काब्धिधरणिधरः ॥ २९ ॥

खाब्धिनागा रसकुगजास्त्रिशरगजा जलदनन्द वसवश्च ।
वसुभुज नन्दा नगरसविलानि रसखाभ्र हरिणाङ्काः ॥ ३० ॥

ऋत्वब्धिदिशो भगाष्टख भुवोऽङ्कनेत्र शशिचन्द्रमसः ।
कुनग शिवा विश्वाऽर्का रसतत्त्वभुवः खखाग्निरूपाणि ॥ ३१ ॥

वेदकृताग्नि शशाङ्का नवाष्टविश्वे शराग्निकृत चन्द्राः ।
ववष्ट मनवो भतिथयोऽब्ध्यग शरचन्द्रा द्विबाहुरस चन्द्राः ॥ ३२ ॥

खना गरस भुवो भूभूनग शशिनो रसाग नग चन्द्रमसः ।
भगशशिधृतयोऽगरसद्विप शशिनोऽगैकनन्दरजनीशाः ॥ ३३ ॥

सप्ताङ्गाङ्कभुवोऽष्टकुखभुजा व्योमागशून्यनेत्राणि ।
द्वीनभुजाः कृतनग शशिनेत्राण्यङ्गाक्षिबाहुनेत्राणि ॥ ३४ ॥

अङ्गागाक्षि भुजा रदरामभुजा रस पञ्चाग्नि नयनानि ।
नवरामजिना गुणनव सिद्धा सप्ताब्धितत्त्वानि ॥ ३५ ॥

द्व्यब्ध्युत्कृतयः पर्वतशराङ्ग नेत्राणि रुद्रभानीह ।
सप्ताङ्गभानि यमयम नागभुजा नगनगाष्टकराः ॥ ३६ ॥

सुरनव भुजा नवाष्ट छिद्राक्षीण्यब्धि जलधि शून्यगुणाः ।
खख कुगुणा रसपञ्चबाह्वग्नयश्चन्द्राम गुणरामाः ॥ ३७ ॥

नग गुणवेद हुताशा विकलाः सन्ति स्थिताः पृथक् चैषाम् ।
वसवः कुभुजाः खगुणाः स्युः कुरामा जिनाः खरामाश्च ॥ ३८ ॥

पञ्चशरा नेत्रगुणा रामा नवबाहवो द्विप समुद्राः ।
भूर्वसवोऽष्टौ चन्द्रा नगवेदाः षड्भुजा अचल बाणाः ॥ ३९ ॥

विंशतिरिषु हव्यभुजः कुकृता वसवोऽद्रयोऽक्षभुजाः ।
रामाः कुगुणा वर्गा सप्तानां पञ्च पञ्चशराः ॥ ४० ॥

वेदगुणाश्च पृषत्काः सिद्धा नवबाहवः कुभुजाः ।
नव विशिखा रामभुजा इलाग्नयो वह्निनयनानि ॥ ४१ ॥

खं नवचन्द्रा द्विभुजा रसरसा नन्दवह्नयोऽगभुजाः ।
त्रिशरा नन्दपृषत्का गुणाब्धयः सायका विशिखाः ॥ ४२ ॥

खकृताः कुशरा मङ्गलहव्यभुजो वसुशरा द्विशराः ।
व्योमभुजा नवचन्द्राः खशराः कुशरा दृगश्वीणि ॥ ४३ ॥

त्रिकरा द्विशराश्छिद्रप्रनिम्नगेशा इनश्चन्द्रः ।
अष्टिः पञ्चशरा नगबाणाग्निभुजा दिशोऽङ्कभुवः ॥ ४४ ॥

अष्टकृता रसरामास्त्रिकृता अचला खाऽब्धयोऽङ्ककृताः ।
नवविशिखा रसनेत्राण्यङ्गान्येकेषवोऽब्धयोऽङ्कभुवः ॥ ४५ ॥

शरवेदा हव्यभुजस्तिथयोऽङ्कभुजः कृताब्धयस्त्रिज्या ।
अगगुणवेदहुताशाः कलिका विकलाः समुद्र जलधयः सप्त ॥ ४६ ॥

जलखाष्ट शशिधृति शशिनः कलिकाः शराग्नयो विकलाः ।
त्रिज्याकृतिरष्टनव त्रिभुवा कथिता गणकैर्जिनांशज्याः ॥ ४७ ॥

गणितवशगास्तु जीवाः षण्णवतिः प्रोदिताः क्रमेणैव ।
करणीमूलग्रहणात्तुल्यत्वं प्रथमजीवया धनुषः ॥ ४८ ॥

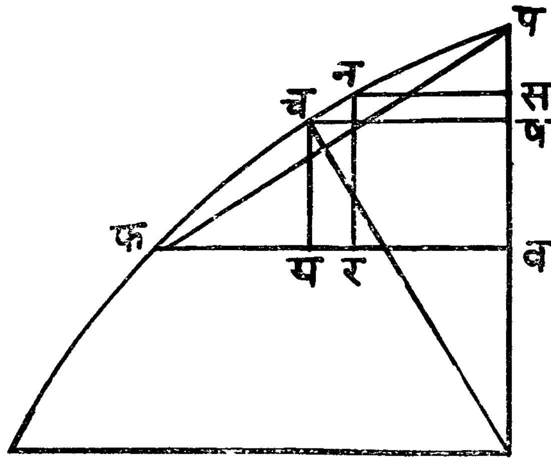
एवामर्थाः स्पष्टा एव ।

अत्रोपपत्तिः ।

अन्यैराचार्यैः पदमध्ये २२५′ कला तुल्यान्तरे चतुर्विंशत्यो जीवाः साधयित्वा पठिताः सन्ति एभिर्ग्रन्थकारैः षण्णवति संख्यका जीवाः कलात्मिकाः पठिता याश्चोपरिलिखिताः सन्ति । उपर्युक्तज्यानां पाठे किं बीजमिति कथ्यते, त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिंजिनी स्यादित्यादिना क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलान्मूलमित्यादिना वा, त्रिज्यार्ध राशिज्येत्यादिना सर्वासां जीवानां ज्ञानं सुलभेन भविष्यति । प्राचीनैः पूर्वोक्तरीत्यैव सर्वासां जीवानां मानानि साधयित्वा पठितानि, नवीनानां मतेनापि तज्ज्ञानं सुखेन भवितुमर्हति । २२५′ कलान्तरित-चतुर्विंशति जीवा पाठे "जीवा स्वसप्तारियुगांशहीना द्विघ्नी चे"त्यादि प्रकारो वा

"त्र्यभिघ्नमौर्व्या श्रयुतेन लब्धमि" त्यादि प्रकार आश्रयणीयः। ६६ संख्यक जीवा ज्ञानावसरे "२ ज्याइ—$\frac{\frac{२ ज्याइ}{त्रि}}{प्रउज्या}$=अग्रज्या+पृज्या" तत्प्रथमोत्क्रमज्या त्रिज्या भक्ता यल्लब्धं तच्छ्रेशेनाग्रज्या पृष्ठज्ययोर्योगं ज्ञात्वा तत्र पृष्ठज्यायाः शोधनेनाग्रज्याया ज्ञानं भवेदेवं सर्वासां जीवानां ज्ञानं सुलभेनैव भवेत्पाटी—गणितरीत्या वा ज्ञानं कृत्वा पाठे पठिताः—

अथ पठितज्यानां स्वरूपदर्शनेन ज्ञायते यद् यथा पदादितश्चापगतिर्वर्धते तथा ज्यागतिरल्पा भवति। कथमिति तदुच्यते—



चित्र नं० १

प च चापम्=च फ चापम्।

द्विगुणित प च चापपूर्णज्या=प फ रेखा प फ ब जात्य त्रिभुजे प फ कर्णार्धबिन्दुः=ल तदा फ र=र व =न स, न स=फ र एतत्सम्बन्धि चापयोर्मध्ये प न < न फ अर्थात् २ न प < प फ चाप, २न स=फ ब अतस्तुल्यचापवृद्धौ तुल्य ज्यावृद्धिर्न भवतीति निश्चितम्।

तथा फ र=र व ∴ फ य < य व=च ष ∴ फ य < च ष परन्तु प च= फ च अतः सिद्धं यच्चापवृद्धितो ज्यावृद्धिरल्पा भवतीति।

हि. भा.—अब स्पष्टीकरणादि सब ग्रह गणित के मूलभूत ज्याओं को कहते हैं। वृत्तपाद में ९६ जीवाओं का पाठ किया है जिनके मान श्लोकों में वर्णित हैं। उनके अर्थ स्पष्ट होने के कारण नहीं लिखे जाते हैं।

उपपत्ति

अन्य आचार्य (सूर्यसिद्धान्तकार ब्रह्मगुप्त प्रभृति) ने पदमध्य में २२५′ कलान्तरित पर चौबीस ज्याओं के मान साधन कर पठित किये हैं। ये ग्रन्थकार छियानवे कलात्मकज्या विकला सहित पठित किए हैं जो श्लोकों में वर्णित हैं ये जीवायें किस तरह साधन की गईं सो कहते हैं। 'क्रमोत्क्रमज्या कृति योगमूलाद्दलं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात्' इससे अथवा "त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशक शिञ्जिनी वा," तथा 'त्रिज्यार्धं राशिज्या' इत्यादि से सब

ज्याओं के ज्ञान सुलभ ही से हो जायगा, प्राचीनाचार्य ने इन्हीं रीतियों से सब ज्याओं के मान साधन कर पठित किये हैं। नवीन मत से भी उनके ज्ञान सुलभ ही से हो जाते हैं। २२५' कलान्तरित चौबीस ज्याओं के पाठ में 'जीवा स्वसप्तारियुगांशहीना द्विघ्नी च पूर्वज्यकया' इत्यादि प्रकार का अथवा 'त्र्यब्धिघ्न मौर्व्या अयुतेन लब्धं' इत्यादि प्रकार का आश्रयण करना चाहिए। वहां त्रिज्या = ३४३८ है। ९६ संख्यक जीवाओं के ज्ञान के लिए प्रथमोत्क्रमज्या एतदाधारक (९६ संख्यक ज्याधारक) लेकर अग्रज्या और पृष्ठज्या के योग ज्ञान कर उसमें पृष्ठज्या को घटाकर अग्रज्या ज्ञान करना अथवा अग्रज्या और पृष्ठज्या घात संशोधक प्रकार से ज्ञान कर उसमें पृष्ठज्या से भाग देने से अग्रज्या होगी। इस तरह सब जीवाओं का ज्ञान हो जायेगा। अथवा पाटीगणित रीति से जीवाओं को साधन कर पठित किये।

पठित ज्याओं के स्वरूप देखने से मालूम होता कि पदादि से ज्यों-ज्यों चाप गति बढ़ती है त्यों त्यों ज्यागति अल्प होती है। क्योंकि ऐसा होता है उसके लिए युक्ति चित्र १ देखिए।

प च चाप = च फ चाप, द्विगुणित प च चाप की पूर्णज्या = प फ रेखा, प फ ब जात्य त्रिभुज में प फ कर्णार्धबिन्दु = ल, तब भ र = र ब = न स, न स = फ र एतत्सम्बन्धी चापों में प न < न फ अर्थात् २ न प < प फ चाप, २ न स = फ ब अतः तुल्य चाप वृद्धि में तुल्य-ज्यावृद्धि नहीं होती है यह सिद्ध हुआ। तथा फ र = र व ∴ फ य < य व = च ष ∴ फ य < च ष परन्तु प च = फ च इसलिए सिद्ध हुआ कि चापवृद्धि से ज्यावृद्धि अल्प होती है॥

पठितज्यासु स्विष्टज्या ज्ञानात्तत्पूर्वाग्रिमज्ययोर्घातानयनं संशोधकेन सिद्धान्तशिरोमणिटिप्पण्यां कृतं यथा इष्टचापम् = इ। प्रथमचापम् = प्र। तदा ज्या(इ—प्र) = पृष्ठज्या, ज्या(इ+प्र) = अग्रज्या अनयोर्घातः पृष्ठज्या × अग्रज्या = ज्या (इ—प्र) × ज्या (इ+प्र) चापयोरिष्टयोरित्यादिना

$$\frac{(\text{ज्याइ. कोज्याप्र}-\text{ज्याप्र. कोज्याइ})}{\text{त्रि}} \times \frac{(\text{ज्याइ. कोज्याप्र}+\text{ज्याप्र. कोज्याइ})}{\text{त्रि}}$$

योगान्तरघातस्य वर्गान्तरसमत्वात्

$$\frac{\text{ज्या}^2\text{इ. कोज्या}^2\text{प्र}-\text{ज्या}^2\text{प्र. कोज्या}^2\text{इ}}{\text{त्रि}^2}$$

$$=\frac{\text{ज्या}^2\text{इ}\ (\text{त्रि}^2-\text{ज्या}^2\text{प्र})-\text{ज्या}^2\text{प्र}\ (\text{त्रि}^2-\text{ज्या}^2\text{इ})}{\text{त्रि}^2}$$

$$=\frac{\text{ज्या}^2\text{इ. त्रि}^2-\text{ज्या}^2\text{इ. ज्या}^2\text{प्र}-\text{ज्या}^2\text{प्र. त्रि}^2+\text{ज्या}^2\text{प्र. ज्या}^2\text{इ}}{\text{त्रि}^2}$$

= पृष्ठज्या + अग्रज्या

$$=\frac{\text{ज्या}^2\text{इ.त्रि}-\text{ज्या}^2\text{प्र.त्रि}^2}{\text{त्रि}^2}=\frac{\text{त्रि}^2\,(\text{ज्या}^2\text{इ}-\text{ज्या}^2\text{प्र})}{\text{त्रि}^2}$$

$=$ ज्या^{2} इ $-$ ज्या^{2} प्र $=$ अग्रज्या $\times$ पृष्ठज्या तत्त्वदस्रानगांशोना एवमत्राद्य-शिंजिनीत्यादिना प्रथमज्या $=२२५\frac{१}{७}$, प्रथमज्या$^2=५०५६०$ स्वल्पान्तरात् अत: ज्या^{2}इ $-५०५६०=$ अग्रज्या $\times$ पृष्ठज्या एतावता "ज्यावर्गात्खरसाक्षाभ्र बाणोनात्पूर्वजीवया। अवाप्तमग्रजीवा स्यादग्राप्तं पूर्वशिंजिनी" एवमासन्नजीवाभ्यां गजाग्न्यब्धिगुणैर्मिते। व्यासार्धेऽत्रावशिष्टज्या सिद्ध्यन्ति लघुकर्मणा" संशोधकोक्त-मुपपद्यते।

एतद्ग्रन्थकारमतेन प्रथमज्यामानम् $=५६'।१५''$ एतद्वशेनाग्रज्यापृष्ठ-ज्ययोर्घातानयनं ज्ञेयम्। तत्र घाते पृष्ठज्यया भक्तेऽग्रज्या भवेदग्रज्यया भक्ते च पृष्ठज्या भवेदस्योपपत्ति: क्षेत्रयुक्तापि भवतीति।

यदि तत्र इ $=$ प्रथमचा तदा ज्या (इ $-$ प्र) $=$ पृष्ठज्या $=०$

तथा ज्या (इ $+$ प्र) $=$ ज्या·२ प्र $=$ अग्रज्या परन्तु अग्रज्या $\times$ पृज्या $=$ ज्या^{2} इ $-५०५६०=$ ज्या^{2}इ $-$ ज्या^{2}प्र $=०=$ अग्रज्या $\times ०$ $\therefore$ अग्रज्या $=\frac{०}{०}$ एतस्य मानं किमपि नास्ति परन्तु यदा पृष्ठज्या $=०$ तदा त्वग्रज्यामानं भवत्यत: संशोधकोक्त-प्रकारो न समीचीन इति विशेषेण खण्डते। तथा च तद्वाक्यम्—

पूर्वज्या यत्र शून्या प्रथमगुणमितिश्चेज्ज्यका तर्हि विद्वन्!
अग्रज्या नैव सिद्ध्यति प्रथमगदितात्संशोधकोक्तप्रकारात्॥
तस्मान्नित्यं बुधेन्द्रैर्निखिलगणितजक्षेत्रयुक्तिप्रवीणै:।
कार्यो जीवाविधाने सुलभगणितजो मद्विधिश्चादरेण॥

अत्र समाधीयते अग्रज्या $\times$ पृष्ठज्या $=$ ज्या^{2}इ $-$ ज्या^{2}प्र यदि पृष्ठज्या $=०$ तदा अग्रज्या $\times ०=$ ज्या^{2} इ $-$ ज्या^{2}प्र वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् अग्र-ज्या $\times ०=$ (ज्याइ $+$ ज्याप्र) (ज्याइ $-$ ज्याप्र) परमत्र ज्याइ $-$ ज्याप्र $=०$ अत: अग्र-ज्या $\times ०=$ (ज्याइ $+$ ज्याप्र) $\times ०$ तत: $\frac{\text{अग्रज्या}\times ०}{०}=$ अग्रज्या $=$ ज्याइ $+$ ज्याप्र

अतो लुप्तभिन्नसमीकरणेन तत्र संशोधकोक्तप्रकारेण अग्रज्यामानमुचितमेवागत मतोऽयंप्रकार: समीचीन एव नात्र कश्चिद्दोष इति॥

अत्र विशेषेणाग्रज्या पृष्ठज्ययोर्योगानयनमभिहितं यथा

इष्टचापम् $=$ इ। प्रथमचापम् $=$ प्र.। अग्रज्या $=$ ज्या (इ $+$ प्र), पृष्ठज्या $=$ ज्या (इ $-$ प्र) अथ अग्रज्या $+$ पृष्ठज्या $=$ ज्या (इ $+$ प्र) $+$ ज्या (इ $-$ प्र) चाप-योरिष्टयोरित्यादिना।

$$=\frac{\text{ज्याइ}\times\text{कोज्याप्र}+\text{ज्याप्र. कोज्याइ}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{ज्याइ. कोज्याप्र}-\text{ज्याप्र. कोज्याइ}}{\text{त्रि}}$$

अग्रज्या+पृष्ठज्या

$$=\frac{\text{२ज्याइ. कोज्याप्र}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{२ज्याइ (त्रि—उप्र)}}{\text{त्रि}}$$

$$=\text{२ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ. उप्र}}{\text{त्रि}}=\text{२ ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ}}{\frac{\text{त्रि}}{\text{उप्र.}}}$$

$$=\text{२ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ}}{\text{४६७}}=\text{अग्रज्या}+\text{पृष्ठज्या}$$ । अत्र त्रि=३४३८,

एतावता तदुक्तसूत्रमुपपद्यते ।

जीवा स्वसप्तारियुगांशहीना द्विघ्नी च पूर्वज्यकया विहीना ।
स्यादग्रजीवा बृहतीति सर्वा आसन्नजीवाद्वयतो भवन्ति ॥

अथ $\text{अग्रज्या}+\text{पृष्ठज्या}=\text{२ ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ}}{\text{४६७}}$ अत्र द्वितीयखंडम् (१००००)

अनेन गुण्यते भज्यते च तदा $\text{२ ज्याइ}-\frac{\text{२ ज्याइ}\times\text{१००००}}{\text{४७६}\times\text{१००००}}=\text{२ ज्याइ}$

$$-\frac{\text{ज्याइ}\times\text{२००००}}{\text{४६७}\times\text{१००००}}=\text{२ज्याइ}-\frac{\text{ज्याइ}\times\text{४३}}{\text{१००००}}=\text{अग्रज्या}+\text{पृष्ठज्या}$$ ।

एतावता "त्र्यब्धिघ्नमौर्व्या अयुतेन लब्धं द्विघ्नज्यकायाः प्रविशोध्य शेषम् ।
विश्लिष्य पूर्वज्यकाऽग्रजीवा वेद्याऽग्रमौर्व्या खलु पूर्व जीवा ॥"

इत्युपपद्यते ।

पठित ज्याओं में इष्टज्या से पूर्व और पर (पृष्ठज्या, अग्रज्या) जीवाओं के गुणनफल के साधन सिद्धांतशिरोमणि की टिप्पणी में किये हैं। जैसे कल्पना करते हैं इष्टचाप =इ । प्रथमचाप=प्र. तब पृष्ठज्या=ज्या (इ—प्र), अग्रज्या=ज्या (इ+प्र) दोनों के घात करने से पृष्ठज्या × अग्रज्या = ज्या (इ—प्र), ज्या (इ+प्र) चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये इत्यादि से $\frac{\text{(ज्याइ. कोज्याप्र—ज्याप्र. कोज्याइ)}}{\text{त्रि}}\times\frac{\text{(ज्याइ. कोज्याप्र.+ज्याप्र. कोज्याइ)}}{\text{त्रि}}$

=अग्रज्या × पृष्ठज्या योगान्तर घात वर्गान्तर के बराबर होता है इस नियम से

$$\frac{\text{ज्या}^2\text{इ. कोज्या}^2\text{प्र—ज्या}^2\text{प्र. कोज्या}^2\text{इ}}{\text{त्रि}^2}=\frac{\text{ज्या}^2\text{इ (त्रि}^2\text{—ज्या}^2\text{प्र)—ज्या}^2\text{प्र (त्रि}^2\text{—ज्या}^2\text{प्र)}}{\text{त्रि}^2}$$

$$=\frac{\text{ज्या}^2\text{इ. त्रि}^2\text{—ज्या}^2\text{इ. ज्या}^2\text{प्र—ज्या}^2\text{प्र. त्रि}^2+\text{ज्या}^2\text{प्र.ज्या}^2\text{इ.}}{\text{त्रि}^2}$$

$$=\frac{\text{ज्या}^2\text{इ. त्रि}^2\text{—ज्या}^2\text{प्र. त्रि}^2}{\text{त्रि}^2}=\frac{\text{त्रि}^2\text{ (ज्या}^2\text{इ—ज्या}^2\text{प्र)}}{\text{त्रि}^2}=\text{ज्या}^2\text{इ—ज्या}^2\text{प्र.}$$ अग्रज्या × पृष्ठ-

ज्या तत्त्वादस्तानगांशोना एवमत्राद्यशिञ्जिनी इससे $\text{२२५}-\frac{\text{१}}{\text{७}}$=प्रथमज्या ।

प्रथमज्या वर्ग = ५०५६० ∴ ज्या^{2}इ — ज्या^{2}प्र = ज्या^{2}इ — ५०५६० = अग्रज्या × पृज्या

इससे "ज्यावर्गात्खरसाक्षाभ्र बाणोनात्पूर्वजीवया, अवाप्तमग्रजीवास्यादग्राप्तं पूर्वशिञ्जिनी। एवमासन्नजीवाभ्यां गजाग्न्यब्धिगुणैर्मिते। व्यासार्धेऽत्र.वशिष्टज्या सिद्धचन्ति लघुकर्मणा" संशोधकोक्त उपपन्न होता है। ग्रन्थकार (वटेश्वर) के मत से प्रथम ज्यामान = ५६′। १५″ इसके वश से अग्रज्या पृष्ठ ज्या के घात जानना चाहिये। उस घात में पृष्ठज्या से भाग देने से अग्रज्या होती है और अग्रज्या भाग देने से पृष्ठज्या होती है। इस की उपपत्ति क्षेत्र युक्ति से भी होती है।

यहां यदि इष्ट चा = प्रथम चा तब ज्या (इ—प्र) = पृष्ठज्या = ०, और ज्या (इ+प्र) = ज्या २ प्र = अग्रज्या परन्तु अग्रज्या × पृज्या = ज्या^{2} इ — ज्या^{2} प्र = ० = अग्रज्या × ० इसलिये अग्रज्या = $\frac{0}{0}$ इसका मान कुछ नहीं है परन्तु यहां अग्रज्या मान है. अतः संशोधकोक्त प्रकार समीचीन नहीं है यह विशेष पं० सुधाकर द्विवेदी जी खण्डन करते हैं इसके विषय में उनके वचन यह हैं।

"पूर्वाज्या यत्र शून्या प्रथमगुणमितिश्चेज्ज्यका तर्हि विद्वन्।" इत्यादि

यहां संशोधक प्रकार के समाधान करते हैं।

अग्रज्या × पृज्या = ज्या^{2} इ — ज्या^{2} इ यदि पृष्ठ ज्या = ० तब अग्रज्या × ० = ज्या^{2} इ — ज्या^{2} प्र परन्तु वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है ∴ अग्रज्या × ० = (ज्या इ + ज्याप्र) (ज्याइ — ज्याप्र) परन्तु ज्याइ — ज्याप्र = ० अतः अग्रज्या × ० = (ज्याइ + ज्याप्र) × ०

इसलिये $\frac{\text{अग्रज्या} \times 0}{0}$ = अग्रज्या = ज्याइ + ज्याप्र अतः लुप्तभिन्न समीकरण से संशोधकोक्त प्रकार से यहां अग्रज्या का मान उचित ही आया। इसलिये यह प्रकार समीचीन ही है, इसमें कुछ भी दोष नहीं है।

यहां पर विशेष अग्रज्या और पृष्ठज्या के योगानयन किये हैं। जैसे—कल्पना करते हैं इष्टचाप = इ। प्रथम चाप = प्र। अग्रज्या = ज्या (इ+प्र). पृज्या = ज्या (इ—प्र) तब अग्रज्या + पृज्या = ज्या (इ + प्र) + ज्या (इ — प्र) चापयोरिष्टयोरित्यादि से

$$= \frac{\text{२ ज्याइ.कोज्या प्र + ज्या प्र.को ज्याइ}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{ज्याइ.कोज्या प्र — ज्याप्र.कोज्या इ}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{२ ज्याइ.कोज्या प्र}}{\text{त्रि}}$$

$$= \frac{\text{२ ज्याइ (त्रि — उप्र)}}{\text{त्रि}} = \text{२ ज्याइ} \; \frac{\text{२ ज्याइ. उप्र}}{\text{त्रि}} = \text{२ ज्याइ} — \frac{\text{२ ज्याइ}}{\frac{\text{त्रि}}{\text{उप्र}}}$$

$$२ \text{ ज्याइ} - \frac{२ \text{ ज्याइ}}{४६७} = \text{अग्रज्या} + \text{पृष्ठज्या}$$

इससे उनका सूत्र उपपन्न होता है।

"जीवा स्वसप्तारि युगांगहीना द्विघ्नी च पूर्वज्यकया विहीना।
स्यादग्रजीवा बृहतीति सर्वा आनन्तजीवाद्वयतो भवन्ति ॥"

$\text{अग्रज्या} + \text{पृज्या} = २ \text{ ज्याइ} - \frac{२ \text{ ज्याइ}}{४६७}$ यहां द्वितीय खण्ड में हर भाज्य को (१००००) इससे गुणने से $२ \text{ ज्याइ} - \frac{२ \text{ ज्याइ} \times १००००}{४६७ \times १००००} = २\text{ज्याइ} - \frac{\text{ज्याइ} \times २००००}{४६७ \times १००००}$

$$= २ \text{ ज्याइ} - \frac{\text{ज्याइ} \times ४३}{१००००} = \text{अग्रज्या} + \text{पृज्या}।$$

इससे "त्र्यब्धिघ्न मौर्व्या अयुतेन लब्धं द्विघ्नज्यकायाः प्रविशोध्य शेषम्।
विश्लिष्य पूर्वज्यकयाऽग्रजीवा वेद्याग्रमौर्व्या खलु पूर्वजीवा ॥
यह उपपन्न होता है।

अथ रव्यादिग्रहाणां मन्दपरिधीनाह।

शक्राः सदलेन्दुगणा दृगगा द्विभुजाः सुराः शिवाः स्पष्टाः।
रसवेदा नागाख्या रव्यादीनां भवन्ति मृदुपरिधयः ॥४६॥

वि. भा—शक्राः (१४) सदलेन्दुगुणाः (३१।३०) दृगगाः (७२) द्विभुजाः (२२) सुराः (३३) शिवाः (११) रसवेदाः (४६) एते रव्यादीनां ग्रहाणां स्पष्टा नागाख्या मृदुपरिधयः (मन्दपरिधयः) भवन्ति ॥ ४६ ॥

अत्रोपपत्तिः।

मध्यममन्दस्पष्टग्रहयोरन्तरं मन्दफलम्। परममन्दफलज्या मन्दान्त्यफलज्या कथ्यते मध्यमग्रहान्मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्धेन यद्वृत्तं तन्मन्दनीचोच्चवृत्तम्। तत्परिधिर्मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधिः। एतज्ज्ञानार्थमनुपातो यदि त्रिज्याव्यासार्धे भांशाः परिधयस्तदा मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्धे किमित्यनुपातेन समागता मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधयः। सर्वेषां ग्रहाणां मन्दान्त्यफलज्या मानानि वेधेन ज्ञात्वाऽऽचार्येण तद्वशेन मन्दनीचोच्चवृत्तपरिधयः पठिता ये चाधोलिखिताः सन्ति।

रवेर्मन्दपरिधिभागाः		$=१४^\circ$
चन्द्रस्य मन्दपरिधिभागाः		$=३१^\circ।३०'$
कुजस्य "	"	$=७२^\circ$
बुधस्य "	"	$=२२^\circ$

गुरोः मन्दपरिधिभागाः =३३°
शुक्रस्य " " =११°
शनेः " " =४६°

सूर्यसिद्धान्तमतेन समपदान्ते रविमन्दपरिध्यंशाः=१४°, चन्द्रस्य=३२°, विषमपदान्ते विंशतिकलोना भवन्ति तेन रविमन्दपरिध्यंशाः=१३°।४०'। चन्द्रस्य =३१°।४०' भौमा हि ग्रहाणां समपदान्ते मन्दपरिधिभागाः क्रमेण ७५°।३०°, ३३°।१२°, ३९° विषमपदान्ते क्रमेण मन्दपरिधयः ७२°।२८°।३२°।११°।४८° सूर्यसिद्धान्ते एतदर्थमधोलिखितानि वाक्यानि सन्ति।

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगोरदाः। युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः ।। युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः। ओजे द्वयगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्तेन रविचन्द्रयोर्मन्दपरिधिभागा भिन्ना एव कथिता यथा तदुक्तानि वाक्यानि—

सूर्यस्य मनुद्वितयं त्र्यंशोनं दिनदले नतस्य प्राक्।
तिथिघटिकाभिस्त्र्यंशाधिकोनमूनाधिकं पश्चात् ।।
द्युदले जिनलिप्तोनं दशनद्वितयं द्विशरकलोनं प्राक्।
पश्चाद्युतोनमिन्दोः सूर्यस्य ऋणे धने परिधिः ।।
एतदनुसारेण

रवेर्ऋणफले		धनफले	
प्रागुन्मण्डलस्थे रवौ परिध्यंशाः	=१४°।०	प्रागुन्मण्डलस्थे रवौ परिध्यंशाः	=१३°।२०'
मध्यान्हे " "	=१३°।४०'	मध्यान्हे " "	=१३°।४०'
पश्चिमोन्मण्डलस्थे रवौ "	=१३°।२०'	पश्चिमोन्मलण्डस्थे रवौ "	=१४°।०

चन्द्रस्य ऋणफले		धनफले	
प्रागुन्मण्डलस्थे चन्द्रे परिध्यंशाः	-३०°।४४'	प्रागुन्मण्डलस्थे चन्द्रेपरिध्यंशाः	=३०°।४४'
मध्यान्हे "	=३१°।३६'	मध्यान्हे "	=३१°।३६'
पश्चिमोन्मण्डलस्थे चन्द्रे "	=३२°।२८'	पश्चिमोन्मण्डलस्थे "	=३०°।४४'

तथा कुजादिग्रहाणां मन्दपरिध्यंशास्तदुक्ताः

कुजज्य=७०, बुधस्य=३८। गुरोः=३३। समपदान्ते शुक्रस्य=११। विषमपदान्ते=९। शनेः=३०। भास्कराचार्येणाप्येतदनुसारमेव कथ्यते केवलं शनैश्चर मन्दपरिधौ पार्थक्यमस्ति। एतेन ज्ञायते यन्मन्दान्त्यफलज्याः सदा स्थिरानेत्यत एवाचार्य कथितेषु मन्दपरिध्यंशेषु पार्थक्यमस्तीति ।।४९।।

अब रव्यादिग्रहों की मन्दपरिधि कहते हैं।

हि. भा.—रवि के मन्दपरिध्यंश=१४°। चन्द्र के मन्दपरिध्यंश=३१°।३०', कुज

के मंप=७२°। बुध के मंप=२२°। गुरु के मंपरिधि=३३°। शुक्र के मंप=११°। शनि के मंप=४६° ॥४६॥

उपपत्ति

मध्यम ग्रह और मन्दस्पष्ट ग्रह के अन्तर मन्दफल है, परममन्दफलज्या मन्दान्त्यफलज्या कहलाती है, मध्यम ग्रह को केन्द्र मानकर मन्दान्त्यफलज्याव्यासार्ध से जो वृत्त होता है। वह मन्दनीचोच्च वृत्त है। मन्दोच्चनीच परिधिज्ञान के लिये अनुपात करते हैं यदि त्रिज्याव्यासार्ध में भांश परिधि पाते हैं तो मन्दान्त्य फलज्या व्यासार्ध में क्या इस अनुपात से मन्दनीचोच्च वृत्तपरिधि आती है, सब ग्रहों के मन्दान्त्यफलज्या मानवेध से जानकर आचार्य उसके वश से मन्दनीचोच्च वृत्तपरिधि पठित किये जो उपयुक्त है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार समपदान्त में रविमन्दपरिध्यंश=१४°। चन्द्र के मन्दप=३२°, विषमपदान्त में बीस कला घटकर रविमन्दपरिध्यंश=१३°।४०′। चन्द्रमन्दप=३१°।४०′ भौमादिग्रहों के समपदान्त में क्रमशः मन्दपरिध्यंश ७५°। ३०°। ३३°। १२°। ३६°। विषम पदान्त में क्रमशः मन्द परिध्यंश ७२°। २८°। ३२°। ११°। ४८° इसके लिए सूर्यसिद्धान्तोक्त अधोलिखित वाक्य है—

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगोरदाः। युग्मान्त विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः ॥
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्नि सुराः सूर्या नवार्णवाः। ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त रवि और चन्द्र के मन्दपरिध्यंश भिन्न ही कहते हैं, जैसे
सूर्यस्य मनु द्वितयं त्र्यंशोनं दिनदलेन तस्य प्राक्। तिथिघटिकाभिस्त्र्यंशाधिकोनमूनाधिकं पश्चात् ॥
द्युदले जिनलिप्तोनं दशनद्वितयं द्विशरकलोनं प्राक्। पश्चाद्युतोनमिन्दोः सूर्यस्य ऋणे धने परिधि ॥

इसके अनुसार रवि के ऋणफल में	धनफल में
पूर्व उन्मण्डलमें रविके रहने से मन्दपरि-१४°।०	पूर्व उन्मण्डलमें रविके रहने से मंप.१३°।२०′
मध्यान्ह में " =१३°।४०′	मध्यान्ह में " =१३°।४०′
पश्चिम उन्मण्डलमें रविके रहने से मप १३°।२०′	पश्चिम उन्मण्डल में रवि के रहने मंप.४०°।०′

चन्द्र के ऋणफल में	धनफल में
पूर्व उन्मण्डलमें चन्द्र के रहने से मंप.३०°।४४′	पूर्व उन्मण्डलमें चंद्र के रहने से मंप. ३०°।४४′
मध्यान्ह में " =३१°।३६′	मध्यान्ह में " =३१°।३६′
पश्चिम उन्मण्डल में चन्द्र रहने से "३२°।२८′	पश्चिमउन्मण्डल में चंद्र से रहने से मं.३० ।४४′

तथा कुजादि ग्रहों के ब्रह्मगुप्तोक्त मन्दपरिध्यंश ये हैं—कुजमंप=७०। बुधमंदप=३८। गुरुमंप=३३। समपदांत में शुक्रमंदप=११। विषमपदांत में शुक्रमंदप=६। शनि के मन्दपरिध्यंश=३०।

भास्कराचार्य भी एतदनुसार ही कहते हैं केवल शनैश्चर की मन्दपरिधि में अन्तर पड़ता है। इससे मालूम होता है कि मन्दान्त्यफलज्या बराबर एक रूप नहीं रहती है जिसके कारण मन्दनीचोच्च वृत्तपरिधि पाठ में आचार्यों के मतों में भेद हैं ॥४६॥

इदानीं भौमादिग्रहाणां शीघ्रपरिधीनाह ।

त्रिगुणयमा वसुविश्वे शरर्त्तवः खोत्कृती तथाक्षिगुणाः ।
शैघ्र्यास्त्वमी परिधयो भौमादीनां हि संददशाख्याः ॥५०॥

वि. भा.—त्रिगुणयमाः (२३३) वसुविश्वे (१३८) शरर्त्तवः (६५) खोत्कृती (२६०) अक्षिगुणाः (३२) भौमादीनां ग्रहाणाममी शैघ्र्या परिधयः संददशाख्या भवन्ति ॥५०॥

अत्रोपपत्तिः

भौमादिग्रहाणां परमशीघ्रफलानां ज्याः शीघ्रान्त्यफलज्याः कथ्यन्ते, बिम्बीयकर्णानयनप्रकारेण बिम्बीयकर्णज्ञानं कृतं तस्य परमत्वे उच्चस्थो ग्रहो भवेत्तत्र परमोच्चकर्णः=त्रि+शीघ्रान्त्यफलज्या ∴ परमोच्चकर्ण—त्रि=शीघ्रान्त्यफलज्या, तथा बिम्बीयकर्णस्य परमाल्पत्वे नीचस्थाने ग्रहो भवेदतस्तत्र परमनीचकर्णः=त्रि—शीघ्रान्त्यफलज्या ततः, त्रि—परमनीचकर्ण=शीघ्रान्त्यफलज्या, अनया रीत्या शीघ्रान्त्यफलज्यामानं ज्ञात्वाऽनुपातो यदि त्रिज्या व्यासार्धे भांशाः परिधयस्तदा शीघ्रान्त्यफलज्या व्यासार्धे किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधयो ये चोपर्युक्ताः सन्ति, मन्दस्पष्टग्रहाच्छीघ्रान्त्यफलज्याव्यासार्धेन यद्वृत्तं तच्छीघ्रनीचोच्चवृत्तं शीघ्रनीचोच्चवृत्तपरिधिर्वा ।

सूर्यसिद्धान्ते तु शीघ्रान्त्यफलज्याऽपि सदा न स्थिरेति विचार्य समविषमपदान्तभेदेन परिध्यंशा भिन्ना भिन्नाः कथिता, यथा—

कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ।
गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ॥
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः ।
खर्त्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ॥ इति

भास्कराचार्येण

"एषां चलाः कृतजिनास्त्रिलवेन हीना दन्तेन्दवो वसुरसा वसुबाणदस्राः ।
पूर्णाब्धयोऽथ भृगुजस्य तु मन्दकेन्द्र दोः शिञ्जिनी द्विगुणिता त्रिगुणेन भक्ताः ।
लब्धेन मन्दपरिधी रहितः स्फुटः स्यात्तच्छीघ्रकेन्द्रभुजमौर्व्यथ बाणनिघ्नी ।
त्रिज्योद्धृताशु परिधिः फलयुक् स्फुटः स्याद् भौमाशुकेन्द्रपदगम्यगताल्पजीवा ।
त्र्यंशोनशैलगुणितार्धयुतस्य राशेर्मौर्व्योद्धृता प्रलवहीनयुतं मृदूच्चम् ।
भौमस्य कर्किमकरादिगते स्वकेन्द्रे लब्धांशकैर्विरहितः परिधिस्तु शैघ्र्याः ॥

एभिः श्लोकैः कुजादिग्रहाणां शीघ्रपरिधिभागाः पठिताः, कुजस्य=२४३°।४०′ बुधशीघ्रोच्चस्य=१३२° । गुरोः=६८°, शुक्रशीघ्रोच्चस्य=२५८°, शनेः=४० अत्रापि

ब्रह्मगुप्तोक्तशनिशीघ्रपरिधितो भास्करोक्तपरिधेः पार्थक्यमस्ति, भास्करेण मङ्गलशुक्रयोः परिध्योः स्पष्टीकरणं कृतं यच्च तदुक्तश्लोकेभ्यो ज्ञायते। ग्रन्थकारो- (वटेश्वरो)क्त शीघ्रपरिधिभ्यो भास्करादिपठित शीघ्रपरिधीनां महदन्तर- मिति प्रत्यक्षमेव दृश्यते। ग्रन्थकारेण परिधेः स्फुटीकरणादिकं किमपि न कृतं यथा भास्करेण कुजशुक्रयोः कृतम्। भास्करेणापि कथं तयोः (कुजशुक्रयोः) एव स्फुटी- करणं कृतमन्येषां न कृतमत्र कारणं किमपि न प्रदर्शितमिति ॥५०॥

अब भौमादि ग्रहों के शीघ्र परिधिमान कहते हैं।

हि.भा.—२३३।१३८।६५।२६०।३२ ये क्रमशः भौमादि ग्रहों के शीघ्रपरिध्यंश (संददशसंज्ञक) हैं।

उपपत्ति

भौमादि ग्रहों के परम शीघ्र फल की जो ज्या है वे शीघ्रान्त्यफलज्या कहलाती है। मन्द स्पष्ट ग्रह को केन्द्र मानकर शीघ्रान्त्य फलज्या व्यासार्ध से जो वृत्त होता है वही शीघ्र- नीचोच्चवृत्त परिधि है। उसके ज्ञान के लिये पहले शीघ्रान्त्य फलज्या ज्ञान करते हैं। ग्रहों के बिम्बीय कर्णज्ञान प्रकार से बिम्बीय कर्णज्ञान किये, उसका परमत्व जब होगा तब उच्चस्थान में ग्रह रहते हैं। इसलिये वहां परमोच्चकर्ण=त्रिज्या+शीघ्रान्त्यफलज्या एवं बिम्बीयकर्ण की परमाल्पता में ग्रह नीच स्थान में रहते हैं अतः परमनीचकर्ण=त्रि—शीघ्रा- न्त्यफलज्या परमोच्चकर्ण—त्रि=शीघ्रान्त्यफलज्या। त्रि—परमनीचकर्ण=शीघ्रान्त्यफलज्या. इस तरह शीघ्रान्त्यफजज्या जान कर अनुपात करते हैं यदि त्रिज्याव्यासार्ध में भांश(३६०) पाते हैं तो शीघ्रान्त्य फलज्या व्यासार्ध में क्या इस अनुपात से शीघ्रनीचोच्च वृत्तपरिधि प्रमाण आता है। जो अपनी शीघ्रान्त्य फलज्यावश उपर्युक्त के बराबर है। सूर्यसिद्धान्त में शीघ्रान्त्य फलज्या भी सदा स्थिर नहीं है यह विचार कर सम विषम पदान्त भेद से भिन्न-भिन्न परिध्यंश पठित किये हैं। जैसे—

कुजादीनामतः शैघ्रचा युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः। गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः। ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः। खर्त्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्त्तिताः॥ इति

भास्कराचार्य ने अधोलिखित पद्यों द्वारा अधोलिखित शीघ्र परिधि पठित की हैं।

एषां चलाः कृतजिनास्त्रिलवेन हीना दन्तेन्दवो वसुरसा वसुबाणदस्राः।" इत्यादि

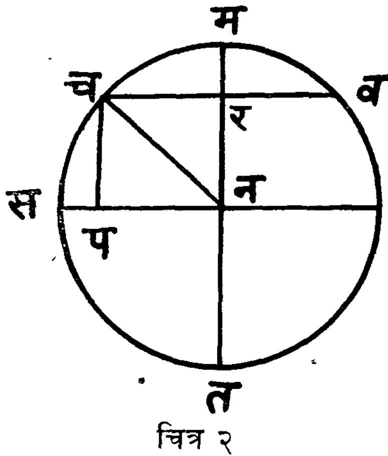
कुजपरिधि=२४३°।४०′ बुधशीघ्रोच्चपरिधि=१३२°। गुरुशीघ्रपरिधि=६८°, शुक्र- शीघ्रोच्च परिधि=२५८°। शनिशीघ्रपरिधि=४०। यहां भी शनिशीघ्रपरिधि ब्रह्मगुप्तोक्त से भास्करोक्त भिन्न है। भास्कराचार्य ने मङ्गल और शुक्र का परिधिस्पष्टीकरण किया है। ग्रन्थकार (वटेश्वर) पठित शीघ्रपरिधिमानों से भास्करादिपठितशीघ्र परिधिमान बहुत भिन्न है, भास्कराचार्य ने केवल कुज और शुक्र का ही परिधिस्पष्टीकरण किया है इसके कारण को नहीं कहा है॥५०॥

इदानीं केन्द्रमभिधीयते ततो भुजकोटिज्यादिकल्पनां चाह ।

मन्दतुङ्गरहितो नभश्चरो मन्दकेन्द्रमथ खेचरोनितम् ।
शीघ्रमत्र चलकेन्द्रमुच्यते तत्पदानि भवनैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥५१॥

अयुक् पदेस्तो गतयेययोर्गुणौ भुजाग्रसंज्ञौ युजि येययातयोः ।
भुजाग्रभागोत्क्रममौर्विकोनिता त्रिमौर्विका वेतरमौर्विका भवेत् ॥५२॥

वि. भा.—नभश्चरः (देशांतरभुजान्तर बीजकर्म संस्कृतो मध्यमग्रहो भौमादिमन्दस्फुटश्च) मन्दतुङ्गरहितः (मन्दोच्चहीनितः) तदा मन्दकेन्द्रम् । खेचरोनितं (मन्दस्पष्टग्रहरहितं) शीघ्रं (शीघ्रोच्चं) चलकेन्द्रमुच्यते (शीघ्रकेन्द्रं कथ्यते) त्रिभिस्त्रिभिस्तद्भवनैः (त्रिभिस्त्रिभिः केन्द्रराशिभिः) पदानि भवन्ति अयुक् पदे (विषमपदे) गतयेययोः (गतागतचापयोः) गुणौ (जीवे) भुजाग्रसंज्ञौ (गतचापज्या, गम्यचापज्या कोटिज्या परमेते भुजकोटिज्ये भुजाग्रसंज्ञिके) युजि (समपदे) येययातयोः (गम्यगतचापयोः) गुणौ भुजाग्रसंज्ञौ । भुजाग्रभागोत्क्रममौर्विकोनिता त्रिमौर्विका (भुजाग्रांशोत्क्रमज्योनत्रिज्या) इतर मौर्विका (भिन्नभुजाग्रसंज्ञका) भवेत् ॥ ५१-५२ ॥



चित्र २

न=वृत्तकेन्द्रम् । मच=इष्टचापम्, चस=इष्टचापकोटिः । चर=इष्टचापज्या=भुजाग्रसंज्ञकम् । चप=इष्टचापकोटिज्या=द्वितीय भुजाग्रसंज्ञकम् । रम=इष्टचापोत्क्रमज्या=भुजाग्रभागोत्क्रमज्या । सप=इष्टचापकोट्युत्क्रमज्या=द्वितीयभुजाग्रभागोत्क्रमज्या । नम=त्रिज्या । नस=त्रिज्या । नम—रम=त्रि—भुजाग्रभागोत्क्रमज्या =रन=चप=द्वितीय-भुजाग्रसंज्ञक=कोटिज्या

तथा नस—सप=नप=त्रि—द्वितीयभुजाग्रभागोत्क्रमज्या=त्रि—कोट्युत्क्रमज्या=भुजाग्रसंज्ञक=भुजज्या=चर ॥ ५१-५२ ॥

हि. भा.—अब केन्द्र कहते हैं उससे भुजज्या और कोटिज्यादि कल्पना कहते हैं । देशान्तर भुजान्तर बीजकर्म संस्कृत मध्यम ग्रह में, भौमादि मन्द स्पष्ट ग्रह में मन्दोच्च घटाने से मन्दकेन्द्र होता है । शीघ्रोच्च में मन्द स्पष्टग्रह को घटाने से शीघ्रकेन्द्र होता है, तीन तीन केन्द्रराशियों के एक एक पद होते हैं । विषम पद में गत चापज्या और गम्य चापज्या भुजाग्र संज्ञक (अर्थात् गत चाप की ज्या, गम्य चाप की कोटिज्या) प्रथम और द्वितीय भुजाग्र संज्ञक हैं । समपद में गम्य और गत चाप की ज्या भुजाग्र संज्ञक (गम्य चाप की ज्या, और गतचाप की कोटिज्या) है । भुजाग्रांशोत्क्रमज्या को त्रिज्या में घटाने से भिन्न-

भुजाग्र संज्ञक (त्रिज्या मे भुजांशोत्क्रमज्या घटाने से कोटिज्या संज्ञक) होता है ॥ ५१-५२ ॥

चित्र दो देखिये । न=वृत्तकेन्द्र । मच=इष्टचाप, चस=इष्टचाप कोटि,

चर=इष्टचापज्या=भुजाग्रसंज्ञक । चप=इष्टचापकोटिज्या=द्वितीय भुजाग्रसंज्ञक रम=इष्टचाप की उत्क्रमज्या=भुजाग्रभागोत्क्रमज्या ।

सप=इष्टचाप कोटि की उत्क्रमज्या=द्वितीय भुजाग्र भाग की उत्क्रमज्या ।

नम=त्रिज्या । नस=त्रिज्या, नम—रम=त्रि—भुजाग्रभागोत्क्रमज्या=रन=चप =द्वितीय भुजाग्रसंज्ञक=कोटिज्या

तथा नस—सप=नप=त्रि—द्वितीयभुजाग्रभागोत्क्रमज्या=त्रि—कोट्युत्क्रमज्या= भुजाग्रसंज्ञक=चर=भुजज्या ॥ ५१-५२ ॥

इदानीं भुजज्याकोटिज्ययोरेकतो द्वितीयज्ञानं क्रमज्याज्ञानं चाह ।

त्रिज्या बाह्वग्रमौर्व्योः कृतिविवरपदं वेतरज्या प्रदिष्टा ।
बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योर्विवरयुतिहतेर्मूलमाहुस्तयोर्वा ।
व्यासस्य व्यस्तजीवा विरहितनिहतेर्यत्पदं सा क्रमज्या ।
व्यासघ्ना व्यस्तजीवा निजकृतिरहिता मूलमस्याः क्रमज्या ॥ ५३ ॥

वि. भा.—त्रिज्याबाह्वग्रमौर्व्योः कृतिविवरपदं (त्रिज्याभुजाग्रज्ययोर्वर्गान्तरमूलं) इतरज्या प्रदिष्टात्द्वितीयभुजाग्रज्या कथिता) अर्थात् त्रिज्याभुजज्ययोर्वर्गान्तरमूलं कोटिज्या वा त्रिज्याकोटिज्ययोर्वर्गान्तरमूलं भुजज्या भवेत् । वा तयोर्बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योर्विवरयुतिहतेः पदं (त्रिज्या भुजाग्रज्ययोर्योगान्तरघातमूलं) इतरज्यां (द्वितीयभुजाग्रज्यां) आहुः (आचार्याः कथितवन्तः) । व्यस्तजीवा विरहितनिहितेः (उत्क्रमज्यारहितगुणितस्य) व्यासस्य पदं (मूलं) यत् सा क्रमज्या भवति । व्यस्तजीवा (उत्क्रमज्या) व्यासघ्ना (व्यासगुणिता) निजकृतिरहिता (स्ववर्गहीना) अस्या मूलं तदा क्रमज्या भवतीति ॥ ५३ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

चित्रं द्वितीयं द्रष्टव्यम् । $नच^2—चर^2=रन^2=त्रि^2—भुजाग्रज्या^2=त्रि^2—भुजज्या^2=द्वितीयभुजाग्रज्या^2=$ ० $कोटिज्या^2$

मूलेन

$$\sqrt{त्रि^2—भुजाग्रज्या^2}=\sqrt{(त्रि+भुजाग्रज्या)\ (त्रि—भुजाग्रज्या)}$$

$$=\sqrt{(त्रि+भुज्या)\ (त्रि—भुज्या)}= \text{द्वितीय भुजाग्रज्या}=\text{कोटिज्या}\ ।$$

चर=रव=क्रमज्या । मत=व्यास । मर=उत्क्रमज्या; अथ रेखागणित तृतीयाध्यायेन $मर\times रत=चर\times रव=$ उज्या (व्यास—उज्या)=उज्या × व्यास —$उज्या^2=क्रमज्या^2$

मूलेन

$\sqrt{\text{उज्या (व्यास—उज्या)}} = \sqrt{\text{उज्या} \times \text{व्यास} - \text{उज्या}^2} =$ क्रमज्या

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥ ५३ ॥

हि. भा—अब भुजज्या और कोटिज्या में से एक दूसरे के ज्ञान और क्रमज्या के ज्ञान कहते हैं। त्रिज्या और भुजाग्रज्या के वर्गान्तरमूल द्वितीय भुजाग्रज्या होती है अर्थात् त्रिज्या और भुजज्या के वर्गान्तर मूल कोटिज्या तथा त्रिज्या, और कोटिज्या के वर्गान्तरमूल भुजज्या होती है। या त्रिज्या और भुजाग्रज्या के योगान्तर घात मूल द्वितीय भुजाग्रज्या या कोटिज्या होती है। व्यास में उत्क्रमज्या को घटाकर और उत्क्रमज्या से गुणकर मूल लेने से कमज्या होती है। व्यासगुणित उत्क्रमज्या में उत्क्रमज्या वर्ग घटाकर मूल लेने से क्रमज्या होती है ॥५३॥

उपपत्ति।

चित्र (२) देखिये। $\text{नच}^2 - \text{चर}^2 = \text{रन}^2 = \text{त्रि}^2 - \text{भुजाग्रज्या}^2 = \text{त्रि}^2 - \text{भुजज्या}^2 =$ $\text{द्वितीयभुजाग्रज्या}^2 = \text{कोटिज्या}^2$

मूल लेने से

$$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{भुजाग्रज्या}^2} = \sqrt{(\text{त्रि} + \text{भुजाग्रज्या})\ (\text{त्रि} - \text{भुजाग्रज्या})}$$

$\sqrt{(\text{त्रि} + \text{भुजज्या})\ (\text{त्रि} - \text{भुज्या})} =$ द्वितीय भुजाग्रज्या = कोटिज्या।

चर = रव = क्रमज्या। मत = व्यास। मर = उत्क्रमज्या, रेखागणित तृतीय अध्याय से मर × रत = चर × रव = उज्या (व्यास—उज्या) = उज्या × व्यास — उज्या

मूल लेने से

$$\sqrt{\text{उज्या (व्यास—उज्या)}} = \sqrt{\text{उज्या} \times \text{व्यास} - \text{उज्या}^2} = \text{क्रमज्या}$$।

∴ आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ५३ ॥

इदानीं क्रमज्योत्क्रमज्याभ्यां व्यासानयनमाह।

क्रमगुणकृतिर्विभक्तोत्क्रममौर्व्या च फलं युतं हि व्यासः।
अन्यकोटिभुजांशात्त्रिभाद् विहीनाद् गुणो वाऽन्या ॥ ५४ ॥

वि. भा.—क्रमगुणकृतिः (क्रमज्यावर्गः) उत्क्रममौर्व्या (उत्क्रमज्यया) विभक्ता, फलमुत्क्रमज्यययायुतं तदा व्यासो भवेत्। त्रिभात् (राशित्रयात्) विहीनात् (शोधितात्) अन्यकोटिभुजांशाद् गुणः अन्या ज्या भवत्यर्थात्कोटिचापरहितनवत्यंशचापस्य ज्या भुजज्या भवेदिति ॥ ५४ ॥

अत्रोपपत्तिः।

पूर्वश्लोकोपपत्तौ सिद्धं यत् $\text{उज्या (व्यास} - \text{उज्या)} = \text{क्रमज्या}^2$ पक्षौ उज्या भक्तौ तदा $\text{व्यास} - \text{उज्या} = \frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}}$ ततः पक्षयोः 'उज्या' योजनेन

$\frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}} + \text{उज्या} = \text{व्यासः}$। एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम्। लीलावत्यां भास्करेण "जीवार्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणमि" त्यादिना एवमेव

कथ्यते । अन्यकोटिभुजांशादित्यादिकथनस्याऽत्रावश्यकता नास्ति, स च विषयः पूर्वमेव प्रतिपादितोऽस्त्यत्र निरर्थकमिव प्रतिभातीति ।। ५४ ।।

हि. भा.—अब क्रमज्या और उत्क्रमज्या से व्यास का आनयन करते हैं । क्रमज्यावर्ग में उत्क्रमज्या से भाग देकर उत्क्रमज्या जोड़ने से व्यास होता है। तीन राशि (९० अंश) में अन्य कोटि भुजांश घटाने से जो शेष रहता है उसकी ज्या भुजांश ज्या होती है।

उपपत्ति ।

पहले श्लोक की उपत्ति में सिद्ध हुआ कि (व्यास—उज्या) उज्या $=$ क्रमज्या^{2} दोनों पक्षों में 'उज्या' से भाग देने से व्यास—उज्या $= \frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}}$, दोनों पक्षों में 'उज्या' जोड़ने से

$\frac{\text{क्रमज्या}^2}{\text{उज्या}} +$ उज्या $=$ व्यास इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

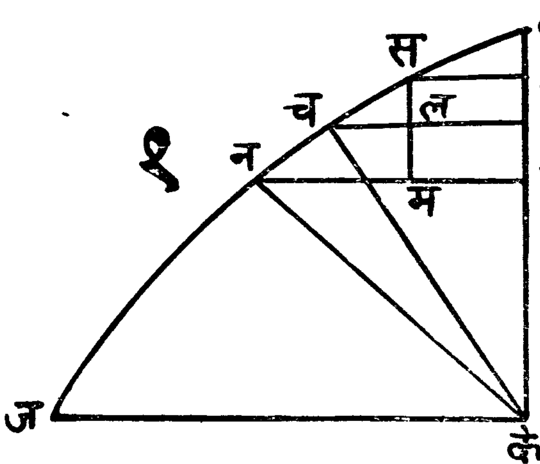
लीलावती में भास्कराचार्य 'जीवार्धवर्गे शरभक्तयुक्ते व्यासप्रमाणम्' इत्यादि से यही बातें कहते हैं । अन्य कोटि भुजांशात् इत्यादि कहने की यहां जरूरत नहीं है क्योंकि वह विषय पहले कहा जा चुका है जो यहां निरर्थक मालूम होता है ।। ५४ ।।

इदानीमिष्टचापज्यानयनमाह ।

धनुषाहृतास्त्वभीष्टा लिप्ता ज्या ज्यान्तराहताच्छेषात् ।
धनुषाहृतात्फलयुता ज्या कोटिज्या भुजज्या वा ।। ५५ ।।

वि. भा.—अभीष्टा लिप्ताः (इष्टचापकलाः) धनुषाहृताः (प्रथमचापभक्ताः) तदा ज्याः (गतज्याः) भवन्ति, शेषात् (शेषचापात्) ज्यान्तरहतात् (गतज्या भोग्यज्ययोरन्तरगुणितात्) धनुषाहृतात् (प्रथमचापभक्तात्) फलयुता ज्या (गतज्या) तदा कोटिज्या वा भुजज्या भवेदिति ।।

अत्रोपपत्तिः ।



चित्र ३

जव $=$ वृत्तपादः $=$ ९० । के $=$ वृत्तकेन्द्रम् । सश $=$ गतज्या । नर $=$ भोग्यज्या $=$ अग्रिमज्या, चव $=$ इष्टचापम् । चप $=$ इष्टज्या, नम $=$ गतज्याभोग्यज्ययोरन्तरम् । सन $=$ प्रथमचा

अत्र $\frac{\text{इष्टचापकला}}{\text{प्रथमचा}} =$ लब्धि संख्यकगतज्या, शेषचापम् $=$

सच, चन=इष्टज्यागतज्ययोरन्तरम् ततः, सनम, सचल त्रिभुजयोः सजा-यं मत्वाऽनुपातः क्रियते यदि प्रथमचापेन गतज्याभोग्यज्ययोरन्तर लभ्यन्ते तदा शेषचापेन किमित्यनुपातेनागतं शेषचापसम्बन्धि ज्यान्तरम्=

$$\frac{(\text{भोग्यज्या}-\text{गतज्या})\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=\frac{(\text{एष्यज्या}-\text{गज्या})\ \text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=\text{चल}$$ अनेन सहिता गत-

ज्ये (सश) ष्टज्या (चप) भवेत्तत आचार्योक्तमुपपद्यते । अथ सनम, सचल त्रिभ-जयोः साजात्यमस्ति नवेति विचार्यते । केन, केच रेखे कार्ये तदा <केनव=९०, <केचव=९० परं चकेप कोणात् नकेर कोणोऽधिकोऽस्त्यतः केचप कोणः केनर कोणादधिकोऽतः सनमकोणः सचलकोणादधिकः सिद्धोऽत उक्तत्रिभुजयोः साजात्यं न सिद्धं, तयोस्त्रिभुजयोः साजात्यं मत्वाऽऽचार्येण ज्यानयनं कृतमतस्तदा-नयनं न समीचीनमिति । भास्कराचार्यादिभिरप्येवमेव ज्यानयनं कृतमस्ति तैर्वृ-त्तपादे चतुर्विंशतिमिता जीवाः पठिताः, अनेन ग्रन्थकृताः (९६) षण्णवतिसंख्यका जीवाः पठितास्तेषां ज्यानयनेऽपीयमेव त्रुटिरस्ति या चात्रास्तीति ॥

अथ यदीष्टचापं प्रथमचापादल्पं भवेत्तदा गतज्यामानम्=० तत्र एष्यज्या=प्रथमज्या

$$\text{अतः पूर्वानीतेष्टज्या}=\text{गतज्या}+\frac{(\text{एष्यज्या}-\text{गज्या})\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}$$

$$=0+\frac{(\text{प्रज्या}-0)\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=\frac{\text{प्रज्या}\times\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}$$

तेन प्रथमचापेन प्रथमज्या लभ्यते तदा शेषचापेन किमित्यनुपातेन शेषांशज्या भवेदिति । अयमेव क्रम उत्क्रमज्यास्वपि भवेत्परं तत्र महत्स्थौल्यं भवति अथ प्रथम-चापम्=प्र, प्रथमचापतोऽल्पेष्टचापम्=इ । तदा

$$\frac{\text{प्रज्या}.\text{इ}}{\text{प्र}}=\text{इज्या}\ \text{ततः}\ \text{त्रि}^2-\text{इज्या}^2=\text{इकोज्या}^2=\text{त्रि}^2-\frac{\text{प्रज्या}^2.\text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$$ मूलग्रहणेन

$$\text{इकोज्या}=\text{त्रि}-\frac{\text{प्रज्या}^2.\text{इ}^2}{2\ \text{त्रि}.\text{प्र}^2}$$ स्वल्पान्तरात् । ततः त्रि—इकोज्या=इउज्या

$$=\text{त्रि}-\left(\text{त्रि}-\frac{\text{प्रज्या}^2.\text{इ}^2}{2\ \text{त्रि}.\ \text{प्र}^2}\right)=\frac{\text{प्रज्या}^2.\text{इ}^2}{2\ \text{त्रि}.\ \text{प्र}^2}$$ अत्र यदि इ=प्र तदा

$$\text{प्र उज्या}=\frac{\text{प्रज्या}^2}{2\ \text{त्रि}}\ \text{अतः इउज्या}=\frac{\text{प्रउज्या}.\text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$$ एतेन सिद्धं यद्यदि

प्रथमचापवर्गेण प्रथमोत्क्रमज्या लभ्यन्ते तदेष्टचापवर्गेण किमित्यनुपातेने-ष्टोत्क्रमज्या समागच्छत्येतादृश एवानुपातः कर्त्तव्यः क्रमज्यानयने यो विधिः स चो-त्क्रमज्यानयने नाश्रयणीयोऽतः सूर्यसिद्धान्तोक्त 'उत्क्रमज्यास्वपि स्मृत' मिदं न समीचीनम् । यद्यपि पूर्वोक्तेष्टोत्क्रमज्यानयनमपि न समीचीनमिति तदुपपत्तिदर्श-

नेनैव स्फुटं परं किं क्रियेत, अकर्णान्मन्दकर्णोऽपि श्रेयानित्युक्त्या तदानयनं प्रदर्शितमिति ॥ ५५ ॥

हि. भा.—अब इष्टचाप के ज्यानयन कहते हैं। इष्टचापकला को प्रथमचाप से भाग देने से लब्धसंख्या गतज्या होती है, शेषचाप को गतज्या और एष्यज्या के अन्तर से गुणकर प्रथमचाप से भाग देने से जो फल हो उसको गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है ॥५५॥

उपपत्ति

(१) चित्र देखिये। जब = वृत्तपाद है = ९०। के = वृत्तकेन्द्र। सश = गतज्या, नर = एष्यज्या = अग्रिमज्या चव = इष्टचाप, चप = इष्टज्या, नम = गतज्या और एष्यज्या के अन्तर, सन प्रथमचाप इष्टज्यागतज्ययोरन्तरम् = चन, सच = शेषचापम् । $\frac{\text{इष्टचापकला}}{\text{प्रथमचाप}}=$ लब्धसंख्यकगतज्या। सनम, सचल दोनों त्रिभुजों को सजातीय मानकर अनुपात करते हैं यदि प्रथमचाप में गतज्या एष्यज्या के अन्तर पाते हैं तो शेषचाप में क्या इस अनुपात से शेषचाप सम्बन्धी ज्यान्तर आता है।

$\frac{(\text{एज्या-गतज्या})\ \text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=$ चल। इसको (सश) गतज्या में जोड़ने से चप इष्टज्या होती है॥

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ। पहले सनम, सचल दोनों त्रिभुजों को सजातीय मानकर अनुपात किया गया है पर उन दोनों में सजातीयत्व है या नहीं इसके लिये विचार करते हैं। केन, केच रेखायें कर देते हैं, तब $<$केनव = ९०, $<$केचव = ९० परन्तु चकेप कोण से नकेर कोण अधिक है इसलिये केचप कोण केनर कोण से अधिक हुआ अतः सनम कोण सचल कोण से अधिक सिद्ध हुआ इसलिये उक्त दोनों त्रिभुजों में सजातीयत्व नहीं सिद्ध हुआ, परन्तु उक्त त्रिभुजद्वय को सजातीयत्व मानकर आचार्य अनुपात द्वारा ज्यानयन किये हैं। इसलिये यह आनयन ठीक नहीं हैं। भास्कराचार्यादि भी इसी तरह ज्यानयन किये हैं। वे लोग वृत्तपाद में चौबीस ज्या पठित किये हैं और ये ग्रन्थकार ९६ छियानवे ज्या पठित किये हैं, इनके ज्यानयन में जो स्थूलता है वहीं उन लोगों के ज्यानयन में भी है।

यदि इष्टचाप प्रथम चाप से अल्प है तब वहां गतज्या = ०, एष्यज्या = प्रथमज्या इसलिये पहले लाई हुई इष्टज्या = गतज्या + $\frac{(\text{एष्यज्या}-\text{गतज्या})\ \text{शे}}{\text{प्रथमचा}}=0+\frac{(\text{प्रथमज्या}-0)\ \text{शे}}{\text{प्रथमचा}}$

$=\frac{\text{प्रज्या}-\text{शे}}{\text{प्रथमचा}}$ अतः प्रथमचाप में प्रथमज्या तो शेष चाप में क्या इस अनुपात से शेषांशज्या होती है। यही विधि उत्क्रमज्या में भी होती है परन्तु उसमें बहुत स्थूलता होती है।

यदि इष्टचाप प्रथम चाप से अल्प है तो इष्टचाप = इ। प्रथम चाप प्र तब $\frac{\text{प्रज्या.}\ \text{इ}}{\text{प्र}}=$ इज्या

इसके वर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाने से $\text{त्रि}^2 - \frac{\text{प्रज्या}^2 \cdot \text{इ}^2}{\text{प्र}^2} = \text{त्रि}^2 - \text{इज्या}^2 = \text{इकोज्या}^2$ मूल लेने से

$\text{त्रि} - \frac{\text{प्रज्या}^2 \text{इ}^2}{2\text{त्रि}\cdot \text{प्र}^2} = \text{इकोज्या}$, $\text{त्रि} - \text{इकोज्या} = \text{इउज्या} = \text{त्रि} - (\text{त्रि} - \frac{\text{प्रज्या}^2\text{इ}^2)}{\text{प्र}'} = \frac{\text{प्रज्या}^2 \text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$

यदि इ=प्र तब $\text{प्रउज्या} = \frac{\text{प्रज्या}^2}{2\text{त्रि}}$ अतः $\text{इउज्या} = \frac{\text{प्रउज्या} \cdot \text{इ}^2}{\text{प्र}^2}$ इससे सिद्ध होता है कि यदि प्रथम चापवर्ग में प्रथम उत्क्रमज्या पाते हैं तो इष्टचाप वर्ग में क्या इस अनुपात से इष्टोत्क्रमज्या कुछ सूक्ष्म आती है। ऐसा ही अनुपात करना चाहिए। क्रमज्यानयन में जो विधि है उसको उत्क्रमज्यानयन में नहीं लेनी चाहिये इसलिये सूर्यसिद्धान्त में 'उत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः' यह जो कहा है सो ठीक नहीं है। यद्यपि उपर्युक्त उत्क्रमज्यानयन भी ठीक नहीं है यह उसकी उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट हैं। पर क्या किया जाए, जो दिखलाया गया है उसके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है ॥५५॥

इदानीमंशादिज्यानयनमाह ।

अंशादितिथिलब्धं जीवा जीवान्तरा हता भक्ता ।
षष्ट्या कलादिलब्धं जीवायुक्तं गुणो वा स्यात् । ॥५६॥
भागात्षष्टिगुणाद्वा तिथिभक्त मौर्विका विशेषहृतात् ।
ज्याविवरात्तद्भक्ताल्लब्धयुता मौर्विकाऽप्येवम् ॥५७॥

स्पष्टार्थौ ।

अत्रोपपत्तिः पूर्ववत्स्फुटैवास्तीति ।

हि. भा.—दोनों श्लोकों के अर्थ स्पष्ट हैं। उपपत्ति भी पहले की उपपत्ति की तरह स्पष्ट ही है ॥

इदानीं पुनरपि ज्यानयनमाह ।

कृतसंगुणिता लिप्ता स्थितिवर्गहृताः फलं गुणः शेषात् ।
ज्यान्तरहताद् विभक्तात्तत्वयमैर्लब्धयुग्गुणा जीवाः ॥५८॥

वि. भा.—लिप्ताः (इष्टचापकलाः) कृतसगुणिताः (चतुर्भिर्गुणिताः) तिथिवर्ग (२२५) हृताः (२२५ एभिर्भक्ताः) फलं गुणः (गतज्या) भवेत्। शेषात् (शेषचापात्) ज्यान्तरहतात् (गतज्यैष्यज्ययोरन्तरगुणितात्। तत्त्वयमैर्विभक्तात् (२२५) एभिर्भक्तात्। लब्धयुग्गुणा (लब्धयुक्ता गतज्या) जीवा (इष्टज्या) भवेदिति ॥५८॥

अत्रोपपत्तिः

अन्यैराचार्यैर्वृत्तपादे २२५, २×२२५, ३+२२५····· इत्यादि चापकलानां चतुर्विंशतिसंख्यका ज्यामानानि साधयित्वा पठितानि सन्ति, अनेन ग्रन्थकारेण

२२५ एतच्चापचतुर्थांशचापतुल्यप्रथमचापतद्द्विगुणितत्रिगुणितादिचापानां ज्याः षण्णवतिसंख्यकाः साधयित्वा पठिताः । अतएवैतन्नियमानुसारेणेष्टचापं यदि चतुर्भिर्गण्येत तदा २२५ एतच्चापानुसारं चापमानं भवेत्ततस्तच्चापस्य (इष्टचापस्य) ज्यानयनं पूर्ववदेव भवेद्यथा

$\frac{\text{इष्टचापकला}}{२२५}$ = लब्धसंख्यक गतज्या, ततः $\frac{(\text{एज्या} - \text{गतज्या}) \times \text{शे}}{२२५}$ = शेषचाप सम्बन्धीय ज्यान्तर एतस्य गतज्यायां योजनेष्टज्या स्यात् । भास्कराचार्यादिभिरेवमानयनं कृतमस्तीति ॥५८॥

पुनः ज्यानयन करते हैं ।

हि.भा.—इष्टचापकला को चार से गुणकर (२२५) दो सौ पच्चीस से भाग देने से लब्धसंख्यक गतज्या होती है । शेष चाप को गतज्या एष्टज्या के अन्तर से गुणकर (२२५) से दो सो पच्चीस से भाग देकर जो फल होता हो उसको गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है ॥५८॥

उपपत्ति

अन्य आचार्य वृत्तपाद में २२५, २२५ × २, २२५ × ३·········· इत्यादि चाप कलाओं की चौबीस ज्याओं के मान साधन कर पठित किये हैं, और ये ग्रन्थकार २२५ इसके चतुर्थांशतुल्य प्रथमचाप, २ प्रथमचाप, ३ प्रथमचाप ······· इत्यादि चापों की ज्याएं ९६ संख्यक साधन कर पठित किये हैं, इसलिये इनके (ग्रन्थकार के) नियमानुसार इष्टचाप को यदि चार से गुणा देंगे तो २२५ इस चाप के अनुसार चापमान होगा तब उस चाप के ज्यानयन पूर्ववत् करना । यथा—

$\frac{\text{इष्टचापकला}}{२२५}$ = लब्धसंख्यक गतज्या । शेष चाप से अनुपात करते हैं ।

$\frac{(\text{एज्या} - \text{गज्या}) \text{ शे}}{२२५}$ = शेषचाप सम्बन्धी ज्यान्तर, इसको गतज्या में जोड़ने से इष्टज्या होती है । भास्कराचार्य आदि इसी तरह ज्यानयन किये हैं ॥५८॥

इदानीं ज्यातश्चापानयनमाह ।

ज्यां प्रोज्झ्यं वासरकृतिः शेषगुणा ज्यान्तराब्धि हृतिभक्ता ।
फलयुक् स्याद्रसशर शुद्धसंख्या हृतिश्चापम् ॥५९॥

वि. भा.—यस्या जीवायाश्चापकरणमभीष्टं तत्र यावत्यो जीवा विशुद्ध्यन्ति ताः शोधयेच्छेषं गतज्येष्टज्ययोरन्तरं भवेत् । वासरकृतिः (२२५) शेषगुणा (शेषसम्बन्धीयज्यान्तरगुणा) ज्यान्तराब्धिहृतिभक्ता (चतुर्गुणितगतैष्यज्यान्तरभक्ता) फलयुक् रसशर (५६) शुद्धसंख्याहृतिः (प्रथमचापशुद्धसंख्ययोर्घातः) तदा चापं स्यादिति ॥५९॥

अत्रोपपत्तिः ।

इष्टज्यातोऽल्पा या गजज्यास्तासां मध्ये महत्तमां ज्यामिष्टज्यातो विशोध्य शेषेणानुपातः $\frac{\text{प्रथमचा. ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}} = \frac{\text{५६} \times \text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}} = \frac{\text{२२५}}{\text{४}} \times \frac{\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}}$

$= \frac{\text{२२५} \times \text{ज्याशे}}{\text{४ (ज्याए—ज्याग)}}$ =शेषचा क्षेत्रं ज्यानयने द्रष्टव्यम् । एतेन फलेन (शेषचापेन) विशुद्धसंख्यागुणित प्रथमचाप (५६′।१५″) युतं तदेष्टचापं भवेदत्रापि पूर्वमनुपातेन यच्छेषचापमानीतं तत्समीचीनं नास्ति, त्रिभुजयोर्वैजात्यादिति ॥५९॥

अब ज्या से चापानयन करते हैं ।

हि. भा.—जिस ज्या के चाप करने की इच्छा हो उस (ज्या) में जितनी ज्यायें घटें उनको घटा देना, शेष गतज्या और इष्टज्या के अन्तर रहता है । दो सौ पच्चीस (२२५) को शेष सम्बन्धीयज्यान्तर से गुण कर चतुर्गुणित ज्यान्तर (युक्तभोग्यज्यान्तर) से भाग देकर जो फल हो उसमें शुद्ध संख्या गुणित प्रथम चाप जोड़ने से इष्टचाप होता है ॥५९॥

उपपत्ति

इष्टज्या से छोटी जो गत ज्यायें हैं सब से बड़ी ज्या को इष्टज्या में घटाकर शेष पर से अनुपात करते हैं $\frac{\text{प्रथमचाप} \times \text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}} = \frac{\text{२२५}}{\text{४}} \times \frac{\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए—ज्याग}}$

$= \frac{\text{२२५} \times \text{ज्याशे}}{\text{४ (ज्याए—ज्याग)}}$ = शेष चाप, इसको विशुद्ध संख्या गुणित प्रथमचाप (५६′।१५″) में जोड़ने से इष्टचाप होता है । यहां भी अनुपात से जो शेष चाप लाया गया है सो ठीक नहीं है, क्योंकि दोनों त्रिभुज सजातीय नहीं हैं । ज्यानयन में जो क्षेत्र हैं उसको देखना चाहिए ॥५९॥

पुनश्चापानयनमाह ।

या ज्या ज्यातः शुद्धास्तत्संख्या ताड़ितं धनुर्युक्तम् ।
विकलशरासनघाताञ्ज्यान्तरलब्धेन चापं स्यात् ॥६०॥

वि. भा.—ज्यातः (इष्टज्यातः) या ज्याः (यत्संख्यका जीवाः) शुद्धास्ता विशोधयेत् । तत्संख्याताडितं धनुः (विशुद्धसंख्यागुणितप्रथमचापं) विकलशरासनघातात् (शेषप्रथमचापवधात्) ज्यान्तरलब्धेन (गत्यैष्यज्यान्तरभक्तफलेन) युक्तं तदा चापं (इष्टचापं) स्यादिति ॥६०॥

अत्रोपपत्तिः ।

यस्या इष्टज्यायाश्चापकरणमस्ति तत्र यावत्यो जीवा विशुद्धयन्ति ता विशोधयेत् । शेषं गतज्येष्टज्ययोरन्तरं भवेत् । ततोऽनुपातो यदि गतैष्यज्ययोरन्तरेण प्रथमचापं लभ्यते तदा ज्याशेषेण किमित्यनुपातेन शेषचापप्रमाणमागच्छति

तत्स्वरूपम् $=\frac{\text{प्रथमचा}\times\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए}-\text{ज्याग}}=$ शेषचा, इदं 'शुद्धसंख्यागुणित प्रथमचापयुतं तदेष्टचापं भवेदत्रापि शेषचापानयनं न समीचीनं त्रिभुजयोर्विजातीयत्वात्। ज्यानयनस्थं चित्रम् द्रष्टव्यम् ॥६०॥

पुनः ज्या से चापानयन करते हैं।

हि. भा.—इष्टज्या में जितनी ज्या घटे, घटा देना, शुद्ध संख्यागुणित प्रथम चाप में, शेष प्रथम चाप के घात में गतज्या और एष्यज्या के अन्तर से भाग देने से जो फल हो वह इष्टचाप होता है ॥६०॥

उपपत्ति

हि. भा.—जिस इष्टज्या के चापकरण अभीष्ट हो उसमें जितनी ज्यायें घटें, घटा देना, शेष गतज्या और इष्टज्या के अन्तर रहता है। तब अनुपात करते हैं यदि गतज्या और एष्यज्या के अन्तर में प्रथम चाप पाते हैं तो ज्या शेष में क्या इस अनुपात से फल शेष चाप आता है $\frac{\text{प्रथम चा}\times\text{ज्याशे}}{\text{ज्याए}-\text{ज्याग}}=$ शेष चाप, इसको शुद्ध संख्यागुणित प्रथम चाप में जोड़ने से इष्टचाप होता है। यहां भी शेष चापानयन ठीक नहीं है क्योंकि दोनों त्रिभुज सजातीय नहीं है। ज्यानयन में जो चित्र है उसको देखिये ॥६०॥

इदानीं शेषांशज्यानयनमाह।

भुक्ताभुक्तज्यान्तर दलविकलवधात्स्वचापलब्धोनम्।
युक्तं क्रमोत्क्रम भुक्ताभुक्तखण्डयुतिदलं निघ्नम् ॥६१॥
विकलांशैर्भक्तं स्वचापमानैस्ततो विकलजीवा ।

वि. भा.—भुक्ताभुक्तज्यान्तरदलविकलवधात् (गतैष्यज्यान्तरार्धशेषचापघातात्) स्वचापलब्धोनं युक्तं (प्रथमचापभक्ताद् यल्लब्धं तेन हीनं युतं) क्रमोत्क्रमभुक्ताभुक्तखण्डयतिदलं (क्रमोत्क्रमज्यापक्षीय गतैष्यखण्डयोगार्धम्) विकलांशैः (शेषांशैः) निघ्नम् (गणितं) स्वचापमानैः (प्रथमचापमानैः भक्तं यत्फलं ततो विकलजीवा (शेषांशज्या) भवेदिति ॥६१॥

अत्रोपपत्तिः।

अथाभीष्टसिद्धयर्थमेकः सिद्धांतः।

अनुपातेन $\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{२}\cdot\frac{\text{शे}}{२}}{\frac{\text{प्रचा}}{२}}=\text{ज्या}\frac{\text{शे}}{२}$ 'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनीत्यादिना $\frac{\sqrt{\text{त्रि}\cdot\text{उशे}}}{२}=\text{ज्या}\frac{\text{शे}}{२}$ अतः समीकरणेन

$$\frac{\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{२}.\frac{\text{शे}}{२}}{}}{\frac{\text{प्रचा}}{२}}=\sqrt{\frac{\text{त्रि. उशे}}{२}}$$

उत्थापनेन $$\frac{\frac{\text{शे}}{२}\sqrt{\frac{\text{त्रि. उप्र}}{२}}}{\frac{\text{प्रचा}}{२}}=\frac{\sqrt{\text{त्रि. उशे}}}{२}$$

वर्गीकरणेन $\frac{\text{शे}^२\times\text{त्रि. उप्र}}{\text{प्रचा}^२\times २}=\frac{\text{त्रि. उशे}}{२}$

$\therefore\frac{\text{शे}^२\times\text{उप्र}}{\text{प्रचा}^२}=\text{उशे}$ अत्र यदि प्रचा=१० तदा $\frac{\text{शे}.^२\text{उप्र}}{१००}=\text{उशे}$.

एतेन विशेषोक्तसूत्रमवतरति ।

आद्योत्क्रमज्या शेषांशवर्गघ्नी शतभाजिता ।
दिगंशेप्रमिते ह्याद्ये शेषांशोत्क्रमशिंजिनी ।।

गतचापम्=गचा, शेषचापम्=शेचा, इष्टचापम्=इचा

तदा चानयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहृते इत्यादिना ज्या (ग+शे) $=\frac{\text{ज्याग. कोज्याशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{कोज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

परन्तु गतचा+शेचा=इचा ∴ ज्या (ग+शे)=ज्याइ

अतः ज्याइ—ज्याग $=\frac{\text{ज्याग. कोज्याशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{कोज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}-\text{ज्याग}$

$=\frac{\text{ज्याग. कोज्याशे}+\text{कोज्याग. ज्याशे}-\text{त्रि. ज्याग}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{ज्याग (कोज्याशे)}+\text{कोज्याग. ज्याश}}{\text{त्रि}}=\frac{-\text{ज्याग. उशे}+\text{कोज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्याग. ज्याशे}-\text{ज्याग. उशे}}{\text{त्रि}}$ परं $\frac{\text{ज्याप्र. शे}}{\text{प्रचा}}=\text{ज्याशे}$

तथा $\frac{\text{शे}^२.\text{ उप्र}}{\text{प्रचा}^२}=\text{उशे}$

अत उत्थापनेन

$\frac{\text{कोज्याग. ज्याप्र. शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}-\frac{\text{ज्याग. उप्र. शे}^२}{\text{त्रि. प्रचा}^२}=\text{ज्याइ}-\text{ज्याग}=\text{ज्यान्तरम्}=\text{ज्याअं}$

$$=\frac{\text{शे}}{\text{चा}}\left(\frac{\text{कोज्याग. ज्याप्र}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग. उप्र. शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}\right)=\text{शेषसम्बन्धीय ज्यान्तरम्}\ ।\ \cdots(१)$$

पश = प्रथमज्या, नम = गतज्या, सच = एष्यज्या, सट = एष्य खण्डम् । हर = गत खण्डम् केम = गतकोज्या

$$\frac{\text{गतखं}+\text{एखं}}{२}=\text{सज}=\text{जर}$$

$$\frac{\text{गतखं}+\text{एखं}}{२}-\text{एखं}=\frac{\text{गखं}+\text{एखं}-२\ \text{एखं}}{२}=\frac{\text{गखं}-\text{एखं}}{२}=\text{हज}$$

= नल ।

तन = प्रथमोत्क्रमज्या । नप = नस = प्रथमचापम् । पत = सत = प्रथमज्या ।

चित्र नं० ४

तदा केनम, सजत त्रिभुजयोः सजातीयत्वादनुपातः $\frac{\text{कोज्याग. ज्याप्र}}{\text{त्रि}}=\text{सज}$

$$=\frac{\text{गखं}+\text{एखं}}{२}=\frac{\text{यो}}{२}$$

तथा केनम, नतल त्रिभुजयोः सजातीयत्वात् $\frac{\text{ज्याग. उप्र}}{\text{त्रि}}=\text{नल}$

$$=\frac{\text{गखं}-\text{एखं}}{२}=\frac{\text{अन्तर}}{२}$$

अतः (१) अस्मिन् स्वरूपे उत्थापनेन $\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{यो}}{२}-\frac{\text{अं. शे}}{२\times\text{प्रचा}}\right)$

$=$ शेषसम्बन्धीयज्यान्तर $=$ ज्याअं ततः $\frac{\text{शे}\times\text{स्पभोखं}}{\text{प्रचा}}=$ शेषसंज्यान्तरम् ।

अं = गतैष्यखण्डांतर

अत्र यदि प्रथमचापम् १०° तदा कोष्ठकांतर्गतस्वरूपं भास्करोक्तस्पष्ट-भोग्यखण्डं भवेत् । आचार्येण अं = गतगम्यज्यान्तरं एह्यते तत्तथ्यं नास्ति ।

एतावता क्रमज्याकरणे आचार्योक्तमुपपन्नम् । अथोत्क्रमज्यापक्षे किं भवतीति विचार्यते । प्रथमचापम् = प्र, गतचापम् = ग । इष्टचापम् = इ तदा

दोर्ज्यंयोः कोटिमौर्व्योर्श्चेत्यादिना कोज्या (गचा+शेचा)=कोज्याइ

$=\frac{\text{कोज्याग. कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}$ परं कोज्याग—कोज्याइ=कोटिज्यान्तरम्

$=\text{कोज्याग}-\left(\frac{\text{कोज्याग. कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}\right)$

$=\frac{\text{त्रि. कोज्याग}-\text{कोज्याग. कोज्याशे}+\text{ज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्याग (त्रि}-\text{कोज्याशे)}+\text{ज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$=\frac{\text{कोज्याग. उशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{ज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}=\text{कोज्याग्रं}$ ।

$\text{उशे}=\frac{\text{उप्र}^{2}\ \text{शे}^{2}}{\text{प्रचा}^{2}},\quad \text{ज्याशे}=\frac{\text{ज्या प्र. शे}}{\text{प्रचा}}$

उत्थापनेन

$\frac{\text{कोज्याग. उप्र. शे}^{2}}{\text{त्रि. प्रचा}^{2}}+\frac{\text{ज्याग. ज्याप्र. शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}$

$\left(\frac{\text{कोज्याग. उप्र. शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}+\frac{\text{ज्याग. ज्याप्र}}{\text{त्रि}}\right)$

$=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{अं}\times\text{शे}}{\text{प्रचा}\times 2}+\frac{\text{यो}}{2}\right)=\text{कोज्याग्रं}=$उत्क्रमज्यान्तरम् अत्रापि

प्रथमचापस्य (१०°) कल्पनेन तथा $\text{अं}=\frac{\text{गखं}-\text{एखं}}{2}$ तदा कोष्ठकांतर्गतस्वरूप-मुत्क्रमज्यापक्षीय भास्करोक्त स्पष्टभोग्यखंडं भवति । ततः $\frac{\text{शे}\times\text{स्पष्ट भोखं}}{\text{प्रचा}}$ =शेषसम्बन्धी कोटिज्यान्तरम् । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥

अथ पूर्वं ज्यानयने '$\frac{\text{भोखं. शे}}{\text{प्रचा}}$=शेषसम्बन्धीय ज्यान्तरम् ।' अनुपातेन यच्छेषसम्बन्धीयज्यान्तरमानमानीतं तत्स्थूलं (बहुकलात्मक चापमानस्य सरलत्व-कल्पनात्) अतोऽत्रानुपातस्याविकलसंस्थानपुरःसरमेव येन केनाप्युपायेन यदि तस्यागतस्य स्थूलफलस्य स्फुटत्वं भवेत्तदा तत्करणीयमेव, आचार्येण तदर्थमेवं साधनं कृतं परमेतावता पूर्वोक्तकोष्ठकान्तर्गतफलस्य स्पष्टभोग्यखण्डस्वीकर-णेन पूर्वोक्तानुपाते '$\frac{\text{शे. भोखं}}{\text{प्रचा}}$' अस्मिन् भोग्यखण्डस्थले स्पष्टभोग्यग्रहणेऽनुपाता-गतफले सौक्ष्म्यं भवेन्नवेति विचार्यते। यद्यप्नेनाचार्येण '$\frac{\text{यो}}{2}-\frac{\text{अं. शे}}{\text{प्रचा}}$' एतस्य नाम स्पष्टभोग्यखण्डं न कथ्यते परं तदुपपत्या तत्स्पष्टभोग्यखण्डं सिद्धयत्यन्यथैतावता

प्रयासेनालम् । यदि $\frac{\text{यो}}{२}-\frac{\text{अं}\cdot\text{शे}}{\text{प्रचा}}$ इदं स्पष्टभोग्यखण्डं कथ्येत तदा पूर्वानुपातागतफलस्याविकलपुरःसरं संस्थानं जातमेव परं पूर्वानुपात $\left(\frac{\text{शे.भोखं}}{\text{प्रचा}}\right)$ नवीनानुपात $\frac{\text{शे.स्पभोखं}}{\text{प्रचा}}$ योर्मध्ये $\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}$ इति हरगुणकयोस्तुल्यत्वदर्शनादुभयत्रागतसमफले क्रमेण स्थूलत्वस्फुटत्वयोर्युक्तिसम्वलितत्वदर्शनाच्च तथा च स्थूलस्फुटाधारतः क्रमेणावश्यमभीष्टपदार्थे स्थूलस्फुटत्वं स्यान्नान्यथेति युक्तानुभवाच्च, पूर्वानुपातस्थस्थूलभोग्यखण्डतो नवीनानुपातस्थस्पष्टभोग्यखण्डे स्फुटत्वकथनं युक्तम् । तथैतस्यैवानयनं क्रियतेऽत इदानीं भोग्य-खण्डस्पष्टीकरण-माहेति श्रीभास्करस्यावतरणलिखनं सुयुक्तमेवेति ।

अथ शेषज्यानयनार्थं विचारः ।

कल्प्यते स्पष्टभोग्यखण्डस्पष्टीप्रमाणम्=य.

पूर्वमानीतं स्पष्टभोग्यखण्डस्वरूपम्= $\frac{\text{यो}}{२}\mp\frac{\text{अं}\cdot\text{शे}}{२\ \text{प्रचा}}=\text{य}$ ।

परं $\frac{\text{प्रचा}.\ \text{ज्याशे}}{\text{स्पभोखं}}=\text{शे}$

अत उत्थापनेन

$\frac{\text{यो}}{२}\mp\frac{\text{अं}.\ \text{प्रचा}.\text{ज्याशे}}{२\ \text{प्रचा}.\text{य}}=\text{य}$ पक्षौ २ य गुणितौ तदा

$\text{य}.\ \text{यो}\mp\text{अं}.\ \text{ज्याशे}=२\ \text{य}^{२}$ समशोधनेन $=\text{अं}.\ \text{ज्याशे}=२\ \text{य}^{२}-\text{य}.\ \text{यो}$

पक्षौ द्विगुणितौ तदा $\mp२\ \text{अं}.\ \text{ज्याशे}=४\ \text{य}^{२}-२\ \text{य}.\ \text{यो}$

पुनः पक्षौ $\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२}$ युक्तौ तदा $\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२}\mp२\text{अं}.\text{ज्याशे}=४\ \text{य}^{२}-२\text{य}.\ \text{यो}+\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२}$

मूलेन २ य— $\frac{\text{यो}}{२}=\sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२}\mp२\ \text{अं}.\ \text{ज्याशे}}$ ततः

$$\text{य}=\frac{\sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२}\mp२\ \text{अं}.\ \text{ज्याशे}}+\frac{\text{यो}}{२}}{२}$$

एतेन 'खण्डानि विशोध्याथो शेषं यातैष्यखण्डविवरघ्नम् ।
द्विगुणेन तेन यातैष्यैक्यार्धकृतेर्विहीनयुक्तायाः ॥
मूलेन तदैक्यार्धं युक्तं दलितं भवेत्स्पष्टम् ।
भोग्यं क्रमोत्क्रमधनुः करणायैवं गुरुत्वतोनकृतम् ॥

इति संशोधकोक्तमुपपद्यते

ततः $\frac{\text{ज्याशे} \times \text{प्रचा}}{\text{स्पष्टभोखं}}$ = शे = वास्तवशे । ततोऽस्य ज्याज्ञानं सुगममेवेति ॥६१॥

अब शेषांशज्यानयन करते हैं ।

हि. भा.—गत और गम्य ज्याओं के अन्तरार्ध से गुणित शेष चाप को प्रथम चाप से भाग देकर जो फल हो उसको क्रमज्या प्रकार और उत्क्रमज्या प्रकार में गत खण्ड और एष्य खण्ड योगार्ध में हीन युत करके शेषांश से गुणाकर प्रथम चाप से भाग देने से जो फल हो उस पर से शेषांश ज्या होती है ॥ ६१ ॥

उपपत्ति ।

आगे चलकर एक सिद्धान्त की आवश्यकता होगी इसलिये पहले उस सिद्धान्त की उपपत्ति करते हैं । प्रथमचाप = प्र, शेषचाप = शे तब अनुपात से $\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{२}\ \frac{\text{शे}}{२}}{\frac{\text{प्र चा}}{२}} = \text{ज्या}\ \frac{\text{शे}}{२}$

'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी' इत्यादि से $\sqrt{\frac{\text{त्रि.उशे}}{२}} = \text{ज्या}\ \frac{\text{शे}}{२}$ अतः

समीकरण करने से $\frac{\text{ज्या}\frac{\text{प्र}}{२} \cdot \frac{\text{शे}}{२}}{\frac{\text{प्र चा}}{२}} = \sqrt{\frac{\text{त्रि.उश}}{२}} = \frac{\frac{\text{शे}}{२}\sqrt{\frac{\text{त्रि. उ प्र}}{२}}}{\frac{\text{प्र चा}}{२}}$ वर्ग करने से

$\frac{\text{शे}^2 \times \text{त्रि.उ प्र}}{\text{प्र चा}^2 \times २} = \frac{\text{त्रि. उशे}}{२} \therefore \frac{\text{शे}^2.\text{उप्र}}{\text{प्रचा}^2} = \text{उशे}$. यहां यदि प्रचा = १० तब $\frac{\text{शे}^2.\text{उप्र}}{१००} = \text{उशे}$

इससे विशेषोक्तसूत्र उपपन्न हुआ ।

"आद्योत्क्रमज्या शेषांशवर्गघ्नीशतभाजिता । दिगंशे प्रमिते ह्याद्ये शेषांशोत्क्रमशिञ्जिनी"

गतचाप = गचा । शेषचाप = शेचा, इष्टचाप = इचा तब "चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहते" इत्यादि से ज्या (गचा + शेचा) = $\frac{\text{ज्याग. कोज्याशे}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{कोज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}}$ परन्तु गचा + शेषा = इचा ∴ ज्या (गचा + शेचा) = ज्याइ । इसमें ज्याग घटाने से ज्याइ — ज्याग

$= \frac{\text{ज्याग.कोज्याशे}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{कोज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}} - \text{ज्याग} =$

$\frac{\text{ज्याग.कोज्याशे} + \text{कोज्याग.ज्याशे} - \text{ज्याग.त्रि}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{ज्याग}\ (\text{कोज्याशे} - \text{त्रि}) + \text{कोज्याग. ज्याशे}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{ज्याग.उशे} + \text{कोज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{कोज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}} - \frac{\text{ज्याग.उशे}}{\text{त्रि}}$ = शेषसम्बन्धीय ज्यान्तर

परन्तु $\frac{\text{ज्याप्र.शे}}{\text{प्रचा}} = \text{ज्याशे}$

तथा पूर्व सिद्धान्त से $\frac{\text{शे}^2.\text{उ प्र}}{\text{प्रचा}^2} = \text{उशे}$

अतः उत्थापन देने से

$$\frac{\text{कोज्याग.ज्या प्र. शे}}{\text{त्रि: प्रचा}}-\frac{\text{ज्याग.शे}^{2}\text{.उप्र}}{\text{त्रि. प्रचा}^{2}}=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{कोज्याग.ज्याप्र}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग.उप्र.शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}\right)=$$

शेष सम्बन्धीय ज्यान्तर ······· (१)

चित्र ४ देखिये। पश = प्रथमज्या। नम = गतज्या, सच = एष्यज्या। सट = एष्यखण्डम्। टर = गतखण्डम्। केम = गतकोटिज्या, $\frac{\text{गतखं}+\text{एखं}}{२}$ = सज = जर।

$$\frac{\text{गखं}+\text{एखं}}{२}-\text{एखं}=\frac{\text{गखं}+\text{एखं}-२\text{ एखं}}{२}=\frac{\text{गखं}\times\text{एखं}}{२}$$ = टज = नल। तन = प्रथमउत्क्रमज्या नप = नस = प्रथमचाप, पत = सत = प्रथमज्या, तब केनम, सजत दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व के कारण अनुपात करते हैं $\frac{\text{कोज्याग.ज्याप्र}}{\text{त्रि}}=\text{सज}=\frac{\text{गखं}+\text{एखं}}{२}=\frac{\text{यो}}{२}$।

तथा केनम, नतल दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व से $\frac{\text{ज्याग.उप्र}}{\text{त्रि}}=\text{नल}=\frac{\text{गखं}-\text{एखं}}{२}=\frac{\text{अं}}{२}$

इन दोनों $\left(\frac{\text{यो}}{२},\ \frac{\text{अं}}{२}\right)$ के स्वरूप से (१) इसमें उत्थान देने से $\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{यो}}{२}-\frac{\text{अं.शे}}{२\text{प्रचा}}\right)=\text{ज्याअं}$

= शेष सम्बन्धी ज्यान्तर

यहां यदि प्रथमचाप = १०°, तथा अं = गतगम्य खण्डान्तर, तब कोष्ठकान्तर्गत स्वरूप भास्करोक्त स्पष्ट भोग्य खण्ड होगा, ग्रन्थकार अं = गतगम्यज्यान्तर लेते हैं सो ठीक नहीं हैं, इससे क्रमज्या पक्ष में आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।

अब उत्क्रमज्यापक्ष में क्या होता है सो विचार करते हैं।

प्रथमचाप = प्र, गतचाप = ग, इष्टचाप = इ, शेषचाप = शे तब "दोर्ज्ययोः कोटिमौर्व्योश्च" इत्यादि से

$$\text{कोज्या (ग+शे)}=\text{कोटिज्याइ}=\frac{\text{कोज्याग. कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}}$$ लेकिन

$$\text{कोज्याग}-\text{कोज्याइ}=\text{कोटिज्यान्तर}=\text{कोज्याग}-\left(\frac{\text{कोज्याग.कोज्याशे}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}}\right)$$

$$=\frac{\text{त्रि. कोज्याग}-\text{कोज्याग.कोज्याशे}+\text{ज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}}$$

$$=\frac{\text{कोज्याग (त्रि}-\text{कोज्याशे)}+\text{ज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}}$$

$$=\frac{\text{कोज्या.उशे}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{ज्याग.ज्याशे}}{\text{त्रि}}$$ । परन्तु $\frac{\text{उप्र.शे}^{2}}{\text{प्रचा}^{2}}=\text{उशे}$

तथा $\frac{\text{ज्या प्र. शे}}{\text{प्रचा}}=\text{ज्याशे}$

उत्थापन देने से

$$\frac{\text{कोज्याग. उ प्र. शे}^2}{\text{त्रि. प्रचा}^2}+\frac{\text{ज्याग.ज्याप्र. शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{कोज्याग.उ प्र. शे}}{\text{त्रि. प्रचा}}+\frac{\text{ज्याग.ज्याप्र}}{\text{त्रि}}\right)$$

$=\frac{\text{शे}}{\text{प्रचा}}\left(\frac{\text{अ}'.\text{शे}}{\text{प्रचा}\times २}+\frac{\text{यो}}{२}\right)=$ कोज्याअ$'$ = उत्क्रमज्यान्तर, यहां भी प्रथमचाप

= १० तथा अ$'=\frac{\text{गतखं}-\text{एखं}}{२}$ ग्रहण करने से कोष्ठकान्तर्गत भास्करोक्त उत्क्रमज्या-पक्षीय स्पष्ट भोग्यखण्ड होता है। यहां ग्रन्थकार अ$'$ = गतगम्य ज्यान्तर लेते हैं। सो ठीक नहीं है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥

पहले ज्यानयन में $\frac{\text{भोखं.शे}}{\text{प्रचा}}$ शेष सम्बन्धी ज्यान्तर जो अनुपात से शेष सम्बन्धी ज्यान्तर लाया गया है सो स्थूल है। क्योंकि वहां चापमान को सरलात्मक मानकर अनुपात किया गया है। इसलिये यदि किसी तरह अनुपातागत फल का स्फुटत्व हो जाय तो करना ही चाहिये। यदि पूर्वोक्त कोष्ठकान्तर्गत फल $\left(\frac{\text{यो}}{२}+\frac{\text{अ}'.\text{ शे}}{२\text{ प्रचा}}\right)$ को स्पष्टभोग्य खण्ड मान लें तब अनुपातागत फल में सूक्ष्मता होगी या नहीं इसके लिये विचार करते हैं। यद्यपि ये ग्रन्थकार $\frac{\text{यो}}{२}\mp\frac{\text{अ}'.\text{शे}}{२\text{ प्रचा}}$ इसका नाम स्पष्ट भोग्य खण्ड नहीं कहते हैं लेकिन उपपत्ति से स्पष्ट भोग्य खण्ड सिद्ध होता है, नहीं तो इतने प्रयास से शेष सम्बन्धी ज्यान्तर से क्या फल। यदि उसको स्पष्ट भोग्य खण्ड कहते हैं तब पूर्वानुपातागत फल का स्वरूप ज्यों का त्यों रहता ही है। केवल भोग्यखण्ड के स्थान में स्पष्ट भोग्य खण्ड वहां रहेगा। दोनों में $\frac{\text{शे. भोखं}}{\text{प्रचा}}$ तथा $\frac{\text{शे. स्पभो।खं}}{\text{प्रचा}}$ यह गुणक बराबर होने के कारण स्थूलत्व सूक्ष्मत्व प्रत्यक्ष देखने में आते हैं अत: $\frac{\text{शे. स्पभोखं}}{\text{प्रचा}}$ यह पूर्वानुपातागत $\frac{\text{शे.भोखं}}{\text{प्रचा}}$ फल से युक्तिसङ्गत स्पष्ट सिद्ध हुआ, इसीलिये भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में "इदानीं भोग्यखण्डस्पष्टाकरणमाह" यह अवतरण युक्तियुक्त लिखा है ॥ ६१ ॥

अवशेष ज्यानयन करते हैं।

स्पष्ट भोग्यखण्ड प्रमाण = य

पहले लाये हुए स्पष्ट भोग्यखण्ड प्रमाण = $\frac{\text{यो}}{२}\mp\frac{\text{अ}'.\text{ शे}}{२\text{ प्रचा}}=$ य। लेकिन $\frac{\text{प्रचा.ज्याशे}}{\text{स्पभोखं}}=$ शे

उत्थापन देने से

$\frac{\text{यो}}{२} \mp \frac{\text{अं.प्रचा.ज्याशे}}{२\ \text{प्रचा.य}} = \text{य} = \frac{\text{यो}}{२} \pm \frac{\text{अं.ज्याशे}}{२\ \text{य}}$ दोनों पक्षों को २ य से गुण देने से २ य^{२}=य. यो$\mp$ अं. ज्याशे समशोधन करने से

२ य^{२}—य यो= $\mp$अं. ज्याशे दोनों पक्षों को दो से गुणने से

४ य^{२}—२ य. यो= $\mp$२ अं.ज्याशे दोनों पक्षों में $\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२}$ जोड़ देने से

४ य^{२}—२ य.यो+ $\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२} = \left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२} \mp$२ अं.ज्याशे मूल लेने से

$२\ \text{य} - \frac{\text{यो}}{२} = \sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२} \mp २\ \text{अं.ज्याशे}}$

अतः $\frac{\sqrt{\left(\frac{\text{यो}}{२}\right)^{२} \mp २\ \text{अं.ज्याशे}} + \frac{\text{यो}}{२}}{२} = \text{य}$

इससे संशोधकोक्त सूत्र उपपन्न हुआ ।

"खण्डानि विशोध्याथो शेषं यातैष्यखण्डविवरघ्नम् ।" इत्यादि

इस पर से $\frac{\text{प्रचा.ज्याशे}}{\text{स्पभोखं}}$ =शे=वास्तवशे इससे इसका ज्याज्ञान सुलभ है ।। ६१ ।।

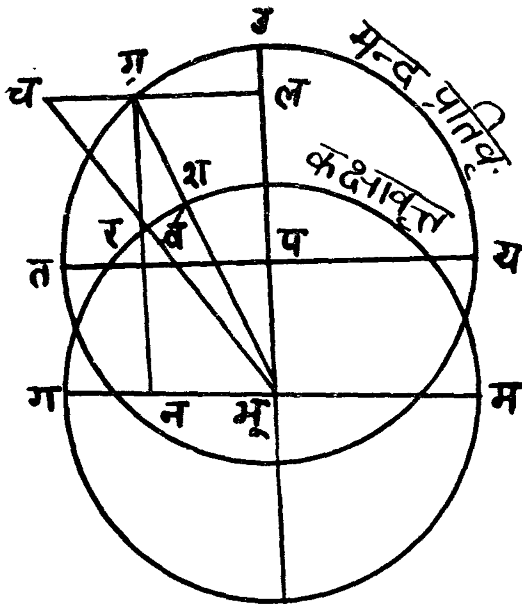
इदानीं रवीन्द्वोः स्पष्टीकरणं भुजान्तरकर्मानयनञ्चाह ।

परिधिघ्नभांशभाजित भुजकोटिज्ये तयोः फले भवतः ।।६२।।
रविशशिदोः फलचापं मेषतुलादिस्थ निजकेन्द्रे ।।
शोध्यं क्षेप्यमिनेन्द्वोः स्पष्टौ स्तः सूर्यफलकलाभिहताः ।।६३।।
राश्युदयाश्च रवेरहोरात्रासुभाजितास्तेन संगुणिताः ।
गतयो ग्रहस्य शून्याभ्रनागमहीभाजिताः फलं रविवत् ।।६४।।

वि.भा.—परिधिघ्नभांशभाजितयुजकोटिज्ये (परिधिना गुणिते भांशैर्भाजिते भुजकोटिज्ये) तयोर्भुजकोटिज्ययोः फले (भुजफल, कोटिफले) भवतः । रविशशि-दोः फलचापं (रविचन्द्रयोर्भुजफलचापं) मेतुलादिस्थ निजकेन्द्रे (मेषादिकेन्द्रस्थे तुलादिकेन्द्रस्थे च) इनेन्द्वोः (सूर्याचन्द्रमसोः (शोध्यं (हीनं) क्षेप्यं (योज्यं) तदा स्पष्टौ स्तः (सूर्याचन्द्रमसौ स्पष्टौ भवतः) । रवेः (सूर्यस्य) राश्युदयाः (निरक्षोदयाः) सूर्यफलकलाभिहताः (रविमन्दफलकलागुणिताः) अहोरात्रासुभाजिना: (अहो-रात्रासुभिर्भक्ताः) तेन फलेन ग्रहस्य गतयः संगुणिताः (ग्रहगतिकलागुणिताः) शून्याभ्रनागमहीभाजिताः (१८०० भक्ताः) फलं रविवत् (मध्यमरवौ मन्दफल-**योजनेन यदि स्पष्टरविस्तदाऽऽनीतफलमपि मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे योज्यं यदि च**

मध्यमरवौ मन्दफलविशोधनेन स्पष्टरविस्तदाऽऽनीतफलं मध्यमार्कोदयकालिक-ग्रहे विशोध्यं तदा स्पष्टार्कोदयकालिकग्रहो भवेदिति ॥६२—६४॥

अत्रोपपत्तिः



चित्र ५

भू = भूकेन्द्रम् । प = मन्दप्रति-वृत्तकेन्द्रम् । भूप = मन्दान्त्य-फलज्या । उ = मन्दोच्चम् । ग्र = मन्दप्रतिवृत्ते ग्रहः । ग्रउ = मन्दकेन्द्रम् । ग्रल = मन्दकेन्द्रज्या । लप = मन्दकेन्द्रकोटिज्या भूर रेखा वर्धिता तदुपरि ग्रबिन्दुतो लम्बः = ग्रच = मन्दभुजफलम् । चर = मन्दकोटिफलम् । रग्र = मन्दान्त्यफलज्या । रन = मन्द-केन्द्रकोटिज्या भून = मन्दकेन्द्र-ज्या । भूर = त्रिज्या र = मध्यम ग्रहः । श = स्पष्टग्रहः । रश = मन्दफलम्

गम = कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा ।

तय = मन्दप्रतिवृत्ततिर्यग्रेखा ।

तदा भूरन, रग्रच त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः ।

$$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या} \times \text{मन्दान्त्यफलज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मन्दभुजफलम्} \text{।}$$

$$\frac{\text{मन्दकेन्द्रकोज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मन्दकोटिफलम्} \text{।}$$

पर $\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०}$ अत उत्थापनेन

$\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दपरिधि}}{३६०} = \text{रविमंदभुजफलम्}$ । $\frac{\text{मन्दकेकोज्या} \times \text{मन्दपरिधि}}{३६०} =$ मन्द-कोटिफलम् । $\frac{\text{रविमन्दकेज्या} \times \text{रविमन्दपरिधि}}{३६०} = \text{रविमन्दभुजफ}$ ।

$\frac{\text{चन्द्रमन्दकेज्या} \times \text{चन्द्रमन्दपरिधि}}{३६०} = \text{चन्द्रभुजफलम्}$ ।

चापकरणेन रविचन्द्रयोर्मन्दभुजफलचापे तयोर्मन्दफले भवतः स्वल्पान्तरात् तदा मेषादिकेन्द्रे स्पष्टरवितो मध्यमरवेरग्रे स्थितत्वात् मध्यमरवि — रविमन्दफल =

स्पष्टरवि: तुलादिकेन्द्रे स्पष्टरवितो मध्यमरवेः पृष्ठे स्थितत्वात् मध्यमरवि + रविमन्दफ =स्पष्टरविः। एवं चन्द्रे पि, अत्राचार्येण मन्दभुजफलचापसमं मन्दफलं यत्स्वीकृतं तन्न समीचीनम्। यतः ग्रच=भुजफल। शव=मन्दफलज्या, एतयोः साम्ये आचार्यकथनं समीचीनं भवितुमर्हति परं प्रत्यक्षमेव दृश्यते तयोः साम्यं नास्ति। पठितमन्दकर्णाग्रीयं मन्दभुजफलं मन्दफलज्यासमं भवति, तात्कालिककर्णाग्रीयं मन्दभुजफलं मन्दफलज्यासमं न भवति। यथा

चित्र ६

ग्र=मन्दप्रतिवृत्ते मध्यमग्रहः। भूग्र=तात्कालिमन्दकर्णः। ग्रम=तात्कालिकान्त्यफलज्या ग्रस=मन्द भुजफलम्। नप=मन्दफलज्या, न बिन्दुतो भूसरेखायाः समानान्तरा रेखा कार्या सा यत्र मग्ररेखायां लग्ना तत्र श बिन्दुः। श बिन्दुतः भूसरेखोपरिलम्बः = शर=पठितमन्दकर्णाग्रीय भुजफ भूश=पठितमन्दकर्णः। न बिन्दुतो मग्र रेखायाः समान्तरा नज रेखा कार्या तदा नश मज समानान्तर चतुर्भुजे मश=नज। परं भूग्रम, भूनज त्रिभुजयोः साजात्यात्

$$\frac{\text{तात्कालिकान्त्यफज्या} \times \text{त्रि}}{\text{तात्कालिकामंकर्ण}} = \text{नज}$$

= पठितान्त्यफलज्या, यतस्त्रिज्यातुल्ये कर्णे यान्त्यफलज्या सैव पठितान्त्यफलज्या, नज=शम=पठितान्त्यफज्या अतः भूश=पठितमन्दकर्ण। तथा रश=नप (समानान्तर चतुर्भुजत्वात्) परं रश=पठितमन्दकर्णाग्रीयभुजफलम्। नप=मन्दफज्या,

एतेन सिद्धं यत्पठितमन्दकर्णाग्रीयभुजफल मन्दफलज्ययोस्तुल्यत्वात्तद्भुजचापसमं मन्दफलं भवितुमर्हति। नहि तात्कालिक मन्दभुजफलचापसमं मन्दफलं भवेदत आचार्योक्तं न समीचीनमिति। श्रीपतिनाऽपि सिद्धान्तशेखरे एवमेव कथ्यते—

दोः फलस्य च धनुःकलादिकं जायते मृदुफलं नभः सदाम्।
तेन संस्कृततनुर्दिवाकरो मध्यमो विधुरपि स्फुटो भवेत्॥ इति
भास्कराचार्येणापि मन्दभुजफलचापसममेव मन्दफलं कथ्यते। यथा
मूलं श्रुतिर्वा मृदु दोः फलस्य चापं बुधा मन्दफलं वदन्ति॥

सूर्यफलकलाभिहता इत्यारभ्य फलं रविवदित्यन्तेन भुजान्तरसाधनं क्रियते तदुपपत्तिर्मया मध्यमाधिकारे लिखिता सा तत्रैव द्रष्टव्येति॥६२-६४॥

हि. भा.—केन्द्रज्या और केन्द्रकोटिज्या को परिधि से गुणाकर भांश (३६०) से भाग देने से भुजफल और कोटिफल होता है। रवि और चन्द्र के भुजफल चाप को मेषादिकेन्द्र में मध्यम रवि और मध्यमचन्द्र में ऋण करने से तुलादिकेन्द्र में मध्यम रवि और मध्यम चन्द्र से धन करने से स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र होते हैं। रवियुत राशि के निरक्षोदयासु को रवि मन्दफलकला से गुण देना अहोरात्रासु से भाग देकर जो हो उसको ग्रहगति से गुणकर १८०० से भाग देने से जो फल होता है उसको रवि की तरह (मध्यम रवि में मन्द फल जोड़ने से स्पष्ट रवि होते हैं तो इस लाये हुए फल को भी मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह में जोड़ देना, यदि मध्यमरवि में मन्द फल को ऋण करने से स्पष्ट रवि होते हैं तो मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह में ऋण करना तव स्पष्टार्कोदय कालिक ग्रह होता है) ॥६२-६४॥

उपपत्ति

चित्र ५ को देखिये।

भू=भूकेन्द्र प=मन्दप्रतिवृत्त केन्द्र। भूप=मन्दान्त्यफलज्या। उ=मन्दोच्च। ग्र=मन्दप्रतिवृत्त में मध्यमग्रह। ग्रउ=मन्दकेन्द्र। ग्रल=मन्द्रकेन्द्रज्या, लप=मन्दकेन्द्रकोटिज्या, भूर रेखा को बड़ा कर उस पर ग्र बिन्दु से लम्ब करते हैं। उसका नाम है मन्दभुजफल=ग्रच। चर=मन्दकोटिफल। रग्र=मन्दान्त्यफलज्या, रन=मन्दकेन्द्रकोटिज्या, भून=मन्दकेन्द्रज्या, र=मध्यम ग्रह। श=स्पष्टग्रह। रश=मन्दफल। गम=कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा। तय=मन्दप्रतिवृत्तमध्यगतिर्यग्रेखा। तब भूरन, रग्रच दोनों त्रिभुजसजातीय है इसलिये अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्या} \times \text{मन्दान्त्यफलज्या}}{\text{त्रि}}$ = मन्दभुजफल। $\frac{\text{मन्द के कोज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मन्द-कोटिक लेकिन $\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०}$ उत्थापन देने से

$\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दपरिधि}}{३६०}$ = मन्दभुजफल। $\frac{\text{मन्द के कोज्या} \times \text{मं परिधि}}{३६०}$ = मन्दकोटिफल

$\frac{\text{रविमन्दके ज्या} \times \text{रवि मन्द परिधि}}{३६०}$ = रविमं भुजफल। $\frac{\text{चं मं केज्या} \times \text{चं मं परिधि}}{३६०}$ = चन्द्र मंभुफल चाप करने से रवि और चन्द्र का मन्दभुजफल चाप होता है। इसको आचार्य स्वल्पान्तर से मन्दफल के बराबर मानते हैं।

तव मेषादिकेन्द्र में स्पष्ट रवि से मध्यम रवि आगे रहते हैं इसलिये मरवि + रमंफ = स्पष्ट रवि तुलादिकेन्द्र में स्पष्टरवि से मध्यम रवि पीछे रहते हैं इसलिये मरवि + रमंफ = स्पष्टरवि इसी तरह चन्द्र में भी होता है। ग्रच=भुजफल। शव=मन्दफलज्या इन दोनों के बराबर रहने से आचार्य का कथन ठीक हो सकता है लेकिन प्रत्यक्ष देखते हैं दोनों बरावर नहीं हैं।

पठित मन्दकर्णाग्रीय भुजफल मन्दफलज्या के बराबर होता है। तात्कालिक कर्णाग्रीय भुजफल मन्दफलज्या के बराबर नहीं होता है। जैसे—

यहां चित्र ६ देखिये। ग्र=मन्द प्रतिवृत्त में मध्यग्रह। भूग्र=तात्कालिक मन्दकर्ण ग्रम=तात्कालिकान्त्यफलज्या, ग्रस=मन्दभुजफल। नप=मन्दफलज्या, न बिन्दु से भूस रेखा की समान्तर रेखा कीजिये ग्रम रेखा में जहां लगती है वहां श बिन्दु है। श बिन्दु से भूस रेखा के ऊपर लम्ब=शर=पठितमन्दकर्णाग्रीय भुजफल। भूश=पठितमन्दकर्ण न बिन्दु से ग्रम रेखा की समानान्तर रेखा नज है तब मश=नज, भूग्रम, भूनज दोनों त्रिभुज सजातीय है इसलिये

$\frac{\text{तात्कालिकान्त्यफलज्या} \times \text{त्रि}}{\text{तात्कालिकमन्दकर्ण}}$ =नज=पठितान्त्यफलज्या। त्रिज्यातुल्यकर्ण में जो अन्त्यफलज्या है वही पठितान्त्यफलज्या कहलाती है। नज=शम=पठितान्त्यफलज्या। ∴ भूश=पठितमन्दकर्ण, रश=नप। लेकिन रश=पठितमन्दकर्णाग्रीयभुजफल। नप=मन्दफलज्या, इससे सिद्ध हुआ कि पठित मंद कर्णाग्रीय भुजफल और मन्दफलज्या के बराबर होने के कारण उस भुजफल के चाप के बराबर मन्दफल होता है। तात्कालिक मन्दभुज चाप के बराबर मन्दफल नहीं होता है। इसलिये आचार्य का कथन ठीक नहीं है।

सिद्धांतशेखर में श्रीपति भी इसी तरह कहते हैं। यथा—

दोः फलस्य च धेनुः कलादिकं जायते मृदुफलं नभः सदाम्।
तेन संस्कृततनुर्दिवाकरो मध्यमो विधुरपि स्फुटो भवेत्॥

भास्कराचार्य भी मन्दभुजफल चाप ही को मन्दफल कहते हैं। जैसे—

मूलं श्रुतिर्वा मृदु दोः फलस्य चापं बुधा मन्दफलं वदन्ति॥

'सूर्यफलकलाभिहता' यहां से 'फलं रविवत्' यहां तक से आचार्य भुजान्तर फल साधन करते हैं। उसकी उपपत्ति मध्यमाधिकार में लिखी गयी है। वह नहीं देखनी चाहिये॥६२-६४॥

इदानीं ग्रहाणां चरकर्माह।

भानोश्चरासु निहतागतयो ग्रहाणां खाभ्राङ्ग स्वर्गविहृताः फलहीनयुक्ताः।
मेषादिगे दिनपतावुदयास्तसंस्था जूकादिके तु खचराः सहिता वियुक्ताः॥६५॥

वि.भा.—ग्रहाणां गतयः (ग्रहगतिकलाः) चरासुनिहताः (चरासुभिर्गुणिताः) खाभ्राङ्ग (२६००) विहृताः (भक्ताः) फलहीनयुक्ताः खचराः कार्या दिनपतौ (सूर्ये) मेषादिगेऽर्थादुत्तरगोले सति), दिनपतौ (सूर्ये) जूकादिके (तुलादिस्थेऽर्थाद्दक्षिणगोले) सहिता वियुक्ताः (युक्ता-रहिताः) खचराः कार्याः तदा क्रमश उदयास्तसंस्था ग्रहा भवन्त्यर्थादुत्तरगोले चरफलकलाभिग्रहो रहितो दक्षिणगोले सहितस्तदौदयिको ग्रहो भवेत्तथोत्तरगोले सहितो दक्षिणगोले रहितस्तदाऽस्तकालिकग्रहो भवेदिति॥६५॥

अत्रोपपत्तिः

अहर्गणोत्पन्ना ग्रहा लङ्काक्षितिजासन्नाः समागच्छन्ति, तत्र देशान्तरसंस्कारेण स्वकीयोन्मण्डलकालिका भवन्ति। एतदाचार्यमतेन न्वहर्गणोत्थग्रहा लङ्काक्षितिजस्था

एव समागच्छन्तीत्यहर्गणाद् ग्रहानयनदर्शनैव स्फुटं भवेत् । परमपेक्षितास्तु स्वक्षितिजोदयकालिकाः । तेन स्वक्षितिजोन्मण्डलयोरन्तररूपचरासु सम्बन्धिग्रहगतिमानीयते तत्रानुपातो यद्यहोरात्रासुभिर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदा चरासुभिः किं समागच्छन्ति चरास्वन्तर्गतग्रहगतिकलाः । उत्तरगोले उन्मण्डलस्य स्वक्षितिजादुपरिस्थितत्वादानीतचरफलैरुन्मण्डलकालको ग्रहो हीनः कार्यो दक्षिणगोले युक्तः (उन्मण्डलात्स्वक्षितिजस्योर्ध्वस्थितत्वात्) तदा स्वक्षितिजोदयकालिकग्रहो भवेत् । परं चरासुमध्येऽपि ग्रहाणां काऽपिगतिर्भविष्यति तद्ग्रहणन्त्वाचार्येण न कृतमतः पूर्वोक्तयुक्त्यौदयिकग्रहास्तकालिकग्रहश्च न समीचीनास्तत्रासकृत्कर्मणा पूर्वोक्तग्रहसिद्धिः । अहोरात्रासुशब्देन सर्वत्रैव ग्रहाहोरात्रासवो न ग्रहीतव्या ग्रहाहोरात्रा स्वन्तर्गतग्रहगतिपाठाभावादिति ॥६५॥

हि. भा.—ग्रहगति को चरासु से गुणा कर २१६०० से भाग देने से जो फल हो उसको उत्तर गोल में रवि के रहने से ग्रह में घटाने से दक्षिण गोल में जोड़ने से औदयिकग्रह होते हैं । तथा उत्तर गोल में जोड़ने से दक्षिण गोल में घटाने से अस्तकालिक ग्रह होते हैं ॥६५॥

उपपत्ति

अहर्गणोत्पन्न ग्रह लंकाक्षितिजासन्न में आते हैं, उसमें देशान्तर संस्कार करने से उन्मण्डलकालिक ग्रह होते हैं । इन आचार्य के मत में अहर्गणोत्पन्न ग्रह लंकाक्षितिजस्थ होते हैं । यह विषय अहर्गण से ग्रहानयन देखने से साफ होता है, लेकिन ग्रह अपेक्षित है स्वक्षितिजोदयकालिक इसलिए स्वक्षितिज और उन्मण्डल के अन्तर्गत चरासु सम्बन्धी ग्रहगति प्रमाण लाते हैं । यदि अहोरात्रासु में ग्रहगति कला पाते हैं तो चरासु में क्या इस अनुपात से चरासु सम्बन्धि ग्रहगति कला प्रमाण आया । उत्तर गोल में अपने क्षितिज से उन्मण्डल के ऊपर रहने के कारण आनीत चरफल को उन्मण्डलकालिक ग्रह में ऋण करने से दक्षिणगोल में जोड़ने (उन्मण्डल से स्वक्षिति को ऊपर रहने के कारण) से स्वक्षितिजोदयकालिक ग्रह होते हैं । लेकिन चरासु के अन्तर्गत भी ग्रह की कुछ गति होगी उसका ग्रहण आचार्य नहीं करते हैं, इसलिए पूर्वोक्तयुक्ति से औदयिक ग्रह और अस्तकालिक ग्रह ठीक नहीं होगा वहां असकृत्कर्म करने से पूर्वोक्त ग्रह ठीक होंगे । अहोरात्र शब्द से सब जगह ग्रह की अहोरात्रासु नहीं लेनी चाहिए । क्योंकि ग्रहाहोरात्रान्तर्गत ग्रहगति का पाठ नहीं है ॥६५॥

इदानीं स्पष्टगतिपरिभाषामाह ।

ह्यः श्वस्तनाद्यतनयोर्विशेषजा सूर्ययोर्गतिः स्फुटगतिर्गतागता ।
श्वस्तनाद्यतनयो रवेर्विधोरेवमिष्टखचरस्य वा भवेत् ॥६६॥

वि. भा.—ह्यः श्वस्तनाद्यतनयोः सूर्ययोः (ह्यस्तनाद्यतनयोः, श्वस्तनाद्यतनयोः सूर्ययोः) विशेषजा (अन्तरोत्पन्ना) गतिः, गतागता (अतीतगम्या) स्फुट-

गतिर्भवेदर्थात् ह्यस्तनाद्यतनस्फुटसूर्ययोरन्तरं गता सूर्यस्पष्टा गतिस्तयाऽद्यतन-श्वस्तनस्पष्टसूर्ययोरन्तरं गम्या स्पष्टसूर्यगतिः। एवं श्वस्तनाद्यतनयोरवेर्विधोरिष्ट-ग्रहस्य वा स्फुटा गतिर्भवेदिति ॥६६॥

उपपत्तिः

स्पष्टगतेः परिभाषा क्रियते। ग्रहयोरन्तरं ग्रहगतिः। ह्यस्तनाद्यतनयोर्ग्रहयो-रन्तरं गतग्रहगतिः। अद्यतनश्वस्तनग्रहयोरन्तरं गम्यग्रहगतिः। सर्वेषां ग्रहादीनां गतेः परिभाषैकरूपैव भवेत्। अद्यतनश्वस्तन मध्यमग्रहयोरन्तरं मध्यगतिः। अद्यतनश्वस्तनमन्दोच्चयोरन्तरं मन्दोच्चगतिरेवं सर्वेषां गतिर्भवतीति ॥६६॥

हि. भा.—बीता हुआ कल और आज के स्पष्टसूर्य का अन्तर गत सूर्य स्पष्टगति होती है और आज के स्पष्ट सूर्य और भावी कल के स्पष्ट सूर्य का अन्तर गम्य सूर्य स्पष्ट गति होती है। इसी तरह चन्द्र और दूसरे ग्रह की भी स्पष्टगति होती है। गति की परिभाषा करते हैं किसी भी ग्रह या मन्दोच्चादि की गति की परिभाषा इसी तरह की जाती है। आज के और कल के मध्यम ग्रह का अन्तर मध्यम ग्रहगति है। आज के और कल के मन्दोच्च के अन्तर मन्दोच्चगति है। इसी तरह सब की गति होती है ॥६६॥

इदानीं मन्दगतिफलानयनं ततः स्पष्टगत्यानयनं चाह।

मन्दतुङ्गगतिवर्जिता गतिः केन्द्रभुक्तिरिह खेचरस्य सा।
दोर्गुणान्तर हताद्यजीवया भाजिताः स्वपरिणाहसंगुणा ॥६७॥
भगणांशहृता फलं गतौ निजकेन्द्रे मकरादिके क्षयः।
धनमिन्दुगृहादिके स्फुटा श्रवणाग्रे खलु चान्तमानिका ॥६८॥

वि. भा.—गतिः (मध्यगतिः) मन्दतुंगगतिवर्जिता (मन्दोच्चगतिरहिता) तदा सा खेचरस्य (ग्रहस्य) केन्द्रयुक्तिः (मन्दकेन्द्रगतिर्भवेत्) दोर्गुणान्तरहता (मन्दकेन्द्रज्यान्तरगुणा) आद्यजीवया (प्रथमज्यया) भाजिता (भक्ता) स्वपरि-णाहसंगुणा (स्वपरिधिगुणिता) भगणांशहृता (३६० एभिर्भाज्या) फलं मकरादिके निजकेन्द्रे (मकरादिके स्वकेन्द्रे) गतौ (मध्यगतौ) क्षयः (ऋणं) कार्यं, इन्दुगृहा-दिके केन्द्रे (कर्क्यादिकेन्द्रे) धनं (युक्तं) तदा (स्फुटा गतिः स्यात्) रविचन्द्रयोः कृते इयमेव स्फुटा गतिर्भवेदन्येषां कृते मन्दस्पष्टगतिर्भवेत्। श्रवणाग्रे खलु चान्तमानि-केत्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध इति ॥६७-६८॥

अत्रोपपत्तिः।

अथ $\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मंदभुजफल = मंदफलज्या (स्वल्पांतरात्)

तथा $\frac{\text{मं'दकेज्या} \times \text{मंदांत्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मं'दभुजफ = मं'दफज्या (स्वल्पान्तरात्)

अनयोरन्तरेण

$$\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}(\text{म'न्दकेज्या} \sim \text{मन्दकेज्या}) = \text{म'न्दफलज्या} \sim \text{मन्दफज्या} = \text{मंफलज्यान्तरम्} = \text{मंफलगतिः}$$ (स्वल्पान्तरात्)

$$= \frac{\text{मन्दान्तफज्या} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{त्रि}} = \text{मंफलगति}$$

अथ मन्दकेन्द्रज्यान्तरमानीयते ।

चन = मंदकेंद्रम् । च बिंदुतो वृत्त-स्पर्शरेखा कार्या तत्र चर = प्रथमज्या, चप = मंद-केन्द्रगति इति दत्वा च बिंदुतो रज रेखोपरि लम्ब = चम तदा रम = स्पष्टभोग्य खण्डम् । पच = मंद केन्द्रग

तदा चरम, चपव त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः

चित्र ७

$$\frac{\text{स्पष्टभोखं} \times \text{मंदकेन्द्रगति}}{\text{प्रथमज्या}} = \text{मन्दकेन्द्रगतिसंज्यावृद्धिः} = \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}$$

मन्दफलगतिस्वरूपे उत्थापनेन $\frac{\text{मन्दान्त्यफलज्या} \times \text{स्पभोखं} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि} \times \text{ज्याप्र}} = \text{मंफलगतिः}$

अत्र $\frac{\text{मंअन्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०} \therefore \frac{\text{मन्दपरिधि} \times \text{स्पभोखं} \times \text{मकेग}}{३६० \times \text{ज्याप्र}} = \text{मंफलगति}$

ततो मकरादि कर्क्यादिकेन्द्रवशतः गध्यग ∓ मंगफ = मंस्पग,

रविचन्द्रयोर्मध्यमगतिमन्दगतिफलयोश्च ग्रहणादियमेव स्पष्टगतिर्भवति ।। एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ।

परमेनदानयनं न समीचीनं यतो मन्दफलज्यान्तरमन्दफलान्तरयोः समत्वं स्वीकृतमाचार्येणातो वास्तवानयनं क्रियते ।

अथ $\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंदअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मंफज्या}$, पक्षयोश्चलनकलनरीत्या तात्कालिक

गतिग्रहणेन $\frac{\text{मंअ्रंफज्या}}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{मंकेकोज्या} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मंफकोज्या} \times \text{मंफग}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{मंकोटिफल} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मंफकोज्या} \times \text{मंफग}}{\text{त्रि}}$

अतः मंकोफ × मंकेग = मंफकोज्या × मंफग पक्षौ मंफकोज्या भक्तौ तदा $\frac{\text{मंकोफ} \times \text{मकेग}}{\text{मंफकोज्या}}$ = मंफलगति। अनया रीत्या वास्तवं मन्दगतिफलानयनं भवितुमर्हति, अथाऽनीतमन्दगतिफलस्वरूपे यदि हरभाज्यौ त्रिज्यया गुण्यते तदा $\frac{\text{मंकोफ} \times \text{मंकेग} \times \text{त्रि}}{\text{मंफकोज्या} \times \text{त्रि}} = \frac{\text{भास्करकथितमंगतिफ} \times \text{त्रि}}{\text{मंफकोज्या}}$ = मंगफल

भास्करेण $\frac{\text{मंकोफ} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि}}$ = मंगफल, कथ्यते, एतेन सिद्धं यद्भास्कोक्तं गतिफलं त्रिज्यया गुणितं मन्दफलकोटिज्यया भक्तं तदा वास्तवं मन्दगतिफलं भवेदतो विशेषोक्तसूत्रावतारः

भास्करोक्तं गतिफलं त्रिज्यया गुणितं हृतम्।
मान्दीय फलकोटिज्यामानेन भवति स्फुटम्॥ इति। ६७-६८॥

हि. भा.—मन्दोच्च गति को ग्रहगति में घटाने से मन्द केन्द्रगति होती है। उसको (मन्द केन्द्रगति को) केन्द्रज्यान्तर से गुण देना, प्रथमज्या से भाग देना, जो फल हो मन्द-परिधि से गुणकर भांश (३६०) से भाग देना, जो फल (मन्दगतिफल) हो उसको मकरादि केन्द्र में मध्यगति में ऋण करना और कर्क्यादिकेन्द्र में मध्यगति में जोड़ना तब रवि और चन्द्र की स्पष्टगति होती है। कुजादि ग्रहों की मन्दस्पष्टा गति होती है॥६७-६८॥

उपपत्ति

$\frac{\text{मन्दकेज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मन्दभुजफल = मन्दफलज्या (स्वल्पान्तर से)

तथा $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = म'न्दभुजफ = म'न्दफलज्या (स्वल्पान्तर से)

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ (म'केज्या ∼ मंकेज्या) = म'न्दफज्या ∼ मन्दफलज्या = मन्दफलज्या-न्तर = मन्दफ'लान्तर = मंफलग (स्वल्पान्तर से)

$= \frac{\text{मन्दान्त्यफलज्या} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{त्रि}}$ = मन्दफलगति।

यहां मन्दकेन्द्रज्यान्तर के प्रमाण जाते हैं।

(७) चित्र देखिये।

चंनं = मन्दकेन्द्र । च बिंदु से वृत्त स्पर्शरेखा कीजिये । उसमें चर = प्रथमज्या, स्पर्श-रेखा में चप = मन्दकेन्द्रगति । दान देकर च बिंदु से रज रेखा के ऊपर चम लम्ब कीजिये । तब रम = स्पष्टभोग्यखण्ड, पच = मन्दकेन्द्रगति । चरम, चपव दोनों त्रिभुज सजातीय हैं इसलिये अनुपात करते हैं ।

$$\frac{\text{स्पष्टभोखण्ड} \times \text{मन्दकेन्द्रगति}}{\text{ज्याप्रथम}} = \text{मन्दकेन्द्रगति}$$ संज्यावृद्धि = मंन्दकेन्द्रज्यान्तरं इससे

मन्दफलगति स्वरूप में उत्थापन देने से $\frac{\text{मंअंफज्या} \times \text{स्पभोखं} \times \text{मकेग}}{\text{त्रि} \times \text{ज्याप्र}} = \text{मंफलगति}$

$$\because \frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०} \therefore \frac{\text{मन्दपरिधि. स्पभोखं. मंकेग}}{३६० \times \text{ज्याप्र}} = \text{मंफलगति}$$

तब मकरादि कर्क्यादिकेन्द्रवश मध्यगति ∓ मंगतिफल = मन्दस्पष्टगति रवि, चन्द्र के लिये अपनी-अपनी मध्यगति और मन्दगति फल लेने से यही स्पष्टगति होती है । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

लेकिन यह आनयन ठीक नहीं है क्योंकि पहले मन्दफलज्यान्तर = मन्दफलान्तर = मन्दगतिफल, मान लिया गया है । इसलिए वास्तवानयन करते हैं ।

$\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मंफज्या}$ दोनों पक्षों के चलन कलन से तात्कालिक गति लाने से

$$\frac{\text{मंकेकोज्या} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मंफकोज्या} \times \text{मंफग}}{\text{त्रि}}$$

$\frac{\text{मंकोफ} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मंफकोज्या} \times \text{मंफग}}{\text{त्रि}}$ छेदगम से

$$\text{मंकोफ. मकेग} = \text{मंफकोज्या} \times \text{मंफग} \therefore \frac{\text{मंकोफ} \times \text{मंकेग}}{\text{मंफकोज्या}} = \text{मंफग}$$

इस रीति से वास्तव मन्दगतिफलानयन हो सकता है ।

आनीत मन्दफलगति स्वरूप $\frac{\text{मंकोफ. मंकेग}}{\text{मंफकोज्या}}$ को त्रिज्या से गुणन भजन करने से

$$\frac{\text{मंकोफ} \times \text{मंकेग} \times \text{त्रि}}{\text{मंफकोज्या. त्रि}} = \frac{\text{भास्करकथित मंगफ. त्रि}}{\text{मंफकोज्या}} = \text{मंफलगति},$$

$\because \frac{\text{मंकोफ} \times \text{मंकेग}}{\text{त्रि}} = \text{भास्करोक्तगतिफल}$ । इससे सिद्ध होता है कि भास्करोक्त मन्दगति-फल को त्रिज्या से गुणाकर मन्दफलकोटिज्या से भाग देने से वास्तव मन्दगतिफल होता है ।

इससे विशेषोक्त सूत्र उत्पन्न हुआ—

'भास्करोक्तं गतिफलं त्रिज्यया गुणितं हृतम्।' इत्यादि ॥६७-६८॥

इदानीं पुनर्मन्दगतिफलानयनं ततः स्पष्टगत्यानयनं चाह।

निजकेन्द्रगतिः समाहता त्रिभमौर्व्या मृदुकर्णभाजिता।
स्वमृदूच्चगतिः फलान्विता ग्रहभुक्तिस्त्वथवा परिस्फुटा ॥६९॥

वि.भा.—अथवा निजकेन्द्रगतिः (ग्रहस्वमन्दकेन्द्रगतिः) त्रिभमौर्व्या समाहता (त्रिज्यया गुणिता) मृदुकर्णभाजिता (मन्दकर्णभक्ता) फलान्विता स्वमृदूच्चगतिः (फलयुक्ता ग्रहमन्दोच्चगतिः) परिस्फुटा ग्रहभुक्तिः (ग्रस्पष्टगतिः) भवेत् ॥ ॥६९॥

अत्रोपपत्तिः।

अथ $\frac{\text{मं केन्द्रज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्प केज्या}$

तथा $\frac{\text{मंकेन्द्रज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्प केज्या}$

अनयोरन्तरेण

$\frac{\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मन्दकेन्द्रगति} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर} = \text{स्पष्ट-}$ केन्द्रगतिः (स्वल्पान्तरात्)

∴ मन्दोच्चगति + स्पकेगति = स्पष्टगति। रविचन्द्रयोः कृते इयमेव स्पष्टा गतिर्भवेत्। इदमानयनमपि न समीचीनम्। यतः

मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रगति = मन्दकेन्द्रान्तर तथा

स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेगति आचार्येण तुल्याः कल्पिताः, ततः स्पष्टकेन्द्रग + मन्दोच्चगति = स्पष्टगति

वस्तुतः एतान्यानयानि रविन्द्रयोरेव कृते सन्ति, यत एतस्याध्यायस्य नाम रविचन्द्रयोः स्फुटीकरणविधिरस्तीति ॥६८॥

हि. भा.—अपनी केन्द्रगति को त्रिज्या से गुणाकर मन्दकर्ण से भाग देने से जो फल हो उसको मन्दोच्चगति में जोड़ने से स्पष्टगति होती है ॥६९॥

उपपत्ति

$\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पकेज्या}$। $\frac{\text{मं केज्या} \times \text{त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पकेज्या}$

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{मन्दकेज्यान्तर. त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर. त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \frac{\text{मंकेगति.त्रि}}{\text{मन्दकर्ण}} = \text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर} = \text{स्पष्टकेन्द्रा-}$

न्तर=स्पष्टकेन्द्रगति (स्वल्पान्तर से)

∴ मन्दोच्चगति + स्पकेग = स्पष्टगतिः ।

यह आनयन भी ठीक नहीं है क्योंकि मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रग तथा स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेन्द्रगति आचार्य इन सब को स्वल्पान्तर से तुल्य माने हैं। ये सब आनयन रवि और चन्द्र के लिये हैं क्योंकि इस अध्याय का नाम ही 'रविचन्द्रयोः स्फुटीकरणविधिः' है। इति ।।६९।।

इदानीं पुनः रविचन्द्रयोर्मन्दगतिफलानयनमाह ।

भुजभोज्यगुणान्तरं रवेः शरनिघ्नं द्विशरेन्दुभाजितम् ।
शशिनोऽङ्कजलाहृतं हृतं खकृतैर्भुक्तिफलं कलादि वा ।।७०।।

वि. भा.—रवेः (सूर्यस्य) भुजभोज्यगुणान्तरं (गतगम्यकेन्द्रज्यान्तरं) शरनिघ्नं (पञ्चगुणितं) द्विशरेन्दुभाजितं (१५२ एभिर्भक्तं) तदा कलादिभुक्तिफलं (कलादिगतिफलं) भवेत् । शशिनः (चन्द्रस्य) भुजभोज्यगुणान्तरम् अङ्कजलाहृतं (ऊनपञ्चाशद्गुणितं) खकृतैः (४० एभिः) हृतं (भक्तं) तदा कलादिगतिफलं भवेदिति ।।७०।।

अत्रोपपत्तिः ।

$$\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{म'भुफल} = \text{म'न्दफलज्या (स्वल्पान्तरात्)}$$

तथा $\frac{\text{म'केज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{म'भुजफल} = \text{मं'दफलज्या}$

अनयोरन्तरेण

$\frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} \times$ मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दफलज्यान्तर = मन्दफलान्तर = मन्दगतिफ (स्वल्पान्तरात्)

$$\frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मन्दपरिधि}}{३६०} \therefore \frac{\text{मन्दपरिधि} \times \text{मंकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०} = \text{मन्दगतिफल}$$

अथ $\frac{\text{रविमन्दपरिधि} \times \text{रविमन्दपरिधि केज्यान्तर}}{३६०}$ = रविमन्दगफ अत्र हरभाज्यौ

पंचभिर्गुणितौ तथा रविमन्दपरिधिभक्तौ तथा $\dfrac{५ \times \text{रविमंकेज्यान्तर}}{\dfrac{३६० \times ५}{\text{रविमन्दपरिधि}}}$

= रविमंगतिफल

$= \frac{५ \times \text{रविमन्दकेज्यान्तर}}{१५२}$, एवं $\frac{\text{चन्द्रमंपरिधि} \times \text{चन्द्रमंकेज्यान्तर}}{३६०}$ = चन्द्रमंगफल

अत्र हरभाज्यौ ४९ गुणितौ तथा चन्द्रमन्दपरिधिभक्तौ तदा

$$\frac{४९\ \text{चन्द्रमंकेज्यान्तर}}{\frac{४९ \times ३६०}{\text{चंमं परिधि}}} = \frac{४९ \times \text{चन्द्रमंकेज्यान्तर}}{४०} = \text{चन्द्रमंगतिफलम्}$$ ।

अत उपपन्नम् ॥७०॥

हि. भा.—रवि के गतगम्य के केन्द्रज्यान्तर को पांच से गुणा कर १५२ इतने से भाग देने से कलादि गतिफल होता है । और चन्द्र के गतगम्य केन्द्रज्यान्तर को ४९ से गुणा कर ४० इतने से भाग देने से चन्द्र के कलादि गतिफल होता है ॥७०॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मंभुजफल} = \text{मंफलज्या}$$ (स्वल्पान्तर से)

तथा $$\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मं}^{१}\text{भुजफल} = \text{मं}^{१}\text{फलज्या}$$ (स्वल्पान्तर से)

दोनों के अन्तर करने से

$$\frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} \times \text{मन्दकेंद्रज्यान्तर} = \text{मन्दफलज्यान्तर} = \text{मन्दफलान्तर} = \text{मन्दगतिफल}$$

(स्वल्पान्तर से)

$$\because \frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मंपरिधि}}{३६०} \therefore \frac{\text{मन्दपरिधि} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०} = \text{मन्दगतिफल}$$

$$\frac{\text{रविमन्दपरिधि} \times \text{रविमन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{३६०} = \text{रविमंगतिफल}$$, यहां हरभाज्य को पांच से गुणाकर रविमन्दपरिधि से भाग देने से $$\frac{५ \times \text{रविमन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\frac{३६० \times ५}{\text{रविमंपरिधि}}} = \frac{५ \times \text{रविमंकेज्यान्तर}}{१५२}$$

= रविमंग फल

एवं $$\frac{\text{चन्द्रमंपरिधि} \times \text{चन्द्रमन्द केन्द्रज्यान्तर}}{३६०} = \text{चन्द्रमंगतिफल}$$, यहां हरभाज्य को ४९ से गुणाकर चन्द्रमन्दपरिधि से भाग देने से $$\frac{४९ \times \text{चन्द्रमन्द केज्यान्तर}}{\frac{३६० \times ४९}{\text{चंमं परिधि}}} = \frac{४९ \times \text{चन्द्रमंकेज्यान्तर}}{४०}$$

= चन्द्रमंगतिफल । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥७०॥

पुनस्तदानयनमाह ।

निजकेन्द्रं जह्यादोजभोज्यधनुर्गुणः शकलम् ।
धनुषा ग्राह्या जीवा विषमपदे व्युत्क्रमाद् युग्मे ॥७१॥

धनुरल्पे धनुर्हृते निजभोज्यगुणान्तराभ्यस्ते ।
तन्मध्यशुद्धमौर्वी वृद्धिः परिधिसंगुणा हृताभांशैः ।।७२।।
लब्धधनुः स्वमृणं वा गतौ स्फुटा ह्यस्तनाद्यतनान्तः ।।$\frac{1}{2}$।।

वि.भा.—ओजभोज्यधनुर्गुणः शकलं (विषमपदभोग्यचापक्रमज्यामानमर्थाद् भोग्यकेन्द्रज्यामानं) निजकेन्द्रं (भुक्तकेन्द्रज्यामानं) जह्यात् (शोधयेत्) तदा या जीवा सा धनुषा (चापेन समा) ग्राह्याऽर्थात्केन्द्रज्यान्तर केन्द्रान्तरयोस्तुल्यत्वं स्वीकार्यम् । विषमदे एवं, युग्मे (समपदे) व्युत्क्रमात् (विलोमात्) ज्ञातव्यम् । धनुरल्पे (स्वल्पे चापे पूर्वोक्त केन्द्रज्यान्तरतुल्यकेन्द्रान्तरे) निजभोज्यगुणान्तराभ्यस्ते (स्पष्टभोग्य खण्डगुणिते) धनुर्हृते (चापविहृते) तदा मध्यशुद्धमौर्वीवृद्धिः (चापान्तरसम्बन्धिज्यावृद्धिः) भवेत् । सा परिधिसंगुणा, भांशैः (३६० एभिः) हृता (भक्ता) लब्धधनुः (लब्धचापं) गतौ (मध्यगतौ) स्व (धनं) ऋणं वा कार्यं तदा ह्यस्तनाद्यतनयोर्मध्ये स्फुटा गतिर्भवेत् ।।७१-७२$\frac{1}{2}$।।

अत्रोपपत्तिः ।

पूर्वं यन्मन्दगतिफलमानीतं $\frac{\text{मंअफज्या} \times \text{मन्दकेज्यार}}{\text{त्रि}}$ = मन्दगतिफल ।

तत्सम्बन्धे कथ्यते यदत्र मन्दकेन्द्रज्यान्तरं यत्तत्प्रमाणं $\frac{\text{स्पभोखं} \times \text{मंकेग}}{\text{ज्याप्रथम}}$

$= \frac{\text{स्पभोखं} \times \text{मंकेग}}{\text{प्रथम चाप}}$ ग्रहीतव्यं यदि चापमानमल्पं भवेत् । एतदेव मन्दपरिधिना गुणितं भांशैर्भाज्यं तदा गतिफलं भवेत् । $\frac{\text{स्पभोखं} \times \text{मंकेग} \times \text{मंपरिधि}}{\text{प्रथमचा} \times ३६०}$ = मंदगतिफल

ततः मध्यगति ± मन्दगतिफल = स्पष्टगतिः । वटेश्वराचार्यो विषममिमं ज्ञातवान् यत्पूर्वं मन्दकेन्द्रज्यान्तरमन्दकेन्द्रान्तरमन्दकेन्द्रगतीनां तुल्यत्वस्वीकरणं युक्तियुक्तं नहि, तत्संशोधनमेवात्र करोति परन्तु मन्दगतिफलसंशोधनं न कृतवान् तेनैतत्संशोधनमपि तथ्यं नास्ति, अन्यैराचार्यैरेतद्विषये किमपि न कथ्यते । एतेनाऽऽचार्यस्य दूरदर्शिता लक्ष्यत इति । एतत्कथनस्यावश्यकता नासीद्यतोऽयं विषयः पूर्वं न प्रतिपादितोऽस्ति । ७१-७२$\frac{1}{2}$।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे सूर्याचन्द्रमसोः स्फुटीकरणविधिः प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।।

हि.भा.—गम्य केन्द्रज्या मान में गतकेन्द्रज्या मान को घटाकर जो होता है उसके मान लाने के लिए यदि चाप छोटा है तो गतकेन्द्र चाप और गम्य केन्द्रचाप के अंतर (मन्दकेन्द्रगति) को गतगम्य केन्द्रज्यान्तर (स्पष्टभोग्यखण्ड से) गुणाकर चाप से भाग देकर जो फल हो उसको मन्दपरिधि से गुणाकर भांश (३६०) से भाग देने से जो फल हो उसके

चाप को केन्द्रवश (मकरादि कर्क्यादि केन्द्र के अनुसार) मध्यगति में हीन धन करने से स्पष्ट गति होती है । बीता हुआ कल और आज के ग्रह स्पष्ट का अन्तरगत स्पष्टगति है । आगे के कल और आज के स्पष्ट ग्रह के अन्तर गम्य स्पष्टगति है ।

उपपत्ति

पूर्व में जो मन्दगति फल $\frac{\text{मं अं फज्या} \times \text{मन्दकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{त्रि}}$ = मन्दगतिफल, लाये गये हैं उसी के सम्बन्ध में कहते हैं कि मन्दकेन्द्र ज्यान्तर = $\frac{\text{स्पभोखं} \times \text{मंकेग}}{\text{ज्याप्रथम}}$ इसमें यदि चाप छोटा है तो मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रगति, तथा प्रथमज्या = प्रथमचाप लेकर मन्दकेन्द्रज्यान्तर या मन्दकेन्द्रगति सम्बन्धिनी ज्यावृद्धि को मन्दपरिधि से गुणाकर भांश (३६०) से भाग देकर जो फल हो उसे केन्द्र (मकरादि, कर्क्यादि) वश मध्यमगति में ऋण धन करने से स्पष्टगति होती है । आचार्य को यह विषय मालूम था कि पहले जो ज्यान्तर और चापान्तर अर्थात् मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रगति तुल्य स्वीकार किया गया है सो ठीक नहीं है उसीका संशोधन यहां करते हैं, परन्तु फलज्यान्तर रूप फलगति का संशोधन नहीं हुआ है क्योंकि आनीत गतिफल फलज्यान्तर रूप है, फलज्यान्तर के चाप करने से फलगति नहीं हो सकती है, ज्यान्तर के चाप, चापान्तर के बराबर नहीं होता है । अतः यह संशोधन अधूरा ही रहा परन्तु इस विषय के सम्बन्ध में किसी दूसरे आचार्य ने कुछ नहीं लिखा है । मन्दकेन्द्र ज्यान्तर तुल्य मन्दकेन्द्रगति जो पहले स्वीकार की गई सो ठीक नहीं है, इसलिए उसका संशोधन करना आवश्यक समझ कर यहां संशोधन किया है यद्यपि यह संशोधन भी ठीक नहीं है परन्तु इससे वटेश्वराचार्य की दूरदर्शिता देखने में आती है ।। ७१-७२$\frac{1}{2}$ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में "रविचन्द्र की स्पष्टीकरणविधि" नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।।



द्वितीयोऽध्यायः

स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधिः

तत्रादौ कुजादिग्रहाणां स्फुटत्वार्थं फलचतुष्टयसंस्कारमाह ।

प्राग्वन्मन्दफलं खगाच्छकलितं मध्ये तदूनाच्चला-
च्छैघ्रचार्धं च मृदुस्फुटे धनमृणं केन्द्रेऽजजूकादिके
तस्मान्मन्दफलं ग्रहादविकलं मध्ये तदूनात्पुनः ।
स्तद्वच्छीघ्रफलं च तत्र खचरे कृत्स्नं स्फुटोऽसौ भवेत् ।। १ ।।

वि. भा.—खगात् (मध्यमग्रहात्) प्राग्वत् (पूर्ववत्) मन्दफलं साध्यं, शकलितं (अर्धितं) मध्ये ग्रहे देयं (धनत्वे क्षयत्वे वा गोलवशात्कार्यं) तदूनात् (अर्धमन्द फल संस्कृतमध्यमरहितात्) चलात् (शीघ्रोच्चात्) शैघ्रचार्धं (शीघ्रफलार्धमर्थादर्धमन्दफलसंस्कृतमध्यमग्रहे मन्दस्पष्टे) अजजूकादिके केन्द्रे (मेषादितुलादिकेन्द्रे) धनमृणं कार्यम् । तस्माद् ग्रहात् (द्वितीयफलार्धसंस्कृतग्रहात्) अविकलं मन्दफलं (सम्पूर्णं मन्दफलं) कृत्वा मध्यमे ग्रहे धनमृणं कार्यम् । तदूनाच्छीघ्रोच्चात् तद्वत् (पूर्ववत्) शीघ्रफलमानीय तत्र खचरे (तृतीयकर्मसिद्धे मध्यमग्रहे) कृत्स्नं (सम्पूर्णं) धनमृणं कार्यं तदाऽसौ स्फुटो भवेदिति ।। १ ।।

अत्रोपपत्तिः

कुजादिग्रहस्पष्टीकरणार्थं फलचतुष्टय (मन्दफलार्धशीघ्रफलार्ध मन्दफलशीघ्रफलानि) संस्कारः सर्वैराचार्यैः सूर्यसिद्धान्तकारादिभिर्यथोक्तस्तथैवाऽनेनाचार्येणापि कथ्यते, मन्दफलार्धशीघ्रफलार्धयोः संस्कारः कथं क्रियते तदर्थं काऽपि युक्तिर्न मिलति केवलं पूर्वाचार्योक्तवचनमेव प्रमाणमिति ।।१ ।।

हि. भा.—मध्यमग्रह से पूर्ववत् मन्दफल साधन करना उसके आधे को मध्यमग्रह में केन्द्रवश धन वा ऋण करना चाहिये, अर्धमन्द फल संस्कृत मध्यम ग्रह करके रहितशीघ्रोच्च से शीघ्रफलसाधन कर उसके आधे को अर्ध मन्दफल संस्कृत मध्यम ग्रह से मेषादि और तुलादि केन्द्रवश धन ऋण करना । द्वितीयफलार्ध संस्कृत ग्रह से मन्दफल साधन कर मध्यमग्रह में

धन वा ऋण करना । उस करके रहित शीघ्रोच्च से पूर्ववत् शीघ्रफल साधन कर तृतीयकर्म सिद्धग्रह में धन या ऋण करने से स्पष्ट ग्रह होते हैं ।। १ ।।

उपपत्ति

कुजादि ग्रहों के स्पष्टीकरण के लिये चार फल (मन्दफलार्ध, शीघ्रफलार्ध, मन्दफल, शीघ्रफल) के संस्कार सूर्यसिद्धान्तकार आदि आचार्यों ने अपने अपने सिद्धान्त में कहे हैं । गोल में दो ही फल (मन्दफल) और शीघ्रफल) संस्कार की स्थिति देखने में आती है, मन्दफलार्ध और शीघ्रफलार्ध का संस्कार क्यों किया जाता है इसके लिये कोई युक्ति नहीं है केवल आप्तवचन प्रमाण है ।। इति ।। १।।

इदानीं बुधशुक्रयोर्विशेषमाह ।

ग्रहोनात्स्वचलात्कृत्स्नं फलं शैघ्र्यं ज्ञशुक्रयोः ।
मान्दं चैव स्वमन्दोनात्सकलं मध्यमाद् ग्रहात् ।।२।।

वि. भा.—ज्ञशुक्रयोः (बुधशुक्रयोः) ग्रहोनात्स्वचलात् (ग्रहरहितात्स्वशीघ्रोच्चात्) कृत्स्नं (सम्पूर्णं) शैघ्र्यं फलं तथा स्वमन्दोनात् मध्यमाद् ग्रहात् सकलं (सम्पूर्णं) मान्दं फलं साध्यम् ।। २ ।।

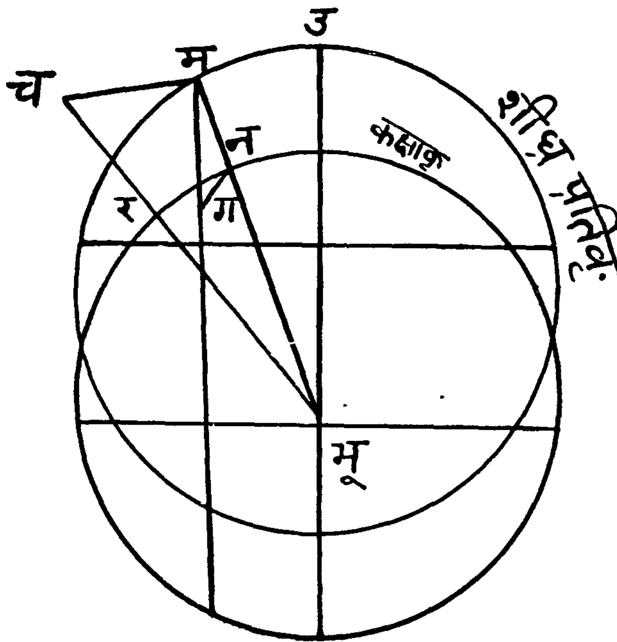
हि. भा.—बुध और शुक्र के लिये ग्रह रहित शीघ्रोच्च से शीघ्र फल साधन कर वह सम्पूर्ण शीघ्र फल संस्कार करना और मन्दोच्चरहित मध्यम ग्रह पर से साधित मन्दफल सम्पूर्ण संस्कार करना चाहिये ।।२।।

इदानीं शीघ्रफलानयनमाह ।

अग्राफलत्रिगुणयोर्विवरैक्यमुक्ता केन्द्रे कुलीरमकरादिगतेऽत्र कोटिः ।
तद्वर्ग बाहुफलवर्गयुतेः पदं स्यात्कर्णो भुजाफलहतत्रिगुणस्य हारः ।।३।।
लब्धस्य चापमिह शीघ्रफलं प्रदिष्टमेवं मृदुश्रवणको द्युचरस्य साध्यः ।
बाह्वग्रयोः स गुणकस्त्रिगुणश्च हारस्ताभ्यामसावसकृदेवमनिश्चलत्वे ।।४।।

वि. भा.—कुलीरमकरादिगते केन्द्रे (कर्क्यादिमकरादिकेन्द्रे) अग्राफलत्रिगुणयोः (कोटिफलत्रिज्ययोः) विवरैक्यं (अन्तरैक्यं) कोटिः (स्पष्टा कोटिः)उक्ता (कथिता) तद्वर्गबाहुफलवर्गयुतेः (स्पष्टकोटिवर्गभुजफलवर्गयोर्योगात्) पदं (मूलं) कर्णः (शीघ्रकर्णः) भवेत् । भुजाफलहतत्रिगुणस्य (भुजफलगुणितत्रिज्यायाः) कर्णो हारः (भाजकः) लब्धस्य चापं शीघ्रफलं प्रदिष्टं (कथितम्) एवं द्युचरस्य (ग्रहस्य) मृदुश्रवणकः (मन्दकर्णः) साध्यः । स कर्णः, बाह्वग्रयोः (भुजज्याकोटिज्ययोः) गुणकः, त्रिगुणः (त्रिज्याहारः) ताभ्यां फलाभ्यां, अनिश्चलत्वे (चञ्चलत्वे) असकृदसौ भवेदिति ।। ३ ४ ।।

अत्रोपपत्तिः



चित्र ८

म=शीघ्रप्रतिवृत्ते मन्दस्पष्टग्रहः ।
न=स्पष्टग्रहः ।
र=मन्दस्पष्टग्रहः ।
रन=शीघ्रफलम् ।
उ=शीघ्रोच्चम् ।
भू=भूकेन्द्रम् ।
नग=शीघ्रफलज्या
भूर=त्रि ।
भूम=शीघ्रकर्णः ।
मच=भुजफलम् ।
चर=अग्राफलम्
=कोटिफलम् ।
मकरादिकेन्द्रे भूर+रच=भूच=त्रि+अग्राफल--त्रि+कोटिफ=नीचोच्च-वृत्तीयस्पष्टा कोटिः ।

कर्क्यादिकेन्द्रे त्रि—अग्राफल=त्रि—कोफल=नीचोच्च वृत्तीयस्पष्टा कोटिः ।

तथा $\sqrt{\text{भूच}^2+\text{मच}^2}=\sqrt{\text{स्पको}^2+\text{भुजफ}^2}$ =भूम=शीघ्र कर्ण

ततः भूमच, भूनग त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः

$\frac{\text{भुजफल}\times\text{त्रि}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$=शीघ्रपालज्या, अस्याश्चापम्=शीघ्रफलम् ।

शेषोपपत्तिः स्फुटैवास्ति ।। ३-४ ।।

हि. भा.—कर्क्यादि और मकरादि केन्द्र में कोटिफल और त्रिज्या के अन्तर, योग करने से स्पष्टा कोटि होती है, उसके (स्पष्टकोटि) और भुजफल वर्ग के योग कर मूल लेने से शीघ्रकर्ण होता है। त्रिज्या और भुजफल के घात में शीघ्रकर्ण से भाग देकर जो फल हो उसके चाप करने से ग्रह के शीघ्र फल होते हैं। इस तरह ग्रह का मन्दकर्ण साधन करना, शीघ्र केन्द्रज्या, फौर शीघ्रकेन्द्र कोटिज्या को कर्ण से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने पर जो फलद्वय होते हैं उनसे अमकृतकर्म द्वारा वे होते हैं ।। ३-४ ।।

उपपत्ति

चित्र ८ देखिये ।

भू=भूकेन्द्र, उ=शीघ्रोच्च, म=शीघ्रप्रतिवृत्त में मन्दस्पष्टग्र न=स्पष्टग्रह । र=

मन्दस्पष्टग्रह । नर=शीघ्रफल, नग=शीघ्रफलज्या भूम=शीघ्रकर्ण, मच=भुजफल, चर=कोटिफल, भूर=त्रिज्या, भूमच, भूनग ये दोनों त्रिभुज सजातीय हैं इसलिए अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{भुजफल} \times \text{त्रि}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$ =शीघ्रफलज्या, चाप करने से शीघ्र फल हुआ।

शेष की उपपत्ति स्पष्ट है ।। ३-४ ।।

इदानीं कर्णानयनमाह

स्फुटकोट्यग्रा फलकृतिविवरान्त्यफलगुणकृतियुतेर्मूलम् ।
कर्णः स्यादथवा भुजाफलेन विनियोजना नात्र ।। ५ ।।

वि. भा.—स्फुटकोट्यग्रा फलकृति-विवरान्त्यफलगुणकृतियुतेः (स्पष्टकोटि-कोटिफल-वर्गान्तरान्त्यफल ज्यावर्गयोगस्य) मूलं वा कर्णः स्यात् । अत्र भुजाफलेन (भुजफलेन) विनियोजना चारत्यर्थाद् भुजफलेन सम्बन्धोऽस्ति, अग्राफलम्=कोटिफलम् ।

अत्रोपपत्तिः ।

स्पष्टको^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफलज्या^{2}
=स्पष्टको^{2}+अन्त्यफलज्या^{2}—कोटिफल^2=स्पष्टको^{2}+भुजफल^2=कर्ण^2

मूलेन $\sqrt{\text{स्पष्टको}^2+\text{भुजफल}^2}$=कर्ण
अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।। ५ ।।

अब कर्णानयन कहते हैं।

हि. भा.—स्पष्टकोटि और कोटिफल इन दोनों के वर्गान्तर में अन्त्यफलज्या वर्ग जोड़कर मूल लेने से कर्ण होता है यहां भुजफल से सम्बन्ध है अर्थाद् भुजफल की सहायता से कर्णसाधन है।

उपपत्ति

स्पष्टको^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफलज्या^{2}=स्पष्टको^{2}+अन्त्यफज्या^{2}—कोटिफल^2

= स्पष्टको^{2}+भुजफल^2=कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{\text{स्पष्टको}^2+\text{भुजफ}^2}$ =कर्ण
अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।। ५ ।।

इदानीं भुजफलं विनैव कर्णानयनमाह ।

तद्द्युतिर्विवरहतिः परफलगुणवर्गसंयुता सा स्यात् ।
कर्णकृतिस्तन्मूलं कर्णोदोःफलगुणं विनैवायम् ।।६।।

वि. भा.—तद्द्युतिः (स्पष्टकोटि-कोटिफलयोर्योगः) विवरहतिः (स्पष्ट-कोटि-कोटिफलयोरन्तरगुणिता) परफलगुणवर्गसंयुता (अन्त्यफलज्यावर्गयुता) वर्णकृतिः (कर्णवर्गः) तन्मूलं कर्णो भवेत् । अयं कर्णः, दोःफलगुणं विनैव (भुजफलज्यासाहाय्यमन्तरैव) स्यादिति ।।६।।

अस्योपपत्तिः

पूर्वश्लोकोपपत्तौ स्पष्टको^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफलज्या^{2}=कर्ण^2

वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात्

(स्पष्टको+कोटिफल) (स्पष्टको—कोटिफल)+अन्त्यज्या^{2}=कर्ण^2

मूलेन

$\sqrt{(\text{स्पष्टको}+\text{कोटिफल})(\text{स्पष्टको}-\text{कोटिफल})+\text{अन्त्यफज्या}^2}$=कर्ण

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् । ।।६।।

हि. भा.—स्पष्टकोटि और कोटिफल के योग को दोनों के (स्पष्टकोटि और कोटिफल) अन्तर से गुण कर अन्त्यफलज्या-वर्ग जोड़ने से कर्णवर्ग होता है, उसका मूलकर्ण होता है, यह कर्णसाधन भुजफल बिना ही होता है ।।६।।

उपपत्ति

पहले श्लोक की उपपत्ति में सिद्ध हुआ है स्पष्ट को^{2}—कोटिफल^2+अन्त्यफज्या^{2}=कर्ण^2 वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इस नियम से

(स्पष्ट को+कोटिफल) (स्पष्टको—कोटिफल)+अन्त्यफलज्या^{2}=क^2

मूल लेने से $\sqrt{(\text{स्पष्टको}+\text{कोटिक})(\text{स्पष्टको}-\text{कोटिक})+\text{अन्त्यफज्या}^2}$=कर्ण

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।६।।

इदानीं पुनरपि कर्णानयनं प्रकारद्वयेनाह ।

भुजफलरहिताग्रया हता वा युतिर्द्विघ्ने च कृती तदन्वितोने ।
मूले च गणकवरैर्जनेशमान्यैर्भुजफलकोटिकयोः श्रुती प्रदिष्टे ।।७।।

वि. भा.—वा (अथवा) भुजफलरहिताग्रया (भुजरहितकोट्या) युतिः (भुजकोटियोगः) हता (गुणिता) द्विघ्ने (द्विगुणिते) कृती (भुजकोटिवर्गौ) तदन्वितोने (पूर्वफलेन सहितरहिते) मूले तदा भुजफलकोटिकयोः श्रुती (कर्णौ) प्रदिष्टे (कथिते) जनेशमान्यै (राजमान्यैः) गणकश्रेष्ठैरिति ।।७।।

अत्रोपपत्तिः

श्लोकोक्त्या २ भु^{2}

(को+भु) (को—भु)=को^{2}—भु^{2}

अनयोर्योगः

२ भु^{2}+को^{2}—भु^{2}=भु^{2}+को^{2}=कर्ण^2

मूलेन

$\sqrt{\text{भु}^2+\text{को}^2}$=कर्ण

२ को^{2}

(को+भु) (को—भु)=को^{2}—भु^{2}

द्वयोरन्तरेण

२को^{2}—(को^{2}—भु^{2})=२को^{2}—को^{2}+भु^{2}=को^{2}+भु^{2}=कर्ण^2 मूलेन

$\sqrt{\text{को}^2+\text{भु}^2}$ =कर्ण

अत्र को=स्पष्टा को । भु=मंकेज्या । कर्ण=मंकर्ण

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।।७।।

पुनः कर्णानयन दो प्रकार से कहते हैं ।

हि. भा.—भुज और कोटि के अन्तर से उन्हीं दोनों के योग को गुणकर द्विगुणित भुजवर्ग और द्विगुणित कोटिवर्ग में जोड़ने और घटाने से उस पर से मूल लेने से दो प्रकार के कर्ण होते हैं ।।७।।

उपपत्ति

श्लोकोक्ति अनुसार

$२ भु^२$

$(को+भु)\ (को-भु)=को^२-भु^२$

दोनों के योग करने से

$२भु^२+को^२-भु^२=भु^२+को^२=कर्ण^२$

मूल लेने से

$\sqrt{भु^२+को^२}=कर्ण$

$२ को^२$

$(को+भु)\ (को-भु)=को^२-भु^२$

दोनों के अन्तर करने से

$२ को^२-(को^२-भु^२)=२ को^२-को^२$
$+भु^२=को^२+भु^२=कर्ण^२$

मूल लेने से

$\sqrt{को^२ \times भु^२}=कर्ण$

यहां को=स्पष्टा को। भु=मंकोज्या।
कर्ण=मंकर्ण

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।७।।

पुनः कर्णानयनमाह ।

वधाद् द्विनिघ्नान्स्वविशेषवर्गिता प्रयोजनान्मूलमुशन्ति वा श्रुतिम् ।
श्रुतिप्रमाणानयनान्तराणि वा ज्ञेयानि विज्ञैर्हि सुतीक्ष्णबुद्धिभिः ।।८।।

वि. भा.—द्विगुणितभुजकोटिघातात्स्वान्तरवर्गयुतान्मूलं वा कर्णं पण्डिताः कथयन्ति, कर्णमानसाधनान्तराणि सुतीक्ष्णबुद्धिभिः पण्डितैर्बोध्यानीति ।।८।।

अत्रोपपत्तिः

$$श्लोकोक्त्या\ (को-भु)^२+२भु.को=को^२-२भु.को+भु^२+भु.को$$
$$=भु^२+को^२=क^२\ मूलेन\ कर्णो\ भवेदिति\ ।।८।।$$

हि. भा.—द्विगुणित भुजकोटिघात में अंतर वर्ग जोड़ कर मूल लेने से कर्ण होता है ऐसा पण्डित लोक कहते हैं । या कर्णमान के दूसरे-दूसरे आनयन भी तीक्ष्णबुद्धि वाले पंडित लोग समझें ।।८।।

उपपत्ति

$$श्लोकोक्ति\ के\ अनुसार\ (को-भु)^२+२\ भु.\ को=को^२-२\ भु\ को.+भु^२+भु.$$
$$को=भु^२+को^२=कर्ण^२\ मूल\ लेने\ से\ कर्ण\ होता\ है\ ।।८।।$$

पुनः कर्णानयनमाह ।

द्विघ्नाऽग्राफलताड़ितस्त्रिभगुणः केन्द्रे मृगादिस्थिते,
व्यासार्धान्त्यफलज्ययोः कृतियुतौ देयः कुलीरादिगे ।
हेयः स्याच्छ्रवणः पदं परफलव्यासार्धकृत्योर्युते-
र्व्यासाप्तं श्रुतिवर्गतश्च फलयोः स्यादन्तरेऽग्राफलम् ॥९॥

वि. भा.—त्रिभगुणः (त्रिज्या) द्विघ्नाग्राफलताडितः (द्विगुणितकोटिफल-गुणितः) मृगादिस्थिते केन्द्रे (मकरादिकेन्द्रस्थिते ग्रहे) व्यासार्धान्त्यफलज्ययोः कृति-युतौ (त्रिज्यान्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगे) देयः (सहितः) कुलीरादिगे केन्द्रे (कर्क्यादि-केन्द्रस्थिते ग्रहे) हेयः (रहितः) पदं (मूलं) श्रवणः (कर्णः) स्यात् । श्रुतिवर्गतः (कर्णवर्गात्) परफलव्यासार्धकृत्योर्युतेः (अन्त्यफलज्यात्रिज्ययोवर्गयोगात्) रिक्तं-स्थानं व्यासाप्तं (व्यासभक्तं) फलयोः (त्रिज्यान्त्य-फलज्ययोवर्गयोगरूपमेकं फलम्-कर्णवर्गे त्रिज्यान्त्यफलज्ययोवर्गयोगातिरिक्तं द्वितीयं खण्डं व्यासभक्तं द्वितीयं फलम्) अन्तरेऽग्राफलं (कोटिफलं स्यात्) ॥९॥

अस्योपपत्तिः

अथ मृगादिकर्क्यादिकेन्द्रवशात् त्रि $\pm$ कोटिफल = नीचोच्चवृत्तीयस्पष्टकोटिः ।

स्पष्टकोटि^{2} + भुजफल^2 = कर्ण^2 = (त्रि $\pm$ कोटिफल)^2 + भुजफल^2

= त्रि^{2} $\pm$ २ त्रि. कोटिफल + कोटिफल^2 + भुजफल^2

= त्रि^{2} $\pm$ २ त्रि. कोटिफल + अन्त्यफलज्या^{2} । $\because$ कोटिफ^2 + भुजफ^2 = अंफज्या^{2}

= त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} $\pm$ २त्रि. कोफ = कर्ण^2

मूलेन $\sqrt{\text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm 2\,\text{त्रि. कोफ}}$ = कर्ण^2 ।

तथाच $\dfrac{\text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm 2\text{त्रि. कोफ}}{\text{व्या}} = \dfrac{\text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm 2\,\text{त्रि. कोफ}}{2\,\text{त्रि}}$

= त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} $\pm$ कोफल = द्वितीयफ ।

तथा त्रि^{2} + अन्त्यफलज्या^{2} = प्रथमफलम्

अनयोरन्तरे त्रि^{2} + अंफज्या^{2} $\pm$ कोफ — (त्रि^{2} + अंफज्या^{2})

= $\pm$ कोफल, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥९॥

हि. भा.—त्रिज्या को द्विगुणित कोटिफल से गुणकर मकरादि केन्द्र में त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के वर्ग योग में जोड़ देना, कर्क्यादि केन्द्र में घटा देना, उसके मूल लेने से कर्ण होता है। कर्णवर्ग में अन्त्यफलज्या और त्रिज्या के वर्गयोगातिरिक्त खण्ड में व्यास से भाग देकर जो हो तत्सहित अन्त्यफलज्या त्रिज्यावर्ग योगरूप फल तथा अन्त्यफलज्या त्रिज्या वर्गयोग रूप द्वितीय फल के अंतर करने से कोटिफल होता है ॥९॥

उपपत्ति

मकरादि केन्द्र और कर्क्यादि केन्द्रवश त्रि ± कोटिफल = नीचोच्चवृत्तीयस्पष्टा को तथा स्पष्ट को^{2} + भुजफल^2 = कर्ण^2 = (त्रि ± कोटिफल)^2 + भुजफल^2

= त्रि^{2} + २ त्रि. कोटिफल + कोटिफल^2 + भुजफल^2 = क^2

= त्रि^{2} ± २ त्रि. कोटिफल + अन्त्यफलज्या^{2}। ∴ कोटिफ^2 + भुजफ^2 = अन्त्यफज्या^{2}

= त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} ± २ त्रि. कोफ = कर्ण^2

मूल लेने से कर्ण हो जायगा।

अब त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} = प्रथमफल

$$\text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm \frac{\text{२ त्रि कोटिफ}}{\text{व्यास}} = \text{त्रि}^2 + \text{अन्त्यफज्या}^2 \pm \frac{\text{२ त्रि कोटिफ}}{\text{२ त्रि}}$$

= त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} ± कोटिफल = द्वितीयफल

दोनों फलों के अन्तर करने से

त्रि^{2} + अंफज्या^{2} ± कोटिफल — (त्रि^{2} + अन्त्यफलज्या^{2})

= त्रि^{2} + अंफज्या^{2} ± कोटिफल — त्रि^{2} — अन्त्यफज्या^{2} = ± कोटिफल

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥९॥

पुनस्तदानयनं प्रकारद्वयेनाह।

भुजफलाग्रसमासहते तु ते निजविशेषहताग्रभुजाफले।
धनमृणं क्रमशो गणका वराः पदमुशन्ति तयोरथवा श्रुती ॥१०॥

वि. भा.—ते भुजकोटी भुजगफलाग्र समासहते (भुजकोटियोगगुणिते) निज-विशेषहताग्रभुजाफले (भुजकोटयन्तरगुणितकोटिभुजप्रमाणे) क्रमशः धनमृणं तत्र कार्यं तयोः पदं वराः (श्रेष्ठाः) गणकाः (ज्योतिर्विदः) अथवा (प्रकारान्तरेण) श्रुती उशन्ति (कथयन्ति) इति ॥१०॥

अत्रोपपत्तिः

श्लोकोक्त्या

भु (भु + को) = भु^{2} + को^{2} × भु

को (को — भु) = को^{2} — को × भु

द्वयोर्योगः

भु^{2} + को.भु + को^{2} — को × भु = भु^{2} + को^{2}

= कर्ण^2 मूलेन

$\sqrt{\text{भु}^2 + \text{को}^2}$ = कर्ण

को (भु + को) = को. भु + को^{2}

भु (को — भु) = भु. को — भु^{2}

द्वयोरन्तरेण

को. भु + को^{2} — (भु. को — भु^{2})

= को. भु + को^{2} — भु. को + भु^{2} = को^{2} + भु^{2} = कर्ण^2

मूलग्रहणेन

$\sqrt{\text{को}^2 + \text{भु}^2}$ = कर्ण।

अत्र को=स्पष्टा कोटिः

भु=मंकेन्द्रज्या। कर्ण=मं कर्ण

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१०॥

पुनः कर्णानयन दो प्रकार से करते हैं।

हि. भा.—भुज और कोटि को अलग-अलग भुज और कोटि के योग से गुण देना, भुज और कोटि के अन्तर से गुणित कोटि और भुज को उसमें जोड़ने और घटाने से मूल न लेने से दो प्रकार के कर्णों को ज्योतिषी लोग कहते हैं ॥१०॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार—

$भु (भु + को) = भु^2 + भु. को$

$को (को - भु) = को^2 - को. भु$

दोनों के योग करने से

$भु^2 + भु. को + को^2 - को. भु = भु^2 + को^2$

$= कर्ण^2$ मूल लेने से

$\sqrt{भु^2 + को^2} = कर्ण$

$को (भु + को) = को. भु + को^2$

$भु (को - भु) = भु. को - भु^2$

दोनों के अन्तर करने से

$को. भु + को^2 - भु. को + भु^2 = को^2 + भु^2$

$=$ कर्णमूल लेने से

$\sqrt{को^2 + भु^2} = कर्ण$

यहां को=स्पष्ट कोटि

भु=मंकेज्या

क=मं कर्ण

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०॥

इदानीं कुजादिस्पष्टीकरणसम्बन्धेऽवतरणमाह।

एवं खेचरमेकमेव गणयन् यश्चाद्ययैव स्फुटं
भुक्तिः स्याद्विवरावशिष्टमनयोः स्पष्टादिकैश्च ग्रहैः।
वक्राख्याद्यतनेऽथवा ग्रहगतेः साध्यं फलं पूर्ववत्
मार्दं तद्दलसंस्कृतामपनयेत्तच्छीघ्रभुक्तेः पृथक् ॥११॥

वि. भा.—एवं (अनेन पूर्वोक्तक्रमेण) एकमेव खेचरं (ग्रहं) गणयन् आद्ययैव रीत्या स्फुटं (ग्रहस्पष्टीकरणं) प्रतिपाद्यते। (अर्थात्साधारणरूपेण कुजादिग्रहाणां स्पष्टीकरणमभिधीयते नहि कुत्रापि कस्यापि ग्रहस्योल्लेखः क्रियते) अनयोर्ग्रहयोर्विवरावशिष्टं (द्विनद्वयग्रहान्तरशेषं) भुक्तिः स्यात् (ग्रहगतिः स्यात्) स्पष्टादिकैर्ग्रहैः स्पष्टादिका भुक्तिरर्थात्स्पष्टग्रहयोरन्तरं स्पष्टगतिः। मध्यमग्रहयोरन्तरं मध्यमगतिः। वक्राख्याद्यतनेऽथवा पूर्ववत् मार्दं ग्रहगतेः फलं (मन्दगतिफलं) साध्यं तद्दलसंस्कृतां (मन्दगतिफलार्धसंस्कृतां मध्यमगतिं) पृथक् शीघ्रभुक्तेः

(शीघ्रोच्चगतितः) अपनयेत् (शोधयेत्) तथा केन्द्रगतिर्भवेत् । अत्र वक्राख्याद्यतने इत्यसङ्गतमिव प्रतिभातीति ॥११॥

हि. भा.—इस पूर्वकथित क्रम से एक ही ग्रह को गणना करते हुए प्राचीन ही रीति से ग्रहस्पष्टीकरण मैं कहता हूं अर्थात् साधारण रूप से कुजादिग्रहों के स्पष्टीकरण कहता हूं, कहीं पर किसी ग्रहविशेष का उल्लेख नहीं करता हूं। इन दो ग्रहों का (अद्यतन श्वस्तन ग्रहों का) अन्तर ग्रहगति है। स्पष्टादि ग्रह करके स्पष्टादिकगति होती है। अर्थात् अद्यतन श्वस्तन स्पष्टग्रह का अन्तर स्पष्टगति है। एवं अद्यतन श्वस्तन मध्यमग्रह का अन्तर मध्यमगति है। पूर्ववन्मन्दगतिफल साधन कर मध्यमगति में संस्कार करने से जो (मन्द-स्पष्टगति) हो उसको शीघ्रोच्चगति में घटा देना तब शेष शीघ्र केन्द्रगति होती है ॥११॥

इदानीं गतिस्फुटीकरणमाह

केन्द्रभुक्तिरवशेषमुच्यते तां स्वशीघ्रफलधन्वभोज्यया ।
जीवपाशशिरसैः प्रताडयेद् भाजयेच्च चलकर्णजीवया ॥१२॥
लब्धमत्र निजकेन्द्रभुक्तितः शोधयेद्गतिफलं धनक्षयः ।
व्यस्तशुद्धिविकलं दलीकृतं स्यान्मृदुस्फुटगतौ ततः पुनः ॥१३॥
प्रोक्तवन्मृदुफलं समस्तकं मध्यमग्रहगतौ यथोदितम् ।
तद्विहीनचलकेन्द्रभुक्तितः शीघ्रजं च निखिलं स्फुटं भवेत् ॥१४॥
शोधनीयमधिनो यदा गतेः शुद्धयतीह चलकेन्द्रजं फलम् ।
भुक्तिमेव फलतस्तदा हरेद्वक्रभुक्तिरवशिष्टकं भवेत् ॥१५॥

वि. भा.—अवशेषं (शीघ्रोच्चगतितो मन्दस्पष्टगत्यूना यच्छेषं) शीघ्रकेन्द्र-गतिर्भवतिः । तां स्वशीघ्रफलधन्वभोज्यया (स्पष्टभोग्यखण्डेन) जीवपाशशिरसैः (त्रिज्यया) प्रताडयेत् (गुणयेत्) चलकर्ण-जीवया (शीघ्रकर्णेन प्रथमज्यया च) भाजयेत्, लब्धमत्र स्पष्टकेन्द्रगतिः, निजकेन्द्रभुक्तितः (शीघ्रकेन्द्रगतितः) शोधये-त्तदा धनक्षयः (धनमृणं) गतिफलं (शीघ्रगतिफलं) भवेत् । व्यस्तशुद्धिविकलं (विलोमशोधनावशिष्टं) दलीकृतं (अर्धीकृतं) मृदुस्फुटगतौ (मन्दस्पष्टगतौ) संस्कार्यं ततः पुनः प्रोक्तवत् (पूर्ववत्) समस्तकं मृदुफलं (सम्पूर्णमन्दफलं) यथोदितं मध्यमग्रहगतौ संस्कार्यं तद्विहीनचलकेन्द्रभुक्तितः (तद्रहितशीघ्रकेन्द्र भुक्तितः) शीघ्रजं फलं निखिलं (सम्पूर्णं) संस्कार्यं तदा स्फुटग्रहो भवेत् । यदा शोधनीयं (गणितसाधितं स्पष्टकेन्द्रगतिप्रयाणं) गतेः (शीघ्रकेन्द्रगतितः) नो शुद्धयति तदा चलकेन्द्रजं फलं फलतः शोधयेदवशिष्टकं वक्रभुक्तिः स्या-दिति ॥ १२-१५ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि शीघ्रकर्णेन शीघ्रकेन्द्रज्या लभ्यते तदा त्रिज्यया किं समागच्छति स्पष्टकेन्द्रज्या तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीक}}$ । एवमेव $\frac{\text{शीकेज्या' त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्प' केन्द्रज्या

अनयोरन्तरम्

$\frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}$ (शीकेज्या' ∼ शीकेज्या) = स्प'केन्द्रज्या' ∼ स्पकेन्द्रज्या ।

$= \frac{\text{त्रि} \times \text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टकेन्द्रज्यान्तरम्

अथ यतः $\frac{\text{स्पभोखं} \times \text{शीकेग}}{\text{प्रथमज्या}}$ = शीघ्रकेन्द्रगतिसंज्यावृ = शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर उत्थापनेन

$\frac{\text{त्रि. स्पभोखं. शीकेग}}{\text{शीकर्ण प्रथमज्या}}$ = स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्टकेन्द्रग

(स्वल्पान्तरात्)

ततः शीकेग ∼ स्पष्टकेग = शीघ्रगतिफलम् ।

मन्दस्पष्टगतावेतस्य संस्करणेन स्पष्टगतिर्भवेत् मन्दस्पग + शीघ्रगतिफ = स्पष्टगतिः यदा च ऋणात्मिका गतिर्भवेत्तदा सैव वक्रा गतिरिति ।

आचार्योक्त स्पष्टकेन्द्रगतिसाधनं न समीचीनमिति तदुपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटं भवति भास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणौ तत्साधनं समीचीनं "फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक् केन्द्रभुक्तिरित्यादिना" कृतं; भास्करोक्तस्पष्टकेन्द्रगतिः = $\frac{\text{शीघ्रफलकोज्या.शीकेग}}{\text{शीघ्र}}$ इतिशीघ्रोच्चगतौ विशोध्य तदा स्पष्टगतिः = शीउग − $\frac{\text{शीफकोज्या.शीकेग}}{\text{शीक}}$ यदा स्पष्टकेन्द्रगतेर्मानमधिकं भवेत्तदा शीघ्रोच्चगतौ तन्न शुद्ध्यति तत्र विलोमशोधनेन शिष्टा स्पष्टगतिः क्षयात्मिका भवेत्तदैव ग्रहगतिर्वक्रा भवेत्परमेवं स्थितिर्नीचस्थाने फलकोटिज्यायाः परमत्वाच्छीघ्रकर्णस्य परमाल्पत्वाच्च भवितुमर्हत्यनेन सिद्धं यन्नीचासन्न एव ग्रहगतेर्वक्रतारम्भ इति ॥१२-१५॥

हि. भा.—शीघ्रोच्चगति में स्पष्ट गति घटाकर जो शेष रहता है वह शीघ्र केन्द्रगति हैं उसको भोग्यज्या (स्पष्टभोग्यखण्ड) से गुणाकर त्रिज्यया से गुणना, शीघ्रकर्ण और प्रथम ज्या से भाग देकर फल स्पष्टकेन्द्रगति होती है, उसको शीघ्रकेन्द्रगति में घटाने से धन या ऋण शीघ्रगतिफल होता है । विलोमशोधन से जो शेष रहता है उसके आधे को मन्दस्पष्ट गति में संस्कार करना, उससे फिर पूर्ववत् सम्पूर्ण मन्दफल मध्यमगति में संस्कार करना, इस तरह फल करके रहित शीघ्रकेन्द्रगति से शीघ्रजफल सम्पूर्ण संस्कार करना तब स्पष्टग्रह होते हैं । यदि गणितसाधित स्पष्टगकेन्द्रगति प्रमाण शीघ्र केन्द्रगति में न घटे तो विलोम घटाकर जो शेष रहता वह वक्रगति होती है ॥ १२-१५॥

उपपत्ति

यदि शीघ्रकर्ण में शीघ्रकेन्द्रज्या पाते हैं तो त्रिज्या में क्या इस अनुपात से स्पष्ट

केन्द्रज्या आती है $\frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टकेज्या । इसी तरह $\frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्प'केज्या

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}$ (शीकेज्यो ~ शी'केज्या) = स्प'केज्या = स्पकेज्या

$\frac{\text{त्रि} \times \text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}}{\text{शीक}}$ = स्प'केज्या = स्पकेज्या

परन्तु $\frac{\text{स्पभोखं.शीकेग}}{\text{प्रथमज्या}}$ = शीघ्रकेग सं ज्यावृ = शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर

इसलिये उत्थापन से $\frac{\text{त्रि. स्पभोखं. शीकेग}}{\text{शीक. प्रज्या}}$ = स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रान्तर = स्पष्ट-केगति (स्वल्पान्तर से),

तब शीकेग—स्पकेग = फलगति, इसको मन्दस्पष्टगति में संस्कार करने से स्पष्ट-गति होती है । जब ऋणात्मक गति होती है तो वही वक्रगति कहलाती है ।

आचार्य से साधित स्पष्टकेन्द्रगति ठीक नहीं है यह बात उसकी उपपत्ति देखने से ही स्पष्ट है । भास्कराचार्य ने सिद्धांतशिरोमणि में "फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनी" इत्यादि से स्पष्टकेन्द्रगति साधन ठीक किया है । भास्करोक्त स्पष्टकेन्द्रग = $\frac{\text{शीफकोज्या. शीकेग}}{\text{शीक}}$ इसको शीघ्रोच्चगति में घटाने से ग्रह की स्पष्टगति होती है । शीउग — $\frac{\text{शीफकोज्या. शीकेग}}{\text{शीक}}$ जब स्पष्ट-केन्द्रगति का मान ज्यादा होगा तब शीघ्रोच्चगति में न घटने से विलोम संशोधन होगा, तब ऋणात्मक स्पष्टगति होगी तभी ग्रहगति वक्र होगी । यह स्थिति नीचस्थान में फलकोटिज्या के परमत्व से और शीघ्रकर्ण के परमाल्पत्व से हो सकती है । इससे सिद्ध होता है कि नीचासन्न में ग्रह की वक्रता आरम्भ होता है ॥१२-१५॥

इदानीं केन्द्रमभिधीयते ततोमन्द शीघ्रफलयोर्धनर्णव्यवस्थामाह ।

मन्दग्रहोनमथवा विचलश्च खेटः केन्द्रं ग्रहे धनमृणं पदयोः क्रमेण ।
मान्दं फलच विपरीतमतो हि-शीघ्रं ज्ञेयं सदा चञ्चलशर्मणीह ॥१६॥

वि.भा.—मन्दग्रहोनं (ग्रहरहितमन्दोच्चं) केन्द्रं (मन्दकेन्द्रम्) विचलः (शीघ्रोच्चरहितः) खेटः (ग्रहः) केन्द्रं (शीघ्रकेन्द्रं) भवेत् । पदयोः क्रमेण (तुलादिमेषादिकेन्द्रवशेन, मान्दं फलं ग्रहे धनमृणं (तुलादिकेन्द्रे धनं मेषादिकेन्द्रे ऋणं) भवति । चञ्चलकर्मणि (शीघ्रकर्मणि) सदा (सर्वदा) अतो विपरीतं (मन्दफलाद्विलोमं) शीघ्रं (शीघ्रफलं) भवत्यर्थान्मेषादिकेंद्रे शीघ्रफलं ग्रहे धनं तुलादिकेन्द्र ऋणं भवतीति ॥

अन्यैराचार्यैः श्रीपतिब्रह्मगुप्तभास्करप्रभृतिभिर्मन्दोच्चरहितो ग्रहो मन्द-

केन्द्रं, ग्रहरहितं शीघ्रोच्चं शीघ्रकेन्द्रं कथ्यते परमनेन ग्रंथकारेण शीघ्रोच्चरहितो ग्रहः शीघ्रकेन्द्रं कथ्यते इति ॥१६॥

हि. भा.—ग्रहरहित मन्दोच्च मंदकेन्द्र होता है, शीघ्रोच्चरहित ग्रह शीघ्रकेन्द्र होता है। तुलादि और मेषादि केन्द्रवश से मन्दफल ग्रह में धन और ऋण होता है, इससे उलटा शीघ्र फल होता है, अर्थात् तुलादि केन्द्र में ऋण और मेषादिकेन्द्र में धन है ॥

अन्य आचार्य श्रीपति ब्रह्मगुप्त भास्कर आदि मन्दोच्चरहित ग्रह को मन्दकेन्द्र कहते हैं, ग्रहरहित शीघ्रोच्च को शीघ्रकेन्द्र कहते हैं परन्तु ये ग्रन्थकार (वटेश्वर) शीघ्रोच्चरहित ग्रह को शीघ्रकेन्द्र कहते हैं॥१६॥

अधुना विध्यन्तरेण फलस्फुटीकरणमाह ।

भुजफलं वाऽयुजि साधयेद् गताद्युज्युत्क्रमज्योन त्रिभज्यया फलम् ।
क्षये क्षयस्वे च धने धनक्षयौ ग्रहेऽथवा केन्द्रपदक्रमाद् भवेत् ॥१७॥

वि. भा—वा अयुजि (विषमपदे) गतात्केन्द्रचापात् भुजफलं साधयेत् । युजि (समपदे) उत्क्रमज्योन त्रिज्यया साधयेत्। केन्द्रपदक्रमात् क्षये (ऋणे केन्द्रज्यामाने) भुजफले क्षयस्वे (धनर्णे)ग्रहे कार्ये, तथा धने (धनात्मके ज्यामाने) भुजफले धनक्षयौ (धनर्णे) ग्रहे कार्ये ।

अत्रायमर्थः—प्रथमपदे ज्याऋणं भवति, द्वितीयपदे उत्क्रमज्याधनं, तृतीयपदे क्रमज्याधनं चतुर्थपदे उत्क्रमज्याऋणं भवति । एवं पदक्रमेण क्रमोत्क्रमाभ्यां केन्द्रज्यां प्रसाध्य भुजफलमानयेत् । अत्र वाशब्दः प्रकारान्तरसूचनार्थः । एतदुक्तं भवति एवं पदक्रमेण केन्द्रज्यामुत्पाद्य "स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवे भांशै"-रित्यादिना मन्दभुजफलानि क्षयधनधनक्षय-सञ्ज्ञकान्यानेयानीति ॥१७॥

अत्रोपपत्तिः

प्रथमपदे गतांशानां क्रमज्या स्वपरिधिगुणा भांशहृता भुजफलं स्फुटमेव । द्वितीयपदे गम्यांशानां क्रमज्या गतोत्क्रज्योन त्रिज्यासमा सा परिधिगुणा भांशभक्ता भुजफलं भवेत् $\frac{\text{परिधि (त्रि—उत्क्रमज्या)}}{\text{भांश}} = \text{परमभुजफल} - \frac{\text{परिधि. उज्या}}{\text{भांश}}$ एवं समपदे उत्क्रमज्यातो यद्भुजफलं तेन परमं भुजफलं हीनं तदा वास्तवं भुजफलम् । एवं क्रमेण चतुर्षु पदेषु भुजफलम् ।

प्रथमपदे

$\frac{\text{क्रमज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$ पदान्ते परमं भुजफलम् ।

द्वितीयपदे

परमभुजफल— $\frac{\text{उज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$ पदान्ते शून्यं भुजफलम्;

तृतीयपदे

$\frac{\text{क्रमज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$ पदान्ते परमं भुजफलम्।

चतुर्थपदे

परमभुजफल — $\frac{\text{उज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$

अतः सिद्धम् ॥१७॥

हि. भा.—विषमपद में गत केन्द्र चाप से भुजफल साधन करना समपद में उत्क्रम-ज्याहीन त्रिज्या से साधन करना। केन्द्र के पद क्रम से ऋणात्मक केन्द्रज्यामान में ग्रह में भुज-फल धन ऋण होता है धन में भुजफल ग्रह में धन, ऋण होता है।

यहां इसका यह अर्थ है कि प्रथम पद में ज्या ऋण है, द्वितीय पद में उत्क्रमज्या धन है। तृतीय पद में क्रमज्या-धन और चतुर्थ पद में उत्क्रमज्या ऋण होती है। इस तरह पद क्रम से क्रम और उत्क्रम से केन्द्रज्या करके भुजफल साधन करना। उपर्युक्त श्लोक में (वा) शब्द प्रकारान्तरसूचक है। पदक्रम से केन्द्रज्या लाकर "स्वेनाहते परिधिना भुज-कोटिजीवे" इत्यादि भास्करकथित नियम से क्षय, धन, धन, क्षय संज्ञक भुजफल लाना चाहिए ॥१७॥

उपपत्ति

प्रथम पद में गतांश ज्या को परिधि से गुणकर भांश भाग देने पर भुजफल होता है, द्वितीय पद में गम्यांश की क्रमज्या गतचापांशोत्क्रमज्यारहित त्रिज्या के बराबर है उसको परिधि से गुणकर भांश से भाग देने से भुजफल होता है।

$\frac{\text{परिधि (त्रि—उत्क्रमज्या)}}{\text{भांश}} = \text{परमभुजफल} + \frac{\text{परिधि. उज्या}}{\text{भांश}}$ इस तरह समपद में उत्क्रमज्या से जो भुजफल होता है परमभुजफल में उसको घटाने से वास्तव भुजफल होता है। इस क्रम से चारों पदों में भुजफल होता है।

प्रथम पद में	द्वितीय पद में
$\frac{\text{क्रमज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$ पदान्त में परमभुजफल।	परमभुजफल— $\frac{\text{उज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$ —पदांत में शून्य भुजफल
तृतीय पद में	**चतुर्थ पद में**
$\frac{\text{क्रमज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$ पदान्त में परमभुज	परम भुजफल — $\frac{\text{उज्या. परिधि}}{\text{भांश}}$

∴ सिद्ध हुआ ॥१७॥

इदानीमानीतानां भुजफलानां संयोगवियोगप्रकारमाह।

क्षयस्वं हि ग्रहे कुर्यात्फलं जीवान्तरं भवेत्।
फलयोर्वा विशेषोत्थं व्यत्यासाच्च चले भवेत् ॥१८॥

वि.भा.—ग्रहे (मध्यमग्रहे) फलं (मन्दभुजफलं) क्षयस्वं (ऋणधनं) जीवा-न्तरं (ज्यान्तरात्मकं) कुर्यात्। फलयोः (मन्दभुजफलयोः) विशेषोत्थं (अन्तरजाजा-यमानं) ग्रहे कुर्यात्। चले (शीघ्रकर्मणि) व्यत्यासात् (विलोमात्) भवेदिति ॥

अस्यायं भावः। मन्दे शीघ्रकर्मणि वा यदि प्रथमपदे केन्द्रं स्यात्तदा केन्द्रेण यद्भुक्तं तत्क्रमज्या ग्राह्या द्वितीयपदे केन्द्रे द्वितीयपदीयोत्क्रमज्यां परिधिना संगुण्य भांशैर्भक्त्वा यत्फलं तत्परमभुजतो विशोध्यावशिष्टं ग्रहस्य भुजफलं भवति तेन 'क्षयस्वंफल' मित्युक्तं

यदि तृतीयपदे केन्द्रं तदा भुक्तस्य क्रमज्यां कृत्वा पूर्ववत् फलं (भुजफलं) समानीय द्वितीयपदोत्पन्नपरमभुजफले योज्यम्। ततस्तस्माद् योगात्प्रथमपदभुजफलं विशोध्यं तदा ग्रहस्य भुजफलं भवेत्। चतुर्थे पदे केन्द्रे तत्पदीयोत्क्रमज्यां परिधिना संगुण्य भांशैर्भक्त्वा फलं प्रथमपदीयग्रहपरमभुजफले योज्यं तदा वास्तवं भुजफलं भवेदत उक्तं "फलयोर्वा विशेषोत्थम्" द्वितीयतृतीयपदोत्पन्नयोः परमभुजफलयोर्धनात्मकयोर्योगे ऋणयोर्योगं विशोध्य ग्रहस्य भुजफलं भवति। मन्दकर्मणि प्रथमपदे क्रमज्याजनितभुजफलमृणं भवति। द्वितीयपदोत्क्रमज्याजनितफलं धनं भवति, तृतीयपदे धनं चतुर्थपदोत्क्रमज्योत्पन्नमृणं भवति। शीघ्रे कर्मणि विलोममर्थात्प्रथमपदे धनं द्वितीये तृतीये च क्षयः, चतुर्थे धनम्।

अत्रेदं तात्पर्यम्। भुजफलसाधनं कृत्वा तच्चापं मन्दफलं भवति मन्दकर्मणि, ततश्च तद्योगान्तरवशाद्यदधिकं तद्धनमृणं वा ग्रहे कर्त्तव्यम्। शीघ्रकर्मणि तद्गुणिताद् व्यासार्धात् स्वकर्णेन भाजिताद् यल्लब्धं तच्चापं फलं भवति तदपि फलयोगान्तरवशादेव ग्रहे धनमृणं वा कार्यमिति॥ १८॥

हि. भा.—मध्यग्रह में ऋण धन भुजफल (ज्यान्तात्मक) संस्कार करना चाहिये। फलद्वय के अन्तररूप फलग्रह में संस्कार करना। शीघ्र कर्म में विलोमक्रिया होती है॥

इसका यह अभिप्राय है मन्दकर्म में या शीघ्रकर्म में प्रथम पद में केन्द्र रहने से केन्द्र का जो भुक्तांश है उसकी क्रमज्या लेनी चाहिये। द्वितीय पद में द्वितीयपदीय उत्क्रमज्या को परिधि से गुणाकर भांश से भाग देने से जो फल हो उसको परम भुजफल में घटाने से ग्रह का वास्तव भुजफल होता है। इसलिये "क्षयस्त्रं फलं" कहा गया है। तृतीय पद में भुक्तचाप की क्रमज्या कर पूर्ववत् भुजफल लाकर द्वितीय पदीय परम भुजफल में जोड़ना चाहिये। उस योग में प्रथमपदीय भुजफल घटाने से ग्रह के भुजफल होते हैं। चतुर्थ पद में केन्द्र रहने से चतुर्थपदीय उत्क्रमज्या को परिधि से गुणाकर भांश से भाग देने से जो फल होता है उसको प्रथमपदीय ग्रह परमभुजफल में जोड़ने से वास्तव भुजफल होता है इसलिये "फलयोर्वा विशेषोत्थम्" कहा गया है। द्वितीय तृतीय पदीय परम भुजफलद्वय (धनात्मक) के योग में ऋणद्वय के योग को घटाने से ग्रह का भुजफल होता है। मन्दकर्म में प्रथम पद में क्रमज्योत्पन्न भुलफल ऋण होता है। द्वितीयपदीय उत्क्रमज्याजनित फल धन होता है। तृतीय पद में धन चतुर्थपदीय उत्क्रमज्योत्पन्न ऋण होता है शीघ्रकर्म में विपरीत होता है। प्रथम पद में धन, द्वितीय और तृतीय पद में ऋण, चतुर्थ पद में धन होता है।

इसका तात्पर्य यह है भुजफल साधन कर उसका चाप मन्द फल होता है मन्दकर्म में। बाद में उनके योग, अन्तर वश करके जो अधिक रहता है उसको ग्रह में धन या ऋण करना चाहिये। शीघ्र कर्म में उसको (भुजफल को) त्रिज्या से गुणाकर शीघ्रकर्ण से भाग देने से जो हो उसका चाप शीघ्रफल होता है। उसको भी फल के योग, अन्तर वश करके ग्रह में धन या ऋण करना चाहिये॥ १८॥

इदानीं भुजकोटिज्यादिसाधनैर्विना द्युगणादेव स्फुटग्रहं कर्त्तुं प्रकारमाह ।

स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकाद् भूदिनैः कृतहतात्पदानि तु ।
शेषकात्त्रिगुणिताद् गृहादितः पूर्ववच्च भुजकोटिसाधनम् ।। १९ ।।

वि. भा.—स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकात् (स्वोच्चनीचकेन्द्रभगणशेषादर्थाद्-ग्रहभगणशेषे स्वच्चनीचभगणशोधने यच्छेषं तस्मात्केन्द्रभगणशेषात्) कृतहतात् (चतुर्भिर्गुणितात्) भूदिनैः (कुदिनैः) भक्तात्फलं पदानि (केन्द्रस्य भुक्तानि पदानि) स्युः । शेषकात् (पदप्राप्त्यनन्तरमवशिष्टात्) त्रिगुणात् (त्रिगुणितात्) भूदिनैर्भक्ता-ल्लब्धगृहादितो भुजकोटिसाधनं भवेत् । यथा पदप्राप्तानन्तरमवशिष्टा त्रिगुणाद्-भूदिनैर्भक्ताल्लब्धं भुजज्या भवेत् । गतगम्यज्यान्तरगुणाच्छेषात् कुदिनैर्भक्ताल्लब्धं पूर्वस्थापिते योज्यं तदा स्फुटा भवेत् । सा च प्रथमकेन्द्रपदे शेषं कुदिनेभ्यो विशो-ध्यावशिष्टं त्रिगुणितं कुदिनैर्भक्तं लब्धा कोटिज्या, गतगम्यज्यान्तरगुणिताच्छेषात् कुदिनैर्यल्लब्धं तत्पूर्वलब्धे ज्यार्धे योज्यं तदा स्फुटा कोटिज्या भवेत् । गतैः प्रथमे केन्द्रपदे भुजज्या, गम्यैः कोटिज्या, द्वितीये केन्द्रपदेऽतोऽन्यथा गतैस्तदूनशेषाद्गम्यै-र्भुजज्या, तृतीये पदे गतैर्भुजज्या, गम्यैः कोटिज्या, चतुर्थपदे गतैः कोटिज्या गम्यैर्भुजज्या भवतीति ।। १९ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

भगणशेषादेव केन्द्रादिकं साधितमाचार्येण, तत एकस्मिन् भगणे चत्वारि पदानि तदा भगणशेषे किमिति पदानि $\frac{४ \times \text{भशे}}{\text{कुदि}}$ तत एकस्मिन् पदे राशयः = ३ तदाऽनुपातो यद्येकस्मिन् पदे राशित्रयं लभ्यते तदा शेषे किमित्यागतास्तत्सम्ब-न्धिनो राशयस्ततो भुजकोटिसाधनं कार्यं यच्च भाष्ये लिखितमस्तीति ।।

हि. भा.— भुज कोटिज्यादि साधन बिना अहर्गण ही से स्फुटग्रह के लिये प्रकार कहते हैं । अपने उच्चनीच केन्द्र भगणशेष से अर्थात् ग्रहभगणशेष में उच्च, नीच के भगण-शेष घटाने से जो शेष केन्द्र भगण शेष रहता है उसको चार से गुणकर कुदिन से भाग देने के फलकेन्द्र के भुक्तपद होते हैं पदप्राप्ति के बाद जो शेष है उसको तीन से गुणकर कुदिन से भाग देने से जो लब्धफल होता है उससे भुज और कोटि का साधन होता है । जैसे पदप्राप्ति के बाद शेष को तीन से गुणकर कुदिन से **भाग** देने से फल भुजज्या होती हैं । गत और गम्य ज्या के अन्तर से गुणित शेष को कुदिन से भाग देने से जो फल होता है उसको पूर्व रखे हुए में जोड़ने से स्फुट भुजज्या होती है । वह प्रथम केन्द्र पद में है । शेष को कुदिन में घटाकर । शेष को तीन से गुणकर और कुदिन से भाग देकर कोटिज्या प्राप्त हुई । गत और गम्य ज्या के अन्तर से गुणित शेष को कुदिन से भाग देने से जो फल होता है उसको पूर्व प्राप्त ज्यार्ध में जोड़ें तब स्फुट कोटिज्या होती है । पहले केन्द्र पद में गत से भुजज्या और गम्य से कोटिज्या, द्वितीय केन्द्र पद में इससे विपरीत गत से उस ऊन शेष से गम्यों से भुजज्या, तीसरे पद में गतों से भुजज्या और गम्यों से कोटिज्या तथा चौथे पद में गतों से कोटिज्या और गम्यों से भुजज्या होती है ।

उपपत्ति

यहां भगण शेष ही केन्द्रादि का साधन आचार्य ने किया है तब अनुपात करते हैं कि यदि एक भगण में चार पद पाते हैं तो भगण शेष में क्या इस अनुपात से पद आते हैं $\frac{४ \times भशे}{कुदिन}$ = पद । फिर अनुपात करते हैं कि एक पद में तीन राशि पाते हैं तो शेष में क्या इस अनुपात से तत्सम्बन्धी राशियां आती हैं इन पर से भुज कोटि का साधन करना चाहिए ।।१६।।

इदानीं स्पष्टभगणशेषज्ञानार्थमाह ।

मन्दजं चलभवं च तद्धतैर्भू दिनैर्भगणलिप्तिकोद्धृतैः ।
खेचरस्य भगणावशेषकं संस्कृतं कलिकयाऽखिलं स्फुटम् ।।२०।।

वि. भा.—मन्दजं (मन्दकर्मोद्भवं भुजफलं) चलभवं (शीघ्रकर्मोदभवं भुजफलं) यत् तद्धतै (तद्गुणितः) भूदिनैः (कुदिनैः) भगणलिप्तिकोद्धृतैः (भगणकलाभिश्चक्रकलाभिर्भक्तैः) लब्धः खेचरस्य भगणावशेषकं (ग्रहभगणशेषं) संस्कृतं तदा फलकलया अखिलं स्फुटं (स्पष्टं भगणशेषं) भवेदिति ।।२०।।

अत्रोपपत्तिः

फलकलाश्चक्रकला भक्तास्तदा भगणात्मिकाः फलकलाः $= \frac{फकला}{चक्रक}$

$$= \frac{फक \times कुदिन}{चक \times कुदि} = \frac{\frac{फक. कुदिन}{चक}}{कुदिन} = \frac{लब्ध}{कुदिन}$$ इति भगणात्मकं फलकलामानं ग्रहभगणशेषे संस्कृतं तदा वास्तवं भवेदिति ।।२०।।

हि. भा.—मन्दकर्मोत्पन्न भुजफल और शीघ्रकर्मोत्पन्न भुजफल जो है उनसे कुदिन को गुणकर भगण कला (चक्रकला) से भाग देने से जो फल होता है उसको ग्रह भगण शेष में संस्कार करने से वास्तव भगण शेष होता है ।।२०।।

उपपत्ति

फलकला को चक्रकला से भाग देने से भगणात्मक फल कला होती है ।

$$\frac{फक}{चक} = \frac{फक. कुदिन}{चक. कुदिन} = \frac{\frac{फक. कुदिन}{चक}}{कुदिन} = \frac{लब्ध}{कुदिन}$$ इस भगणात्मक फलकला को ग्रह भगण शेष में संस्कार करने से वास्तव भगण शेष होता है ।।२०।।

इदानीं ग्रहस्फुटत्वार्थं संस्कारविशेषानाह ।

दोःफलेन सवितुश्चरासुभिः स्वेनदेशविवरेण चोक्तवत् ।
संस्कृतं कुदिनभाजितं भवेन्मंगलादिखचरः परिस्फुटः ।।२१।।

वि. भा.—सवितुः (सूर्यस्य) दोःफलेन (भुजफलेन) चरासुभिः (चरखण्ड-

प्राणै:) देशविवरेण (स्वदेशान्तरेण) उक्तवद्यत्फलमर्थाद् भुजान्तरफलं, चरासुजनितग्रहगतिकलाफलं तथा देशान्तरजनितग्रहगतिकलाफलं, कुदिन-भाजितं (कुदिनभक्तं) यद् भवेत्तैः फलैः संस्कृतं भगणशेषं स्फुटं भगणशेषं भवेत्तस्मात्स्फुटभगणशेषाद्यो ग्रह आनीयते स स्फुट एव मंगलादिखचरः (मंगलादिग्रहो) भवेदिति ।।२१।।

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोकोपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटेति ।।२१।।

हि. भा.—अब ग्रह के स्फुटत्व के लिए संस्कार विशेषों को कहते हैं। सूर्य के भुजफल से, चरासु से और अपने देशान्तर से पूर्ववत् जो फलकला मान अर्थात् भुजान्तर फल-कला, चरासुसम्बन्धी ग्रहगतिकला और देशान्तर सम्बन्धी ग्रहगतिकला मान होते हैं उनको कुदिन से भाग देने से जो फल हो उन्हें ग्रह भगणशेष में संस्कार करने से स्पष्टभगण शेष से जो ग्रह आते हैं वे मंगलादि स्पष्टग्रही होते हैं ।।२१।।

इसकी उपपत्ति पूर्व श्लोक की उपपत्ति देखने से स्फुट है ।।२१।।

इदानीं पूर्वोक्त 'पूर्ववच्चाभुजकोटिसाधनमि' त्यस्य स्पष्टीकरणमाह ।

पदशेषं गतसंज्ञं तदूनं कुदिनं गम्यमिति ते द्वे ।
षण्णवतिघ्ने कुदिनैर्भक्ते जीवाऽन्तराहताच्छेषात् ।।२२।।
कुदिनैर्लब्धयुता ज्या भुजकोटिज्येऽथवा पदानुगते ।
तत्फलमिलाहृन्निघ्नं चक्रकलाभाजितं शेषे ।।२३।।

वि. भा.—स्वोच्चनीचपरिवर्त्तशेषकादित्यादिना यत्पदशेषं तद् गतसंज्ञम् । तदूनं (गतसंज्ञकेन रहितं) कुदिनं, गम्यं (भोग्यम्) ते द्वे (गतगम्ये) षण्णवतिघ्ने (९६ एभिर्गुणिते) कुदिनैर्भक्ते भुजकोटिज्ये भवतः । भुजज्यासम्बन्धिशेषाद् गत-गम्यज्यान्तरगुणात् कुदिनैर्भक्ताल्लब्धं पूर्वस्थापिते योजयेत्तदा स्फुटा भुजज्या भवेत्तथा कोटिज्यासम्बन्धिशेषाद् गतगम्यज्यान्तरहृलात्कुदिनैर्भक्ताल्लब्धं तत्पूर्व-लब्धे ज्यार्धे योज्यं तदा स्फुटा कोटिज्या भवेत् । एते भुजकोटिज्ये पदानुगते भवतोऽर्था-त्पदाधीने स्तः, प्रथमे केन्द्रपदे गताद्भुजज्या, गम्यात्कोटिज्या, द्वितीये केन्द्रपदेऽतोऽन्यथा गतात्कोटिज्या, तदूनशेषाद् गम्याद्भुजज्या, तृतीये पदे गताद्भुजज्या, गम्यात्कोटिज्या चतुर्थे पदे गतात्कोटिज्या, गम्याद्भुजज्या इति, तत्फलं, इलाहृन्निघ्नं (कुदिनगुणितं) चक्रकलाभाजितं (चक्रकलाभक्तं) फलं शेषे (ग्रहभगणशेषे) संस्कृतं तदा वास्तव-भगणशेषं भवेदिति ।।२२-२३।।

अत्रोपपत्तिः ।

एकस्मिन् भगणे ज्यासंख्याः=९६ । तदा पदशेषात् ९६ एभिर्गुणितात्कुदिनै-र्भक्ताल्लब्धांकसमा भुजज्या भवति, शेषाद् गतगम्यज्यान्तरगुणात्कुदिनैर्भक्ताद्यल्लब्धं तत्पूर्वस्थापिते योज्यं तदा स्फुटा भुजज्या भवेत् । एवं गम्यात् (कुदिन—पदशे) ९६ एभिर्गुणितात् कुदिनैर्भक्ताल्लब्धतुल्या कोटिज्या, शेषाच्च गतगम्यज्यान्तरहृतात् कुदिनैर्भक्ताल्लब्धं तत्पूर्वलब्धे ज्यार्धे योज्यं स्फुटा कोटिज्या भवेत् । शेषोपपत्तिर्मन्दजं चलभवं च तद्वतैरित्याद्युपपत्तौ द्रष्टव्येति ।।२२-२३।।

हि. भा.—उक्त दोनों श्लोकों का अर्थ स्पष्ट ही है ।।२२-२३।।

इदानीं भुजफलस्य नामान्तरमाह ।

भग्रहाम्युदयेभ्यो वा ग्रहे स्पष्टे तु तद्वशात् ।
तद्दोःफलमिनाख्यो हि संस्कारः परिकीर्त्तितः ॥२४॥

वि. भा.—वा भग्रहाभ्युदयेभ्यः (भोदयग्रहसावनदिवसेभ्यः) स्पष्टे ग्रहे अपेक्षिते सति तदा तद्वशात् दोःफलं (भुजफलं) इनाख्यः संस्कारः (भुजान्तरसंस्कारः) परिकीर्त्तितः (कथितः) रविमन्दफलवलादेव भुजान्तरफलस्य साधनं भवत्यतस्तस्य नाम "इनाख्यः संस्कारः" ॥ इति ॥२४॥

भभ्रमा यस्य ग्रहस्य भगणोनाः शेषाणि तस्य सावनदिनानि भवन्ति तैरहर्गणे गुणिते युगकुदिनैर्भक्ते फलं गतसावनानि स्युः । भभ्रमोत्पन्नग्रहास्तेन फलेनोनास्तदा मध्यमग्रहो भवति यस्य भगणैर्यो ग्रह आनीयते स तस्यैवोदयकालिको भवति । नक्षत्रपरिवर्त्तैरानीतो ग्रहो नक्षत्रोदयिककालिको भवति, तथा सत्यश्विनीनक्षत्राणां प्रथमं तदुदयकालिको ग्रहो भवति । अस्मादश्विन्यौदयिकाद् भगणात् यस्योदयाः शोध्यन्ते शेषस्तस्यैव मध्यमो भवतीति । एतद् ग्रहवशाद्यन्मन्दफलं रवेस्तद्वशादेव भुजान्तरफलानयनं भवत्यतो दोःफलचापाख्यः संस्कारोऽस्य नामेति । २४॥

हि. भा.—अथवा भोदय, ग्रहसावन दिन पर से यदि स्पष्ट ग्रह जानना हो तो उसके वश से (भोदय या ग्रहसावन से आनीत मध्यम ग्रह के वश से) जो भुजफल होता है उसका नाम भुजफल संस्कार या भुजान्तरफलसंस्कार कथित है ।

भभ्रम में जिस ग्रह के भगण को घटाते हैं शेष उस ग्रह के सावन दिन होते हैं । ग्रहर्गण को उससे गुणाकर कुदिन से भाग देने से गत सावन दिन होते हैं । भभ्रम से जो ग्रह आते हैं उसमें पूर्वोक्त फल को घटाने से मध्यम ग्रह होते हैं । जिसके भगण द्वारा ग्रह साधित होते हैं वह ग्रह उसी के उदयकालिक होते हैं । नक्षत्र भगणों द्वारा साधित ग्रह नक्षत्रोदयकालिक होते है । इस तरह अश्विनीनक्षत्रोदयकालिक ग्रह होते हैं । इस अश्विनी के औदयिक भगण में जिस के सावन घटाते हैं उसी के मध्यम ग्रह होते हैं । इस ग्रहवश से जो मन्दफल होता है रवि के उसी मन्दफल के द्वारा भुजांतर फल साधन होता है इसलिए उसका नाम भुजफलसंस्कार यानि भुजांतरसंस्कार कहा गया है ॥२४॥

इदानीं चन्द्रस्य देशान्तरसंस्कारमाह ।

स्वोदयभोगोपहते देशान्तरयोजने कुवृत्तहृते ।
प्राग्वद्धनमृणमिन्दोर्यथोदयाः प्राग्दिशि निबद्धाः ॥२५॥

वि. भा.—देशान्तरयोजने (पूर्वसाधितस्पष्टदेशान्तरयोजने) इन्दोः (चन्द्रस्य) स्वोदयभोगोपहते (स्वगतिकलागुणिते) कुवृत्तहृते (भूपरिधिनाभक्ते) फलं प्राग्वत् ग्रहे धनं वा ऋणं कार्यं, चन्द्रस्य यथोदयाः (यथाकथितोदयाः) प्राग्दिशि (पूर्वमार्गे पूर्वपद्धतौ वा) निबद्धाः सन्तीति ॥२५॥

अत्रोपपत्तिः

यदि स्पष्टभूपरिधियोजनैर्ग्रहगतिकला लभ्यन्ते तदा देशान्तरयोजनैः किमित्यनुपातेन देशान्तरकलाः समागतास्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{ग्रगक} \times \text{देशान्तरयो}}{\text{स्पभूयो}}$ एतदेव फलं रेखातः पूर्वापरस्थितदेशवशेन ग्रहे संस्कार्यं भवति, सर्वेषां ग्रहाणां देशान्तरफलसाधनमेकरीत्यैव भवति तत्संस्कारोऽप्येकरूप एव देशांतरसंस्कारः पूर्वकथित एव पुनरत्र तत्कथनस्य काऽऽवश्यकतेत्याचार्य एव ज्ञातुं शक्नोति। एतेनाऽऽचार्येण स्पष्टभूपरिध्यानयनं न कृतमतो भूपरिधियोजनवशेनानीतं देशान्तरफलं न समीचीनमिति विज्ञैर्ज्ञेयमिति ॥२५॥

अब देशांतर संस्कार कहते हैं।

हि० भा०—पूर्वसाधित स्पष्टदेशांतर योजन को अपनी गतिकला से गुणकर भूपरिधि से भाग देने से जो फल हो उसको ग्रह में धन या ऋण करना चाहिए, चंद्र के सावन पूर्व ही के अनुसार समझना चाहिए ॥२५॥

उपपत्ति

यदि स्पष्ट भूपरिधि योजन में ग्रहगति कला पाते हैं तो देशांतर योजन में क्या इस अनुपात से देशांतर कला आती है। $\frac{\text{ग्रगक.देशांतरयो}}{\text{स्पभूपयो}}$ = देशांतर कला, इसको रेखादेश से पूर्व, पर देश के अनुसार ग्रह में संस्कार करते हैं। सब ग्रहों के देशांतर फल साधन एक ही तरह से होता है उसका संस्कार भी पहले आचार्य कह चुके हैं तब फिर यहां कहने की क्या आवश्यकता है इस विषय को आचार्य ही जान सकते हैं। इन आचार्य ने स्पष्ट भूपरिधि के साधन नहीं किया है इसलिए उसके द्वारा साधित देशांतर फल भी ठीक नहीं हैं ॥२५॥

इदानीं भुजांतरसंस्कारमाह।

मध्यादधिके स्पष्टे स्वमृणं चोने भुजान्तरं चैतत्।
तदुदयगास्तदहोगतयस्तज्जासुपलेन हताः ॥२६॥
तदहोरात्रहृता हीनयुता व्योमवासिनः सर्वे।
अश्विन्यौदयिकास्तदश्विनी दर्शनान्तरोनयुताः ॥२७॥

वि० भा०—मध्यात् (मध्यमग्रहात्) स्पष्टे (स्पष्टग्रहे) अधिके एतदधोदर्शितं भुजान्तरं मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे स्वं (धनम्) मध्यात्स्पष्टे ऊने (हीने अल्पे वा) तत्फलं मध्यमार्कोदयकालिकग्रहे ऋणं कार्यम्। अधुना तत्फलं (भुजान्तरफलं) साध्यते तदुदयगाः (तत्तेषां ग्रहाणां सावनान्तर्गताः) तदहोगतयः (तद्दैनिकगतयः) तज्जातासुपलेन (भुजान्तरासुपलेन) हताः (गुणिताः) तदहोरात्रहृताः (तदहोरात्रासु भक्ताः) फलेन हीनयुता मध्यमार्कोदयकालिका ग्रहास्तदा सर्वे व्योम-

वासिनः (ग्रहाः) स्पष्टार्कोदयकालिका भवेयुः। अश्विनीदर्शनान्तरोनयुतास्तदाऽश्विन्यौदयिका भवन्तीति ॥२६-२७॥

अस्योपपत्तिर्मध्यमाधिकारे प्रदर्शिताऽस्ति सा तत्रैव द्रष्टव्येति ॥२६-२७॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधिः
द्वितीयोऽध्यायः ।

अब भुजांतर संस्कार कहते हैं ।

हि, भा.— मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह अधिक हो तो नीचे लिखे हुए भुजान्तर फल को मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह में धन करना, मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह अल्प हो तो भुजांतर फल को मध्यमार्कोदयकालिक ग्रह में ऋण करना, अब भुजांतर फलानयन करते हैं ।

ग्रह के सावनार्गत गति को भुजांतरासु से गुणकर ग्रहाहोरात्रासु भाग देने से जो फल होता है उसको मध्यमार्कोदय कालिकग्रह में हीन, युत करने से स्पष्टार्कोदयकालिक ग्रह होते हैं ॥२६-२७॥

इतिवटेश्वर सिद्धांत में स्पष्टाधिकार में स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधि
नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ॥



तृतीयोऽध्यायः

इदानीं प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिः प्रारभ्यते

इदमभिहितं ग्रहाणां स्पष्टीकरणमुच्चनीचविधिनैव ।
प्रतिमण्डलाख्यमधुना स्पष्टीकरणं प्रवक्ष्यामि ॥१॥

वि. भा.—इदं (पूर्वोक्तं) ग्रहाणां स्पष्टीकरणम् उच्चनीचविधिनैव (नीचोच्चवृत्तभंगिरीत्यैव) अभिहितं (कथितम्) अधुना (इदानीं) प्रतिमण्डलाख्यं (प्रतिवृत्तसंज्ञकम्) स्पष्टीकरणमर्थात्प्रतिवृत्तभङ्गिद्वारा स्पष्टीकरणं प्रवक्ष्यामि (कथयामि) इति ।

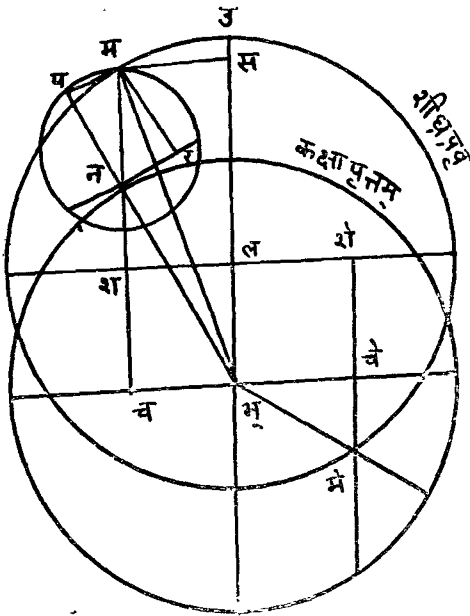
हि. भा.—यह पहले कहे हुए ग्रहों के स्पष्टीकरण नीचोच्चवृत्तभङ्गी की विधि से कहे गये हैं । इस समय प्रतिवृत्त संज्ञक स्पष्टीकरण (प्रतिवृत्तभङ्गि द्वारा स्पष्टीकरण) को कहता हूं ॥१॥

इदानीं नीचोच्चवृत्तव्यासार्धानयनमाह ।

परिधिगुणास्त्रिभजीवा भगणांशविभाजिताऽन्त्यफलजीवा ।
नीचोच्चव्यासदलं शरासनं चास्य परमफलम् ॥२॥

वि. भा.—त्रिभजीवाः (त्रिज्याः) परिधिगुणाः (नीचोच्चवृत्तपरिधिगुणिताः) भगणांशविभाजिताः (चक्रांशभक्ता) तदाऽन्त्यफलजीवा (अन्त्यफलज्या) भवेत्, इति (अन्त्यफलज्या) नीचोच्चव्यासदलं (नीचोच्चवृत्तव्यासार्धम्) भवति, अस्य (नीचोच्चवृत्तव्यासदलस्य) शरासनं (चापं) परमफलं (अन्त्यफलं) भवतीति ॥२॥

शीघ्रप्रतिवृत्ते म = मन्दस्पष्टग्रहः । न = मन्दस्पष्टग्रहः । उ = शीघ्रोच्चम् । भूकेन्द्रादिष्टत्रिज्या व्यासार्धेन (मध्यम-कर्णव्यासार्धेन) वृत्तं कार्यं तत्कक्षवृत्तसंज्ञकम् । तद्वृत्तस्योर्ध्वाधरव्यासरेखायां भूकेन्द्रादुपरि ग्रहस्यान्त्यफलज्या तुल्यं दानं दत्वा तस्माद्दानाग्रबिंदुतो नवत्यंशेन वृत्तं कार्यं तच्छीघ्रप्रतिवृत्तसंज्ञकम् ।



चित्र ६

कक्षाप्रतीयोर्ध्वाधरव्यासरेखा (उच्चरेखा) प्रतिवृत्ते ऊर्ध्वभागे यत्र लगति तत्रैव 'प्रतिवृत्ते उच्चम्' (शीघोच्चम्) अधोभागे सैव रेखा वर्धिता यत्र लगति तत्र नीचम् । भूकेन्द्रात्कक्षावृत्तीयोर्ध्वाधरव्यास रेखोपरि (उच्चरेखोपरि) लम्बरेखा कक्षावृत्तकेन्द्रगतिर्यग्रेखा, एवं प्रतिवृत्तकेन्द्रात्तदुच्चरेखोपरिलम्बरेखा प्रतिवृत्तीयतिर्यग्रेखा, प्रतिवृत्ते म विन्दौ मन्द स्पष्ट ग्रहः । भूउ = उच्चरेखा, म बिन्दुत उच्चरेखायाः समानान्तरा मच रेखा कार्या, सा कक्षावृत्ते न बिन्दौ लग्ना तदा न = मन्दस्पष्टग्रहः, ल = प्रति वृत्तकेन्द्रम् । भूल = शीघ्रान्त्यफलज्या = चश = मन, न बिन्दुं केन्द्रं मत्वा मन व्यासार्धेन यद्वृत्तं तच्छीशीघ्रनीचोच्चवृत्तम् । भूनरेखा कार्या सोर्ध्वभागे वर्धिता तदुपरि म बिन्दुतो यो लम्बस्तदेव शीघ्रभुजफलम् = मप, नप = कोटिफलम् । न बिंदुतो भूनरेखोपरि लम्बरेखा नीचोच्चवृत्तीयतिर्यग्रेखा तदुपरि म विन्दुतो लम्ब = मर = नप = कोटिफल, मस = शीघ्रकेन्द्रज्या सल = मश = शीघ्रकेकोटिज्या । भूनच, नमप त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः $\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीघ्रान्त्यफलज्या}}{\text{त्रि}}$ = शीभुजफलम् । परं $\frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{शीपरिधि}}{\text{भांश}}$

$\therefore \frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भांश}}$ = शीभुजफल । यदा शीघ्रकेन्द्रज्या = त्रि तदा शीशान्त्यफलज्या = शीघ्रभुजफल $\therefore \frac{\text{त्रि} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भांश}}$ = शीघ्रान्त्यफलज्या = शीघ्रनीचोच्चवृत्या$\frac{१}{२}$ अस्याश्चापम् = शीघ्रान्त्यफलम् ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२॥

शीघ्र नीचोच्चवृत्त के व्यासार्धानयन करते हैं ॥ २ ॥

हि॰ भा॰—शीघ्रपरिधिगुणित त्रिज्या को भगणांश से भाग देने से शीघ्रान्त्यफलज्या

होती है वह (शीघ्रान्त्यफलज्या) नीचोच्चवृत्त व्यासार्ध है। इसका चाप अन्त्यफल (परम-फल) है ॥२॥

उपपत्ति

भू केंद्र बिंदु को केंद्र मान कर मध्यमकर्ण व्यासार्ध (त्रिज्या) से जो वृत्त होता है वह कक्षावृत्त संज्ञक है। कक्षावृत्त की ऊर्ध्वाधर व्यास रेखा में भूकेंद्र से ऊपर ग्रह की शीघ्रान्त्यफलज्या तुल्य दान देकर उस बिंदु से त्रिज्याव्यासार्ध से जो वृत्त होता है उसका शीघ्र-प्रतिवृत्त है। कक्षावृत्तीय ऊर्ध्वाधर व्यासरेखा (उच्चरेखा) ऊर्ध्व भाग में प्रतिवृत्त में जहाँ लगती है वह बिंदु प्रतिवृत्त में शीघ्रोच्च है। अधोभाग में वही रेखा जहां लगती है वह बिंदु शीघ्र नीच है। भूकेंद्र से कक्षावृत्तीय ऊर्ध्वाधर व्यास रेखा के ऊपर लम्ब रेखा कक्षा मध्यग तिर्यग्रेखा है। प्रतिवृत्त केंद्र से प्रतिवृत्तीय ऊर्ध्वाधर व्यास के ऊपर लम्ब रेखा प्रतिवृत्त मध्यगतिर्यग्रेखा है। प्रतिवृत्त में म = मंदस्पष्टग्र उ = शीघ्रोच्च। भूउ = उच्चरेखा, म बिंदु से उच्चरेखा की समानांतर रेखा कक्षावृत्त में न बिंदु में लगती है इसलिए न = मंदस्पष्ट ग्रह ल = प्रतिवृत्त केंद्र। भू = भूकेंद्र।

चित्र ६ देखिये, भूल = शीघ्रान्त्यफलज्या = शच = मन, न बिंदु को केंद्र मान कर मन अन्त्यफलज्या व्यासार्ध से जो वृत्त होता है वही शीघ्र नीचोच्च वृत्त कहलाता है। भून रेखा को ऊपर बढ़ा दीजिये उसके ऊपर म बिंदु से लम्ब (मप) कीजिए वह शीघ्र भुजफल है। नप = कोटिफल भून रेखा के ऊपर न बिंदु से जो लम्बरेखा होती है वह शीघ्र नीचोच्चवृत्तीय तिर्यग्रेखा है। इसके ऊपर म बिंदु से लम्ब = मर = नप = कोटिफल। मस = शीघ्रान्त्यफलज्या, सल = मृश = शीकेकोटिज्या मस = शीघ्रकेन्द्रज्या, भूनच। नमप दोनों त्रिभुज सजातीय है इसलिए अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{शीघ्रज्या} \times \text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = शीभुजफल। यदि शीकेज्या = त्रि तदा शीघ्रान्त्य-फज्या = शीभुज

$$\text{परन्तु } \frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{शीपरिधि}}{\text{भांश}} \text{ अतः } \frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीपरीधि}}{\text{भांश}} = \text{शीघ्रभुजफल}$$

$$\therefore \text{शीघ्रान्त्यफलज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भांश}} = \text{शीघ्रनीचोच्चवृत्तव्या}$$

चाप करने से शीघ्रान्त्यफल (परमफल) होता है।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

इदानीं कर्णानयनमाह

मृगकर्यादौ केन्द्रे कोट्यन्त्यफलज्ययोर्युतिविशेषः।
तद्बाहुज्या कृत्योः समासमूलं श्रुतिर्भवति ॥३॥

वि. भा.—मृगकर्यादौ केन्द्रे (मकरादिकर्यादिकेन्द्रे) कोट्यन्त्यफलज्ययो-र्युतिविशेषः (शीघ्रकेन्द्रकोटिज्याऽन्त्यफलज्ययोर्योगोऽन्तरं) स्पष्टा कोटिः, तद्बा-

हुज्या कृत्योः समासमूलं (स्पष्टाकोटिभुजज्ययो वर्गयोगमूलं) श्रुतिः (कर्णः) भवति ॥

अस्योपपत्तिः ।

अत्र पूर्वश्लोकोपपत्तौ प्रदर्शितं नवमचित्रं द्रष्टव्यम् । मकरादिकेन्द्रे मश = केन्द्रकोटिज्या, शच = अन्त्यफलज्या ∴ मश + शच = मच = स्पष्टा कोटिः = केन्द्रकोज्या + अन्त्यफलज्या = भूस, मस = केन्द्रज्या भूम = कर्णः ।

भूस^2 + मस^2 = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = भूम^2 = कर्ण^2 ∴ $\sqrt{\text{स्पको}^2 + \text{केन्द्रज्या}^2}$ = कर्ण कर्क्यादिकेन्द्रे म′ श′ = केन्द्रकोटिज्या, श′ च′ = अन्त्यफलज्या, भूम′ = कर्ण, भूच′ = केन्द्रज्या म′ श′ — श′ च′ = म′ च′ = केन्द्रकोटिज्या — अन्त्यफलज्या = स्पष्टा कोटिः । ततः म′ च′^{2} + भूच′^{2} = भूम′^{2} = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = कर्ण^2 ∴ मूलेन

$\sqrt{\text{स्पकोटि}^2 - \text{अन्त्यफज्य}^2}$ = कर्णः ।

अतः सिद्धम् ॥ ३ ॥

कर्णानयन करते हैं

हि. भा.—मकरादि केन्द्र में और कर्क्यादि केन्द्र में शीघ्रकेन्द्र कोटिज्या और अन्त्यफलज्या के योग और अन्तर करने से स्पष्टकोटि होती है । स्पष्टकोटि और केन्द्रज्या के वर्गयोग मूल लेने से कर्ण होता है ॥ ३ ॥

उपपत्ति

इससे पहले श्लोक की उपपत्ति में लिखित नवें चित्र को देखिये । मकरादि में मश = केन्द्रकोटिज्या, शच = अन्त्यफलज्या ∴ मश + शच = म च = स्पष्टा कोटि = केन्द्रकोज्या + अं फलज्या = भूस, मस = केन्द्रज्या ।

भूस^2 + मस^2 = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = भूम^2 = कर्ण^2 मूल लेने से

$\sqrt{\text{स्पकोटि}^2 + \text{केन्द्रज्या}^2}$ = कर्ण । भूम = कर्ण

कर्क्यादि केन्द्र में म′ श′ = केन्द्रकोटिज्या, श′च′ = अन्त्यफलज्या, भूम′ = कर्ण भूच′ = केन्द्रज्या, म′ श′ — श′च′ = म′ च′ = केन्द्रकोज्या — अन्त्यफज्या = स्पष्टा कोटि ∴ म′ च′^{2} + भूच′^{2} = भूम′^{2} = स्पकोटि^{2} + केन्द्रज्या^{2} = कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{\text{स्पकोटि}^2 + \text{केज्या}^2}$ = कर्ण अतः सिद्ध हो गया ॥ ३ ॥

पुनः कर्णानयनमाह ।

स्फुटकोटिकोटिज्याकृतिविवरात् त्रिगुणवर्गसंयुक्तात् ।
मूलं कर्णो वा स्याद् विनैव चलकेन्द्रबाहुज्याम् ॥ ४ ॥
तद्योगान्तरघातत्रिज्याकृतियोगमूलं यत् ।
मृगमुखशशिभवनादौ कर्णौ वा स्याद् विनैव बाहुज्याम् ॥५ ॥

वि. भा.—स्फुटकोटिकोटिज्याकृतिविवरात् (स्पष्टकोटिकेन्द्रकोटिज्ययोर्वर्गान्तरात्) त्रिगुणवर्गसंयुक्तात् (त्रिज्यावर्गयुतात्) मूलं वा चलकेन्द्रबाहुज्यां (शीघ्रकेन्द्रज्यां) विनैव कर्णो भवेदिति ।। ४ ।।

तद्योगान्तरघातत्रिज्याकृतियोगमूलं यत् (स्पष्टकोटिकेन्द्रकोटिज्ययोर्योगान्तरघातयुतत्रिज्यावर्गस्य मूलं यत्) मृगमुखशशिभवनादौ (मकरादिकर्क्यादिकेन्द्रे) बाहुज्यां (केन्द्रज्यां) विनैव वा कर्णः स्यादिति ।। ५ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अथ स्पष्टकोटि^{2}—केन्द्रकोज्या^{2} + त्रि^{2} = स्पष्टको^{2} + त्रि^{2}—केकोज्या^{2} स्पष्टको^{2} + केज्या^{2} = कर्ण^2 मूलेन $\sqrt{\text{स्पको}^2 - \text{के कोज्या}^2 + \text{त्रि}^2}$ = कर्ण ।

स्पष्टको^{2}—केन्द्रकोज्या^{2} + त्रि^{2} = कर्ण^2 प्रथमखण्डे वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् (स्पष्टको + केकोज्या) (स्पको—केकोज्या) + त्रि^{2} = कर्ण^2 मूलग्रहणेन $\sqrt{(\text{स्पष्टको} + \text{केकोज्या})(\text{स्पष्टको} - \text{केकोज्या}) + \text{त्रि}^2}$ कर्ण, अत्र प्रकारद्वये "विनैव बाहुज्याम्" यत्कथ्यते तत्समीचीनं नास्ति तत्र प्रत्यक्षमेव केन्द्रज्या वर्गोऽस्त्येवेति ।। ४-५ ।।

पुनः कर्णानयन करते हैं

हि. भा.—स्पष्ट कोटि और केन्द्र कोटिज्या के वर्गान्तर में त्रिज्यावर्ग जोड़कर मूल लेने से केन्द्रज्या बिना ही कर्ण होता है। वा स्पष्ट कोटि और केन्द्र कोटिज्या के योगान्तर घात में त्रिज्या वर्ग जोड़कर मूल लेने से मकरादिकेन्द्र और कर्क्यादि केन्द्र में कर्ण होता है ।। ४-५ ।।

उपपत्ति

स्पष्टकोटि^{2}–केन्द्रकोज्या^{2} + त्रि^{2} = स्पष्टको^{2} + त्रि^{2}—केकोज्या^{2} = स्पष्टको^{2} + केज्या^{2} = कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{\text{स्पष्टको}^2 - \text{केकोज्या}^2 + \text{त्रि}^2}$ = कर्ण

तथा स्पष्टको^{2}—केकोज्या^{2} + त्रि^{2} = कर्ण^2 प्रथमखण्ड में वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इस नियम से (स्पको + केकोज्या) (स्पको—केकोज्या) + त्रि^{2} = कर्ण^2 मूल लेने से $\sqrt{(\text{स्पको} + \text{केकोज्या})(\text{स्पको} - \text{केकोज्या}) + \text{त्रि}^2}$ = कर्ण, यहां दोनों प्रकार में "विनैव बाहुज्याम्" जो कहते हैं सो ठीक नहीं हैं, वहां प्रत्यक्ष केन्द्रज्या वर्ग देखने में आता हैं। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।। ४-५ ।।

पुनः कर्णानयनमाह ।

द्विघ्नाग्रज्याऽभ्यस्ता परमफलज्या मृगादिके योज्या ।
त्रिज्या परफलमौर्व्योः कृतियोगे कर्कटादिके शोध्या ।। ६ ।।
केन्द्रे तस्मान्मूलं कर्णो वा स्याद् विनैव बाहुज्याम् ।

वि. भा.—मृगादिके केन्द्रे (मकरादिकेन्द्रे) द्विघ्नाग्रज्याऽभ्यस्ता परमफलज्या द्विगुणितकेन्द्रकोज्यागुणिताऽन्त्यफलज्या) त्रिज्या परफलमौर्व्यो: कृतियोगे (त्रिज्याऽन्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगे) योज्या (सहिता) कर्कटादिके केन्द्रे (कर्क्यादिकेन्द्रे) शोध्या तस्मान्मूलं वा बाहुज्यां (केन्द्रज्यां) विनैव कर्णो भवेदिति ।।

अस्योपपत्ति:

अथ पूर्वं सिद्धं यत् स्पष्टको^{2}+केज्या^{2}=कर्ण^2 । परं मकरादिकर्क्यादिकेन्द्रवशात् केकोज्या±अन्त्यफलज्या=स्पष्टाको

अत: (केकोज्या±अन्त्यफज्या)^2+केन्द्रज्या^{2}= कर्ण^2
=केकोज्या^{2}±२ केकोज्या. अंफज्या+अंफज्या^{2}+केज्या^{2}
=त्रि^{2}+अंफज्या^{2}±२ केकोज्या. अंफज्या=कर्ण^2 मूलग्रहणेन
$\sqrt{\text{त्रि}^2+\text{अंफज्या}^2\pm\text{२ केकोज्या. अंफज्या}}$=कर्ण: । अत उपपन्नम् ।।६।।

पुन: कर्णानयन करते हैं।

हि. भा.—मकरादि केन्द्र द्विगुणित केन्द्र कोटिज्या गुणित अन्त्यफलज्या को त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के वर्ग योग में जोड़ने से और कर्क्यादिकेन्द्र में घटाने से मूल लेने पर केन्द्रज्या विना ही कर्ण होता है ।।

उपपत्ति ।

पहले सिद्ध हो चुका है कि स्पष्ट को^{2}+केन्द्रज्या^{2}=कर्ण^2 इसलिए उत्थान देने से स्पष्टा को^{2}+केज्या^{2}=

परंतु मकरादि और कर्क्यादि केन्द्रवश से केकोज्या±अन्त्यफज्या=स्पष्टा को

(केकोज्या±अन्त्यफज्या)^2+केज्या^{2}=केकोज्या^{2}±२ केकोज्या. अंफज्या+अंफज्या^{2} +केज्या^{2}=त्रि^{2}+अंफज्या^{2}±२ केकोज्या. अंफज्या=कर्ण^2 मूल लेने से

$\sqrt{\text{त्रि}^2+\text{अंफज्या}^2\pm\text{२ केकोज्या. अंफज्या}}$=कर्ण इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।६।।

इदानीं कर्णसम्बन्धेन केन्द्रकोटिज्यानयनमाह ।

त्रिज्यान्त्यफलज्याकृत्युत्या श्रवणवर्गविवरं यत् ।।७।।
तद्दलितं प्रविभक्तं परफलमौर्व्याथ कोटिजीवा स्यात् ।
अपरेष्टश्रुतियोगात्तद्विवरघ्नात्पदं वा स्यात् ।।८।।

वि. भा.—त्रिज्यान्त्यफलज्याकृतियुत्या (त्रिज्याऽन्त्यफलज्ययोर्वर्गयोगेन) श्रवणवर्गविवरं यत् (कर्णवर्गस्य यदन्तरं) तद्दलितं (द्वाभ्यां भक्तं) परफलमौर्व्या विभक्तं (अन्त्यफलज्यया भक्तं) तदा कोटिजीवा (केन्द्रकोटिज्या) स्यात् । अपरेष्टश्रुतियोगात् केन्द्रज्याकर्णयोगात्) तद्विवरघ्नात् केन्द्रज्याकर्णयोरन्तरगुणितात्) पदं (मूलं) वा कोटिजीवा स्यादिति ।।८।।

अत्रोपपत्तिः ।

पूर्वानीतकर्णवर्गस्वरूपम् $=$ त्रि^{2} $+$ अंफज्या^{2} $\pm$ केकोज्या. अंफज्या $=$ कर्ण^2 तथा कर्ण^2 $-$ (त्रि^{2} $+$ अंफज्या^{2}) $=$ त्रि^{2} $+$ अंफज्या^{2} $\pm$ २ केकोज्या. अंफज्या $-$ (त्रि^{2} $+$ अंफ^2) $=$ त्रि^{2} $+$ अंफज्या^{2} $\pm$ २ केकोज्या. अंफज्या $-$ त्रि^{2} $-$ अंफज्या^{2} $=$ २ केकोज्या. अंफज्या $\therefore$ (२ अंफज्या) भक्तेन $\frac{\text{२ केकोज्या. अंफज्या}}{\text{२ अंफज्या}}$ $=$ केकोज्या

अथवा कर्ण^2 $-$ केज्या^{2} $=$ स्पको^{2} वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् (कर्ण $+$ केज्या) (कर्ण $-$ केज्या) $=$ स्पको^{2} मूलेन स्पष्टकोटिः । परमियं स्पष्टा कोटिः । पूर्वं केन्द्रकोटिज्यामानमानीतमेतद्द्वयं समं नास्त्यत आचार्येण "पदं वा स्यात्" यत्कथ्यते तत्समीचीनं न प्रतिभाति, 'वा' इति प्रकारान्तरद्योतकः ॥७-८॥

कर्ण से केन्द्रकोटिज्यानयन करते हैं ।

हि. भा.—कर्ण वर्ग और त्रिज्या, अन्त्यफलज्या के वर्गयोगान्तर को दो और अंत्यफलज्या से भाग देने से केंद्र कोटिज्या होती है । अथवा कर्ण और केंद्रज्या के योगांतर घात के मूल लेने से केंद्र कोटिज्या होती है ॥ ७-८ ॥

उपपत्तिः ।

पूर्वानीत कर्ण वर्ग $=$ त्रि^{2} $+$ अंफज्या^{2} $\pm$ केकोज्या. अंफज्या इसको त्रि^{2} $+$ अंफज्या^{2} इसके साथ अंतर करने से $\pm$ २ केकोज्या. अंफज्या इसमें (२ अंफज्या) से भाग देने से केकोज्या होती है । अथवा कर्ण^2 $-$ केंद्रज्या^{2} $=$ स्पष्टको वर्गांतर योगांतर घात के बराबर होता है । इस नियम से (कर्ण $+$ केज्या) (कर्ण $-$ केज्या) $=$ स्पको^{2} मूल लेने से स्पष्टकोटि होती है । यह स्पष्टा कोटि पूर्वानीत केंद्रकोटिज्या के बराबर नहीं है इसलिए पद्य में (पदं वा स्यात्) यह ठीक नहीं मालूम होता है । (वा) यह प्रकारांतरसूचक है इति ॥८॥

पुनस्तदानयनद्वयमाह ।

कोटिभुजांतरनिघ्नो भुजाग्रयोगोद्भवस्तदूनयुते ।
कोटिभुजकृती द्विघ्ने तन्मूले स्तोऽथवा श्रवणौ ॥९॥

वि. भा—भुजाग्रयोगोद्भवः (भुजकोटियोगोत्पन्नः) कोटिभुजान्तरनिघ्नः (कोटिभुजान्तरगुणितः) द्विघ्ने (द्विगुणिते) कोटिभुजकृती (कोटिभुजवर्गौ) तदूनयुते (तेन फलेन रहितसहिते) कार्ये तन्मूले अथवा श्रवणौ (कर्णौ) भवेतामिति ॥९॥

अत्रोपपत्तिः ।

श्लोकोक्त्या को $-$ भु $=$ अन्तरम् । को $+$ भु $=$ योगः

अन्तर $\times$ योग $=$ (को $-$ भु) (को $+$ भु) $=$ को^{2} $-$ भु^{2} एतेन द्विगुणित भुजकोटिवर्गौ पृथक् युतोनौ तदा २ भु^{2} $+$ को^{2} $-$ भु^{2} $=$ भु^{2} $+$ को^{2} $=$ क^2 मूलेन कर्णः

स्यात् तथा २ $को^2$—($को^2$—$भु^2$)—२$को^2$ = $को^2$+$भु^2$ = $को^2$+$भु^2$ = $क^2$ मूलेन कर्णो भवेदिति। अत्र को=स्पष्टा कोटिः। भु = भुजज्या = केन्द्र ज्या।

अत उपपन्नम् ॥९॥

पुनः दो प्रकार से कर्णानयन करते हैं।

हि. भा.—भुज और कोटि के योग को कोटिभुज के अन्तर से गुणाकर जो हो उसको द्विगुणित भुजवर्ग और द्विगुणित कोटिवर्ग में घटाने और जोड़ने से उनके मूल लेने से दो प्रकार के कर्ण होते हैं ॥९॥

उपपत्ति

श्लोक के अनुसार

को—भु = अन्तर। को+भु = योग

∴ योग × अन्तर = (को+भु) (को—भु) = $को^2$ — $भु^2$ इसको द्विगुणितभुजवर्ग और द्विगुणित कोटिवर्ग में जोड़ने और घटाने से

२ $भु^2$+$को^2$—$भु^2$ = $भु^2$+$को^2$ = $कर्ण^2$ मूल लेने से $\sqrt{भु^2+को^2}$ = कर्ण

तथा २ $को^2$ — ($को^2$—$भु^2$) = २ $को^2$—$को^2$+$भु^2$ = $को^2$+$भु^2$ = कर्ण मूल लेने से

$\sqrt{को^2+भु^2}$ = कर्ण। यहां को = स्पष्टा कोटि, भु = भुजज्या = केन्द्रज्या.

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥९॥

पुनः प्रकारत्रयेण तदानयनमाह.।

निजयुतिहतभुजकोट्यौ कोटिभुजे स्वान्तराहते स्वमृणम्।
मूले श्रुती द्विगुणिताद् वधात्पदं वाऽन्तरकृतियुतात् ॥१०॥

वि. भा.—निजयुतिहतभुजकोट्यौ (भुजकोटियोगगुणितभुजकोटिप्रमाणे) स्वान्तराहते (स्वकीयान्तर (भुजकोट्यन्तर) गुणिते) कोटिभुजे स्वमृणं (धनं हीनं) मूले तदा श्रुती (कर्णौ) भवतः। वा अन्तरकृतियुतात् (भुजकोट्यन्तर वर्गयुतात्) द्विगुणिताद् वधात् (द्विगुणितभुजकोटिघातात्) पदं मूलं कर्णः स्यादिति ॥१०॥

अत्रोपपत्तिः।

श्लोकोक्त्या

भु (भु+को) = $भु^2$+भु. को

को (को—भु) = $को^2$—को. भु

ततोऽनयोर्योगेन $भु^2$+भु. को+$को^2$—को. भु = $भु^2$+$को^2$ = $कर्ण^2$

मूलेन $\sqrt{भु^2+को^2}$ = कर्ण

को (भु+को) = को. भु+$को^2$

भु (को—भु) = भु. को—$भु^2$

अनयोरन्तरेण

को. भु+$को^2$—भु. को+$भु^2$ = $को^2$+$भु^2$ = $कर्ण^2$

मूलेन $\sqrt{को^2+भु^2}$ = कर्ण

तथा द्विगुणिताद्वधादित्याद्यनुसारेण २ भु. को $+$ (को $-$ भु)$^२ =$ २भु. को $+$ को$^२ -$ २ भु. को $+$ भु$^२ =$ को$^२ +$ भु$^२ =$ कर्ण^२

मूलेन $\sqrt{को^२ + भु^२} =$ कर्ण । अत्रापि को $=$ स्पष्टा कोटिः ।
भु $=$ केन्द्रज्या

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१०॥

पुनः तीन प्रकार से कर्णानयन करते हैं ।

हि. भा.—भुज और कोटि के योग से गुणित भुज और कोटि में अन्तर (भुज कोटि के अन्तर) गुणित कोटि और भुज को जोड़ने और घटाने से जो होते हैं उनके मूल लेने से दो प्रकार के कर्ण होते हैं । अथवा भुज और कोटि के अन्तर वर्ग करके युत द्विगुणित भुज और कोटि के घात के मूल कर्ण होता है ॥१०॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार

भु (भु $+$ को) $=$ भु$^२ +$ भु. को

को (को $-$ भु) $=$ को$^२ -$ को. भु

दोनों के योग करने से

भु$^२ +$ भु. को $+$ को$^२ -$ को. भु $=$ भु$^२ +$ को^{२}

$=$ कर्ण^२ मूल लेने से $\sqrt{भु^२ + को^२} =$ कर्ण

को (भु $+$ को) $=$ को. भु $+$ को^{२}

भु (को $-$ भु) $=$ को. भु $-$ भु^{२}

दोनों के अन्तर करने से

को. भु $+$ को$^२ -$ को. भु $+$ भु$^२ =$ को$^२ +$ भु^{२}

$=$ कर्ण^२

मूल लेने से $\sqrt{को^२ + भु^२} =$ कर्ण

तथा "द्विगुणिताद्वधात्पदम्" इत्यादि के अनुसार

२भु. को $+$ (को $-$ भु)$^२ =$ २ भु. को $+$ को$^२ -$ २ को. भु $+$ भु$^२ =$ को$^२ +$ भु$^२ =$ कर्ण^२

मूल लेने से $\sqrt{को^२ + भु^२} =$ कर्ण

को $=$ स्पष्टा कोटि । भु $=$ केन्द्रज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०॥

इदानीं कर्णानयनमुक्त्वा ग्रहमध्यमसंस्कारार्थमाह ।

त्रिज्याहता भुजज्या कर्णहृता तस्य कार्मुकं तु फलम् ।
देयं मध्ये शोध्यं शीघ्रोच्चे स्यात्स्फुटो द्युचरः ॥११॥

वि. भा.—भुजज्या (शीघ्रकेन्द्रज्या) त्रिज्याहता (त्रिज्यागुणिता) कर्णहृता (कर्णभक्ता) यत्फलं तस्य कार्मुकं (चापं) मध्ये (मन्दोच्चे) देयं (योज्यं) शीघ्रोच्चे शोध्यं तदा स्फुटः द्युचरः (ग्रहः) स्यादिति ॥११॥

यदि मन्दस्फुटं चिकीर्षितं तदा मन्दकेन्द्रवशेन पूर्ववद्भुजज्याकोटिज्ये साध्ये ततः कोट्यन्त्यफलज्ययोरैक्यान्तरं स्फुटा कोटिः कार्या तद्वर्गभुजज्या वर्गयोर्योगमूलं मन्दकर्णः स्यात् ततस्त्रिज्यां स्वकेन्द्रभुजज्यया संगुण्य पूर्वोक्तकर्णेन भक्ता फलस्य चापं यदि प्रथमपदे केन्द्रं तदा स्वमन्दोच्चे योजयेत् । यतस्तावदेव

मन्दोच्चमन्दस्फुटयोरन्तरं तदा मन्दोच्चं मन्दस्फुटसमं भवति । द्वितीयपदे केन्द्रं चेत्तदा लब्धचापं चक्रार्धाद्विशोध्य शिष्टं मन्दोच्चे योजयेत् । यतस्तावदन्तरं मन्दोच्चमन्दस्फुटयोस्तदा मन्दोच्चमन्दस्फुटौ तुल्यो भवतः । तृतीयपदे केन्द्रं चेत्तदा राशिषट्कं तत्र योजयेत् मन्दोच्चमन्दस्फुटयोस्तावदन्तरत्वात्, ततश्च तौ समौ स्याताम् चतुर्थपदे चेत्केन्द्रं तदा चक्राद् विशोध्य शेषं मन्दोच्चमन्दस्फुटयोरन्तरं तन्मन्दोच्चे योजयेत्तदा मन्दोच्चं मन्दस्फुटसमं भवेत् ।

अथ शीघ्रस्फुटं चिकीर्षितं तदा शीघ्रकेन्द्रात् शीघ्रोपकरणैः कर्णमानीय तेन शीघ्रकेन्द्रज्यां संगुण्य त्रिज्यया विभज्य लब्धस्य चापं शीघ्रकेन्द्रं प्रथमपदे चेत् शीघ्राच्चाद् विशोधयेत् तदा शीघ्रोच्चं शीघ्रस्फुटसम स्यात् यतस्तावत्तयोरन्तरम् । द्वितीयपदे केन्द्रं चेत् लब्धचापं चक्रार्धाद् विशोध्यं शीघ्रोच्चात्त्यजेत् तदा तौ समौ भवेताम् । तृतीयपदे केन्द्रं चेत्तदा तयोस्तुल्यत्वं भवेत् । चतुर्थे पदे केन्द्रं चेल्लब्धचापं चक्राद्विशोध्यशेषं शीघ्रो चाद् विशोधयेत्तदा तयोस्तुल्यत्वं भवेदिति ॥११॥

कर्णानयन कहकर ग्रहमध्यम संस्कारार्थ कहते हैं ।

हि॰ भा॰—भुजज्या को त्रिज्या से गुणकर कर्ण से भाग देने पर जो फल होता है उसके चाप को मन्दोच्च में जोड़ने से शीघ्रोच्च में घटाने से स्पष्टग्रह होते हैं ॥११॥

उपपत्ति

यदि मन्दस्पष्ट ग्रह अपेक्षित हो तब मन्दकेन्द्रवश से पूर्ववत् भुजज्या, कोटिज्या करके तब केन्द्रकोटिज्या और अन्त्यफलज्या के योगान्तर रूप स्पष्टकोटि, तथा भुजज्या के वर्ग योगमूल कर्ण होता है, तब त्रिज्या को केन्द्रज्या से गुणकर पूर्वोक्त कर्ण से भाग देने से जो फल होता है उसके चापको यदि केन्द्र प्रथम पद में है तो स्वमन्दोच्च में जोड़ देना, क्योंकि मन्दोच्च और मन्दस्पष्ट का अन्तर उतना ही है तब मन्दोच्च मन्दस्पष्ट बराबर होता है । द्वितीयपद में केन्द्र रहने से लब्धचाप को चक्रार्ध (६ राशि) में घटा कर जो शेष रहता है उसको मन्दोच्च में जोड़ना चाहिये । तृतीय पद में केन्द्र रहने से उसमें छः राशि जोड़ना चाहिये क्योंकि मन्दोच्च और मन्दस्पष्ट का अन्तर वहां छःराशि चतुर्थ पद में केन्द्र रहने से चक्र (१२ राशि) में घटा देने से शेद मन्दोच्च और मन्द स्फुट ग्रह को अन्तर होता है उसको मन्दोच्च में जोड़ने से मन्दस्फुट होता है ॥

यदि शीघ्र स्फुट अपेक्षित है तो शीघ्रकेन्द्र से शीघ्रकर्णोपययुक्त सामग्रियों द्वारा कर्ण साधन कर उससे शीघ्रकेन्द्रज्या को गुणकर त्रिज्या से भाग देने से जो फल होता है उसके चाप स्पष्टकेन्द्र होता है । प्रथम पद में शीघ्रकेन्द्र रहने से लब्धचाप को शीघ्रोच्च में घटा देना तब शीघ्रोच्च और शीघ्र स्फुट बराबर होगे । द्वितीय पद में शीघ्र केन्द्र रहने से पूर्वानीत लब्ध चाप को छः राशि में घटा देने से जो शेष रहता है उसको शीघ्रोच्च में घटा देना चाहिए । तब वे दोनों बराबर होगे । तृतीय पद में शीघ्र केन्द्र रहने से शीघ्रोच्च में छः राशि को घटाने से दोनों की तुल्यता होती हैं । चतुर्थ पद में शीघ्र केन्द्र रहने से आनीत लब्ध चाप को

बारह राशि में घटा कर जो शेष रहे उसको शीघ्रोच्च में घटाना चाहिये तब दोनों की तुल्यता होती है ।।११।।

इदानीं देयं मध्ये शोध्यमित्यादेः स्पष्टीकरणमाह ।

अविकृतः प्रथमे चरणे भगणदलाच्छोधितं द्वितीयेऽस्मिन् ।
षड्गृहयुतं तृतीये भगणाच्छुद्धं चतुर्थपदे ।।१२।।

वि. भा.—प्रथमचरणे अविकृत एवार्थात् यथागतमेव बोध्यम् । द्वितीयेऽस्मिन् पादे भगणदलात् (शशिषट्कात्) त्रिज्याहरा भुजज्येत्यादिनाऽऽनीतफलचापं शोधितं तृतीयपादे षड्गृहयुतं (षड्राशियुतं) चतुर्थपदे भगणाच्छुद्धं (द्वादशराशितः शुद्धं) कार्यमिति ।।

एतस्य सर्वे विषयाः पूर्वश्लोकभाष्ये विशदरूपेण वर्णिताः सन्ति, तत एव ज्ञातव्याः ।।१२।।

अब 'देयं मध्येशोध्यं' इत्यादि का स्पष्टीकरण कहते हैं ।

हि. भा.—पूर्व श्लोक से समागत चाप प्रथम पद में ज्यों का त्यों होता है, द्वितीय पद में छः राशि में घटाना चाहिये, तृतीय पद में छः राशि जोड़ना और चतुर्थ पद में बारह राशि में घटाना चाहिये ।

इसके विषय में सब बातें पूर्वश्लोक के भांष्य में विशद रूप से कहीं गई हैं इसलिए वहीं से जाननी चाहियें ।।१२।।

इदानीं पदज्ञानार्थमाह ।

अग्न्यान्त्यफलज्यातो यदि पतति तदा प्रथमचरणे ।
सैवाग्राज्या ततश्चेत्पतति तदा मध्यमे ज्ञेयः ।।१३।।
मध्यपदे वा परफलरहिते तथाऽधिके शेषे ।
पदसंज्ञाश्चामीभिः फलावगतिरुत्तरत्रान्यत् ।।१४।।

स्पष्टार्थौ ।।

इदानीं ग्रहस्पष्टगतेरानयनमाह ।

निजफलभोज्यज्याघ्नी केन्द्रगतिश्चाद्यजीवया भक्ता ।
त्रिज्याघ्नी कर्णहृता लब्धेनोनास्वशीघ्रमन्दगतिः ।। १५ ।।
स्पष्टा भुक्तिर्द्युसदां विपरीतविशोधनाच्च वक्रत्वम् ।
नीचासन्ने ज्ञेया विलोमगतिसम्भावना विज्ञैः ।। १६ ।।

वि. भा.—केन्द्रगतिः (शीघ्रकेन्द्रगतिः) निजफलभोज्यज्याघ्नी (निजफलभोज्यज्यया ग्रहस्य स्फुटीक्रियमाणस्य यच्छीघ्रफलं भवति तस्य फलज्यायां क्रियमाणायां यद् ज्यान्तरं सा फलभोज्यज्या तया गुणिता) आद्यजीवया (प्रथम-

ज्यया) भक्ता, सा त्रिज्याघ्नी (त्रिज्यया गुणिता) कर्णहृता (कर्णेनभक्ता) लब्धेन ऊना (रहिता) स्वशीघ्रतुङ्गगतिः (शीघ्रोच्चगतिः) तदा द्युसदां (ग्रहाणां) स्पष्टा-भुक्तिः (स्पष्टा गतिः) भवेत् । विपरीतशोधनात् (शीघ्रोच्चगतिरहिताल्लब्धात्) वक्रत्वं (वक्रता) भवेत् । नीचासन्ने (नीचसमीपे द्वितीयपदे) विलोमगतिसम्भा-वना (वक्रगतिसम्भावना) विज्ञैर्ज्ञेयेति ॥ इयमेवोपपत्तिर्मन्दस्पष्टगत्यानयनेऽपि केवलं केन्द्रगतिकर्णयोः पार्थक्यमस्ति तत्स्थाने तत्केन्द्रगतिः कर्णश्च ग्राह्य इति ॥ १५-१६ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

$$\text{अथ } \frac{\text{शीकेन्द्रज्या.त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्पकेज्या । एवं } \frac{\text{शी}'\text{केज्या.त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्प}'\text{केज्या}$$

अनयोरन्तरेण

$$\frac{\text{त्रि (शी}'\text{केज्या} \sim \text{शीकेज्या)}}{\text{शीक}} = \text{स्प}'\text{केज्या} \sim \text{स्पकेज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{शीघ्रकेज्यान्तर}}{\text{शीक}}$$

$$\text{परन्तु } \frac{\text{स्पभोखं} \times \text{शीकेग}}{\text{प्रज्या}} = \text{शीकेग संज्यावृद्धि} = \text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}$$

तत उत्थापनेन

$$\frac{\text{त्रि. स्पभोखं.शीकेग}}{\text{प्रज्या.शीक}} = \text{स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर} = \text{स्पष्टकेन्द्रान्तर} = \text{स्पष्टकेन्द्रगति}$$

(स्वल्पान्तरात्)

$$\begin{array}{l}\text{शीउ} \pm \text{स्पग्र} = \text{स्पष्टके} \\ \text{शीउ}' \pm \text{स्प}'\text{ग्र} = \text{स्प}'\text{के}\end{array} \text{ अनयोरन्तरेण शीउग} - \text{स्पष्टग्रग} = \text{स्पकेग}$$

$$\text{ततः शीउग} - \text{स्पष्टकेग} = \text{स्पग्रग} = \text{शीउग} - \frac{\text{त्रि. स्पभोखं.शीकेग}}{\text{प्रज्या. शीक}}$$

यदि च शीघ्रोच्चगतिमाने स्पष्टकेन्द्रगतिर्न शुद्ध्येत्तदा विलोमशोधनेन स्पष्टा गतिः क्षयात्मिका भवेत्सैव वक्रगतिः ॥ पूर्वानीतस्पष्टकेन्द्रगतिस्वरूपे हरे शीघ्रकर्णोऽस्ति तेन शीघ्रकर्णस्यं परमाल्पत्वे स्पष्टकेन्द्रगतेराधिक्याच्छीघ्रोच्चगतितोऽधिकत्वसम्भा-वनायां ग्रहस्फुटगते विलोमदिक्त्वाद् वक्रता, युक्ता, परमियं स्थितिर्नीचासन्ने द्वितीयपदे भवेदत आचार्योक्तमुपपन्नम् । आचार्योक्तस्पष्टकेन्द्रगतेरानयनं न समीचीनमिति तदुपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटम् । सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽपि ग्रहस्प-ष्टकेन्द्रगतिसाधनं समीचीनं न कृतं, भास्कराचार्येण सिद्धान्तशिरोमणौ 'फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी' - त्यादिना समीचीनं स्पष्टकेन्द्रगतिसाधनं कृतमिति ॥ १५-१६ ॥

अब ग्रहों के स्पष्टगत्यानयन करते हैं ।

हि. भा.—शीघ्रकेन्द्रगति को भोग्यखण्ड (स्पष्टभोग्यखण्ड से) गुणाकर प्रथमज्या से भाग देना, जो फल हो उसको त्रिज्या से गुणाकर कर्ण से भाग देने से जो फल हो उसको

शीघ्रकेन्द्रगति में घटा देने से ग्रहों की स्पष्टगति होती है। विलोमशोधन से अर्थात् शीघ्रोच्च-गति आनीतफल (स्पष्ट केन्द्रगति) में घटाने से वक्रगति होती है। विपरीतगति की सम्भावना नीच के आसन्न में समझनी चाहिये ॥ १४-१५ ॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{शीकेज्या.त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्पकेज्या । तथा} \quad \frac{\text{शी}'\text{केज्या.त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्प}'\text{केज्या}$$

दोनों के अन्तर करने से

$$\frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}(\text{शी}'\text{केज्या} \sim \text{शीकेज्या}) = \frac{\text{त्रि} \times \text{शीकेज्यान्तर}}{\text{शीक}} = \text{स्प}'\text{केज्या} \sim \text{स्पकेज्या}$$

$$\text{परन्तु} \quad \frac{\text{स्पभोखं.शीकेग}}{\text{प्रज्या}} = \text{शीघ्रकेगतिसं ज्यावृद्धि} = \text{शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर}$$

उत्थापन देने से

$$\frac{\text{त्रि. स्पभोख.शीकेग}}{\text{प्रज्या.शीक}} = \text{स्प}'\text{केज्या} \sim \text{स्पकेज्या} = \text{स्प}'\text{के} \sim \text{स्पके} = \text{स्पष्टकेन्द्रगति}$$

(स्वल्पान्तर से)

$$\begin{matrix}\text{शीउ} \pm \text{स्पष्टग्र} = \text{स्पष्टके} \\ \text{शीउ}' \pm \text{स्प}'\text{ष्टग्र} = \text{स्प}'\text{के}\end{matrix} \quad \text{द्वयोरन्तरेण}$$

$$\text{शीउग} - \text{स्पग} = \text{स्पकेग} \therefore \text{शीउग} - \text{स्पकेग} = \text{स्पग}$$

$$= \text{शीउग} - \frac{\text{त्रि. स्पभोखं. शीकेग}}{\text{प्रज्या.शीक}} = \text{स्पग}$$

यदि शीघ्रोच्चगति में स्पष्ट केन्द्रगति न घटे तब विलोम शोधन से ऋणात्मक स्पष्ट-गति होती है वही वक्रगति है। पहले लाई हुई स्पष्ट केन्द्रगति स्वरूप में हर में जो शीघ्रकर्ण है उसका मान जब परमाल्प होगा (नीचस्थान में) तब स्पष्टकेन्द्रगति के मान अधिक होने के कारण शीघ्रोच्चगति में न घटे इसकी सम्भावना हो सकती है अतः वहीं पर (नीचा-सन्न में क्योंकि कर्ण नीच स्थान से पहले से घटते घटते नीच स्थान में परमाल्प हो जाता है) ग्रह की वक्रता होना युक्तियुक्त है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ। आचार्योक्त स्पष्ट केन्द्र गति को आनयन ठीक नहीं है यह स्पष्ट केन्द्रगति के आनयन देखने ही से स्पष्ट है। सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी स्पष्टकेन्द्रगति के साधन ठीक नहीं किये हैं। सिद्धांत-शिरोमणि में भास्कराचार्य ने 'फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी' इत्यादि से उसका साधन युक्ति-युक्त किया है। यही उपपत्ति मन्द स्पष्ट गति के लिए भी है केवल केन्द्रगति और कर्ण के स्थान पर तत्रत्य केन्द्रगति और कर्ण लेना चाहिए ॥१५-१६॥

इदानीं पुनर्मन्दफलानयनं शीघ्रफलानयनं चाह।

यलमन्ददोर्गुणौवा निजान्त्यफलजीवया हतौ भक्तौ।
कर्णव्यासार्धाभ्यां फलधनुषी शीघ्रमन्दजे फले स्याताम् ॥१७॥

वि. भा.—वा चलमन्ददोर्गुणौ (शीघ्रकेन्द्रज्या मन्दकेन्द्रज्ये) निजान्त्यफल-जीवया (शीघ्रान्त्यमन्दान्त्यफलज्याभ्यां) हतौ (गुणितौ) कर्णव्यासार्धाभ्यां (कर्णत्रिज्याभ्यां) भक्तौ फलधनुषी (फलयोश्चापे) शीघ्रमन्दजे फले (शीघ्रफलमन्द-फले) स्यातामिति ॥१६॥

अत्रोपपत्तिः

चित्रम् द्वितीयश्लोकोपपत्तिस्थं द्रष्टव्यम् । $\frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या. शीकेज्या}}{\text{शीकर्ण}}$ = शीघ्रफलज्या।

अस्याश्चापम् = शीफलम् । तथा $\frac{\text{मंकेज्या. मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मंभुजफलम् ।

अस्य चापम् = मन्दफलम् । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१७॥

अब पुनः मन्दफलानयन और शीघ्रफलानयन कहते हैं ।

हि. भा.—शीघ्र केन्द्रज्या और मन्दकेन्द्रज्या को अपनी अपनी अन्त्यफलज्या से गुणकर, कर्ण और त्रिज्या से भाग देने से जो फलद्वय होते हैं उनके चाप शीघ्रफल और मन्दफल होते हैं ॥१६॥

उपपत्तिः

द्वितीयश्लोक का उपपत्तिस्थ चित्र देखिये । $\frac{\text{शीकेज्या. शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{शीकर्ण}}$ = शीफज्या ।

इसके चाप करने से शीघ्रफल होता है । तथा $\frac{\text{मंकेज्या. मन्दान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मंभुजफल इसके चाप = मन्दफल । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१७॥

इदानीं स्पष्टग्रहान्मध्यग्रहानयनमाह ।

शीघ्रात्स्पष्टग्रहोनाच्चलफलमखिलं खेचरः स्यादनष्टे
व्यत्यासात्स्पष्टसंज्ञे धनमृणमसकृत् स्यान्मृदुस्पष्टसंज्ञः ।
तस्मान्मन्दोच्चहीनान्मृदुफलमपि च व्यत्ययादेव कृत्स्नं
तत्रानेष्टक्षयस्वं गदितवदसकृन्मध्यमोऽन्यश्च तस्मात् ॥१८॥

वि. भा.—स्पष्टग्रहोनात् शीघ्रात् (स्पष्टग्रहरहितात् शीघ्राच्चात्) अखिलं चलफलं (सम्पूर्णं शीघ्रफलं) अनष्टे स्पष्टसंज्ञे (यथास्थानस्थिते स्पष्टग्रहे) व्यत्यासात् (विलोमात्) धनमृणं कार्यं (शीघ्रफलं धनं चेदृणं, ऋणं चेद्धनं कार्यं, एवमसकृत्तदा मृदुस्पष्टसंज्ञः (मन्दस्पष्टः) खेचरः (ग्रहः) स्यात् । मन्दोच्चहीनात्त-स्मात् मन्दोच्चरहितामन्दस्पष्टग्रहात् कृत्स्नं मृदुफलं (सम्पूर्णं मन्दफलं) व्यत्ययादेव (विलोमादेव) गदितवत् (कथितमार्गेण) अनेष्टक्षयस्वं (यथास्थमृणं धनं) तत्र मन्दस्पष्टग्रहे कार्यम् एवमसकृत्तदामध्यमः ग्रहः स्यात् । तस्मान्मध्यमग्रहादन्य-दिति ॥१८॥

अत्रोपपत्तिः

शीघ्रोच्चस्फुटग्रहयोरन्तरं मन्दस्पष्टग्रहार्थमुपयुक्तं शीघ्रकेन्द्रं नास्त्यतः प्रथमं मन्दस्पष्टग्रहतुल्यमेव स्फुटग्रहं मत्वा ततो यथोक्तरीत्या शीघ्रफलमानेयं तच्च स्फुटग्रहे व्यत्ययेन संस्कार्यं (शीघ्रफलं चेद्धनं तदा ऋणं चेद् धनं) एवमसकृत् तदा स्पष्टग्रहाच्छीघ्रफलेनान्तरितो, वास्तवमन्दस्पष्टग्रहो भवेत्। एतस्मात्समागताद् वास्तवमन्दस्पष्टग्रहान्मन्दफलं साध्यं तस्यावास्तवत्वात्तज्जनितमन्दफलस्यावास्तवत्वात्तेन विलोमसंस्कृतो वास्तवमन्दस्पष्टग्रहोऽवास्तवमध्यमग्रह एवमसकृत्करणेन वास्तवमध्यमग्रहो भवेदिति। अन्यैः प्राचीनैरपि स्पष्टग्रहान्मध्यग्रहानयनमसकृत्प्रकारेण कृतं, सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्यां संशोधकेन रविचन्द्रयोः स्पष्टादन्येषां मन्दस्फुटादेव सकृत्प्रकारेणैव मन्दफलानयनं कृतमिति ॥१८॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे प्रतिमण्डलस्पष्टीकरणविधिस्तृतीयो ऽध्यायः समाप्तः।

अब स्पष्टग्रह से मध्यमग्रहानयन कहते हैं।

हि. भा.—स्पष्टग्रह करके रहित शीघ्रोच्च से जो शीघ्रफल हो उसको स्पष्ट ग्रह में विलोम (उल्टा) संस्कार करना याने शीघ्रफल धन रहे तो स्पष्ट ग्रह में ऋण करना, शीघ्रफल ऋण रहे तो स्पष्ट ग्रह में धन करना। इस तरह बार-बार करने से मन्द स्पष्ट ग्रह होते हैं। मन्दोच्चरहित मन्द स्पष्ट ग्रह मन्दफल साधन करना, उस सम्पूर्ण मन्दफल को मन्द स्पष्टग्रह में विलोम (मन्दफल धन रहने से मन्द स्पष्ट ग्रह में ऋण, और मन्दफल ऋण रहने से मन्दस्पष्ट ग्रह में धन) संस्कार करना, इस तरह बार-बार करने से मध्यम ग्रह होते हैं। उस मध्यमग्रह से अन्य बातें जानना ॥१८॥

उपपत्ति

शीघ्रोच्च और स्फुट ग्रह के अन्तर मन्द स्पष्ट ग्रह के लिये उपयुक्त शीघ्रकेन्द्र नहीं है इसलिये मन्द स्पष्ट ग्रह तुल्य स्फुटग्रह को मानकर यथोक्तरीति से शीघ्रफल साधन कर स्फुटग्रह में विलोम संस्कार (शीघ्रफल धन रहने से ऋण, ऋण रहने से धन) करने से अवास्तव मन्दस्पष्ट ग्रह होता है इस तरह बार-बार करने से वास्तवमन्द स्पष्टग्रह होते हैं। इस मन्द स्पष्टग्रह से जो मन्द फल होगा सो अवास्तविक होगा, उसको मन्द स्पष्टग्रह में विलोम संस्कार करने से अवास्तव मध्यम ग्रह होते हैं, इस तरह बार-बार करने से वास्तव मध्यम ग्रह होते हैं। स्पष्टग्रह से मध्यमग्रहानयनके लिये सब प्राचीनाचार्यों ने असकृत्कर्म किये हैं सिद्धांतशिरोमणि की टिप्पणी में संशोधक रवि और चन्द्र के लिए स्पष्ट से अन्य ग्रहों के के लिए मन्द स्पष्ट से सकृत् प्रकार से मन्द फलानयन किये हैं ॥१८॥

इति वटेश्वरसिद्धांत में स्पष्टाधिकार में प्रतिमंडल स्पष्टीकरणविधि नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्थोऽध्यायः

स्फुटीकरणम्

अथ ज्याखण्डैर्विना स्फुटीकरणमाह ।

त्रिज्याशकलैद्युसदां स्पष्टीकरणं मयेरितं विधिवत् ।
अधुना विनैव मौर्वीशकलैर्वक्ष्ये स्फुटीकरणम् ।।१।।

वि. भा.—द्युसदां (ग्रहाणां) स्पष्टीकरणं त्रिज्याशकलैः (त्रिज्याव्यासार्धैः) विधिवत् (यथोचितविधिना) मया ईरितं (कथितम्) अधुना (इदानीं) मौर्वीशकलैर्विना (ज्यार्धैर्विना) स्फुटीकरणं वक्ष्ये ।।१।।

हि.भ.—ग्रहों के स्पष्टीकरण त्रिज्याव्यासार्ध से विधिपूर्वक मैंने कहे अब बिना ज्या के स्पष्टीकरण कहता हूं ।।१।।

इदानीं ज्याभिर्विनाभुजज्यानयनमाह ।

चक्रार्धांशा भुजांशैर्विरहितनिहतास्तद्विहीनैर्विभक्ताः,
खव्योमेष्वभ्रवेदैः सलिलनिहताः पिंडराशिः प्रदिष्टः ।
षड्भांशघ्ना भुजांशा निजकृतिरहितास्तत्तुरीयांशहीनै-
र्भक्ताः स्यात्पिंडराशिर्विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिर्वा ।।२।।

वि. भा.—भुजांशैर्यदोया जीवाऽपेक्षितास्तैर्विरहितनिहताश्चक्रार्धांशाः (खनागेन्दवो भुजांशैरूना गुणिताश्च) सलिलनिहताः (चतुर्भिर्गुणिताः) तद्विहीनैः पूर्वोक्तभुजांशरहितगुणितभार्धांशरहितैः) खव्योमेष्वभ्रवेदैः (४०५०० एभिरंकैः) विभक्तास्तदा पिण्डराशिः प्रदिष्टः (कथितः) वा (अथवा षड्भांशघ्ना भुजांशाः (१८० एतद्गुणितभुजांशाः) निजकृतिरहिताः (भुजांशवर्गहीनाः) तत्तुरीयांशहीनैः (तदीयचतुर्थांशरहितैः) विशिखनयनभूव्योमशीतांशुभिः (१०१२५ एभिः) भक्तास्तदा पिण्डराशिः (भुजज्या) भवेदिति ।।२।।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि व्यासार्धे भुजज्या तदा द्विगुणव्यासार्धे का लब्धा द्विगुणव्यासार्धे भुजज्या $=\frac{\text{ज्याभु. २ व्याद}}{\text{व्याद}}=$ २ ज्याभु, अतः कस्मिन्नपि व्यासार्धे द्विगुणभुजानां या पूर्णज्या सैव द्विद्गुणतव्यासार्धे भुजज्या भवतीति । षष्टिव्यासार्धे द्विगुणभुजां

शानां पूर्णज्यासाधनार्थं स्वल्पान्तराद्व्यासस्त्रिगुणः परिधिः = ३६०, चक्रांशैश्चक्रसमचापीयमानं लभ्यते तदा द्विगुणभुजांशैः किं लब्धं तच्चापमानम् = २ भु. । ततः "चापोननिघ्नपरिधिः प्रथमाह्वयः स्यादि"त्यादि विधिना खार्कव्यासार्धे द्विगुणभुजांशपूर्णज्या जाता, खार्कमितत्रिज्यायां भुजज्या

$$= \frac{(३६० - २भु)\, २\, भु \times ४ \times १२०}{३६०^२ \times \frac{५}{४} - (३६० - २भु) २भु} = \frac{१८० - भु \times १६ \times १२०}{\frac{३६० \times ३६० \times ५}{४} - (१८० - भु) भु \times ४}$$

$$= \frac{(१८० - भु)\, भु.\, १२०}{\frac{६० \times ३६० \times ५}{१६} - \frac{(१८० - भु)\, भु}{४}} = \frac{(१८० - भु) भु \times १२०}{४५ \times ४५ \times ५ - \frac{(१८० - भु) भु}{४}}$$

$$= \frac{(१८० - भु)\, भु \times १२०}{१०१२५ - \frac{(१८० - भु)\, भु}{४}}$$ यदि खार्क मितत्रिज्यायामियं भुजज्या तदेष्टत्रिज्यायां किमिति जाता भुजज्या $= \frac{(१८० - भु)\, भु.त्रि(^१)}{१०१२५ - \frac{(१८० - भु)\, भु}{४}}$

$$= \frac{(१८० - भु)\, भु.\, त्रि \times ४}{४०५०० - (१८० - भु) भु}$$ अत्र त्रिज्या = १ तदा $\frac{(१८० - भु)\, भु.\, ४}{४०५०० - (१८० - भु) भु}$ = भुजज्या । अथ $\frac{(१८० - भु)\, भु.\, त्रि}{१०१२५ - \frac{(१८० - भु)\, भु}{४}} = \frac{(१८० \times भु - भु^२)\, त्रि}{१०१२५ - \frac{(१८० \times भु - भु^२)}{४}}$

$$= \frac{१८० \times भु - भु^२}{१०१२५ - \frac{(१८० \times भु - भु^२)}{४}}$$ = भुजज्या = पिण्डराशिः ।

कोटिचापवशादेवमेव कोटिज्येति । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ।।२।।

(१) एतेन सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनोक्तं "दोःकोटिभागरहिताभिहताः खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भिः । तेव्यास खण्डगुणिता विहृताः फले तु ज्याभिर्विनैव भवतो भुजकोटिजीवे" । उपपद्यते ।

श्रीपतिप्रकारस्यास्य मूलं वटेश्वरोक्तप्रकार एवेति विद्वद्भिर्विविच्य ज्ञेयमिति ।।२।।

अब बिना ज्या के भुजज्यानयन कहते हैं ।

हि॰ भा॰—जिस भुजांश की जीवा (ज्या) अपेक्षित है उससे रहित और गुणित भार्धांश को चार से गुणाकर उससे (भुजांश रहित और भुजांश से गुणित भार्धांश) रहित ४०५०० इतने अंक से भाग देने से पिण्डराशि (भुजज्या) होती है । १८० इतने से

गुणित भुजांश में भुजांश वर्ग घटाकर चार से भाग देने से जो फल हो उसको १०१२५ इनमें घटाकर उसमें (१८० गुणित भुजांश में भुजांशवर्ग घटा हुआ) भाग देने से पिण्डराशि (भुजज्या) होती है ।।२।।

उपपत्ति

यदि व्यासार्ध में भुजज्या पाते हैं तो द्विगुणित व्यासार्ध में क्या इस अनुपात से द्विगुणित व्यासार्ध में भुजज्या आवेगी $\frac{\text{ज्याभु. २ व्याद}}{\text{व्याद}}$ = २ ज्याभु.। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी व्यासार्ध में द्विगुणित भुजांश की जो पूर्णज्या होती है वही द्विगुणित उस व्यासार्ध में भुजज्या होती है। साठ (६०) व्यासार्ध में द्विगुणित भुजांश की पूर्णज्या साधन के लिए स्वल्पान्तर से त्रिगुणित व्यास के बराबर परिधि = ३६०, अब अनुपात करते हैं चक्रांश में चक्रसम चापीयमान पाते हैं तो द्विगुणित भुजांश में क्या आ जायगा, चापमान = २ भु; तब 'चापोन-निघ्नपरिधिः प्रथमाह्वयः स्यात्' इत्यादि नियम से १२० त्रिज्या में द्विगुणभुजांश पूर्णज्या ५ आ जायगी, १२० त्रिज्या में भुजज्या $= \frac{(\text{३६०}-\text{२भु})\ \text{२ भु. ४}\times\text{१२०}}{\text{३६०}^2\times\frac{\text{५}}{\text{४}}-(\text{३६०}-\text{२ भु})\ \text{२ भु}}$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. १६}\times\text{१२०}}{\frac{\text{३६०}\times\text{३६०}\times\text{५}}{\text{४}}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{४}} = \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{१२०}}{\frac{\text{६०}\times\text{३६०}\times\text{५}}{\text{१६}}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. १२०}}{\text{४५}\times\text{४५}\times\text{५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}} = \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. १२०}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$

यदि १२० त्रिज्या में यह भुजज्या पाते हैं तो इष्ट त्रिज्या में क्या आ जायगी इष्ट त्रिज्या में भुजज्या $= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}} = \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि}\times\text{४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}$

यहां त्रि = १ तब $\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. ४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}$ = भुजज्या।

$$\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}} = \text{भुजज्या}\ (\text{१})$$

$$\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^2).\ \text{त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^2)}{\text{४}}} = \frac{\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^2}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^2)}{\text{४}}} = \text{भुजज्या।}$$

कोटि-चाप से इसी तरह कोटिज्या होती है। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।

(१) इससे सिद्धान्तशेखर में श्रीपति के पद्य "दोःकोटिभागरहिताभिहताः खनाग-

चन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भिः। ते व्यासखण्डगुणिता विहृता फले तु ज्याभिर्विनैव भवतो भुजकोटिजीवे" उपपन्न होते हैं, परन्तु इस श्रीपति प्रकार का मूल वटेश्वरोक्त प्रकार ही है इस विषय को विवेचक लोग विचार कर समझें ॥ २ ॥

इदानीं भुजफलकोटिफलयोः साधनार्थमाह ।

परफलगुणनिघ्नी हृत्फलज्या त्रिमौर्व्या भवति हि भुजजीवा चैव मन्याहृतेऽपि ।
मृदुफलमिह साध्यं प्रोक्तवद्बाहुभागैः स्वफलकमपि चैवं बाहुकोट्यंशकैः स्वैः ॥३॥

वि. भा.—भुजजीवा (भुजज्या) परफलगुणनिघ्नी (अन्यफलज्यया गुणिता) त्रिमौर्व्याहृत् (त्रिज्याभक्ता) तदा फलज्या भवति, एवमन्याहृतेऽपि (केन्द्रकोटिज्या-गुणितेऽप्यर्थात्केन्द्रकोटिज्या गुणिताऽन्त्यफलज्यायांत्रिज्यया विभक्तायां लब्धं मूल-संज्ञकं फलज्यामूलाद् ग्रहं यावत्) प्रोक्तवत् बाहुभागैः (भुजांशैः) मृदुफलं (मन्द-फलं) साध्यम् । एवं स्वैः (स्वकीयैः) बाहुकोटय्ंशकैः (केन्द्रांशकैः केन्द्रकोट्यंशकैश्च) स्वफलकं (भुजफलं, कोटिफलं) साध्यमिति ॥ ३ ॥

अत्रोपपत्तिः स्फुटैवास्ति, पूर्वसाधितभुजज्या) कोटिज्याभ्यां पूर्ववद् भुज-फलकोटिफले भवेतामेवेति ॥ ३ ॥

अब भुजफल और कोटिफल के साधन के लिये कहते हैं ।

हि. भा.—भुजज्या (केन्द्रज्या) को अन्त्यफलज्या से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से फलज्या होती है, इस तरह केन्द्रकोटिज्या से भी अन्त्यफलज्या को गुणकर त्रिज्या से भाग देने से फलमूल संज्ञक (फलज्या मूल से ग्रह तक) होता है । भुजांश (केन्द्रांश) से पूर्ववत् मन्दफल साधन करना चाहिये । एवं अपने भुजांश (केन्द्रांश) कोट्यंश (केन्द्र-कोटि से) अपने अपने फल (भुजफल, कोटिफल) साधन करने चाहियें ॥ ३ ॥

इसकी उपपत्ति स्पष्ट ही है । पूर्वसाधित भुजज्या (केन्द्रज्या) और कोटिज्या (केन्द्र-कोटिज्या) से भुजफल और कोटिफल हो वे ही करेंगे ॥ ३ ॥

इदानीं ज्याभिर्विना चापानयनमाह ।

त्रिभनवगुणयुक्तो ज्यातुरीयोऽत्रहारो विशिखरविखचन्द्रै स्ताड़ितायास्तु मौर्व्याः ।
खखविशिख खवेदैराहता वेष्टजीवा त्रिभगुणकृतिघातज्या समासेन भक्ता ॥४॥

फलहीना नवतिकृतस्तन्मूलेन च वर्जिता नवतिः ।
शेषं धनुरथवा यत्रिज्याखण्डैर्विनैव फलम् ॥५ ॥

वि: भा.—विशिखरविखचन्द्रैः (१०१२५ एभिः) ताड़ितायाः (गुणितायाः) मौर्व्याः(ज्यायाः) त्रिभनव गुण (त्रिज्या) युक्तो ज्यातुरीयः (ज्याचतुर्थांशः) हारः वा (अथवा) इष्टजीवा (भुजज्या) खख विशिख खवेदैः (४०५०० एभिः) ताड़िता (गुणिताः) त्रिभगुण कृतिघातज्या समासेन (चतुर्गुणित त्रिज्यावर्ग-ज्यायोगेन)

भक्ता (विभाजिता) फलहीना (फलरहिता) नवतिकृतिः (८१००) तन्मूलेन वर्जिता (रहिता) नवतिः (९०) शेषं ज्याखण्डैर्विनैव फलं धनुः (चापं) भवेदिति ।। ४-५।।

अत्रोपपत्तिः ।

द्वितीयश्लोकोपपत्त्या $\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु.त्रि}\times\text{४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}=\text{भुजज्या}$ छेदगमेन

$(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि. ४}=\text{भुज्या}\times\text{४०५००}-\text{भुज्या}\ (\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}$ पक्षयोः समयोजनेन

$(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि. ४}+\text{भुज्या}\ (\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}=\text{भुज्या}\times\text{४०५००}=(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\ (\text{४ त्रि}+\text{भुज्या})$

$$\therefore\ \frac{\text{भुज्या}\times\text{४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}=(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}=\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}}=\text{पक्षौ}\ (-\text{१})$$

गुणितौ तदा $=\frac{\text{भुज्या}\times\text{१०१२५}}{\text{त्रि}+\frac{\text{भुज्या}}{\text{४}}}=\frac{\text{भुज्या}\times\text{१०२०५}}{\text{हार}}$

$$-\frac{\text{भुज्या}\times\text{४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}=\text{भु}^{\text{२}}-\text{१८० भु}$$ पक्षयोः $(\text{९०})^{\text{२}}$ योजनेन

$$\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या}\times\text{४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}=\text{भु}^{\text{२}}-\text{१८० भु}+\text{९०}^{\text{२}}$$ मूलग्रहणेन

$$\sqrt{\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या.४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}}=\text{भु}-\text{९०}\ \therefore\ \text{९०}-\sqrt{\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या.४०५००}}{\text{४ त्रि}+\text{भुज्या}}}$$

$$=\text{भु}=\text{९०}-\sqrt{\text{८१००}-\frac{\text{भुज्या.१०१२५}}{\text{त्रि}+\frac{\text{भुज्या}}{\text{४}}}}$$ अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।

एतदनुरूपमेव

'इष्टज्यया विनिहताः शरभास्कराशा ज्यापादयुक् त्रिभगुणेन हृताः फलं तत् ।
त्यक्त्वा खनन्दकृतितः पदमभ्रनन्द भागाच्च्युतं भवति धन्वविना ज्यकाभिः ।।"
श्रीपत्युक्तमिदमिति ।। ४-५ ।।

अब ज्या बिना चापानयन कहते हैं ।

हि. भा.—१०१२५ एतद्गुणित भुजज्या में त्रिज्या युक्त ज्याचतुर्थांश से भाग देना अथवा भुजज्या को ४०५०० इतने से गुणकर चतुर्गुणित त्रिज्या और भुजज्या योग से भाग देना, फल को नब्बे ९० के वर्ग में घटाकर मूल लेना उस मूल को नब्बे में घटाकर जो शेष रहता है वह बिना ज्या के चाप होता है ।। ४-५ ।।

उपपत्ति

द्वितीयश्लोक की उपपत्तिसे $\frac{(१८०-\text{भु})\ \text{भु}.\ \text{त्रि} \times ४}{४०५००-(१८०-\text{भु})\ \text{भु}} = \text{भुजज्या}$ छेदगम से

$(१८०-\text{भु})\ \text{भु}.\ \text{त्रि} \times ४ = \text{भुज्या} \times ४०५०० - \text{भुज्या}\ (१८०-\text{भु})\ \text{भु}$ दोनों पक्षों में तुल्य जोड़ने से

$(१८०-\text{भु})\ \text{भु}.\ \text{त्रि}.\ ४ + \text{भुज्या}\ (१८०-\text{भु})\ \text{भु} = \text{भुज्या}\ ४०५००$

$= (१८०-\text{भु})\ \text{भु}\ (४\ \text{त्रि} + \text{भुज्या}) = \text{भुज्या} \times ४०५०० \therefore \frac{\text{भुज्या}.४०५००}{४\ \text{त्रि} + \text{भुज्या}} =$

$(१८०-\text{भु})\ \text{भु} = \frac{\text{भुज्या}.१०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = १८० \times \text{भु} - \text{भु}^२$ दोनों पक्षों को (—१)

गुण देने से

$-\frac{\text{भुज्या}\ ४०५००}{४\ \text{त्रि} + \text{भुज्या}} = \text{भु}^२ - १८०\ \text{भु}$ दोनों पक्षों में $(९०)^२$ जोड़ने से

$९०^२ - \frac{\text{भुज्या}.४०५००}{४\ \text{त्रि} + \text{भुज्या}} = \text{भु}^२ - १८०\ \text{भु} + ९०^२$ मूल लेने से

$\sqrt{९०^२ - \frac{\text{भुज्या}.४०५००}{४\ \text{त्रि} + \text{भुज्या}}} = \text{भु} - ९०$

अतः $९० - \sqrt{९०^२ - \frac{\text{भुज्या}.४०५००}{४\ \text{त्रि} + \text{भुज्या}}} = \text{भु}.$ इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसके सदृश ही "इष्टज्यया विनिहताः शरभास्कराशा ज्यापाद युक्त्रिभगुणेन हृताः फलं तत्। त्यक्त्वा खनन्दकृतितः पदमभ्रनन्दभागाच्च्युतं भवति धन्वविना ज्यकाभिः॥" श्रीपति प्रकार है ॥ ४-५ ॥

इदानीं भौमादिग्रहाणामतिशीघ्र-शीघ्रादिगतीनाह।

स्फुटमध्यमखेचरान्तरं दलितं मध्यखगात्स्फुटेऽल्पके।
स्वमृणं महति स्फुटोनिते स्वचलेऽस्मिन् भवनेषु खेचरः ॥६॥
अतिशीघ्रगतिः शीघ्रा निसर्गतस्तदनु भावयोराद्ये।
मन्दाऽपराऽतिमन्दा वक्रा चैवाऽतिवक्राख्या: ॥ ७ ॥
चक्रे च्युतेऽपि चास्मिन् ग्रहचारश्चैष एव निर्दिष्टः।
चक्रच्युतस्य मन्दा ग्रहस्य भुक्तिः कुटिलसंज्ञा ॥ ८ ॥

वि. भा.—स्फुटे (स्पष्टग्रहे) मध्यखगादल्पके (मध्यमग्रहान्न्यूने) स्फुटमध्यमखेचरान्तरं (स्पष्टमध्यमग्रहयोरन्तरं) दलितं (अर्धीकृतं) स्वं (धनम्) महति मध्यमग्रहात्स्पष्टग्रहेऽधिके) तदन्तरार्धं स्पष्टमध्यमग्रहान्तार्धम् ऋणं (हीनं) कार्यं,

स्फुटोनिते (स्पष्टग्रहहीने) अस्मिन् स्वचले (शीघ्रोच्चे) तदा भवनेषु (राशिषु) खेचरः (ग्रहः) अतिशीघ्रातिगतिर्भवेत् ।।

अत्राऽयमर्थः — स्फुटग्रहोनशीघ्रोच्चे मध्यमग्रहात्स्फुटग्रहेऽल्पके मध्यस्फुटयोरन्तरार्धं धनं कार्यं मध्यग्रहात् स्फुटेऽधिके तदन्तरार्धं हीनं कार्यम्, एवं संस्कृतेषु राशिषु ग्रहोऽतिशीघ्रगत्यादिको भवेत् । हतोऽग्रे ग्रहाणामतिशीघ्रादिगतीनां नामानि कथ्यन्ते चक्रा (३६०) द्विशोधितास्ता वक्रादिगतयः पुनः स्वाभाविकगतयो भवन्तीति ।। ६-८ ।।

अब भौमादि ग्रहों की अतिशीघ्र-शीघ्रादिगतियों को कहते हैं ।।

हि. भा.— मध्यम ग्रह से स्पष्टग्रह के अल्प रहने से दोनों (मध्यमग्रह और स्पष्टग्रह) के अन्तरार्ध को स्फुटग्रह रहित शीघ्रोच्च में धन करना, यदि मध्यमग्रह से स्पष्टग्रह अधिक है तब दोनों के अन्तरार्ध को स्फुटग्रह रहित शीघ्रोच्च में ऋण करना । इस तरह करने से राशियों में ग्रह अतिशीघ्रादि गति होते हैं । इसके बाद ग्रहों की अतिशीघ्रादिगतियों के नाम कहते हैं । चक्र में (३६० में) वक्रादि गतियों को घटाने से पुनः अपनी स्वाभाविक गति होती है ।। ६-८ ।।

इदानीं भौमादिग्रहाणां वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशानाह ।

रामाष्टिभिः (१६३) क्षितिसुतश्चलकेन्द्रभागै-
र्वक्रीन्दुजोऽक्षमनुभि (१४५) र्गुरुरङ्गसूर्यैः (१२६) ।
शुक्रः शरर्त्तु शशिभिः (१६५) शनिरग्निरुद्रैः- (११३)
श्चक्रच्युतैरकुटिलाः कथितास्त्वमीभिः ।। ९ ।।

वि. भा.—क्षितिसुतः (१६३ एतैः) चलकेन्द्रभागैः (शीघ्रकेन्द्रांशैः) इन्दुजः (बुधः) अक्षमनुभिः (१४५ एभिः शीघ्रकेन्द्रांशैः) गुरुः (बृहस्पतिः) अङ्गसूर्यैः (१२६ एभिः शीघ्रकेन्द्रांशैः) शुक्रः शरर्त्तुशशिभिः (१६५ एभिः) शनिः अग्निरुद्रैः (११३ एभिः) वक्रीभवति, चक्रच्युतैः (भगणात्पतितैः) अमीभिः (एतैः केन्द्रांशैः) अकुटिलाः (मार्गाः) भवन्ति ते ।। ९ ।।

अथाऽस्योपपत्तिः

अथ वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशानयनं प्रदर्श्यते ।

वक्रारम्भो द्वितीयपदे नीचासन्ने भवतीति पूर्वं प्रदर्शितम् । वक्रारम्भकालिककेन्द्रकोटिज्यामानं = य कल्प्यते ।

तदा कर्णवर्गः = त्रि^{2} + अन्त्यफज्या^{2} — २ अंफज्या.य = कर्ण^2 । फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नीद्राक्केन्द्रभुक्ति रित्यादिना $\text{उग} - \frac{\text{फकोज्या.केग}}{\text{शीक}} = \text{स्पष्टगति}$

अत्र केग = शीघ्रकेन्द्रगतिः ।
उग = शीघ्रोच्चगतिः ।
शीक = शीघ्रकर्ण = क ।

अथ द्राक् केन्द्र मौर्व्यान्त्यफलज्यागुणया क्रमात् ।
मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यकाकृतिः ॥
शीघ्रकर्णहृता लब्धं फलकोटिज्यका भवेत् । इति संशोधकोक्तटिप्पण्या

$$त्रि^2 - \frac{य.\ अं फज्या}{कर्ण} = फलकोटिज्या,$$ स्पष्टगतिस्वरूपे उत्थापनेन

$$उग - \frac{(त्रि^2 - य.अं फज्या) केग}{क^2} = स्पग = उग - \frac{(त्रि^2 - य.अं फज्या) केग}{त्रि^2 + अं फज्या^2 - २ अं फज्या.य}$$

$$= उग - \frac{(त्रि^2.केग - य.अं फज्या.केग)}{त्रि^2 + अं फज्या^2 - २ अं फज्या.य}$$ परं वक्रारम्भे स्पष्टगति = ०

$$\frac{उग.त्रि^2 + उग.अं फज्या^2 - २ अं फज्या.य.उग - (त्रि^2.केग - य.अं फज्या.केग)}{त्रि^2 + अंफज्या^2 - २ अं फज्या.\ य}$$

= स्पष्टग = ०

छेदगमेंन

$$उग.त्रि^2 + उग.\ अंफज्या. - २ अंफज्याय.उग - (त्रि^2.केग - य.अंफज्या.केग) = ०$$

समयोजनेन

$$उग.त्रि^2 + उग.\ अंफज्या^2 - २\ अं फज्या.य.उग = त्रि^2.केग - य.अं फज्या.केग$$

समशोधनेन

$$उग.त्रि^2 - त्रि^2.केग + उग.अंफज्या^2 - २\ अंफज्या.य.उग = - य.अं फज्या.केग$$

समयोजनेन

$$उग.त्रि^2 - त्रि^2.केग + उग.अं फज्या^2 = २ अं फज्या.य.उग - य.अं फज्या.केग$$
$$= त्रि^2 (उग - केग) + उग.अं फज्या^2 = य.अं फज्या\ (२\ उग - केग)$$
$$= त्रि^2 \times मंस्पग + उग.अं फज्या^2 \quad = य.अं फज्या\ (उग + उग - केग)$$
$$= य.अं फज्या\ (उग + मंस्पग)$$

$$अतः\ \frac{त्रि^2.मंस्पग + उग.\ अं फज्या^2}{अं फज्या\ (उग + मंस्पग)} =$$

$$\frac{त्रि^2 \times मग + उग.अं फज्या^2}{अं फज्या\ (उग + मग)} = (१)$$ य स्वल्पान्तरादत्र

मन्दस्पष्टगतिः = मध्यमगतिः स्वीकृताऽतस्तज्जन्या त्रुटिरत्र वर्त्तते । समागतस्य (य) अस्य चापं कार्यं नवत्यंशे योजितं तदा वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशाः भवेयुरिति ॥

(१) एतावता संशोधकोक्तसूत्रमवतरति ।

त्रिज्याकृतिः खचरमध्यमभुक्तिनिघ्नी शीघ्रोच्चभुक्तिगुणितोऽन्त्यफलस्य वर्गः ।
योगस्तयोः परफलज्यकया विभक्तः शीघ्रोच्चभुक्तिखगवेगसमासहृच्च ॥ ६ ॥

अब भौमादिग्रहों के वक्रारम्भकालिक केन्द्रांश कहते हैं ।

हि. भा.—मङ्गल १६३ इतने शीघ्र केन्द्रांश में बुध १४५ शीघ्रकेन्द्रांश में बृहस्पति १२६, शुक्र १६५, शनि ११३ शीघ्रकेन्द्रांश में वक्री होते हैं । इन्हीं शीघ्र केन्द्रांशों को ३६० में घटाने से अवक्री (मार्गी) होते हैं ॥ ६ ॥

उपपत्ति

वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रांशानयन करते हैं । वक्रारम्भकालिक केन्द्रकोटि ज्यामान = य मानते हैं । परन्तु द्वितीय पद में नीचासन्न में ग्रहों का वक्रारम्भ होता है इसलिये कर्णवर्ग = $\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या.य}$, फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी इत्यादि से $\text{उग} - \frac{\text{फकोज्या.केग}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टगति ।

यहां केग = शीघ्रकेन्द्रग
उग = शीघ्रोच्चगति
शीक = शीघ्रकर्ण = क

द्राक् केन्द्रकोटि मौर्व्यन्त्य फलज्या गुणया क्रमात् । मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यकाकृतिः । शीघ्रकर्णहृता लब्धं फले कोटिज्यका भवेत् । इस संशोधकोक्त टिप्पणी से $\text{त्रि}^2 - \frac{\text{य.अं फज्या}}{\text{कर्ण}}$ = फलकोज्या स्पष्टगति स्वरूप में उत्थापन देने से $\text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य.अं फज्या})\ \text{केग}}{\text{क}^2}$ = स्पग

$$= \text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य. अं फज्या})\ \text{केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या.य}} = \text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2\text{.केग} - \text{य.अं फज्या. केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या.य}}$$

परन्तु वक्रारम्भ में स्पष्टगति = ०

$$\text{अतः} \frac{\text{उग.त्रि}^2 + \text{उग.अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या.य} \times \text{उग} - (\text{त्रि}^2\text{.केग} - \text{य.अं फज्या.केग})}{\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या.य}}$$

= ० = स्पग

छेदगम से

$$\text{उग. त्रि}^2 + \text{उग.अं फज्या}^2 - 2\ \text{अंफज्या.य} \times \text{उग} - (\text{त्रि}^2\text{.केग} - \text{य.अंफज्या.केग}) = 0$$

समयोजन से

$\text{उग.त्रि}^2 + \text{उग.अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या.य.उग} = \text{त्रि}^2\text{.केग} - \text{य.अं फज्या.केग}$ समशोधन से $\text{उग.त्रि}^2 - \text{त्रि}^2\text{.केग} + \text{उग.अं फज्या}^2 = 2\ \text{अं फज्या.य.उग} - \text{य. अं फज्या.केग}$ $= \text{त्रि}^2\ (\text{उग} - \text{केग}) + \text{उग.अं फज्या}^2 = \text{य} \times \text{अं फज्या}\ (2\ \text{उग} - \text{केग}) = \text{य. अं फज्या}$ $(\text{उग} + \text{उग} - \text{केग}) = \text{त्रि}^2\text{. मंस्पग} + \text{उग.अं फज्या}^2 = \text{य.अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{मंस्पग})$

$$\therefore \frac{\text{त्रि}^2\text{.मंस्पग} + \text{उग.अं.फज्या}^2}{\text{अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{मंस्पग})} = \overset{(1)}{\text{य}} = \frac{\text{त्रि}^2\text{.मग} + \text{उग.अं फज्या}^2}{\text{अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{मग})}$$

मन्दस्पग = मध्यमग स्वल्पान्तर से, आनीत (य) फल के चाप के नवत्यंश जोड़ने से वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रांश होता है ।

(१) इससे संशोधकोक्त सूत्र उपपन्न होता है—'त्रिज्याकृति' रित्यादि ॥६॥

इदानीं भौमादीनां वक्रदिनान्याह ।

पञ्चर्त्तवः कुदस्रा बाहुशिवा द्वीषतो द्विगुणचन्द्राः ।
वक्रादिनान्युर्बीजान्निरंशदिनशोधितन्यृजूनि स्युः ॥१०॥

वि. भा.—६५, २१, ११२, ५१, १३२ एतानि क्रमशो भौमादीनां ग्रहाणां वक्रदिनानि भवन्ति तानि च निरंशदिनशोधितानि (वक्रमार्गदिनसमूहे रहितानि) तदा मार्गदिनानि भवन्तीति ॥ १० ॥

अब भौमादि ग्रहों के वक्रदिन कहते हैं ।

हि. भा.—६५, २१, ११२, ५२, १३२ इतने कम से भौमादि ग्रहों के वक्रदिन होते हैं । उनको निरंश दिनों (वक्र और मार्गदिनसमूह के योग) में घटाने से मार्गदिन होते हैं ॥१०॥

इदानीं भौमादीनां निरंशदिनान्याह ।

खाष्टनगा रसरुद्रा नवनरागा पयोधिधीपवनाः ।
वसुशैलगुणाः क्रमशो भौमादीनां निरंशनिशाः ॥११॥

वि. भा.—७८०, ११६, ६९६, ५५४, ३७८ इति भौमादिग्रहाणां क्रमशो निरंशदिनानि भवन्ति ॥११॥

अब भौमादिग्रहों के निरंशदिन कहते हैं ।

हि. भा.—७८०, ११६, ६९६, ५५४, ३७८ इतने इतने क्रम से भौमादि ग्रहों के निरंश दिन हैं ॥ ११ ॥

इदानीं भौमादीनामुदयास्तकेन्द्रांशानाह ।

धीयमलैस्त्रिखपक्षैर्विश्वैस्त्रिमतीन्दुभिर्नगशशाङ्कैः ॥
दृश्याः प्रागपरायां च्युताश्च भांशाददृश्याः स्युः ॥१२॥
विपरीतदिश्येवं हि ज्ञसितौ तानैर्जिनैर्जगुर्भागैः ।
एष्यातीतकलाभ्यः स्वकेन्द्रभुक्त्या दिनानि स्युः ॥१३॥

वि. भा.—धीयमलैः (२५ एभिः) त्रिखपक्षैः (२०३) विश्वैः (१३) त्रिमतीन्दुभिः (१५३) नगशशांकैः (१७) शीघ्रकेंद्रांशैर्भौमादयो ग्रहाः प्राग्दिशि (पूर्वस्यां दिशि) दृश्या भवन्ति, एते भांशात् (३६० चक्रांशात्) च्युताः (शुद्धाः) तदा तैः केन्द्रांशैरपरायां (पश्चिमायां दिशि) अदृश्याः (अस्तमयाः) भवन्तीति, एवं ज्ञसितौ (बुधशुक्रौ) तानैः (४९) जिनैः (२४) भागैः (अंशैः) विपरीतदिशि (पश्चिमायां दिशि) उदयं गच्छतः । एष्यातीतकलाभ्यः स्वकेन्द्रभुक्त्या च दिनानि स्युरिति ॥ १२-१३ ॥

अत्रोपपत्तिः

अथ कुजगुरुशनीनां रविरेव शीघ्रोच्चम्। शीघ्रोच्चस्थाने स्थितानां तेषां ग्रहाणां परमास्तः। पश्चाद्रविरधिकगतित्वादग्रे गच्छति, ग्रहास्तु ततः पश्चात्स्थितास्तत्र यदा रविणा सह कालांशतुल्यमन्तरं भवेत्तदा रवेरासन्नत्ववशेन रात्र्यन्ते पूर्वदिशि तेषां ग्रहाणां समुदयो दृश्यते तन कालांशतुल्ये स्पष्टकेन्द्रांशे या फलज्या तच्चापयुतं कालांशमानं तदुदयशीघ्रकेन्द्रांशा भवन्तीति ॥

यथा शीघ्रान्त्यफलज्या=अंफज्या। कक्षावृत्ते स्पष्टग्रहः=स्पग्र, रवेः शीघ्रोच्चत्वात्स्फुटकेन्द्रांशाः=कालांशाः, ततोऽनुपातो यदि त्रिज्यया कालांशतुल्यस्य स्पष्टकेन्द्रस्य ज्या लभ्यते तदा शीघ्रान्त्यफलज्यया किं समागच्छति शीघ्रफलज्या तत्स्वरूपम्= $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{अंफज्या}}{\text{त्रि}}$ अस्याश्चापं कालांशे युतं तदोदयकेन्द्रांशा भवेयुः

कालांश+चाप=उदयशीघ्रकेन्द्रांशाः। अत्र स्वस्वपठितकालांशानां ज्याभिरन्त्यफलज्याभिश्च गणितेनोदयशीघ्रकेन्द्रांशा आगच्छन्ति शन्यतिरिक्तयोर्भौमगुर्वोः केन्द्रांशमाने भास्करादिपठिततदुदयशीघ्रकेन्द्रमानाभ्यां भिन्ने भवत इति बुधशुक्रयोर्मध्यरवेः समत्वात्तमेव मन्दस्पष्टं मत्वा स्वस्वस्पष्टेन बुधेन शुक्रेण च कालांशतुल्येऽन्तरे पश्चिमायां समुदयो दृश्यते बुधशुक्रयोः क्षितिजोपरिस्थितत्वात्। तदा

$\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{अंफज्या}}$ =चापज्या, अस्याश्चापं कालांशे युतं तदा तयोः पश्चिमोदयशीघ्रकेन्द्रांशा भवन्ति प्रथमपदे। द्वितीये पदे वक्रीभूय रवितोऽल्पगतित्वात्पश्चिमायामेवास्तं गच्छतः। तृतीये पदे तयोः पुनरुदयो भवति, तयोः पुनर्नीचस्थाने परमास्तत्वेन पूर्वदिशि रात्रिशेषे म चोदयो दृश्यो भवति, चतुर्थे पदे च तयोः कालांशान्तरे स्थितत्वात्तत्रैवास्तो भवेत्। तेन पूर्वोदयकेन्द्रांशमानम्=चा+१८०—कालांश, प्रथमपदे बुधशुक्रयोः पश्चिमायामुदयश्चतुर्थे पदे च पूर्वास्यामस्तः। तृतीयपदे पूर्वस्यामुदयो द्वितीये पदे पश्चिमायामस्तः स्यादतः पश्चिमायामुदयकेन्द्रांशोनभार्धांशाः पूर्वस्यां, पूर्वस्यामुदयकेन्द्रांशोनभार्धांशाः पश्चिमायामस्तकेन्द्रांशा भवन्ति। श्रीपतिभास्कराद्याचार्यकथितबुधपश्चिमोदयकेन्द्रांशमान(५०) त एतदाचार्यकथितं तन्मानमेकाल्पम्। बुधशुक्रयोः पूर्वोदयकेन्द्रांशा अपि तदुक्तोदयकेन्द्रांशेभ्यो भिन्नाः सन्तीति।

अथ ग्रहस्य वक्रोदयास्तादि पठितशीघ्रकेन्द्रांशाभीष्टशीघ्रकेन्द्रांशयोरन्तरं कार्यं ततोऽनुपातो यदि केन्द्रगत्यैकं दिनं लभ्यते तदोपर्युक्तशीघ्रकेन्द्रांशान्तरेण किमित्यनुपातेन समागतदिनैर्वक्रोदयास्तादीनां गतत्वं वा भविष्यतोति ॥१२-१३॥

अब भौमादिग्रहों के उदयास्त केन्द्रांश कहते हैं।

हि.भा.—२५, २०३, १३, १५३, १७ इतने शीघ्र केन्द्रांश करके क्रमशः भौमादिग्रह

पूर्व दिशा में उदय होते हैं। भांश (३६७) में उन केन्द्रांशों को घटाकर जो शेष रहते हैं उतने केन्द्रांश करके पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं इस तरह बुध और शुक्र ४६, २४ केन्द्रांश करके क्रमशः पश्चिम दिशा में उदित होते हैं। एष्य और गतकला से तथा अपनी शीघ्र केन्द्रगति से वक्रोदयादि दिन होते हैं ॥१२-१३॥

उपपत्ति

मङ्गल, गुरु, और शनैश्चर इनके शीघ्रोच्च रवि है। शीघ्रोच्च स्थान में इन सब का परमास्त होता है, पीछे रवि शीघ्रगति होने के कारण आगे चले जाते हैं और वे ग्रह पीछे अवलम्बित रहते हैं वहां रवि से जब कालांशान्तर पर ग्रह होते हैं तब रवि से समीपता के कारण रात्र्यन्त में पूर्व दिशा में उन ग्रहों के उदय देखते हैं। इसलिये कालांश तुल्य स्पष्ट केन्द्रांश में जो फलज्या होगी उसके चाप को कालांश में जोड़ने से उन ग्रहों के उदय शीघ्र केन्द्रांश होते हैं। जैसे शीघ्रान्त्यफलज्या = अंफज्या, कक्षावृत्त में स्पष्टग्रह = स्पग्र, स्फुटकेन्द्रांश = कलांश तब अनुपात करते हैं, यदि त्रिज्या में कालांश तुल्य स्पष्ट केन्द्रांश की ज्या पाते हैं तो अन्त्य फलज्या में क्या इस अनुपात से फलज्या आती है $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{अंफज्या}}{\text{त्रि}} = \text{फलज्या}$ ।

इसके चाप को कलांश में जोड़ देने से उन ग्रहों के उदय केन्द्रांश होंगे। चाप + कालांश = उदयशीके यहां अपने अपने पठित कालांश की ज्या से और अन्त्यफलज्या से गणित करने से उदय केन्द्रांश आते हैं। मङ्गल और गुरु के केन्द्रांशमान श्रीपति भास्कराचार्य प्रभृति आचार्य कथित उदयकेन्द्रांश मान से भिन्न हैं।

बुध और शुक्र मध्यम रवि के बराबर है इसलिये उनको मन्द स्पष्ट मानकर अपने अपने स्पष्ट बुध और शुक्र के साथ कालांश तुल्य अन्तर पर पश्चिम दिशा में उदय देखते हैं, क्योंकि बुध और शुक्र क्षितिज से ऊपर है। तब $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{अंफज्या}} = \text{चापज्या}$, इसके चाप को कालांश में जोड़ देने से उन दोनों (बुध और शुक्र) के पश्चिमोदय शीघ्र केन्द्रांश होते हैं प्रथम पद में। द्वितीय पद में वक्री होकर रवि के अल्पगतित्व के कारण वहीं पर अस्त हो जाते हैं। तृतीय पद में फिर उदय होते हैं, नीच स्थान में दोनों के परमास्त होने के कारण वह उदय पूर्व दिशा में रात्रिशेष में देखा जाता है। चतुर्थ पद में रवि से कालांशान्तर पर दोनों के रहने के कारण अस्त होते हैं। इसलिये पूर्वोदय केन्द्रांश = चाप + १८० — कालांश।

प्रथम पद में बुध और शुक्र पश्चिम दिशा में उदित होते हैं और चतुर्थ पद में पूर्व दिशा में अस्त होते हैं। तृतीय पद में पूर्व दिशा में उदय होते हैं और द्वितीय पद में पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। इसलिये पश्चिमोदय केन्द्रांशोन भांश पूर्व दिशा में अस्त केन्द्रांश होते हैं और पूर्वोदय केन्द्रांशोन भांश पश्चिम दिशा में अस्त केन्द्रांश होते हैं।

श्रीपति भास्करादि आचार्य कथित बुध पश्चिमोदय केन्द्रांश (५०) मान से वटेश्वराचार्य कथित केन्द्रांश मान एक अल्प है, बुध और शुक्र के पूर्वोदय केन्द्रांश मान भी उन आचार्यों के कथित केन्द्रांश मान से भिन्न है।

ग्रहों के वक्रोदयादि पठित केन्द्रांश और इष्टकेन्द्रांश के अन्तर करके अनुपात करते हैं यदि केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो केन्द्रांशान्तर में क्या इस अनुपात से जो दिन आते हैं उतने दिन करके वक्रोदयादि गत या भविष्य होंगे ।। १२-१३ ।।

इदानीं बुधशुक्रयोः पूर्वपश्चिमदिशोरुदयास्तदिनान्याह ।

नखेन्दवोऽष्टिः खगुणा द्विजिह्वा अहस्कराण्यर्कदिनानि पश्चात् ।
प्राच्यां च चन्द्रात्मजदैत्यगुर्वोर्दन्ताः शरव्योम्निचराः प्रदिष्टाः ।।१४।।

स्पष्टार्थः ।। १४ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

पूर्वकथितनियमेनैव स्पष्टेति ।। १४ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे ज्याभिर्विना स्पष्टीकरणविधिश्चतुर्थोध्यायः समाप्तः ।।

अर्थ स्पष्ट है ।।१४।।

उपपत्ति

पूर्वकथित नियम से स्पष्ट है ।। १४ ।।

इति वटेश्वर सिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में ज्या के विना स्पष्टीकरणविधि नामक चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।



पञ्चमोऽध्यायः

अथ फलज्यास्फुटीकरणविधिमाह ।

भुजकोटिफलश्रवणैर्द्युसदां स्फुटता विहिता हि मया विविधाः ।
कथयाम्यधुनातिविवेकफलस्फुटता भुजयाहमवाप्तवरः ॥१॥

वि. भा.—भुजकोटिफलश्रवणैः (भुजफलकोटिफलकर्णैः) द्युसदां (ग्रहाणां) विविधास्फुटता (अनेकप्रकारकाः स्पष्टताः) मया पूर्वं विहिताः (कथिताः) अधुना (इदानीं) अवाप्तवरोऽहं (प्राप्तप्रसादोऽहम्) भुजया (भुजज्यया) अतिविवेकफलस्फुटतां (अत्यन्तविचारपूर्वकफलस्पष्टीकरणं) कथयामीति ॥१॥

हि. भा.—भुजफल कोटिफल और कर्णों के द्वारा ग्रहों की स्पष्टीकरण अनेक प्रकार से हमने कहा है अब ग्रहप्रसाद से मैं भुजज्या से अतिविचारपूर्वक फलस्पष्टीकरण को कहता हूं ॥१॥

इदानीं मन्दभुजफलशीघ्रभुजफलयोरानयनमाह ।

निजवृत्तगुणाः क्रमकेन्द्रगुणा भगणांशहृताः फलचापकलाः ।
द्युचरफलान्यनुपातफलं मृदुजं चलजं त्वसकृद् द्युचरे ॥२॥

वि. भा.—क्रमकेन्द्रगुणाः (केन्द्रज्याः) निजवृत्तगुणाः (स्वपरिधिगुणिताः) भगणांशहृताः (भांशभक्ताः) फलचापकला द्युचरफलानि (ग्रहफलानि) भवन्ति । अनुपातफलं मृदुजं (मन्दभुजफलचापमन्दफलं) चलजं (शीघ्रफलं) द्युचरे (ग्रहे) असकृत् (वारं वारं) संस्कार्यमित्यर्थः ।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि त्रिज्यया मन्दकेन्द्रज्या लभ्यते तदा मन्दान्त्यफलज्यया किमित्यनुपातेन समागच्छति मन्दभुजफलम् $= \frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}}$ अस्य चापं मन्दफलं भवतीति प्राचीनैः कथ्यते, यद्यपि तच्चापं मन्दफलं न भवतीति पूर्वमेव मया तत्कारणं प्रदर्शितम् । सर्वैः प्राचीनैरेवमेव कथ्यते । एवं शीघ्रभुजफलानयनेऽपि—

$\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीघ्रान्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = शीघ्रभुजफलम् । एतच्चापं शीघ्रफलम् । अन्यैराचार्यैः

शीघ्रफलसम्बन्धे एवं न कथ्यते। मध्यमग्रहात्स्पष्टग्रहज्ञानार्थमेतयोरसकृत्संस्करणं भवतीति ग्रहानयनावलोकने नैव स्फुटमिति त्रिज्यान्त्यफलज्ययोर्यः सम्बन्धः स एव भांशपरिध्योरपि तेनाऽन्त्यफलज्ययात्रिज्ययोः स्थाने परिधिभांशयोर्ग्रहणेनाऽऽचार्योक्तमुपपद्यते इति ॥२॥

हि. भा—केन्द्रज्या को अपनी परिधि से गुणाकर भांश से भाग देने से जो फल हो उसकी चापकला ग्रहों के फल होते हैं। अनुपात जनित मन्दफल और शीघ्रफल ग्रह में बार-बार संस्कार करना चाहिए ॥२॥

उपपत्ति

यदि त्रिज्या में मन्दकेन्द्रज्या पाते हैं तो मन्दान्त्यफलज्या में क्या इस अनुपात से मन्दभुजफल आता है $\frac{\text{मंकेज्या. मंअंफज्या}}{\text{त्रि}}$ = मंभुजफल। इसके चाप मन्दफल होता है। यह प्राचीनाचार्य कहते है। यहां $\frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{मंपरिधि}}{\text{भांश}} \therefore \frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंपरि}}{\text{भांश}}$ = मंभुजफल एवं

$\frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीअंफज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{शीकेज्या} \times \text{शीपरिधि}}{\text{भांश}}$ = शीघ्रभुजफल।

इसके चाप करने से शीघ्रफल होता है। शीघ्रफल के विषय में और आचार्य इस तरह नहीं कहते हैं। तात्कालिक मन्दभुजफल के चाप मन्दफल नहीं होते हैं यह हम पहले दिखला चुके हैं, इसलिये यह बात वहीं से समझनी चाहिये ॥२॥

इदानीं ग्रहस्फुटीकरणमाह।

मन्दोद्भवं मध्यखगे समस्तं सुसंस्कृतं स्पष्टखगो हि मन्दः।
ततस्तदूनात् स्वचलाच्चलोत्थं तस्मिन् समस्तं त्वसकृत् स्फुटः स्यात् ॥३॥
मध्यमश्चलदलार्धसंस्कृतो मन्दजेन दलितेन चैव हि।
मन्दजं सकलमेव मध्यमे शीघ्रजं च निखिलं परिस्फुटः ॥४॥

वि. भा.—मन्दोद्भवं (मन्दकर्मोद्भवं फलं मन्दफलं) समस्तं (सम्पूर्णं) मध्यखगे (मध्यमग्रहे) सुसंस्कृतं तदा मन्दः स्पष्टखगः (मन्दस्पष्टग्रहः) भवेत्। ततोऽनन्तरं तदूनात्स्वचलात् (मन्दस्पष्टग्रहरहिताच्छीघ्रोच्चात्) चलोत्थं फलं (शीघ्रफलं) साध्यं तत्समस्तं (सम्पूर्णं) तस्मिन् मन्दस्पष्टग्रहे संस्कृतं तदा स्फुटः स्यात् तस्मात्स्फुटान्मन्दोच्चं विशोध्य मन्दफलमानीय तेन संस्कृतो गणितागतमध्यमग्रहो मन्दस्फुटः स्यात्। तद्रहिताच्छीघ्रोच्चात्पुनः शीघ्रफलं साध्यं तेन संस्कृतो मन्दस्पष्टग्रहः स्यादेवमसकृद् यावदविशेषः।

चलार्धसंस्कृतः (शीघ्रफलार्धसंस्कृतोऽर्थाच्छीघ्रोच्चान्मध्यमं ग्रहं विशोध्य शीघ्रकेन्द्रं कृत्वा ततः शीघ्रफलमानीय तदर्धसंस्कृतः) मध्यमग्रहः प्रथमसंस्कारयुक्त-

मध्यमग्रहः स्यात् । ततो मन्दोच्चरहितान्प्रथमसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहान्मन्दफलं साध्यं तदर्धसंस्कृतः प्रथमसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहो द्वितीयसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहः स्यात् । पुनर्मन्दोच्चरहिताद् द्वितीयसंस्कारयुक्तमध्यमग्रहान्मन्दकेन्द्रं कृत्वा ततो मन्दफलमानीय मध्यमग्रहे संस्कर्त्तव्यं तदा मन्दस्पष्टग्रहो भवेत् । एतन्मन्दस्पष्टग्रहं शीघ्रोच्चाद्विशोध्य शीघ्रकेन्द्रं कृत्वा ततः शीघ्रफलमानीय तेन संस्कृतो मन्दस्पष्टग्रहः स्पष्टग्रहः स्यादिति ॥ सूर्यसिद्धान्तेऽप्येवमेव संस्कारविधिर्यथा तदुक्त वाक्यम् ।

मध्येशीघ्रफलस्यार्धमान्दमर्धफलं तथा। मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रच मेव च ॥ 'भास्करेणापि' 'दलीकृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यामित्यादिना' तथैव कथ्यते ग्रहलाघवे गणेशदैवज्ञेन प्राङ्मध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये । द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रं सर्वं च तत्र विदधीत भवेत्स्फुटोऽसौ" इत्यनेनभिन्नरूपकः संस्कारविधिः प्रदर्शित इति ॥३-४॥

अत्रोपपत्तिस्तु व्याख्यारूपैवास्तीति ॥३-४॥

अब ग्रहस्पष्टीकरण कहते हैं।

हि. भा.—मध्यमग्रह में सम्पूर्ण मन्दफल संस्कार करने से मन्द स्पष्टग्रह होते हैं। शीघ्रोच्च में मन्दस्पष्टग्रह को घटाकर शीघ्र केन्द्र करके शीघ्रफल साधन करना । वह सम्पूर्ण शीघ्र फल मन्दस्पष्टग्रह में संस्कार करने से स्पष्टग्रह होते हैं । उस स्पष्टग्रह में मन्दोच्च घटा कर मन्दफल साधन करना, उस फल को गणितागत मध्यमग्रह में संस्कार करने से मन्दस्पष्टग्रह होते हैं, उसको शीघ्रोच्च में घटाकर शीघ्र फल साधन करना, मन्दस्पष्ट ग्रह में उस शीघ्रफल को संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह होते हैं; इस तरह असकृत् (बार बार) करने से वास्तव स्पष्टग्रह होते हैं । शीघ्रोच्च में मध्यमग्रह को घटाकर शीघ्र केन्द्र करके शीघ्रफल साधन करना, उसके आधे को मध्यमग्रह में संस्कार करने से प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह होते हैं । प्रथम संकार युक्त मध्यमग्रह में मन्दोच्च को घटाकर मन्दफल साधन करना, उसके आधे को प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह में संस्कार करने से जो होता है, उसको द्वितीय संस्कार युक्त मध्यमग्रह कहते हैं । इस द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह में मन्दोच्च घटाकर उस पर से मन्दफल साधन करना, इसको मध्यमग्रह में संस्कार करने से मन्दस्पष्टग्रह होते हैं । शीघ्रोच्च में इस मन्दस्पष्टग्रह को घटाकर शीघ्रफल साधन करना इस शीघ्रफल को मन्दस्पष्टग्रह में संस्कार करने से स्पष्टग्रह होते हैं ।

सूर्यसिद्धान्त में भी इसी तरह संस्कारविधि है । जैसे—

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धं फलं तथा ।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रमेचव च ॥

भास्कराचार्य भी सिद्धान्तशिरोमणि में इसी तरह कहते हैं, जैसे उनके वचन हैं—
'दलीकृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यामित्यादि' ग्रहलाघव में गणेशदैवज्ञ
'प्राङ्मध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये ।

द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रं सर्वं च तत्र विदधीत भवेत्स्फुटोऽसौ ॥"
इससे भिन्न तरह संस्कारविधि कही हैं॥ ३-४ ॥

यहां उपपत्ति व्याख्यारूप ही है ॥३-४॥

इदानीं कोटिं विना कर्णानयनमाह ।

परमफलकेन्द्रजीवाघातात्फलजीवया हृतात्कर्णः ।
कोटिं विनाऽथवा स्यात् त्रिज्या दोःफलसमभ्यासात् ॥५॥

वि. भा.—परमफलकेन्द्रजीवाघातात् (अन्त्यफलज्याकेन्द्रज्ययोर्वधात्) फलजीवयाहृतात् (फलज्ययाभक्तात्) कोटिं विना (स्पष्टकोटिं विना) कर्णो भवेत् । अथवा त्रिज्या दोःफलसमभ्यासात् (त्रिज्याभुजफलघातात्) फलज्यया भक्तात् कर्णो भवेदिति ॥५॥

अत्रोपपत्तिः

यदि शीघ्रफलज्ययाऽन्त्यफलज्या लभ्यते तदा शीघ्रकेन्द्रज्यया किं समागच्छति शीघ्रकर्णस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{शीघ्रं फज्या} \times \text{शीकेज्या}}{\text{शीफज्या}} =$ शीकर्णः । अथवा शीघ्रफलज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा शीघ्रभुजफलेन किमिति समागतः शीघ्रकर्णः $=$
$\frac{\text{त्रि} \times \text{शीभुफल}}{\text{शीफज्या}}$

स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरणविधौ शीघ्रफलानयनस्थं चित्रं द्रष्टव्यम् ॥५॥

अब विना स्पष्टकोटि के कर्णानयन कहते हैं ।

हि. भा.—अन्त्यफलज्या केन्द्रज्या घात में फलज्या से भाग देने से कर्ण होता है । अथवा त्रिज्या और भुजफल के घात में फलज्या से भाग देने से कर्ण होता है ॥५॥

उपपत्ति

यदि शीघ्रफलज्या में अन्त्यफलज्या पाते हैं तो शीघ्रकेन्द्रज्या में क्या इस अनुपात से शीघ्रकर्ण आता है $\frac{\text{शीघ्रान्त्यफज्या} \times \text{शीकेज्या}}{\text{शीफलज्या}} =$ शीकर्ण । अथवा शीघ्रफलज्या में यदि त्रिज्या पाते हैं तो शीघ्रभुजफल में क्या इस अनुपात से शीघ्रकर्ण आता है

$\frac{\text{त्रि} \times \text{शीभफ}}{\text{शीफज्या}} =$ शीकर्ण । इसी तरह मन्दकर्णनयन भी होता है ।

स्वोच्चनीच ग्रहस्फुटीकरणविधि नामक अध्याय में शीघ्रफलानयन के चित्र देखिये ॥ ५ ॥

इदानीं केन्द्रसम्बन्धे विशेषमाह ।

बाहुज्या समकर्णे परमफलेनान्वितं त्रिभं केन्द्रम् ।
त्रिज्यातुल्यश्रवणे परमफलगुणखण्डचापयुतम् ॥६॥
राशिज्या संगुणिता त्रिगुणकोटिगुणोऽथ हीनपदे ।
अन्त्यफलजीवयाप्ता परमफलज्या समेकर्णे ॥७॥
त्रिज्यान्त्यफलज्यायुतितुल्ये कर्णे ग्रहस्य केन्द्रं हि शून्यसमम् ।
तद्वियुति समे कर्णे केन्द्रं परिपूर्णराशिषट्कगतम् ॥८॥

वि.भा.—बाहुज्या समकर्णे (केन्द्रज्या तुल्यकर्णे) परमफलेनान्वितं त्रिभं (अन्त्यफलयुतनवत्यंशसमम्) त्रिज्यातुल्यश्रवणे (त्रिज्यातुल्यकर्णे) परमफलगुणखण्डचापयुतम् (अन्त्यफलार्धयुतनवत्यंशसमम्) केन्द्रांशमानमित्यर्थः । अथ त्रिगुणा (त्रिज्या) राशिज्या संगुणिता (त्रिशदंशज्यया गुणिता) अन्त्यफलजीवयाप्ता (अन्त्यफलज्याभक्ता) तदा हीनपदे (द्वितीयपदे तृतीयपदे च) परमफलज्या समे कर्णे (अन्त्यफलज्या तुल्यकर्णे) कोटिगुणः (केन्द्रकोटिज्या) भवेत् । त्रिज्यान्त्यफलज्या युतितुल्यकर्णे ग्रहस्य केन्द्रं शून्यसमं भवेत् । तद्वियुति (त्रिज्यान्त्यफलज्यान्तर) समे कर्णे केन्द्रं परिपूर्णराशिषट्कं भवेदिति ॥६-८॥

अत्रोपपत्तिः

अथ द्वितीयपदे कर्णवर्गः $=$ त्रि$^2+$ अन्त्यफज्या$^2 -$ २अं फज्या $\times$ केकोज्या $=$ क^2 यदि केन्द्रज्या $=$ कर्ण तदा त्रि$^2+$ अन्त्यफज्या$^2 -$ २ अंफज्या. केकोज्या $=$ केज्या$^2=$ त्रि$^2 -$ केकोज्या^{2} समशोधनेन अंफज्या$^2 -$ २ अंफज्या. केकोज्या $=$ $-$केकोज्या^{2} समयोजनेन अंफज्या$^2 -$ २ अंफज्या. केकोज्या $+$ केकोज्या$^2 =$ ० मूलग्रहणेन केकोज्या $-$ अफलज्या $=$ ० $\therefore$ केकोज्या $=$ अंफज्या वा केकोटि $=$ अन्त्यफल वा ९० $+$ अन्त्यफल $=$ केन्द्रांश ॥ अतः सिद्धं यद्यदा केन्द्रज्यातुल्यः कर्णो भवेत्तदाऽन्त्यफलयुतनवत्यंशसमं केन्द्रांशमानं भवेदर्थात्कक्षामध्यगतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त सम्पाते ग्रहे एवं केन्द्रांशमानं भवेदिति ।

यदि कर्णः $=$ त्रि तदा विचार्यते पूर्वकर्णवर्गस्वरूपम् $=$ त्रि$^2+$ अन्त्यफज्या^{2} $-$२ अंफज्या. केकोज्या $=$ क$^2=$ त्रि^{2} समशोधनेन अन्त्यफज्या$^2 -$ २ अंफज्या. केकोज्या $=$ त्रि$^2 -$ त्रि$^2 =$ ० पक्षयोः समयोजनेन अंफज्या $=$ २ अंफज्या. केकोज्या,

$$\therefore \frac{\text{अंफज्या}^2}{\text{२ फज्या}} = \frac{\text{अंफज्या}}{\text{२}} = \text{केकोज्या वा} \frac{\text{अन्त्यफल}}{\text{२}} = \text{केन्द्रकोटि} = \text{केन्द्रांश} - \text{९०}$$

$\therefore$ केन्द्रांश $= ९० + \frac{\text{अन्त्यफल}}{\text{२}}$ एतेन सिद्धं यद्यदा त्रिज्यातुल्यकर्णो भवेत्तदाऽन्त्यफलार्धयुतनवत्यंशसमं केन्द्रांशदानं भवेदर्थादेतन्मिते केन्द्रांशे त्रिज्यातुल्यः कर्णो भवतीति । यदा कर्णोऽन्त्यफलज्या समस्तदा केन्द्रांशमानं किं भवेदिति विचार्यते । अथ पूर्वकर्णवर्गस्वरूपम् $=$ त्रि$^2+$ अन्त्य$^2 -$ २ अंफज्या. केकोज्या $=$ कर्ण$^2 =$ अन्त्य-

फज्या^{२} समशोधनेन त्रि^{२} -- २ अंफज्या. केकोज्या = ०समयोजनेन त्रि^{२} = २ अंफज्या. केकोज्या अतः $\frac{\text{त्रि}^{२}}{\text{२ अंफज्या}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{त्रि}}{\text{२ अंफज्या}} = \frac{\text{राशिज्या. त्रि}}{\text{अन्त्यफलज्या}}$ केकोज्या एतेन सिद्धं यद्यदाऽन्त्यफलज्या तुल्यः कर्णो भवेत्तदैतावती केन्द्रकोटिज्या भवेत्। यदा त्रि + अन्त्यफज्या = कर्ण तदा केन्द्रांशमानं किं भवतीति विचार्यते। पूर्वकर्णवर्गस्वरूपम् = त्रि^{२} + अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = कर्ण^{२} = (त्रि + अंफज्या)^{२} = त्रि^{२} + अंफज्या^{२} + २ त्रि. अंफज्या समशोधनेन — २ अंफज्या. केकोज्या = २ त्रि. अंफज्या ∴ — केकोज्या = त्रि वर्गकरणेन केकोज्या^{२} = त्रि^{२} ∴ $\sqrt{\text{त्रि}^{२} - \text{केकोज्या}^{२}}$ = केज्या = ० ∴ केन्द्रांशाः = ० एतेन सिद्धं यद्यदा कर्णः = त्रि + अंफज्या तदा तत्र उच्चस्थाने केन्द्रांशाः शून्यसमा भवन्ति। यदा त्रि — अंफज्या = कर्ण तदा नीचस्थाने पूर्वोक्तयुक्त्या केन्द्रांशाः = १८०° = ६ राशिः ॥ अतः सिद्धम् ॥ ६-८ ॥

हि. भा.—केन्द्रज्या तुल्य कर्ण में अन्त्यफल युतनवत्यंश के बराबर केन्द्रांश होते हैं। त्रिज्या तुल्य कर्ण में अन्त्यफलयुत नवत्यंश के बराबर केन्द्रांश होते हैं। राशिज्या (तीस अंश की ज्या) त्रिज्या से गुणाकर अन्त्यफलज्या से भाग देने से अन्त्यफलज्या तुल्य कर्ण में केन्द्रांश होते हैं। त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के योग तुल्य कर्ण में केन्द्रांश के अभाव (शून्य) होते हैं, त्रिज्या और अन्त्यफलज्या के अन्तर तुल्य (अन्त्यफलज्या रहित त्रिज्या) कर्ण में केन्द्रांश ६ राशि (१८०°) के बराबर होते हैं ॥६-८॥

उपपत्ति

द्वितीय पद में कर्ण वर्ग = त्रि^{२} + अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = के^{२}, यदि कर्ण = केज्या तब त्रि^{२} + अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = केन्द्रज्या^{२} = त्रि^{२} — केकोज्या^{२} समशोधन से अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = — केकोज्या^{२} समान जोड़ने से अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या + केकोज्या^{२} = (केकोज्या — अंफज्या)^{२} = ० मूल लेने से केकोज्या — अंफज्या = ० ∴ केकोज्या = अंफज्या वा केकोटि = अन्त्यफल ∴ ९० + अन्त्यफ = केन्द्रांश इससे सिद्ध होता है इतने केन्द्रांश मे केन्द्रज्या तुल्य कर्ण होते हैं। यदि कर्ण = त्रि तब केन्द्रांश मान क्या होगा इसके लिये विचार करते हैं। पहले के कर्ण वर्ग = त्रि^{२} + अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = क^{२} = त्रि^{२} समशोधन करने से अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = त्रि^{२} — त्रि^{२} = ० समयोजन से अंफज्या^{२} = २ अंफज्या. केकोज्या ∴ $\frac{\text{अंफज्या}^{२}}{\text{२ अंफज्या}} = \frac{\text{अंफज्या}}{२}$ केकोज्या वा $\frac{\text{अंफल}}{२}$ = केकोटि = केन्द्रांश — ९० ∴ केन्द्रांश = ९० + $\frac{\text{अन्त्यफल}}{२}$ इससे सिद्ध होता है कि इतने केन्द्रांश में त्रिज्या तुल्य कर्ण होते हैं। यदि कर्ण = अन्त्यफलज्या तब विचार करते हैं। पहले कर्ण वर्ग = त्रि^{२} + अंफज्या^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = क^{२} = अंफज्या^{२} समशोधन करने से त्रि^{२} — २ अंफज्या. केकोज्या = ० समान जोड़ने से त्रि^{२} = २ अंफज्या.केकोज्या ∴ $\frac{\text{त्रि}^{२}}{\text{२ अंफज्या}} = \frac{\text{त्रि. त्रि}}{\text{२ अंभज्या}} = \frac{\text{राशिज्या. त्रि}}{\text{अंफज्या}}$ = केकोज्या

इससे सिद्ध होता है जब अन्त्यफलज्या तुल्य कर्ण होता है तब कोटिज्या इतनी होती है यदि त्रि+अंफज्या=कर्ण तब केन्द्रांश प्रमाण क्या होता है विचार करते हैं। पहले के कर्ण वर्ग=त्रि^{२}+अंफज्या^{२}—२ अंफज्या. केकोज्या=क^{२}=(त्रि+अंफज्या)^{२} =त्रि^{२}+अंफज्या+२ त्रि. अंफज्या

समशोधन करने से

—२ अंफज्या. केकोज्या=२ त्रि अंफज्या ∴ —केकोज्या=त्रि वा केकोज्या^{२}= त्रि^{२} ∴ केज्या=० वा केन्द्रांश=० इससे सिद्ध होता है जब कर्ण=त्रि+अंफज्या तब केन्द्रांश शून्य होता है। जब त्रि—अंफज्या=कर्ण तब पूर्वयुक्ति से केन्द्रांशमान=१८०° =६ राशि होते हैं। अतः सिद्ध हो गये ॥६-८॥

इदानीं गतिस्पष्टीकरणमाह।

मृदुवृत्तकेन्द्रभुक्त्योर्वधाद् भभागाप्तहीनयुग्भुक्तिः।
तच्छीघ्रभुक्तिविवरत्रिज्याघातात्स्वशीघ्रसंज्ञेन ॥९॥
कर्णेनाप्तफलोना चलभुक्तिः स्पष्टभुक्तिः स्यात्।
वक्रे स्पष्टगतावपि वक्रारम्भे गतिः शून्यम् ॥१०॥

वि. भा.—मृदुवृत्तकेन्द्रयुक्त्योर्वधात् (मन्दपरिधिकेन्द्रगत्योर्घातात्) भभागाप्तहीनयुग्भुक्तिः (भांशविभक्तफलेन रहितसहितमध्यमगतिः) मन्दस्पष्टा गतिः स्यात्। तच्छीघ्रभुक्तिविवरत्रिज्याघातात् (मन्दस्पष्टगतिरहितशीघ्रोच्चगति त्रिज्यावधात्) स्वशीघ्रसंज्ञेन कर्णेन (शीघ्रकर्णेन) आप्तफलोनाचलभुक्तिः (शीघ्रकर्णभक्तफलेन रहितशीघ्रोच्चगतिः) स्पष्टभुक्तिः (ग्रहस्पष्टगतिः) स्यात्। वक्रे स्पष्टगतौ सत्यामपि वक्रारम्भे ग्रहस्पष्टगतिः शून्यं भवेदिति ॥९-१०॥

अत्रोपपत्तिः

यदि त्रिज्यया मन्दकेन्द्रज्या लभ्यते तदा मन्दान्त्यफलज्यया किं समागच्छति

$$\text{मन्दभुजफलम्}=\frac{\text{मंकेज्या}\times\text{मं अंफज्या}}{\text{त्रि}}=\frac{\text{मंकेज्या}\times\text{मंपरिधि}}{\text{भांश}}\text{। यतः }\frac{\text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}}$$

$$=\frac{\text{मंपरिधि}}{\text{भांश}}\text{ एवं }\frac{\text{मं'केज्या}\times\text{मंपरि}}{\text{भांश}}\text{भु'जफल}$$

$$\text{अनयोर्भुजफलयोरन्तरम्}=\text{मं'भुजफल}\sim\text{मंभुजफल}=\text{मंफलज्या}\sim\text{मंफलज्या}$$
$$=\text{मन्दफलान्तर}=\text{मन्दफलगति}\quad\text{(स्वल्पान्तरात्)}$$

$$\text{तदा }\frac{\text{मं'केज्या}\times\text{मंपरि}}{\text{भांश}}\sim\frac{\text{मंकेज्या}\times\text{मंपरिधि}}{\text{भांश}}=\text{मन्दफलगति}$$

$$=\frac{\text{मंपरिधि}}{\text{भांश}}(\text{मं'केज्या}\sim\text{मंकेज्या})=\frac{\text{मंपरिधि}\times\text{मंकेगति}}{\text{भांश}}=\text{मन्दफलगति}$$

अत्राचार्येण मं'केज्या ~ मंकेज्या = मं'के — मंके = मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्द-केन्द्रगतिः स्वल्पान्तरात्स्वीकृतम् ।

ततः मगति ± मंफलगति = मन्दस्पगति । शी घ्रोच्चगति — मन्दस्पग = शीकेगति

$$\text{ततः } \frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीकर्ण}} = \text{स्पकेज्या। एवं } \frac{\text{शीकेज्या. त्रि}}{\text{शीक}} = \text{स्प'केज्या}$$

अनयोरन्तरम्

$$\frac{\text{शीकेंज्या.त्रि}}{\text{शीक}} \sim \frac{\text{शीकेज्या.त्रि}}{\text{शीक}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}(\text{शी'केज्या} \sim \text{शीकेज्या}) = \text{स्प'केज्या}$$

$\sim$ स्पकेज्या $= \frac{\text{त्रि} \times \text{शीकेग}}{\text{शीकर्ण}} =$ स्प'केज्या $\sim$ स्पकेज्या = स्पकेगति, अत्राचार्येण स्व-ल्पान्तरात् शीघ्रकेन्द्रज्यान्तर = शीघ्रकेन्द्रगति । तथा स्पष्टकेन्द्रज्यान्तर = स्पष्टकेन्द्रा-न्तर = स्पष्टकेन्द्रगति स्वीकृतम्

$$\text{तदा } \frac{\text{त्रि.शीकेग}}{\text{शीक}} = \text{स्पकेग ततः शीउग — स्पकेग = स्पष्टगतिः ।}$$

यदा च विलोमशोधनं भवेत्तदा स्पष्टा गतिःऋणात्मिका भवेत्तदैव वक्रगतिः । परं कदा स्पष्टा गतिः ऋणात्मिका भवति तत्कारणं मया पूर्वमेव लिखितमिति तत एवा-वगन्तव्यमिति ॥ इदमानयनं न समीचीनमित्युपपत्तिदर्शनेनैव स्फुटमिति ॥९-१०॥

हि. भा.—मन्दपरिधि केन्द्रगति के घात में भांश से भाग देकर जो फल होता है उसको मध्यमगति में रहित सहित करने से मन्दस्पष्टगति होती है । मन्दस्पष्टगति रहित शीघ्रोच्चगति को त्रिज्या से गुणकर शीघ्रकर्ण से भाग देने से जो फल होता है उसको शीघ्रोच्चगति में घटाने से ग्रह की स्पष्टगति होती है । वक्रारम्भ में गति शून्य होती है ॥ ९-१० ॥

उपपत्ति

यदि त्रिज्या में मन्द केन्द्रज्या पाते हैं तो मन्दान्त्य फलज्या में क्या इस अनुपात से मन्दभुजफल होता है $\frac{\text{मंकेज्या} \times \text{मंअंफज्या}}{\text{त्रि}} =$ मंभुजफल = मंफलज्या ।

$\frac{\text{मं'केज्या.मंअ'फज्या}}{\text{त्रि}} =$ मं'भुफ = मं'फज्या दोनों के अन्तर करने से मं'भुजफ $\sim$ मंभुफल = मं'द-फज्या $\sim$ मंफज्या = मन्दफलान्तर = मन्दफलगति स्वल्पान्तर से

$$\frac{\text{म'केज्या.मंअं'फज्या}}{\text{त्रि}} \sim \frac{\text{मंकेज्या.मंअं'फज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{म'केज्या} \times \text{मंपरि}}{\text{भांश}} \sim \frac{\text{मंकेज्या.मंपरि}}{\text{भांश}} =$$

$$\frac{\text{मंपरिधि}}{\text{भांश}}(\text{म'केज्या} \sim \text{मंकेज्या}) = \frac{\text{मंपरिधि} \times \text{मन्दकेग}}{\text{भांश}} = \text{मन्दफलगति}$$

यहां भी आचार्य म'केज्या ∼ मंकेज्या = मके' — मंके = मन्दकेज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेन्द्रगति स्वल्पान्तर से मान लिये हैं।

तब $\frac{\text{मं परिधि} \times}{\text{भांश}}$ मन्दकेगति = मन्दफलगति ।

मध्यग ± मन्दफलग = मन्दस्पष्टगति । शीउग — मंस्पग = शीकेगति

तब $\frac{\text{शीकेज्या.त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्पकेज्या । एवं $\frac{\text{शी'केज्या.त्रि}}{\text{शीक}}$ = स्प'केज्या

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{शी'केज्या.त्रि}}{\text{शीक}} \sim \frac{\text{शीकेज्या.त्रि}}{\text{शीक}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}}$ (शी'केज्या ∼ शीकेज्या) = स्प'केज्या ∼ स्पकेज्या

$= \frac{\text{त्रि.शीकेग}}{\text{शीक}}$ = स्पष्टगति

यहां भी शी'केज्या ∼ शीकेज्या = शी'केन्द्र ∼ शीके = शीघ्रकेगति ।

तथा स्प'केज्या ∼ स्पकेज्या — स्प'केन्द्र = स्पष्टकेगति स्वल्पान्तर से माने हैं

∴ शीउग — स्पष्टकेगति = स्पष्टगति

यदि शीघ्रोच्चगति में स्पष्टकेन्द्रगति नहीं घटेगी तब विलोम शोधन से स्पष्टगति ऋणात्मक होती है यही वक्रगति कहलाती है । ऐसी स्थिति कब होती है इसका कारण हम पहले लिख चुके हैं ये बातें वहीं से समझनी चाहिये । यह आनयन बिलकुल ठीक नहीं है यह उपपत्ति देखने ही से स्पष्ट है ॥ ९-१० ॥

इदानीमुदयास्तदिनानयनं वक्रानुवक्रदिनानयनं चाह ।

अस्तोदयकेन्द्रान्तः कलिकाः केन्द्रगतिभाजिता दिवसाः ।
वक्रानुवक्रकेन्द्रान्तरलिप्तास्त्वेवं हि वक्राहाः ॥ ११ ॥

वि. भा.—अस्तोदयकेन्द्रान्तरकलाः केन्द्रगतिभक्तास्तदाऽस्तोदयदिनानि भवन्ति । एवं वक्रानुवक्रकेन्द्रान्तरकलाः केन्द्रगतिभक्तास्तदा वक्रदिनानि भवन्ति ॥११॥

अत्रोपपत्तिः—

यदि केन्द्रगत्यैकं दिनं लभ्यते तदाऽस्तोदयकेन्द्रान्तःकलाभिः किमित्यनुपातेनाऽस्तोदयदिनानि भवन्ति । एवमेव केन्द्रगत्यैकं दिनं लभ्यते तदा वक्रानुवक्रान्तःकेन्द्रकलाभिः किमित्यनुपातेन वक्रा दिनान्यागच्छन्तीति ॥ पूर्वपठितवक्रदिनोपपत्तिरियमेवोह्येति ॥ ११ ॥

अब उदयास्तदिन और वक्रानुवक्र दिनानयन करते हैं ।

हि. भा.—अस्तोदय केन्द्रान्तःकला को केन्द्रगति से भाग देने से अस्तोदय दिन होते हैं । इसी तरह वक्रानुवक्र केन्द्रान्तर कला में भी वक्रदिन होते हैं ॥ ११ ॥

उपपत्ति

यदि केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो अस्तोदयकेन्द्रान्तर कला में क्या इस अनुपात से उदयास्त दिन आते हैं। इसी तरह केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो वक्रानुवक्र केन्द्रान्तर कला में क्या इस अनुपात से वक्र दिन आते हैं ।। पहले ग्रहों के वक्र दिन आचार्य ने पठित किये हैं उसकी उपपत्ति यही समझनी चाहिये ।।११।।

इदानीं निरंशदिनानयनमाह ।

युगकेन्द्रभगणभक्ता युगभूदिवसा निरंशदिवसाः स्युः ।। ११$\frac{1}{2}$ ।।

वि. भा.—युगभूदिवसाः (युगसावनवासराः) युगकेन्द्रभगणभक्तास्तदा निरंशदिवसाः स्युः ।। ११$\frac{1}{2}$ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

एककेन्द्रभगणे यानि दिनानि तानि निरंशदिनानि । तज्ज्ञानार्थमनुपातो यदि युगकेन्द्रभगणैर्युगसावनदिनानि लभ्यन्ते तदैकेन केन्द्रभगणेन किमित्यनुपातेनैककेन्द्रभगणसम्बन्धीनि सावनदिनान्यागच्छन्ति त एव निरंशदिवसाः पूर्वं निरंशदिवसा आचार्येण पठितास्तदुपपत्तिरियमेव बोध्या इति ।। ११$\frac{1}{2}$ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे फलज्यास्फुटीकरणविधिर्नामकः
पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।।

अब निरंश दिनानयन करते हैं ।

हि. भा.—युगकुदिन में युग केन्द्रभगण से भाग देने पर निरंश दिन होते हैं ।।११$\frac{1}{2}$।।

उपपत्ति

एक केन्द्र भगण में जो दिन हैं वे ही निरंश दिन कहलाते हैं। उनके ज्ञान के लिये अनुपात करते हैं यदि युग केन्द्र भगण में युगकुदिन पाते हैं तो एक केन्द्र भगण में क्या इस अनुपात से एक केन्द्र भगण सम्बन्धी सावन दिन होते हैं वे निरंश दिन कहलाते हैं। पहले निरंश दिन के पाठ आचार्य ने किये हैं उसकी उपपत्ति यही समझनी चाहिये ।। ११$\frac{1}{2}$ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में फलज्यास्फुटीकरणविधि नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ ।।



षष्ठोऽध्यायः

तिथ्यानयनविधिः

तत्रादौ तिथ्यानयनमाह ।

भानूनविधोर्भागा द्वादशभक्ताः फलं गतास्तिथयः ।
षष्टिघ्ने गतगम्ये गतिविवरांशोद्धृते नाड्यः ॥१॥

वि. भा.—भानूनविधोर्भागाः (सूर्यरहितचन्द्रस्यांशा रविचन्द्रान्तरांशाः) द्वादशभक्ताः फलं गतास्तिथयो भवन्ति । गतगम्ये (भुक्तभोग्यांशप्रमाणे षष्टिघ्ने (षष्टिगुणिते) गतिविवरांशोद्धृते (रविचन्द्रगत्यन्तरांशभक्ते) तदा नाड्यः (गतानाड्यो भोग्यनाड्यश्च) भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

चक्रांशाः (३६०) त्रिंशता भक्तास्तदा द्वादश भवन्त्यतो रविचन्द्रयोरन्तरांशा प्रतितिथौ द्वादशांशा भवन्त्यतोऽनुपातो यदि द्वादभिरंशै रविचन्द्रान्तरांशैरेका तिथिर्लभ्यते तदेष्टरविचन्द्रान्तरांशैः किमित्यनुपातेन गतास्तिथयस्तत्स्वरूपम्

$\frac{१ \times (\text{चं}—\text{र})}{१२} = \frac{\text{चं}—\text{र}}{१२}$, १२—गतांश=भोग्यांश ततोऽनुपातो यदि रविचन्द्रगत्यन्तरांशैः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा गतांशैर्भोग्यांशैश्च किमित्यनुपातेन गतनाड्यो भोग्यनाड्यश्च भवन्तीति ॥१॥

अब तिथ्यानयनविधि अध्याय प्रारम्भ करते हैं ।

उसमें पहले तिथ्यानयन करते हैं ।

हि. भा.—रवि और चन्द्र के अन्तरांश को बारह से भाग देने से फलगततिथि होती है । तिथिभुक्तांश और भोग्यांश को साठ से गुणकर रवि और चन्द्र के गत्यन्तरांश से भाग देने से गततिथि घटी और गम्यतिथि घटी होती है ॥१॥

उपपत्ति

चक्रांश (३६०) को तीस से भाग देने से बारह होता है अर्थात् प्रतितिथि में रवि और चन्द्र के अन्तर बारह अंश होते हैं । इस पर से अनुपात करते हैं यदि बारह अंश रवि चन्द्रान्तरांश में एक तिथि पाते हैं तो इष्ट रविचन्द्रांतरांश में क्या इस अनुपात से गततिथि

प्रमाण आता है $\frac{१(\text{चन्द्र}-\text{रवि})}{१२}$ = गततिथि, १२—गततिथ्यंश = भोग्यतिथ्यंश, अब अनुपात से एतत्सम्बन्धी दण्ड लाते हैं यदि रवि और चन्द्र के गत्यन्तरांश में साठ दण्ड पाते हैं तो गततिथ्यंश और भोग्यांश में क्या इस अनुपात से गत घटी, और गम्य घटी आ जायेगी ।।१।।

इदानीं नक्षत्रानयनार्थमाह ।

त्रिगुणा ग्रहस्य भागाः खाब्धिहृता भानि येययाते च ।
नखनिहते स्वगतिहृते दिनादिभुक्तर्क्ष भोग्यः स्यात् ।।२।।

वि. भा.—ग्रहस्य भागाः (इष्टग्रहस्यांशाः) त्रिगुणाः, खाब्धिहृताः (४० एभिर्भक्ताः) फलं भानि (गतनक्षत्राणि) स्युः । शिष्टं वर्तमाननक्षत्रस्य गतशेषं भवति । तत् ४० अस्माद् विशोध्य शिष्टं भोग्यं भवेत् ते येययाते (भोग्यभुक्ते) नखनिहते (विंशत्या गुणिते) स्वगतिहृते (स्वस्पष्टगत्या भक्ते) दिनादिभुक्तर्क्षभोग्यः स्यात् (वर्तमाननक्षत्रस्य तेन ग्रहेण गतगम्यानि दिनानि भवन्तीति ।।

अत्रोपपत्तिः

स्पष्टग्रहस्य मेषादिभिर्भुक्तराशिर्नक्षत्राणि भवन्ति, सपादद्विनक्षत्रैरर्थान्नवभिर्नक्षत्रचरणैर्मेषादयः प्रत्येकं राशयो भवन्ति, एकराशिकलाः (१८००) नवभिर्भक्तास्तदैकनक्षत्रपादकला भवन्ति चतुर्भिर्गुणनेन ८०० कला एकनक्षत्रे कलाः स्युः । ततोऽनुपातो यद्यष्टशतकलाभिरेकं नक्षत्रं लभ्यते तदा ग्रहकलाभिः किं समागच्छति गतनक्षत्राणि तत्स्वरूपम् = $\frac{१\times\text{ग्रहभाग}\times६०}{८००}=\frac{\text{ग्रहभाग}\times३}{४०}$ = गतनक्षत्र

$+\frac{\text{शे}}{२०}$, शिष्टं यदा विंशत्या गुण्यते तदा वर्तमाननक्षत्रस्य गतखण्डस्य कला पिण्डात्मकं भवति ततः पूर्ववदिनादि मानमानयमिति ।।२।।

अब नक्षत्रानयन के लिये कहते हैं ।

हि.भा.—ग्रह के अंश को तीन से गुणकर चालीस से भाग देने से जो फलगत नक्षत्र होते हैं, शेष वर्तमान नक्षत्र के गत शेष होता है । उसको चालीस में घटाने से शेष भोग्य होता है । भोग्य और भुक्त को बीस से गुणकर अपनी स्पष्टगति से भाग देने से फल वर्तमान नक्षत्र के उस ग्रह से भोग्य और भुक्त दिन होते हैं ।।२।।

उपपत्ति

स्पष्ट ग्रह के मेषादि भुक्तराशि करके नक्षत्र होते हैं । सवा दो नक्षत्र अर्थात् नौ पाद (चरण) करके मेषादि प्रत्येक राशि होती है । एक राशि कला १८०० को नौ से भाग देने से एक नक्षत्र पाद की कला होती है उसको चार से गुणने से ८०० एक नक्षत्र कला होती है । तब अनुपात करते हैं, यदि ८०० कला में एक नक्षत्र पाते हैं तो ग्रहकला में क्या

इस अनुपात से फल गत नक्षत्र प्रमाण आता है, $\frac{१ \times \text{ग्रहभाग} \times ६०}{८००} = \frac{\text{ग्रहभाग} \times ३}{४०} =$

गतनक्षत्र + $\frac{\text{शे}}{४०}$, शेष को बीस से गुणने से वर्तमान नक्षत्र के गत खण्ड का कलापिण्ड होता है। उस पर पूर्वव दिनादिमान लाना चाहिए ।।२।।

इदानीं स्थूलमानयनमभिधाय सूक्ष्मानयनमाह ।

स्थूलोऽयं स्पष्टोऽसावध्यर्धं समार्धभोगो यः ।
तं वच्म्यधुनाऽभिजितः स्फुटभोगोऽहं विशेषेण ।।३।।
ब्राह्मोत्तरा विशाखादित्यान्यध्यर्धभोगसंज्ञानि ।
वारुणसार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्राण्यर्धभोगीनि ।।४।।
समभोगीन्यन्यानि समभोगो मध्यमा गतिः शशिनः ।
स्वदलयुताऽध्यर्धाख्यो भागो दलिताह्विखण्डमध्यः ।।५।।
भगणाश्चक्राच्छुद्धा भोगोऽभिजितोऽथवेन्दुभगणहृताः ।
क्ष्माहाः फलं भहीनं घटिकाद्यो भघ्नशशिभगणाः ।।६।।
वियुक्ताः क्वहाद्गतिघ्ना भगणविभक्ता विधोः कलादिर्वा ।
भगणकला शशिभुक्त्या भजिताः शेषोऽथवा प्रोक्तः ।।७।।
द्युचरो भभोगहीनो गतयेया लिप्तिकाः स्वभुक्तिहृताः ।
भवति दिवसादिभोगो द्युचराक्रान्तस्य धिष्ण्यस्य ।।८।।

वि. भा.—अयं (कथितप्रकारः) स्थूलः । यः अध्यर्धसमार्धभोगोऽसौ स्पष्टः । अधुनाऽहं तं (स्पष्टं) वच्मि (ब्रुवे) विशेषेणाभिजितः स्फुटभोग इति । ब्राह्मोत्तराविशाखादित्यानि (रोहिणीत्र्युत्तरविशाखापुनर्वसू-इतिषट् नक्षत्राणि), अध्यर्धभोगसंज्ञानि (अर्धाधिकनक्षत्राणि) भोगं प्रत्येकमष्ट विलिप्तोना रसाष्टरुद्रा ११८५।५२ गतिकलाप्रमाणमिति । वारुणसार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्राणि (शतभिगश्लेषार्द्रास्वातिभरणिज्येष्ठाख्यानि षट्नक्षत्राणि), अर्धभोगानि (चन्द्रमध्यमगतिकलाऽर्धभोगानि) अन्यानि नक्षत्राणि समभोगीनि (चन्द्रमध्यमगतिकला ७९०।३५ प्रमाणभोगानि) इत्येव स्पष्टीकरोत्यग्रे ।।३-४।।

शशिनः (चन्द्रस्य) मध्यमा गतिः समभोगोऽर्थाच्चन्द्रमध्यमगति-तुल्यानि भोगमानानि येषां तानि नक्षत्राणि समभोगसंज्ञकानि, स्वदलयुता मध्यमा गतिः (स्वर्धयुतचन्द्रमध्यमगतितुल्यानि भोगमानानि येषां तानि नक्षत्राणि) अध्यर्धाख्यः, दलिता (चन्द्रगत्यर्धतुल्या) येषां भोगकला तानि खण्डमध्यः (अर्धभोगः), चक्रात् (भगणकलातः) भगणाः (सर्वर्क्षभोगाः) शुद्धाः (रहिताः) तदाऽभिजितो भोगः स्यात् । अथवेन्दुहृताः (चन्द्रभगणभक्ताः) क्ष्माहाः (भूदिवसाः) फलं भहीनं तदा घटिकाद्यः स्यात् । कहात् (कुदिनतः) भघ्नशशिभगणाः (सप्तविंशतिगुणितचन्द्रभगणाः) वियुक्ताः (रहिताः) गतिघ्नाः (गतिगुणिताः) विधोर्भगण-

विभक्ताः चन्द्रभगणभक्ता) वा कलादिफलं स्यात् । भगणकला शशिभुक्त्या (चन्द्रगत्या) भजिताः (भक्ताः) अथवा शेषः स एव प्रोक्ताः । द्युचरः (ग्रहः) भभोगहीनः गतयेयालिप्तिकाः (गतगम्यकलाः) स्वभुक्तिहृताः (ग्रहगतिभक्ताः) तदा द्युचराक्रान्तस्य (ग्रहवेष्टितस्य) धिष्ण्यस्य (नक्षत्रस्य) दिवसादिभोगो भवेत् ।

सर्वर्क्षभोगसंख्याः = २१३४६ चक्रकलाभ्यो २१६०० विशोध्य शिष्टा २५४ ऽभिजितो भुक्तिकला प्रमाणम् । अथवा सप्तविंशतिगुणितचन्द्रभगणाः कुदिनेभ्यो विशोध्याशेषे भगणे कुदिनभक्ते एकदिनभवा कलात्मिका गतिर्भवेत् । इष्टग्रहस्य कला समूहा नक्षत्रभोगकलाः ८०० विशोध्यास्तदा ग्रहभुक्तानि नक्षत्राणि भवन्ति, शेषं भुक्तं ८०० कलाभ्यो विशोध्यं शेषं गम्यं ततो ग्रहगतिकलायामेकं दिनं लभ्यते तदा गतकलायां गम्यकलायां च किमित्यनुपातेन गतदिनानि गम्यदिनानि भवन्ति शेषं स्पष्टम् ॥ ५-८ ॥

अत्रोपपत्तिः

षडध्यर्धभोगकलानामैक्यम् $= \frac{३ \text{ चंग}}{२} \times ६ = ९$ चंग

षडर्धभोगकलानामैक्यम् $= \frac{\text{चंग}}{२} \times ६ = ३$ चंग

पञ्चदशैकभोगकलानामैक्यम् = १५ चंग = १५ चंग

सर्वयोगकलाः = २७ चंग

चक्रकलाभ्यः शुद्धाः सर्वयोगकला जाता अभिजिद्भोगकलास्तद्दिनगतिः = चक्रक—२७ चंग इयं कुदिनगुणा चक्रकलाभक्ता जाता अभिजितो भगणाः = कुदिन—२७ चंभगण । युगकुदिन युगचन्द्र भगणयोर्ग्रहणेन युगे, कल्पकुदिनकल्प चन्द्र भगणयोर्ग्रहणेन कल्पेऽभिजितो भगणा भवन्तीति ॥

हि. भा.—यह कथित प्रकार स्थूल है । अध्यर्ध; सम, अर्धभोग यह जो है सो स्पष्ट है, इसको अब कहता हूं विशेष रूप से अभिजित के स्फुटभोग को कहता हूं । रोहिणी, तीनों उत्तरा, विशाखा; पुनर्वसु ये छः नक्षत्र अध्यर्ध भोगसंज्ञक हैं, शतभिषक्, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति, भरणी, ज्येष्ठा ये छः नक्षत्र अर्धभोग-संज्ञक हैं । अन्य नक्षत्र सब समभोग संज्ञक है । चन्द्र की मध्यमगति के बराबर भोग वाले नक्षत्र सब समभोग संज्ञक है । चन्द्रगत्यर्धयुत चन्द्रगति के बराबर भोग वाले नक्षत्र सब अध्यर्ध संज्ञक हैं । चन्द्रगत्यर्ध के बराबर भोग वाले नक्षत्र अर्धभोग संज्ञक हैं । चक्रकला में भगण (सर्वर्क्षभोग) को घटाने से अभिजित का भोग होता है, अथवा कुदिन को चन्द्रभगण से भाग देने से जो फल होता है उसमें नक्षत्रहीन करने से घटिकादि भोग होता है । सत्ताइस गुणित चन्द्रभगण को कुदिन में घटाने से शेष अभिजित् का कल्प मण्डल यदि युगकुदिन में सत्ताइस गुणित चन्द्रभगण को घटाया जायगा तब अभिजित का युग मण्डल होता है । इससे एक अहर्गण को गुणकर कुदिन से भाग देने से भगणादि फल होता है । यहां भगण और राशि नहीं है चार अंश, १४ कला आती है

यही अभिजित् का गतिप्रमाण है। अथवा गतिगुणित पूर्व फल को चन्द्रभगणसे भाग देने से कलादि फल होता है अथवा भगणकला को चन्द्रगति से भाग देने से शेष वही फल होता है। ग्रह कला में नक्षत्रभोगकला ८०० को घटाने से जो गत या गम्यकला होती है उसको ग्रहगति से भाग देने से ग्रहाक्रान्त नक्षत्र के दिनादि भोग होते हैं। सर्वर्क्ष भोग संख्या = २१३४६ को चक्रकला २१६०० में घटाने से शेष रहा २५४ यह अभिजित के गतिकला प्रमाण है। अथवा सत्ताईस गुणित चन्द्रभगण को कुदिन में घटाना शेष भगण को कुदिन से भाग देने से एक दिन की कलात्मक गति होती है। इष्टग्रह कला में नक्षत्र भोग कला ८०० घटाने से ग्रहभुक्त नक्षत्र होते हैं शेष भुक्त होता है, ८०० सौ कला में भुक्त को घटाने से गम्य (भोग्य) होता है, तब ग्रहगतिकला में एक दिन पाते हैं तो गतकला और गम्यकला में क्या इस अनुपात से गतदिन और गम्यदिन आ जायेंगे। शेष स्पष्ट है ॥ ३-८ ॥

उपपत्ति

छः अध्यर्धभोगकलाओं के योग = $\frac{३ \text{ चंग}}{२}$ × ६ = ९ चंग

छः अर्धभोगकलाओं के योग = $\frac{\text{चंग}}{२}$ × ६ = ३ चंग

पन्द्रह एक भोगकलाओं के योग = १५ चंग = १५ चंग

सब योग कला = २७ चंग

इनको चन्द्रकला में घटाने से अभिजित् की भोगकला = चक्रक—२७ चंग इसको कुदिन से गुण कर चक्रकला से भाग देने से अभिजित् के युग या कल्प में भगण होते हैं कुदिन—२७ चं भ.। युगकुदिन, युगचन्द्रभगण ग्रहण करने से युग में अभिजित् भगण आयेगा। कल्पकुदिन, कल्पचन्द्र भगण लेने से कल्प में अभिजित भगण आवेंगे ॥३-८॥

इदानीमभिजितो भुक्तिमाह।

वैश्वान्त्यांघ्रावभिजिच्छ्रवणघटी चतुष्टये प्रथमे।
तत्रेष्टं भवति कृतं जातस्य मृत्युरचिरेण ॥ ९ ॥

वि.भा.—वैश्वान्त्यांघ्रौ (उत्तराषाढ़चतुर्थचरणे) प्रथमे श्रवणघटी चतुष्टये अर्थादुत्तराषाढ़स्य चतुर्थपादः श्रवणस्य च प्रथमाश्चतस्रो नाड्योऽभिजितो भुक्तिः स्यात् तत्र यदि जातकस्येष्टं कृतं भवेदर्थात्तत्र यदि कस्यापि जन्म भवेत्तदाऽचिरेण (स्वल्पकालेन) मृत्युर्भवेदिति।

अभिजिद्भुक्तिपरिज्ञाने वृद्धैरप्येवमुक्तो यथा तद्वाक्यम्—

पादश्चतुर्थः किल विश्वभस्य नाड्यश्चतस्रः प्रथमाश्च विष्णोः।
उक्ताभिजिद्भुक्तिरितीयमस्या स्थितो ग्रहो विध्यति धातृताराम् ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनेत्थं कथ्यते 'सा वैश्ववैष्णव भमध्यगधिष्ण्यभुक्तिः'' इति ॥ ९ ॥

अब अभिजित् की भुक्ति कहते हैं ।

हि. भा.—उत्तराषाढा के चौथे चरण और श्रवण नक्षत्र की प्रथम चार घटी अभिजित् की भुक्ति (गति) है । उसमें जन्म होने से जातक की मृत्यु बहुत शीघ्र होती है, अभिजित् की भुक्ति के विषय में वृद्धों ने भी ऐसा ही कहा है । जैसे उनके वचन हैं—

'पादश्चतुर्थः किल विश्वभस्य नाड्यश्चतस्रः प्रथमाश्च विष्णोः ।' इत्यादि

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इस तरह कहते हैं "सा वैश्ववैष्णव भ मध्यग धिष्ण्य-भुक्तिः" ॥९ ॥

इमानीमन्यं विशेषमाह ।

षड्भानि पौष्णसंज्ञाद्रौद्राद् द्वादश नवेन्द्रसंज्ञाच्च ।
प्राग्मध्यान्त्यदलेषु व्रजन्ति योगं समं शशिना ॥१०॥

वि. भा.—पौष्णसंज्ञात् (रेवतीनक्षत्रात्) षड्भानि (षड्नक्षत्राणि) रौद्रात् (आर्द्रातः) द्वादश नक्षत्राणि, इन्द्रसंज्ञात् (ज्येष्ठातः) नक्षत्राणि प्राग्मध्यान्त्यदलेषु (पूर्वार्धमध्यापरार्धेषु) शशिना समं (चन्द्रेण साकं) योगं (समागमं) व्रजन्ति (प्राप्नुवन्ति) इति ॥१०॥

अब अन्य विशेष कहते हैं ।

हि. भा.—रेवती छः नक्षत्र, आर्द्रा से बारह नक्षत्र, और ज्येष्ठा से नौ नक्षत्र पूर्वार्ध, मध्य परार्ध में चन्द्र के साथ मिलते हैं ॥१०॥

इदानीं करणानयनं चाह ।

वीनेन्द्वंशा भक्ता रसैः फलं व्येकमश्वहृतशेषम् ।
करणं गतागतकला गतिविवरांशोद्धृताः कृष्णे ॥ ११ ॥
चतुर्दश्यन्ते शकुनिः कुह्वाश्चतुष्पदः प्रथमे ।
नागश्च परे भागे प्रतिपत्पूर्वे च किंस्तुघ्नम् ॥१२॥

वि. भा.—वीनेन्द्वंशाः (रविचन्द्रान्तरांशाः) रसैः (षड्भिः) भक्ताः फलं व्येकं (रूपरहितम्) अश्वहृतशेषं (सप्तभक्तावशिष्टं) करणं स्यात्, गतागतकलाः गतिः-विवरांशोद्धृताः (रविचन्द्रगत्यन्तरांशभक्ताः) तदा वर्त्तमानकरणस्य गतगम्यादि-नाड़िका सिद्धिरिति ॥११ ॥

अत्रोपपत्तिः।

यदा रविचन्द्रयोरन्तरांशा द्वादशांशसमास्तदैका तिथिर्भवति, करणस्य तिथेरर्धभोगित्वात् षड्भिरंशै रविचन्द्रान्तरांशैर्यद्येकं करणं लभ्यते तदेष्टरविचन्द्रान्तरांशैः किमित्यनुपातेन गतकरणान्यागच्छन्ति, लब्धेषु चैकमूनीक्रियते यतः प्रतिपदाद्यर्धगतत्वात् किंस्तुघ्नाख्यस्य स्थिरकरणस्य, ववादीनां च शुक्लप्रतिपद उत्तरार्धमारभ्य प्रवृत्तेः । गतगम्यादिघट्यानयनं तिथिगतगम्यानयनवद् बोध्यम् । अन्यैः श्रीपतिप्रभृतिभिरप्याचार्यैरेवमेव करणानयनं कृतमस्तीति ॥ ११॥

कृष्णचतुर्दश्यन्ते (कृष्णचतुर्दश्या उत्तरार्धे) शकुनिः करणम्। कुह्वाः (अमावास्यायाः) प्रथमेऽर्धे चतुष्पदः करणम्। अमावास्यायाः परभागे (अन्त्यार्धे) नागः करणम्। प्रतिपत्पूर्वे (प्रतिपदः पूर्वार्धे) किंस्तुघ्नं करणमुक्तमिति ।। १२ ।।

स्थिरकरणावस्थानविषये ब्रह्मगुप्तेनाप्येवमुच्यते, तथा च तद्वाक्यम्—

कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणि चतुष्पदं प्रथमे ।
तिथ्यर्धेऽन्ते नागं किंस्तुघ्नप्रतिपदाद्यर्धे ।।

इदं स्वीकृत्य लल्लेनाप्येतदनुसारमेव कथ्यते यथा—

शशिनि कृशशरीरे या चतुर्दश्यवश्यं शकुनिरपरभागे जायते नाम तस्याः ।
तदनु तिथिदले ये ते चतुष्पादनागे प्रतिपदि च यदाद्यं तद्धि किंस्तुघ्नमाहुः ।।

भास्कराचार्येण "शकुनितोऽसितभूतदलादित्यादिना" कृष्णचतुर्दश्यर्धात्परं यान्यवशिष्टानि त्रीणि प्रतिपत्पूर्वार्धे च चतुर्थमिति चत्वारि शकुनिनोऽर्थाच्छकुनि-चतुष्पदनागकिंस्तुघ्नानीति ।

सूर्यसिद्धान्ते "ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम् ।
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः" ।।

एतेनामावास्या पूर्वापरार्धयोर्नागचतुष्पदकरणे कथिते किन्तु तत्पूर्वापर-क्रमे भेदोऽस्त्यतः सुधावर्षिणीटीकायां प्रायः सर्वेषां मते ब्राह्मक्रम एव समीचीन-स्तेन प्रथमं शकुनिः द्वितीयं चतुष्पदं तृतीयं नागमित्यध्याहार्यम्" लिखितम् । श्रीपतिनापि ब्राह्मक्रम एव स्वीकृतोस्तीति ।। १२ ।।

अब करणानयन और स्थिर करणों की स्थिति कहते हैं।

हि. भा.—रवि और चन्द्र के अन्तरांश को छः से भाग देकर जो फल हो उसमें एक घटाकर सात से भाग देने से जो शेष रहता है वह करण होता है। गत और गम्यकला को रविचन्द्रगत्यन्तरांश से भाग देने से वर्त्तमान करण की गत गम्यनाड़ी होती है ।।११।।

उपपत्ति

जब रवि और चन्द्र के अन्तरांश बारह अंश होते है तो एक तिथि होती है। तिथि के आधे को करण होने के कारण यदि छः अंश रविचन्द्रान्तरांश में एक करण पाते हैं तो इष्ट रविचन्द्रान्तरांश में क्या इस अनुपात से गत करण आते हैं। यहां लब्धि में एक घटाते हैं क्योंकि किंस्तुघ्न नामक स्थिरकरण प्रतिपद के पूर्वार्ध में पड़ता है बवादि चर करणों की प्रवृत्ति शुक्ल प्रतिपद के उत्तरार्ध से होती है। इन कारणों से पूर्व लब्धि में एक घटाया जाता है। गत घटी और गम्य घटी के आनयन तिथि की गत घटी आदि के आनयन की तरह समझना चाहिये। श्रीपति आदि आचार्य ने इसी तरह करणानयन किया है ।। ११ ।।

कृष्णचतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनिकरण होता है। अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पदकरण और परार्ध में नागकरण होता है। प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्नकरण होता है ।।१२ ।।

हि॰ भा॰—स्थिर करण की स्थिति के विषय में ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं; उनके वाक्य ये हैं। 'कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणि चतुष्पदं प्रथमे' इत्यादि।

इसी को स्वीकार कर इसी के अनुसार लल्लाचार्य भी कहते हैं—'शशिनि कृश-शरीरे या चतुर्दश्यवश्यं शकुनिरपरभागे जायते नाम तस्याः।' इत्यादि।

भास्कराचार्य 'शकुनितोऽसितभूतदलात्' इससे कृष्ण चतुर्दशी के पूर्वार्ध के बाद जो बाकी तीन करण और प्रतिपद के पूर्वार्ध में चौथे करण को शकुनि सम्बन्धी करण 'शकुनि, चतुष्पद, नाग, किंस्तुघ्न' मानते हैं। सूर्यसिद्धान्त में—

ध्रुवाणि शकुनिनागं तृतीयं तु चतुष्पदम्। किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चा-परार्धतः।। इससे अमावस्या के पूर्वार्ध में नागकरण, पदार्ध में चतुष्पदकरण कहते हैं किंतु उन करणद्वय के पूर्वापर क्रम में भेद है इसलिए सुधावर्षिणी टीका में (प्रायः सब आचार्यों के मत से ब्राह्मक्रम ही ठीक है। अतः प्रथम शकुनिकरण, द्वितीय चतुष्पद, तृतीय नाग यह अध्याहार करना चाहिये। ये विषम लिखे हैं। श्रीपतिने भी ब्राह्मक्रमानुसार ही लिखे हैं इति ।।१२।।

इदानीं योगानयनमाह।

रविचन्द्रयोगलिप्ताः खखवसुभक्ताः फलं गतायोगाः।
खरसगुणे गतयेये गतियुतिभक्ते फलं नाड्यः ।।१३।।

वि॰ भा॰—रविचन्द्रयोगलिप्ताः (स्फुटरविचन्द्रयोगकलाः) खखवसुभक्ताः (८०० एभिर्भक्ताः) फलं गता योगाः स्युः। शेषं वर्त्तमानयोगताराया गतशेषं तत् ८०० भागहारात्त्यक्ताऽवशेषं गम्यगतयेये (गतगम्ये) खरसगुणे (६० एभिर्गुणिते) गतियुतिभक्ते (रविचन्द्रगतियोगभाजिते) फलं नाड्यः (गता नाडयो गम्या नाड्यश्च) भवन्तीति ।।१३।।

अत्रोपपत्तिः।

यदा रविचन्द्रयोगकलाः = ८०० कला भवन्ति तदैको योगो भवति, ततोऽनुपातो यदि ८०० कलाभी रविचन्द्रकलाभिरेको लभ्यते तदेष्टरविचन्द्रयोगकलाभिः किमित्यनुपातेनागच्छन्ति गतयोगाः। शेषं वर्त्तमानयोगस्य भुक्तं, तद्धर ८०० शुद्धं तदा भोग्यम्। ततो यदि रविचन्द्रगतियोगकलायां षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा गतगम्यकलाभिः किमित्यनुपातेन गतनाडिका गम्यनाडिकाश्च समागच्छन्तीत्यत उपपन्नम् ।।१३।।

अब योगानयन कहते हैं।

हि॰ भा॰—स्फुट रविचन्द्र योग कला को ८०० आठ सौ से भाग देने से फल गत-योग होते हैं। शेष वर्त्तमान योग तारा के गत शेष हैं उसको ८०० हर में घटाने से गम्य

होता है, गतकला को साठ से गुणकर रविचन्द्र के गतियोग से भाग देने से गत घटी और गम्य घटी होती है ॥१३॥

उपपत्ति ।

जब रवि और चन्द्र की योगकला ८०० कला होती है तो एक योग होता है, इससे अनुपात करते हैं यदि ८०० सौ रविचन्द्र योग कला में एक योग पाते हैं तो इष्ट रविचन्द्र-योगकला में क्या इस अनुपात से गत योग के प्रमाण आते हैं। शेष वर्तमान योगतारा के गत शेष है, उसको हर ८०० में घटाने से गम्य होता है, तब अनुपात करते हैं रविचन्द्र गतियोग कला में यदि ६० घटी पाते हैं तो गतकला और गम्य कला में क्या इस अनुपात से गतघटी और गम्य घटी आती है। इससे आचार्योक्त उत्पन्न हुआ ॥१३॥

इदानीं व्यतीपातवैधृतिपातयोर्लक्षणमाह ।

चक्रार्धे व्यतिपातो रविचन्द्रयुतौ समाज्यमधुयोगात् ।
विषवच्चायनभेदे क्रांतिसमत्वे तयोर्युतिभचक्रे ॥१४॥
वैधृतिरेवं क्रांतिसमत्वे तथायनैकत्वे ।
ऊनाधिकालिप्ताभ्यो गतियुतिलब्ध द्युगणसाध्याः ॥१५॥
स्वफलेन युक्तहीना रवीन्दुपाता विधावयनसन्धौ ।

वि. भा.—रविचंद्रयुतौ चक्रार्धे (रविचन्द्रयोगे राशिषट्के) अयनभेदे क्रान्ति-साम्ये समाज्यमधुयोगात् (समपरिमाणकघृतमधुयोगात्) विषवत् (विषमिव) व्यतिपातो व्यतीपातो नामयोगविशेषो भवतीति, विशेषेणात्यन्तं मंगलं पातयति नाश-यतीति व्यतीपातो व्यतिपातो वा योगविशेषः। एवं तयो रविचन्द्रयोर्युतिभचक्रे (रविचन्द्रयोगे द्वादशराशितुल्ये) अयनैकत्वे क्रांतिसमत्वे वैधृतिः वैधृतिनामयोगः स्यात्। मंगलं विशेषेण ध्रियते अवरोध्यते इति विधृतः, विधृत एव वैधृतः ॥ ऊनाधिकलिप्ताभ्यः (रविचन्द्रयोर्योगे चक्रचक्रार्धहीनाधिककलाभ्यः) गतियुति-लब्ध द्युगणसाध्याः (रविचन्द्रयोर्गतियोगेन विभक्ता लब्धं यद् दिनादिफलं तस्मात्) साध्याः स्वफलेन युक्तिहीना रवीन्दुपाताः। रविचन्द्रराहवो गतगम्य-दिवसकालिकाः कर्त्तव्या इति स्वस्वगतितश्चालनद्वारा तत्तात्कालिकीकरणं स्फुट-मेवेत्यनेन यदा रविचन्द्रयोर्योगो द्वादशराशिसमस्तथा षड्राशिसमस्तदा रविचन्द्र-पातानयनमाचार्येण क्रियते। विधावयनसन्धावित्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्धः।

अत्रोपपत्तिः ।

यदा रविचन्द्रयोर्योगः षड्राशितुल्यस्तदा तौ भिन्नायनगतावेकगोलस्थौ च भवतः। यथा यद्येकः=१ रा तदा द्वितीयः=८ रा, एवंतयोर्योगे षड्राशितुल्ये प्रमाणे १।५।।२।४।।३।३।।४।२ अत्र द्वयोर्भुजयोस्तुल्यत्वात्तयोः स्थानीये क्रांतिसमे भवतो-ऽतोऽत्र व्यतीपात नामपातः स्यादेवेति ॥ अत्र रविचन्द्रयोर्गेन सायनरवि-चन्द्रयोर्योगो बोध्य इति ॥१४-१५॥

यदा रविचन्द्रयोर्योगो द्वादशरविसमस्तदा तौ भिन्नगोलगतावेकायनगतौ च भवेताम् यथा यद्येकः=१ रा, तथा द्वितीयः=११ रा, एवं तयोः प्रमाणे १।११॥ २।१०॥३।६॥४।८॥५।७॥६।६॥७।५। अत्र द्वयोर्भिन्नगोलत्वमनयोरेकत्वं च, भुजयोस्तुल्यत्वाद्रविक्रान्तिचन्द्रस्थानीयक्रान्त्योश्च समत्वात्तत्र वैधृतपातस्य सम्भव इति । रविचन्द्रयोर्योगेन सायनयोर्योगो बोध्य इति शेषोपपत्तिः स्फुटैव ॥१४-१५॥

अब व्यतीपात और वैधृतिपात के लक्षण कहते हैं ।

हि.भा.—रवि और चन्द्र के योग छः राशि होने पर अयनभेद और क्रान्तिसाम्य होने से समान मात्रा में मधु और घृत के मिलने से जैसे विष होता है उसी तरह व्यतिपात नामक योग होता है, एवं रवि और चन्द्र के योग बारह राशि हो तो क्रान्तिसमत्व और अयन के एकत्व के कारण वैधृति नाम का पात होता है। यदि रवि चन्द्र का योग छः राशि से न्यून हो तो जितना न्यून है वह ऊन कला कहलाती है। यदि योग छः राशि से अधिक है तो जितना अधिक है वह अधिक कला कहलाती है। इसी तरह रवि चन्द्र के योग बारह राशि से न्यूनाधिक रहने पर ऊनकला और अधिककला समझनी चाहिये। उन कलाओं को स्फुट-गतियोग से भाग देना जो दिनादिफल हो उन गतैष्य दिन करके युक्त और हीन रवि, चन्द्र और पात को करना चाहिए अर्थात् रवि चन्द्र और पात को गत गम्य दिवसकालिक करना चाहिये। अपनी अपनी गति से चालन द्वारा तात्कालिकीकरण स्पष्ट ही है ॥१४-१५ ॥

उपपत्ति

यदि रवि और चन्द्र का योग छः राशि के बराबर है तब दोनों भिन्न अयन में और एक गोलगत होते हैं। जैसे यदि एक के मान=१ रा तो दूसरे=५ रा, इसी तरह उन दोनों के प्रमाण १। ५॥२।४॥३।३॥४।२॥ यहां रवि चन्द्र के भुजांश तुल्य होने से दोनों की स्थानीय क्रान्ति बराबर होती है इसलिये यहां व्यतीपात नाम का पातयोग होता है यहां रवि और चन्द्र के योग सायन रवि चन्द्र का योग समझना चाहिये ॥

यदि रवि और चन्द्र के योग बारह राशि के बराबर है तो दोनों भिन्न गोलगत और एक अयनगत होते हैं जैसे यदि एक के मान=१रा रो दूसरे के मान=११ रा एवं उन दोनों के प्रमाण १।११॥२।१०॥३।६॥४।८॥५।७॥६।६॥७।५ यहां दोनों के भिन्न गोलत्व और अयन में एकत्व है, दोनों के भुजांश बराबर होने के कारण स्थानीय क्रान्ति बराबर होती है अतः यहां वैधृति नाम का पातयोग होते हैं॥ यहां रविचन्द्र का योग सायन समझना चाहिये। यदि ऊन कला को रवि और चन्द्र के गतियोग से भाग देंगे तो एष्य दिन आयेंगे और अधिक कला में भाग देने से गत दिन आते हैं उन गत और एष्य दिनों से गुणित गतिकला को पृथक् स्थापित करना, गतिकला दिनावयव घटी से गुणकर साठ से भाग देने से जो लब्ध कला हो उसे पूर्व स्थापित में मिलाकर ग्रह में जोड़ने घटाने से तात्कालिक ग्रह होते हैं। इस तरह रवि, चन्द्र और राहु का तात्कालिकीकरण करना चाहिए ॥१४-१५॥

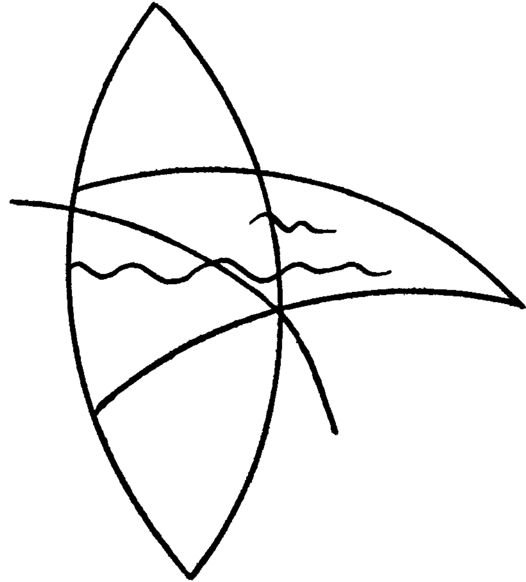
इदानीं साधारण्येन क्रान्तिसाम्यसंभवासंभवज्ञानमाह ।

विदिशोः क्षेपक्रान्त्योः क्रान्त्यूनोऽपक्रमः परमः ।।१६।।
यदि विक्षेपादूनो यातः पातस्तदाऽन्यथा भवति ।
अयनादेः प्रागूर्ध्वं पञ्चाग्निभिरंशकैः सन्धिः ।।१७।।

वि. भा.—विधौ (चन्द्रे) अयनसन्धौ तस्य या क्रान्तिः सा तस्य स्फुटा परमा तस्मात्स्थानादग्रतः पृष्ठतो वा यावच्चन्द्रश्चाल्यते तावत्तस्य क्रान्तिर्न्यूनैव भवति । अतोऽधिकया रविक्रान्त्या सह साम्यं नास्ति । अतोऽन्यथाऽस्तीति । अयनादितश्चन्द्रायनसन्धिः ३५ पञ्चत्रिंशदंशैः पूर्वं पश्चाद्भवतीति ।।

अत्रोपपत्तिः

अनेनाचार्येण चन्द्रगोलायनसन्ध्योर्ज्ञानं न कृतं केवलमित्येव कथ्यते यदयनादितः ३५ अंशान्तरे चन्द्रायनसन्धिर्भवति । भास्कराचार्येण चन्द्रगोलायनसन्ध्योर्ज्ञानं कृतं, विमण्डलनाड़ीमण्डलयोः सम्पातगतकदम्बप्रोतवृत्तं क्रान्तिवृत्ते यत्र लगति स चन्द्रगोलसन्धिः । तत्रैव नवतिं संयोज्य यो विन्दुर्भवति तं चन्द्रायनसन्धिं कथयति भास्करः । विमण्डलनाड़ीमण्डलयोः सम्पातान्नवत्यंशेन यद्वृत्तं तत्क्रान्तिवृत्ते यत्र लगति स विन्दुरेव पूर्वोक्तप्राचीनचन्द्रायनसन्धिः । यतश्चन्द्रगोलसन्धौ नवतियोजनेन स एव विन्दुर्भवति, परं तद्वृत्तं (विमंडलनाड़ीमण्डलसम्पातोत्पन्ननवत्यंशवृत्तं, क्रान्तिवृत्तोपरि लम्बरूपं नास्त्यतः प्राचीनोक्तचन्द्रायनसन्धिः समीचीनो नास्ति, विमण्डलनाड़ीमण्डलसम्पातोत्पन्ननवत्यंशवृत्तं यत्र विमण्डले लगति तद्विन्दूपरिगतकदम्बप्रोतवृत्तं यत्र कान्तिवृत्ते लगति स एव वास्तवचन्द्रायनसन्धिः । नवीना एतमेव बिन्दुं चन्द्रायनसन्धिं कथयन्ति, तयोः (प्राचीनायनसन्धिनवीनायनसन्ध्योरन्तरज्ञानं सुलभेनैव भवितुमर्हति, गोलसन्ध्यन्तरस्य (रविगोलसन्धिचन्द्रगोलसन्ध्योरन्तरस्य) ज्ञानं तत्परमं कदा भवतीत्येतस्यापि ज्ञानं सुलभेनैव भवति, प्राचीनायनसन्धिनवीनायन-



चित्र १०

सन्ध्योरन्तस्य परमत्वं भवति तज्ज्ञानं कदा भवति परन्तु ग्रन्थविस्तरभयादेते विषया अत्र न लिख्यन्ते इति ।।१६-१७।।

अब साधारण तथा संभवासंभव लक्षण कहते हैं।

हि. भा.—चन्द्र के अयनसन्धि में रहने से जो उनकी क्रान्ति होती है वह परस्मपष्ट क्रान्ति है। उस स्थान से आगे पीछे यावत् चन्द्र को चालित करते हैं तावत् उनकी क्रान्ति न्यून होती है। इसलिये अधिक रवि क्रान्ति के साथ तुल्यता नहीं होती है। इसमे भिन्न ही है। अयनादि से चन्द्रायनसन्धि ३५ अंश पर आगे पीछे होती है ।।

उपपत्ति

आचार्य ने चन्द्र की गोलसन्धि और अयनसन्धि का ज्ञान नहीं किया है, केवल इतना कहते हैं कि अयनादि से ३५ अंशान्तर पर अयनसन्धि होती है। भास्कराचार्य ने चन्द्रगोलसन्धि और अयनसन्धि का ज्ञान किया है, विमण्डल नाड़ीमण्डल सम्पातगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहां लगता है उस बिन्दु को चन्द्रगोलसन्धि कहते हैं। इसी में ९० अंश जोड़ देने से जो बिन्दु होता है उसको अयनसन्धि कहते हैं। विमण्डल नाड़ीमण्डल के सम्पात से नवत्यंश-व्यासार्ध वृत्त क्रान्तिवृत्त में जहां लगता है वही बिन्दु प्राचीनायनसन्धि (भास्करकथिता-यन सन्धि) है क्योंकि चन्द्रगोल सन्धि में ९० अंश जोड़ने से वही विन्दु होता है। परन्तु वह वृत्त (विमण्डल नाड़ीमण्डल सम्पातोत्पन्न नवत्यंश वृत्त) क्रान्तिवृत्त के ऊपर लम्ब रूप नहीं है इसलिये भास्कर स्वीकृत चन्द्रायनसन्धि ठीक नहीं है। विमण्डल नाड़ीमण्डल सम्पातोत्पन्न नवत्यंशवृत्त विमण्डल में जहां लगता है उस बिन्दु के ऊपर जो कदम्ब प्रोतवृत्त कीजियेगा वह क्रान्तिवृत्त में जहां लगेगा वही वास्तव चन्द्रायन सन्धि है, नवीन लोग इसी को चन्द्रायन सन्धि कहते हैं। प्राचीनायनसन्धि और नवीनायनसन्धि का अन्तरज्ञान सुलभेन होता है। रविगोलसन्धि और चन्द्रगोलसन्धि का अन्तर ज्ञान और उसका परमत्व कब होता है इनका ज्ञान भी सुलभ होता है, प्राचीनायनसन्धि और नवीनायनसन्धि के अन्तर का परमत्व कब होत है उसके ज्ञान भी होते हैं किन्तु ग्रन्थ विस्तारभय से यह विषय यहां नहीं लिखा जाता है ।।१६-१७।।

इदानीं सति चन्द्रशरे विशेषमाह ।

एकदिशोर्व्यतिपातः क्रान्त्योर्विदिशोस्तु वैधृतं भवति ।
दिग्भेदेऽपक्रमणं महदप्यूनं विधोर्ज्ञेयम् ।।१८।।

वि. भा.—एकदिशोः (एकदिक्कयोः) क्रान्त्योरन्तरं तदा व्यतीपातः स्यात्। विदिशोः (भिन्नदिक्स्थयोः) क्रान्त्योर्योगे वैधृतं भवति। दिग्भेदे विधोश्चन्द्रस्य अपक्रमणं (स्पष्टक्रान्तिचापं महदपि रविक्रान्तिचापादित्यर्थः), न्यूनं ज्ञेयम्। न्यूनं तु सुतरामेव न्यूनमिति ।।१८।।

अत्रोपपत्तिः

एकदिशोः क्रान्त्योरन्तरं व्यतीपातयोगे भवति यतो व्यतीपात एकगोलस्थयो-

रेव रविचन्द्रयोर्भवति, क्रान्त्यन्तरे चन्द्रसूर्ययोर्याम्योत्तरभावेन स्थितिः। तदन्तरं रविचन्द्रयोरहोरात्रवृत्तयोरन्तरम् यदि च चन्द्रक्रान्तिः शरेण भिन्नगोलं नीता तदा रविचन्द्रयोरहोरात्रवृत्तयोर्भिन्नगोले स्थितत्वात् स्वक्रान्त्यग्रे एकस्योत्तरतोऽन्यस्य स्वक्रान्त्यग्रे दक्षिणतोऽवस्थानात्क्रान्तियोगेनैवाहोरात्रवृत्तयोरन्तरं भवेत्। रवेरहोरात्रवृत्तं नाड़ीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा यावतान्तरेण भवेत्तावतैवान्तरेण यदि चन्द्रस्याहोरात्रवृत्तं नाड़ीवृत्ताद् भिन्नदिशि भवेत्तदा वैधृतनामा पातः। रविर्दक्षिणगोलेऽस्ति, तदुपर्यहोरात्रवृत्तं कार्यं, नाड़ीवृत्तात्तावतान्तरेणोत्तरतश्चन्द्रोपर्यहोरात्रवृत्तं कार्यं तदा वैधृत इति। यदा च पुनश्चक्ककालिकचन्द्र उत्तरगोले भवेत्तदोत्तरक्रान्तेरल्पत्वात्तदहोरात्रवृत्तादमन्यस्मिन्नहोरात्रवृत्ते दक्षिणे भ्रमति तदा तयोर्वृत्तयोरन्तरज्ञानार्थमुपायः । नाडीवृत्ताद्रवेर्दक्षिणक्रान्तितुल्यन्तरे उत्तरतस्तद्वृत्तं कार्यम्। वेष्टकालिकचन्द्रस्य यदन्यदहोरात्रवृत्तं तच्चन्द्रस्योत्तरक्रान्त्यग्रे, तेन रविदक्षिणक्रान्तिचन्द्रोत्तरक्रान्त्योर्यदन्तरं तदेव तदहोरात्रवृत्तयोरन्तरम्। अथ यदि शरवशाद्दक्षिणगोलं नीतस्तदा चन्द्रस्य स्पष्टा क्रान्तिर्दक्षिणा भवेत्। इष्टकालिकचन्द्रस्य यद्भिन्नमहोरात्रवृत्तं तदुत्तरे कृताहोरात्रवृत्तस्य चान्तरं तयोः क्रान्त्योर्योगे कृते भवति तेन "एकदिशोर्व्यतिपातः क्रान्त्योर्विदिशोस्तु वैधृतं भवतीत्युपपन्नम्"। यदि चन्द्रस्य स्थानीयक्रान्तेरधिकस्तच्छरो भिन्नदिक्कायाः क्रान्तिसीमायाः सकाशात्स्वां दिशं क्रान्तिचापमानयेत्तादृशस्थितौ चन्द्रस्पष्टक्रान्तिचापं रविक्रान्तिचापादधिकमपि भवेत्तदा न्यूनमेव कल्प्यम्। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ब्रह्मगुप्ते नाप्येवमुच्यते, तथाच तद्वाक्यम्—

व्यतिपातोऽपक्रमयोर्दिक्साम्ये वैधृतो दिगन्यत्वे।
अधिकोऽप्यूनः कल्प्यः दिग्भेदेऽपक्रमः शशिनः॥

शिष्यवृद्धिदतन्त्रे लल्लेन—

कल्प्योऽधिकोऽप्यूनक एव चान्द्रः स्फुटोऽपमश्चन्द्रमसोऽन्यदिक्स्थः।
इत्युक्तम्।

श्रीपतिनाऽपि सिद्धान्तशेखरे लल्लोक्तसदृशमेव कथ्यते ॥इति ॥१८॥

अब चन्दशर रहने पर विशेष कहते हैं।

हि.भा.—एक दिशा में रविक्रान्ति और चन्दक्रान्ति का अन्तर करना तब व्यतिपात योग होता है। भिन्न दिशा में क्रान्ति के योग करने से वैधृतयोग होता है। दिग्भेद में चन्द्रस्पष्टकान्ति रविक्रान्ति चाप से अधिक भी हो तो उसे न्यून ही मानना चाहिए। न्यून तो सुतरां न्यून है ही॥१८॥

उपपत्ति

एक दिशा में रवि और चन्द्र के क्रान्त्यन्तर व्यतिपात योग में होता है क्योंकि एक गोल में रवि और चन्द्र के रहने ही से व्यतिपात योग होता है। क्रान्त्यन्तर पर उत्तर दक्षिण के रूप में रवि और चन्द्र की स्थिति है। क्रान्त्यन्तर रवि चन्द्र के अहोरात्रवृत्तों का अन्तर

है; यदि शर के द्वारा चन्द्रक्रान्ति भिन्नगोल में लाई गई तब रवि चन्द्र के अहोरात्रवृत्तों के भिन्नगोल में रहने के कारण अपने क्रान्त्यग्र पर एक को उत्तर दूसरे को अपने क्रान्त्यग्र पर दक्षिण रहने से दोनों क्रान्तियों के योग करने से ही अहोरात्रवृत्तान्तर होता है । रवि के अहोरात्रवृत्त नाड़ीवृत्त से जितने अन्तर पर उत्तर या दक्षिण है उतने ही अन्तर पर यदि चन्द्र के अहोरात्रवृत्त नाड़ी वृत्त से भिन्न तरफ हो तब वैधृत नाम का योग होता है । रवि दक्षिण गोल में है उनके ऊपर अहोरात्रवृत्त कर देना, नाड़ीवृत्त से उतने ही अन्तर पर उत्तर तरफ चन्द्र के ऊपर अहोरात्रवृत्त कर देना, तब वैधृत होता है । यदि चक्रकालिक (जिस समय रविचन्द्र के योग बारह राशि के बराबर होता है) चन्द्र उत्तर गोल में हैं तब उत्तर क्रान्ति के अल्पता के कारण उनके अहोरात्रवृत्त से दक्षिण भिन्न अहोरात्रवृत्त में भ्रमण करते हैं तब वहाँ उन दोनों अहोरात्रवृत्तों के अन्तरज्ञान के लिये उपाय करते हैं । नाड़ीवृत्त से रवि की दक्षिण क्रान्ति तुल्यान्तर पर उत्तर तरफ अहोरात्र वृत्त करना, वा इष्टकालिक चन्द्र के जो भिन्न अहोरात्रवृत्त हैं वह चन्द्र के उत्तर क्रान्त्यग्र पर, इसलिये रवि दक्षिण क्रान्ति और चन्द्र की उत्तरा क्रान्ति का जो अन्तर है वही उन अहोरात्र वृत्तों का अन्तर है । यदि शरवश से दक्षिण गोल में लाये गये तब चन्द्र की स्पष्टा क्रान्ति दक्षिण होगी । इष्टकालिक चन्द्र का जो भिन्न अहोरात्र वृत्त है उसका और उत्तर तरफ जो अहोरात्र वृत्त किये हुए हैं उन दोनों के अन्तर उन दोनों क्रान्तियों के योग करने से होता है, इसलिये 'एकदिशोर्व्यतिपातः क्रान्त्योर्विदिशोस्तु वैधृतं भवति' यह उपपन्न हुआ ।। यदि चन्द्रस्थानीय क्रान्ति से अधिकशर भिन्नदिशा की क्रान्ति सीमा से अपनी तरफ क्रान्तिचाप को लावे तो उस स्थिति में चन्द्र स्पष्ट क्रान्तिचाप को रविक्रान्ति चाप से अधिक रहने पर भी न्यून मानना चाहिये । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं । जैसे उनके वाक्य है—

व्यतिपातोऽपक्रमयोर्दिक्साम्ये वैधृतो दिगन्यत्वे ।
अधिकोऽप्यूनः कल्प्यो दिग्भेदेऽपक्रमः शशिनः ।।

शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में लल्लाचार्य ने—

'कल्प्योऽधिकोऽप्यूनक एव चान्द्रः स्फुटोऽपमश्चन्द्रमसोऽन्यदिक्स्थः ।'
कहा है।

लल्लोक्त सदृश ही श्रीपति भी सिद्धान्तशेखर में कहते हैं ।।१८।।

इदानीं पातस्य गतागतत्वमाह ।

विषमपदगे यदीन्दौ क्रान्तिर्महती सहस्रगुक्रान्तेः ।
भूतोऽन्यथा तु भावी समपदगे व्यत्ययात्पातः ।।१९।।

वि. भा.—यदि इन्दौ (चन्द्रे) विषमपदगे क्रान्तिः (चन्द्रस्फुटा क्रान्तिः) सहस्रगुक्रान्तेः (सूर्यक्रान्तेः) महती (अधिका) भवेत्तदा पातो भूतः (गतः) अन्यथा भावी पातो भवेत् चन्द्रे समपदगे व्यत्ययात् (विलोमात्) पातो भवतीति ।।१९।।

अत्रोपपत्तिः

गोलसन्धौ चन्द्ररव्योः पदादिः, विषमपदे (प्रथमे तृतीये वा) गोलसन्धितोऽग्रे यथा यथा तयोर्गमनं भवेत्तथा तथा तत्क्रान्तिर्वर्धते, पदान्ते क्रान्तेः परमत्वं भवेत्। तेन विषमपदीयचन्द्रक्रान्तिर्यदि रविक्रान्तितोऽधिका भवेत्तदा तु चन्द्रो रवेः क्रान्ति-स्थानं प्राप्य तदुल्लङ्घ्याग्रे गतो भवेदतः पातो गतोऽन्यथैष्यः। एवं द्वितीये चतुर्थे च पदे यथा यथा रविचन्द्रावग्रे गच्छतस्तथा तथा तत्क्रान्तिरपचीयते, गोल-सन्धौ क्रान्तिः शून्या भवेत्। समपदे चन्द्रक्रान्तिर्यदि रविक्रान्तितोऽल्पीयसी तदाऽग्रगतश्चन्द्रः परावर्त्य रविक्रान्तिस्थानं प्राप्याल्पक्रान्तिर्जातोऽर्थाद् गोलसन्धिं प्रत्यागन्तुं लग्नस्तदाऽपि गत एव पातोऽन्यथैष्य इति ॥

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते—

मेषतुलादाविन्दोरपक्रमे रव्यपक्रमादूने। एष्यो ह्यधिकेऽतीतो विपरीतः कर्किमकरादौ ॥

इति ब्रह्मगुप्तोक्तं, शिष्यधीवृद्धिदतन्त्रे—

"अयुग्मजश्चान्द्रमसोऽपमश्चेदपक्रमाद् भानुमतोऽधिकः स्यात्।
समोद्भवो वापि लघुस्तदेतो निपातकालो भविताऽन्यथाऽतः ॥"

इति लल्लोक्तं च। सिद्धान्तशिरोमणौ—

"ओजपदेन्दुक्रान्तिर्महती सूर्यापमाल्लघुः समजा।
यदि भवति तदा ज्ञेयो यातः पातस्तदन्यथा गम्यः ॥"

इति भास्करोक्तं च सर्वमेकरूपमेवेति ॥१९॥

अब पात के गतैष्यत्व कहते हैं

हि॰ भा॰—यदि चन्द्र विषमपद में हो उनकी स्पष्टक्रान्ति रविक्रान्ति से बढ़ी हो तब पात गत होता है इससे अन्यथा भावी (एष्य) होता है, समपद में विलोम (उल्टा) होता है ॥१९॥

उपपत्ति

गोल सन्धि पदादि है। विषम पद (प्रथम या तृतीय) में गोलसन्धि से आगे ज्यों-ज्यों रवि और चन्द्र जायेंगे त्यों-त्यों उनकी क्रांति बढ़ती है। पदन्त में कांति का परमत्व होता है। इसलिये विषमपदीय चंद्रक्रांति यदि रविक्रांति से अधिक होगी तो चंद्र रवि क्रांतिस्थान को पाकर उसको छोड़कर आगे चले जायेंगे इसलिये पातयोग गत होगा, इस से अन्यथा एष्य होता है। एवं द्वितीय और चतुर्थपद में ज्यों ज्यों रवि और चन्द्र आगे जाते है त्यों त्यों उनकी क्रांति घटती है गोल संधि में क्रांति अभाव होता है। समपद में चन्द्र क्रांति यदि रविक्रांति से छोटी है तो आगे गये हुये चंद्र लौटकर रविक्रांति स्थान को पाकर अल्प-क्रांतिक हो जाते हैं अर्थात् गोलसंधि में लौटने लगते हैं तथापि गतपात योग होता है अन्यथा एष्य होता है इति ॥ ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं। जैसे उनके वाक्य हैं—

मेषतुलादाविन्दोरपक्रमे रव्यपक्रमादूने ।
एष्यो ह्यधिकेऽतीतो विपरीतः कर्किमकरादौ ॥

शिष्यधीवृद्धिदतन्त्र में लल्लाचार्य भी इसी तरह कहते हैं—

'अयुग्मजश्चन्द्रमसोऽपमश्चेद' इत्यादि ।

सिद्धांतशिरोमणि में भास्कराचार्य भी इसी तरह कहते हैं—

"ओजपदेन्दुक्रांतिर्महती" इत्यादि ॥१९॥

इदानीं यस्मिन् काले रविचन्द्रयोगश्चक्रार्धचक्र वा तस्मात्कालादगतागतस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य ज्ञानमाह ।

विवरयुतिर्व्यतिपाते युतिविवरं वैधृते समान्यदिशोः ।
क्रान्त्योः प्रथमो राशिस्तथेष्टघटिकाभिरन्योऽपि ॥२०॥
यदि भूतो भावी वा द्वयोर्विशेषोऽन्यथा युतिर्हारः ।
आद्यहतेष्टनाड्याः प्रथमवशान्मध्यमेताभिः ॥२१॥
तात्कालिकैर्ग्रहैस्तैरसकृत्ववशिष्टमध्यनाड़ीघ्नम् ।

वि.भा.—समान्यदिशोः (एकदिक्कयोर्भिन्नदिक्कयोश्च) क्रान्त्योः (रविचन्द्रक्रान्त्योः) विविरयुतिः (अन्तरं योगेऽर्थादेकदिक्कयोः क्रान्त्योरन्तरं भिन्नदिक्कयोः क्रान्त्योर्योगः) व्यतिपातयोगे प्रथमो राशिः(प्रथमसंज्ञकः)भवतीर्थः,वैधृते योगे समान्यदिशोः (एकदिक्कयोर्भिन्नदिक्कयोश्च) क्रान्त्योः, युतिविवरं (योगोऽन्तरमर्थदिकदिक्कयोर्योगो भिन्नदिक्कयोरन्तरं) प्रथमसंज्ञकः । तथेष्टघटिकाभिः अन्योऽपि राशिः साध्यः । एतदुक्तं भवति काचिदिष्टघटिकाः परिकल्प्य ताभी रविचन्द्रराहुगतीः संगुण्य षष्टिभिर्भक्त्वा फलं कलादिकं तेषु (रविचन्द्रराहुषु गतगम्यपातकालयोर्धनर्णं कृत्वा तत्कालेऽपि रविचन्द्रयोः क्रांतिमाने समानीय (विवयुतिर्व्यतिपाते युतिविवर" मित्यादिना अन्योऽपि राशिः साध्यः । यदि प्रथमोऽन्यश्च भूतः (गतः)वा भावी (गम्यः) तदा द्वयोः (प्रथमान्ययोः) विशेषः (अन्तरं) अन्यथाऽर्थात्तयोर्मध्ये एको गतो द्वितीयो गम्यस्तदा तयोर्युतिः (योगः) आद्यहतेष्टनाड्याः (आद्यगुणितपूर्वकल्पितेष्टनाड्याः) हारो भवेत् । आद्यगुणितपूर्वकल्पितेष्टनाडीहारविभक्तालब्धघटीभिः प्रथमवशादगतं भविष्यद् वा मध्यं (पातमध्यं) बोध्यम् । एताभिर्घटीभिर्हीनयुतैस्तैस्तात्कालिकैः (रविचन्द्रराहुभिः) असकृत्क्रियया मध्यं (पातमध्यं) भवतीति । नाड़ीघ्नमित्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्धः ॥

अत्रोपपत्तिः

व्यतीपातयोगे एकदिशोः क्रान्त्योरन्तरं भवति रविचन्द्रयोरेकगोले स्थितत्वात्, तत्क्रान्त्यन्तरं रविचन्द्रयो रहोरात्रवृत्तयोरन्तरम् । यदा हि चन्द्रक्रान्तिः शरेणान्यगोलं नीता तदा तयोः क्रान्त्योर्योगः कार्यः (रविचन्द्रयोरहोरात्रवृत्तयोर्भिन्न-

भिन्नगोले स्थितत्वात्) एकस्य स्वक्रान्त्यग्रे उत्तरतोऽन्यस्य स्वक्रान्त्यग्रे दक्षिणतोऽतः क्रान्त्योर्योगेनैवाहोरात्रवृत्तयोरन्तरं भवेत्। नाड़ीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा यावतांतरेण रवेरहोरात्रवृत्तं नाड़ीवृताद् भिन्नदिशि तावतान्तरेणैव यदि चन्द्रस्याहोरात्रवृत्तं भवेत्तदा वैधृतनामा पातः स्यात्। अथ दक्षिणगोलेरविरस्ति तदुपर्यहोरात्र वृत्तं कार्यं नाड़ीवृत्तादुत्तरतस्तावतान्तरेण भिन्नमहोरात्रवृत्तं कार्यं तत्र यदि चन्द्रो भवेत्तदा वैधृतपात इति भावः। यदा चक्रकालिकश्चन्द्र उत्तरगोले भवेत्तदा स्वोत्तरक्रान्तेरल्पत्वात्तस्मादहोरात्रवृत्ताद्भिन्नेऽहोरात्रवृत्ते दक्षिणतो भ्रमति तदा तयोर्वृत्तयोरन्तरज्ञानार्थं नाड़ीवृत्तादुत्तरे रवेर्दक्षिणक्रान्त्यन्तरेऽहोरात्रवृत्तं कार्यम्। अतो रविदक्षिणक्रान्तेश्चन्द्रोन्तरक्रान्तेश्च यदन्तरं तदेव तयोरहोरात्रवृत्तयोरन्तरम्। यदि शरेण दक्षिणगोलं नीता तदा चन्द्रस्फुटा क्रान्तिर्दक्षिणा भवेत्, अत्रेष्टकालिकचन्द्रस्य यद्भिन्नमहोरात्रवृत्तं तस्योत्तरे कृताहोरात्रवृत्तस्य चान्तरं क्रान्त्योर्योगेनैव भवेत्। अतो युतिविवरं वैधृते समान्यदिशोरित्युक्तम्। तत्क्रान्त्योरन्तरं प्रथमसंज्ञकम्। क्रान्त्यन्तरस्य ह्रासोन्मुखस्य यदाऽभावस्तदा क्रान्तिसाम्यं भवेत्। तद्ह्रासस्य वृद्धित्वं नैव कर्त्तुं शक्यतेऽत इष्टघटीभिश्चालितयो रविचन्द्रयोः पूर्ववत्क्रान्त्यन्तरं नेयं तदन्यसंज्ञकम्। तयोः प्रथमान्ययोर्यदन्तरं तदिष्टघटीसम्बन्धिक्रान्त्यतरस्यापचयमानम्। तेन तयोरन्तरं कृतम्। परमेवं तदैव यदा प्रथमान्यकालयोर्गतं गम्यं वा लक्षणम्। यदि प्रथमकाले गतलक्षणमन्यकाले गम्यलक्षणं तदा तत्र प्रथमान्ययोर्योगे कृतेऽन्तरं कृतं भवेत्ततोऽनुपातो यद्येतावता क्रान्त्यन्तरापचयेनेष्टघटिका लभ्यन्ते तदा प्रथमेन किमित्यनुपातेन या घटिका भवन्ति ताभिर्घटिकाभिरसकृत्कर्मणा स्फुटा भवितुमर्हन्तीत्याचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२०-२१॥

हि. भा.—अब जिस समय में रवि और चन्द्र के योग ६ राशि या १२ राशि होता है उस काल से गत और गम्य क्रान्ति साम्यकाल का ज्ञान कहते हैं।

व्यतीपात योग में एक दिशा की रवि चन्द्रकान्ति के अन्तर, भिन्न दिशा की रविचन्द्रक्रान्ति के योग प्रथम संज्ञक है। वैधृत योग में एक दिशा की रवि चन्द्रक्रान्ति के योग, भिन्न दिशा की क्रान्तियों के अन्तर प्रथम संज्ञक हैं। और इष्ट घटी करके अन्य राशि भी साध्य न करना, कोई इष्टघटी मानकर उससे रवि, चन्द्र और राहु इनकी गतियों को गुणकर साठ से भाग देकर जो कलादि फल हो उसको गत और गम्य पातकाल में रवि, चन्द्र और राहु में धन, ऋण करके उस काल में रवि और चन्द्र की क्रान्ति लाकर पूर्ववत् (विवरयुतिर्व्यतिपाते इत्यादि के अनुसार) अन्य राशि भी साधन करना, यदि प्रथम और अन्य भूत या भावी हो तब दोनों के अन्तर इससे अन्यथा अर्थात् एक गत और दूसरे गम्य हो तो दोनों के योग प्रथम गुणित पूर्वकल्पित इष्टघटी के हर होते हैं। प्रथम गुणित इष्टघटी को हर से भाग देकर जो घट्यादिक फल होता है उस करके प्रथमवश गत गम्य पातमध्य समझना चाहिये। इतनी घटी (पूर्वानीत घटी) करके हीनयुत तात्कालिक रवि, चन्द्र और राहु करके असकृत्प्रकार से पातमध्य होता है ॥ २०-२१ ॥

उपपत्ति

व्यतीपात योग में रवि और चन्द्र के एक गोल में रहने के कारण एक दिशा की रविचन्द्र क्रान्ति के अन्तर भिन्न दिशा की क्रान्तियों का योग प्रथम संज्ञक होता है। क्रान्त्यन्तर रवि चन्द्र के अहोरात्र वृत्तों का अन्तर है, जब चन्द्रक्रान्ति शर के द्वारा भिन्न गोल में लाई गयी तब दोनों क्रान्तियों का योग करना चाहिये, क्योंकि रवि और चन्द्र के अहोरात्र वृत्त भिन्न भिन्न गोल में है, एक के अहोरात्रवृत्त उत्तर में अपने क्रान्त्यग्र पर हैं दूसरे के अहोरात्रवृत्त दक्षिण में अपने क्रान्त्यग्र पर है इसलिये वहां दोनों क्रान्तियों के योग करने ही से अहोरात्र वृत्तान्तर होता है, नाड़ीवृत्त से उत्तर या दक्षिण जितने अन्तर पर रवि का अहोरात्र वृत्त है उतने ही अन्तर पर नाड़ीवृत्त से भिन्न तरफ यदि चन्द्र के अहोरात्र वृत्त हो तब वैधृत नाम का पात होता है। रवि दक्षिणगोल में है रवि के ऊपर अहोरात्रवृत्त कर देना, नाड़ीवृत्त से उत्तर उतने ही अन्तर पर अन्य अहोरात्र वृत्त करना उसमें यदि चन्द्र होंगे अर्थात् वह यदि चन्द्र के अहोरात्र वृत्त होगा तो वैधृत पात होता है। जब चक्रकालिक (जिस समय रवि चन्द्र के योग बारह राशि के बराबर होता है) चन्द्र उत्तर गोल में होंगे तब अपनी उत्तरा क्रान्ति की अल्पता के कारण उस अहोरात्रवृत्त से भिन्न अहोरात्रवृत्त में दक्षिण तरफ भ्रमण करते हैं तब उन दोनों वृत्तों के अन्तरज्ञान के लिये नाड़ीवृत्त से उत्तर रवि के दक्षिण क्रान्त्यग्र पर अहोरात्रवृत्त कर देते हैं तब रवि की दक्षिण क्रान्ति और चन्द्र की उत्तर क्रान्ति के अन्तर जितने होंगे उतने ही दोनों अहोरात्रवृत्तों के अन्तर होंगे। यदि शर के द्वारा चन्द्र क्रांति दक्षिण लाई गयी तब चन्द्र की स्फुटा क्रान्ति दक्षिण होगी, यहां इष्टकालिक चन्द्र के जो भिन्न अहोरात्र वृत्त होंगे उसके और उत्तर तरफ किये हुए अहोरात्र वृत्तों के अन्तर दोनों क्रांतियों के योग ही से होगा। इसलिए 'युतिविवरं वैधृते समान्यदिशोः' यह कहा गया है। वह क्रान्त्यन्तर प्रथम संज्ञक है। ह्रासोन्मुख क्रान्त्यन्तर का जब अभाव होगा तब क्रांति साम्य होगा, उस ह्रास को वृद्धित्व नहीं कर सकते हैं इसलिए इष्टघटी करके चालित रवि और चन्द्र के पूर्ववत् क्रान्त्यन्तर लाना वह अन्य संज्ञक है। प्रथम और अन्य का जो अन्तर है वह इष्टघटी सम्बन्धी क्रान्त्यन्तर का अपचयात्मक मान है इसलिए दोनों के अन्तर किये गये। लेकिन ऐसा तब भी होगा जब कि प्रथमकाल और अन्यकाल के गत या गम्य लक्षण होंगे। यदि प्रथमकाल में गत लक्षण और अन्यकाल में गम्य लक्षण होंगे तब वहां प्रथम और अन्य के योग करने ही से अन्तर होगा। तब अनुपात करते हैं यदि इस क्रान्त्यन्तर अपचय में इष्टघटी पाते हैं तब प्रथम में क्या इस अनुपात से जो घटी होती है उसके द्वारा असकृत्कर्म से स्फुट होते हैं। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२०-२१॥

एवं पातमध्यमभिधायेदानीं पाताद्यन्तकालपरिज्ञानमाह।

मानैक्यार्धं भक्तं प्रथमेनाप्तघटिकाभिराद्यन्तौ ॥२२॥
निजबिम्बापक्रान्त्या रविमानापक्रमं जहातीन्दुः।
यावत्सममार्गगतस्तावत्पातोक्तफलसिद्धिः ॥२३॥

वि. भा.—मानैक्यार्धं (पूर्वानीतस्पष्टेष्टघटिकाभिश्चक्रार्धचक्रकालिकौ रविचन्द्रौ प्रचाल्य पातमध्यकालिकौ कृत्वा तयोर्बिम्बे साध्ये तयोरर्धयोर्योगो

मानैक्यार्धम्) मध्यनाड़ीघ्नं (आनीतस्पष्टघटीभिर्गुणितं) प्रथमेन भक्तमाप्त-घटिकाभिः (लब्धघटिकाभिः) आद्यन्तौ (पातमध्यकालात्पूर्वतः पातस्याऽदिः। तथा ताभिरेव लब्धघटिकाभिः पातमध्यकालादग्रतः पातस्यान्तः) इन्दुः (चन्द्रः) निजबिम्बापक्रान्त्या (स्फुटक्रान्त्या) रविमानापक्रमं (रविक्रांति) जहाति (उल्लङ्घ्याग्रे गच्छति) यावत्कालं चन्द्रः सममार्गगत एकाहोरात्रगतस्ताव-त्पातोक्तफलसिद्धिः। अर्थाद् यावत्क्रान्त्योरन्तरं मानैक्यार्धादल्पं भवति तावद् बिम्बैकदेशजक्रान्त्योः साम्यात्तत्फलं भवति तदभावे तत्फलाभाव इति। अतो याव-त्क्रान्तिसाम्यं तावदेव तस्य फलं वाच्यं तेन यस्मिन् दिने पातस्तत्समस्तं दिनं न दुष्टमिति फलितम्।

अत्रोपपत्तिः

यदा क्रान्तिसाम्यं तदैव पातस्तस्मात्कालात् प्राक् परतश्च पातस्य कथमव-स्थानम्। तत्र क्रान्तिसाम्याभावात्, क्रान्तिसाम्यं नाम पातः। बिम्बमध्यक्रांति-र्बिम्बार्धेन रहिता सती पाश्चात्यबिम्बप्रान्तस्य तावती क्रांतिर्भवति, बिम्बमध्य-क्रांतिर्विम्बार्धेन युता सती अग्रतो बिम्बप्रान्तस्य क्रांतिर्भवति। एवं रविचन्द्रयोश्च, अत्र विश्वे पृष्ठमग्रं च याम्योत्तरभावेन कथ्यते। रविबिम्बपृष्ठक्रान्तिर्यावती तावत्येव यदा चन्द्रस्याग्रप्रान्तक्रांतिः, तदा तयोर्बिम्बयोरेकदेशेन क्रान्त्योः साम्या-त्पातस्याऽऽदिः। तदा तयोर्बिम्बकेन्द्रयोरन्तरं मानैक्यार्धतुल्यम्। ततः क्रमेण गच्छतो रविचन्द्रयोर्यदा बिम्बकेन्द्रीयक्रांतिसाम्यं तदा पातमध्यम्। तदनन्तरं चन्द्रपृष्ठप्रांतस्य रवेरग्रप्रातस्य च यदा क्रांतिसाम्यं तदा पातान्तः। यतः क्रान्त्य-न्तरं यावन्मानैक्यार्धान्न्यूनं तावत्पातोऽस्तीति। अथ पातमध्यसाधने यत्प्रथमसंज्ञं क्रांत्यन्तरं याश्चासकृत्प्रकारेण स्पष्टीकृता इष्टघटिकास्ततोऽनुपातो यदि प्रथम-तुल्येन क्रांत्यंतरेणैतावत्यो घटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्यांतरेण किमित्यनुपा-तेन या घटिकाः समागच्छन्ति ताः स्थित्यर्धघटिकाः स्थूलास्तत्स्फुटीकरणम्। तात्कालिकयो रविचंद्रयोः पुनः क्रांत्यंतरं कार्यं तन्मानैक्यार्धासन्नं ततोऽनुपातः यद्यनेन क्रान्त्यतरेणैतावत्यः स्थित्यर्धघटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्येन किमि-त्येवमसकृत्तद्घटीनां स्फुटत्वम्॥२२-२३॥

हि. भा.—अब पातमध्य को कह कर पात के आदि और अन्त काल ज्ञान कहते हैं। पहले लाई हुई स्पष्ट इष्टघटी करके चक्रार्ध और चक्रकालिक रवि और चन्द्र को चालन देकर पातमध्यकालिक करके उन दोनों के बिम्ब साधन करना, दोनों व्यासार्धों के योग मानैक्यार्ध है, इसको पूर्वानीत स्पष्ट इष्ट घटी से गुण कर प्रथम से भाग देने से जो घटिकादि फल हो उतने करके पात मध्यकाल से पूर्व पात की आदि होती है और उतनी ही घटी करके पातमध्यकाल से आगे पात का अन्त होता है। चन्द्र अपनी स्फुट क्रांति करके रवि क्रान्ति को लांघ कर आगे जाते हैं। जब तक रवि और चन्द्र सम मार्ग (एक मार्ग याने एक अहोरात्र में रहते हैं तब तक पात का फल होता हे। अर्थात् जब तक क्रान्त्यन्तर

मानैक्यार्ध से अल्प होता है तब तक बिम्ब के एक प्रदेश की क्रांति बराबर होने से उसका फल ऋषियों ने कहा है उसके अभाव में फलाभाव जानना चाहिये इसलिए जब तक क्रांति-साम्य रहता है तभी तक उसका फल होता है अतः जिस दिन पात होता है वह समग्रदिन दुष्ट नहीं होता है ।।२२-२३।।

उपपत्ति

जब क्रांति साम्य होता है तो पात होता है। उस काल से (क्रान्तिसाम्यकाल) आगे और पीछे क्यों पात की स्थिति होती है। क्योंकि वहां क्रान्तिसाम्य नहीं है। क्रान्ति-साम्य ही का नाम पात है। बिम्बमध्यक्रांति में बिम्बार्ध जोड़ने से आगे के बिम्ब प्रांत की क्रांति होती है। इस तरह रवि और चन्द्र दोनों की होती है। यहां बिम्ब में आगे पीछे से मतलब याम्योत्तर भाव से है। रविबिम्ब पृष्ठक्रांति के बराबर जब चन्द्रबिम्ब के अग्र-प्रान्त की क्रांति होगी तब उन दोनों बिम्बों के एक देश की क्रांति बराबर होने से पात की आदि होती है। तब दोनों बिम्बकेन्द्रों के अन्तर मानैक्यार्ध के बराबर होता है। उसके बाद क्रम से भ्रमण करते हुए रवि और चन्द्र की केन्द्रीय क्रांति जब बराबर होगी तब पातमध्य होता है। उसके बाद चन्द्र पृष्ठप्रांतीय क्रान्ति जब रवि के अग्रप्रान्तीय क्रान्ति के बराबर होगी तब पात का अन्त होता है। क्योंकि मानैक्यार्ध से क्रान्त्यन्तर जब तक न्यून रहेगा तब तक पात रहेगी। पात मध्यसाधन में क्रान्त्यन्तर आद्यसंज्ञक है और असकृत्प्रकार से स्पष्टीकृत इष्ट घटी जो है उन पर से अनुपात करते हैं। यदि प्रथम तुल्य क्रान्त्यन्तर में ये इष्ट घटी पाते हैं तो मानैक्यार्ध तुल्य अन्तर में क्या इस अनुपात से जो घटी आती है वह स्थित्यर्थ घटी स्थूल है उसका स्फुटीकरण करते हैं। तात्कालिक रवि और चन्द्र के पुनः क्रान्त्यन्तर करना वह मानैक्यार्ध के आसन्न होता है, उस पर से अनुपात करते हैं यदि इस क्रान्त्यन्तर में यह स्थित्यर्धघटी पाते हैं तो मानैक्यार्घ में क्या इस तरह असकृत् करने से उसका स्फुटत्व होता है ।।२२-२३।।

इदानीं रविचन्द्रयोः समलिप्ताधानमाह।

तिथिगतयेय घटीघ्न्यौ रवीन्दुभुक्ती विभाजिते षष्टया।
फललिप्तावियुतयुतौ तिथ्यन्ते समकलौ भवतः ।।२४।।
गतयेय विकलघ्ने गती रवीन्द्वोर्गमान्तरेण हृते।
फललिप्ताभिः प्राग्वद्वियुतयुतौ समकलौ स्तः ।।२५।।
तिथियेय यातघटिकातुल्यकलाभिर्युतोनितेन्दुरवी ।
तिथिलिप्ताभिश्चैव समलिप्तौ वा विधूष्णकरौ ।।२६।।

वि. भा.—रवीन्दुभुक्ती (रवीन्द्वगती) तिथिगतयेयघटीघ्न्यौ (तिथिगतगम्य-नाड़िकागुणिते) षष्टया विभाजिते फललिप्तावियुतयुतौ (लब्धकलारहितयुतौ) तौ तिथ्यन्ते (इष्टतिथ्यन्ते) समकलौ (कयाद्यवयवेन तुल्यौ) भवतः।। रवीन्द्वोर्गती (रविचन्द्रगती) गतयेयविकलघ्ने (गतगम्यशेषगुणिते) गमान्तरेण (गत्यन्तरेण भक्ते) फलकलाभिः पूर्ववद्वियुतयुतरविचन्द्रौ समकलौ भवतः।। तिथियेययात-

घटिकातुल्यकलाभिः (तिथिगम्यगतघटीतुल्यकलाभिः) तिथिलिप्ताभिश्च (तिथिकलाभिश्च) युतोनितेन्दुरवी वा समकलौ विधूष्णकरौ (चन्द्रसूर्यौ) भवेताम् ॥२४-२६॥

अत्रोपपत्तिः

यदि षष्टिघटीभी रविगतिकला लभ्यन्ते तदा तिथिगतगम्यघटीभिः किमित्यनुपातेन तिथिगतगम्यकलाः समागच्छन्ति। एवं चन्द्रगतिकलावशेन तिथिगतगम्यकलाः समागमिष्यन्ति। आभिः स्वस्वगतगम्यकलाभिर्वियुतयुतौ रविचन्द्रौ तिथ्यन्ते समकलौ भविष्यतः। शेषोपत्तिः स्फुटैवास्तीति ॥२४-२६॥

अब रवि और चन्द्र का समकला स्थान कहते हैं।

हि. भा.—रवि और चन्द्र की गति को तिथि की गत घटी और गम्य घटी से गुणकर साठ से भाग से जो फल कला हो उस करके रहित और सहित रविचन्द्र की गति को करने से इष्टतिथ्यन्त में कलाद्यवयव करके रवि और चन्द्र बराबर होते हैं।

रवि और चन्द्र की गति को तिथिगत शेष और गम्य शेष से गुणकर गत्यन्तर से भाग देने से जो फलकला हो उन करके पूर्ववत् रहित सहित करने से रवि और चन्द्रकलाद्यवयवेन बराबर होते हैं॥ तिथि गम्य और गत घटी तुल्य कला करके तथा तिथिकला करके सहित और रहित चन्द्र और सूर्य कलाद्यवयवेन बराबर होते हैं ॥२४-२६॥

उपपत्ति

यदि साठ घटी में रविगति कला पाते हैं तो तिथिगत घटी और गम्य घटी में क्या इस अनुपात से गत कला और गम्य कला आती हैं। इस तरह चन्द्रगति कलावश कर गत कला और गम्य कला आती है। इन अपनी अपनी गत कला और गम्य कला करके रहित और सहित रविचन्द्र इष्ट तिथ्यन्त में कलादि अवयव करके बराबर होते हैं॥

शेष की उपपत्ति स्पष्ट है ॥२४-२६॥

इदानीं रविचन्द्रयोः समभागसमराशिस्थानमाह।

करणान्ते तिथ्यन्ते समौ कलाभिस्तथा च पूर्णान्ते।
समभागौ मासान्ते समराशी भास्करेन्दू स्तः ॥२७॥

वि. भा.—पूर्णान्ते (पूर्णिमायां) भास्करेन्दू (रविचन्द्रौ) समभागौ (अंशाद्यवयवेन तुल्यौ) मासान्ते (अमान्ते) समराशी (राश्याद्यवयवेन तुल्यौ) स्तः (भवतः) इति ॥२७॥

अत्रोपपत्तिः।

रविचन्द्रयोरन्तरं यदा द्वादशभागसमं तदैका तिथिर्भवति, स्फुटमासान्ते त्रिंशत्तिथयः। अतो रविचन्द्रान्तरांशाः $=३०\times१२^{\circ}=३६०^{\circ}$ वा शून्यसमाः। अतो

राश्याद्यवयवै रविचन्द्रौ समौ पूर्णिमायां पंचदश तिथयः । अतो रविचन्द्रान्तरम्=१५×१२°=१८०°=६ राशयः । अतो रविचन्द्रावंशाद्यवयवैस्तुल्यौ भवतः । अन्यथा कथं तयोरन्तरे केवलं राशय एव भवन्ति एवं कस्मिन्नपि तिथ्यन्ते रविचन्द्रयोरन्तरांशा द्वादशापवर्त्या एव । तेन तदन्तरे कला विकला समत्वादेव केवलं भागा उत्पद्यन्ते इति ॥ ब्रह्मगुप्तेनाप्येवमुच्यते राश्यंशकलाविकलाः स्फुटमासान्तेंऽशलिप्तिकाविकलाः । पक्षान्ते तिथ्यन्ते समा रवीन्द्वोः कला विकलाः । श्रीपतिलल्लादिभिरप्येवमेव कथ्यते इति ॥२७॥

अब रवि और चन्द्र के समांश और समराशि स्थान कहते हैं ।

हि. भा.—पूर्णान्त में चन्द्र और रवि अंशाद्यवयवेन बराबर होते हैं । अमान्त में राश्यादि करके बराबर होते हैं ॥२७॥

उपपत्ति

रवि और चन्द्र का अन्तर जब बारह अंश होता है तब एक तिथि होती है । स्फुट मासान्त में तीस तिथियां है । अतः ३०×१२°=३६०° या शून्य=रविचन्द्रान्तरांश । इसलिए अमान्त में राश्यादि रवि और चन्द्र बराबर होते हैं । पूर्णान्त में तिथि=१५ इसलिए रवि चन्द्रांश=१५×१२°=१८०°=६ राशि, इसलिए पूर्णान्त में अंशाद्यवयव करके रवि और चन्द्र बराबर होते हैं । अन्यथा दोनों के अन्तर केवल छः राशि होंगे । एवं किसी तिथ्यन्त में रवि और चन्द्र का अन्तरांश द्वादश भक्त ही होगा । इसलिए उनके अन्तर में कला विकला के समत्व रहने के कारण केवल अंश ही आते हैं । ब्राह्मस्फुटसिद्धांत में ब्रह्मगुप्त भी इसी तरह कहते हैं । जैसे उनके वाक्य है—

राश्यंशकला विकलाः स्फुट मासांतेंऽशलिप्तिका विकलाः ।
पक्षान्ते तिथ्यन्ते समा रवीन्द्वोः कला विकलाः ॥

श्रीपति लल्लाचार्य आदि आचार्य इसी तरह कहते हैं ॥२७॥

इदानीं संक्रान्तिकालराशिकरणतिथियोगानामन्तकालं निर्णेतुमाह ।

गत्यंशहृतबिम्बं संक्रमकालो ग्रहस्य घटिकादिः ।
पुण्यतमोऽर्कस्यायं राश्यन्तं त्यजति रविबिम्बे ॥२८॥
शशिबिम्बं षष्टिगुणं गतिविवरहृतं च करणतिथ्यन्तम् ।
गतियुतिहृद्योगान्तं मिश्रफलमत्र स्थितो द्युचरः ॥३०॥
अत एवानिष्टानामाद्यन्तौ तिथिकरणयोगानाम् ।
नेष्टौ विष्टिर्वारस्तिथिस्त्र्यहस्पृक् दिनं भवति ॥२९॥

वि. भा.—ग्रहस्य बिम्बं गत्यंशहृतं (गत्यंशभक्तं) तदा घटिकादिः संक्रमणकालः । अर्कस्य (सूर्यस्य) अयं संक्रमणकालः पुण्यतमः (अतिपुण्यतमः स्मृतिपुराणेषूक्तः) रविः बिम्बे (स्वमण्डले) राश्यन्तं त्यजति (पूर्वार्धपुण्यकालेन पूर्वराश्यन्तं

त्यजति, परार्धेन पुण्यकालेन परराशेः पूर्वभागं विशति)। शशिबिम्बं (चन्द्रबिम्बं) षष्टिगुणं (षष्टयागुणितं) गतिविवरहृतं (रविचन्द्रगत्यन्तरभक्तं) तदा करण-तिथ्यन्तम् (षष्टिगुणित चन्द्रबिम्बे रविचन्द्रगत्यन्तरभक्ते यद्घटयादिफलं तत्करण-तिथ्योः प्रान्तं स्यात्)। षष्टिगुणं चन्द्रबिम्बं गतियुतिहृत् (रविचन्द्रगतियोगभक्तं) तदा योगान्तं भवति । तत्र लब्धे अस्य पूर्वार्धेन निर्गमकाल उत्तरकालेनोत्तर-प्रवेशः। अत्र तिथ्यन्ते, करणान्ते योगान्ते च स्थितो द्युचरः (ग्रहः) मिश्रफलं (पूर्वा-परतिथ्यादीनां फलं) विधत्ते । अतएवानिष्टानां तिथिकरणयोगानां आद्यन्तौ नेष्टौ (अशुभौ), विष्टिः (भद्रा) वारः (दिनं) तिथिः, इति त्र्यहस्पृक्संज्ञकं दिनं भवतीति।

अत्रोपपत्तिः

अत्रानुपातः यदि ग्रहगतिकलाभिः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा ग्रहबिम्बकलाभिः किमित्यनुपातेन समागता विम्बघटी तत्स्वरूपम् $= \dfrac{६०\times \text{ग्रविंक}}{\text{ग्रगतिकला}} = \dfrac{\text{ग्रविंकला}}{\dfrac{\text{ग्रहगकला}}{६०}}$

$= \dfrac{\text{ग्रविंकला}}{\text{ग्रहगत्यंश}}$ = संक्रान्तिकालः। अन्यग्रहसंक्रान्तिकालापेक्षया रविसंक्रान्ति-कालः स्मृतिपुराणवर्णितोऽतीव पुण्यजनकः यदि रविचन्द्रगतियोगेन षष्टिघटिका लभ्यते तदा चन्द्रबिम्बकलायां किमित्यनुपातेन [तिथिकरणयोः प्रान्तकालः समागच्छति, तत्रैव षष्टिगुणितचन्द्रबिम्बे रविचन्द्रगतियोगभक्ते तदा योगस्य प्राप्तकालः (एकयोगाद् योगान्तरगमनकालः) समागच्छति, शेषं स्पष्टम्। ब्रह्मगुप्तेन ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते इत्थं कथ्यते—

मानार्धात् षष्टिगुणाद्भुक्तिहृतान्नाड़िकादिलब्धेन।
राश्यान्तात्प्रागादिः पश्चादन्तोऽर्कसंक्रान्तेः॥
संक्रान्तिपुण्यकालो यल्लब्धं नाड़िकादितद्द्विगुणम्।
स्नानजपहोमदानादिकोऽत्र धर्मो विशिष्टफलः॥
एवं नक्षत्रान्तात् तिथिकरणान्तान्छशिप्रमाणार्धात्।
षष्टिगुणाद्रविशशिनोर्भुक्त्यन्तरलब्धघटिकाभिः॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनेत्थं कथ्यते—

षष्टिघ्नं सूर्यबिम्बं स्फुटगतिविहृतं सोऽर्कसंक्रांतिकालः।
पुण्यः स्मृत्यादिषूक्तस्त्यजति दिनमणिर्मण्डले भान्तमेवम्।
षष्टिघ्ने चन्द्रबिम्बेऽप्युडुकरणतिथिप्रान्तमन्तं युतेर्वा।
चान्द्रया भुक्त्येन्दुभान्वोर्गतियुतिवियुतिभ्यां क्रमान्नाड़िकादि॥२८-३०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते स्पष्टाधिकारे तिथ्याद्यानयनविधिः षष्ठोऽध्यायः समाप्तः।

हि.भा.—अब संक्रान्तिकाल, राशिकरण तिथियोगों का अन्तकाल कहते हैं। ग्रह-बिम्ब को रविचन्द्र के गत्यंश से भाग देने से जो घटी आदि फल होता है वह संक्रमणकाल है। रवि का यह संक्रमणकाल बहुत पुण्यप्रद है। रवि अपने मण्डल में राश्यन्त को छोड़ते हैं अर्थात्पूर्वार्ध पुण्यकाल से पूर्व राश्यन्त को छोड़ते हैं, और परार्धपुण्यकाल से परराशि के पूर्व भाग में प्रवेश करते हैं। चन्द्रबिम्ब को साठ से गुण कर रविचन्द्र के गत्यन्तर से भाग देने से फलकरण और तिथि का प्रान्त होता है। साठ से गुणित चन्द्रबिम्ब को रवि-चन्द्र के गतियोग से भाग देने से योगान्त होता है (लब्धि के पूर्वार्ध से निर्गमकाल और उत्तरार्ध से उत्तर में प्रवेश) तिथ्यन्त राश्यन्त, करणान्त, योगान्त में स्थितग्रह मिश्रफल (पूर्वापर राश्यादिफल) करते हैं इसलिए अनिष्ट तिथि, करण और योग के आदि और अन्त नेष्ट (अशुभ) हैं। और विष्टि (भद्रा) दिन, तिथि यह "त्र्यहस्पृक् दिन" कहलाता है ॥२८-३०॥

उपपत्ति

यदि ग्रहगति कला में साठ घटी पाते हैं तो ग्रहबिम्ब कला में क्या इस अनुपात से बिम्बघटी प्रमाण आता है $\dfrac{६० \times \text{ग्रहबिंक}}{\text{ग्रगतिक}} = \dfrac{\text{ग्रबिंक}}{\dfrac{\text{ग्रगतिक}}{६०}} = \dfrac{\text{ग्रबिंक}}{\text{ग्रहगत्यंश}} =$ संक्रमण-काल, अन्यग्रह संक्रान्तिकाल की अपेक्षा रवि का संक्रमणकाल बहुत पुण्यद है ॥ २८ ॥

यदि रवि और चन्द्र के गत्यन्तर में साठ घटी पाते हैं तो चन्द्र बिम्ब कला में क्या इस अनुपात से तिथि और करण प्रान्त आता है। और साठ गुणित चन्द्रबिम्ब कला में रवि और चन्द्र के गतियोग से भाग देने से योग का प्रान्तकाल होता है॥ शेष विषय स्पष्ट है। ब्रह्मगुप्त ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में इस तरह कहते हैं—

'मानार्धात् षष्टिगुणाद्भुक्तिहृतान्नाड़िकादिलब्धेन।' इत्यादि।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति इस तरह कहते हैं—

'षष्टिघ्नं सूर्यबिम्बं स्फुटगतिविहृतं सोऽर्कसंक्रान्तिकालः।' इत्यादि ॥२८-३०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में तिथ्याद्यानयनविधि नामक छठा अध्याय समाप्त हुआ।



सप्तमोऽध्यायः

अथ प्रश्नविधिः

स्पष्टगतावपि वच्मि प्रश्नाध्यायं मुदे हि दैवविदाम् ।
मतिकुमुदिनी शशाङ्कं कुतन्त्रविन्नागसिंहमहम् ॥१॥

वि. भा.—स्पष्टगतावपि (स्पष्टगतिनामकेऽधिकारेऽपि) मतिकुमुदिनी शशांङ्कं (बुद्धिरूपकैरवण्याश्चन्द्रसदृशं) कुतन्त्रविन्नागसिंहं (असत्तन्त्रज्ञगजसिंहं) प्रश्नाध्यायं दैवविदां (ज्योतिःशास्त्रज्ञानां) मुदे (हर्षाय) अहं वच्मि (ब्रुवे) इति ॥१॥

हि. भा.—स्पष्टगति नामक अधिकार में भी बुद्धिरूप कुमुदिनी के चन्द्र सदृश और असत् तन्त्र के जानने वाले व्यक्ति-विशेष रूप हाथी के लिए सिंह रूप प्रश्नाध्याय को ज्योतिषियों के हर्ष के लिये मैं कहता हूं ॥१॥

इदानीं प्रश्नानाह ।

कोट्यंशकैर्यः कुरुते भुजज्यां बाह्वंशकैर्वेत्ति च कोटिजीवाम् ।
बाहुज्ययाऽग्रां हि तया च दोर्ज्यां जानात्यसौ स्पष्टगतिं ग्रहाणाम् ॥२॥

वि. भा.—यः कोटयंशकैर्भुजज्यां कुरुते तथा बाह्वंशकैः (भुजांशैः) कोटिजीवां (कोटिज्यां) बाहुज्यया (भुजज्यया) अग्रां (कोटिज्यां) तथा तया (कोटिज्यया) दोर्ज्यां भुजज्यां, कुरुते असौ ग्रहाणां स्पष्टगतिं जानातीत्यहं मन्ये ॥२॥

एतदुत्तरार्थमुपपत्तिः

कोटिचापतो भुजज्याज्ञानं यथा ९० कोट्यंश=भुजांश, ज्यासाधनरीत्यैत्यस्य ज्या भुजज्या भवेत् एवं ९०=भुजांश=कोटयंश ज्यासाधनेन कोटिज्या भवेत् । तथा भुजज्याज्ञानेन

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{भुजज्या}^2}$=कोटिज्या, तथा कोटिज्याज्ञानेन $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोटिज्या}^2}$=भुजज्या अतः सिद्धम् ॥२॥

अब प्रश्न कहते हैं ।

हि. भा.—जो व्यक्तिविशेष कोट्यंश से भुजज्या जानते हैं, और भुजांश से कोटिज्या जानते हैं, भुजज्या से कोटिज्या जानते हैं, कोटिज्या से भुजज्या जानते हैं वे ग्रहों की स्पष्टगति को जानते हैं ।।२।।

इनके उत्तर के लिये उपपत्ति

कोट्यंश से भुजज्या ज्ञान, ९०—कोट्यंश=भुजांश ज्यासाधन नियम से इसकी ज्या भुजज्या होती है, इसी तरह ९०—भुजांश=कोट्यंश इसकी ज्या कोटिज्या होती है । भुजज्या ज्ञान से $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{भुजज्या}^2}$=कोटिज्या । तथा कोटिज्या ज्ञान से $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोटिज्या}^2}$ =भुजज्या इस तरह सब प्रश्नों के उत्तर हो गये ।।२।।

पुनरन्यान् प्रश्नानाह ।

क्रमज्यया स्वोत्क्रममौर्विकां तथा निजक्रमज्यां श्रवणं विना ग्रहम् ।
भुजज्यया च श्रवणाच्च कोटिका तया च दोर्ज्यां कुरुते स धीवरः ।। ३ ।।

वि. भा.—क्रमज्यया (ज्यया) स्वोत्क्रममौर्विका (भुजांशोत्क्रमज्यां) कोटिज्यया कोट्युत्क्रमज्यां तथोत्क्रमज्यया निजक्रमज्यां, श्रवणं (कर्णं) विना भुजज्यया ग्रहम्, श्रवणात् (कर्णात्) कोटिकां (कोटिं) तया (कोटिकया) दोर्ज्यां (भुजज्यां) यः कुरुते स धीवरः (बुद्धिश्रेष्ठः) अस्तीति ।।३।।

एतदुत्तरार्धमुपपत्तिः ।

उत्क्रमज्याज्ञानेन (व्यास—उज्या) × उज्या = क्रमज्या^{2} मूलेन $\sqrt{(\text{व्यास} - \text{उज्या})\ \text{उज्या}}$ = क्रमज्याक्रमज्याज्ञानेनोत्क्रमज्याज्ञानं ज्या व्यासयोगान्तरघातमूलमित्यादिनोत्क्रमज्याज्ञानं भवेदेव । अथवा त्रि—कोट्युत्क्रमज्या = भुजज्या । त्रि—कोज्या = भुजोत्क्रमज्या एवं त्रि—भुजोत्क्रमज्या = कोटिज्या, त्रि —भुजज्या = कोट्युत्क्रमज्या ।।

तथा कर्णज्ञानेन स्पष्टकोटिज्ञानम् । मृगकर्क्यादिकेन्द्रवशात्स्पष्टा कोटि = त्रि ± अन्त्यफलज्या $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुजज्या}^2}$ = स्पष्टकोटि । वा $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{स्पष्टको}^2}$ = भुजज्या ।। ∴ सिद्धम् ।।३।।

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं ।

हि. भा.—क्रमज्या से अपनी उत्क्रमज्या को तथा उत्क्रमज्या से अपनी क्रमज्या को विना कर्ण के भुजज्या से ग्रह को, कर्ण से स्पष्टकोटि को, स्पष्टकोटि से भुजज्या को जो जानते हैं वे अच्छी बुद्धि वाले हैं ।।३।।

इनके उत्तर के लिये उपपत्ति

(व्यास—उज्या) उज्या = क्रमज्या² मूल लेने से $\sqrt{(\text{व्या}-\text{उज्या})\text{उज्या}}$ = क्रमज्या इससे उत्क्रमज्या ज्ञान से क्रमज्या ज्ञान हो गया, अब क्रमज्या ज्ञान से 'ज्या व्यास योगान्तर घातमूलं' इत्यादि से उत्क्रमज्या ज्ञान हो जायेगा, अथवा त्रि—कोट्युत्क्रमज्या = भुजज्या, त्रि—कोज्या = भुजोत्क्रमज्या, त्रि—भुजोत्क्रमज्या = कोटिज्या, त्रि—भुजज्या = कोट्युत्क्रमज्या।

कर्णज्ञान से स्पष्ट कोटिज्ञान मकरादि और कर्क्यादिकेन्द्रवश स्पष्टको = त्रि ± अन्त्यफज्या $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुजज्या}^2}$ = स्पष्टको । $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{स्पको}^2}$ = भुजज्या ∴ सिद्ध हो गया ॥३॥

पुनरन्यप्रश्नानाह ।

स्पष्टमेव खचरं द्युराशितो वेत्ति वाभिहितखेचरोदये ।
अश्विनस्य खलु वा प्रसाधयेद्यः स वेत्ति विमलां स्फुटां गतिम् ॥४॥

वि. भा.—यो द्युराशितः (अहर्गणात्) स्पष्टमेव खचरं (ग्रहं) वेत्ति, वा अभिहितखेचरोदये (कथितग्रहोदयकाले) वा अश्विन्ययोदयिके प्रसाधयेत् स विमलां स्फुटां गतिं वेत्तीति एतदुत्तरं यद्यपि पूर्वं कथितमपि तथाप्युच्यते ।

इष्टग्रहभगणैरहर्गणं संगुण्य कुदिनैर्भजेद्ये लब्धा भगणास्ते प्रयोजनाभावात्त्याज्याः शिष्टं ग्रहभगणशेषं ग्राह्यम् । एवमुच्चभगणैरहर्गणं संगुण्य कुदिनैर्भक्त्वा ये लब्धा भगणास्ते त्याज्याः शिष्टं भगणशेषं ग्राह्यं तद्ग्रहभगणशेषे शोध्यं तदा केन्द्रभगणशेषं भवेत् । ततोऽनुपातः क्रियते यद्येकस्मिन् भगणे चत्वारिपदानि लभ्यन्ते तदा भगणशेषे किमित्यनुपातेनाऽऽगतानि पदानि $\frac{४ \times \text{भशे}}{\text{कुदिन}}$ तत एकस्मिन् पदे यदि राशित्रयं लभ्यते तदा शेषे किमित्यागतास्तत्सम्बन्धिनो राशयस्ततो भुजकोटिसाधनं कार्यम् । ततो मन्दभुजफलशीघ्रभुजफलाभ्यां गुणितानि कुदिनानि भगणकलाभिर्भक्तानि लब्धफलैर्ग्रहभगणशेषं संस्कृतं तदा स्पष्टं भगणशेषं भवति । ततो भुजान्तरचरफलदेशान्तरफलानि कुदिनभक्तानि यानि फलानि भवेयुस्तैः संस्कृतं पूर्वं भगणशेषं स्फुटं भगणशेषं भवेत्तस्मात्स्फुटभगणशेषाद् यो ग्रह आनीयते स स्फुट एव भौमादिग्रहो भवेदिति ।

शेषप्रश्नोत्तरार्थमुपपत्तिः ।

मध्यमार्कोदयकालिकग्रहा भुजान्तरसंस्कारेण स्पष्टार्कोदयकालिका भवन्ति निरक्षदेशे पुना रविचरासुभिः स्वदेशे स्पष्टार्कोदयकालिका भवन्ति, इत्थमिष्टमध्यमस्पष्टग्रहान्तरकलाभिस्तदुत्पन्नासवो रविवदिष्टौदयिकभुजान्तरं साध्यं रविवत्स्वचरासुभिः (इष्टग्रहचरासुभिः) स्वचालनफलं साध्यं तत्संस्कारणेन स्वदेशे स्पष्टेष्टग्रहोदयकालिका ग्रहा भवन्ति, यद्याश्विन्यौदयिकाः स्पष्टग्रहा अपेक्षितास्तदा नक्षत्रस्य फलाभावाद् भुजान्तरं न भवतीति ॥४॥

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं

हि. भा.—जो व्यक्ति विशेष अहर्गण से स्पष्टग्रह को जानते हैं, या कथित ग्रहोदय काल में या अश्विनी के उदयकाल में साधन करते हैं वे ग्रह की स्पष्ट गति को जानते हैं ।।४।।

इसका उत्तर पहले कह चुके है तथापि यहां पुनः कहते हैं

इष्ट मध्यग्रह भगण को अहर्गण से गुण कर कुदिन से भाग देने पर लब्ध भगण को छोड़ देना, शेष ग्रहभगण शेष ग्रहण करना । इस तरह उच्च के पठित भगण को अहर्गण से गुण कर कुदिन से भाग देने से जो भगणफल हो उसको छोड़ कर भगण शेष ग्रहण करना । इस भगण शेष को ग्रह भगण शेष में घटाने से केन्द्र भगण शेष होता है । तब अनुपात करते हैं यदि एक भगण में चार पद पाते हैं तो भगण शेष में क्या इस अनुपात से पद आते हैं ।

$\frac{४ \times भशे}{कुदिन}$ फिर अनुपात करते हैं यदि एक पद में तीन राशियां पाते हैं तो शेष में क्या शेष सम्बन्धी राशियों के प्रमाण आते हैं इस पर से भुजज्या कोटिज्या का ज्ञान सुलभ हैं । तब मन्दभुजफल और शीघ्रफल से गुणित कुदिन को भगण कला से भाग देने से जो फल होता है उसको भगण शेष में संस्कार करने से वास्तव भगणशेष होता है । उसके बाद भुजान्तर फल, चरफल देशान्तर फल को पूर्ववत् कुदिन से भाग देने से जो फल होता है उसको पूर्व भगण शेष में संस्कार करने से स्फुट भगणशेष होता है । इस स्फुट भगण-शेष से जो ग्रह आते हैं सो स्पष्ट ही कुजादिग्रह होते हैं ।

शेष प्रश्नों के उत्तर के लिए उपपत्ति

मध्यमार्कोदयकालिक ग्रहों को भुजान्तर संस्कार से स्पष्टार्कोदय कालिक करते हैं निरक्ष देश में फिर चरफल के द्वारा स्वदेश में स्पष्ठार्कोदय कालिक करते हैं । इस तरह इष्ट मध्यमग्रह और स्पष्टकला जनित असु रवि की तरह इष्टोदयिक भुजान्तर साधन करना और सूर्य की तरह इष्टग्रह चरासु से अपना चालनफल साधन करना तब उसके संस्कार करने से स्पष्ट इष्ट ग्रहोदयकाल में ग्रह होते हैं । यदि अश्विन्यौदयिक ग्रह अपेक्षित है तो नक्षत्र के फलाभाव के कारण भुजान्तर नहीं होता है ।।४।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

ज्याभिर्विनैव कुरुते भुजकोटिजीवां चापं च यत्फुटखगं च करोति मध्यम् ।
तुङ्गात्तथोच्चगतिमध्यगती स्फुटां वो चेष्टां करामलकवद्द्युसदां स वेत्ति ।।५।।

वि. भा.—ज्याभिर्विनैव यो भुजकोटिजीवां तथा चापं करोति, तुङ्गात् (उच्चात्) स्फुटखगं (स्पष्टग्रहं) मध्यं करोति स करामलकवद्द्युसदां (ग्रहाणां) चेष्टां (गतिं) वेत्त्यन्यत्स्पष्टम् ।।५।।

एनदुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि व्यासार्धे भुजज्या लभ्यते तदा द्विगुणित व्यासार्धे किं जाताद्विगुणितव्यासार्धे भुजज्या तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{ज्याभु. २ व्याद}}{\text{व्याद}} =$ २ ज्याभु । अतः कस्मिन्नपि व्यासार्धे द्विगुणभुजांशानां या पूर्णज्या सैव द्विगुणित तद्व्यासार्धे भुजज्या भवतीति । षष्टिव्यासार्धे द्विगुणितभुजांशानां पूर्णज्यासाधनार्थं स्वल्पान्तरतो व्यासस्त्रिगुणः परिधिः=३६० । ततश्चक्रांशैश्चक्रसमचापीयमानं लभ्यते तदा द्विगुणभुजांशैः किं लब्धं तच्चापमानम्=२ भु. ततश्चापोननिघ्नपरिधिः प्रथमाह्वयः स्यादित्यादिना १२० व्यासे द्विगुणभुजांशपूर्णज्या जाता, १२० त्रिज्याया भुजज्या

$$= \frac{(\text{३६०}-\text{२भु})\ \text{२भु}\times\text{४}\times\text{१२०}}{\text{३६०}^{\text{२}}\times\frac{\text{५}}{\text{४}} - (\text{३६०}-\text{२भु})\ \text{२भु}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{१६}\times\text{१२०}}{\frac{\text{३६०}\times\text{३६०}\times\text{५}}{\text{४}} - (\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{४}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{१२०}}{\frac{\text{९०}\times\text{३६०}\times\text{५}}{\text{१६}} - \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}\times\text{१२०}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$$ ततो यदि खार्कमितत्रिज्यायामियं

भुजज्या तदेष्टत्रिज्यायां किमिति जाता भुजज्या $= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु. त्रि}}{\text{१०१२५} - \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\ \text{भु}}{\text{४}}}$

$$= \frac{(\text{१८०}-\text{भु})\text{भु. त्रि}\times\text{४}}{\text{४०५००}-(\text{१८०}-\text{भु})\text{भु}} = \frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}}).\ \text{त्रि}}{\text{१०१२५}-\frac{(\text{१८०}\times\text{भु}-\text{भु}^{\text{२}})}{\text{४}}} = \text{भुजज्या}$$

∴ सिद्धम् ।

एवं कोटिचापवशतोऽपि भवेदिति ।

हि. भा.—ज्या बिना जो व्यक्ति विशेष भुजज्या और कोटिज्या लाते हैं तथा चाप लाते हैं, और उच्च से स्पष्ट ग्रह को मध्यम करते हैं अर्थात् उच्च और स्पष्ट ग्रह से मध्यमग्रह साधन करते हैं वह ग्रह स्पष्टगति को जानते हैं । शेष स्पष्टार्थ है ।।५।।

इनके उत्तर के लिए उपपत्ति ।

यदि व्यासार्ध में भुजज्या पाते हैं तो द्विगुणित व्यासार्ध में क्या इस अनुपात से

द्विगुणित व्यासार्ध में भुजज्या आती है। $\frac{\text{ज्याभु. २ व्याद}}{\text{व्याद}}$ = २ ज्याभु.। व्याद = व्यासदल.

इसलिए किसी भी व्यासार्ध में द्विगुणित भुजांश की जो पूर्णज्या होती है वही द्विगुणित उस व्यासार्ध में भुजज्या होती है। ६० व्यासार्ध में द्विगुणित भुजांश की पूर्णज्या साधन के लिए स्वल्पान्तर से त्रिगुणित व्यास = परिधि = ३६० । तब अनुपात करते हैं यदि चक्रांश में चक्रतुल्य चापीय मान पाते हैं तो द्विगुणित भुजांश में क्या आ जायगा उस चाप के मान = २ भु। तब 'चापोननिघ्नपरिधिः प्रथमाह्वयः स्यात्' इत्यादि से १२० व्यास में द्विगुण भुजांश की पूर्णज्या हुई। १२० त्रिज्या में भुजज्या =

$$\frac{(३६० - २\text{ भु})\ २\text{ भु} \times ४ \times १२०}{३६०^2 \times \frac{५}{४} - (३६० - २\text{भु})२\text{भु}} = \frac{(१८० - \text{भु})\text{भु} \times १६ \times १२०}{\frac{३६० \times ३६० \times ५}{४} - (१८० - \text{भु})\text{भु} \times ४}$$

$$= \frac{(१८० - \text{भु})\text{भु} \times १२०}{\frac{९० \times ३६० \times ५}{१६} - \frac{(१८० - \text{भु})\text{ भु}}{४}} = \frac{(१८० - \text{भु})\text{भु} \times १२०}{१०१२५ - \frac{(१८० - \text{भु})\text{ भु}}{४}}$$ यदि १२०

त्रिज्या में यह भुजज्या पाते हैं तो इष्ट त्रिज्या में क्या आ जायगी भुजज्या =

$$\frac{(१८० - \text{भु})\text{ भु. त्रि}}{१०१२५ - \frac{(१८० - \text{भु})\text{भु}}{४}} = \frac{(१८० - \text{भु})\text{ भु. त्रि} \times ४}{४०५०० - (१८० - \text{भु})\text{ भु}}$$

$$\frac{(१८० \times \text{भु} - \text{भु}^2)\text{ त्रि}}{१०१२५ - \frac{(१८० \times \text{भु} - \text{भु}^2)}{४}}$$ = भुजज्या, इसी तरह कोटि चापवश करके कोटिज्या होगी।

∴ सिद्ध हो गया।

द्वितीयप्रश्नस्य (ज्यातश्चापानयस्य) उत्तरार्थमुपपत्तिः।

पूर्वप्रकारेण $\frac{(१८० - \text{भु})\text{भु. त्रि. }४}{४०५०० - (१८० - \text{भु})\text{भु}}$ = भुजज्या, छेदगमेन

$(१८० - \text{भु})\text{भु. त्रि. }४ = \text{भुजज्या} \times ४०५०० - \text{भुज्या }(१८९ - \text{भु})\text{भु}$ समयोजनेन

$(१८० - \text{भु})\text{भु. त्रि. }४ + \text{भुज्या }(१८० - \text{भु})\text{भु} = \text{भुज्या} \times ४०५००$

$= (१८० - \text{भु})\text{भु }(४\text{ त्रि} + \text{भुज्या})$

अतः $\frac{\text{भुज्या} \times ४०५००}{४\text{त्रि} + \text{भुज्या}} = (१८० - \text{भु})\text{ भु} = \frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}}$

$१८० \times \text{भु} - \text{भु}^2$ पक्षौ (−१) गुणितौ तदा $- \frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = \text{भु}^2 - १८० \times \text{भु} = \text{ल}$

अत $\frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}}$ = ल । ततः $\text{भु}^2 - १८० \times \text{भु} + \text{ल} = ०$

अतः $\text{भु} = ९० \pm \sqrt{९०^2 - \text{ल}}$. ∴ सिद्धम् ।

द्वितीय प्रश्न (ज्या से चापानयन) के उत्तर के लिए उपपत्ति ।

पूर्व प्रकार से $\frac{(१८० - \text{भु})\text{भु}. \text{त्रि}. \times ४}{४०५०० - (१८० - \text{भु})\text{भु}}$ = भुजज्या । छेदगम करने से

$(१८० - \text{भु})\text{भु}. \text{त्रि}. ४ = \text{भुज्या}. ४०५०० - \text{भुज्या} (१८० - \text{भु})\text{भु}$. समयोजन से

$(१८० - \text{भु})\text{भु}. \text{त्रि}. ४ + \text{भुज्या} (१८० - \text{भु})\text{भु} = \text{भुज्या} \times ४०५००$

$= (१८० - \text{भु})\text{भु} (४ \text{त्रि} + \text{भुज्या})$

अतः $\frac{\text{भुज्या} \times ४०५००}{४ \text{त्रि} + \text{भुज्या}} = (१८० - \text{भु})\text{भु} = \frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}} = १८० \times \text{भु} - \text{भु}^2 = \text{ल}$

यहां $\frac{\text{भुज्या} \times १०१२५}{\text{त्रि} + \frac{\text{भुज्या}}{४}}$ = ज । समशोधन करने से $\text{भु}^2 - १८० \times \text{भु} + \text{ल} = ०$

अतः $\text{भु} = ९० \pm \sqrt{९०^2 - \text{ल}}$

अतः सिद्ध हो गया ।

तृतीयप्रश्नस्य (उच्चस्पष्टग्रहैर्मध्यमग्रहानयनस्य) उत्तरार्थमुपपत्तिः ।

शीघ्रात्स्पष्टग्रहोनाच्चलफलमखिलमित्यादिना पूर्व स्पष्टग्रहज्ञानान्मध्यमग्रहानयनमाचार्येण कृतमस्ति, एतदुपपत्तिश्च मया तत्र लिखिता, ब्रह्मगुप्तेन भास्कराचार्येण चासकृत्प्रकारेण स्पष्टग्रहान्मध्यग्रहानयनं कृतमस्ति, एतेन ग्रन्थकारेणाप्यसकृत्प्रकारेणैव तदानयनं कृतम् । स्पष्टग्रहेण रहितं शीघ्रोच्चं स्पष्टकेन्द्रं भवति ततोऽनुपातस्त्रिज्यया यदि स्पष्टकेन्द्रज्या लभ्यते तदाऽन्त्यफलज्यया किं समागच्छति सकृदेव स्पष्टा शीघ्रफलज्या तच्चापं वास्तवमेव शीघ्रफलम् । ब्रह्मगुप्तादिकथितस्पष्टीक्रिया क्रमतो मन्दोच्चरहितस्पष्टकेन्द्रतो यदा पुनः पुनस्तदेव मन्दफलमागच्छेत्तदा क्रियासमाप्तिः । उपान्तिमस्पष्टग्रहाद् यन्मन्दफलं तदेवोपान्तिमतुल्यान्त्यस्पष्टग्रहाच्चातो मन्दोच्चरहितस्पष्टकेन्द्रतः सकृदेव वास्तवं मन्दफलं भवति. ब्रह्मगुप्तादिभिर्वटेश्वरेण च व्यर्थमेवासकृद्विधिः प्रतिपादित इति ॥५॥

अब तृतीय प्रश्न (उच्च और स्पष्टग्रह से मध्यमग्रह ज्ञान) के उत्तर के लिये उपपत्तिः ।

शीघ्रात्स्पष्ट ग्रहोनाच्चलफलमखिलम् इत्यादि से पहले स्पष्ट ग्रह से मध्यम ग्रह ज्ञान आचार्य ने किया हुआ है उसकी उपपत्ति वहां हम लिख चुके हैं। ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य और ये ग्रन्थकार भी असकृत् प्रकार से स्पष्टग्रह से मध्यमग्रह का ज्ञान किया है। शीघ्रोच्च में

स्पष्टग्रह को घटाने से स्पष्ट केन्द्र होता है तब अनुपात करते हैं यदि त्रिज्या में स्पष्ट केन्द्रज्या पाते हैं तो अन्त्यफलज्या में क्या इस अनुपात से सकृत् ही (एक ही बार में) स्पष्ट शीघ्र फलज्या आती है, इसका चाप वास्तव शीघ्रफल है। ब्रह्मगुप्तादि स्पष्टीकरण क्रियाक्रम से मन्दोच्च रहित स्पष्ट केन्द्र से जब बार-बार वही मन्दफल आता है तव क्रिया की समाप्ति होती है। उपान्तिम स्पष्टग्रह से जो मन्दफल होता है वही उपान्तिम तुल्य अन्तिम स्पष्टग्रह से भी, इसलिए मन्दोच्च रहित स्पष्ट केन्द्र से सकृत् ही वास्तव मन्दफल होता है। ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने व्यर्थ ही असकृत् प्रकार कहा है। इति ॥५॥

इदानीमन्यौ प्रश्नावाह।

त्रिज्यासमः कीदृशि शीघ्रकेन्द्रे कर्णो भुजज्यासदृशश्च कस्मिन्।
ब्रूहि स्फुटां वेत्सि यदि ग्रहाणां चेष्टां तथाऽग्रान्त्यफलज्यया च ॥६॥

वि. भा.—कीदृशि शीघ्रकेन्द्रे त्रिज्यासमः (त्रिज्यातुल्यः) कर्णो भवेत्। कस्मिन् शीघ्रकेन्द्रे भुजज्यासदृशः (केन्द्रज्यातुल्यः) शीघ्रकर्णो भवेत्, यदि ग्रहाणां स्फुटां चेष्टां (स्पष्टगतिं) त्वं वेत्सि तदा ब्रूहि (कथय) तथाऽग्रान्त्यफलज्ययेत्यस्याग्रिमश्लोकेन सम्बन्ध इति ॥६॥

प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थमुपपत्तिः।

यदा कक्षावृत्तशीघ्रप्रतिवृत्तयोर्योगबिन्दौ ग्रहस्तदा तत्र त्रिज्यातुल्यः शीघ्रकर्णो भवति, तत्र शीघ्रकेन्द्र प्रमाणं कियदिति विचार्यते कक्षावृत्तप्रतिवृत्तयोः सम्पातस्य द्वितीयपदे स्थितत्वात्तत्र कर्णवर्गस्वरूपम् = त्रि^{2} + अंफज्या^{2} – २ अंफज्या. केकोज्या = कर्ण^2। यदि कर्ण = त्रि तदा

त्रि^{2} + अंफज्या^{2} — २ अंफज्या. केकोज्या = त्रि^{2} समशोधनेन

अंफज्या^{2} — २ अंफज्या. केकोज्या = त्रि^{2} — त्रि^{2} = ० समयोजनेन

अंफज्या^{2} = २ अंफज्या. केकोज्या ततः अंफज्या = २ केकोज्या ∴ $\frac{\text{अंफज्या}}{२}$

= केकोज्या चापकरणेन $\frac{\text{अंफल}}{२}$ = केकोटि = ९० – शीकेन्द्र ∴ शीकेन्द्र = ९० + $\frac{\text{अंफल}}{२}$

एतेन सिद्धं यद् यदैतत्तुल्यं शीघ्रकेन्द्रं भवेत्तदा तत्र त्रिज्यातुल्यः शीघ्रकर्णो भवेदिति।

अथ द्वितीयप्रश्नो (कीदृशे शीघ्रकेन्द्रशीघ्रकेन्द्रज्यातुल्यः शीघ्रकर्णः) त्तरार्थमुपपत्तिः।

अथ कर्णवर्गस्वरूपम् = केन्द्रज्या तदा त्रि^{2} + पंफज्या^{2} – २ अंफज्या. केकोज्या = कर्ण^2

यदि कर्ण = केन्द्रज्या तदा त्रि^{2} + अंफज्या^{2} — २ अंफज्या. केकोज्या = कर्ण^2 = शीकेन्द्रज्या^{2} = त्रि^{2} — केकोज्या

समशोधनेन

अंफज्या^{2}—२ अंफज्या. केकोज्या = —केकोज्या^{2} समयोजनेन

अंफज्या^{2}— २ अंफज्या. केकोज्या + केकोज्या^{2} = (केकोज्यः—अंफज्या)^2 = ० मूलेन ।

केकोज्या—अन्त्यफज्या = ० ∴ केकोज्या = अंफज्या ततः केज्या = अंफकोज्या वा. शीकेन्द्रज्या = अन्त्यफलको, एतेन सिद्धं यद्यत्रान्त्यफलकोटितुल्यं शीघ्रकेन्द्रं भवेत्तत्र शीघ्रकेन्द्रज्यातुल्यः शीघ्रकर्णो भवेदिति ।।६।।

अब दो अन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि.भा.—कितने शीघ्रकेन्द्र में त्रिज्या तुल्य शीघ्र कर्ण होता है। और कितने शीघ्र केन्द्र में शीघ्र केन्द्रज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है। 'अग्रान्त्यफलज्यया च' इसको अगले श्लोक के साथ सम्बन्ध है ।।६।।

प्रथम प्रश्न (त्रिज्यातुल्य शीघ्रकर्ण कितने शीघ्रकेन्द्र में होता है) के उत्तर के लिये उपपत्ति।

जब कक्षावृत्त और शीघ्र प्रतिवृत्त के योग बिंदु में ग्रह रहते हैं तो त्रिज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है। वहां शीघ्र केन्द्र प्रमाण क्या है इसके लिये विचार करते हैं। कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त के योगबिन्दु द्वितीय पद में हैं इसलिए वहां शीघ्रकर्ण वर्ग = त्रि^{2} + अंफज्या^{2}—२ अंफज्या. केकोज्या = कर्ण^2 जब कर्ण = त्रि तब त्रि^{2} + अंफज्या^{2} — २अंफको. केकोज्या = कर्ण^2 = त्रि^{2} समशोधन करने से अंफज्या^{2}— २ अंफज्या. केकोज्या = ० ∴ २ अंफज्या^{2} = २ अंफज्या. केकोज्या वा अंफज्या = २ केकोज्या तब $\frac{\text{अंफज्या}}{२}$ = केकोज्या

चाप करने से $\frac{\text{अंफल}}{२}$ = केन्द्रकोटि = ९०—केन्द्र ∴ ९० + $\frac{\text{अंफल}}{२}$ = केन्द्र इससे सिद्ध हुआ जहां पर अन्त्यफलार्ध युत नवत्यंश तुल्य शीघ्रकेन्द्रांश होगा वहीं त्रिज्या तुल्य शीघ्र कर्ण होता है ।।

अब द्वितीय प्रश्न (कितने शीघ्रकेन्द्र में शीघ्र केन्द्रज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है) के उत्तरार्थ उपपत्ति।

पहले के कर्ण वर्ग = त्रि^{2} + अंफज्या^{2}—२ अंफज्या. केकोज्या = कर्ण^2, यदि कर्ण शीकेन्द्रज्या तब त्रि^{2} + अंफज्या^{2}—२ अंफज्या. केकोज्या = शीकेज्या = त्रि^{2}—केकोज्या^{2} समशोधन करने से अंफज्या^{2}—२ अंफज्या. केकोज्या = —केकोज्या^{2} समान जोड़ने से

अंफज्या^{2}—२ अंफज्या. केकोज्या + केकोज्या^{2} = ० मूल लेने से

केकोज्या—अंफज्या = ० ∴ केकोज्या = अंफज्या वा शीघ्र केन्द्र = अंफल कोटि इससे सिद्ध हुआ कि जहां पर अन्त्यफल कोटि के बराबर शीघ्र केन्द्र होता है वहीं पर शीघ्र केन्द्रज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है ।।६।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

केन्द्रमिष्टफलस्ततोऽथवा तद्ग्रहस्य दृगदृश्यकेन्द्रके ।
वक्रकेन्द्रमनुवक्र केन्द्रकं तद्दिनानि गणकः स उच्यते ॥७॥

वि. भा.—अग्रान्त्यफलज्यया केन्द्रमिष्टफलतोऽथवा ग्रहस्य दृगदृश्यकेन्द्रके (उदयास्तकेन्द्रांशके) वक्रकेन्द्रं (वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशं) अनुवक्रकेन्द्रकं तद्दिनानि च यो जानाति स गणकः (ज्योतिर्वित्) उच्यते (कथ्यते) । वक्रारम्भकालिककेन्द्रांशाः ३६० एभ्यो विशोधितास्तदाऽनुवक्र (मार्ग) केन्द्रांशा भवेयुस्तद्दिनानि(वक्रानुवक्रदिनानि) यो जानाति स गणकः कथ्यते ॥७॥

अथ तद्ग्रहस्य दृगदृश्यकेन्द्रके—एतदुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

कुजगुरुशनीनां शीघ्रोच्चरविरेवास्ति, तस्मात्तेषां ग्रहाणां शीघ्रोच्चस्थाने परमास्तो भवेत् ततोऽनन्तरं शीघ्रगतित्वाद्रविस्ततोऽग्रतो गच्छति यदा कालांशतुल्यमन्तरं भवेत्तदा रविसामीप्यवशेन रात्र्यन्ते तेषां पूर्वदिश्युदयो दृश्यते तेन कालांशतुल्ये स्पष्टकेन्द्रांशे यच्छीघ्रफलं तद्युताः कालांशास्तदुदयशीघ्रकेन्द्रांशा भवेयुः । यथा रवेः शीघ्रोच्चत्वात्स्पष्टकेन्द्रांशाः=कालांशाः । ततोऽनुपातो यदि त्रिज्यया स्पष्टकेन्द्रांशज्या (कालांशज्या) लभ्यते तदाऽन्त्यफलज्यया किमित्यनुपातेन फलज्या $=\frac{\text{कालांशज्या}\times\text{अन्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ अस्याश्चापम्=फ कालांशयुतं तदा तेषां कुजगुरुशनीनामुदयकेन्द्रांशाः=कालांश+फ

बुधशुक्रयोर्मध्यगरविसम एव मध्यमः, मध्यममेव मन्दस्पष्टं प्रकल्प्य स्वस्वस्पष्टेन बुधेन शुक्रेण वा कालांशतुल्येऽन्तरे पश्चिमायां तदुदयोऽवलोक्यते प्रथमपदे ततः $\frac{\text{कालांशज्या. त्रि}}{\text{अंफलज्या}}$ =स्पकेज्या, अस्याश्चापं कालांशसहितं तदा पश्चिमोदये तत्केन्द्रांशा भवन्ति । द्वितीयपदे च वक्रीभूय तत्रैव चास्तं गच्छतः । तृतीये पदे तदुदयः पुनर्दृश्यते नीचस्थाने तयोः परमास्तं गतत्वात् । पूर्वदिशि रात्र्यवशेषे स चोदयो दृश्यते । चतुर्थे पदे कालांशान्तरस्थयोस्तयोस्तत्रैवास्ताविति । तेन पूर्वोदयकेन्द्रांशाः =स्पके+(१८०—कालांश) प्रथमपदे बुधशुक्रयोः पश्चिमोदयश्चतुर्थपदे च पूर्वदिश्यस्तस्तृतीयपदे पूर्वदिश्युदये द्वितीयपदे च पश्चिमास्तः स्यात् । तेन पश्चिमोदयकेन्द्रांशोनभांशा पूर्वदिशि-पूर्वोदयकेन्द्रांशोनभांशाः पश्चिमदिशि तदस्तकेन्द्रांशा भवन्तीति ॥

तद्दिनानीत्यस्योत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि केन्द्रगत्यैकं दिनं लभ्यते तदास्तोदयान्तः केन्द्रकलाभिः किमित्यनुपातेन यानि दिनानि समागच्छन्ति तान्येव तद्दिनानीति । तथा वक्रानुवक्रान्तःकेन्द्रकलाभिश्च पूर्ववदनुपातेनानुवक्रवक्रदिनान्यागच्छन्तीति ॥ ७ ॥

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं।

हि. भा—अग्रा (केन्द्रकोटिज्या) और अन्त्यफलज्या से केन्द्र उस पर से इष्टफल उससे ग्रह के दृश्यकेन्द्र (उदयकेन्द्र) अदृश्यकेन्द्र (अस्तकेन्द्र), वक्रकेन्द्र और अनुवक्रकेन्द्र, और उनके दिन, (उदयास्तदिन, वक्रानुवक्रदिन) को जो जानते हैं वह अच्छे ज्योतिषी हैं ॥७॥

ग्रह के उदयास्त केन्द्रांशानयन के लिये उपपत्ति

कुज, गुरु और शनि इनके शीघ्रोच्च रवि है, इसलिये शीघ्रोच्च स्थान में उन ग्रहों के परमास्त होता है उसके बाद उन ग्रहों से रवि शीघ्रगति होने के कारण उनसे आगे जाते हैं जब उन ग्रहों के साथ कालांश तुल्य अन्तर होता है तब रवि के साथ समीपता के कारण रात्रिशेष में पूर्वदिशा में उन ग्रहों के उदय देखते हैं। अतः कालांश तुल्य स्पष्ट केन्द्रांश में जो शीघ्रफल होगा उसको कालांश में जोड़ने से उनके उदयशीघ्र केन्द्रांश होते हैं, यथा रवि के शीघ्रोच्च होने के कारण स्पष्ट केन्द्रांश=कालांश तब अनुपात करते हैं यदि त्रिज्या में स्पष्ट केन्द्रज्या (कालांशज्या) पाते हैं तो अन्त्यफलज्या में क्या इस अनुपात से फलज्या आती है।
$\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{अन्त्यफज्या}}{\text{त्रि}}$ = फलज्या। इसके चाप को कालांश में जोड़ने से उन ग्रहों के उदय केन्द्रांश होते हैं, कालांश + फल = उदयकेन्द्रांश, बुध और शुक्र के मध्यम रवि ही मध्यम है मध्यम ही को मन्दस्पष्ट मानकर अपने अपने स्पष्ट बुध, या शुक्र से कालांश तुल्य अन्तर पर पश्चिम दिशा में उनके उदय देखते हैं प्रथम पद में। अतः $\frac{\text{कालांशज्या} \times \text{त्रि}}{\text{अं फज्या}}$ = स्पकेज्या इसके चाप में कालांश जोड़ने से उनके पश्चिमोदय केन्द्रांश होते हैं। द्वितीय पद में वक्र होकर वे वहीं अस्त होते हैं। तृतीय पद में उनके उदय फिर देखते हैं नीच स्थान में उन दोनों के परमास्त होने के कारण, पूर्व दिशा में रात्रिशेष में वह उदय देखते हैं। चतुर्थपद में कालांशान्तरित पर स्थित होने से वहीं पर अस्त होते हैं। इसलिये पूर्वोदय केन्द्रांश = स्पके + (१८०—कालांश) प्रथम पद में बुध और शुक्र के पश्चिमोदय और चतुर्थ पद में पूर्व दिशा में अस्त, तृतीय पद में पूर्व दिशा में उदय, द्वितीय पद में पश्चिमास्त होते हैं। इसलिये पश्चिमोदय केन्द्रांश को ३६० में घटाने से पूर्व दिशा में और पूर्वोदय केन्द्रांश को ३६० में घटाने से पश्चिम दिशा में अस्त केन्द्रांश होते हैं॥

अब उदयास्त और वक्रानुवक्रदिन ज्ञान के लिये उपपत्ति।

यदि केन्द्रगति में एक दिन पाते हैं तो उदयास्तान्तः केन्द्रकला में क्या इस अनुपात से उदयास्तदिन आते हैं। एवं वक्रानुवक्रान्तः केन्द्रकला पर से पूर्ववत् अनुपात से वक्रानुवक्रदिन आते हैं॥७॥

वक्रकेन्द्रमनुवक्रकेन्द्रमिति प्रश्नोत्तरार्थमुपपत्तिः।

वक्रारम्भो द्वितीयपदे नीचासन्ने भवतीति पूर्वप्रदर्शितमस्ति, अथ वक्रारम्भकालिकशीघ्रकेन्द्रांशानयनार्थं तत्कोटिज्याप्रमाणं = य कल्प्यते।

तत्र $\text{कर्ण}^2 = \text{त्रि} + \text{अं फज्या}^2 = 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}$ । फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक्केन्द्रभुक्तिरित्यादिना $\text{उग} - \frac{\text{फकोज्या}.\text{केग}}{\text{शीक}} = \text{स्पष्टगति}$ | अत्र केग = शीघ्रकेन्द्रगतिः, उग = शीघ्रोच्चगतिः, शीक = शीघ्रकर्णः = क

द्राक् केन्द्रकोटि मौर्व्यान्त्यफलज्या गुणया क्रमात् ।
मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यकाकृतिः ।
शीघ्रकर्णहृता लब्धं फलकोटिज्यका भवेत् । इति संशोधकोक्तटिप्पण्या

$\text{त्रि}^2 - \frac{\text{य}.\text{अं फज्या}}{\text{कर्ण}} = \text{फलकोज्या}$ ततः स्पष्टगतिस्वरूपे उत्थापनेन

$$\text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य}.\text{अं फज्या})\text{केग}}{\text{क}^2} = \text{स्पग} = \text{उग} = \frac{(\text{त्रि}^2 - \text{य}.\text{अं फज्या})\ \text{केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\text{अं फज्या}.\text{य}}$$

$$= \text{उग} - \frac{(\text{त्रि}^2.\text{केग} - \text{य}.\text{अं फज्या}.\text{केग})}{\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}} = 0$$ (वक्रारम्भे ग्रहगति = ० भवति)

$$\frac{\text{उग}.\text{त्रि}^2 + \text{उग}.\text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}.\text{उग} - \text{त्रि}^2.\text{केग} - \text{य}.\text{अं फज्या}.\text{केग}}{\text{त्रि}^2 + \text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}} = \text{स्पग} = 0$$

छेदगमेन $\text{उग}.\text{त्रि}^2 + \text{उग}.\text{अं फज्या}^2 - 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}.\text{उग} - \text{त्रि}^2.\text{केग} - \text{य}\ \text{अं फज्या}.\text{केग} = 0$

दोनों पक्षों में समान जोड़ने से

$\text{उग}.\text{त्रि}^2 + \text{उग}.\text{अं फज्या}^2.\text{उग} - 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}.\text{उग} = \text{त्रि}^2.\text{केग} + \text{य}.\text{अं फज्या}.\text{केग}$ समशोधन करने से $\text{उग}.\text{त्रि}^2 - \text{त्रि}^2.\text{केग} + \text{उग}.\text{अं फज्या}^2 = 2\ \text{अं फज्या}.\text{य}.\text{उग} - \text{य}.\text{अं फज्या}.\text{केग}$

$$= \text{त्रि}^2\ (\text{उग} - \text{केग}) + \text{उग} + \text{अं फज्या}^2 = \text{य}.\text{अं फज्या}\ (2\ \text{उग} - \text{केग})$$
$$= \text{त्रि}^2 \times \text{मंस्पग} + \text{उग}.\text{अं फज्या}^2 = \text{य}.\text{अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{उग} - \text{केग})$$
$$= \text{य}.\text{अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{मंस्पग})$$

$$\text{अतः}\ \frac{\text{त्रि}^2.\text{मंस्पग} + \text{उग}.\text{अं फज्या}^2}{\text{अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{मंस्पग})} = \frac{\text{त्रि}^2.\text{मग} + \text{उग}.\text{अफज्या}^2}{\text{अं फज्या}\ (\text{उग} + \text{मग})} = \text{य}.$$ ।

अत्र स्वल्पान्तरात् मन्दस्पगति = मध्यगतिः । अस्याश्चापं नवतियुतं तदा वक्रारम्भे केन्द्रांशा भवेयुरिति ॥ वक्रकेन्द्रांशाः ३६० एभ्यो विशो धितास्तदाऽनुवक्र (मार्ग) केन्द्रांशा भवन्ति । ततो वक्रानुवक्रदिवसज्ञानं सुलभमेवेति ॥ ७ ॥

अब वक्रकालिक और अनुवक्रकालिक केन्द्रांशानयन करते हैं ।

हि. भा.—वक्रारम्भ द्वितीय पद में नीचासन्न में होता है यह बात पहले कह चुके हैं । वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रानयन के लिये उसकी कोटिज्या के मान य मानते हैं । वहां पर कर्णवर्ग =

त्रि^{2}+अं फज्या^{2}—२ अं फज्या. य. = कर्ण^2, फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी इत्यादि से

उग—$\frac{\text{फकोज्या.केग}}{\text{शीक}}$=स्पष्टगति | यहां केग = शीघ्रकेन्द्रगति । उग = शीघ्रोच्चगति शीक = शीघ्रकर्ण = क

द्राक् केन्द्रकोटिमौर्व्यन्त्यफलज्या गुणया क्रमात् ।

मृगकर्क्यादिके केन्द्रे युतोना त्रिज्यका कृतिः ।।

शीघ्रकर्ण हृता लब्धं फलकोटिज्यका भवेत् । इस संशोधकोक्त टिप्पणी से

त्रि^{2}—$\frac{\text{य. अं फज्या}}{\text{क}}$ = फकोज्या । इससे स्पष्टगति स्वरूप में उत्थापन देने से

उग—$\frac{(\text{त्रि}^2\text{—य. अं फज्या) केग}}{\text{क}^2}$=स्पष्टगति उग—$\frac{(\text{त्रि}^2\text{—य. अंफज्या) केग}}{\text{त्रि}^2+\text{अंफज्या}^2\text{—२ अंफज्या.य}}$

उग—$\frac{\text{त्रि}^2\text{ केग—य. अं फज्या. केग}}{\text{त्रि}^2+\text{अं फज्या}^2\text{—२ अं फज्या.य}}$ = ० (वक्रारम्भे ग्रहगति = ० होती है)

= $\frac{\text{उग. त्रि}^2+\text{उग. अंफज्या}^2\text{—२ अंफज्या. य.उग—(त्रि}^2\text{केग—य. अंफज्या. केग)}}{\text{त्रि}^2+\text{अं फज्या}^2\text{—२ अंफज्या. य}}$ = ०

छेदगम से

उग. त्रि^{2}+उग .अंफज्या^{2}—२ अंफज्या . य. उग—(त्रि^{2} केग—य. अंफज्या. केग) = ०

समान जोड़ने से

उग. त्रि^{2} + उग. अं फज्या^{2} — २ अंफज्या. य.उग = त्रि^{2} केग—य.अंफज्या. केग

समशोधनादि से

उग.त्रि^{2}—त्रि^{2}.केग + उग अं फज्या^{2} = २ अं फज्या. य. उग—य. अं फज्या. केग

= त्रि^{2} (उग—केग) + उग. अं फज्या^{2} = य. अं फज्या (२ उग—केग)

त्रि^{2} × मंस्पग + उग. अं फज्या^{2} = य. अं फज्या (उग + उग—केग) = य. अं फज्या (उग + मंस्पग)

अतः $\frac{\text{त्रि.}^2\text{ मंस्पग + उग. अं फज्या}^2}{\text{अं फज्या (उग + मंस्पग)}}$ = य | यहां स्वल्पान्तर से मंस्पष्टग = मध्यमग

तब $\frac{\text{त्रि}^2\text{. मग + उग. अं फज्या}^2}{\text{अं फज्या (उग + मंस्पग)}}$ = य | इसके चाप को नवत्यंश में जोड़ने से

वक्रारम्भकालिक शीघ्रकेन्द्रांश होता है । वक्रकेन्द्रांश को ३६० इसमें घटाने से अनुवक्र केन्द्रांश होता है । इससे वक्र अनुवक्र दिन ज्ञान सुलभ ही है ।।७।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

स्फुटर्क्ष भोगं बहुधाऽभिजिद्गतिं स्फुटां गतिं वाऽभिजितो हि वेत्ति यः ।
दिवौकसः संक्रमकालनाड़िकां स वेत्ति सम्यग्गणितं स्फुटागतेः ।। ८ ।।

वि. भा.—स्फुटर्क्षभोगं (स्पष्टनक्षत्रभोगं) बहुधा (अनेकधा) अभिजिद्गतिं तथाऽभिजितः स्फुटां गतिं वा, दिवौकसः (ग्रहस्य) संक्रमनाड़िकां (संक्रमणकालं) यो वेत्ति (जानाति) स सम्यक् स्फुटागतेर्गणितं (स्पष्टगतिगणितं) वेत्तीति ।।८।।

प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थमुपपत्तिः ।

येषां नक्षत्राणां भोगश्चन्द्रमध्यमगतिसमस्तानि नक्षत्राणि समभोगसंज्ञकानि चन्द्रमध्यमगतेरर्धतुल्यो भोगस्तान्यर्धभोगसंज्ञकानि । येषां च चन्द्रगत्यर्धयुतचन्द्रगतिसमभोगस्तान्यध्यर्धभोगसंज्ञकानि । इत्येव स्फुटर्क्षभोगाः । द्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं सर्वर्क्षभोगसंख्याः=२१३४६, चक्रकला २१६०० भ्यो विशोध्याऽवशेषसंख्या २५४ ऽभिजो गतिकलामानम् । अथवा "भघ्नशशिभगणा वियुक्ताः कहात्) इत्यादिना तद्गतिः साध्या सैव स्पष्टा गतिः कथ्यतेऽत्र सम्बन्धे विशेषः स्पष्टाधिकारस्य तिथ्यानयनविधिनामकाध्यायस्य ६.७ श्लोकोपपत्तौ द्रष्टव्य इति ।

दिवौकसा संक्रमकालनाड़िकामित्युत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि ग्रहकलायां षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा ग्रहबिम्बकलायां किमित्यनुपातेन संक्रमणकलघट्यस्तत्स्वरूपम् $= \frac{६० \times \text{ग्रविक}}{\text{ग्रगतिक}} = \frac{\text{ग्रविक}}{\frac{\text{ग्रहगतिक}}{६०}} = \frac{\text{ग्रहविक}}{\text{ग्रहगत्यंश}} =$ संक्रमण कालः । एवं सर्वेषां ग्रहाणां सक्रमणकालानयनं भवति तत्र रविसंक्रांतिकालोऽतीव पुण्यप्रद इति ।।८।।

अब अन्य प्रश्नों को कहते हैं ।

हि. भा.—स्पष्ट नक्षत्र भोग को, अनेक प्रकार की अभिजित् की गति और अभिजित् की स्पष्टगति को और ग्रहसंक्रान्तिकाल को जो जानते है वे स्पष्टगति गणित को अच्छी तरह जानते है ।। ८ ।।

प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

जिन नक्षत्रों के भोग चन्द्रमध्यमगति के बराबर है वे समभोग संज्ञक है, जिन नक्षत्रों के भोग चन्द्रमध्यगति के आधे के बराबर है वे अर्धभोगसंज्ञक है । जिन नक्षत्रों के भोग चन्द्रगत्यर्ध युत चन्द्रगति के बराबर है वे अध्यर्धभोगसंज्ञक है। ये ही स्फुटर्क्ष भोग है ।

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिये सर्वर्क्ष भोग संख्या २१३४६ को चक्रकला २१६०० में घटाने से २५४ कला अभिजित् का गतिकलामान होता हैं। अथवा (भघ्नशशिभगणा वियुक्ताः क्वहात्) इत्यादि पूर्वोक्त से अभिजित् की गति साधन करना यही अभिजित् की स्पष्टगति कही जाती है, इसके विषय में विशेष तिथ्यानयनविधि नामक अध्याय के ६-७ श्लोकोपपत्ति में देखना ।।

'दिवौकसः संक्रमकालनाड़िकां' इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति ।

यदि ग्रहगति कला में साठ घटी पाते हैं तो ग्रह बिम्बकला में क्या इस अनुपात से

संक्रमणकाल घटी प्रमाण आता है $\frac{६० \times \text{ग्रबिम्बकला}}{\text{ग्रहगतिकला}} = \frac{\text{ग्रहबिम्बकला}}{\frac{\text{ग्रहगतिकला}}{६०}}$

$= \frac{\text{ग्रहबिम्बकला}}{\text{ग्रहगत्यंश}}$ =संक्रमणकाल। इस तरह सब ग्रहों के संक्रमणकाल के आनयन होता है। उनमें रविसंक्रान्तिकाल सबसे पुण्यद है ॥८॥

इदानीं पुनरन्यान् प्रश्नानाह।

आद्यन्तौ व्यतिपातवैधृतिकयोर्मृतिकारयोश्च स्फुटं
तिथ्यन्तं करणान्तमेव हि तथा योगान्तमार्क्षं तथा।
यो जानाति समौ खरांशुशशिनौ लिप्तांशराश्यादिकै-
स्त्र्यहः स्पृक् दिवसाधिपं स गणको नान्योऽस्ति तस्यापरः ॥ ९ ॥

वि. भा.—मृतिकारयोः (मरणकारकयोः) व्यतिपातवैधृतिकयोः (व्यतिपातवैधृतिनाम्नोः पातयोः) आद्यन्तौ, तिथ्यन्तं करणान्तं, योगान्तं तथा आर्क्षं (नाक्षत्रान्तं) यो जानाति, लिप्तांशराश्यादिकैः कलांशराश्यादिकैः) समौ (तुल्यौ) खरांशुशशिनौ (रविचन्द्रौ) त्र्यहः स्पृग्दिवसाधिपं (त्र्यहःस्पृग्दिनपतिं) यो जानाति स गणकः। तस्यापरः (भिन्नः) अन्यः (गणकः) नास्तीति ॥ ९ ॥

आद्यन्तौ व्यतिपातवैधृतिकयोरित्यस्योत्तरार्थमुपपत्तिः।

यदा क्रान्तिसाम्यं तदैव पातस्तस्मात्कालात्प्राक् परतश्च पातस्य कथमवस्थानम्। तत्र क्रान्तिसाम्याभावात् क्रान्तिसाम्यं नाम पातः। बिम्बमध्यक्रान्तिर्बिम्बार्धेन रहिता सती पाश्चात्यबिम्बप्रान्तस्य तावती क्रान्तिर्भवति, बिम्बमध्यक्रान्तिबिम्बार्धेन सहिता सती अग्रतो बिम्बप्रान्तस्य क्रान्तिर्भवति, एवं रविचन्द्रयोश्च, अत्र बिम्बे पृष्ठमग्रं च याम्योत्तरभावेन कथ्यते, रविबिम्बपृष्ठक्रान्तिर्यावती तावत्येव यदा चन्द्रस्याग्रप्रान्तक्रान्तिस्तदा तयोर्बिम्बयोरेकदेशेन क्रान्त्योः साम्यात्पातस्यादिः। तदा तयोर्बिम्बकेन्द्रयोरन्तरं मानैक्यार्धतुल्यम्। ततः क्रमेण गच्छतो रविचन्द्रयोर्यदा बिम्बकेन्द्रीयक्रान्तिसाम्यं तदा पातमध्यम्। तदनन्तरं चन्द्रपृष्ठप्रान्तस्य रवेरग्रप्रान्तस्य च यदा क्रान्तिसाम्यं तदा पातान्तः यतः क्रान्त्यन्तरं यावन्मानैक्यार्धान्न्यूनं तावत्पातोऽस्तीति, अथ पातमध्यसाधने यत्प्रथमसंज्ञं क्रान्त्यन्तरं याश्चासकृत्प्रकारेण स्पष्टीकृता इष्टघटिकास्ततोऽनुपातो यदि प्रथमतुल्येन क्रान्त्यन्तरेणैतावत्यो घटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्यान्तरेण किमित्यनुपातेन या घटिकाः समागच्छन्ति ताः स्थित्यर्धघटिकाः स्थूलास्ततस्पष्टीकरणम्। तात्कालिकयो रविचन्द्रयोः पुनः क्रान्त्यन्तरं कार्यं तन्मानैक्यार्धासन्नं ततोऽनुपातो यद्यनेन क्रान्त्यन्तरेणैतावत्यः स्थित्यर्धघटिका लभ्यन्ते तदा मानैक्यार्धतुल्येन किमित्येवमसकृत्तद्घटीनां स्फुटत्वमिति ॥

तिथ्यन्तकरणान्तमेवेत्यस्योत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि रविचन्द्रयोर्गत्यन्तरेण षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा चन्द्रबिम्बकलायां किमित्यनुपातेन यद्घट्यादिफलं तत्करणतिथ्योः प्रान्तं स्यादिति ।

योगान्तमार्क्ष तथेत्येतदुत्तरार्थमुपपत्तिः ।

यदि रविचन्द्रयोर्गतियोगकलायां षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा चन्द्रबिम्बकलायां किमित्यनुपातेन यद् घट्यादिफलं तद्योगस्यान्तं भवति । तत्र लब्धे अस्य पूर्वार्धेन निर्गमकाल उत्तमकालेनोत्तरप्रवेश इति ।

यदि च चन्द्रगतिकलायां षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा चन्द्रबिम्बकलायां किमित्यनुपातेन यद्घट्यादिफलं तन्नक्षत्रस्यान्तं भवति ।।

समौ खरांशुशशिनौ लिप्तांशराश्यादिकावित्येतदुत्तरार्थमुपपत्तयः ।

यदि षष्टिघटीभी रविगतकला लभ्यन्ते तदा तिथिगतघटीभिर्गम्यघटीभिश्च किं समागच्छन्ति तिथिगतकलाः, गम्यकलाश्च, एवं चन्द्रगतिवशेनापि तिथिगतिकला गम्यकलाश्चागच्छन्ति, आभिः स्वस्वगतगम्यकलाभिर्वियुतयुतौ रविचन्द्रौ तिथ्यन्ते (इष्टतिथ्यन्ते) समकलौ भवतः ।

रविचन्द्रयोरन्तरं यदा द्वादशभागसमं तदैका तिथिर्भवति स्फुटमासान्ते त्रिंशत्तिथयः । अतो रविचन्द्रान्तरांशाः $=३०\times१२=३६०^{\circ}$ वा शून्यसमाः, अतोऽमान्ते राश्याद्यवयवे रविचन्द्रौ समौ पूर्णिमायां पञ्चदशतिथयः । अतो रविचन्द्रान्तरं $=१५\times१२=१८०^{\circ}=६$ राशयः । अतो रविचन्द्रावंशाद्यवयवैस्तुल्यौ भवतः । अन्यथा कथं तयोरन्तरे केवलं राशय एव भवन्ति । एवं कस्मिन्नपि तिथ्यन्ते रविचन्द्रयोरन्तरांशा द्वादशापवर्त्या एव तेन तदन्तरे कला विकला समत्वादेव केवलं भागा उत्पद्यन्ते शेषप्रश्नोत्तरं सुलभमेवेति ।।६ ।।

व्यतिपात और वैधृतपात के आद्यन्तकालानयन के लिये उपपत्ति।

हि. भा.—जब क्रान्तिसाम्य होता है तो पात होता है उस काल से (क्रान्तिसाम्यकाल से) आगे और पीछे क्यों पात की स्थिति होती हैं क्योंकि वहां क्रान्तिसाम्य नहीं है । क्रान्तिसाम्य ही का नाम पात है, बिम्ब बिम्बक्रान्ति में बिम्बार्ध घटाने से पीछे के बिम्ब प्रान्त की उतनी ही क्रान्ति होती है । बिम्बमध्यक्रान्ति में बिम्बार्ध जोड़ने से आगे के बिम्बप्रान्त की क्रान्ति होती है । इस तरह रवि और चन्द्र दोनों की होती है । यहां बिम्ब में आगे पीछे से मतलब याम्योत्तर भाव से है । रवि बिम्ब पृष्ठ कान्ति के बराबर जब चन्द्र बिम्ब के अग्रप्रान्त की क्रान्ति होगी तब उन दोनों बिम्बों के एक देश की क्रान्ति बराबर होने से पात की आदि होती है । तब दोनों बिम्ब केन्द्रों के अन्तर मानैक्यार्ध के बराबर होता है उसके बाद क्रम से भ्रमण करते हुए रवि और चन्द्र की केन्द्रीय क्रान्ति जब बराबर होगी तब पातमध्य होता है । उसके बाद चन्द्रपृष्ठ प्रान्तीय क्रान्ति जब रवि के अग्रप्रान्तीय क्रान्ति के बराबर होगी

तब पात का अन्त होता है। क्योंकि मानैक्यार्ध से क्रान्त्यन्तर जब तक न्यून रहेगा तब तक पात रहेगा। पातमध्य साधन में क्रान्त्यन्तर ग्राह्य संज्ञक है और असकृत्प्रकार से स्पष्टीकृत इष्ट घटी जो है उन पर से अनुपात करते हैं यदि प्रथम तुल्य क्रान्त्यन्तर में यह इष्टघटी पाते हैं तो मानैक्यार्ध तुल्य अन्तर में क्या इस अनुपात से जो घटी आती है वह स्थित्यर्धघटी स्थूल है उसका स्फुटीकरण करते हैं तात्कालिक रवि और चन्द्र के पुनः क्रान्त्यन्तर करना वह मानैक्यार्ध के आसन्न होता है उस पर से अनुपात करते हैं यदि इस क्रान्त्यन्तर में यह स्थित्यर्धघटी पाते हैं तो मानैक्यार्ध में क्या इस तरह असकृत् करने से उनका स्फुटत्व होता है। इति ॥

तिथ्यन्त और करणान्त का ज्ञान कैसे होता है इस प्रश्न के उत्तर के लिये उपपत्ति।

यदि रवि और चन्द्र के गत्यन्तर में साठ घटी पाते हैं तो चन्द्र बिम्बकला में क्या इस अनुपात से जो घट्यादि फल होता है वह तिथि और करण के प्रान्त हैं।

योगान्त और नक्षत्रान्त ज्ञान कैसे होता है इन प्रश्नों के उत्तर के लिये उपपत्ति।

यदि रवि और चन्द्र की गतियोग कला में साठ घटी पाते हैं तो चन्द्रबिम्बकला में क्या इस अनुपात से जो घट्यादि फल होता है वह योग का अन्त है।

यदि चन्द्रगति कला में साठ घटी पाते हैं तो चन्द्रबिम्बकला में क्या इससे जो घट्यादि फल.होता है वह नक्षत्र का अन्त हैं अर्थात् क्षत्रान्तर गमनकाल है ॥

अब रवि और चन्द्र कब कलादि कब अंशादि, और कब राश्यादि बराबर होते हैं इन प्रश्नों के उत्तर के लिये उपपत्ति।

यदि साठ घटी में रविगति कला पाते हैं तो तिथिगत घटी और गम्य घटी में क्या इससे तिथि गतकला और गम्यकला आती है, एवं चन्द्रगतिवश करके भी तिथि गतकला, गम्यकला आती है। अपनी अपनी गतकला और गम्यकला करके रहित और सहित रवि और चन्द्र तिथ्यन्त में कलाद्यवयव कर बराबर होते है।

रवि और चन्द्र के अन्तर जब बारह अंश के बराबर होता है तब एक तिथि होती है, स्फुटमासान्त में तीस तिथियां हैं, इसलिये रवि और चन्द्र के अन्तरांश $= ३० \times १२ = ३६०^\circ$ या शून्य के बराबर, इसलिये अमान्त में रवि और चन्द्र राश्यादि करके बराबर होते है। पूर्णिमा में पन्द्रह तिथियां हैं इसलिये रवि चन्द्र के अन्तर $= १५ \times १२ = १८०^\circ = ६$ राशि, इसलिये पूर्णिमा में रवि और चन्द्र अंशादि बराबर होते हैं। अन्यथा क्यों दोनों के अन्तर में केवल राशियां ही हैं। इस तरह किसी भी तिथ्यन्त में रवि और चन्द्र के अन्तरांश बारह से अपवर्त्य ही होंगे इसीलिए उनके अन्तर में कला, विकला के ममत्व के कारण केवल अंश ही रहते हैं। इति ॥

शेष प्रश्न के उत्तर सुलभ ही हैं ॥ ६ ॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

अत्यन्तशीघ्रामथ शीघ्रसंज्ञां निसर्गजातां मृदुसंज्ञितां च ।
सुमन्दवेगां खलु वक्रनाम्नीमतीतवक्रां कुटिलां तथैवम् ॥१०॥
अष्टप्रकारां द्युचरस्य भुक्तिं यः केन्द्रभेदैर्गणकः स सम्यक् ।

वि. भा.—अत्यन्तशीघ्रां (शीघ्रतरामतिशीघ्रां वा) शीघ्रसंज्ञां (शीघ्रां) निसर्गजातां (मन्दगति) मृदुसंज्ञितां (मन्दगतिं) सुमन्दवेगां (मन्दतरां) वक्रनाम्नीं (वक्रगति) अतीतवक्रां (मार्गगतिं) कुटिलामित्यष्टप्रकारां द्युचरस्य (ग्रहस्य) भुक्तिं (गतिं) केन्द्रभेदैर्यो जानाति स सम्यग्गणकः (शोभनो ज्योतिर्वित्) इति ॥$१०\frac{१}{२}$॥

अत्रोपपत्तिर्वक्रादिकेन्द्रांशानयनेन सुलभैवेति ।

इति प्रश्नविधिः सप्तमोऽध्यायः

इति श्रीमदानन्दपुरीयमहदत्तसुतवटेश्वरविरचिते स्फुटसिद्धान्ते स्वनामसंज्ञिते स्पष्टाधिकारः समाप्तः ।

हि. भा.—शीघ्रतर या अतिशीघ्र, शीघ्रसंज्ञक निसर्गसंज्ञक (मन्दगति) मन्दागति, मन्दतर गति, वक्रगति, मार्गगति, कुटिल गति ये आठ प्रकार की ग्रहगतियों को केन्द्रभेद से जो जानते हैं वे अच्छे ज्योतिषी हैं ॥$१०\frac{१}{२}$॥

इसकी उपपत्ति वक्रादिकेन्द्रांशानयन से स्पष्ट है ॥

इति प्रश्नविधि नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमदानन्दपुरीय महदत्त पण्डित के पुत्र वटेश्वररचित स्फुटसिद्धान्त स्पष्टाधिकार समाप्त हुआ ।



वटेश्वर सिद्धान्ते

त्रिप्रश्नाधिकारः

प्रथमोऽध्यायः

अथ त्रिप्रश्नाधिकारः प्रारम्भते ।

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह ।

त्रिप्रश्नोक्त्या निखिलं सुगम मष्टाधिकारजं यस्मात् ।
त्रिप्रश्नाह्वं तस्मादधिकारं स्पष्टमभिधास्ये ॥१॥

स्पष्टार्थम् ।

इदानीं दिग्ज्ञानमाह ।

समभुवि वृत्तेशङ्कोर्मध्यस्य प्रभाक्रामद्यत्र ।
प्रविशत्यपैति ककुभौ क्रान्तिवशात्स्तोऽपरैन्द्राख्ये ॥२॥

वि. भा.—समभुवि (जलेन समीकृतायां भूमौ) वृत्ते (माध्यान्हिकच्छाया-प्रमाणतोऽधिकेन कर्कटकेन लिखितवृत्ते) मध्यस्य शङ्कोः तद्वृत्तकेन्द्रस्थापित शङ्कोः प्रभा (छाया) क्रमात् क्रान्तिवशाद्यत्र तस्मिन् वृत्ते प्रविशति, अपैति (निर्गच्छति) अपरैन्द्राख्ये (पश्चिमपूर्वसंज्ञके) ककुभौ (दिशौ) स्त इति ॥२॥

अत्रोपपत्तिः ।

जलसमीकृतभूमौ माध्यान्हिकच्छायाप्रमाणतोऽधिककर्कटेन वृत्तं विलिख्य तत्केन्द्रे द्वादशाङ्गुलशंकुर्निवेश्यः । तस्य प्राक्कपालस्थे सूर्ये यत्र पश्चिमभागे वृत्तपरिधौ छायाग्रं लगति तत्र प्रथमबिन्दुः कार्यः । पुनः पश्चिमकपालस्थे रवौ तस्यैव शङ्कोश्छायाग्रं पूर्वभागे वृत्तपरिधौ यत्र निर्गच्छति तत्रान्यो बिन्दुः कार्यः । प्रथमबिन्दुः पश्चिमाऽन्यबिन्दुश्च पूर्वादिग्व्यवहारोपयोगिनी ज्ञेया, तद्गता रेखा नहि वास्तवपूर्वापररेखायाः समानान्तरा (छायाप्रवेशनिर्गमबिन्द्वोरग्रयोर-समत्वात्) तस्मादाचार्योक्तनियमेन वास्तवपूर्वापररेखायाः समानान्तररेखायाः ज्ञानं न जातमतस्तद्विधिर्न शोभनः, भास्कराचार्येण छायाप्रवेशनिर्गमबिन्द्वोरग्र-योरसमत्वात्तदन्तरानयनं 'तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद् भाकर्णमित्याहता-दित्यादिना' कृत्वा तद्वशेन (कर्णवृत्ताग्रान्तरदानेन) स्फुटा प्राची दिक् साधिता परं कर्णवृत्ताग्रान्तरस्य वृत्तपरिधौ दानानौचित्याद् भास्करमतेनापि न वास्तवपूर्वापर-दिशोर्ज्ञानजातमतो वास्तवपूर्वापरज्ञानार्थं प्रदर्श्यते अवास्तवपूर्वापररेखार्ध-

बिन्दुं केन्द्रं मत्वा तदर्धव्यासार्धेन वृत्तं कार्यं तस्मिन् वृत्ते स्थूलपूर्वबिन्दुतः साधिताग्रान्तरतुल्या पूर्णज्या देया, स्थूलपश्चिमबिन्दुतत्पूर्णज्याग्रगता रेखा वास्तवपूर्वापर रेखायाः समानान्तरारेखा भवेत्, ततो वास्तवपूर्वापरज्ञानं सुलभमेवेति ॥२॥

अब दिग्ज्ञान कहते हैं।

हि.भा.—जल से समीकृत भूमि में मध्यान्हकालिक छाया प्रमाण से अधिक कर्कट से लिखित वृत्त के केन्द्र में स्थापित द्वादशांगुलशंकु की छाया क्रान्तिवश से क्रमशः उस वृत्त परिधि में जहां प्रवेश करती है और जहां निर्गत होती है वे दोनों बिन्दु पश्चिम और पूर्व दिशा होती है ॥२॥

उपपत्ति

जल से समीकृत पृथ्वी में मध्यान्हिक छाया प्रमाण से अधिक कर्कट से वृत्त बनाकर उसके केन्द्र में द्वादशांगुलशंकु स्थापित करना, पूर्वकपाल में सूर्य के रहने से उस शंकु की छाया पश्चिम भाग में वृत्त परिधि में जहां लगती है उसको प्रथम बिन्दु नाम रखना, पुनः पश्चिम कपाल में सूर्य के रहने से उसी शंकु के छायाग्र पूर्वभाग में वृत्तपरिधि में जहां निर्गत होता है उसका नाम अन्य बिन्दु रखना, प्रथम बिन्दु पश्चिम दिशा और अन्य बिन्दु पूर्व दिशा व्यवहारोपयोगिनी समझनी चाहिए। इन दोनों बिन्दुओं में गत रेखा वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा नहीं होती है क्योंकि उन दोनों बिन्दुओं (प्रथम बिन्दु और अन्य बिन्दु) की अग्रायें बराबर नहीं है। इसलिए आचार्य के नियम से वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान नहीं हुआ। यदि वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान इनके नियम से होता तब केन्द्रबिन्दु से उस रेखा की समानान्तर रेखा करने से वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान हो जाता। भास्कराचार्य छायाप्रवेश बिन्दु और छाया निर्गम बिंदु के अग्राओं के अन्तरानयन "तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद् भाकर्णमित्याहतात्" इत्यादि से करके उसके वश से (कर्णवृत्ताग्रान्तर दान से, स्फुट पूर्व दिशा का ज्ञान किया है, परन्तु कर्ण वृत्ताग्रान्तर को वृत्त परिधि में दान देना अनुचित है इसलिए भास्कराचार्य के प्रकार से भी वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान नहीं होता है, तव वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान किस तरह होगा इसलिए निम्नलिखित युक्ति समझनी चाहिए।

स्थूल पूर्वापर रेखा (छायाप्रवेश बिन्दु और छायानिर्गम बिन्दुगत रेखा) के अर्ध बिन्दु का केन्द्र मानकर उस रेखा के आधा व्यासार्ध से वृत्त बनाना, उस वृत्त में स्थूल पूर्व बिन्दु से अग्रान्तर तुल्य पूर्णज्या रूप दान देना, उस पूर्णज्या के अग्र में पश्चिम बिन्दु से जो रेखा करेंगे वह वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा होती है। केन्द्रबिन्दु से उसकी समानान्तर रेखा करने से वास्तव पूर्वापर रेखा होती है इस तरह वास्तव पूर्वापर रेखा का ज्ञान होता है ॥२॥

इदानीं पुनर्दिग्ज्ञानमाह।

तुल्यप्रभाग्रयोर्वा पूर्वापरयोः कपालयोर्बिन्दू।
कार्यावपक्रमवशादपरेन्द्राख्यौ दिशौ भवतः ॥३॥

वि.भा.—वा (अथवा) पूर्वापरयोः (पूर्वपश्चिमयोः) कपालयोः, तुल्यप्रभाग्रयोः (तुल्यच्छायाग्रयोः) बिन्दू कार्यौ, अपक्रमवशात्—अपरैन्द्राख्यौ (पश्चिम-पूर्व-संज्ञकौ) दिशौ भवतोऽर्थात् पूर्वापरकपालयोस्तुल्यच्छायाग्रयोर्यौ बिन्दू तत्राऽद्यः पश्चिमा दिक्, अन्यः पश्चिमकपालस्थे रवौ य उत्पन्नः स पूर्वा दिक् पूर्वा परकपालयोस्तुल्यच्छायाग्रयोर्ये क्रांती तयोर्वशाद् भेद उत्पद्यते इत्यध्याहार्यम् ।

अत्रोपपत्तिर्भास्करोक्तैव स्फुटा। भास्करोक्तकर्णवृत्ताग्रान्तरदानेनापि न स्फुटा प्राची भवतीत्यादिपूर्वश्लोकोपपत्तिदर्शननेन सर्वं स्फुटमिति ॥३॥

अब पुनः दिग्ज्ञान कहते हैं।

हि. भा.—अथवा पूर्व और पश्चिम कपाल में क्रान्तिवश से जो तुल्य छायाग्र के द्वय होते हैं वे पश्चिम और पूर्व संज्ञक दिशायें होती हैं अर्थात् पूर्व और पश्चिम कपाल में तुल्य छायाग्र के जो दो बिन्दु होते हैं उनमें प्रथम बिन्दु पश्चिम दिशा होती है और अन्य बिन्दु पश्चिम कपाल में रवि के रहने से जो उत्पन्न होता है वह पूर्व दिशा होती है ॥३॥

उपपत्ति

"वृत्तेऽम्भः सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थ शङ्कोरित्यादि भास्करोक्त से इसकी उपपत्ति स्पष्ट है, कर्णवृत्ताग्रांतर दान देने से भी स्फुट पूर्वदिशा का ज्ञान नहीं होता है इत्यादि सब बातें पहले श्लोक की उपपत्ति देखने से स्पष्ट हैं ॥३॥

इदानीं पुनर्दिग्ज्ञानमाह।

वृत्तं रवौ प्रविष्टे सममण्डलसंज्ञितं प्रभा या स्यात्।
समपूर्वापरगा सा सौम्या यत्र ध्रुवः सा स्यात् ॥४॥

वि. भा.—सममण्डलसंज्ञितं वृत्तं (पूर्वापरवृत्तं) रवौ (सूर्ये) प्रविष्टे (प्रविशति) सति या प्रभा (छाया) सा समपूर्वापरगा भवति यत्र (यस्यां दिशि) ध्रुवः सा सौम्या (उत्तरा) दिक् स्यादिति, अत्रैतदुक्तं भवति यदा रविः पूर्वापरवृत्ते भवेत्तदा तात्कालिकच्छायास्थितिवशेन पूर्वापरज्ञानं सुगममेव। अथवा ध्रुवः सर्वत उत्तरेऽस्ति, ध्रुवदर्शनेनोत्तरदिग्ज्ञानं भवेत्तद्विरुद्धदिग्दक्षिणादिगेवमुत्तरदक्षिण-दिशोर्ज्ञानेन दक्षिणोत्तरेखाया अर्धबिन्दुतस्तदुपरि लम्बरूपा या रेखा वास्तवपूर्वापररेखा भवेदनया रीत्याऽपि पूर्वापरदिशोर्ज्ञानं भवितुमर्हतीति ॥४॥

अब पुनः दिग्ज्ञान कहते हैं।

हि. भा.—पूर्वापर वृत्त में रवि के प्रविष्ट होने से जो छाया होती है वह समपूर्वापर गत होती है और जहां ध्रुव है वह उत्तर दिशा है। कहने का अभिप्राय यह है कि जब रवि सममण्डल में प्रवेश करते हैं तब जो छाया होती है उसकी स्थिति वशकर पूर्वापर दिशाज्ञान सुलभ ही है। अथवा ध्रुवतारा सबसे उत्तर तरफ है, ध्रुव दर्शन से उत्तरदिशा का ज्ञान हो जायेगा उसके विरुद्ध भाग में जो दिशा वह दक्षिण दिशा है उसका ज्ञान हो जायेगा। इस तरह

दक्षिणोत्तर के ज्ञान से रेखा के अर्ध बिन्दु से उसके ऊपर जो लम्ब रेखा होगी वही वास्तव पूर्वापर रेखा होती है इस तरह भी पूर्वापर का ज्ञान होता है ।।४।।

इदानीं पुनरपि दिग्ज्ञानमाह ।

इष्टाभा भुजकोटिरचितत्रिभुजस्य वा श्रवणतुल्या ।
यत्रेष्टाभा यावत्तावत्पूर्वापरा कोटिः ।।५।।

वि. भा.—इष्टाभा भुजकोटिरचितत्रिभुजस्य (इष्टछायाकर्णः, भुजो भुजः कोटिः कोटिरिति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नत्रिभुजस्य) श्रवणतुल्या (कर्णतुल्या) यत्र यावदिष्टाभा (इष्टच्छाया) भवेतावत्कोटिः पूर्वापरा भवेदिति ।।५।।

अत्रोपपत्तिः ।

शङ्कुमूलात्पूर्वापररेखोपरिकृतो लम्बो भुजसंज्ञकः । भुजमूलाद्वृत्तकेन्द्रं यावत्पूर्वापररेखायां कोटिः । शङ्कुमूलात्केन्द्रं यावत् छायाकर्णः, इति भुजकोटि-कर्णैरुत्पन्नत्रिभुजस्य स्थितिवशेन पूर्वापररेखाया ज्ञानं सुशकेनैव भवितुमर्हति । यत उक्त त्रिभुजे छायारूपकर्णस्य भुजस्य च वर्गान्तरमूलरूपा पूर्वापररेखा खण्डरूपा कोटिर्भवेदेतस्या एव वर्धनेन पूर्वापरा भवेदिति ।।५।।

अब पुनः दिग्ज्ञान कहते हैं ।

हि. भा.—इष्टच्छाया कर्ण, भुजभुज, कोटिसंज्ञक कोटि इन कर्णभुज और कोटि से जो त्रिभुज बनता है उसके कर्ण के बराबर जहां इष्टच्छाया होती है वहा कोटि पूर्वापर होती है ।।५।।

उपपत्ति

शङ्कुमूल से पूर्वापर रेखा के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह भुज है । भुजमूल से केन्द्र तक पूर्वापर रेखा में कोटि है । शङ्कुमूल से केन्द्र तक छाया इन भुजकोटि और कर्ण से उत्पन्न त्रिभुज में छायारूप कर्ण और भुज के वर्गान्तर मूल लेने से पूर्वापर रेखा में कोटि प्रमाण होता है इसी को बढ़ा देने से पूर्वापर रेखा होती है । इस तरह भी पूर्वापर रेखा का ज्ञान हो सकता है ।।५।।

इदानीं पुनरपि दिग्ज्ञानमाह ।

यत्रास्तमेति कश्चिद्द्युचरः क्रान्त्या विनोदयं याति ।
वरुणामरपत्योर्दिशौ पतेते क्रमादथवा ।।६।।

वि. भा.—कश्चित् द्युचरः (कोऽपि ग्रहः) क्रान्त्या विना (क्रान्त्यभावेन) यत्र (यस्मिन् स्थाने) अस्तमेति (अस्तं प्राप्नोति) यत्र चोदयं याति क्रमात् वरुणामर-पत्योर्दिशौ (वरुणेन्द्रयोर्दिशौ पश्चिमपूर्वौ) पतेताऽर्थाद् ग्रहस्य क्रान्त्यभावोऽस्त्य-तोऽन्तकाले पश्चिमस्वस्तिके उदयकाले च पूर्वस्वस्तिके ग्रहो भवेदेतावताऽपि पूर्वापरज्ञानं भवितुमर्हतीति ।। ६ ।।

अब पुनः दिग्ज्ञान कहते हैं ।

हि. भा.—कोई ग्रह बिना क्रान्ति के जिस स्थान में अस्त होता है वह पश्चिम दिशा होती है और जहां उदित होता है वह पूर्व दिशा होती है अर्थात् ग्रह के क्रान्ति के अभाव रहने से अस्तकाल में ग्रह पश्चिम स्वस्तिक में होंगे तथा उदयकाल में पूर्व स्वस्तिक में । इस तरह ठीक पूर्व और पश्चिम दिशा का ज्ञान होता है, इन दोनों बिन्दुओं मे जो रेखा होगी वही वास्तव पूर्वापरा रेखा होगी ॥६॥

इदानीं भाभ्रमरेखावशेन दिग्ज्ञानमाह ।

छायात्रयाग्रज मीनद्वयमध्यगसूत्रयोर्युतिर्यत्र ।
याम्या सोत्तरगोले सौम्या याम्ये हि शङ्कुतलात् ॥७॥
छाया त्रितयाग्र स्पृक्सूत्रयुतेर्वृत्तमालिखेत्तत्र ।
लेखां न जहात्येमां वनितेव कुलस्थितिं कुलोत्पन्ना ॥८॥
याम्योत्तरलेखायां द्युदलाभा वृत्तशङ्कुविवरं यत् ।
याम्योदग्वा ज्ञेया विज्ञैर्भाभ्रमप्रपञ्चकुशलैर्हि ॥ ९ ॥

वि. भा.—इष्टेऽन्हि दिग्मध्यस्थशङ्कोश्छायात्रयं ज्ञात्वा तदग्रैर्मत्स्यद्वय-मुत्पाद्य तन्मुखपुच्छमध्यगरेखयोर्यत्र युतिः सोत्तरगोले याम्या दिग् ज्ञेया यदि जिनाल्पाक्षे देशे कदाचिच्छङ्कुमूलाद्दक्षिणे छायाग्रे सा युतिर्भवति तदा सा सौम्या ज्ञेया ॥ ७ ॥

सूत्रयुतेः (मत्स्यद्वयमुखपुच्छनिर्गतसूत्रयुतेः) वृत्तमालिखेत्तदेव छाया त्रितयाग्रस्पृक् (छाया त्रितयाग्रगतं भाभ्रमरेखा) भवति, इमां लेखां (वृत्तपरिधिं भाभ्रमरेखां वा) सा छाया न जहाति (न त्यजति) कुलस्थितिं (कुलमर्यादां) कुलो-त्पन्ना (कुलीना) वनितेव (स्त्रीव) अर्थाद्यथा कुलीना स्त्री कुलमर्यादां न त्यजति तथैव सा छायापि तद्वृत्तपरिधिं (भाभ्रमरेखां) न त्यजतीति ॥८॥

वृत्तशङ्कुविवरं (शङ्कुमूलभाभ्रमरेखयोरन्तरं) यत् सैव याम्योत्तर-लेखायां द्युदलाभा (मध्यच्छाया) भवति । सा च याम्या (दक्षिणा) उदग्वा (उत्तरा वा) भवति । अर्थाज्जिनाधिकाक्षदेशे मध्यच्छाया सर्वदोत्तरा भवति जिनाल्पाक्षे देशे यदा रवेरुत्तरा क्रान्तिरक्षाधिका तदा शङ्कोर्मध्यान्हे छाया दक्षिणाभिमुखी भवति, । इष्टेऽन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे । मत्स्यद्वयान्तरयुतोस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः इति सम्प्रति प्रसिद्धसूर्यसिद्धान्तेऽप्ये-वमेव । लल्लादिभिरप्येवमेवोदितं स्वतन्त्रे । भास्करेणास्यैव 'भात्रितयाद्भाभ्रमणं न सदस्माद् दिक् पलाद्यं चे' त्यादिना भाभ्रमणस्य खण्डनं कृतम् । वस्तुतो यद्य-कस्मिन् दिने रविक्रान्तिः स्थिरा भवेत्तदा मेरौ भाभ्रमरेखा वृत्ताकारा भवेत् । साक्षदेशे न्यूनाधिकशंकुवशेन वृत्तदीर्घवृत्तपरवलयातिपरवलयरेखाकारा भाभ्रमरेखा भवति, निरक्षे विषुवद्दिने रेखाकारा भवतीति स्वयमेव विज्ञैर्विचार्य ज्ञेयेति ॥ ९ ॥

अब भाभ्रम के सम्बन्ध से दिग्ज्ञान कहते हैं

हि. भा.—इष्टदिन में दिग्मध्य स्थिति शङ्कु की तीन छायायें जानकर उनके अग्रों से दो मछलियां बनाकर उनके मुख और पुच्छगत रेखाद्वय का योग जहां पर होता है वह उत्तर गोल में दक्षिण दिशा होती है यदि जिनाल्पाक्ष देश में कदाचित् शङ्कु मूल से दक्षिण छायाग्र में वह योग हो तब उसको उत्तर दिशा समझनी चाहिये ।।७।। मत्स्यद्वय के मुख पुच्छ निर्गत सूत्रों के योग विन्दु से वृत्त बनाना वही वृत्तपरिधि तीनों छायाग्रों से अवगत गत होती है वही भाभ्रम रेखा है । छायायें इस वृत्तपरिधि को नहीं छोड़ सकती हैं जैसे कुलीन स्त्री अपनी कुल मर्यादा को नहीं छोड़ती है ।।८।। शङ्कुमूल और भाभ्रम रेखा के जो अन्तर हैं वही मध्यच्छाया होती है वह दक्षिण या उत्तर होती है । जिनाधिकाक्ष देश में मध्यच्छाया सर्वदा उत्तर होती है तब मध्यान्हकाल में शङ्कु की छाया दक्षिण मुख की होती है ।

'इष्टेऽन्हि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे । मत्स्यद्वयान्तरयुतेस्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रभः' यह प्रसिद्ध सूर्यसिद्धान्त में भी छायाभ्रमण 'भाभ्रम' इसी तरह है । अपने अपने तन्त्र में लल्लादि आचार्य ने भी इसी तरह कहा हैं, भास्कराचार्य ने 'भात्रितयाद्भाभ्रमणं न सदस्माद् दिक् पलाद्यं च" इत्यादि से पूर्वोक्त भाभ्रम (वृत्ताकार) का खण्डन किया है । यदि एक दिन में रवि की क्रान्ति स्थिर मानी जाय तब मेरु में छाया भ्रमण मार्ग वृत्ताकार होता हैं । साक्षदेश में न्यूनाधिक शङ्कुवश से वृत्त, दीर्घवृत्त, परवलय, अतिपरवलय, और रेखा ये पांच तरह के छाया भ्रमण मार्ग होते हैं । निरक्ष देश में विषुवद्दिन में छाया भ्रमण मार्ग रेखाकार होता है ।। ७-९ ।।

इदानीं पुनरपि दिग्ज्ञानमाह ।

उदयति पौष्णं यत्र श्रवणो वा सा दिगिन्द्रस्य ।
स्थूलाय वा प्रदिष्टा चित्रा न्वात्यन्तरं विबुधैः ।।१०।।

स्पष्टार्थम् ।

इदानीं छायातः कर्णं कर्णाच्छायां चाह ।

शङ्कुप्रमाणवर्गाच्छायावर्गान्वितात्पदं कर्णः ।
कर्णकृतेः शङ्कुकृतिं विशोध्य मूलं प्रभा भवति ।।११।।

वि. भा.—छायावर्गान्वितात् (छायावर्गयुतात्) शङ्कुप्रमाणवर्गात्पदं (मूलं) कर्णो भवेत् । कर्णकृतेः (कर्णवर्गात्) शङ्कुकृतिं (शङ्कुवर्गं) विशोध्य मूलं प्रभा (छाया) भवतीति ।।११।।

अत्रोपपत्तिः । तत्कृत्योर्योगपदमित्यादिना स्फुटैवास्तीति ।।११।।

अब छाया से कर्ण और कर्ण से छाया को कहते हैं ।

हि. भा.—शङ्कुवर्ग में छायावर्ग जोड़कर मूल लेने से कर्ण होता है, कर्णवर्ग में शङ्कुवर्ग को घटाकर मूल लेने से छाया होती है ।।११।।

उपपत्ति 'तत्कृत्योर्योगपदम्' इत्यादि से स्पष्ट है ॥११॥

इदानीं शङ्कुस्वरूपमाह ।

कार्यं स्थण्डिलमथवा वृत्तं भ्रमसिद्धमस्तकं विपुलम् ।
भगणांशाङ्कि तत्परिधि स्वस्कन्धसमुच्छ्रितं च सिद्धांशम् ॥१२॥

स्पष्टार्थः ।

इदानीं पलभानयनं प्रकारद्वयेनाह ।

अग्रा द्वादशगुणिता क्रान्तिज्या भाजिता पलश्रवणः ।
श्रुतिशङ्क्वन्तरगुणितात्तद्योगान्मूलमक्षा भा ॥१३॥
क्रान्तिज्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं द्युमण्डले कुज्या ।
द्वादशगुणिता कुज्या क्रान्तिज्याहृत्पलाभा वा ॥१४॥

वि. भा.—अग्रा द्वादशगुणिता क्रान्तिज्या भाजिता (क्रान्तिज्या भक्ता) तदा पलश्रवणः (पलकर्णः) भवेत् । श्रुतिशङ्क्वन्तरगुणितात् (पलकर्णद्वादशान्तरगुणितात्) तद्योगात् (पलकर्णद्वादशयोगात्) मूलं तदाऽक्षाभा (पलभा) भवेत् ॥१३॥

क्रान्तिज्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं (क्रान्तिज्याग्रयोर्वर्गान्तरमूलं) द्युमण्डले (अहोरात्रवृत्ते) कुज्या भवेत् । कुज्या द्वादशगुणिता क्रान्तिज्या भक्ता वा पलाभा (पलभा) भवेदिति ॥१३-१४॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अग्रा. १२}}{\text{क्रांज्या}}$ = पलकर्ण. ततः $\sqrt{\text{पलक}^2 - \text{१२}^2}$ = पलभा

$= \sqrt{(\text{पलक} + \text{१२})\ (\text{पलक} - \text{१२})}$ एतेन १३ श्लोक उपपद्यते ।

तथा $\sqrt{\text{अग्रा}^2 - \text{क्रांज्या}^2}$ = कुज्या ततः $\frac{\text{कुज्या. १२}}{\text{क्रांज्या}}$ = पलभा

एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१३-१४॥

अब दो प्रकार से पलभा के आनयन कहते हैं ।

हि. भा.—अग्रा को द्वादश से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से पलकर्ण होती है । पलकर्ण और द्वादश के अन्तर से उसके योग (पलकर्ण और द्वादश के योग) को गुणकर मूल लेने से पलभा होता है ॥१३॥ क्रान्तिज्या और अग्रा के वर्गान्तरमूल कुज्या होती है । कुज्या को द्वादश से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से पलभा होती है ॥१३-१४॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{अग्रा. १२}}{\text{क्रांज्या}}$ = पलकर्ण $\therefore \sqrt{\text{पलक}^2 - \text{१२}^2}$ = पलभा परन्तु

वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिये $\sqrt{पलक^२ — १२^२}$ = $\sqrt{(पलक + १२)(पलक — १२)}$ = पलभा इससे १३वां श्लोक उपपन्न हुआ ॥१३॥

तथा $\sqrt{अग्रा^२ — क्रांज्या^२}$ = कुज्या $\therefore \frac{कुज्या. १२}{क्रांज्या}$ = पलभा।

इससे आचार्योक्त १४ वां श्लोक उत्पन्न हुआ ॥१२-१४॥

पुनरपि पलभाज्ञानमाह ।

सूर्याभिमुखी यष्टिर्धार्या तद्वत्त्रिभज्यया तुल्या ।
यद्वच्छायाभावः शङ्कुस्तल्लम्बकः प्रोक्तः ॥१५॥
तत्पूर्वापरलेखाविवरं बाहुर्नृयष्टितुल्यं दृग् ।
ज्याकर्णो यष्टिर्द्युदलभुजो दृग्ज्यया तुल्यः ॥१६॥
बाह्वग्रयोः समासो भिन्नदिशोरन्तरं नृतलम् ।
तद् द्वादशगुणितं वा शङ्कुविभक्तं पलच्छाया ॥१७॥

वि. भा.—त्रिभज्यया तुल्या यष्टिः सूर्याभिमुखी तथा धार्या यथा छायाभावो भवेत्तदा तत्पूर्वापररेखयोरन्तरं भुजो भवेत् । मध्याह्नकालिकभुजो दृग्ज्यातुल्यो भवेत् । भुजाग्रयोरेकदिक्कयोर्योगो भिन्नदिक्कयोरन्तरं शङ्कुतलं भवति तद्द्वादशगुणितं शङ्कुभक्तं तदा पलभा भवेदिति ॥१५-१७॥

श्लोकरूपा एवोपपत्तय इति ॥

पुनः पलभाज्ञान के लिये कहते हैं ।

वि. भा.—त्रिज्यातुल्य यष्टि सूर्याभिमुख उस तरह रखना चाहिये जिससे छाया के अभाव हो वहां शङ्कुमूल से पूर्वापर रेखा पर्यन्त भुज होता है । मध्यान्हकालिक भुजदृग्ज्यातुल्य होता है एक दिशा में भुज और अग्रा के योग करने भिन्न दिशा में अन्तर करने से शङ्कु तल होता है उसको द्वादश से गुणकर शङ्कु से भाग देने से पलभा होती है ।।१५-१७॥

यहां श्लोक रूप ही उपपत्ति है ॥ १५-१७ ॥

इदानीं भुजद्वयज्ञाने पलभाज्ञानमाह ।

इष्टान्यभुजयोः समान्यककुभोर्विशेषसंयोगः ।
सूर्याहतो विभक्तः शङ्क्वोर्विवरेण वा पलच्छाया ॥१८॥

वि. भा.—समान्यककुभोः (तुल्यान्यदिशोः) इष्टान्यभुजयोर्विशेषसंयोगः (समदिक्कयोर्भुजयोरन्तरं भिन्नदिक्कयोर्भुजयोर्योगः) सूर्याहतः (द्वादशगुणितः) शङ्क्वोर्विवरेण (शङ्क्वन्तरेण) विभक्तस्तदा पलच्छाया (पलभा) भवतीति ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ शङ्क्वन्तरं कोटिः । शङ्कुतलान्तरं भुजः । हृत्यन्तरं कर्णः । इति भुजकोटिकर्णैर्जायमानं त्रिभुजमप्यक्षेत्रसजातीयमेव भवत्यतोऽनुपातः । यदि

शङ्क्वन्तरेण शङ्कुतलान्तरं भुजो लभ्यते तदा द्वादशेन किमित्यनुपातेन समागच्छति पलभ $= \frac{\text{शङ्कुतलान्तर} \times १२}{\text{शङ्कुतलान्तर}}$ अथ गोले एकस्मिन् वृत्ते यदेव भुजान्तरं वा भुजयोगस्तदेव शङ्कुतलान्तरं दृश्यतेऽतः

$\frac{(\text{भु} \pm \text{भु}^{१}).१२}{\text{शङ्क्वन्तर}}$ = पलभा । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते ।। १८ ।।

अब भुजद्वय ज्ञान से पलभा ज्ञान कहते है ।

हि. भा.—एक दिशा में भुजद्वय के अन्तर करने से जो हो और भिन्न दिशा के भुजद्वय के योग करने से जो हो उसको बारह से गुणकर शङ्क्वन्तर से भाग देने से पलभा होती है ।।१८।।

उपपत्ति

शङ्क्वन्तरकोटि, शङ्कुतलान्तर भुज, हृत्यन्तरकर्ण इन कोटिभुज कर्णों से जो त्रिभुज बनता है यह अक्षक्षेत्र के सजातीय होता है इसलिये अनुपात करते हैं यदि शङ्क्वन्तर में शङ्कुतलान्तर पाते हैं तो द्वादश में क्या इस अनुपात से पलभा आती है $\frac{\text{शङ्कुतलान्तर}.१२}{\text{शङ्क्वन्तर}}$ = पलभा । गोल में एक अहोरात्रवृत्त में जो भुजान्तर या भुजयोग होता है वही शङ्कुतलान्तर होता है । इसलिये $\frac{(\text{भु} \pm \text{भु}^{१}).१२}{\text{शङ्क्वन्तर}}$ = पलभा, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।। १८ ।।

इदानीं छायाकर्णद्वयं तद्भुजद्वयं च ज्ञात्वा पलभाज्ञानमाह ।

अन्योन्यकर्णनिघ्नौ श्रुतिविवरहृतौ प्रभाद्वयस्य यौ बाहू ।
तत्फलविवरयुती समान्यककुभोः पलच्छाया ।। १९ ।।

वि. भा.—प्रभाद्वयस्य (छायाद्वितयस्य) यौ बाहू (भुजौ) अन्योन्यकर्णनिघ्नौ (परस्परछायाकर्णगुणितौ) श्रुतिविवरहृतौ (छायाकर्णान्तरभक्तौ) समान्यककुभोः (तुल्यान्यदिशोः तत्फलविवरयुती (परस्परछायाकर्णगुणितभुजयोश्छायाकर्णान्तरभक्तयोरन्तरयोगौ) पलच्छाया (पलभा) भवेदिति ।। १९ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अत्र कल्प्यते पलभामानम् = य । इयं दक्षिणेन भुजेन युता जाता कर्णवृत्ताग्रा = य + भु इयं त्रिज्यागुणा कर्णभक्ता जाताग्रा = $\frac{(\text{य} + \text{भु}).\text{त्रि}}{\text{छाक}}$

$= \frac{\text{य}.\text{त्रि} + \text{भु}.\text{त्रि}}{\text{छाक}}$ एवमन्यभुजादपि । पलभोत्तरेण भुजेनोना जाता कर्णवृत्ताग्रा =

य—भु^{1} इयं त्रिज्यागुणा कर्णभक्ताग्रा $= \frac{(\text{य}-\text{भु}^{1}).\text{त्रि}}{\text{छा}^{1}\text{ग्र}} = \frac{\text{य.त्रि}-\text{भु}^{1}.\text{त्रि}}{\text{छा}^{1}\text{क}}$ ततोऽग्रयोः समीकरणम् $= \frac{\text{य.त्रि}+\text{भु.त्रि}}{\text{छाक}} = \frac{\text{य.त्रि}-\text{भु}^{1}.\text{त्रि}}{\text{छा}^{1}\text{क}}$ छेदगमेन

$(\text{य.त्रि}+\text{भु.त्रि})\ \text{छा}^{1}\text{क} = \text{छाक}\ (\text{य.त्रि}-\text{भु}^{1}.\text{त्रि})$
$= \text{य.त्रि. छा}^{1}\text{क}+\text{भु.त्रि.छा}^{1}\text{क} = \text{छाक.य.त्रि}-\text{छाक.भु}^{1}.\text{त्रि}$ समशोधनादिना
$\text{भु.त्रि.छा}^{1}\text{क}+\text{छाक.भु}^{1}.\text{त्रि} = \text{छाक.य.त्रि} \backsim \text{छा}^{1}\text{क.य.त्रि}$
$= \text{त्रि}\ (\text{भु. छा}^{1}\text{क}+\text{छाक.भु}^{1}) = \text{य.त्रि}\ (\text{छाक} \backsim \text{छा}^{1}\text{क})$

$\therefore \text{भु.छा}^{1}\text{क}+\text{छाक.भु}^{1} = (\text{य छाक} \sim \text{छा}^{1}\text{क})$ ततः $\frac{\text{भु.छा}^{1}\text{क}+\text{छाक.भु}^{1}}{\text{छाक} \backsim \text{छा}^{1}\text{क}} = \text{य}$ ।

यदि भुजद्वयमेकदिक्कं भवेत्तदा $\frac{\text{भु.छा}^{1}\text{क}-\text{छाक.भु}^{1}}{\text{छाक} \backsim \text{छा}^{1}\text{क}} = \text{य}$ अत उपपन्नम् ।।१६।।

अब छाया कर्णद्वय और उसके भुजद्वय जान कर पलभाज्ञान कहते हैं ।

हि. भा.—दोनों छायाओं के जो भुजद्वय है उनको परस्पर छायाकर्ण से गुणाकर छायाकर्णान्तर से भाग देकर जो हो उन दोनों फलों के एक दिशा में अन्तर भिन्न दिशा में योग करने से पलभा होती है । यहां भुजद्वय के एक दिशा और भिन्न दिशा के सम्बन्ध से विचार करना चाहिये ।। १६ ।।

उपपत्ति

यहां कल्पना करते हैं पलभा = य. । इसमें दक्षिण भुज जोड़ने से कर्णवृत्ताग्रा होती है य + भु = कर्णवृत्ताग्रा इसको त्रिज्या से गुणाकर कर्ण से भाग देने से अग्रा होती है $\frac{(\text{य}+\text{भु}).\text{त्रि}}{\text{छाक}}$ = अग्रा । इसी तरह दूसरे भुज से भी होता है यथा पलभा में उत्तर भुज घटाने से कर्णवृत्ताग्रा होती है ।

य—भु^{1} = कर्णवृत्ताग्रा, इसको त्रिज्या से गुणाकर कर्ण से भाग देने से अग्रा होती है

$\frac{(\text{य}-\text{भु}^{1}).\text{त्रि}}{\text{छाक}^{1}} = \frac{\text{य.त्रि}-\text{भु}^{1}.\text{त्रि}}{\text{छा}^{1}\text{क}}$ = अग्रा । दोनों अग्राओं के समीकरण करने से

$\frac{\text{य.त्रि}+\text{भु.त्रि}}{\text{छाक}} = \frac{\text{य.त्रि}-\text{भु}^{1}.\text{त्रि}}{\text{छा}^{1}\text{क}}$ छेदगम करने से

$\text{य.त्रि. छा}^{1}\text{क}+\text{भु.त्रि.छा}^{1}\text{क} = \text{य.त्रि.छाक}-\text{भु}^{1}.\text{त्रि.छाक}$ समशोधनादि से
$\text{भु.त्रि.छा}^{1}\text{क}+\text{भु}^{1}.\text{त्रि.छाक} = \text{छाक.य.त्रि} \backsim \text{छा}^{1}\text{क.य.त्रि}$
$= \text{त्रि}\ (\text{भु.छाक}^{1}+\text{भु}^{1}.\text{छाक}) = \text{य.त्रि}\ (\text{छाक} \backsim \text{छा}^{1}\text{क})$

$\therefore \text{भु.छा}^{1}\text{क}+\text{भु}^{1}.\text{छाक} = \text{य}\ (\text{छाक} \backsim \text{छा}^{1}\text{क}) \therefore \frac{\text{भु.छा}^{1}\text{क}+\text{भु}^{1}.\text{छाक}}{\text{छाक} \backsim \text{छा}^{1}\text{क}} = \text{य}$ ।

यदि दोनों भुज एक दिशा होंगे तब $\frac{\text{भु.छा}'\text{क}-\text{भु}'.\text{छाक}}{\text{छाक}-\text{छा}'\text{क}}$ = य ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।। १९ ।।

इदानीं पुनरपि प्रकारद्वयेन पलभापलकर्णयोः साधनमाह ।

द्वादशगुणिता वाऽग्रा सममण्डलशङ्कुभाजिताऽक्षाभा ।
समकर्णगुणा कुज्या पलजीवाहृत्पलाभा वा ।। २० ।।
स्ववृतिः समशङ्कुहृता रविगुणिता च पलश्रवणः ।
त्रिज्या द्वादशगुणिता भक्ता लम्बज्ययाऽथवा कर्णः ।। २१ ।।

वि. भा.—वा अग्रा द्वादशगुणिता सममण्डलशङ्कुभाजिता (समशङ्कुभक्ता) तदा अक्षाभा (पलभा) भवेत् । अथवा कुज्या समकर्णगुणा, पलजीवाहृत् (अक्षज्या भक्ता) तदा पलाभा (पलभा) भवेत् ।।२०।।

स्ववृत्तिः (तद्धृतिः) रविगुणिता (द्वादशगुणा) समशङ्कुहृता (समशङ्कुभक्ता) तदा पलश्रवणः (पलकर्णः) भवेत् । अथवा त्रिज्या द्वादशगुणिता, लम्बज्यया भक्ता तदा कर्णः (पलकर्णः) भवेदिति ।। २०-२१ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अग्रा}.१२}{\text{समशं}}$ = पलभा । परन्तु $\frac{\text{त्रि.कुज्या}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा

अतोऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि.कुज्या}.१२}{\text{समशं.अज्या}} = \frac{\text{कुज्या.समकर्ण}}{\text{अज्या}}$ = पलभा

एतेन २० तमः श्लोक उपपद्यते ।।

अथाक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{तद्धृति}.१२}{\text{समशं}}$ = पलकर्ण ।

तथा $\frac{\text{त्रि}.१२}{\text{लंज्या}}$ = पलकर्ण अत उपपन्नम् ।। २०-२१ ।।

अब फिर भी दो प्रकार से पलभा और पलकर्ण के साधन कहते हैं ।

हि. भा.—वा अग्रा को द्वादश से गुणकर समशङ्कु से भाग देने से पलभा होती है । अथवा कुज्या को समकर्ण से गुणकर अक्षज्या से भाग देने से पलभा होती है ।।२०।।

तद्धृति को द्वादश से गुणकर समशङ्कु से भाग देने से पलकर्ण होता है । अथवा त्रिज्या को द्वादश से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से पलकर्ण होता है ।। २०-२१ ।।

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{अग्रा}.१२}{\text{समशं}}$ = पलभा । परन्तु = अग्रा इससे पलाभ

स्वरूप में अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि.कुज्या.१२}}{\text{समशं.अज्या}} = \frac{\text{समकर्ण.कुज्या}}{\text{अज्या}} = \text{पभा}$ ।

इससे बीसवां श्लोक उपपन्न हुआ ।।

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{तद्धृति.१२}}{\text{समशं}} = \text{पलकर्ण}$ । $\frac{\text{परं तद्धृति}}{\text{समशं}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{लंज्या}}$

$\therefore \frac{\text{तद्धृति.१२}}{\text{समश}} = \frac{\text{त्रि.१२}}{\text{लंज्या}} = \text{पकर्ण}$ इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।२०-२१।।

इदानीं क्रान्तिज्ञाने पलज्ञानमाह ।

दिनदलदृग्ज्याचापं क्रान्त्या युतवर्जितं क्रियतुलादौ ।
अक्षो दक्षिणदृग्ज्या धनुषोना क्रान्तिरक्षः स्यात् ।।२२।।

वि. भा.—क्रियतुलादौ (मेषादितुलादिकेन्द्रे) दिनदलदृग्ज्याचापं (मध्यान्हनतांशचापं) क्रान्त्या युतवर्जितं तदाऽक्षः (अक्षांशः) भवेत्। दक्षिण-दृग्ज्याधनुषोनाक्रान्तिः (दक्षिणनतांशचापोनक्रान्तिः) अक्षः स्यादिति ।।२२।।

अत्रोपपत्तिरति सुगमैवेति ।

अब क्रान्तिज्ञान से अक्षांश ज्ञान कहते हैं ।

हि. भा.—मेषादि और तुलादि केन्द्र में मध्यान्हकालिक नतांश चाप में क्रान्ति चाप को जोड़ने और घटाने से अक्षांश होता है। दक्षिण नतांश चाप को क्रान्ति में घटाने से अक्षांश होता है ।।२२।।

इसकी उपपत्ति गोल में स्पष्ट है ।।

इदानीं पुनरपि पलभाज्ञानमाह ।

शङ्कुं परिकल्प्य भुजं त्रिभुजेन विलोकयेद् ध्रुवमुदीच्याम् ।
यन्त्रेण दृष्टिभुजयोर्विवराग्रा वा पलच्छाया ।।२३।।

वि. भा.—शङ्कुं (द्वादशाङ्गुलं) भुजं परिकल्प्य त्रिभुजेन यन्त्रेण (द्वादश-पलभा पलकर्णोत्पन्नत्रिभुजरूपयन्त्रेण) उदीच्याम् (उत्तरदिशि) ध्रुवं (ध्रुव-तारां) विलोकयेत् तदा दृष्टिभुजान्तरं यद्भवेत्सा पलभा स्यादिति ।।२३।।

अब पुनः पलभाज्ञान कहते हैं ।

हि. भा.—द्वादशाङ्गुलशंकु को भुज मानकर द्वादश, पलभा, पलकर्ण इनसे उत्पन्न जो त्रिभुज होता है तद्रूपी यन्त्र के द्वारा उत्तर तरफ ध्रुव तारा को देखने से दृष्टि और भुज का अन्तर जो होता है वही पलभा होती है ।।२३।।

इदानीं पुनरपि पलभाज्ञानमाह ।

उदयास्तसूत्रतः स्याच्छङ्क्वग्रप्ररोपणी स्वधृतिः ।
नृतलास्तोदयसूत्रान्तरं रविगुणं नृहृत्पलभा वा ॥२४॥
स्वधृतिर्वा सूर्यगुणा शङ्कुविभक्ता पलश्रवणः ।
इष्टच्छायाभ्यस्तं नृतलं दृग्ज्योद्धृतं पलाभा वा ॥२५॥

वि. भा.—उदयास्तसूत्रतः शङ्क्वग्रप्ररोपणी (उदयास्तसूत्राच्छङ्क्वग्रं यावदुदयास्तसूत्रोपरिलम्बरूपा) स्वधृतिः (हृतिः) भवेत् । नृतलास्तोदयसूत्रान्तरं (शङ्कुमूलस्वोदयास्तसूत्रान्तरं शङ्कुतलं) रविगुणं (द्वादशगुणितं) नृहृत् (शङ्कुभक्तं) वा पलाभा (पलभा) भवेत् ॥२४॥

स्वधृतिः (हृतिः) सूर्यगुणा (द्वादशगुणिता) शङ्कुविभक्ता तदा पलश्रवणः (पलकर्णः) भवेत् । नृतलं (शङ्कुतलं) इष्टच्छायाभ्यस्तं (इष्टच्छायागुणितं) दृग्ज्योद्धृतं (दृग्ज्याभक्तं) वा पलाभा (पलभा) भवेदिति ॥२४-२५॥

अत्रोपपत्तिः

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शंतल} \times १२}{\text{शङ्कु}}$ = पलभा ।

अथ $\frac{\text{दृग्ज्या}.\ १२}{\text{शङ्कु}}$ = छाया । $\frac{\text{छाया}.\ \text{शंतल}}{\text{दृग्ज्या}} = \frac{\text{दृग्ज्या}.\ १२ \times \text{शंतल}}{\text{शङ्कु} \times \text{दृग्ज्या}}$

$= \frac{१२ \times \text{शंतल}}{\text{शङ्कु}}$ = पलभा

$\therefore \frac{\text{छाया}.\ \text{शंतल}}{\text{दृग्ज्या}}$ = पलभा । अतः आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२४-२५॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे विषुवच्छाया-
साधनविधिः प्रथमोऽध्यायः ॥

अब पुनः पलभाज्ञान कहते हैं ।

हि. भा.—उदयास्त सूत्र से शङ्कु के अग्र तक उदयास्त सूत्र के ऊपर लम्बरूप रेखा स्वधृति (हृति) होती हैं । शङ्कुमूल और स्वोदयास्त सूत्र के अन्तर (शङ्कुतल) को द्वादश से गुणाकर शङ्कु से भाग देने से वा पलभा होती है । हृति को द्वादश से गुणाकर शङ्कु से भाग देने से पलकर्ण होता है । शङ्कुतल को इष्टच्छाया से गुणाकर दृग्ज्या से भाग देने से अथवा पलभा होती है ॥२४-२५॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{शंतल}.\ १२}{\text{शङ्कु}}$ = पलभा ।

$\frac{\text{दृग्ज्या. १२}}{\text{शङ्कु}_{\text{उ}}}$ = छाया । $\frac{\text{छाया. शंतल}}{\text{दृग्ज्या}} = \frac{\text{दृग्ज्या. १२. शंतल}}{\text{दृग्ज्या. शङ्कु}_{\text{उ}}} = \frac{\text{१२. शंतल}}{\text{शङ्कु}_{\text{उ}}}$ = पभा

$\therefore \frac{\text{छाया. शंतल}}{\text{दृग्ज्या}}$ = पलभा. इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।२४-२५।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में विषुवच्छायोना साधनविधि नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।।



द्वितीयोऽध्यायः

अथ लम्बाक्षज्यानयनविधिः

इदानीं लम्बाक्षज्ययोरानयनान्याह

पलभार्कवर्गगुणितौ त्रिज्यावर्गौ पलश्रवणकृत्या ।
भक्ताववाप्तमूले पलजीवा लम्बजीवेस्तः ॥१॥
अथवा भार्ककृतिघ्ने त्रिज्ये भार्कहृतश्रवणभक्ते ।
केवलया श्रुत्या लब्धी छायार्कसंगुणिते ॥२॥

वि. भा.—त्रिज्यावर्गौ पलभाऽर्कवर्गगुणितौ (पलभा द्वादशवर्गाभ्यां पृथक्-गुणितौ) पलश्रवणकृत्या (पलकर्णवर्गेण) भक्तौ, अवाप्तमूले (लब्धयोर्मूले ग्राह्ये) तदा पलजीवा लम्बजीवे स्तः (अक्षज्यालम्बज्ये भवतः) ॥ अथवा त्रिज्ये भार्क-कृतिघ्ने (पलभाद्वादशवर्गगुणिते) भार्कहृतश्रवणभक्ते (पलभा पलकर्णघातेन द्वादश-पलकर्णघातेन च विभाजिते) तदाऽक्षज्यालम्बज्ये भवतः । अथवा त्रिज्ये छायार्क-सङ्गुणिते (पलभाद्वादशगुणिते) केवलया श्रुत्य (केवलपलकर्णेन) विभाजिते तदा लब्धी—अक्षज्यालम्बज्ये भवतः । इति ॥१-२॥

अत्रोपपत्तिः

अक्षज्या लम्बज्या त्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैर्जायमानाक्षक्षेत्रस्य पलभा द्वादशपलकर्णैर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नाक्षक्षेत्रेण सजातीयत्वादनुपातो यदि पलकर्ण-वर्गेण पलभावर्गो लभ्यते तदा त्रिज्यावर्गेण किमित्यागतोऽक्षज्यावर्गस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{पलभा}^2 \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2}$ मूलेन $\frac{\text{पलभा. त्रि}}{\text{पलक}}$ = अक्षज्या । एवं $\frac{१२^2 . \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2}$ = लम्बज्या^{2} मूलेन $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}}$ = लंज्या. अथवा $\frac{\text{पलभा}^2 . \text{त्रि}}{\text{पलभा. पलक}} = \frac{\text{पलभा. त्रि}}{\text{पलकर्ण}}$ = अक्षज्या

$\frac{१२^2 . \text{त्रि}}{१२ \times \text{पलकर्ण}} = \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पक}}$ = लम्बज्या ।

पूर्व प्रथमश्लोकेन वर्गानुपातद्वारा येऽक्षज्या लम्बज्ये समानीते तत्र वर्गानुपा-तस्याऽवश्यकता नाऽऽसीत्कथं वर्गानुपातेन तयोरानयनं कृतमाचार्येणेत्याचार्य एव ज्ञातुं शकनोतीति मन्मते तु वर्गानुपातकरणं निरर्थकमिति ॥१-२॥

अब लम्बज्या और अक्षज्या के आनयन करते हैं।

हि.भा.—त्रिज्यावर्ग को पृथक् पलभावर्ग और बाहर के वर्ग से गुणाकर पलकर्ण वर्ग से भाग देकर जो फल हो उन दोनों के मूल अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा त्रिज्या को पृथक् पलभा वर्ग और द्वादश वर्ग से गुण कर, क्रमशः पलभा पलकर्ण के घात और द्वादश पलकर्ण के घात से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा त्रिज्या को पृथक् पलभा और द्वादश से गुण कर पलकर्ण से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है ॥१-२॥

उपपत्ति

अक्षज्या भुज, लम्बज्या कोटि, त्रिज्या कर्ण इन भुजकोटि और कर्ण से जो त्रिभुज बनता है वह पलभा भुज, द्वादश कोटि, पलकर्ण इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न त्रिभुज का सजातीय है इसलिए अनुपात करते हैं यदि पलकर्ण वर्ग में पलभावर्ग पाते हैं तो त्रिज्यावर्ग में क्या इस अनुपात से अक्षज्या वर्ग आता है $\frac{\text{पलभा}^2 . \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2} = \text{अक्षज्या}^2$ मूल लेने से

$\frac{\text{पलभा. त्रि}}{\text{पलक}} = \text{अक्षज्या}$। एवं $\frac{१२^2 . \text{त्रि}^2}{\text{पलक}^2} = \text{लंज्या}^2$ मूल लेने से $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लंज्या}$

अथवा

$$\frac{\text{पलभा. त्रि}}{\text{पलकर्ण}} = \text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}^2 . \text{त्रि}}{\text{पलभा} \times \text{पलकर्ण}} \quad \frac{१२. \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \frac{१२^2 . \text{त्रि}}{१२ \times \text{पलक}} = \text{लंज्या}$$

प्रथम श्लोक की उपपत्ति में वर्गानुपात करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वर्गानुपात आचार्य ने किया यह बात आचार्य ही जान सकते हैं, हमारे विचार से वह निरर्थक है। वर्गानुपात करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥१-२॥

पुनस्तयोरेवानयनद्वयमाह ।

त्रिज्ये छायार्कघ्ने कर्णहृते वा पलावलम्बज्ये ।
नृच्छायानिहते वा छायाशङ्कूद्धृते चान्ये ॥ ३ ॥

वि. भा.—त्रा. त्रिज्ये पृथक् छायाऽर्कघ्ने (पलभाद्वादशगुणिते) कर्णहृते (पलकर्णभक्ते) पलापलम्बज्ये (अक्षज्यालम्बज्ये) भवतः। वा पूर्वोक्तफले नृच्छाया निहते (द्वादशपलभागुणिते) छाया शङ्कूद्धृते (पलभाद्वादशभक्ते) तदाऽन्ये ते स्त इति ॥३॥

अत्रोपपत्तिः

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{पलभा. त्रि}}{\text{पलकर्ण}} = \text{अक्षज्या}$ | $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लम्बज्या}$।

अथवा $\frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{पलभा}} = \frac{\text{पलभा. त्रि. १२}}{\text{पलक} \times \text{पलभा}} = \frac{\text{त्रि. १२}}{\text{पलक}} =$ लम्बज्या | तथा $\frac{\text{लंज्या. पभा}}{१२} = \frac{१२ \times \text{त्रि. पभा}}{\text{पकर्ण} \times १२} = \frac{\text{त्रि. पभा}}{\text{पलक}} =$ अक्षज्या

अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तमिति ॥३॥

पुन: अक्षज्या और लम्बज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा—त्रिज्या को पृथक् पलभा और द्वादश से गुणकर पलकर्ण से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा पूर्वोक्त फल को द्वादश और पलभा से गुणकर पलभा और द्वादश मे भाग देने से अन्य होते हैं अर्थात् अक्षज्या लम्बज्या में व्यत्यास होता है ॥३॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{पलक}} =$ अक्षज्या | $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} =$ लंज्या

अथवा $\frac{\text{अज्या} \times १२}{\text{पभा}} = \frac{\text{पभा. त्रि. १२}}{\text{पलक. पभा}} = \frac{\text{त्रि. १२}}{\text{पलक}} =$ लंज्या | तथा $\frac{\text{लंज्या. पभा}}{१२} = \frac{१२ \times \text{त्रि. पभा}}{\text{पकर्ण} \times १२} = \frac{\text{त्रि. पभा}}{\text{पकर्ण}} =$ अज्या

अत: आचार्योक्त युक्तियुक्त है ॥३॥

पुनरक्षज्यालम्बज्ययो: साधनान्याह ।

लम्बज्याकृतिहीनात् त्रिज्यावर्गात्पदं पलज्या वा ।
पलजीवा त्रिज्याकृति वियुतिपदं लम्बकज्या वा ॥४॥
कुज्या भाकर्णघ्ना भावृत्ताग्रोद्धृताऽथवाऽक्षज्या ।
चिनभागज्याघ्ऽर्कज्या त्रिज्याऽग्रज्ययाहृदवलम्बज्या ॥५॥
लम्बज्योन समेत त्रिज्याघातात्पदं पलज्या वा ।
अक्षज्ययोनयुक्तत्रिगुणवधान्मूलमितरा वा ॥६॥

वि. भा.—लम्बज्या कृतिहीनात् त्रिज्यावर्गात् (लम्बज्या वर्गरहितात् त्रिज्या-वर्गात्) पदं (मूलं) वा पलज्या (अक्षज्या) भवेत्। पलजीवा त्रिज्याकृतिवियुतिपदं (त्रिज्याक्षज्ययोर्वर्गान्तरमूलं) वा लम्बज्या (लम्बकज्या) भवेत् ॥ अथवा कुज्या भाकर्णघ्ना (छायाकर्णगुणा) भावृत्ताग्रोद्धृता (छायाकर्णगोलीयाग्रया भक्ता) तदाऽक्षज्या भवेत्। भाकर्णघ्ना (छायाकर्णगुणिता) जिनभाज्याघ्नाऽर्कज्या (जिन-ज्यागुणित रविभुजज्या) त्रिज्याऽग्रज्यया (त्रिज्यागुणितछायाकर्णगोलीयाग्रया) हृत् (भक्ता) तदाऽवलम्बज्या (लम्बज्या) भवेत् ॥ अथवा लम्बज्योनसमेतत्रिज्या-घातात् (लम्बज्यया रहितसहितत्रिज्ययोर्वधात्) पदं (मूलं) पलज्या (अक्षज्या)

भवेत् । अक्षज्ययोनयुक्तत्रिगुणवधात् (अक्षज्ययारहितसहितत्रिज्ययोर्घातात्) मूलं वा इतरा (लम्बज्या) भवेदिति ॥४-६॥

अत्रोपपत्तिः

$$\text{अथ}\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{लंज्या}^2}=\text{अक्षज्या । तथा }\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{अक्षज्या}^2}=\text{लम्बज्या ।}$$

$$\text{अक्षक्षेत्रानुपातेन }\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{अग्रा}}=\text{अक्षज्या । परं }\frac{\text{छायाकर्णगोलीयाग्रा. त्रि}}{\text{छायकर्ण}}=\text{अग्रा}$$

$$\text{अत उत्थापनेन }\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\frac{\text{छाकगोलीयाग्रा. त्रि}}{\text{छायाक}}}=\frac{\text{कुज्या. त्रि. छाक}}{\text{छाकगोअग्रा.त्रि}}=\text{अक्षज्या}$$

$$=\frac{\text{कुज्या.छाक}}{\text{छाकगोअग्रा}},\text{ तथा }\frac{\text{क्रांज्या. त्रि}}{\text{अग्रा}}=\text{लम्बज्या, अत्राप्यग्राया उत्थापनेन}$$

$$\frac{\text{क्रांज्या. त्रि}}{\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा.त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}}=\frac{\text{कांज्या.छाकर्ण}}{\text{छायाकर्णगोअग्रा}}=\text{लम्बज्या ।}$$

$$\text{परन्तु }\frac{\text{जिनज्या.भुजज्या}}{\text{त्रि}}=\text{क्रांज्या ततः क्रान्तिज्याया उत्थापनेन}$$

$$\frac{\text{जिज्या. भुज्या. छाकर्ण}}{\text{त्रि. छाकर्णगोअग्रा}}=\text{लम्बज्या ॥}$$

तथाच $\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{लंज्या}^2}=$ अक्षज्या वर्गान्तरस्य योगान्तर घातसमत्वात् ।

$\sqrt{(\text{त्रि}+\text{लंज्या})\,(\text{त्रि}-\text{लंज्या})}=$ अज्या । एवं $\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{अक्षज्या}^2}=$ लम्बज्या वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात् $\sqrt{(\text{त्रि}+\text{अज्या})\,(\text{त्रि}-\text{अज्या})}=$ लम्बज्या अत उपपन्नं सर्वमिति ॥४-६॥

हि. भा.—लम्बज्या वर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटा कर मूल लेने से अक्षज्या होती है, अथवा त्रिज्यावर्ग में अक्षज्या को घटाकर मूल लेने से लम्बज्या होती है ॥ अथवा कुज्या को छायाकर्ण से गुणकर छायाकर्ण गोलीय अग्रा से भाग देने से अक्षज्या होती है । जिनज्या गुणित त्रिज्या को छायाकर्ण से गुणकर त्रिज्या और छायाकर्ण गोलीय अग्रा के घात से भाग देने से लम्बज्या होती है ॥ अथवा लम्बज्या करके रहित और सहित त्रिज्या के घात कर मूल लेने से अक्षज्या होती है । तथा अक्षज्या करके रहित और सहित त्रिज्या के घात कर मूल लेने से लम्बज्या होती है ॥४-६॥

उपपत्ति

$$\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{लंज्या}^2}=\text{अक्षज्या । तथा }\sqrt{\text{त्रि}^2-\text{अज्या}^2}=\text{लंज्या}$$

अथवा

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{\text{छायाकर्ण गोलीयाग्रा. त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$ = अग्रा

अक्षज्या के स्वरूप में अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\frac{\text{छायाकगोअग्रा.त्रि}}{\text{छायाक}}} = \frac{\text{कुज्या.छायाक}}{\text{छायाकगोअग्रा}}$

= अक्षज्या तथा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लम्बज्या । यहां भी अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से

$\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\frac{\text{छायाकगोअग्रा.त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}} = \frac{\text{क्रांज्या.छायाक}}{\text{छायाकगोअग्रा}}$ = लम्बज्या । परन्तु $\frac{\text{त्रिज्या.भुजज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या

अतः क्रान्तिज्या के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{जिज्या. भुज्या. छायाक}}{\text{त्रि. छायाकगोअग्रा}}$ = लम्बज्या ।

अथवा $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{लंज्या}^2}$ = अज्या वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है । इसलिये $\sqrt{(\text{त्रि}+\text{लंज्या})\ (\text{त्रि}-\text{लंज्या})}$ = अक्षज्या । तथा $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{अज्या}^2}$ = लंज्या यहां भी वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होने से $\sqrt{(\text{त्रि}+\text{अज्या})\ (\text{त्रि}-\text{अज्या})}$ = लम्बज्या । अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥४-६॥

पुनस्तयोरेवानयनान्याह ।

कुज्या क्रांतिज्ये वा त्रिज्याघ्नेऽग्रज्यया हृते ते स्तः ।
अग्रा समशङ्कुज्ये त्रिगुणघ्ने तद्धृति हृते वा ॥७॥
स्वधृतिहृद्वा त्रिज्ये नृतलनरघ्ने पलावलम्बज्ये ।
अक्षावलम्बकार्मुकहीनत्रिगेहाद् गुणौ वा ते ॥८॥

वि. भा.—वा कुज्या क्रांन्तिज्ये त्रिज्याघ्ने (त्रिज्यागुणिते) अग्रज्यया (अग्रया हृते (भक्ते) ते स्तः (अक्षज्यालम्बज्ये भवतः) । वा अग्रासमशङ्कुज्ये त्रिघ्याज्ने तद्धृतिहृते (तद्धृतिभक्ते) तदाऽक्षज्यालम्बज्ये भवतः । वा त्रिज्ये नृतलनरघ्ने (शङ्कुतल-स्वधृतिहृत् (हृत्या भक्ते) तदा पलावलम्बज्ये (अक्षज्यालम्बज्ये) भवतः । वा अक्षावलम्बकार्मुकहीनत्रिगेहात् (अक्षांशलम्बांशरहित नवत्यंशचापात्) गुणौ (ज्ये) ते (लम्बज्या अक्षज्ये) भवत इति ॥७-८॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षज्या लम्बज्या त्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नमेकमक्षक्षेत्रम् । कुज्या-क्रान्तिज्याग्राभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नं द्वितीयमक्षक्षेत्रम् । अनयोस्त्रिभुजयोः सजातीयत्वादनुपातः ।

$\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । तथा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लम्बज्या.

तथाऽग्रासमशङ्कु तद्धृतिभुंजकोटिकर्णैरुत्पन्नत्रिभुजं पूर्वोक्तत्रिभुजसजातीय मतोऽनुपातः $\frac{\text{अग्रा.त्रि}}{\text{तद्धृति}}$ = अक्षज्या । तथा $\frac{\text{समशङ्कु} \times \text{त्रि}}{\text{तद्धृति}}$ = लम्बज्या ।

अथवा शङ्कुतल शङ्कुहृतिभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नत्रिभुजपूर्वोक्तत्रिभुजसजातीयमतोऽनुपातः $\frac{\text{शङ्कुतल.त्रि}}{\text{हृति}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{शङ्कु.त्रि}}{\text{हृति}}$ = लम्बज्या अत्र स्वधृतिशब्देन हृतिर्बोध्या वा.ज्या (९०—लम्बांश) = अक्षज्या । ज्या (९०—अक्षांश) = लम्बज्या

अत उपपन्नमाचार्योक्तं सर्वमिति ।।७-८।।

हि. भा.—वा कुज्या और क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणकर अग्रा से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है वा अग्रा और समशङ्कु को त्रिज्या से गुणकर तद्धृति से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है । वा त्रिज्या को शङ्कुतल और शङ्कु से पृथक् गुणकर स्वधृति (हृति) से भाग देने से अक्षज्या और लम्बज्या होती है । अक्षांश और लम्बांश रहित नवत्यंश चाप की ज्यायें लम्बज्या और अक्षज्या होती है ।।७-८।।

उपपत्तिः ।

अक्षज्या, लम्बज्या, और त्रिज्या इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न एक अक्षक्षेत्र तथा कुज्या क्रान्तिज्या और अग्रा इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न द्वितीय अक्षक्षेत्र इन दोनों के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । तथा $\frac{\text{क्रांज्या त्रि.}}{\text{अग्रा}}$ = लंज्या

तथा अग्रा, समशङ्कु और तद्धृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न त्रिभुज पूर्वोक्त त्रिभुज के सजातीय है इसलिये अनुपात करते हैं $\frac{\text{अग्रा.त्रि}}{\text{तद्धृति}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{समशङ्कु.त्रि}}{\text{तद्धृति}}$ = लम्बज्या

अथवा शङ्कुतल शङ्कु और हृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न त्रिभुजे पूर्वोक्त त्रिभुज के सजातीय है इसलिये अनुपात करते हैं $\frac{\text{शङ्कुतल.त्रि}}{\text{हृति}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{शङ्कु.त्रि}}{\text{हृति}}$ = लम्बज्या ।

यहां स्वधृतिशब्देन हृति समझनी चाहिये ।

वा ज्या (९०—लम्बांश) = अक्षज्या । तथा ज्या (९०—अक्षांश) = लम्बज्या इति ।। ७-८ ।।

पुनस्तयोरेवानयनमाह ।

समशङ्कु क्रान्तिनरैरक्षज्यास्ताड़िताः क्रमाद् विभजेत् ।
अग्राकुज्यानृतलैरवाप्तयो वाऽवलम्बज्याः ।।९।।

लम्बज्याः क्रमशो वा कुज्याग्रा नृतलताड़िितास्तु हरेत् ।
क्रान्तिज्या समशङ्कु स्वेष्टनरैरक्षमौर्व्यः स्युः ॥१०॥
जिनभागगुणरविभुजगुणघातः समनरहृनोऽथवाक्षज्या ।
क्रान्तित्रिभगुणघातः समनरहृतोऽथवाऽक्षज्या ॥११॥

वि. भा.—अक्षज्याः पृथक् समशङ्कु क्रान्तिनरैः (समशङ्कु क्रान्तिज्येष्ट-शङ्कुभिः) ताड़िताः (गुणिताः) क्रमात् अग्राकुज्यानृतलैरवाप्तयः (अग्राकुज्या-शङ्कुतलैर्भजनात्प्राप्ताः) अथवा लम्बज्या भवन्ति ॥ वा लम्बज्याः क्रमशः कुज्या-ग्रानृतलताड़िताः (कुज्याग्राशङ्कुतलैर्गुणिताः) क्रान्तिज्या समशङ्कुस्वेष्टनरैः (क्रान्तिज्या समशङ्कुस्वेष्टशङ्कुभिः) हरेत् तदा अक्षमौर्व्यः (अक्षज्याः) भवन्ति ॥ अथवा जिनभागगुणरविभुजगुणघातः (जिनज्याभुजज्ययोर्वधः) समनरहृतः (समशङ्कुभक्तः) अक्षज्या भवेत् । अथवा क्रान्तित्रिभगुणघातः (क्रान्तिज्यात्रिज्य-योर्घातः) समनरहृतः (समशङ्कुभक्तः) अक्षज्या भवेदिति ॥९-११॥

अत्रोपपत्तिः ।

अग्रा, समशङ्कुः । तद्धृतिः एतैर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । कुज्या-क्रान्तिज्याऽग्राभिर्भुजकोटिकर्णैर्द्वितीयं त्रिभुजम् । शङ्कुतलशङ्कुहृतिभिर्भुज-कोटिकर्णैरुत्पन्नं तृतीयं त्रिभुजं अक्षज्यालम्बज्यात्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैरुत्पन्नं चतुर्थं त्रिभुजम् । एषां सजातीयात् $\frac{\text{अक्षज्या.समशङ्कु}}{\text{अग्रा}}$ = लंज्या ।

$\frac{\text{क्रांज्या.अक्षज्या}}{\text{कुज्या}}$ = लंज्या ।

तथा $\frac{\text{अक्षज्या.३शङ्कु}}{\text{शङ्कुतल}}$ = लंज्या । एवमेव

$\frac{\text{लंज्या.कुज्या}}{\text{क्रांज्या}}$ = अक्षज्या । $\frac{\text{लंज्या.अग्रा}}{\text{समशङ्कु}}$ = अक्षज्या ।

$\frac{\text{लंज्या.शङ्कुतल}}{\text{शङ्कु}}$ = अक्षज्या

अथवा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु}}$ = अक्षज्या परन्तु. $\frac{\text{जिज्या.भुजज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या

अत उत्थापनेन $\frac{\text{जिज्या.भुज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु.त्रि}} = \frac{\text{जिज्या.भुजज्या}}{\text{समशङ्कु}}$ = अक्षज्या ।

अत उपपन्नमाचार्योक्तं सर्वमिति ॥ ९-१०-११ ॥

पुनः उन्हीं अक्षज्या और लम्बज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा.—अथवा अक्षज्या को समशङ्कु, क्रान्तिज्या, और इष्टशङ्कु से पृथक् पृथक् गुणकर क्रम से अग्रा, कुज्या, और शङ्कुतल से भाग देने से लम्बज्या होती है। अथवा लम्बज्या को पृथक् पृथक् कुज्या, अग्रा और शङ्कुतल से गुणकर क्रमशः क्रान्तिज्या समशङ्कु और इष्टशङ्कु से भाग देने से अक्षज्या होती है ॥ वा जिनज्यागुणित भुजज्या को समशङ्कु से भाग देने से अक्षज्या होती है। वा क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात में समशङ्कु से भाग देने से अक्षज्या होती है ॥९-११॥

उपपत्ति।

अग्रा, समशङ्कु, तद्धृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न एक त्रिभुज, कुज्या, क्रान्तिज्या, अग्रा इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज, शङ्कुतल; शङ्कु, हृति इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न तृतीय त्रिभुज, अक्षज्या, लम्बज्या, त्रिज्या इन भुजकोटिकर्णों से उत्पन्न चतुर्थ त्रिभुज इन त्रिभुजों के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं।

$$\frac{\text{अक्षज्या.समशङ्कु}}{\text{अग्रा}} = \text{लंज्या}। \quad \frac{\text{क्रांज्या.अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{लंज्या}, \quad \frac{\text{अक्षज्या.इशङ्कु}}{\text{शङ्कुतल}} = \text{लंज्या}$$

इसी तरह $\frac{\text{लंज्या.कुज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \text{अक्षज्या}। \quad \frac{\text{लंज्या.अग्रा}}{\text{समशङ्कु}} = \text{अक्षज्या}। \quad \frac{\text{लंज्या.शङ्कुतल}}{\text{इ शङ्कु}} = \text{अक्षज्या}$

अथवा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु}} = \text{अक्षज्या}$। परन्तु $\frac{\text{जिज्या.भुज्या}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या}$ इससे उत्थापन देने से

$$\frac{\text{जिज्या.भुजज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु.त्रि}} = \frac{\text{जिज्या.भुजज्या}}{\text{समशङ्कु}} = \text{अक्षज्या}.$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ९-११ ॥

अथ तयोरेवोत्क्रमज्यानयनमाह।

कुज्याग्रयोरपक्रमगुणाग्रयोरन्तरे त्रिभज्याघ्ने।
अग्राहृते क्रमात्ते व्यस्ताक्षज्याऽवलम्बज्ये ॥१२॥

वि. भा.—कुज्याग्रयोः, अपक्रमगुणाग्रयोः (क्रान्तिज्याग्रयोः) अन्तरे त्रिभज्याघ्ने (त्रिज्यागुणिते) अग्राहृते (अग्राभक्ते) क्रमात् ते व्यस्ताक्षज्यावलम्बज्ये अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्ये) भवत इति ॥१२॥

अत्रोपपत्तिः।

$$\text{अक्षक्षेत्रानुपातेन}\ \frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{अक्षज्या ततः त्रि}-\text{अक्षज्या} = \text{लम्बाशोत्क्रमज्या}$$

$$= \text{त्रि} - \frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{त्रि.अग्रा}-\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{त्रि (अग्रा}-\text{कुज्या)}}{\text{अग्रा}} = \text{लम्बां-}$$

शोत्क्रज्या तथा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लंज्या ततः त्रि—लम्बज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या

$$=\text{त्रि}-\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}=\frac{\text{त्रि.अग्रा}-\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}=\frac{\text{त्रि (अग्रा}-\text{क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}}=\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ १२ ॥

अब अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यानयन कहते हैं।

हि. भा.—कुज्या और अग्रा के अन्तर को तथा क्रान्तिज्या और अग्रा के अन्तर को त्रिज्या से गुणकर अग्रा से भाग देने से क्रमशः लम्वांशोत्क्रमज्या और अक्षांशोत्क्रमज्या होती हैं ॥१२॥

उपपत्ति।

$$\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}=\text{अक्षज्या},\ \text{त्रि}-\text{अक्षज्या}=\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}=\text{त्रि}-\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$$

$$=\frac{\text{त्रि.अग्रा}-\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}=\frac{\text{त्रि (अग्रा}-\text{कुज्या)}}{\text{अग्रा}}=\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}$$।

एवं $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = लंज्या, त्रि—लंज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या = त्रि — $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$

$=\frac{\text{त्रि.अग्रा}-\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}=\frac{\text{त्रि (अग्रा}-\text{क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}}$ अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १२ ॥

पुनस्तयोरेवानयनमाह।

श्रुत्यर्कयोः श्रुतिभवोर्विवरे त्रिगुणाहते श्रुतिविभक्ते।
उत्क्रमपललम्बज्ये क्रमलम्बपलत्रिभगुणविवरे वा ॥१३॥

वि. भा.—श्रुत्यर्कयोः (पलकर्णद्वादशयोः) श्रुतिभयोः (पलकर्णपलभयोः) विवरे (अन्तरे) त्रिगुणाहते (त्रिज्यागुणिते) श्रुतिविभक्ते (पलकर्णभक्ते) तदोत्क्रमपललम्बज्ये भवतः। अथवा क्रमलम्बपलत्रिभगुणविवरे (लम्बज्यात्रिज्ययोरन्तरेऽक्षज्यात्रिज्ययोरन्तरे) अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्ये भवत इति ॥१३॥

अत्रोपपत्तिः।

$$\frac{१२\times\text{त्रि}}{\text{पलकर्ण}}=\text{लम्बज्या},\ \text{त्रि}-\text{लंज्या}=\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}=\text{त्रि}-\frac{१२\times\text{त्रि}}{\text{पक}}$$

$=\frac{\text{त्रि}\times\text{पक}-१२\times\text{त्रि}}{\text{पक}}=\frac{\text{त्रि (पकर्ण}-१२)}{\text{पलक}}$, तथा $\frac{\text{पलभा.त्रि}}{\text{पलक}}$ = अक्षज्या ततः

$$\text{त्रि} - \text{अक्षज्या} = \text{लम्बांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{\text{पभा.त्रि}}{\text{पक}} = \frac{\text{त्रि.पक} - \text{पभा.त्रि}}{\text{पक}}$$

$$= \frac{\text{त्रि (पक} - \text{पभा)}}{\text{पक}}$$, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥ १३ ॥

पुनः अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—पलकर्ण और द्वादश के अन्तर को, पलकर्ण और पलभा के अन्तर को त्रिज्या से गुणकर पलकर्ण से भाग देने से अक्षांशोत्क्रमज्या और लम्बांशोत्क्रमज्या होती है अथवा लम्बज्या और त्रिज्या के अन्तर तथा अक्षज्या और त्रिज्या के अन्तर अक्षांशोत्क्रमज्या और लम्बांशोत्क्रमज्या होती है ॥१३॥

उपपत्ति

$$\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पलक}} = \text{लंज्या}, \ \text{त्रि} - \text{लंज्या} = \text{अक्षांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{पक}}$$

$$= \frac{\text{त्रि.पक} - १२\ \text{त्रि}}{\text{पक}} = \frac{\text{त्रि (पक} - १२)}{\text{पक}}$$ तथा $$\frac{\text{पभा.त्रि}}{\text{पक}} = \text{अक्षज्या}$$ त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या $$= \text{त्रि} - \frac{\text{पभा.त्रि}}{\text{पक}} = \frac{\text{त्रि.पक} - \text{पभा.त्रि}}{\text{पक}} = \frac{\text{त्रि (पक} - \text{पभा)}}{\text{पक}}$$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ १३ ॥

पुनरक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्यानयनमाह ।

अग्रा तद्धृत्यन्तर तद्धृतिनृविवरे त्रिभगुणघ्ने ।
तद्धृत्या प्रविभक्ते चोत्क्रम-लम्बपलज्यके स्तः ॥१४॥

वि. भा.—अग्रा तद्धृत्यन्तरतद्धृतिनृविवरे (अग्रातद्धृत्योरन्तरतद्धृतिसमशंक्वोरन्तरे) त्रिभगुणघ्ने (त्रिज्यागुणिते) तद्धृत्या प्रविभक्ते तदा उत्क्रमलम्बपलज्यके (लम्बांशाक्षांशयोरुत्क्रमज्ये) स्तः (भवतः) इति ॥१४॥

अत्रोपपत्तिः

अक्षक्षेत्रानुपातेन $$\frac{\text{अग्रा. त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \text{अक्षज्या}$$, ततः त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या $$= \text{त्रि} - \frac{\text{अग्रा.त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{तद्धृति.त्रि} - \text{अग्रा.त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{त्रि (तद्धृति} - \text{अग्रा)}}{\text{तद्धृति}} = \text{लंउज्या}$$ ।

एवं $$\frac{\text{समशंकु} \times \text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \text{लंज्या}$$, ततः त्रि—लंज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या =

$$\text{त्रि} - \frac{\text{समशं}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{त्रि}.\text{तद्धृति} - \text{समशं}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{तद्धृति} - \text{समशं})}{\text{तद्धृति}} = \text{अउज्या}।$$

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१४॥

अब पुनः अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यानयन कहते हैं।

हि. भा.—अग्रा और तद्धृति के अन्तर को तथा तद्धृति और समशङ्कु के अन्तर को त्रिज्या से गुणकर तद्धृति से भाग देने से लम्बांश और अक्षांश की उत्क्रमज्या होती है ॥१४॥

उपपत्ति।

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{अग्रा}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \text{अक्षज्या} \therefore \text{त्रि} - \text{अक्षज्या} = \text{लम्बांशोत्क्रमज्या}$

$$= \text{त्रि} - \frac{\text{अग्रा}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{त्रि}.\text{तद्धृति} - \text{अग्रा}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{तद्धृति} - \text{अग्रा})}{\text{तद्धृति}} = \text{लंउज्या}।$$

एवं $\frac{\text{समशङ्कु}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \text{लंज्या} \therefore \text{त्रि} - \text{लंज्या} = \text{अक्षांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{\text{शमशं}.\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}}$

$= \frac{\text{त्रि}.\text{तद्धृति} - \text{समशं},\text{त्रि}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{तद्धृति} - \text{समशं})}{\text{तद्धृति}} = \text{अक्षांशोत्क्रमज्या}$। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१४॥

पुनस्तयोरेवानयनमाह।

नृतलस्वधृतिविशेष स्वधृतिनृविवरे त्रिमौर्विकाभ्यस्ते।
स्वधृत्या प्रविभक्ते वोत्क्रमलम्बकपलमौर्विके भवतः ॥१५॥

वि. भा.—नृतलस्वधृतिविशेषस्वधृतिनृविवरे (शङ्कुतलहृत्योरन्तरहृतिशङ्कोरन्तरे) त्रिमौर्विकाभ्यस्ते (त्रिज्यागुणिते) स्वधृत्याप्रविभक्ते (हृत्याभक्ते) अथवा उत्क्रमलम्बकपलमौर्विके (लम्बांशाक्षांशयोरुत्क्रमज्ये) भवत इति ॥१५॥

अत्रोपपत्तिः।

$\frac{\text{शङ्कुतल}.\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \text{अक्षज्या}$ ततः $\text{त्रि} - \text{अक्षज्या} = \text{लम्बांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} -$

$$\frac{\text{शंतल}.\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि}.\text{हृति} - \text{शंतल}.\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{हृति} - \text{शंतल})}{\text{हृति}} = \text{लंउज्या}।$$

तथा $\frac{\text{शङ्कु}.\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \text{लंज्या}$ ततः $\text{त्रि} - \text{लंज्या} = \text{अक्षांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{\text{शङ्कु}.\text{त्रि}}{\text{हृति}} =$

$\frac{\text{त्रि}.\text{हृति} - \text{शङ्कु}.\text{त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि}(\text{हृति} - \text{शङ्कु})}{\text{हृति}}$ अक्षांशोत्क्रमज्या। स्वधृतिशब्देन हृतिर्बोध्या। एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१५॥

पुनः उन्हीं दोनों के आनयन कहते हैं ।

हि. भा.—शङ्कुतल और हृति के अन्तर को तथा हृति और शङ्कु के अन्तर को त्रिज्या से गुणकर हृति से भाग देने से लम्बांश और अक्षांश की उत्क्रमज्या होती है ॥१५॥

उपपत्ति

$$\frac{\text{शङ्कुतल. त्रि}}{\text{हृति}} = \text{अक्षज्या} \therefore \text{त्रि} - \text{अक्षज्या} + \text{लम्बांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} -$$

$$\frac{\text{शङ्कुतल.त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि.ति} - \text{शंतल. हृत्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि (हृति} - \text{शंतल)}}{\text{हृति}} = \text{लंउज्या}$$

$$\text{तथा } \frac{\text{शङ्कु. त्रि}}{\text{हृति}} = \text{लंज्या} \therefore \text{त्रि} - \text{लंज्या} = \text{अक्षांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{\text{शंकु.त्रि}}{\text{हृति}}$$

$$= \frac{\text{त्रि. हृति} - \text{शंकु.त्रि}}{\text{हृति}} = \frac{\text{त्रि (हृति} - \text{शंकु)}}{\text{हृति}} = \text{अउज्या}$$

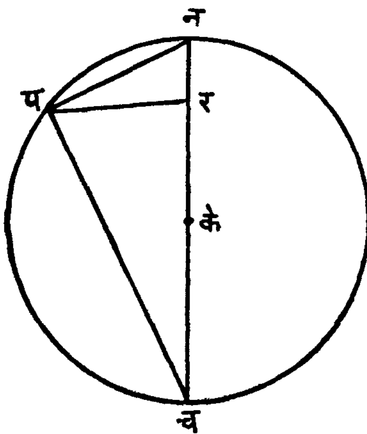
। स्वधृति से हृति समझनी चाहिये । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१५॥

इदानीं लम्बाक्षज्ययोरानयनान्याह ।

उत्क्रमपललम्बज्याहृतौ पलगुणावलम्बगुणवर्गौ ।
लब्धे त्रिज्यारहिते लम्बाक्षज्ये व्यासघ्नस्वकृतिवर्जिते च पदे ॥१६॥
पललम्बज्ये व्यासौ तदूनगुणौ ते पदे वा स्तः ॥१६$\frac{1}{2}$॥

वि. भा.—पलगुणावलम्बगुणवर्गौ (अक्षज्यालम्बज्ययोर्वर्गौ) उत्क्रमपललम्बज्याहृतौ (अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्याभक्तौ) लब्धे त्रिज्यारहिते (त्रिज्यया हीनिते) तदा लम्बाक्षज्ये भवतः । अथवा व्यासघ्नस्वकृतिवर्जिते (उत्क्रमज्यागुणितव्यासे उत्क्रमज्यावर्गहीने) पदे (मूले) तदा पललम्बज्ये (अक्षज्यालम्बज्ये) भवतः । अथवा तदूनगुणौ (उत्क्रमज्यया हीनगुणितौ) व्यासौ पदे (मूले) ते (पललम्बज्ये) स्तः (भवतः) इति ॥१६$\frac{1}{2}$॥

अत्रोपपत्तिः ।



चित्र नं० ११

के = वृत्तकेन्द्रम् । पनचाप = अक्षांशचापम् । पर = अक्षज्या । नर = अक्षांशोत्क्रमज्या । नच = व्यासः । केन = त्रिज्या, $<$ चपन = ९० तदा चपर, परन त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः $\frac{\text{पर} \times \text{पर}}{\text{रन}} = \frac{\text{अजज्या}^2}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}} = \text{रच} = \text{केर}$ $+ \text{केच} = \text{लंज्या} + \text{त्रि}$ अतः रच—केच $= \frac{\text{अक्षज्या}^2}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}} - \text{त्रि} = \text{लंज्या}$, यदि च पन चापं लम्बांशचापं तदा पूर्ववत् $\frac{\text{लम्बज्या}^2}{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}} - \text{त्रि} = \text{अक्षज्या}$ । एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ।

अथ $\frac{\text{पर} \times \text{पर}}{\text{रन}} = \text{रच} = \frac{\text{पर}^2}{\text{रन}} \therefore \text{पर}^2 = \text{रच} \times \text{रन} = (\text{नच} - \text{रन})\ \text{रन}$

$= \text{अक्षज्या}^2 = (\text{व्यास} - \text{अउज्या})\ \text{अउज्या}$

$= \text{व्यास} \times \text{अउज्या} - \text{अउज्या}^2$

मूलेन $\text{अक्षज्या} = \sqrt{\text{व्यास} \times \text{अउज्या} - \text{अउज्या}^2}$

एवमेव $\text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{व्यास} \times \text{लउज्या} - \text{लंउज्या}^2}$

तथा $\text{अक्षज्या} = \sqrt{(\text{व्या} - \text{अउज्या})\ \text{अउज्या}}$

$\text{लम्बज्या} = \sqrt{(\text{व्या} - \text{लंउज्या})\ \text{लंउज्या}}$

एतेनोपपन्नं सर्वमिति ॥१६$\frac{1}{2}$॥

अब लम्बज्या और अक्षज्या के आनयन तीन प्रकार से कहते हैं।

हि॰ भा – अक्षज्या और लम्बज्या के वर्ग को अक्षांशोत्क्रमज्या से भाग देकर जो फल हो उनमें त्रिज्या घटाने से क्रमशः लम्बजा और अक्षज्या होती है। अथवा अक्षांश और लम्बांश की उत्क्रमज्या को व्यास में घटा कर अपनी-अपनी उत्क्रमज्या से गुण कर मूल लेने से क्रमशः अक्षज्या और लम्बज्या होती है। अथवा व्यास को अक्षांशोत्क्रमज्या और लम्बांशोत्क्रमज्या से पृथक पृथक् गुण कर अपनी अपनी उत्क्रमज्या वर्ग घटा कर मूल लेने से क्रमशः अक्षज्या और लम्बज्या होती है ॥१६$\frac{1}{2}$॥

उपपत्ति

चित्र देखिये। के = वृत्तकेन्द्र। पनचाप = अक्षांशचाप, पर = अक्षज्या नर = अक्षांश की उत्क्रमज्या। नच = व्यास। केन = त्रिज्या केर = लम्बज्या। $\angle$चपन = ९० तब चपर, परन दोनों त्रिभुज सजातीय हैं इसलिये अनुपात करते हैं $\frac{\text{पर} \times \text{पर}}{\text{रन}} = \frac{\text{पर}^2}{\text{रन}}$

$= \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}} = \text{रच} = \text{केर} + \text{केच} = \text{लंज्या} + \text{त्रि}$

अतः $\text{रच} - \text{केच} = \frac{\text{अक्षज्या}^2}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}} - \text{त्रि} = \text{लंज्या}$। यदि इसी तरह पनचाप को लम्बांश मानकर पूर्ववत् उपपत्ति करें तो $\frac{\text{लम्बज्या}^2}{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}} - \text{त्रि} = \text{अक्षज्या}$। इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ।

यदि पन चाप अक्षांश है

तो $\frac{\text{पर} \times \text{पर}}{\text{रन}} = \text{रच} = \frac{\text{पर}^2}{\text{रन}} \therefore \text{पर}^2 = \text{रच} \times \text{रन} = (\text{नच} - \text{रन})\text{रन} = \text{अक्षज्या}^2$

$= (\text{व्यास} - \text{अउज्या})\ \text{अउज्या}$

$= \text{व्यास} \times \text{अउज्या} - \text{अउज्या}^2$

मूल लेने से $\sqrt{\text{व्या} \times \text{अउज्या} - \text{अउज्या}^2}$ = अक्षज्या

इसी तरह $\sqrt{\text{व्या} \times \text{लउज्या} - \text{लंउज्या}^2}$ = लंज्या

तथा $\sqrt{(\text{व्या} - \text{अउज्या})\ \text{अउज्या}}$ = अक्षज्या, $\sqrt{(\text{व्या} - \text{लंउज्या})\text{लंउज्या}}$ = लंज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१६½॥

पुनस्तयोराननमाह ।

उत्क्रमजीवान्तरकृतिहीनत्रिज्याकृतेर्दलं यत्तत् ।
पलगुणहृल्लम्बज्या लम्बज्याहृतपलज्या वा ॥१७॥

वि. भा.—उत्क्रमजीवान्तरकृतिहीनत्रिज्याकृते· (अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्या-न्तरवर्गहीनत्रिज्यावर्गस्य) दलं अर्धम् यत्तत् पलगुणहृत् (अक्षज्याभक्तं) तदा लम्बज्या स्यात् । लम्बज्याहृतदा पलज्या (अक्षज्या) वा भवेदिति ॥१७॥

अत्रोपपत्तिः

त्रि—लंज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या । त्रि—अक्षज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या

अनयोरन्तरम्

त्रि—अज्या—(त्रि—लंज्या) = त्रि—अज्या—त्रि + लंज्या = लंज्या—अक्ष = उत्क्रमज्यान्तर ∴ त्रि^{2}—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर^2 = त्रि^{2}—(लंज्या — अज्या)^2 = त्रि^{2}—(लंज्या^{2}—२लंज्या, अज्या + अज्या^{2}) = त्रि^{2}—(त्रि^{2}—२ लंज्या. अज्या)

= त्रि^{2}—त्रि^{2} + २ लंज्या. अज्या = २ लंज्या.अज्या

अतः $\dfrac{\text{त्रि}^2 - \text{अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^2}{२}$ = लंज्या. अज्या

ततः $\dfrac{\text{त्रि}^2 - \text{अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^2}{२\ \text{लंज्या}}$ = अक्षज्या, वा तस्मिन्नेवाक्षज्यया भक्ते लम्बज्या भवेदत आचार्योक्तमुपपन्नम् ॥१७॥

अब पुनः उन्हीं दोनों के आनयन कहते हैं ।

हि. भा.—अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यान्तर वर्ग करके हीन त्रिज्यावर्ग के आधे को अक्षज्या से भाग देने से लम्बज्या होती है और लम्बज्या मे भाग देने से अक्षज्या होती है ॥१७॥

उपपत्ति ।

त्रि—लंज्या = अक्षांशोत्क्रमज्या । त्रि—अज्या = लम्बांशोत्क्रमज्या

दोनों के अन्तर करने से

त्रि—अज्या—(त्रि—लंज्या) = त्रि-अज्या—त्रि + लंज्या = लंज्या—अज्या = उत्क्रमज्यान्तर

अतः त्रि^{2}—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर^{2}=त्रि^{2}—(लंज्या—अज्या)^{2}

=त्रि^{2}—(लंज्या^{2}—२ लंज्या. अज्या+अज्या^{2}) =त्रि^{2}—(त्रि^{2}—२ लंज्या.अंज्या)

=त्रि^{2}—त्रि^{2}+२ लंज्या. अज्या=२ लंज्या. अज्या

अतः $\frac{\text{त्रि}^{2}\text{—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^{2}}{\text{२}}$ =लंज्या.अक्षज्या, अक्षज्या से भाग देने से

$\frac{\text{त्रि}^{2}\text{—अक्षांशलम्बांशोत्क्रमज्यान्तर}^{2}}{\text{२ अज्या}}$ =लंज्या, उसीमें लम्बज्या से भाग देने

से अक्षज्या होती है । इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥१७॥

पुनरपि तयोरेवानयनमाह ।

त्रिज्यावर्गात् द्विगुणाद व्यस्तगुणान्तरकृतिं विशोध्य पदम् ।
उक्तान्तरोनयुक्तं दलितं पललम्बकज्ये वा ॥ १८ ॥

वि. भा.—त्रिज्यावर्गाद् द्विगुणात् व्यस्तगुणान्तरकृतिं (अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्यान्तरवर्गं) विशोध्य पदं (मूलं) उक्तान्तरोनयुक्तं (अक्षांशलम्बांशयोरुत्क्रमज्यान्तरमेकत्र हीनमपरत्र युक्तं) दलितं (अधिकृतं) अथवा पललम्बकज्ये (अक्षज्या लम्बज्ये) भवतः ॥१८॥

अत्रोपपत्तिः

अथ लम्बांशोत्क्रमज्या—अक्षांशोत्क्रमज्या=लंज्या—अज्या=उत्क्रमज्यान्तर

ततः २त्रि^{2}—उत्क्रमज्यान्तर^{2}=२ त्रि^{2}—(लंज्या—अज्या^{2})

२ त्रि^{2}—(लंज्या^{2}—२ लंज्या. अज्या+अज्या^{2})=२त्रि^{2}
—(त्रि^{2}—२ लंज्या. अज्या)

=२त्रि^{2}—त्रि^{2}+२ लंज्या. अज्या=त्रि^{2}+२ लंज्या. अज्या=लंज्या^{2}
+अज्या^{2}+२ लंज्या. अज्या

=(लंज्या+अज्या)^{2} मूले $\sqrt{\text{२त्रि}^{2}\text{—उत्क्रमज्यान्तर}^{2}}$ =लंज्या+अज्या

लंज्या—अज्या=उत्क्रमज्यान्तर ततः संक्रमणगणितेन

अज्या= $\frac{\sqrt{\text{२ त्रि}^{2}\text{—उत्क्रमज्यान्तर}^{2}}\text{—उत्क्रमज्यान्तर}}{\text{२}}$,

$\frac{\sqrt{\text{२त्रि}^{2}\text{—उज्यान्तर}^{2}}+\text{उज्यान्तर}}{\text{२}}$ =लंज्या

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते ॥१८॥

अब पुनः उन्हीं दोनों के आनयन कहते हैं।

द्विगुणित त्रिज्यावर्ग में अक्षांश और लम्बांश के उत्क्रमज्यान्तर वर्ग घटाकर मूल लेना उसमें उस उत्क्रमज्यान्तर को हीन और युत कर आधा करने से अक्षज्या और लम्बज्या होता है ॥१८॥

उपपत्ति।

लम्बांशोत्क्रमज्या—अक्षांशोत्क्रज्या = लंज्या—अज्या = उत्क्रमज्यान्तर

$२\ त्रि^{२} - उत्क्रमज्यान्तर^{२} = २\ त्रि^{२} - (लंज्या - अज्या)^{२}$

$= २\ त्रि^{२} - (लंज्या^{२} - लंज्या.अज्या + अज्या^{२}) = २\ त्रि^{२} - (त्रि^{२} - २\ लंज्या.अज्या)$

$= २\ त्रि^{२} - त्रि^{२} + २\ लंज्या.अज्या = त्रि + लंज्या.अज्या = लंज्या^{२} + अज्या^{२} + २\ लंज्या.अज्या$

$= (लंज्या + अज्या)^{२}$ मूलग्रहणेन $\sqrt{२\ त्रि^{२} - उत्क्रमज्यान्तर^{२}} = लंज्या + अज्या$।

लंज्या—अज्या = उत्क्रमज्यान्तर तब संक्रमण गणित से

$$\frac{\sqrt{२^{२} - उत्क्रमज्यान्तर^{२}} - उत्क्रमज्यान्तर}{२} = अज्या।$$

$$\frac{\sqrt{२\ त्रि^{२} - उत्क्रमज्यान्तर^{२}} + उत्क्रमज्याग्र}{२} = लंज्या।$$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१८॥

पुनस्तयोरेव प्रकारद्वयेनानयनमाह।

तद्वाऽक्षज्योनं लम्बलवज्याऽक्षज्यावलम्बगुणहीनम्।
त्रिज्योत्क्रमाक्षलम्बकगुणान्तरे लम्बकाक्षज्ये ॥१९॥

वि. भा.—वा तत्फलं (उत्क्रमज्यावर्गहीनद्विगुणितत्रिज्यावर्गमूलं) अक्षज्योनं (अक्षज्यया हीनं) तदा लम्बलवज्या (लम्बांशज्या) भवेत्। तदेव फलं अवलम्बगुणहीनं (लम्बज्यया रहितं) तदाऽक्षज्या स्यात्। वा त्रिज्योत्क्रमाक्षलम्बकगुणान्तरे (त्रिज्याऽक्षांशोत्क्रमज्यान्तरत्रिज्यालम्बांशोत्क्रमज्यान्तरे च) लम्बकाक्षज्ये (लम्बाक्षज्ये) भवत इति ॥१९॥

अत्रोपपत्तिः

पूर्वानीतस्वरूपम् = लंज्या + अज्या = $\sqrt{२\ त्रि^{२} - उत्क्रमज्यान्तर^{२}}$ अत्र यदि लम्बज्यां विशोध्यते तदाऽक्षज्या भवेत्। अक्षज्याया विशोधनेन लम्बज्या भवेदेव।

तथा त्रि—अत्रांशोत्क्रमज्या = लंज्या। त्रि—लम्बांशोत्क्रमज्या = अक्षज्या।

अतः सिद्धम् ॥ १९ ॥

हि. भा.—उस फल में (उत्क्रमज्यान्तर वर्गरहित द्विगुणित त्रिज्यावर्ग में) अक्षज्या घटाने से लम्बज्या होती है और लम्बज्या को घटाने से अक्षज्या होती है। अथवा त्रिज्या और अक्षांशोत्क्रमज्या के अन्तर लम्बज्या होती है और त्रिज्या लम्बांशोत्क्रमज्या के अन्तर अक्षज्या होती है ॥ १९ ॥

उपपत्ति ।

पूर्वानीत स्वरूप लंज्या + अज्या = $\sqrt{2 \text{ त्रि}^2 - \text{उत्क्रमज्यान्तर}^2}$ इसमें अक्षज्या को घटाने से लम्बज्या और लम्बज्या को घटाने से अक्षज्या होती है ।

तथा त्रि—अक्षांशोत्क्रमज्या = लंज्या । त्रि—लम्बांशोत्क्रमज्या = अज्या

अतः सिद्ध हो गया ॥१६॥

इदानीं पुनरप्यक्षज्यासाधनमाह

चरदलजीवाद्युज्यावधोऽग्रया भाजितोऽथवाऽक्षज्या ।
समकर्णापक्रमजीवाघातोऽर्कहृतोऽथवाऽक्षज्या ॥२०॥

वि. भा.—अथवा चरदलजीवाद्युज्यावधः (चरज्याद्युज्ययोर्घातः) अग्रया भाजितः (अग्राभक्तः) अक्षज्या स्यात् । अथवा समकर्णाऽपक्रमजीवाघातः (सममण्डलकर्णक्रान्तिज्ययोर्वध.) अर्कहृतः (द्वादशभक्तः) अक्षज्या भवेत् ॥२०॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{\text{चरज्या.द्युज्या}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या

अत उत्थापनेन $\frac{\text{चरज्या.द्युज्या.त्रि}}{\text{अग्रा.त्रि}} = \frac{\text{चरज्या.द्युज्या}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या ।

तथा $\frac{\text{क्रान्तिज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु}}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{समकर्ण}}$ = समशङ्कु

अतोऽक्षज्यास्वरूपे समशङ्कोरुत्थापनेन $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{समक}}} = \frac{\text{क्रांज्या.त्रि.समक}}{\text{त्रि.१२}}$

$= \frac{\text{क्रांज्या.समकर्ण}}{१२}$ = अक्षज्या । एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥३०॥

अब पुनः अक्षज्या साधन करते हैं

हि. भा.—अथवा चरज्या और द्युज्या के घात में अग्रा से भाग देने से अक्षज्या होती है अथवा समकर्ण और क्रान्तिज्या के घात में बारह से भाग देने से अक्षज्या होती है ॥२०॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या । परन्तु $\frac{\text{चरज्या.द्युज्या}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या इसलिये

अक्षज्या के स्वरूप में कुज्या को उत्थापन देने से $\frac{\text{चरज्या.द्यु.त्रि}}{\text{अग्रा.त्रि}}=\frac{\text{चरज्या.द्यु}}{\text{अग्रा}}=$ अज्या

तथा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{समशङ्कु}}=$ अक्षज्या। परन्तु $\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{समकर्ण}}=$ समशङ्कु इसलिये अक्षज्या के स्वरूप में

समशङ्कु को उत्थापन देने से $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{समक}}}=\frac{\text{क्रांज्या.त्रि.समक}}{\text{त्रि.१२}}=\frac{\text{क्रांज्या.समक}}{\text{१२}}=$ अक्षज्या

इससे आचार्योक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥२०॥

इदानीं पुनरपि लम्बज्यानयनमाह।

पलभाहृल्लम्बज्या नृतलाप्तात् नृभाक्षगुणघातात्।
श्रुतिगुणिता क्रान्तिज्या भावृत्ताग्रोद्धृता वा स्यात् ॥२१॥

वि. भा.—नृभाक्षगुणघातात् (शङ्कुपलभाऽक्षज्यावधात्) नृतलाप्तात् (शङ्कुतलभक्तात्) पलभाहृत् तदा लम्बज्या भवेत्। अथवा क्रान्तिज्या श्रुतिगुणिता (छायाकर्णगुणा) भावृत्ताग्रोद्धृता (छायाकर्णगोलीयाग्रया भक्ता) तदा लम्बज्या भवेत् ॥२१॥

अत्रोपपत्तिः।

श्लोकपूर्वार्धोक्तानुसारेण $\frac{\text{शङ्कु}\times\text{पलभा}\times\text{अक्षज्या}}{\text{पलभा.शङ्कुतल}}$

$=\frac{\text{शङ्कु}\times\text{अक्षज्या}}{\text{शङ्कुतल}}=$ लम्बज्या।

अथवा $\frac{\text{क्रान्तिज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}}=$ लंज्या। परन्तु $\frac{\text{छायाग्रीयाग्रा.त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}=$ अग्रा

अतो लम्बज्यास्वरूपेऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\frac{\text{छायाग्रीयाग्रा.त्रि}}{\text{छायाक}}}=\frac{\text{क्रांज्या.त्रि.छायाक}}{\text{छायाग्रीयाग्रा.त्रि}}$

$=\frac{\text{क्रांज्या.छायाक}}{\text{छायाग्रीयाग्रा}}=$ लंज्या। एतेनाऽऽचार्योक्तमुपपन्नम्। श्लोकपूर्वार्धे पलभा गुणनभजनं क्रियते तावता किमपि फलं न भवति, मन्ये पदपूर्त्यर्थमाचार्येणैवं कृतमिति ॥२१॥

अब पुनः लम्बज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा.—शङ्कुपलभा और अक्षज्या के घात में पलभा और शङ्कुतल के घात से भाग देने से लम्बज्या होती है। अथवा क्रान्तिज्या को छायाकर्ण से गुणकर छायाकर्णवृत्तीयाग्रा से भाग देने से लम्बज्या होती है ॥२१॥

उपपत्ति

श्लोकों के पूर्वार्धोक्ति के अनुसार $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{पलभा. अक्षज्या}}{\text{पलभा. शङ्कुतल}}$

$= \frac{\text{शङ्कु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{शङ्तल}} = \text{लम्बज्या}$

अथवा $\frac{\text{क्रांज्या.त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{लंज्या}$ । परन्तु $\frac{\text{छायाकर्णवृत्तअग्रा.त्रि}}{\text{छायाकर्ण}} = \text{अग्रा}$

लम्बज्या स्वरूप में अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{क्रांज्या. त्रि}}{\frac{\text{छायाकर्णवृअग्रा.त्रि}}{\text{छायाक}}}$

$= \frac{\text{क्रांज्या.त्रि.छायाकं}}{\text{छायाकर्णवृअग्रा.त्रि}} = \frac{\text{क्रांज्या.छायाक}}{\text{छायावृकर्णअग्रा}} = \text{लम्बज्या}$ श्लोक के पूर्वार्ध में पलभा से गुणकर पलभा से भाग देते हैं इससे कुछ लाभ नहीं होता है। मालूम होता है आचार्य ने पद-पूर्ति के लिये ऐसा किया है, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ २१॥

इदानीमक्षज्यालम्बज्ययोश्चापं विधायायनांशानयनं निर्दिशति ।

तद्धनुषी लम्बाक्षावुत्क्रमधनुषी तथोत्क्रमाह्वाभ्याम् ।
याम्योऽक्षोऽक्षच्छाया याम्याऽजतुलाक्षविवरज्या ॥२२॥
त्रिज्यागुणिता भक्ता परमापक्रान्तिजीवयाप्तधनुः ।
देयं ग्रहे यदा भा दक्षिणगोलादिगम्यभानुमतः ॥२३॥
महती मेषादिगतच्छायातस्त्वन्यथा शोध्यम् ।
यातोऽन्यथा विधेयं चापत्रिप्रश्नकर्मविधौ ॥२४॥
षड्राश्यन्तरिताद् वा भानुमतोऽभीष्ट कालिकात्साध्यम् ।
अयनचलनं स्वबुद्ध्या गणकेन हि चापचतुरेण ॥२५॥

वि. भा.—तद्धनुषी (तयोर्लम्बाक्षज्ययोश्चापे) लम्बाक्षौ (लम्बांशाक्षांशौ) भवतः । तयोत्क्रमाह्वाभ्यां (लम्बांशाक्षांशोत्क्रमज्याभ्याम्) उत्क्रमधनुषी (उत्क्रमचापे) भवतः । अक्षः (अक्षांशः) याम्यः (दक्षिणदिक्कः) अक्षच्छाया (पलभा) याम्या (दक्षिणदिक्का) अजतुलाक्षविवरज्या (मेषादि-तुलादि-बिन्द्वोरक्षांशान्तर-ज्या) त्रिज्यागुणिता, परमापक्रान्तिजीवया (परमक्रान्तिज्यया) भक्ता, अवाप्त-धनुः (फलचापं) कार्यं ग्रहे देयं यदा दक्षिणगोलादि (तुलादि) गम्यसूर्यस्य मेषादि-गतच्छायातः (मेषादिगतसूर्यच्छायातः) महती भवेत् । अन्यथा मेषादिगतच्छायात-स्तुलादिगम्यच्छायाऽल्पा भवेतदा तत्पूर्वानीतं फलं ग्रहे शोध्यं, याते (दक्षिणगो-लादितोऽग्रगते रवौ अन्यथा पूर्वोक्तधनर्णत्वं विपरीतं ग्रहे कर्त्तव्यम् । वा चाप-त्रिप्रश्नकर्मविधौ षड्राश्यन्तरितत्वात् अभीष्टकालिकाद् भानुमतः (सूर्यात्) चापच-तुरेण (चापीयगणितकुशलेन) गणकेन (ज्योतिर्विदा) स्वबुद्ध्या अयनचलनं (अयनांशगतिः) साध्यमिति ॥ २२-२५॥

अत्रोपपत्तिः ।

मेषादितुलादिबिन्द्वोरक्षांशान्तरज्या त्रिज्यया गुण्या परमक्रान्तिज्यया भक्ता तदाऽक्षांशान्तरांशसम्बन्धि भुजज्या भवेत्तच्चापकरणेनाक्षांशान्तरसम्बन्धि सम्पातचलनं भवेदेतत्फलं यदि मेषादिगतच्छायातस्तुलादिगम्यसूर्यच्छाया महती तदा ग्रहे धनमन्यथाहीनं तदाऽयनांशगतिसंस्कृतग्रहो भवेदन्यत्सर्वं स्फुटमेवेति ॥२२-२५॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे लम्बाक्षज्यानयनविधिः
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।

अब अक्षज्या और लम्बज्या के चाप करके अयनांशानयन कहते हैं ।

हि. भा.—लम्बज्या और अक्षज्या के चाप करने से लम्बांश और अक्षांश होते हैं । लम्बांशोत्क्रमज्या और अक्षांशोत्क्रमज्या से चाप करने पर उत्क्रम चाप होते हैं । अक्षांश की दिशा दक्षिण है । पलभा की दिशा भी दक्षिण है । मेषादि और तुलादि बिन्दुओं की अक्षांशान्तरज्या को त्रिज्या से गुणकर परम क्रान्तिज्या से भाग देने पर जो फल हो उसके चाप को ग्रह में धन करना, यदि दक्षिणगोलादि (तुलादि) गम्य सूर्य की छाया मेषादिगत सूर्यच्छाया से बड़ी हो तब, अन्यथा मेषादिगत छाया से उस छाया के अल्प रहने से पूर्वानीत फल को ग्रह में ऋण करना दक्षिणगोलादि के गत रहने से धन और ऋण विपरीत होता है वा चापीय त्रिप्रश्न कार्यविधि में छः राशि के अन्तर रहने से अभीष्टकालिक सूर्य से चाप सम्बन्धी विषय में चतुर ज्योतिषी लोग अपनी बुद्धि से अयन चलन के साधन करे ॥ २२-२५ ॥

उपपत्ति

मेषादि और तुलादि बिन्दुओं की अक्षांशान्तरज्या को त्रिज्या से गुणकर परम क्रान्तिज्या से भाग देने से अक्षांशान्तर सम्बन्धीय भुजज्या होती है । चाप करने से अक्षांशान्तर सम्बन्धीय अयनगति (सम्पातगति) होती है । यदि मेषादिगतच्छाया से तुलादि गम्य सूर्यच्छाया अधिक हो तब उस फल को ग्रह में धन करना अन्यथा हीन करना तब अयनांश संस्कृत ग्रह होते हैं । अन्य विषय स्पष्ट है ॥ २२-२५ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में लम्बाक्षज्यानयनविधि नामक
दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥



तृतीयोऽध्यायः

अथ क्रान्तिज्यानयनविधिः

तत्रादौ क्रान्तिज्यानयनमाह ।

क्रान्तिः परा जिनांशाः पराक्रमज्या जिनांशकज्योक्ता ।
तद्गुणिताऽर्कभुजज्या त्रिगुणहृदिष्टापमज्या स्यात् ॥१॥

वि. भा.—परा क्रान्तिः (परमक्रान्तिः) जिनांशाः (चतुर्विंशत्यंशाः) पराक्रमज्या (परमक्रान्तिज्या) जिनांशकज्या (जिनज्या) उक्ता (कथिता)। अर्कभुजज्या (रविभुजज्या) तद्गुणिता (जिनज्यागुणिता) त्रिगुणहृत् (त्रिज्याभक्ता) इष्टापमज्या (इष्टाक्रान्तिज्या) स्यादिति ॥१॥

अब क्रान्तिज्यानयन कहते हैं ।

हि.भा.— परमक्रान्ति जिनांश (चौबीस अंश) है, परम क्रान्तिज्या जिनज्या कथित है। रवि की भुजज्या को जिनज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से इष्ट क्रांतिज्या होती है ॥१॥

अथवा क्रान्तिज्यानयनमाह ।

अष्टकृतिर्वा गुणिता रविभुजजीवयाऽष्टकुखकुभक्ता ।
स्वेष्टापक्रमजीवा तच्चापं क्रान्तिरिष्टा स्यात् ॥२॥

वि. भा.—अथवा अष्टकृतिः (अष्टचत्वारिंशत्) रविभुजजीवया (रविभुजज्यया गुणिता अष्टकुखकु (१०१८) भक्ता तदा स्वेष्टापाक्रमजीवा (स्वेष्टक्रान्तिज्या) भवेत् । तच्चापमिष्टा क्रान्तिः ॥२॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ गोलसन्धितो नवत्यंशवृत्तमयनप्रोतवृत्तम् । गोलसंधितोऽयनसन्धि (क्रान्तिवृत्तायनप्रोतवृत्तयोः सम्पातं) यावत्क्रान्तिवृत्ते नवत्यंशः । गोलसन्धितोऽयनप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तयोः सम्पातं यावन्नाड़ीवृत्ते नवत्यंशः । नाड़ीक्रान्तिवृत्तयोरन्तरेऽयनप्रोतवृत्ते परमक्रान्तिः । तदा नवत्यंशनवत्यंशजिनांशैर्भुजत्रयैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । क्रान्तिवृत्ते यत्र रविरस्ति तदुपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तं यत्र नाड़ीवृत्ते

लगति लगति ततो रविं यावद् ध्रुवप्रोतवृत्ते क्रान्तिः। गोलसन्धितो रविं यावत्क्रान्तिवृत्ते रविभुजांशाः। गोलसन्धितो नाड़ीवृत्तध्रुवप्रोतवृत्तयोः सम्पातं यावन्नाड़ीवृत्ते विषुवांशाः। भुजांशविषुवांशक्रान्त्यंशैरुत्पन्नं द्वितीयत्रिभुजम्। एतयोः क्रान्तिक्षेत्रयोर्ज्याक्षेत्रसजातीयत्वादनुपातो यदि त्रिज्यया जिनज्या लभ्यते तदा रविभुजज्यया किमित्यनुपातेनागतेष्टक्रान्तिज्या तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{जिज्या. रभुजज्या}}{\text{त्रि}}$

अत्र जिनज्यात्रिज्ययोः २९ एभिरपवर्त्तनेन $\frac{४८ \times \text{रभुज्या}}{१०१८}$ = इक्रांज्या स्वल्पान्तरात्। एतच्चापमिष्टक्रान्तिरित्युपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥२॥

अब पुनः क्रान्तिज्यानयन कहते हैं।

हि. भा—अथवा रवि की भुजज्या से ४८ से गुणाकर १०१८ इतने से भाग देने से इष्टक्रान्तिज्या होती है। उसका चाप इष्टक्रान्ति होती है ॥२॥

उपपत्ति।

गोलसन्धि से नवत्यंश वृत्त अयन प्रोतवृत्त है। गोलसन्धि से अयनसन्धि (क्रान्तिवृत्त और अयनप्रोतवृत्त के सम्पात) तक क्रान्तिवृत्त में नवत्यंश, गोलसन्धि से नाड़ीवृत्त और अयनप्रोतवृत्त के सम्पात तक नाड़ीवृत्त में नवत्यंश, अयनप्रोतवृत्त में नाड़ीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के अन्तर्गत जिनांश (परमक्रान्ति) इन नवत्यंश, नवत्यंश, जिनांश तीनों भुजों से एक त्रिभुज, और क्रान्तिवृत्त में जहां पर रवि है तदुपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त जहां नाड़ीवृत्त में लगता है वहां से रवि तक ध्रुव प्रोतवृत्त में इष्टक्रान्ति, गोलसन्धि से रवि तक क्रान्तिवृत्त में रविभुजांश. गोलसन्धि से ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात तक नाड़ीवृत्त में विषुवांश, विषुवांश, भुजांश, क्रान्त्यंश इन तीनों भुजों से उत्पन्न द्वितीय चापीय जात्यत्रिभुज है। इन दोनों क्रान्तिक्षेत्र के ज्याक्षेत्र के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं यदि त्रिज्या में जिनज्या पाते हैं तो रविभुजज्या में क्या इस अनुपात से रवि की इष्टक्रान्तिज्या आती है। $\frac{\text{त्रिज्या. रभुज्या}}{\text{त्रि}}$ = इक्रांज्या, यहां जिनज्या और त्रिज्या में २९ इससे अपवर्त्तन देने से $\frac{४८ \times \text{रभुज्या}}{१०१८}$ = इष्ट क्रांज्या (स्वल्पान्तर से) इसके चाप करने से इष्टक्रान्ति होती है ॥२॥

पुनः क्रान्तिज्यासम्बन्धे आह।

अथवा क्रमजीवाभिः प्रागुक्ताभिर्गुणोऽपमज्या स्यात्।
क्रान्तिकलाभिर्मौवी क्रान्तिकलाः पूर्ववत्साध्याः ॥३॥

वि.भा.—अथवा क्रमजीवाभिः प्रागुक्ताभिः क्रमजीवाभिः (पूर्वकथितक्रमज्याभिः) क्रान्तिकलाया गुणः (ज्या) साध्यः, साऽपमज्या (क्रान्तिज्या) स्यात्

क्रान्तिकलाभिः मौर्वी (ज्या) क्रान्तिज्या स्यात्। पूर्ववत्क्रान्तिकलाः साध्या इति ॥३॥

पुनः क्रान्तिज्या के विषय में कहते हैं।

वि. भा.—अथवा पूर्व कथित क्रमज्या से क्रान्तिकला की ज्या साधन करना वह क्रान्तिज्या होती है। क्रान्तिकला पर से ज्या क्रान्तिज्या होती है। क्रान्तिकला पूर्ववत् साधन करना ॥३॥

पुनः क्रान्तिज्यानयनान्याह ।

लम्बज्येष्टनृसमनरसूर्यैर्गुणिता क्रमादिला मौर्वी ।
अक्षज्यानृतलाग्राऽक्षाभाहृद्वाऽपमज्याः स्युः ॥४॥
द्वादश लम्बज्येष्टनृसमनरनिहताः क्रमेण वाऽग्रज्या ।
अक्षश्रुति त्रिभुजज्या निजधृति तद्धृतिहृदपमज्याः ॥५॥
अग्राक्षश्रुति-निजधृतिविष्कम्भदलैर्हृतः समनरो वा ।
कुज्याऽक्षाभा स्वेष्टनृपलगुणनिघ्नोऽपमज्याः स्युः ॥६॥

वि. भा.—इलामौर्वी (कुज्या) क्रमात् लम्बज्येष्टनृसमनरसूर्यः (लम्बज्येष्टशंकु समशंकु द्वादशभिः) गुणिता, क्रमात् अक्षज्यानृतलाग्राऽक्षाभाहृत् (अक्षज्याशंकतलाग्रापलभा) भक्ता तदाऽपमज्याः (क्रान्तिज्याः) स्युः ॥४॥ अथवा अग्रज्याः (अग्राः) द्वादशलम्बज्येष्टनृसमनरनिहताः क्रमेण अश्रुतित्रिभजज्या निजधृति तद्धृतिहृत् (पलकर्णत्रिज्याहृतितद्धृतिभिर्भक्ताः) तदाऽपमज्याः (क्रान्तिज्याः) स्युः ॥५॥ अथवा समनरः (समशंकुः) कुज्याऽक्षभा स्वेष्टनृपलगुणनिघ्नः (कुज्यापलभास्वेष्टशंकुक्षज्यागुणितः) अग्राक्षश्रुतिनिजधृति विष्कम्भदलैः (अग्रापलकर्णहृतित्रिज्याभिः) हृतः (भक्तः) तदाऽपमज्याः (क्रान्तिज्या) स्युरिति ॥४-६॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथाऽक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{लंज्या} \times \text{कुज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \text{क्रांज्या}$ । $\frac{\text{इशंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{शंकुतल}} = \text{क्रांज्या}$ ।

$\frac{\text{समशंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{क्रांज्या}$ । तथा $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \text{क्रांज्या}$

एतेन प्रथमश्लोक उपपद्यते ।

अथवा

$\frac{१२ \times \text{अग्रा}}{\text{पलकर्ण}} = \text{क्रांज्या}$ । $\frac{\text{लंज्या. अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या}$ । $\frac{\text{इशंकु. अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{क्रांज्या}$ ।

तथा $\frac{\text{समशं} \times \text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \text{क्रांज्या}$. एतेन द्वितीयश्लोक उपपद्यते ।

अथवा

$\frac{\text{कुज्या. समशं}}{\text{अग्रया}}$ = क्रांज्या। $\frac{\text{पलभा. समशं}}{\text{पलक}}$ = क्रांज्या। $\frac{\text{इश} \times \text{समशं}}{\text{हृति}}$ = क्रांज्या।

$\frac{\text{अक्षज्या. समशं}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या. एतावता तृतीयश्लोक उपपद्यते ।।४-६।।

अत्र प्रथम-द्वितीय-तृतीय-श्लोक-शब्देनात्रान्त्यश्लोकत्रयं ग्रहीतव्यमिति ।।

पुनः अनेक प्रकार से क्रान्तिज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा.—कुज्या को क्रमशः लम्बज्या, इष्टशङ्कु, समशङ्कु और द्वादश से गुणकर क्रमशः अक्षज्या, शङ्कुतल अग्रा और पलभा से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है ।।४।। अथवा अग्रा को द्वादश, लम्बज्या इष्टशंकु, और समशंकु से पृथक्-पृथक् गुणाकर क्रमशः पलकर्ण, त्रिज्या, हृति, और तद्धृति से भाग देने से क्रान्तिज्याएं होती हैं ।।५।। अथवा समशंकु को पृथक्-पृथक् कुज्या, पलभा, इष्टशंकु और अक्षज्या से गुणकर क्रमशः अग्रा, पलकर्ण हृति और त्रिज्या से भाग देने से क्रान्तिज्यायें होती हैं ।।४-६।।

उपपत्ति

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{लंज्या. कुज्या}}{\text{अक्षज्या}}$ = क्रांज्या $\frac{\text{इशंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{शकुतल}}$ = क्रांज्या।

$\frac{\text{समशङ्कु} \times \text{कुज्या}}{\text{अग्रा}}$ = क्रांज्या | $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = क्रांज्या.

इससे चौथा श्लोक उपपन्न हुआ।

अथवा

$\frac{१२ \times \text{अग्रा}}{\text{पलकर्ण}}$ = क्रांज्या। $\frac{\text{लंज्या. अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या। $\frac{\text{इशङ्कु} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}}$ = क्रांज्या

$\frac{\text{समशं} \times \text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}}$ = क्रांज्या इससे पांचवां श्लोक उपपन्न हुआ।

अथवा $\frac{\text{कुज्या. समशं}}{\text{अग्रा}}$ = क्रांज्या। $\frac{\text{पलभा. समशं}}{\text{पलक}}$ = क्रांज्या। $\frac{\text{इशं. समशं}}{\text{हृति}}$ = क्रांज्या

$\frac{\text{अक्षज्या. समशं}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या। इससे छठा श्लोक उपपन्न हुआ ।।४-६।।

पुनरपि क्रान्तिज्यानयनान्याह।

अक्षावलम्बघ्नतद्धृति स्त्रिज्याकृति भाजिताऽपमज्या वा।
नृतलघ्नशङ्कुगुणिता तद्धृतिरथवा स्वधृतिकृतिभक्ता ।।७।।

द्वादश पलभा गुणिते पललम्बज्ये समश्रवणभक्ते ।
क्रान्तिज्ये वा कुज्याग्राकृतिविश्लेषमूलं वा ॥८॥

वि. भा.—अथवा अक्षावलम्बघ्नतद्धृतिः (अक्षज्यालम्बज्यागुणित-तद्धृतिः) त्रिज्याकृतिभाजिता (त्रिज्यावर्गभक्ता) अपमज्या (क्रान्तिज्या) भवेत् अथवा तद्धृतिः नृतलघ्नशङ्कुगुणिता (शङ्कुतलगुणितशङ्कुना गुणिता) स्वधृतिकृतिभक्ता (हृतिवर्गविभाजिता) क्रान्तिज्या भवेत् ॥ अथवा पललम्बज्ये (अक्षज्या लम्बज्ये) पृथक् द्वादशपलभागुणिते समश्रवणभक्ते (समकर्णभक्ते) तदा क्रान्तिज्ये भवतः । वा कुज्याऽग्राविश्लेषमूलं (कुज्याऽग्रावर्गान्तरमूलं) क्रान्तिज्या भवेदिति ॥७-८॥

अत्रोपपत्तिः

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}} = \text{अग्रा}$ ततः $\frac{\text{लंज्या} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या}$

अत्राग्रास्वरूपस्योत्थापनात् $\frac{\text{अज्या. लंज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \text{क्रांज्या}$ । अथवा

$\frac{\text{शङ्कुतल} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}} = \text{अग्रा}$ । ततः $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}} = \text{क्रांज्या}$ अत्राग्रऽस्वरूप-स्योत्थापनेन $\frac{\text{शङ्कुतल} \times \text{शङ्कु} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}^2} = \text{क्रांज्या}$ । अथवा

द्वादश पलभागुणिते इत्यादिश्लोकानुसारेण $\frac{\text{अज्या} \times १२}{\text{समकर्ण}} = \frac{\text{अज्या} \times १२ \times \text{सशं}}{\text{त्रि}\cdot १२}$

$= \frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या}$ ।

तथा $\frac{\text{लंज्या} \times \text{पलभा}}{\text{समकर्ण}} = \frac{\text{लंज्या} \times \text{पभा}}{\frac{\text{त्रि}\cdot १२}{\text{सशं}}} = \frac{\text{लंज्या. पभा. सशं}}{\text{त्रि}\cdot १२} = \frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या}$

अथवा अग्राचापक्रान्तिचापचरखण्डैरुत्पन्नत्रिभुजज्याक्षेत्रे

$\sqrt{\text{अग्रा}^2 - \text{कुज्या}^2} = \text{क्रान्तिज्या}$ । एतावताऽऽचार्योक्तं सर्वमुपपन्नम् ॥७-८॥

अब पुनः अनेक प्रकार से क्रान्तिज्यानयन करते हैं ।

हि. भा.—अथवा अक्षज्या लम्बजा गुणित तद्धृति में त्रिज्यावर्ग से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है । अथवा शङ्कुतल और शङ्कु से गुणित तद्धृति (हृति) वर्ग से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है ।

अथवा अक्षज्या और लम्बज्या को द्वादश और पलभा से गुणकर समकर्ण से भाग देने से दो तरह की क्रान्तिज्या होती है । वा अग्रा और कुज्या के वर्गान्तर मूल क्रान्तिज्या होती है ॥ ७-८ ॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{अज्या.तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा ∴ $\frac{\text{लंज्या.अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या. इससे अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या.लंज्या.तद्धृति}}{\text{त्रि}^2}$ = क्रांज्या । अथवा

$\frac{\text{शङ्कुतल.तद्धृति}}{\text{हृति}}$ = अग्रा ∴ $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}}$ = क्रांज्या इसमें अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{शङ्कु} \times \text{शङ्कुतल} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}^2}$ = क्रांज्या । अथवा

'द्वादशपलभा गुणिते' इत्यादि श्लोक के अनुसार

$$\frac{\text{अज्या} \times १२}{\text{समकर्ण}} = \frac{\text{अज्या.}१२}{\frac{\text{त्रि.}१२}{\text{समशङ्कु}}} = \frac{\text{अज्या} \times \text{समशङ्कु}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या ।}$$

$$\frac{\text{लंज्या} \times \text{पलभा}}{\text{समक}} = \frac{\text{लंज्या} \times \text{पलभा}}{\frac{\text{त्रि.}१२}{\text{समशं}}} = \frac{\text{लंज्या.पभा.सशं}}{\text{त्रि.}१२} = \frac{\text{अज्या.मशं}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या ।}$$

अथवा अग्राचाप क्रान्तिचाप और चरखण्ड चापों से उत्पन्न त्रिभुज के ज्याक्षेत्र में $\sqrt{\text{अग्रा}^2 - \text{कुज्या}^2}$ = क्रांज्या । इनसे आचार्योक्त सब उपपन्न हुए ।।७-८ ।।

पुनस्तदानयनमाह ।

पलकर्णहृतो दिनदलनरोऽर्कहृत् फलकुगुणप्रतिविशेषः ।
याम्योत्तरयोस्तत्त्रिगुणकृतिवियुतिमूलमपमज्या ।।९।।

वि. भा.—दिनदलनरः (दिनार्धशङ्कुः) पलकर्णहतः (पलकर्णगुणितः) अर्कहृत् फलकुगुणप्रतिविशेषः (द्वादशभक्तेन यत्फलं स कुज्याप्रतिविशेषोऽर्थाद् द्युज्या) याम्योत्तरयोः (दक्षिणोत्तरयोः भवत्यर्थाद्द्युज्यायाः स्वरूपं दक्षिणोत्तर-रूपं भवति, तत्त्रिगुणकृतिवियुतिमूलं (द्युज्यात्रिज्ययोर्वर्गान्तरमूलं) अपमज्या (क्रान्तिज्या) भवेदिति ।। ९ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{पलक} \times \text{दि}\frac{१}{२}\text{शं}}{१२}$ = दि $\frac{१}{२}$ हृतिः = द्युज्या

ततस्त्रिज्याक्रान्तिज्याद्युज्याभिरुत्पन्नजात्यत्रिभुजे $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्युज्या}^2}$ = क्रान्तिज्या ।

एतावतोपपन्नमाचार्योक्तमिति ।। ९ ।।

पुनः क्रान्तिज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—मध्यान्हशङ्कु को पलकर्ण से गुणकर बारह से भाग देने से याम्योत्तराकार द्युज्या होती है। उसके और त्रिज्यावर्ग के अन्तर करके मूल लेने से क्रान्तिज्या होती है ॥ ९ ॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पलक} \times \text{दि}\frac{३}{२}\text{शं}}{१२}$ = दि $\frac{३}{२}$ हृति = द्युज्या, तब त्रिज्या, क्रान्तिज्या और द्युज्या से उत्पन्न जात्यत्रिभुज में $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्युज्या}^2}$ = क्रांज्या इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥ ९ ॥

पुनः क्रान्तिज्यानयनान्याह ।

द्युज्यात्रिज्याकृत्योर्विशेषमूलं त्वपाक्रमज्या वा ।
त्रिज्या द्युज्यायोगान्निजान्तरघ्नात्पदं वा स्यात् ॥१०॥
द्युज्यार्कघातगुणिता चरार्धजीवाऽक्षभा त्रिशिञ्जिन्योः ।
घातेन हृता लब्धं स्वेष्टापक्रान्तिजीवा वा ॥११॥

वि. भा.—वा द्युज्यात्रिज्याकृत्योर्विशेषमूलं (द्युज्यात्रिज्ययोर्वर्गान्तरमूलं) अपक्रमज्या (क्रान्तिज्या) भवेत् । वा त्रिज्या द्युज्या योगात् निजान्तरघ्नात्) (त्रिज्याद्युज्यान्तरगुणितात्) पदं (मूलं) क्रान्तिज्या स्यात् । चरार्धजीवा (चरज्या) द्युज्यार्कघातगुणिता (द्युज्याद्वादशघातगुणिता) अक्षभा त्रिशिञ्जिन्योर्घातेन (पलभा त्रिज्ययोर्वधेन) हृता (भक्ता) लब्धं स्वेष्टापक्रान्तिजीवा (स्वेष्टक्रान्तिज्या) भवेदिति ॥१०-११॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2}$ = क्रांज्या वर्गान्तरस्य योगान्तरघातसमत्वात्

$$\sqrt{(\text{त्रि} + \text{द्यु})(\text{त्रि} - \text{द्यु})} = \text{क्रांज्या} । \text{ अथवा } \frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \text{क्रांज्या} ।$$

परन्तु $\frac{\text{चरज्या.द्यु}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या अतः क्रान्तिज्यास्वरूपे कुज्योत्थापनात्

$\frac{१२ \times \text{चरज्या.द्यु}}{\text{त्रि.पलभा}}$ = क्रांज्या, एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नं सर्वमिति ॥१०-११॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे क्रान्तिज्यानयनविधिः
तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अब पुन: क्रान्तिज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—अथवा द्युज्या और त्रिज्या के वर्गान्तर मूल क्रांतिज्या होती है। अथवा त्रिज्या और द्युज्या के योग को अन्तर से गुणकर मूल लेने से क्रान्तिज्या होती हैं। अथवा चरज्या को द्युज्या और द्वादश के घात से गुणकर पलभा और त्रिज्या के घात से भाग देने से क्रान्तिज्या होती है ।। १०-११ ।।

उपपत्ति ।

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2}$ = क्रांज्या, वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिये

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{द्यु}^2 = (\text{त्रि} + \text{द्यु})(\text{त्रि} - \text{द्यु})}$ = क्रांज्या । अथवा $\frac{१२ \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = क्रांज्या

परन्तु $\frac{\text{चरज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या अत: क्रान्तिज्या के स्वरूप में कुज्या को उत्थापन देने से

$\frac{१२ \times \text{चरज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि.पलभा}}$ = क्रांज्या, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।१०-११।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में क्रान्तिज्यानयनविधि नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।।



चतुर्थोऽध्यायः

अथ द्युज्यानयनविधिः

तत्रादौ द्युज्यानयनमाह ।

क्रान्तिज्यावर्गोनात्त्रिज्यावर्गात्पदं द्युजीवा स्यात् ।
त्रिज्या क्रान्तिज्यान्तरसमासघातस्य मूलं वा ॥१॥

वि भा.—क्रान्तिज्यावर्गोनात् त्रिज्यावर्गात् क्रान्तिज्यावर्गरहिता त्रिज्यावर्गात्) पदं (मूलं) द्युजीवा (द्युज्या) स्यात् । वा त्रिज्याक्रांतिज्यान्तरसमासघातस्य (त्रिज्याक्रान्तिज्ययोर्योगान्तरवधस्य) मूलं द्युज्या स्यादिति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

त्रिज्याक्रान्तिज्याद्युज्याभिरुत्पन्नजात्यत्रिभुजे $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{क्रांज्या}^2} = \text{द्यु}$, वर्गान्तरयोगान्तरघातसमत्वात् $\sqrt{(\text{त्रि} + \text{क्राज्या})(\text{त्रि} - \text{क्रांज्या})} = \text{द्यु}$
$\therefore$ सिद्धम् ॥१॥

अब द्युज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—क्रान्तिज्या वर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेने से द्युज्या होती है । अथवा त्रिज्या और क्रान्तिज्या के योगान्तर घात के मूल लेने से द्युज्या होती है ॥१॥

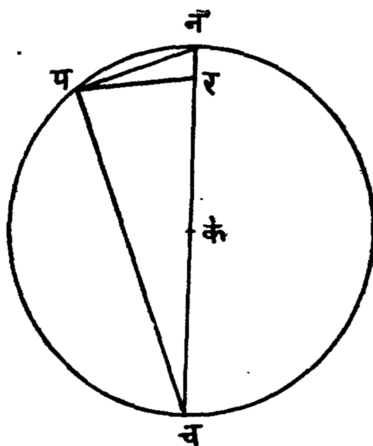
उपपत्ति ।

त्रिज्या क्रान्तिज्या और द्युज्या से उत्पन्न जात्य त्रिभुज में $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{क्रांज्या}^2} = \text{द्यु}$, परन्तु वर्गान्तर योगान्तर घात के बराबर होता है इसलिए $\sqrt{(\text{त्रि} + \text{क्रांज्या})(\text{त्रि} - \text{क्रांज्या})} = \text{द्यु}$ $\therefore$ सिद्ध हुआ ॥१॥

पुनस्तदानयनमाह ।

व्यस्त क्रान्तिज्याहृत्क्रान्तिगुणकृतिः फलं त्रिभज्योनम् ।
द्युज्या वा व्यस्तापमजीवा त्रिज्यान्तरं वा स्यात् ॥२॥

वि. भा.—क्रान्तिगुणकृतिः (क्रान्तिज्यावर्गः) व्यस्तक्रान्तिज्याहृत् (क्रान्त्युत्क्रमज्यया भक्ता) फलं त्रिभज्योनं (त्रिभज्यया हीनं) वा द्युज्या भवेत् । वा व्यस्तापमजीवा त्रिज्यान्तरं (क्रान्त्युत्क्रमज्या त्रिज्ययोरन्तरं) द्युज्या स्यादिति ॥२॥



चित्र नं. १२

अत्रोपपत्तिः ।

के = वृत्तकेन्द्रम् । नपचापम् = क्रान्तिचापम् । पर = क्रान्तिज्या । रन = क्रान्त्युत्क्रमज्या । पन रेखा = क्रान्तिपूर्णज्या । केच = केन = त्रिज्या । केर = क्रान्तिकोटिज्या = द्यु । <चपन = ९० तदा पचर, परन त्रिभुजयोः साजात्यादनुपातः $\frac{\text{पर}\times\text{पर}}{\text{रन}}=\frac{\text{पर}^2}{\text{रन}}$

$=\frac{\text{क्रान्तिज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}=\text{रच}=\text{त्रि}+\text{द्यु}$

अतः $\frac{\text{क्रांज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}-\text{त्रि}=\text{द्यु}$ ।

तथा त्रि — क्रान्त्युत्क्रमज्या = द्यु । एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥२॥

पुनः द्युज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—क्रान्तिज्यावर्ग में क्रान्ति की उत्क्रमज्या से भाग देकर जो फल हो उसमें त्रिज्या घटाने से द्युज्या होती है। वा क्रान्ति की उत्क्रमज्या और त्रिज्या के अन्तर द्युज्या होती है।

उपपत्ति ।

उपरिलिखित चित्र देखिए। के = वृत्तकेन्द्र । नचचाप = क्रान्तिचाप, पर = क्रान्तिज्या रत = क्रान्ति की उत्क्रमज्या । पनरेखा = क्रान्तिपूर्णज्या । केच = केन = त्रिज्या। केर = क्रान्तिकोटिज्या = अज्या । <चपन = ९० तब पचर, परन दोनों त्रिभुजों के सजातीय होने से अनुपात करते हैं $\frac{\text{पर}\times\text{पर}}{\text{रन}}=\frac{\text{पर}^2}{\text{रन}}=\frac{\text{क्रान्तिज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}$

$=\text{रच}=\text{त्रि}+\text{द्यु}$ ।

अतः $\frac{\text{क्रांज्या}^2}{\text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}-\text{त्रि}=\text{द्यु}$ । तथा त्रि — क्रान्त्युत्क्रमज्या = द्यु ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

पुनस्तदानयनमाह ।

क्रान्ति त्रिभान्तरज्या द्युज्या वा चरदलजीवया विहृता ।
त्रिज्या क्षितिजीवाघ्नाऽहोरात्रार्धजीवा वा ॥३॥

वि.भा.—वा क्रान्तित्रिभान्तरज्या (क्रान्तिनवत्यंशयोरन्तरक्रान्तिकोटिज्या) द्युज्या भवेत् । वा क्षितिजीवाघ्ना त्रिज्या (कुज्यागुणितत्रिज्या) चरदलजीवया विहृता (चरज्यया भक्ता) तदाऽहोरात्रार्धजीवा (द्युज्या) भवेदिति ॥३॥

अत्रोपपत्तिः ।

ज्या (९०—क्रान्ति) = क्रान्तिकोटिज्या = द्यु ज्या । अथवा क्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्तं यत्र नाड़ीवृत्ते लगति तस्मात्पूर्वस्वस्तिकं यावन्नाड़ीवृत्ते चरचापम् । एतावता त्रिभुजद्वयं जातम् । क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्ते ध्रुवान्नाड़ीवृत्तं यावन्नवत्यंशः प्रथमो भुजः । ध्रुवात्पूर्वस्वस्तिकं यावदुन्मण्डले नवत्यंशो, द्वितीयो भुजः । नाड़ीवृत्ते चरचापं तृतीयो भुज इत्येकं त्रिभुजम् । ध्रुवात्क्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातं यावद् ध्रुवप्रोतवृत्ते द्युज्याचापमेको भुजः । ध्रुवादुन्मण्डलाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातं यावदुन्मण्डले द्यु ज्याचापं द्वितीयो भुजः । अहोरात्रवृत्ते तृतीयो भुजः । एतयोस्त्रिभुजयोर्ज्याक्षेत्रसाजात्यादनुपातः

$\frac{\text{चरज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}} = \text{कुज्या}$ अतः $\frac{\text{कुज्या}.\ \text{त्रि}}{\text{चरज्या}} = \text{द्यु}$ । अत उपपन्नम् ॥३॥

पुनः द्यु ज्या के आनयन करते हैं ।

हि. भा.—वा क्रान्ति और नवत्यंश के अन्तर की ज्या द्युज्या होती है । अथवा त्रिज्या को कुज्या से गुणकर चरज्या से भाग देन से द्यु ज्या होती है ।

उपपत्ति

ज्या (९०—क्रान्ति) = क्रान्ति कोटिज्या = द्यु । अथवा क्षितिजवृत्त और अहोरात्रवृत्त के सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में जहां लगता है वहां से पूर्वस्वस्तिक तक नाड़ीवृत्त में चर चाप है । अब दो त्रिभुज उत्पन्न हुए, क्षित्रिजाहोरात्रवृत्त सम्पातगत ध्रुव प्रोतवृत्त में ध्रुव से नाड़ीवृत्त पर्यन्त नवत्यंश प्रथम भुज । ध्रुव से पूर्वस्वस्तिक पर्यन्त उन्मण्डल में नवत्यंश द्वितीय भुजः । नाड़ीवृत्त में चार चाप तृतीय भुजः । यह प्रथम त्रिभुज है । ध्रुव से क्षितिजाहोरात्रवृत्त के सम्पात पर्यन्त ध्रुव प्रोतवृत्त में द्युज्याचाप एक भुज । ध्रुव से उन्मण्डलाहोरात्रवृत्त के सम्पात तक उन्मण्डल में द्यु ज्याचाप द्वितीय भुज, अहोरात्रवृत्त में तृतीय भुज, यह द्वितीय त्रिभुज है, दोनों त्रिभुजों के ज्याक्षेत्र सजातीय हैं इसलिए अनुपात करते हैं

$\frac{\text{चरज्या}.\ \text{द्यु}}{\text{त्रि}} = \text{कुज्या} \therefore \frac{\text{कुज्या}.\ \text{त्रि}}{\text{चरज्या}} = \text{द्यु}$, अतः उपपन्न हुआ ॥३॥

पुनस्तदानयनमाह ।

धृतिगुणिता त्रिभजीवा हृताऽन्त्यया वा द्युमौर्विका भवति ।
शङ्कु त्रिज्याऽक्षश्रुतिवधाद्दिनगुणोऽर्काऽन्त्ययाप्तं वा ॥४॥

वि. भा—त्रिभजीवा (त्रिज्या) धृतिगुणिता (हृतिगुणिता) अन्त्यया हृता (भक्ता) वा द्युमौर्विका (द्युज्या) भवति । वा शङ्कुत्रिज्याऽक्षश्रुतिवधात् (शङ्कुत्रिज्यापलकर्णघातात्) अर्काऽन्त्ययाप्तं (द्वादशगुणिताऽन्त्यभक्तं फलं) वा द्यु ज्या भवतीति ॥४॥

अत्रोपपत्तिः .

क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं यत्र नाड़ीवृत्ते लगति तद्बिन्दुतः पूर्वापरसूत्रस्य समान्तरसूत्रं कार्यं तस्य नाम चराग्रद्वयबद्ध सूत्रम्। एतदुपरि ग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तयोः सम्पाताल्लम्बः कार्यः सैवेष्टान्त्या। भूकेन्द्राद् ग्रहोपरिध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पाते रेखा नेया सा त्रिज्यैको भुजः। इष्टान्त्या द्वितीयो भुजः। भूकेन्द्रादिष्टान्त्या मूलं यावत्तृतीयो भुजः इति भुजत्रयैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम्। तथाऽऽहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद् ग्रहगता रेखा द्युज्यैको भुजः। ग्रहात्स्वोदयास्त-सूत्रोपरि कृतो लम्बो हृतिसंज्ञको द्वितीयो भुजः। अहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्धृतिमूलं यावत्तृतीयो भुजः। इति भुजत्रयैरुत्पन्नं द्वितीयं त्रिभुजम्। एतयोस्त्रिभुजयोः साजात्यं भवत्यतोऽनुपातः $\frac{\text{इहृति. त्रिज्या}}{\text{द्यु}}$ = इअन्त्या ∴ $\frac{\text{इहृति. त्रि}}{\text{इअन्त्या}}$ = द्यु।

आचार्येणेष्टास्थानेऽन्त्यैव कथ्यते। अथ $\frac{\text{पलकर्ण} \times \text{शङ्कु}}{१२}$ = हृति अतो द्युज्यास्वरूपे हृतेरुत्थापनात्।

$$\frac{\text{पलक. शङ्कु. त्रि}}{१२ \times \text{अन्त्या}} = \text{द्यु}$$, अत उपपन्नम् ॥४॥

पुनः द्युज्या के आनयन कहते हैं।

हि. भा.—त्रिज्या को हृति से गुणकर अन्त्या से भाग देने से द्युज्या होती है। वा शङ्कु त्रिज्या और पलकर्ण के घात में द्वादश गुणित अन्त्या से भाग देने से द्युज्या होती है ॥४॥

उपपत्ति

क्षितिजाहोरात्रवृत्त के सम्पात के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त करने से वह (ध्रुवप्रोतवृत्त) नाड़ीवृत्त में जहां लगता है उस बिन्दु से पूर्वापर सूत्र के समानान्तर सूत्र कर देना उसके नाम चराग्रद्वयबद्ध सूत्र है। उसके ऊपर ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात से जो लम्ब होता है उसके नाम इष्टान्त्या है। भूकेन्द्र से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त और नाड़ीवृत्त के सम्पात में रेखा लाने से वह त्रिज्या एक भुज। इष्टान्त्या द्वितीयभुज। भूकेन्द्र से इष्टान्त्या मूल तक तृतीय भुज, इन तीनों भुजों से एक त्रिभुज हुआ। अहोरात्रवृत्त के गर्भकेन्द्र से ग्रहगत रेखा द्युज्या एकभुज, ग्रह से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब इष्टहृति द्वितीयभुज। अहोरात्रवृत्त के गर्भकेन्द्र से इष्टहृति मूल तक रेखा तृतीयभुजः, इन तीनों भुजों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज हुआ। ये दोनों त्रिभुज सजातीय हैं इसलिए अनुपात करते हैं।

$\frac{\text{इहृति. त्रि.}}{\text{द्यु}}$ = इअन्त्या ∴ $\frac{\text{इहृति. त्रि}}{\text{इअन्त्या}}$ = द्यु = $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}$, आचार्य इष्टान्त्या को अन्त्या तथा इष्ट हृति को हृति कहते हैं। $\frac{\text{पलक} \times \text{शङ्कु}}{१२}$ = हृति अतः द्युज्या के स्वरूप

में हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{पलक. शङ्कु. त्रि}}{\text{१२} \times \text{अन्त्या}}$ = द्यु । अतः उपपन्न हो गया ॥४॥

पुनस्तदानयनमाह ।

त्रिज्यानृतलाऽश्रुतिघातात्पलभाहृतान्त्ययाप्तं वा ।
अक्षज्याऽग्राघाते चरगुणभक्तेऽथवा द्युज्या ॥५॥

वि. भा.—वा त्रिज्यानृतलाऽक्षश्रुतिघातात् (त्रिज्याशङ्कुतलपलकर्णघातात्) पलभाहृतान्त्ययाप्तं (पलभागुणितान्त्यया भक्तं फलं) द्युज्या भवेत्। अथवा अक्षज्याऽग्राघाते, चरगुणभक्ते (चरज्ययाभक्ते) द्युज्या भवेदिति ॥५॥

अत्रोपपत्तिः

अथ पूर्वानीत द्युज्यास्वरूपम् = $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ । परन्तु $\frac{\text{पलक} \times \text{शङ्कुतल}}{\text{पलभा}}$ = हृति अतो द्युज्यास्वरूपे हृतेरुत्थापनात् $\frac{\text{पलक. शंतल. त्रि}}{\text{अन्त्या. पलभा}}$ = द्युज्या ।

तथा $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु । परं $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या ∴ कुज्या. त्रि = अग्रा. अक्षज्या

ततः $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{चरज्या}} = \frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु ∴ सिद्धम् ॥५॥

पुनः द्युज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—अथवा त्रिज्या शङ्कुतल और पलकर्ण इनके घात में पलभा गुणित अन्त्या से भाग देने से द्युज्या होती है। अथवा अक्षज्या और अग्रा के घात में चरज्या से भाग दे सेने द्युज्या होती है ॥५॥

उपपत्ति

पूर्वानीत द्युज्या के स्वरूप = $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ । परन्तु $\frac{\text{पलक. शंतल}}{\text{पलभा}}$ = हृति इससे द्युज्या स्वरूप में हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{पलक. शंतल. त्रि}}{\text{अन्त्या} \times \text{पलभा}}$ = द्युज्या । अथवा

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु । परन्तु $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{अग्रा}}$ = अक्षज्या ∴ कुज्या. त्रि = अक्षज्या. अग्रा

इसलिए $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{चरज्या}} = \frac{\text{अक्षज्या. अग्रा}}{\text{चरज्या}}$ = द्युज्या ∴ सिद्ध हुआ ॥५॥

पुनस्तदानयनद्वयमाह ।

क्रमगुणपलभा त्रिज्या घातोऽर्कगुणचरजीवयाप्तो वा ।
पलभाऽक्षगुणसमनरवधोऽर्कगुणचरभक्तोना ॥६॥

वि. भा.—वा क्रमगुणपलभा त्रिज्याघातः (क्रान्तिज्या पलभा त्रिज्याघातः) अर्कचरजीवयाप्तः (द्वादशगुणितचरज्यया भक्तः) फलं द्युज्या भवेत् । अथवा पलभाऽक्षगुणसमनरवधः (पलभाऽक्षज्यासमशङ्कुघातः) अर्कगुणचरभक्तः (द्वादशगुणितचरज्यया भक्तः) द्युज्या भवेदिति ॥६॥

अत्रोपपत्तिः

अथ $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्यु । परन्तु $\frac{\text{पलभा} \times \text{क्रांज्या}}{१२}$ = कुज्या अतो द्युज्यास्वरूपे कुज्यया उत्थापनात् $\frac{\text{पभा.क्रांज्या. त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२}$ = द्युज्या एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ।

अथ $\frac{\text{अक्षज्या} \times \text{समशं}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या ∴ अक्षज्या. समशं = त्रि. क्रांज्या

ततः $\frac{\text{पलभा. क्रांज्या.त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२}$ = द्यु = $\frac{\text{पलभा.अक्षज्या.समशं}}{\text{चज्या} \times १२}$ एतेन द्वितीयप्रकार उपपद्यते ॥६॥

अब पुनः द्युज्या के आनयन दो प्रकार से कहते हैं ।

हि. भा.—वा क्रान्तिज्या पलभा और त्रिज्या के घात में द्वादशगुणित चरज्या से भाग देने से द्युज्या होती है । अथवा पलभा—अक्षज्या और समशंकु इनके घात में द्वादशगुणित चरज्या से भाग देने से द्युज्या होती है ॥६॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{कुज्या· त्रि}}{\text{चरज्या}}$ = द्युज्या । परन्तु $\frac{\text{पलभा. क्रांज्या}}{१२}$ = कुज्या इससे द्युज्या स्वरूप में कुज्या को उत्थापन देने से $\frac{\text{पलभा. क्रांज्या. त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२}$ = द्युज्या इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ ।

$\frac{\text{अक्षज्या.समशं}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या ∴ अक्षज्या. समशं = त्रि. क्रांज्या

तब $\frac{\text{पलभा. क्रांज्या.त्रि}}{\text{चरज्या} \times १२} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{समशं.पलभा}}{\text{चज्या} \times १२}$ = द्युज्या. इससे द्वितीय प्रकार उपपन्न होता है ॥६॥

पुनस्तदानयनान्याह।

पलभाऽक्षस्तद्धृतिवधोऽक्षकर्णचरगुणहृद् वा।
द्युदलहृतिः कुज्योना सौम्ये याम्ये युता द्युज्ये ॥६॥

वि. भा.—वा पलभाक्षतद्धृतिवधः (पलभाऽक्षज्या तद्धृतिघातः) अक्षकर्णचरगुणहृत् (पलकर्णचरज्याभ्यां भक्तः) तदा द्युज्या भवेत्। अथवा द्युदलहृतिः (मध्यान्हहृतिः) सौम्ये (उत्तरगोले) कुज्योना (कुज्यया रहिता) याम्ये (दक्षिणगोले) युता तदा द्युज्ये भवतः ॥७॥

अत्रोपपत्तिः

पूर्वानीत द्युज्यास्वरूपम् $= \frac{\text{अक्षज्या. समशं. पलभा}}{१२ \times \text{चरज्या}} =$

$\frac{\text{अक्षज्या. समशं. पलभा. पलक}}{१२ \times \text{चरज्या} \times \text{पकर्ण}} = \frac{\text{अक्षज्या. तद्धृति. पलभा}}{\text{चरज्या. पलक}} =$ द्युज्या। एतेनोपपद्यते प्रथम प्रकारः।

अथवोत्तरदक्षिणगोलक्रमेण मध्यहृति ∓ कज्या = द्युज्या। अतः सिद्धम् ॥६॥

इतिवटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे द्युज्यानयनविधिश्चतुर्थोऽध्यायः॥

पुनः द्युज्या का आनयन कहते हैं।

हि. भा.—वा पलभा अक्षज्या और तद्धृति के घात को पलकर्ण और चरज्या के घात से भाग देने से द्युज्या होती है। अथवा मध्यान्हहृति में उत्तरगोल में कुज्या को घटाने से और दक्षिणगोल में जोड़ने से द्युज्या होती है ॥६॥

उपपत्ति

पूर्वानीत द्युज्या के स्वरूप $= \frac{\text{अज्या. समशं पलभा}}{१२ \times \text{चरज्या}} \times \frac{\text{अज्या. समशं. पलभा. पलक}}{१२ \times \text{चरज्या} \times \text{पलक}}$

$\frac{\text{अज्या. तद्धृति.पलभा}}{\text{चरज्या. पलक}} =$ द्युज्या; इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ।

अथवा उत्तर और दक्षिण गोलक्रम मे मध्यहृति ∓ कुज्या = द्युज्या इससे द्वितीय प्रकार सिद्ध हुआ ॥७॥

इति वटेश्वर सिद्धांत में त्रिप्रश्नाधिकार में द्युज्यानयनविधि नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ॥



पञ्चमोऽध्यायः

अथ कुज्यानयनविधिः ।

तत्रादौ कुज्यानयनमाह ।

क्रान्तिज्याऽक्षज्याघ्नी लम्बकजीवा विभाजिता कुज्या।
विषुवच्छाया गुणिता क्रान्तज्याऽर्कोद्धृता वा स्यात् ॥१॥

वि. भा.—क्रान्तिज्या अक्षज्याघ्नी (अक्षज्यागुणिता) लम्बकजीवा विभाजिता (लम्बज्याभक्ता) तदा कुज्या भवेत् । अथवा क्रान्तिज्या विषुवच्छाया-गुणिता (पलभया गुणिता) अर्कोद्धृता (द्वादशभक्ता) कुज्या भवेदिति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अक्षज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}=\text{कुज्या}$, $\frac{\text{तथा अक्षज्या}}{\text{लंज्या}}=\frac{\text{पलभा}}{१२}$

अतः $\frac{\text{पलभा.क्रांज्या}}{१२}=\text{कुज्या}$, अत उपपन्नमिति ॥ १ ॥

अब कुज्या के आनयन दो प्रकार से कहते हैं ।

हि. भा.—क्रांतिज्या को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से कुज्या होता है । अथवा क्रान्तिज्या को पलभा से गुणकर द्वादश से भाग देने से कुज्या होती है ॥१॥

उपपत्ति ।

अनुपात से $\frac{\text{अक्षज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}=\text{कुज्या}$ । तथा $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लंज्या}}=\frac{\text{पलभा}}{१२}$

अतः $\frac{\text{पलभा.क्रांज्या}}{१२}=\text{कुज्या}$ । इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१॥

पुनः कुज्यानयनं प्रकारद्वयेनाह ।

क्रान्तिज्याऽग्राघाते समनरभक्तेऽथवा महीजीवा ।
वाऽग्रा विषुवद्भाघ्नी पलकर्णविभाजिता कुज्या ॥२॥

वि. भा.—अथवा क्रान्तिज्याऽग्राघाते समनरभक्ते (समशङ्कुभक्ते) तदा महीजीवा (कुज्या) भवेत् । वा अग्रा विषुवद्भाघ्नी (पलभा गुणिता) पलकर्ण-विभाजिता (पलकर्णभक्ता) तदा कुज्या स्यात् ॥२॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि समशङ्कुकोटावग्रा भुजो लभ्यते तदा क्रान्तिज्याकोटौ किमित्यनुपातेन समागता कुज्या $= \frac{\text{अग्रा.क्रांज्या}}{\text{समशं}}$, अथवा पलकर्णे पलभा भुजो लभ्यते तदाऽग्राकर्णे किमित्यागता कुज्या $= \frac{\text{पलभा.अग्रा}}{\text{पलकर्ण}}$, अत उपपन्नम् ॥२॥

पुनः दो प्रकार से कुज्या का आनयन कहते हैं ।

हि. भा.—अथवा क्रान्तिज्या और अग्रा क घात में समशङ्कु से भाग देने से कुज्या होती है । अथवा अग्रा को पलभा से गुणकर पलकर्ण से भाग देने से कुज्या होती है ॥२॥

उपपत्ति ।

यदि समशङ्कु कोटि में अग्रा भुज पाते हैं तो क्रान्तिज्या कोटि में क्या इस अनुपात से कुज्या आती है $\frac{\text{अग्रा.क्रांज्या}}{\text{समशं}} = \text{कुज्या}$ । अथवा पलकर्ण में पलभा भुज पाते हैं तो अग्रा में आ जायगी कुज्या $= \frac{\text{पलभा.अग्रा}}{\text{पलक}}$, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

पुनः कुज्यानयनं प्रकारद्वयेनाह ।

अग्राकृतिविभक्ता तद्धृत्या वा फलं कुजीवा स्यात् ।
नृतलाभ्यस्ता वाऽग्रा स्वधृतिविभक्ता महीजीवा ॥३॥

वि. भा.—अग्राकृतिः (अग्रावर्गः) तद्धृत्या विभक्ता फलं कुजीवा (कुज्या) स्यात् । वा अग्रा नृतलाभ्यस्ता (शंकुतलगुणिता) स्वधृतिविभक्ता (हृत्या भक्ता) तदा महीजीवा (कुज्या) भवेदिति ।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि तद्धृतिकर्णेऽग्राभुजो लभ्यते तदाऽग्राकर्णे किमित्यागता कुज्या $= \frac{\text{अग्रा} \times \text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{अग्रा}^2}{\text{तद्धृति}}$ अथवा हृतिकर्णे शंकुतलं भुजो लभ्यते तदाऽग्राकर्णे किमिति समागता कुज्या $= \frac{\text{शंकुतल} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}}$ एतेनोपपन्नम् ॥३॥

पुन: दो प्रकार से कुज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—वा अग्रा वर्ग को तद्धृति से भाग देने से कुज्या होती हैं । अथवा अग्रा को शंकुतल से गुणकर हृति से भाग देने से कुज्या होती है ।।३।।

उपपत्ति ।

यदि तद्धृति कर्ण में अग्राभुज पाते हैं तो अग्राकर्ण में क्या इस अनुपात से कुज्या आती है $\frac{\text{अग्रा.अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{अग्रा}^2}{\text{तद्धृति}} = $ कुज्या । अथवा यदि हृतिकर्ण में शंकुतल भुज पाते हैं तो अग्राकर्ण में क्या इस अनुपात से कुज्या आती है $\frac{\text{शंतल.अग्रा}}{\text{हृति}} = $ कुज्या ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।३।।

पुनः कुज्यानयनं प्रकारद्वयेनाह ।

लम्बत्रिभगुणवधलब्धं समनुर्वाक्षगुणवर्गघाताद्यत् ।
त्रिज्यार्कघातलब्धं समनृपलभाऽक्षगुणघाततो वा स्यात् ।।४।।
वाऽक्षश्रुति रविघातात्समनृपलभाकृतिघातत: फलं कुज्या ।
तद्धृति लम्बगुणघातहृतोऽक्षगुणाग्रा समनृघातो वा ।।५।।

वि. भा.—वा समनुः (समशंको:) अक्षगुणवर्गघातात् (समशंकक्षज्यावर्गघातात्) लम्बत्रिभगुणवधलब्धं (लम्बज्यात्रिज्ययोर्घातभक्ताद्यत्फलं) सा कुज्या भवेत् । वा समनृपलभाक्षगुणघातत: (समशंकुपलभाऽक्षज्यावधात्) त्रिज्यार्कघातलब्धं (त्रिज्या द्वादशघातभक्ताद्यत्फलं) सा कुज्या भवेत् ।।४।।

वा समनृपलभाकृतिघातत: (समशंकुपलभावर्गवधात्) अक्षश्रुतिरविघातात् (पलकर्णद्वादशघातभक्तात्) फलं कुज्या स्यात् । वा अक्षगुणाग्रा समनृघात: (अक्षज्याग्रासनशंकुवध:) तद्धृतिलम्बगुणघात हृत: (तद्धृतिलम्बज्याघातभक्त:) तदा कुज्या भवेदिति ।।४-५।।

अत्रोपपत्ति: ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = $ कुज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या.समशं}}{\text{त्रि}} = $ क्रांज्या

कुज्यास्वरूपे क्रान्तिज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{अज्या.अज्या.सशं}}{\text{लंज्या.त्रि}} =$

$\frac{\text{अज्या}^2\text{.सशं}}{\text{लंज्या.त्रि}} = $ कुज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ तत उत्थापनेन

$\frac{\text{अज्या.सशं.पभा}}{१२\text{.त्रि}} = $ कुज्या एतेन चतुर्थ: श्लोक उपपद्यते।

तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}} \therefore \frac{\text{अज्या.सशं.पभा}}{\text{१२.त्रि}} = \frac{\text{पभा.सशं.पभा}}{\text{१२.पक}} = \frac{\text{पभा}^{2}\text{.सशं}}{\text{पक.१२}} = \text{कुज्या}$

अथवा $\frac{\text{अज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = \text{कुज्या}$। परन्तु $\frac{\text{अग्रा.समशं}}{\text{तद्धृति}} = \text{क्रांज्या}$ कुज्यास्वरूपे क्रांति-ज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या.अग्रा.समशं}}{\text{लंज्या}} = \text{कुज्या}$ एतेन पञ्चमश्लोक उपपद्यते ॥४-५॥

अब पुनः कुज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि. भा.—वा समशंकु और अक्षज्यावर्गघात में लम्बज्या और त्रिज्या के घात से भाग देने से कुज्या होती है। वा समशंकु पलभा और अक्षज्या के घात में त्रिज्या और द्वादश के घात से भाग देने से कुज्या होती है॥ वा समशंकु और पलभावर्ग के घात में पलकर्ण और द्वादश के घात से भाग देने से कुज्या होती है। वा अक्षज्या, अग्रा और समशंकु के घात में तद्धृति और लम्बज्या के घात से भाग देने से कुज्या होती है ॥४-५॥

उपपत्ति।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{अज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = \text{कुज्या}$। परन्तु $\frac{\text{अज्या.सशं}}{\text{त्रि}} = \text{क्रांज्या}$

कुज्या के स्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से—

$\frac{\text{अज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{अज्या.अज्या.सशं}}{\text{लंज्या.त्रि}} = \frac{\text{अज्या}^{2}\text{.सशं}}{\text{लंज्या.त्रि}} = \text{कुज्या}$।

परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पभा}}{\text{१२}}$ इसलिये $\frac{\text{अज्या}^{2}\text{.सशं}}{\text{लंज्या.त्रि}} = \frac{\text{पभा.अज्या.सशं}}{\text{१२.त्रि}} = \text{कुज्या}$

इससे चौथा श्लोक उपपन्न हुआ ॥४॥

तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पभा}}{\text{पलक}}$ अतः $\frac{\text{पभा.अज्या.सशं}}{\text{१२.त्रि}} = \frac{\text{पभा.पभा.सशं}}{\text{१२.पक}}$

$= \frac{\text{पभा}^{2}\text{.सशं}}{\text{१२.पक}} = \text{कुज्या}$। अथवा $\frac{\text{अज्या.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = \text{कुज्या}$।

परन्तु $\frac{\text{अग्रा.सशं}}{\text{तद्धृति}} = \text{क्रांज्या}$। इससे कुज्यास्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से

$\frac{\text{अज्या.अग्रा.सशं}}{\text{तद्धृति.लंज्या}} = \text{कुज्या}$। इससे पञ्चम श्लोक उपपन्न हुआ ॥४-५॥

पुनः कुज्यानयनान्याह।

वाऽक्षज्यावर्गहता त्रिगुणकृतिहृता च तद्धृतिः कुज्या।
वाऽक्षाभावर्गहता तद्धृतिरक्षश्रवणकृति हृत्कुज्या ॥६॥

वा नृतलवर्गनिहता स्वधृतिकृतिहृता च तद्धृतिः ।
कुज्या वाग्रेष्टशंकुघातोऽक्षाभाघ्नः स्वधृतिरविहृत् ॥७॥
घातो वाऽक्षगुणघ्नो लम्बज्या स्वधृतिघातहृत्कुज्या ।
वऽग्राभिहतो घातः कुज्या स्वधृतिसमनरहृतिहृत् ॥८॥

पुनः कुज्यानयनान्याह ।

वि. भा.—वा तद्धृतिः (तद्धृतिः) अक्षज्यावर्गहता (अक्षज्यावर्गगुणिता) त्रिगुणकृतिहृता (त्रिज्यावर्गभक्ता) तदा कुज्या भवेत् । वा तद्धृतिः (तद्धृतिः) अक्षाभावर्गहता (पलभावर्गगुणिता) अक्षश्रवणकृतिहृत् (पलकर्णभक्ता) तदा कुज्या भवेत् ॥ वा तद्धृतिः (तद्धृतिः) नृतलवर्गनिहता (शंकुतलवर्गगुणिता) स्वधृतिकृतिहृता (हृतिवर्गभक्ता) तदा कुज्या भवेत् । वा अग्रेष्टशंकुघातः, अक्षाभाघ्नः (पलभागुणितः) स्वधृतिरविहृत् (हृतिद्वादशघातभक्तः) तदा कुज्या भवेत् ॥ वा घातः, अक्षगुणघ्नः (अक्षज्यागुणितः) लम्बज्यास्वधृतिघातहृत् (लम्बज्याहृतिघातभक्तः) कुज्या भवेत् । वा घातः, अग्राभिहतः (अग्रागुणितः) स्वधृतिसमनरहृतिहृत् (हृतिसमशंकुघातभक्तः) तदा कुज्या भवेत् ॥६-८॥

अत्रोपपत्तिः

$\frac{\text{अज्या. अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा कुज्यायाः स्वरूपे अग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या.अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{त्रि}^2}$ = कुज्या ।

परं $\frac{\text{अज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{पलभा}^2}{\text{पलक}^2} = \frac{\text{शंकुतल}^2}{\text{हृति}}$ अतः

$$\frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{पलभा}^2\text{.तद्धृति}}{\text{पलक}^2} = \frac{\text{शंतल}^2\text{.तद्धृति}}{\text{हृति}^2} = \text{कुज्या ।}$$

तथा $\frac{\text{शंतल.अग्रा}}{\text{हृति}}$ = कुज्या । परं $\frac{\text{पभा.इशं}}{१२}$ = शंतल, कुज्यास्वरूपे उत्थापनेन $\frac{\text{पभा.इशं.अग्रा}}{१२\times\text{हृति}}$ = कुज्या = $\frac{\text{घात.पभा}}{१२\times\text{हृति}}$, अत्र अग्रा.इशं = घात

$$= \frac{\text{घात}\times\text{अज्या}}{\text{लंज्या.हृति}} = \frac{\text{घात.अग्रा}}{\text{सशं.हृति}} = \text{कुज्या} \quad \because \frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{सशं}}$$

अत उपपन्नम् ॥ ६-८ ॥

पुनः कुज्या के आनयनों को कहते हैं ।

हि. भा.—वा तद्धृति को अक्षज्या वर्ग से गुणकर त्रिज्यावर्ग से भाग देने से कुज्या होती है । वा तद्धृति को पलभा वर्ग से गुणकर पलकर्ण वर्ग से भाग देने से कुज्या होती

है ।। वा तद्धृति को शंकुतलवर्ग से गुणकर हृतिवर्ग से भाग देने से कुज्या होती है । वा अग्रा और इष्टशंकु के घात को पलभा से गुणकर द्वादश और हृति के घात से भाग देने से कुज्या होती है ।। वा घात को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या और हृति के घात से भाग देने से कुज्या होती है । वा घात को अग्रा से गुणकर हृति और समशंकु के घात से भाग देने से कुज्या होती है ।। ६-८।।

उपपत्ति ।

$\frac{\text{अज्या.अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = कुज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या.तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा इससे कुज्या के स्वरूप में अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या.अज्या.तद्धृति}}{\text{त्रि.त्रि}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{.तद्धृति}}{\text{त्रि}^2}$ = कुज्या ।

परन्तु $\frac{\text{अज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{पलभा}^2}{\text{पलक}} = \frac{\text{शंतल}^2}{\text{हृति}^2}$ इसलिये

$\frac{\text{अज्या}^2\text{.तद्धृति}}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{पलभा}^2\text{.तद्धृति}}{\text{पलक}^2} = \frac{\text{शंतल}^2\text{.तद्धृति}}{\text{हृति}^2}$ = कुज्या

तथा $\frac{\text{शंकल.अग्रा}}{\text{हृति}}$ = कुज्या । परन्तु $\frac{\text{पभा.इशं}}{१२}$ = शंतल इससे कुज्या के स्वरूप में शंकुतल को उत्थापन देने से $\frac{\text{पलभा.इशं.अग्रा}}{\text{हृति.}१२}$ = कुज्या ।

= $\frac{\text{घात.पभा}}{\text{हृति.}१२}$ यहां अग्रा.इशं = घात

= $\frac{\text{घात.अज्या}}{\text{हृति.लंज्या}}$ = कुज्या = $\frac{\text{घात.अग्रा}}{\text{हृति.समशं}}$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।। ६-८ ।।

इदानीं पुनस्तदानयनान्याह ।

द्युदलहृतिद्युज्यान्तरमथवा कुज्या द्युजीवया गुणितः ।
उन्नतगुणस्त्रिगुणहृतस्तद्धृतिविवरं महीजीवा ।।९।।
द्युज्या हता चरज्या त्रिज्या भाज्या पलगुणभावृत्ताग्रावधः ।
निजश्रवणहृत्क्षितिज्वा क्रान्तिज्याग्राकृत्योर्विवरपदं या महीजीवा ।।१०।।

वि. भा.—अथवा द्युदलहृतिद्युज्यान्तरं (मध्यहृति द्युज्ययोरन्तरं) कुज्या भवेत् अथवा उन्नतगुणः (उन्नतज्या) द्युजीवया गुणितः (द्युज्यागुणितः) त्रिगुण-हृतः (त्रिज्याभक्तः) तद्धृतिविवरं (फलतद्धृत्योरन्तरं) महीजीवा (कुज्या) भवेत् ।। वा चरज्या द्युज्याहता (द्युज्यागुणिता) त्रिज्याभाज्या तदा महीजीवा भवेत् । अथवा पलगुणभावृत्ताग्रावधः (अक्षज्याछायाकर्णगोलीयाग्राघातः) निजश्रवणहृत्

(छायाकर्णभक्तः) तदा क्षितिज्या (कुज्या) भवेत्। वा क्रान्तिज्याऽग्राकृत्योर्विवरपदं (क्रान्तिज्याऽग्रावर्गान्तरमूलं) महीजीवा (कुज्या) भवेदिति ॥९-१०॥

अत्रोपपत्तिः ।

मध्यान्हे द्युज्या±कुज्या=हृति अतो द्युज्या∽मध्यहृति=कुज्या। तथा सूत्रं कुजीवागुणितं विभक्तमित्यादि भास्करोक्त्या $\frac{\text{उन्नतज्या. द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कला

=तद्धृति—कुज्या ∴ तद्धृति—कला=कुज्या. ।

अथवा $\frac{\text{चरज्या. द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कुज्या। $\frac{\text{अग्रा. छायाक}}{\text{त्रि}}$=कर्णवृत्ताग्रा ।

तथा $\frac{\text{अक्षज्या. कर्णवृत्ताग्रा}}{\text{छायाक}}=\frac{\text{अक्षज्या. अग्रा. छाकर्ण}}{\text{त्रि. छाकर्ण}}=\frac{\text{अज्या. अग्रा}}{\text{त्रि}}$

= कुज्या वा $\sqrt{\text{अग्रा}^2-\text{क्रांज्या}^2}$=कुज्या। एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥९-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे कुज्यानयनविधिः पञ्चमोऽध्यायः॥

अब पुन: कुज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि. भा.—अथवा मध्यहृति और द्युज्या के अन्तर कुज्या होती है। वा उन्नतज्या को द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से जो फल होता है उसके और तद्धृति के अन्तर करने से कुज्या होती है ॥ अथवा अक्षज्या और कर्ण वृत्ताग्र घात में छाया कर्ण से भाग देने से कुज्या होती है। वा क्रान्तिज्या और अग्रा के वर्गान्तरमूल कुज्या होती है ॥९-१०॥

उपपत्ति ।

मध्यान्ह काल में द्युज्या±कुज्या=मध्यहृति ∴ द्युज्या∽मध्यहृति=कुज्या।

तथा सूत्रं कुजीवा गुणित बिभक्त मित्यादिभास्करोक्त से

$\frac{\text{उन्नतज्या. द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कला=तद्धृति—कुज्या ∴ तद्धृति—कला=कुज्या

अथवा $\frac{\text{चरज्या. द्युज्या}}{\text{त्रि}}$=कुज्या। $\frac{\text{अग्रा. छायाक}}{\text{त्रि}}$=छाया कर्ण गो अग्रा

तथा $\frac{\text{अक्षज्या. कर्ण वृत्ताग्रा}}{\text{छायाक}}=\frac{\text{अक्षाज्या. अग्रा. छाकर्ण}}{\text{त्रि. छाकर्ण}}=\frac{\text{अज्या. अग्रा}}{\text{त्रि}}$=कुज्या।

वा $\sqrt{\text{अग्रा}^2-\text{क्रांज्या}^2}$=कुज्या इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥९-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में कुज्यानयनविधि नामक पंचम अध्याय समाप्त हुआ ॥

षष्ठोऽध्यायः

अथाग्रानयनविधिः ।

तत्रादावग्रानयनान्याह ।

परमापक्रमजीवाघ्नी रविभुजजीवा लम्बगुणभक्ता ।
अग्रा क्रान्तिज्या वा त्रिज्याघ्नी लम्बजीवाहृत् ॥१॥
अक्षश्रवणाभ्यस्ता क्रान्तिज्याऽर्कोद्धृताऽथवाऽग्रज्या ।
तद्धृतिहृताऽपमज्या समनरभक्ताऽथवाऽग्रज्या ॥२॥
स्वधृतिघ्नाऽपमजीवा स्वेष्टनरेणोद्धृताऽथवाऽग्रज्या ।
कुज्याक्रान्तिज्याकृतिसमासमूलमथवाऽग्राज्या ॥३॥
कुज्यात्रिज्यागुणिता पलजीवा भाजिताऽथवाऽग्रज्या ।
विषुवत्कर्णाभ्यस्ता कुज्या वाऽक्षद्युतिहृताऽग्रा ॥४॥

वि. भा.—रविभुजजीवा (रविभुजज्या) परमापक्रमजीवाघ्नी (परमक्रान्तिज्यागुणिता) लम्बगुणभक्ता (लम्बज्यया भक्ता) तदाऽग्रा स्यात् । वा क्रान्तिज्याऽक्षज्याघ्नी (अक्षज्यया गुणिता) लम्बजीवाहृत् (लम्बज्या भक्ता) तदाऽग्रा भवेत् ॥१॥

अथवा क्रान्तिज्या; अक्षश्रवणाभ्यस्ता (पलकर्णगुणिता) अर्कोद्धृता (द्वादशभक्ता) तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेत् । अथवा, अपमज्या (क्रान्तिज्या) तद्धृतिहृता (तद्धृतिगुणिता) समनरभक्ता (समशंकुभक्ता) तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेत् ॥२॥

अथवा, अपमजीवा (क्रान्तिज्या) स्वधृतिघ्ना (हृतिगुणिता) स्वेष्टनरेणोद्धृता (स्वेष्टशंकुभक्ता) तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेत् । अथवा कुज्या क्रान्तिज्या कृतिसमासमूलं (कुज्याक्रान्तिज्ययोर्वर्गयोगमूलं) अग्राज्या भवेत् ॥३॥

अथवा कुज्या, त्रिज्यागुणिता, पलजीवाभाजिता (अक्षज्याभक्ता) तदाऽग्रज्या भवेत् । वा कुज्या, विषुवत्कर्णाभ्यस्ता (पलकर्णगुणिता) अक्षद्युतिहृता (पलभा भक्ता) तदाऽग्रा भवेत् ॥४॥

एतदुपपत्तयः ।

अथ $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{जिज्या. भुजज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या, अतः

क्रान्तिज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि. जिज्या. भुजज्या}}{\text{लंज्या. त्रि.}} = \frac{\text{जिज्या. भुज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा ।

अथवा $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा एतेन प्रथमश्लोक उपपद्यते ॥१

अथ $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा परं $\frac{\text{त्रि}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलक}}{१२}$ = अत उत्थापनेन जाताऽग्रा $= \frac{\text{पक. क्रांज्या,}}{१२}$ तथा $\frac{\text{त्रि}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशं}}$ अत उत्थापनेन अग्रा $= \frac{\text{तद्धृति. क्रांज्या}}{\text{समशं}}$ एतेन द्वितीयश्लोक उपपद्यते ॥२॥

अथ पूर्वानीताग्रास्वरूपम् $= \frac{\text{तद्धृति. क्रांज्या,}}{\text{समशं}}$ परन्तु $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशं}} = \frac{\text{हृति}}{\text{इशं}}$ अत उत्थापनेन $\frac{\text{तद्धृति. क्रांज्या}}{\text{समशं}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{इशं}}$ = अग्रा । तथा कुज्या. क्रान्तिज्याऽग्राभिर्भुजकोटिकर्णैर्जायमानत्रिभुजे $\sqrt{\text{कुज्या}^2 + \text{क्रांज्या}^2}$ = अग्रा, एतेन तृतीयश्लोक उपपद्यते ॥३॥

तथाऽक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{त्रि. कुज्या}}{\text{अक्षज्या}}$ = अग्रा, परं $\frac{\text{त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक}}{\text{पलभा}}$ एतेनोत्थापनेन $\frac{\text{त्रि. कुज्या}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक. कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = अग्रा एतेन चतुर्थश्लोक उपपद्यते ॥४॥

अब अग्रा के आनयनों को कहते हैं ।

रविभुजज्या को परमक्रान्तिज्या से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणकर लम्बज्या से भाग देने से अग्रा होती है ॥१॥

अथवा क्रान्तिज्या को पलकर्ण से गुणकर द्वादश से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा क्रान्तिज्या को तद्धृति से गुणकर समशंकु से भाग देने से अग्रा होती है ॥२॥

अथवा क्रान्तिज्या को हृति से गुणकर इष्टशंकु से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा कुज्या और क्रान्तिज्या के वर्गयोग मूल अग्रा होती है ॥३॥

अथवा कुज्या को त्रिज्या से गुणकर अक्षज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा कुज्या को पलकर्ण से गुणकर पलभा से भाग देने से अग्रा होती है ॥४॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा. । परन्तु $\frac{\text{जिज्या. भुज्या}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या इससे क्रान्ज्यिा स्वरूप को

उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि. जिज्या. भुज्या}}{\text{लंज्या. त्रि}} = \frac{\text{जिज्या. भुज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा। इससे प्रथम श्लोक उपपन्न हुआ ॥१॥

अथवा $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा, परन्तु $\frac{\text{त्रि}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलक}}{१२}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ $= \frac{\text{पलक. क्रांज्यां}}{१२}$ = अग्रा। तथा $\frac{\text{पलक}}{१२} = \frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशं}} \therefore \frac{\text{पलक. क्रांज्या}}{१२} = \frac{\text{तद्धृति. क्रांज्या}}{\text{समशं}}$ = अग्रा., इससे द्वितीय श्लोक उपपन्न हुआ।

तथा $\frac{\text{तद्धृति. क्रांज्या}}{\text{समशं}}$ = अग्रा.। परन्तु $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशं}} = \frac{\text{हृति}}{\text{इशं}}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{तद्धृति क्रांज्या}}{\text{समशं}} = \frac{\text{हृति क्रांज्या}}{\text{इशं}}$ = अग्रा। तथा कुज्या, क्रान्तिज्या और अग्रा इन भुजकोटि कर्णों से उत्पन्न त्रिभुज में $\sqrt{\text{कुज्या}^2 + \text{क्राज्या}^2}$ = अग्रा, इससे तृतीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥३॥

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{त्रि. कुज्या}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा, परं $\frac{\text{त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{पलक}}{\text{पलभा}} \therefore \frac{\text{त्रि. कुज्या}}{\text{अज्या}} =$ $\frac{\text{पलक. कुज्या}}{\text{पलभा}}$ = अग्रा, इससे चतुर्थ श्लोक उपपन्न हुआ ॥४॥

पुनरग्रानयनान्याह।

तद्धृतिकुज्याघातान्मूलं पूर्वापरे कुजे वाऽग्रा।
स्वधृतिघ्ना कुज्या नृतलविभक्ताऽथवाऽग्रज्या ॥५॥
समनाऽक्षज्या गुणितो लम्बज्या भाजितोऽथवाऽग्रज्या।
विषुवच्छायागुणितः समना वाऽर्कोद्धृतोऽग्रज्या ॥६॥
कुज्यागुणितः समना क्रान्तिज्या भाजितोऽथवाऽग्रज्या।
समना नृतलाभ्यस्तः शंकुविभक्तोऽथवाऽग्रज्या ॥७॥
तद्धृतिरक्षज्याघ्नी व्यासार्धविभाजिताऽथवाऽग्रज्या।
अथवाऽक्षच्छायाघ्नी तद्धृतिरक्षश्रुतिहृताऽग्रा ॥८॥

वि. भा.—तद्धृतिकुज्याघातात् मूलं वा पूर्वापरकुजे (पूर्वपश्चिमक्षितिजे) अग्रा भवेत्। अथवा कुज्या स्वधृतिघ्ना (हृतिगुणिता) नृतलविभक्ता (शंकुतलभक्ता) अग्रज्या भवेत्॥ अथवा समना (समशंकुः) अक्षज्यागुणितः, लम्बज्या भाजितः (लम्बज्याभक्तः) अग्रज्या (अग्रा) भवेत्। अथवा समना (समशंकुः) विषुवच्छायागुणितः (पलभागुणितः) अर्कोद्धृतः (द्वादशभक्तः) अग्रज्या भवेत्॥ अथवा समना (समशंकुः) कुज्यागुणितः, क्रान्तिज्याभाजितः अग्रज्या भवेत्।

अथवा समना (समशंकुः) नृतलाभ्यस्तः (शंकुतलगुणितः) शंकुविभक्तः, तदा अग्रज्या (अग्रा) भवेत् ॥ अथवा तद्धृतिः, अक्षज्याघ्नी (अक्षज्यागुणिता) व्यासार्धविभाजिता (त्रिज्याभक्ता) तदाऽग्रज्या भवेत् । अथवा तद्धृतिः, अक्षच्छायाघ्नी (पलभागुणिता) अक्षश्रुतिहृता (पलकर्णभक्ता) तदाऽग्रा भवेत् ॥८॥

एतेषामुपपत्तयः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{तद्धृति. कुज्या}}{\text{अग्रा}}$ = अग्रा ∴ तद्धृति. कुज्या = अग्रा^{2} मूलेन

$\sqrt{\text{तद्धृति. कुज्या}}$ = अग्रा । अथवा $\frac{\text{हृति. कुज्या}}{\text{शङ्कुतल}}$ = अग्रा एतेन पञ्चमश्लोक उपपद्यते ॥ अथवा $\frac{\text{अक्षज्या. समशं}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ अत उत्थापनेन

$\frac{\text{अज्या. समशं}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलभा.समशं}}{१२}$ एतेन षष्ठश्लोक उपपद्यते ॥ अथवा

$\frac{\text{पलभा. समशं}}{१२}$ = अग्रा । परं $\frac{\text{पलभा}}{१२} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}}$ अत उत्थापनेन $\frac{\text{पलभा. सशं}}{१२}$ =

$\frac{\text{कुज्या. समशं}}{\text{क्रांज्या}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांया}} = \frac{\text{शंकुतल}}{\text{शंकु}}$ ∴ $\frac{\text{कुज्या. सशं}}{\text{क्रांज्या}}$ =

$\frac{\text{शंकुतल. समशं}}{\text{शंकु}}$ = अग्रा, एतेन सप्तमश्लोक उपपद्यते ॥ अथवा $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$

= अग्रा । तथा $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}$ अत उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ =

$\frac{\text{पभा. तद्धृति}}{\text{पलक}}$ = अग्रा, एतेन अष्टमश्लोक उपपद्यते ॥८॥

पुनः अग्रा के आनयनों को कहते हैं

हि. भा.—तद्धृति और अग्रा के घात के मूल लेने से अग्रा होती है । अथवा कुज्या को हृति से गुणाकर शंकुतल से भाग देने से अग्रा होती है ॥५॥ अथवा समशंकु को अक्षज्या से गुणाकर लम्बज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा समशंकु को पलभा से गुणाकर द्वादश से भाग देने से अग्रा होती है ॥६॥ अथवा समशंकु को कुज्या से गुणाकर क्रान्तिज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा समशंकु को शंकुतल से गुणाकर शंकु से भाग देने से अग्रा होती है ॥७॥ अथवा तद्धृति को अक्षज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा तद्धृति को पलभा से गुणाकर पलकर्ण से भाग देने से अग्रा होती है ॥८॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{तद्धृति. कुज्या}}{\text{अग्रा}}$ = अग्रा ∴ तद्धृति. कुज्या = अग्रा^{2} मूल

लेन से $\sqrt{\text{तद्धृति. कुज्या}}$ = अग्रा । अथवा $\frac{\text{हृति. कुज्या}}{\text{शंकुतल}}$ = अग्रा इससे पञ्चमश्लोक उपपन्न हुआ ॥५॥ अथवा $\frac{\text{अज्या. समशं}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या. समशं}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पलभा.समशं}}{१२}$ = अग्रा । इससे षष्ठश्लोक उपपन्न हुआ ॥६॥ अथवा $\frac{\text{पलभा. समशं}}{१२}$ = अग्रा परन्तु $\frac{\text{पलभा}}{१२} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}}$ अतः उत्थापन देने से $\frac{\text{पलभा. समशं}}{१२} = \frac{\text{कुज्या. समशं}}{\text{क्रांज्या}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{शंकुतल}}{\text{शंकु}}$ इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{कुज्या. समशं}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{शंकुतल. समशं}}{\text{शंकु}}$ = अग्रा इससे सप्तमश्लोक उपपन्न हुआ ॥७॥ अथवा $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}$ अतः उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा. तद्धृति}}{\text{पलक}}$ = अग्रा, इससे अष्टमश्लोक उपपन्न हुआ ॥८॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

तद्धृतिसमनरकृत्योर्विशेषमूलं कुजे वाऽग्रा ।
भुजशङ्कुतलवियुतियुती सा कुजे वाऽग्रा ॥९॥
त्रिज्याऽक्षाभा गुणिता सममण्डलकर्णभाजिता वाऽग्रा ।
नृतलं समशंकोर्यद्रवावुदक्स्थे भवेत्साऽग्रा ॥१०॥
त्रिज्याभावृत्ताग्राघाते भाकर्णभाजिते वाऽग्रा ।
भावृत्ताग्राद्दृग्ज्यावधे प्रभाभाजिते वाऽग्रा ॥११॥

वि. भा.—वा तद्धृतिसमनरकृत्योर्विशेषमूलं (तद्धृतिसमशंकुवर्गान्तरमूलं) कुजे (क्षितिजे) अग्रा स्यात् । अथवा भुजशंकुतलवियुतियुती (भुजशंकुतलयोर्योगान्तरे) अग्रा भवेत् ॥९॥ अथवा त्रिज्या अक्षाभागुणिता (पलभा गुणिता) सममण्डलकर्णभाजिता (समकर्णभक्ता) तदाग्रा भवेत् । अथवा रवौ (सूर्ये) उदक्स्थे (उत्तरे) समशङ्कोर्यन्नृतलं (शङ्कुतलं) साऽग्रा भवेत् ॥१०॥ अथवा त्रिज्या भावृत्ताग्राघाते (त्रिज्याछायाकर्णगोलीयाग्रावधे) भाकर्णभाजिते (छायाकर्णभक्ते) तदाग्रा भवेत् । अथवा भावृत्ताग्रा दृग्ज्यावधे (छायाकर्णगोलीयाग्रा दृग्ज्याघाते) प्रभाभाजिते (छायाभक्ते) तदाऽग्रा भवेदिति ॥११॥

एषामुपपत्तयः

अग्रा समशङ्कुतद्धितिभिर्भुजकोटिकर्णैर्जायमानाऽक्षक्षेत्रे $\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{समशं}^2}$ = अग्रा । तथा शंकुमूलात्पूर्वापरसूत्रोपरिलम्बः = भुजः ।

शंकुमूलात्स्वोदयास्तसूत्रोपरिलम्ब:=शंकुतलम् । स्वोदयास्तपूर्वापरसूत्रयोरन्तरम्=अग्रा । अग्राशंकुतलयो: संस्कारेण भुजो भवति, तद्विलोमेन शंकुतल$\mp$भुज= अग्रा, अग्रा गोलदिक्का भवति, शंकुतलस्य दिक्-दक्षिणा, पूर्वापरसूत्रा यद्दिशि शंकुमूलं तद्दिग्भुजसंज्ञकम् । एतेन नवमश्लोक उपपद्यते ।।९।। $\frac{\text{पलभा} \times \text{सशं}}{१२}$=अग्रा

अत्र हरभाज्यौ त्रिज्यया गुणितौ तदा $\frac{\text{पलभा} \times \text{सशं} \times \text{त्रि}}{१२ \times \text{त्रि}} = \frac{\text{पलभा.त्रि}}{\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सशं}}} =$

$\frac{\text{पलभा त्रि}}{\text{समकर्ण}}$=अग्रा । अथवा समप्रवेशबिन्दौ सूर्ये यच्छङ्कुतलं सैवाग्रा भवति । एतेन दशमश्लोक उपपद्यते ।।१०।।

$\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा.त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$=अग्रा । परन्तु $\frac{\text{त्रि.छाया}}{\text{दृग्ज्या}}$=छायाकर्ण अत उत्थापनेन

$\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा.त्रि}}{\frac{\text{त्रि.छाया}}{\text{दृग्ज्या}}} = \frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा.दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$=अग्रा एतेन एकादशश्लोक उपपद्यते ।।११।।

अब पुन: अग्रा के आनयन प्रकारों को कहते हैं।

हि. भा.—तद्धृति और समशंकु के वर्गान्तरमूल क्षितिज में अग्रा होती है । अथवा भुज और शंकुतल के योगान्तर करने से अग्रा होती है ।।९।। अथवा त्रिज्या को पलभा से गुणकर समकर्ण में भाग देने से अग्रा होती है । अथवा रवि के सममण्डल में रहने से जो शंकुतल होता है वह अग्रा है ।।१०।। अथवा त्रिज्या और कर्णवृत्ताग्रा के घात में छायाकर्ण से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा कर्णवृत्ताग्रा और दृग्ज्या के घात में छाया से भाग देने मे अग्रा होती है ।

उपपत्ति ।

अग्रा, समशंकु और तद्धृति इन भुजकोटिकर्णों से जो जात्य त्रिभुज बनता है उसमें $\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{समशं}^2}$=अग्रा । शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्ब=भुज । शंकुमूल से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब=शंकुतल । स्वोदयास्तसूत्र और पूर्वापर सूत्र के अन्तर= अग्रा । अत: शंकुतल$\mp$भुज=अग्रा । शंकुतल की दिशा दक्षिण है । पूर्वापर सूत्र से शंकुमूल जिस दिशा में रहता है उस दिशा का भुज होता है । अग्रा की दिशा गोल दिशा है । इससे नवम श्लोक उपपन्न हुआ ।।९।। अथवा $\frac{\text{पलभा. समशं}}{१२}$=अग्रा, इसके हर और भाज्य को त्रिज्या से गुण देने से $\frac{\text{पभा.सशं.त्रि}}{१२ \times \text{त्रि}} = \frac{\text{पभा.त्रि}}{\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सशं}}} = \frac{\text{पभा.त्रि}}{\text{समक}}$=अग्रा अथवा सम-

प्रवेश बिन्दु में रवि के रहने से जो शंकुतल होता है वह अग्रा है। इससे दसवां श्लोक उपपन्न हुआ ॥१०॥ अथवा $\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा.त्रि}}{\text{छायाक}}$ = अग्रा परन्तु $\frac{\text{त्रि.छाया}}{\text{दृग्ज्या}}$ = छायाकर्ण इससे उत्थापन देने से $\frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा.त्रि}}{\frac{\text{त्रि.छाया}}{\text{दृग्ज्या}}} = \frac{\text{कर्णवृत्ताग्रा.दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$ = अग्रा। इससे ग्यारहवां श्लोक उपपन्न हुआ ॥ ११ ॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

कुज्याशङ्क्वोर्घातोऽक्षज्याघ्नः स्वधृति लम्बगुणवधहृत् ।
घातः कुज्यागुणितः क्रान्तिज्या स्वधृति घातहृद्वाऽग्रा ॥१२॥
वाऽक्षाभाघ्नो घातः सूर्यघ्नस्वधृतिभक्तोऽग्रा ।
द्युज्या चरगुणघातोऽक्षज्या भक्तोऽथवाऽग्रज्या ॥१३॥

वि. भा.—कुज्याशङ्कोर्घातः, अक्षज्याघ्नः (अक्षज्यागुणितः) स्वधृतिलम्बगुणवधहृत् (हृतिलम्बज्ययोर्घातभक्तः) तदाऽग्रज्या भवेत् । अथवा घातः (कुज्याशंक्वोर्घातः) कुज्यागुणितः, क्रान्तिज्यास्वधृतिघातहृत् (क्रान्तिज्याहृतिघातभक्तः) तदा अग्रा भवेत् ॥ अथवा घातः, अक्षाभाघ्नः (पलभागुणितः) सूर्यघ्नस्वधृतिभक्तः (द्वादशगुणितहृतिभक्तः) तदाऽग्रा भवेत् । अथवा द्युज्याचरगुणघातः (द्युज्याचरज्ययोर्वधः) अक्षज्याभक्तस्तदाऽग्रज्या (अग्रा) भवेदिति॥१२-१३॥

अत्रोपपत्तिः ।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{कुज्या.शंकु.अज्या}}{\text{लंज्या}\times\text{हृति}} = \frac{\text{कुज्या}\times\text{शंकुतल}}{\text{हृति}}$ अत्र व्यस्तत्रैराशिकेन

$\frac{\text{कज्या}\times\text{हृति}}{\text{शंकुतल}}$ = अग्रा । अथ कुज्या × शंकु = घात, तदा $\frac{\text{घात.अज्या}}{\text{लंज्या}\times\text{हृति}}$ = अग्रा

परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}}$ अतः $\frac{\text{घात}\times\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या.हृति}}$ = अग्रा ।

तथा $\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$ अतः $\frac{\text{घात}\times\text{पलभा}}{१२\times\text{हृति}}$ = अग्रा ।

तथा $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या ∴ कुज्या.त्रि = चरज्या.द्यु पक्षौ अक्षज्यया भक्तौ

तदा $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{चरज्या.द्यु}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा । एतेनोपपन्नं सर्वमिति ॥१२-१३॥

अत्र कुज्या शङ्क्वाघात इति प्रकारोऽस्मभ्यं न रोचते कथमाचार्येण तथाऽऽनयनं कृतमिति त एव ज्ञातुं शक्नुवन्तीति ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारेऽग्रानयनविधिः षष्ठोऽध्यायः ॥

पुन: अग्रा के आनयनों को कहते हैं ।

हि. भा.—कुज्या और शंकु के घात को अक्षज्या से गुणकर हृति और लम्बज्या के घात से भाग देने से अग्रा होती हैं । अथवा घात (कुज्या और शंकु के घात) कुज्या से गुणकर क्रान्तिज्या गुणित हृति से भाग देने से अग्रा होती है ।।१२।। अथवा घात को पलभा से गुणकर द्वादश गुणित हृति से भाग देने से अग्रा होती है । अथवा द्युज्या और चरज्या के घात को अक्षज्या से भाग देने से अग्रा होती है ।।१३।।

उपपत्ति ।

श्लोक के अनुसार $\frac{\text{कुज्या.शंकु.अज्या}}{\text{लंज्या.हृति}} = \frac{\text{कुज्या.शंकुतल}}{\text{हृति}} =$ यहां व्यस्तत्रै राशिक से $\frac{\text{कुज्या.हृति}}{\text{शंकुतल}} =$ अग्रा । यहां कुज्या.शंकु = घात

तब $\frac{\text{कुज्या.शंकु.अज्या}}{\text{लंज्या.हृति}} = \frac{\text{घात.अज्या}}{\text{लंज्या.हृति}} =$ अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}}$

$\therefore \frac{\text{घात.अज्या}}{\text{लंज्या. हृति}} = \frac{\text{घात.कुज्या}}{\text{क्रांज्या.हृति}} = \text{अग्रा} = \frac{\text{घात.पलभा}}{१२ \times \text{हृति}}$,

तथा $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{द्यु}} =$ चरज्या $\therefore$ कुज्या.त्रि = चरज्या. द्यु दोनों पक्षों को अक्षज्या से भाग देने से $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{चरज्या.द्यु}}{\text{अज्या}} =$ अग्रा, इससे सब उपपन्न हो गये । यहां 'कुज्या शङ्क्योर्घात:' यह प्रकार मुझे ठीक नहीं मालूम होता है ।। १२-१३ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में अग्रानयनविधि नामक
छठा अध्याय समाप्त हुआ ।।



अष्टमोऽध्याय:

अथ स्वचरार्धज्याप्राणसाधनविधि:

तत्रादौ चरार्धज्यानयनान्याह ।

कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता चरार्धजीवा स्यात् ।
अन्त्याहता कुजीवा धृतिभक्ता वा चरार्धज्या ॥१॥
अन्त्योन्नतज्ययोर्वा विशेषशेषं चरार्धजीवा स्यात् ।
यन्त्रगृहीतद्युदलतिथिघटी विवरनाड़िकाज्या वा ॥२॥

वि. भा.—कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता तदा चरार्धजीवा (चरार्धज्या) स्यात् । वा कुजीवा (कुज्या) अन्त्याहता (अन्त्यागुणिता) धृतिभक्ता (हृतिभक्ता) तदा चरार्धज्या स्यात् ॥१॥ अथवा अन्त्योन्नतज्ययो: (अन्त्यासूत्रयो:) विशेष शेषं (अन्तरशेषमर्थादन्त्यासूत्रयोरन्तरं) चरार्धजीवा (चरार्धज्या) स्यात् । अथवा यन्त्रगृहीतद्युदलतिथिघटीविवरनाड़िकाज्या (दिनार्धपञ्चदशघट्योरन्तरज्या) चरज्या भवेदिति ॥२॥

अत्रोपपति: ।

क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिकं यावन्नाड़ीवृत्ते चरचापम् । क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्ते ध्रुवान्नाड़ीवृत्तं यावन्नवत्यंश: । उन्मण्डले ध्रुवात्पूर्वस्वस्तिकं यावन्नवत्यंश: । नाड़ीवृत्ते चरचापमिति भुजत्रयैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । ध्रुवात्क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातं यावद् द्युज्याचापम् । ध्रुवादुन्मण्डलाहोरात्रवृत्तसम्पातं यावदुन्मण्डले द्युज्याचापम् । अहोरात्रवृत्ते कुज्याचापमिति भुजत्रयैरुत्पन्नं द्वितीयत्रिभुजम् । एतयोस्त्रिभुजयोर्ज्याक्षेत्रसाजात्यादनुपात: $\frac{\text{कुज्या} \cdot \text{त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या ।

तथा क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त सम्पातात्पूर्वापरसूत्रस्य समानान्तरसूत्रं कार्यं तदुपरिग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तसम्पाताल्लम्ब: कार्य: सैवाऽन्त्यैको भुज: । भूकेन्द्राद्ग्रहोपरिध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्त सम्पातगता त्रिज्या द्वितीयो भुज: । भूकेन्द्रादन्त्यामूलं यावत्तृतीयो भुज इति भुजत्रयैरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । तथाऽहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्ग्रहगताद्युज्यैको भुज: । ग्रहात्स्वोदयास्तसूत्रोपरिलम्बोहृतिर्द्वितीयो भुज: । अहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्धृतिमूलं यावत्तृतीयो भुज इति भुजत्रयं-

रुत्पन्नं द्वितीयत्रिभुजम् । एतयोस्त्रिभुजयोः सजातीयादनुपातो यदि द्युज्यया हृतिर्लभ्यते तदा त्रिज्यया किमित्यनुपातेनागताऽन्त्या $= \frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{द्यु}} \therefore \frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$

तदा पूर्वानीतचरज्यामानम् $= \frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या. अन्त्या}}{\text{हृति}} =$ एतेन प्रथमश्लोक उपपद्यते ।।

अथ ग्रहोपरिध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तसम्पाताच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रो (क्षितिजाहोत्रवृत्त सम्पातोपरि ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त सम्पातात्पूर्वापरसूत्रसमानान्तरसूत्रस्य चराग्रद्वयबद्धसूत्रस्य) परिलम्बोऽन्त्या, तथा तत एव पूर्वापरसूत्रोपरि लम्बः=सूत्रम् । अतः अन्त्या—सूत्र=चरज्या । तथा चोन्मण्डलयाम्योत्तरवृत्तयोरन्तरे पञ्चदश नाड्यः । स्वक्षितिजोन्मण्डलयोरन्तरे चरखण्डकालः । उत्तरगोले स्वक्षितिजादुपरि दक्षिणगोले चाध उन्मण्डलमस्त्यत उत्तरगोले चरघटीसहिता दक्षिणगोलरहिता पञ्चदशनाड्यो गोलयोर्दिनार्धमानं भवेत् । एतद्विलोमेन दिनार्धपञ्चदशघट्योरन्तरं चरार्धमानं तेन दिनार्धपञ्चदशघट्योरन्तरज्या चरज्या भवेदत एतेनोपपद्यते द्वितीयश्लोकः ।। १-२।।

अब चरज्या के आनयनों को कहते हैं ।

हि. भा.—कुज्या को त्रिज्या से गुणकर द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है । अथवा कुज्या को अन्त्या से गुण कर हृति से भाग देने से चरज्या होती है ।। अथवा अन्त्या और उन्नत कालज्या के अन्तर करने से जो शेष रहता है वह चरज्या होती है । अथवा यन्त्र गृहीत दिनार्ध और पन्द्रह घटी के अन्तर की ज्या होती है ।।१-२।।

उपपत्ति ।

क्षितिज्या होरात्रवृत्त सम्पात के ऊपर ध्रुव प्रोतवृत्त करने से वह ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में जहां पर लगता है वहां से पूर्व स्वस्तिक तक नाड़ीवृत्त में चरचाप है । क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुव से नाड़ीवृत्त तक नवत्यंश चाप एक भुज, ध्रुव से पूर्व स्वस्तिक तक उन्मण्डल में नवत्यंश द्वितीय भुज, नाड़ीवृत्त में चरचाप तृतीयभुज, इन तीनों भुजों से एक त्रिभुज बना । तथा ध्रुव से क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पात तक ध्रुव प्रोतवृत्त में द्युज्या चाप एक भुज, ध्रुव से उन्मण्डलाहोरात्रवृत्त के सम्पात तक उन्मण्डल में द्युज्याचाप द्वितीयभुज, होरात्रवृत्त में कुज्याचाप तृतीयभुज, इन तीनों भुजों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज बना, इन दोनों त्रिभुजों के ज्या क्षेत्र सजातीय है इसलिए अनुपात है ।

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} =$ चरजा । तथा ग्रहोपरि ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात से चराग्रद्वयबद्ध सूत्र के ऊपर लम्ब रेखा=अन्त्या एक भुज, भूकेन्द्र से ग्रहोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त सम्पातगत त्रिज्या द्वितीय भुज, भूकेन्द्र से अन्त्या मूलगत रेखा तृतीय भुज इन तीनों भुजों से एक त्रिभुज बना । अहोरात्रवृत्त गर्भकेन्द्र से ग्रहगत द्युज्या रेखा एक भुज, ग्रह से स्वोद-

यास्त सूत्र के ऊपर लम्बहृति द्वितीय भुज, अहोरात्रवृत्त गर्भकेन्द्र से हृति मूल तक तृतीय भुज इन तीनों भुजों से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज बना। इन दोनों त्रिभुजों के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{ध}}$ = अन्त्या $\therefore \frac{\text{हृति}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{त्रि}}$ तब पूर्वानीत चरज्या के

स्वरूप $= \frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या. अन्त्या}}{\text{हृति}}$ चरज्या इससे प्रथम श्लोक उपपन्न हुआ ॥१॥

ग्रहोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात बिन्दु से चराग्रद्वय वद्ध सूत्र के ऊपर लम्ब रेखा = अन्त्या और उसी बिन्दु से पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्बरेखा = सूत्र इसलिए अन्त्या — सूत्र = चरज्या। तथा उन्मण्डल और याम्योत्तरवृत्त के अन्तर में १५ घटी है। और अपने क्षितिज और उन्मण्डल के अन्तर = चरखण्डकाल है। अपने क्षितिजे ऊर्ध्वयाम्योत्तर वृत्त तक दिनार्धकाल है। इसलिए दिनार्धकाल और पञ्चदश (१५) घटी के अन्तर (चर) ज्या चरज्या होती है। इससे द्वितीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥१-२॥

पुनश्चरज्यानयनान्याह।

पलजीवा गुणिताग्रा द्युज्याभक्ताऽथवा चरार्धज्या।
क्रान्तित्रिभगुणघातोऽक्षाभाघ्नोऽर्काहृतद्युजीवाहृत् ॥३॥

अक्षज्याघ्नो घातो लम्बज्या धृतिवधोद्धृतो वा स्यात्।
कुज्याघ्नो वा घातोऽपमधृतिघातोद्धृतः सा स्यात् ॥४॥

वि. भा.—अग्रा, पलजीवागुणिता (अक्षज्यागुणिता) द्युज्याभक्ता, अथवा चरार्धज्या भवेत्। वा क्रान्तित्रिभगुणघातः (क्रान्तिज्यात्रिज्ययोर्घातः) अक्षाभाघ्नः (पलभागुणितः) अर्काहृत द्युजीवाहृत् (द्वादशगुणित द्युज्यया भक्तः) तदा चरज्या भवेत् ॥३॥ वा घातः, अक्षज्याघ्नः (अक्षज्यागुणितः) लम्बज्याधृतिवधोद्धृतः (लम्बज्या द्युज्ययोर्घातभक्तः) तदा चरज्या स्यात्। वा घातः, कुज्याघ्नः (कुज्यागुणितः) अपमधृतिघातोद्धृतः (क्रान्तिज्याद्युज्ययोर्घातभक्तः) तदा सा (चरज्या) स्यादिति ॥३-४॥

अत्रोपपत्तिः।

$\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या $\therefore$ कुज्या.त्रि = चज्या.द्यु पक्षौ (अक्षज्या) भक्तौ तदा

$\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{द्युचज्या.}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा ततः चरज्या.द्यु = अज्या.अग्रा $\therefore \frac{\text{अज्या.अग्रा}}{\text{द्यु}}$ = चज्या,

तथा $\frac{\text{पलभा.क्रांज्या}}{१२}$ = कुज्या ततः $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{पभा.क्रांज्या.त्रि}}{१२ \times \text{द्यु}}$ = एतेन

तृतीयश्लोक उपपद्यते ॥३॥ अथ $\frac{\text{पलभा.क्रांज्या.त्रि}}{१२ \times \text{द्यु}}$ = चरज्या अत क्रांज्या.त्रि = घात

तदा $\frac{\text{घात.पलभा}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{घात}\times\text{अक्षज्या}}{\text{द्यु}\times\text{लंज्या}} = \frac{\text{घात}\times\text{कुज्या}}{\text{क्रांज्या}\times\text{द्यु}}$ = चज्या। एतेन चतुर्थश्लोक उपपद्यते ॥३-४॥

अब पुनः चरज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि. भा.—वा अग्रा को अक्षज्या से गुणकर द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा क्रान्तिज्या त्रिज्या घात को अक्षभा (पलभा) से गुणकर द्वादश गुणित द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है ॥३॥ वा घात (क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात) को अक्षज्या से गुणकर लम्बज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा घात को कुज्या से गुणकर क्रान्तिज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥४॥

उपपत्ति

$\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या ∴ कुज्या.त्रि = चज्या.द्यु दोनों पक्षों को अक्षज्या से भाग देने से $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{चज्या.द्यु}}{\text{अज्या}}$ = अग्रा ∴ चरज्या.द्यु = अज्या.अग्रा दोनों पक्षों में द्युज्या से भाग देने से $\frac{\text{अज्या.अग्रा}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। तथा $\frac{\text{पलभा.क्रांज्या}}{१२}$ = कुज्या तब $\frac{\text{कुज्या.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{पलभा.क्रांज्या.त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ इससे तृतीय श्लोक उपपन्न हुआ ॥३॥

$\frac{\text{पलभा.क्रांज्या.त्रि}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या यहां क्रांज्या. त्रि = घात तब

$\frac{\text{घात.पलभा}}{१२\times\text{द्यु}}$ = चरज्या = $\frac{\text{घात.अक्षज्या}}{\text{लंज्या.द्यु}} = \frac{\text{घात.कुज्या}}{\text{क्रांज्या}}$ इससे चतुर्थ श्लोक उपपन्न हुआ ॥ ३-४ ॥

पुनस्तदानयनान्याह।

क्रान्त्यक्षज्यासमधृतिघातो द्युज्या समनृवधहृत्।
स्वधृति क्रान्त्यक्षज्या घातो द्युष्टेष्टनरवधहृद्वा ॥५॥
तद्वृतिपलगुणकृतिहृतिरवलम्बद्युगुणघातभक्ता वा।
तद्वृत्तिपलगुण घातोऽक्षाभाघ्नोऽक्षश्रुतिद्युगुणवधहृद्वा ॥६॥

वि.भा.—क्रान्त्यक्षज्या समधृतिघातः (क्रान्तिज्याऽक्षज्या तद्धृतिवधः) द्युज्या-समनृवधहृत् (द्युज्या समशंकुभक्तः) तदा वा चरज्या भवेत्। वा स्वधृतिक्रान्त्य-क्षज्याघातः (हृतिक्रान्तिज्याऽक्षज्याघातः) द्युज्येष्टनरवधहृत् (द्युज्येष्टशंकुघात-भक्तः) तदा चरज्या स्यात् वा तद्वृतिपलगुणकृतिहृतिः (तद्धृत्यक्षज्यावर्ग अवलम्बद्युगुणघातभक्ता (लम्बज्याद्युज्ययोर्घातभक्ता) तदा चरज्या भवेत्। वा

तद्वृति पलगुणघातः (तद्धृत्यक्षज्याघातः) अक्षाभाघ्नः (पलभागुणितः) अक्षश्रुतिद्युगुणवधहृत् (पलकर्णद्युज्याघातभक्तः) तदा चरज्या भवेदिति ।।५-६।।

अत्रोपपत्तयः ।

अथ पूर्वं सिद्धं यत् $\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{तद्धृति.क्रांज्या}}{\text{समशं}}$ = अग्रा ततोऽग्राया उत्थापनेन $\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. समशं}}$ = चरज्या । अत्र $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशं}}$ = $\frac{\text{हृति}}{\text{इशं}}$ अतः $\frac{\text{क्राज्या. अज्या. हृति}}{\text{द्यु} \times \text{इशं}}$ = चरज्या ।

अथ $\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. सशं}}$ = चरज्या ∵ $\frac{\text{क्रांज्या}}{\text{सशं}} = \frac{\text{अज्या}}{\text{लंज्या}}$

∴ $\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. सशं}} = \frac{\text{अज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. लंज्या}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{द्यु. लंज्या}}$ = चरज्या

तथा $\frac{\text{क्रांज्या}}{\text{सशं}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}}$ ∴ $\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. सशं}} = \frac{\text{पलभा. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. पलक}}$ = चज्या,

एतेन सर्वमुपन्नमाचार्योक्तम् ।।५-६।।

पुनः चरज्या के आनयन प्रकारों को कहते हैं ।

हि. भा.—क्रान्तिज्या, अक्षज्या और तद्धृति के घातों को द्युज्या और समशंकु के घात से भाग देने से चरज्या होती है । वा हृति क्रान्तिज्या और अक्षज्या के घात को द्युज्या और इष्ट शंकु के घात से भाग देने से चरज्या होती है । वा तद्धृति और अक्षज्या वर्ग के घात को लम्बज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है । अथवा तद्धृति और अक्षज्या घात को पलभा से गुणकर पलकर्ण और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ।।५-६।।

उपपत्ति ।

पहले के सिद्ध स्वरूप = $\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{तद्धृति. क्रांज्या}}{\text{समशं}}$ = अग्रा के स्वरूप को उत्थापन देने से $\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. समशं}}$ = चरज्या । तथा $\frac{\text{तद्धृति}}{\text{सशं}}$ = $\frac{\text{हृति}}{\text{इशं}} = \frac{\text{क्रांज्या. अज्या. हृति}}{\text{द्यु. इशं}}$ = चरज्या ।

$\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. सशं}}$ = चरज्या, परन्तु $\frac{\text{क्रांज्या}}{\text{सशं}} = \frac{\text{अज्या}}{\text{लज्या}}$ अतः उत्थापन देने से

$\frac{\text{अज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. लंज्या}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{द्यु. लंज्या}} = \text{चरज्या}$ । तथा $\frac{\text{क्रांज्या}}{\text{सशं}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलक}}$ इसलिए

$\frac{\text{क्रांज्या. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. सशं}} = \frac{\text{पलभा. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. पलक}} = \text{चरज्या}$ ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुए ॥५-६॥

पुनस्तदानयनमाह ।

कुज्याघ्नो वा घातोऽग्राद्युगुणवधोद्धृतश्चरार्धज्या ।
नृतलहतो वा घातः स्वधृतिद्युज्यावधविभक्तः ॥७॥

वि. भा.—वा घातः (तद्धत्यक्षज्याघातः) कुज्याघ्नः (कुज्यागुणितः) अग्राद्युगुणवधोद्धृतः (अग्राद्युज्याघातभक्तः) तदा चरार्धज्या भवेत् । अथवा घातः, नृतलहतः (शंकुतलगुणितः) स्वधृतिद्युज्यावधविभक्तः (हृतिद्युज्याघातभक्तः) तदा चरज्या स्यादिति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ पूर्वानीतचरज्यास्वरूपम् $= \frac{\text{पभा. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. पलक}}$ अत्र अज्या. तद्धृति

$=$ घात तदा $\frac{\text{घात. पलभा}}{\text{द्यु. पलक}} = \text{चरज्या}$ परन्तु $\frac{\text{पभा}}{\text{पलक}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{शंतल}}{\text{हृति}}$ अतः

$\frac{\text{घात} \times \text{पभा}}{\text{द्यु. पलक}} = \frac{\text{घात. कुज्या}}{\text{घात. अग्रा}} = \frac{\text{घात. शंतल}}{\text{द्यु. हृति}} = \text{चरज्या}$ अत उपपन्नम् ॥७॥

पुनः चरज्या के आनयन कहते हैं ।

हि. भा.—घात को कुज्या से गुणकर अग्रा और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा घात को शंकुतल से गुणकर हृति और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥७॥

उपपत्ति ।

पहले के चरज्या स्वरूप $= \frac{\text{पभा. अज्या. तद्धृति}}{\text{द्यु. पलक}}$, यहां अज्या. तद्धृति $=$ घात

तब $\frac{\text{घात. पभा}}{\text{द्यु. पलक}} = \text{चरज्या}$ । परन्तु $\frac{\text{पभा}}{\text{पलक}} = \frac{\text{कुज्य}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{शंतल}}{\text{हृति}}$ इसलिए $\frac{\text{घात. पभा}}{\text{द्यु. पक}} =$

$\frac{\text{घात. कुज्या}}{\text{द्यु. अग्रा}} = \frac{\text{घात. शंतल}}{\text{द्यु. हृति}} = \text{चज्या}$, इससे उपपन्न हुआ ॥७॥

पुनश्चरज्यानयनान्याह ।

समनृतल पलगुणहृतिरिष्टनरद्यु गुणघातभक्ता वा ।
त्रिज्याग्रानृतलवधाद्द्यु ज्याधृतिघातलब्धं वा ॥८॥
अन्त्याग्रानृतलवधः स्वधृतिवर्गहृतोऽथवा चरार्धज्या ।
नृतलापम त्रिगुणहृतिरिष्टनृद्युगुणघातहृच्चरार्धज्या ॥९॥

वि. भा.—समनृतलपलगुणहृतिः (समशङ्कु शङ्कुतलाऽक्षज्याघातः) इष्टनरद्यु गुणघातभक्ता (इष्टशङ्कुद्यु ज्याघातविभाजिता) वा चरज्या भवेत् । वा त्रिज्या ग्रानृतलवधात् (त्रिज्याग्रा शङ्कुतलघातात्) द्युज्याधृतिघातलब्धं (द्युज्याहृतिघातभक्तफलं) चरज्या भवेत् ॥८॥ वा अथवा अन्त्याग्राशङ्कुतलघातः) स्वधृतिवर्गहृतः (हृतिवर्ग भक्तः) चरार्धज्या भडत् । वा नृतलापम त्रिगुणहृतिः (शङ्कुतल क्रान्तिज्या त्रिज्याघात.) इष्टनृद्यु गुणघातहृत् (इष्टशङ्कु द्युज्याघात-भक्ता) तदा चरार्धज्या भवेदिति ॥९॥

अत्रोपपत्तयः

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शंतल. समशं}}{\text{इशं}}$ = अग्रा । परन्तु $\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या

ततोऽग्रायाः स्वरूपस्योत्थापनात् $\frac{\text{शंतल. समशं. अज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ = चरज्या ।

तथा $\frac{\text{शंतल. अग्रा}}{\text{हृति}}$ = कुज्या ततः $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चज्या $\frac{\text{शंतल. अग्रा. त्रि}}{\text{हृति. द्यु.}}$

एतेन अष्टमश्लोक उपपद्यते ॥

तथा $\frac{\text{शंतल. अग्रा. त्रि}}{\text{हृति. द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$ तत उत्थापनात्

$\frac{\text{शंतल. अग्रा. अन्त्या}}{\text{हृति}^2}$ = चरज्या । $\frac{\text{शंतल. अग्रा. त्रि}}{\text{हृति. द्यु}}$ = चरज्या, अत्र हरभाज्यौ

क्रान्तिज्यया गुणितावग्रया भक्तौ तदा $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\frac{\text{हृति. द्यु. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}} = \frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$

= चज्या, एतेनोपपन्नमाचार्योक्तमिति ॥८-९॥

अब पुनः चरज्या के आनयनों को कहते हैं ।

हि. भा.—समशङ्कु शङ्कुतल और अक्षज्या के घात को इष्टशङ्कु और द्युज्या घात से भाग देते से चरज्या होती है । त्रिज्या, अग्रा और शङ्कुतल के घात में द्युज्या और हृति के घात से भाग देने से वा चरज्या होती है ॥ अथवा अन्त्या, अग्रा और शङ्कुतल के घात में हृति के वर्ग से भाग देने से चरज्या होती है । वा शङ्कुतल, क्रान्तिज्या और त्रिज्या के घात में इष्टशङ्कु और द्युज्या के घात से भाग देने से चरार्धज्या होती है ॥८-९॥

उपपत्ति

$\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{द्यु}}$ = चज्या, परन्तु $\frac{\text{शंतल. सशं}}{\text{इशं}}$ = अग्रा अतोऽग्रायाः स्वरूपस्योत्थापनात्

$\frac{\text{शंतल. सशं. अज्या}}{\text{द्यु. इशं}}$ = चज्या । तथा $\frac{\text{शंतल} \times \text{अग्रा}}{\text{हृति}}$ = कुज्या तब अनुपात से

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चज्या = $\frac{\text{शंतल. अग्रा. त्रि}}{\text{हृति. द्यु}}$ इससे आठवां श्लोक उपपन्न हुआ ।।

$\frac{\text{शंतल. अग्रा. त्रि}}{\text{हृति. द्यु}}$ = चज्या परन्तु $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$ इसलिये उत्थापन देने से

$\frac{\text{शंतल. अग्रा. अन्त्या}}{\text{हृति}^2}$ = चज्या । $\frac{\text{शंतल. अग्रा. त्रि}}{\text{हृति. द्यु}}$ = चज्या यहां हर भाज्य को क्रान्तिज्या से

गुण कर अग्रा से भाग देने से $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\frac{\text{हृति. द्यु. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}} = \frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ = चज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।८-९।।

इदानीं पुनस्तदानयनान्याह ।

नृतलान्त्यापमगुणहृतिरिष्टनृधृतिघातहृच्चार्धज्या ।
धृतिकुगुणपलगुणवधान्नृतलद्युज्यावधाप्तं वा ।।१०।।
क्रान्तिपलगुणधृतिवधाद्द्युज्या नरघातहृच्चरार्धज्या ।
त्रिगुणधृतिवधो द्युज्याहृत्प्रोन्नतगुणान्तरं वा स्यात् ।।११।।

वि. भा.—नृतलान्त्यापमगुणहृतिः (शङ्कुतलान्त्या क्रान्तिज्याघातः) इष्टनृधृतिघातहृत् (इष्टशङ्कु हृतिवधहृत्) तदा चरार्धज्या भवेत् । अथवा धृतिकुगुणपलगुणवधात् (हृतिकुज्याऽक्षज्याघातात्) नृतलद्युज्यावधाप्तं (शङ्कुतलद्युज्ययोर्घाताद्यल्लब्धं) सा चरार्धज्या भवेत् ।।१०।। वा क्रान्तिपलगुणधृतिवधात् (क्रान्तिज्याऽक्षज्याहृतिघातात्) द्युज्यानरघातहृत् (द्युज्याशङ्कुवधहृत्) तदा चरार्धज्या भवेत् । अथवा त्रिगुणधृतिवधः (त्रिज्याहृतिघातः) द्युज्याहृत् (द्युज्याभक्तः) यत्फलं तस्य प्रोन्नतगुणस्य (सूत्रस्य) अन्तरं वा चरज्या भवेदिति ।।१०-११।।

अत्रोपपत्तिः

अथ पूर्वानीतचरज्यास्वरूपम् = $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ पर $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$

अत उत्थापनात् $\frac{\text{शंतल. अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{इशं. हृति}}$ = चज्या । तथा च

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या। परन्तु $\frac{\text{हृति. अज्या}}{\text{शङ्कुतल}}$ = त्रि अत उत्थापनात्

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या. हृति. अज्या}}{\text{द्यु. शंतल}}$ = चरज्या। एतेन दशमश्लोक उपपद्यते।

अथ पूर्वचरज्यास्वरूम् = $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ परं $\frac{\text{शंतल. त्रि}}{\text{हृ}}$ = अज्या

∴ शंतल. त्रि = अज्या. हृति

ततउत्थापनात् $\frac{\text{अज्या. हृति. क्राज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ = चरज्या।

तथा $\frac{\text{त्रि. हृति}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या, अन्त्या—उन्नतज्या = चरज्या

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१०१-१॥

अब पुनः चरज्या के आनयनों को कहते हैं।

हि. भा.—शङ्कुतल अन्त्या और क्रान्तिज्या के घात में इष्टशङ्कु और हृति के घात से भाग देने से चरज्या होती है। वा हृति कुज्या और अक्षज्या के घात में शङ्कुतल और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है॥ वा क्रान्तिज्या अक्षज्या और हृति के घात में द्युज्या और शङ्कु के घात से भाग देने से चरज्या होती है। अथवा त्रिज्या और हृति के घात में द्युज्या से भाग देने से जो फल हो उसका और उन्नत का लज्या के अन्तर चरज्या होती है ॥१०-११॥

उपपत्ति

पूर्वानीत चरज्या के स्वरूप = $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ लेकिन $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{हृति}}$

अतः उत्थापन देने से $\frac{\text{शंतल. त्रि. अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{इशं. हृति}}$ = चज्या।

तथा $\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = चज्या। परन्तु $\frac{\text{हृति. अज्या}}{\text{शंतल}}$ = त्रि इससे उत्थापन देने से

$\frac{\text{कुज्या. त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कुज्या. हृति. अज्या}}{\text{द्यु. शंतल}}$ = चज्या इससे दसवां श्लोक उपपन्न हुआ॥

पूर्व चरज्या के स्वरूप = $\frac{\text{शंतल. त्रि. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ परन्तु $\frac{\text{शंतल. त्रि}}{\text{हृ}}$ = अज्या

∴ शंतल. त्रि = अज्या. हृति इससे उत्थापन $\frac{\text{अन्त्या. हृति. क्रांज्या}}{\text{इशं. द्यु}}$ = चरज्या।

तथा $\frac{\text{त्रि. हृति}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या ∴ अन्त्या — उकाज्या = चरज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१०-११॥

इदानीं पुनरपि चरज्यानयनं प्रकारद्वयेनाह ।

पलगुणकृतितद्धृतिघातस्त्रिज्याद्युगणघातभक्तो वा ।
उद्धृत्यान्त्याक्षगुणकृतिघातस्त्रिज्याकृतिस्वधृतिघातभक्तो वा ॥१२॥

वि. भा.—पलगुणकृनितद्धृतिघातः (अक्षज्यावर्गतद्धृत्योर्घातः) त्रिज्या-द्युगणघातभक्तः (त्रिज्याद्युज्ययोर्घातभक्तः) वा चरज्या भवेत्। वा उद्धृत्यान्त्याक्ष-गुणकृतिघातः (तद्धृत्यान्त्याक्षज्यावर्गघातः) त्रिज्याकृतिस्वधृतिघातभक्तः (त्रिज्यावर्गहृतिघातभक्तः) चरज्या स्यादिति ॥१२॥

अत्रोपपत्तिः

$\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा । तथा $\frac{\text{अग्रा. अज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या, अत्र चरज्यास्वरूपे

अग्राया उत्थापनात् $\frac{\text{अज्या. तद्धृति. अज्या}}{\text{त्रि. द्यु}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{त्रि. द्यु}}$ = चरज्या

अथ $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या ∴ $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ = द्यु, चरज्यास्वरूपे द्युज्याया

उत्थापनात् $\frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{त्रि. }\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति. अन्त्या}}{\text{त्रि}^2\text{. हृति}}$ = चरज्या

एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥१२॥

अब पुनः दो प्रकार से चरज्यानयन कहते हैं ।

हि. भा.—अक्षज्या वर्ग और तद्धृति के घात को त्रिज्या और द्युज्या के घात से भाग देने से चरज्या होती है । अथवा तद्धृति, अन्त्या और अक्षज्यावर्ग के घात में त्रिज्यावर्ग और हृति के घात से भाग देने से चरज्या होती है ॥१२॥

उपपत्ति

$\frac{\text{अग्रा. अज्या}}{\text{द्यु}}$ = चरज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{त्रि}}$ = अग्रा इससे चरज्या के स्वरूप में

अग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति}}{\text{त्रि. द्यु}}$ = चरज्या ।

$\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या । ∴ $\frac{\text{हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}$ = द्यु इससे पूर्वानीत चरज्या स्वरूप में द्युज्या को

उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या}^2 \text{ तद्धृति}}{\frac{\text{त्रि. हृति. त्रि}}{\text{अन्त्या}}} = \frac{\text{अज्या}^2\text{. तद्धृति. अन्त्या}}{\text{त्रि}^2\text{. हृति}} = \text{चरज्या}$ इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥१२॥

इदानीमुपसंहारमाह ।

चरपलभाग्रादीनां दिग्मात्रं साधनानि कथितानि ।
निखिलानि न शक्यन्ते पर्जन्यस्येव जलधाराः ॥१३॥

वि. भा.—चरफलभाग्रादीनां साधनानि मया दिग्मात्रं कथितान्यर्थात्पूर्वं कुज्यापलभा क्रान्तिज्या चरज्याऽग्रादीनां यानि साधनानि मयाऽभिहितानि केवलं दिग्दर्शनरूपाणि, निखिलानि (सम्पूर्णानि) कथयितुं न शक्यन्ते, पर्जन्यस्य (मेघस्य) जलधारा इवार्थाद्यथा मेघस्य जलधारायाः सीमा नास्ति तथैवोपर्युक्तविषयाणामपि नास्तीति ॥१३॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे स्वचरार्धज्याप्राणसाधनविधिः सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अब उपसंहार कहते हैं ।

हि. भा.—चर, पलभा और अग्रा आदियों के साधन दिग्मात्र अर्थात् दिग्दर्शन रूप में हमने कहा है उन सब के सम्पूर्ण विषयों को नहीं कह सकते हैं जैसे मेघ की जलधारा की सीमा नहीं है उसी तरह उन विषयों की भी सीमा नहीं है ॥१३॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में स्वचरार्धज्या. प्राणसाधनविधि नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ ॥



सप्तमोऽध्यायः

अथ लग्नादिविधिः

तत्रादौ निरक्षोदयसाधनमाह ।

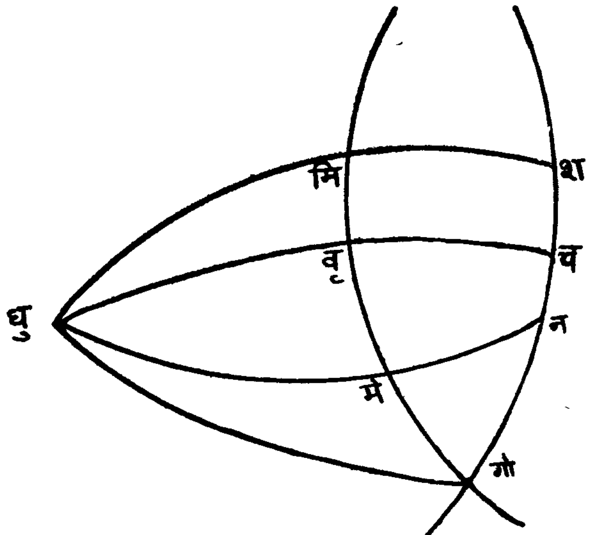
अज वृषमिथुनान्तज्या मिथुनान्तद्युज्यया हता भक्ताः ।
स्वस्वद्युज्ययाप्तधनुरन्तराणि लङ्कोदयप्राणाः ॥१॥

वि. भा.—अजवृषमिथुनान्तज्याः (मेषवृषमिथुनान्तराशिज्या) मिथुनान्तद्युज्यया (परमाल्पद्युज्यया) हताः (गुणिताः) स्वस्वद्युज्यया भक्ताः, आप्तधनुरन्तराणि (प्राप्तफलानां चापान्यधोऽधः शुद्धानि) तदा लङ्कोदयप्राणाः (लङ्कोदयासवः) भवन्तीति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

राश्यादिबिन्दुर्यदा निरक्षक्षितिजे समागच्छति ततो यावता कालेन राश्यन्तबिन्दुस्तत्क्षितिजे समागच्छति स एव कालस्तद्राशेर्निरक्षोदयासुरर्थाद्राश्याद्युपरि ध्रुवप्रोतवृत्तं कार्यं तथा राश्यन्तोपरि ध्रुवप्रोतवृत्तं कार्यं तयोर्ध्रुवप्रोतवृत्तयोरन्तर्गतनाडीवृत्तीयचापं तद्राशेर्निरक्षोदयासु प्रमाणं तदानयनं क्रियते ।

ध्रुवः=ध्रुवः। गो=गोलसन्धिः=मेषादिः । मे=मेषान्तबिन्दुः। वृ=वृषान्तबिन्दुः। मि=मिथुनान्तः गोमे=मेषान्तभुजांशाः =३०°। गोवृ=वृषान्तभुजांशाः=६०°। गोमि=मिथुनान्त भुजांशाः=९०। गोन=मेषोदयमानम् । नच=वृषोदयमानम्। चश =मियनोदयमानम्। ध्रुमे =मेषान्तद्युज्याचापम् ।



चित्र नं० १३

ध्रुवृ=वृषान्तद्युज्याचापम्।
ध्रुमि=मिथुनान्तद्युचा=परमाल्पद्युज्याचापम्। <ध्रुगोमे=परमाल्पद्युज्यांशाः।

तदा ध्रुगोमे चापीयत्रिभुजेऽनुपातः $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{एकराशिज्या}}{\text{मेषान्तद्युज्या}} =$

$\frac{\text{परमाल्पद्युज्या. मेषान्तज्या}}{\text{मेषान्तद्युज्या}} =$ मेषनिरक्षोदयज्या । एवं ध्रुगोवृचापीयत्रिभुजे कोणा-

नुपातेन $\frac{\text{परमाल्पद्यु. द्विराशिज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु. वृषान्तज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} =$ ज्या (मेषोदय + वृषो-

दय) अस्याश्चापम् = मेषोदय + वृषोदय अत्र मेषोदयमानशोधनेन वृषोदयमानं भवेत् ।

एवमेव $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या. त्रि}}{\text{मिथुनान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु. त्रि}}{\text{परमाल्पद्यु}} =$ त्रि = ज्या (मेषोदय + वृषोदय + मिथुनो) अस्याश्चापम् = मेषोदय + वृषोदय + मिथुनोदय अत्र मेषोदय + वृषोदय शोधनेन मिथुनोदयप्रमाणं भवेदेतेनाचार्योक्तमुपपद्यते ॥

भास्कराचार्येणापि सिद्धान्तशिरोमणौ "मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या क्षुण्णा हृताः स्वस्वदिनज्ययाप्ताः । चापीकृताः प्राग्वदधोविशुद्धा मेषादिकानामुदयासवो वा" इत्यनेनेत्थमेव मेषादिराशीनां निरक्षोदय (लङ्कोदय) मानानि साधितानि सूर्यसिद्धान्तेऽपि त्रिभद्युकर्णार्धगुणः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः, इत्यादिनेत्थमेव राशीनां निरक्षोदयमानसाधनमभिहितमस्तीति ॥१॥

अब लग्नादिविधि नामक अध्याय आरम्भ किया जाता है उसमें पहले राशियों के निरक्षोदय मान के साधन कहते हैं ।

हि भा.—मेषान्तज्या, वृषान्तज्या और मिथुनान्तज्या को मिथुनान्तद्युज्या (परमाल्पद्युज्या) से गुणकर अपनी अपनी द्युज्या से भाग देकर जो फल हो उनके चाप को अधोऽध शुद्ध करने से उन राशियों के लङ्कोदयासु मान होते हैं ॥१॥

उपपत्ति

उपर दिये चित्र को देखिये। ध्रुव = ध्रुव । गो = गोलसन्धि = मेषादि । मे = मेषान्त बिन्दु । वृ = वृषान्त बिन्दु । मि = मिथुनान्तबिन्दु । गोमे = मेषान्तभुजांश = ३०°, गोवृ = वृषान्तभुजांश = ६०°, गोमि = मिथुनान्तभुजांश = ९०, गोन = मेषनिरक्षोदयमानच = वृषनिरक्षोदयमान, चश = मिथुननिरक्षोदममान । ध्रुमे = मेषान्तद्युज्याचाप ध्रुवृ = वृषान्तद्युज्याचाप ध्रुमि = मिथुनान्तद्युज्याचाप = परमाल्पद्युज्याचाप < ध्रुगोमे = परमाल्पद्युज्यांश । ध्रुगोमे

चापीय त्रिभुज में कोणानुपात से $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या. एकराशिज्या}}{\text{मेषान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु.मेषान्तज्या}}{\text{मेषान्तद्यु}} =$

मेषनिरक्षोदयज्या । इसके चाप करने से मेषनिरक्षोदय मान होता है । इसी तरह ध्रुगोवृ-

चापीय त्रिभुज में कोणानुपात से $\frac{\text{परमाल्पद्यु. द्विराशिज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} = \frac{\text{परमाल्पद्यु. वृषान्तज्या}}{\text{वृषान्तद्यु}} =$ ज्या

(मेषोदय + वृषोदय) इसके चाप करने से मेषोदय + वृषोदय इसमें मेषोदय घटाने से वृषोदय

होता है। एवं ध्रु गोमिचापीय त्रिभुज में कोणानुपात से $\frac{\text{परमाल्पद्यु. त्रि}}{\text{पतमाल्पद्यु}}$ = त्रि = ज्या (मेषोदय + वृषोदय + मिथुनोदय) चाप करने से मेषोदय + वृषोदय + मिथुनोदय इसमें मेषोदय + वृषोदय घटाने से मिथुनोदयमान होता है इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न होता है॥ सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य भी "मेषादिजीवास्त्रिगृह द्युमौर्व्या क्षुण्णा हृताः स्वस्वदिनज्ययाप्ताः" इत्यादि से इसी तरह मेषादि राशियों के निरक्षोदयमान साधन किया है। सूर्यसिद्धांत में भी 'त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वहोरात्रार्धभाजिताः' इत्यादि से इसी तरह राशियों के निरक्षोदयमान के साधन किये हैं॥१॥

इदानीं पुना राशीनां निरक्षोदयसाधनमाह।

क्रान्तिज्या राशिज्या कृतिविवरपदैर्हृता त्रिभज्याप्ताः।
स्वद्युज्ययाऽऽप्तधनुषो विवराण्यथवा निरक्षराश्युदयाः ॥२॥

वि. भा.—त्रिभज्या (त्रिज्या) क्रान्तिज्या राशिज्या कृतिविवरपदैः (स्वस्वक्रान्तिज्याराशिभुजांशज्योर्वर्गान्तरमूलैः) हृताः (गुणिताः) स्वद्युज्ययाऽऽप्ताः (स्वस्वद्युज्यया भक्ताः) आप्तधनुषो विवराणि (आप्तफलचापानामन्तराणि) अथवा निरक्षराश्युदयाः (लङ्कोदयाः) भवन्तीति ॥२॥

अत्रोपपत्तिः।

अथ मेषान्तोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्ते मेषान्तान्नाडीवृत्तं यावन्मेषान्तक्रान्तिभुज एको भुजः। गोलसन्धितो मेषान्तं यावन्मेषान्तभुजांशाः कर्णो द्वितीयो भुजः। नाड़ीवृत्ते मेषान्तविषुवांशाः (मेषनिरक्षोदयाः) कोटिस्तृतीयो भुज इति भुजकर्ण कोटिभिरुत्पन्नस्य चापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रबन्धनं क्रियते। भूकेन्द्राद्गोलसन्धिगता रेखा कार्या तदुपरि मेषान्ताल्लम्बः कार्यः सा मेषान्तज्या (मेषान्तभुजज्या)। तथा भूकेन्द्राद् ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तयोर्योगगता रेखा कार्या, तदुपरि मेषान्ताल्लम्बः कार्यः सा मेषान्तक्रान्तिज्या, एतयोः (मेषान्तज्या—मेषान्तक्रान्तिज्ययोर्मूलगता रेखा कार्या सा नाड़ीवृत्तधरातलगता, क्रान्तिज्याया नाड़ीवृत्तधरातलोपरिलम्बत्वात्तद्रेखोपर्यपि लम्बत्वमतो मेषान्तज्या—मेषान्तक्रान्तिज्या तन्मूलगतरेखाभिर्यज्जात्यत्रिभुजं जातं तदेव पूर्वोक्तचापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रं भवितुमर्हति। परमत्र त्रिभुजे मेषान्तज्या—मेषान्तक्रान्तिज्ये मेषान्तभुजांशतत्क्रान्त्यंशयोर्ज्यारूपे, तन्मूलगता रेखा विषुवांशचापस्य ज्या नास्ति, विषुवांशज्या तु गोलसन्धिगतरेखोपरि मेषान्तगतध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तयोः सम्पाताल्लम्बरूपा रेखाऽस्ति। क्रान्तिज्यामूलाद् भकेन्द्रं यावद्रेखा द्युज्याऽस्ति। मेषान्तज्या—तत्क्रान्तिज्ययोर्मूलगता रेखा गोलसन्धिगतरेखोपरिलम्बरूपाऽस्ति। मेषान्तान्नाड़ीवृत्तधरातलोपरि क्रान्तिज्यायालम्बत्वसिद्धकरणनियमेन, एतावता सजातीयं त्रिभुजद्वयं जायते भूकेन्द्राद्ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातगता रेखा त्रिज्याकर्ण एको भुजः। ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पाताद्गोलसन्धिगतरेखोपरि लम्बो विषुवांशज्या भुजो

द्वितीयो भुजः। विषुवांशज्या मूलाद् भूकेन्द्रं यावद्विषुवांशकोटिज्या कोटिस्तृतीयो भुजः, इति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम्। तथा क्रान्तिज्यामूलाद् भकेन्द्रं यावद्द्युज्या कर्णं एको भुजः। मेषान्तज्या—तत्क्रान्तिज्ययोर्मूलगता रेखा भुजो द्वितीयो भुजः। मेषान्तज्यामूलाद् भूकेन्द्रं यावत्कोटिस्तृतीयो भुजः। इति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नं द्वितीयं त्रिभुजम्। एतयोः साजात्यादनुपातः क्रियते मेषान्त्यद्युज्यया यदि बद्धरेखा लभ्यते तदा त्रिज्यया किं समागच्छति मेषान्तविषुवांशज्या (मेषनिरक्षोदयज्या) $= \frac{\text{बद्धरेखा. त्रि}}{\text{मेषान्तद्यु}} =$

$\frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}}\sqrt{\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेषान्तक्रांज्या}^2}$ अस्याश्चापं तदा मेषनिरक्षोदयमानम्। एवं

$\frac{\text{त्रि}}{\text{वृषान्तद्यु}}\sqrt{\text{वृषान्तज्या}^2 - \text{वृषान्तक्रांज्या}^2} = \text{वृषान्तविषुवांशज्या} = \text{ज्या}$ (मेषोदय+वृषोदय) चापकरणेन मेषोदय+वृषोदय अत्र मेषोदयशोधनेन वृषोदयमानं भवेत्। एवमेव $\frac{\text{त्रि}}{\text{मिथुनान्तद्यु}}\sqrt{\text{मिथुनान्तज्या}^2 - \text{मिथुनान्तक्रांज्या}^2} = \frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}$

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{परमक्रांज्या}^2} = \frac{\text{त्रि. पद्यु}}{\text{पद्यु}} = \text{त्रि} = \text{ज्या}$ (मेषोदय+वृउ+मिउ) चापकरणेन मेषोदय+वृषोदय+मिथुनोदय अत्र मेषोदय+वृषोदय शोधनेन मिथुनोदयमानं भवेदिति॥ पूर्वप्रदर्शितचापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रबन्धनेन सिद्धं यत्कस्यापि चापीयजात्यक्षेत्रस्य ज्याक्षेत्रे कर्णचापस्य ज्या सर्वदा वास्तवा भवति भुजकोटिचापयोरेकस्यापि ज्या वास्तवा भवति तदितरस्य चापस्य ज्या वास्तवा न भवति किन्तु यस्य चापस्य ज्या वास्तवा तच्चापकोटि व्यासार्धवृत्ते परिणता भवति यथोपरि प्रदर्शितचापीयजात्यत्रिभुजस्य ज्याक्षेत्रे मेषान्तज्या कर्णचापज्या वास्तवैवास्ति मेषान्तक्रान्तिचापस्यापि ज्या वास्तवास्ति किन्तु मेषान्तविषुवांशचापज्या वास्तवा नास्ति किन्तु मेषान्तक्रान्तिकोटिव्यासार्धवृत्ते (द्युज्यावृत्ते) परिणताऽस्ति तेन सा त्रिज्या वृत्ते परिणमनेन वास्तवविषुवांशज्या (निरक्षोदयज्या) भवतीति ॥२॥

अब पुनः राशियों के निरक्षोदयमानानयन कहते हैं।

हि. भा.— त्रिज्या को अपनी अपनी राशि भुजज्या और क्रान्तिज्या के वर्गान्तरमूल से गुणकर अपनी अपनी द्युज्या से भाग देकर जो फल हो उनके चापों के अधोऽधः शुद्ध करने से निरक्षदेशीय राश्युदय मान होते हैं॥२॥

उपपत्ति

मेषान्तो परिगत ध्रुव प्रोतवृत्त में मेषान्त से नाड़ीवृत्त तक मेषान्त क्रान्ति भुज एक भुज मेषान्त भुजांश कर्ण द्वितीय भुज। नाड़ी वृत्त में मेषान्त विषुवांश (मेषनिरक्षोदय)

कोटि तृतीय भुज, इन भुज कर्ण और कोटि से उत्पन्न चापीय जात्य त्रिभुज के ज्याक्षेत्र करते हैं। भूकेन्द्र से गोल सन्धिगत रेखा करना उसके ऊपर मेषान्त से जो लम्बरेखा होती है वह मेषान्तज्या है। भूकेन्द्र से ध्रुव प्रोत वृत नाड़ीवृत के सम्पात में रेखालाना उसके ऊपर मेषान्त से जो लम्ब रेखा होती है वह मेषान्त क्रान्तिज्या है। इन दोनों (मेषान्तज्या और मेषान्तक्रान्तिज्या) की मूलगत रेखा (बद्धरेखा) नाड़ीवृत्त धरातलगत है। क्रान्तिज्या नाड़ीवृत्त धरातल के ऊपर लम्ब है इसलिये इस बद्ध रेखा के ऊपर भी क्रान्तिज्या लम्ब होगी अतः मेषान्तज्या—मेषान्त क्रान्तिज्या और बद्ध रेखाओं से जो जात्य त्रिभुज हुआ है वही पूर्वोक्त चापीय जात्य त्रिभुज का ज्याक्षेत्र हुआ। लेकिन इस त्रिभुज में मेषान्तज्या और मेषान्तक्रान्तिज्या क्रमशः मेषान्तभुजांशज्या और मेषान्त क्रान्तिचाप की ज्या है पर बद्ध रेखा विषुवांश चाप की ज्या नहीं है, क्योंकि गोलसन्धिगत रेखा के ऊपर नाड़ीवृत्त ध्रुव प्रोत वृत्त के सम्पात से जो लम्बरेखा होगी वही विषुवांशज्या है। क्रान्तिज्या के मूल से भूकेन्द्र पर्यन्त रेखा द्युज्या है। बद्धरेखा गोल सन्धिगत रेखा के ऊपर लम्ब है मेषान्त से नाड़ी वृत्त धरातल के ऊपर क्रान्तिज्या के लम्बत्वकरण नियम से, अब दो त्रिभुज बनते हैं, भूकेन्द्र से नाड़ीवृत्त और ध्रुव प्रोत वृत्त सम्पातगत त्रिज्या रेखा कर्ण भुज। विषुवांशज्या भुज द्वितीयभुज, विषुवांशज्या मूल से भूकेन्द्र तक विषुवांश कोटिज्या कोटितृतीय भुज इन कर्णभुज और कोटि से एक त्रिभुज बना। तथा क्रान्तिज्या मूल से भूकेन्द्र तक द्युज्या कर्ण एक भुज, बद्ध रेखा भुज द्वितीयभुज। मेषान्तज्या मूल से भूकेन्द्र तक कोटि तृतीय भुज; इन कर्णभुज और कोटि से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज हुआ। इन दोनों त्रिभुजों के सजातीय होने के कारण अनुपात करते हैं यदि मेषान्त द्युज्या में बद्धरेखा पाते हैं तो त्रिज्या में क्या इस अनुपात से मेषान्त विषुवांशज्या (मेषनिरक्षोदयज्या) आती हैं।

$\frac{\text{बद्धरेखा. त्रि}}{\text{मेषान्तद्यु}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}} \sqrt{\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेषान्तक्रांज्या}^2}$ इसके चाप करने से मेषनिरक्षोदयमान होता है। एवं $\frac{\text{त्रि}}{\text{वृषान्तद्यु}} \sqrt{\text{वृषान्तज्या}^2 - \text{वृषान्तक्रांज्या}^2} = \text{वृषान्त त्रिज्या} = \text{ज्या}$ (मेषान्त + वृषोदय) चाप करने से मेषोदय + वृषोदय इसमें मेषोदय को घटाने से वृषोदय मान होता है। इसी तरह $\frac{\text{त्रि}}{\text{मिथुनान्तद्यु}} \sqrt{\text{मिथुन्तज्या}^2 - \text{मिथुनक्रांज्या}^2} = \frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}$

$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{परमक्रांज्या}^2} = \frac{\text{त्रि. पद्यु}}{\text{पद्यु}} = \text{त्रि} = \text{ज्या}$ (मेउ + वृउ + मिउ) चाप करने से मेउ + वृउ + मिउ इसमें मेउ + वृउ घटाने से मिथुनोदयमान होता है पूर्व प्रदर्शित चापीय जात्य त्रिभुज के ज्या क्षेत्र देखने से सिद्ध होता है कि किसी चापीय जात्यक्षेत्र के ज्याक्षेत्र में कर्ण चाप की ज्या सर्वदा वास्तविक होती है। भुज और कोटिचाप में एक की ज्या वास्तव होती है इतरचाप की ज्या वास्तव नहीं होती है किन्तु जिस चाप की ज्या वास्तविक होती है उस चाप के कोटि व्यासार्ध वृत्त में परिणत होती है, जैसे पूर्व प्रदर्शित चापीय जात्य त्रिभुज के ज्याक्षेत्र में मेषान्तज्या कर्णचापज्या वास्तव है, मेषान्तक्रान्ति चाप की ज्या भी वास्तव

है लेकिन मेषान्त विषुवांशचापज्या वास्तव नहीं है किन्तु मेषान्तक्रान्ति कोटिव्यासार्ध वृत्त में (द्यु ज्यावृत्त में) परिणत है इसलिये उसको त्रिज्यावृत्त में परिणामन करने से वास्तव विषुवांशज्या (निरक्षोदयज्या) होती है ॥२॥

पुनस्तदानयनमाह ।

मेषातिक्रान्तिज्या ज्यायोगहतात्तदन्तरान्मूलम् ।
त्रिज्यागुणं द्युजीवाऽवाप्तचापान्तराण्यथवा ॥३॥
वाजादिक्रान्तिज्या ज्यायोगहतात्तदन्तरान्निघ्नात् ।
त्रिज्याकृत्या द्युज्याकृत्याप्तपदधनुरन्तराण्यथवा ॥४॥

वि. भा.—अथवा मेषान्तक्रान्तिज्यायोगहतात्तदन्तरात् (मेषादिराशिक्रान्तिज्यातद्भुजज्ययोर्योगगुणितात्तदन्तरात् (मेषादिराशिक्रान्तिज्यातद्भुजज्ययोरन्तरात्) मूलं त्रिज्यागुणं (त्रिज्यागुणितं) द्युजीवाऽवाप्तं चापान्तराणि (द्युज्याविभक्तं यानि फलानि तच्चापान्तराणि) मेषादिराशीनां निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥३॥

अथवा मेषादिक्रान्तिज्या ज्यायोगहतात्तदन्तरात् (मेषादिराशिक्रान्तिज्या तद्भुजज्ययोर्योगगुणितात्तदन्तरात्) त्रिज्याकृत्या (त्रिज्यावर्गेण) निघ्नात् (गुणितात्) द्युज्याकृत्याप्तपदधनुरन्तराणि (द्युज्यावर्गभक्ताद्यानि फलानि तच्चापान्तराणि, मेषादिराशीनां निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥४॥

अत्रोपपत्तिः ।

पूर्वं द्वितीयश्लोकोपपत्तिसिद्धस्वरूपम् $\frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}}\sqrt{\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेक्रांज्या}^2}$

$= \text{मेनिरक्षोदयज्या} = \frac{\text{त्रि}}{\text{मद्यु}}\sqrt{(\text{मेषान्तज्या} + \text{मेक्रांज्या})(\text{मेषान्तज्या} - \text{मेक्रांज्या})}$

एवं $\frac{\text{त्रि}}{\text{वृद्यु}}\sqrt{(\text{वृषान्तज्या} + \text{वृक्रांज्या})(\text{वृषान्तज्या} - \text{वृक्रांज्या})} = \text{ज्या}\ (\text{मेनिउ} + \text{वृनिउ})$ एवमेव $\frac{\text{त्रि}}{\text{मिद्यु}}\sqrt{(\text{मिथुनान्तज्या} + \text{पक्रांज्या})(\text{मिथुनान्तज्या} - \text{पक्रांज्या})}$

$= \frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}\sqrt{(\text{त्रि} + \text{पक्रांज्या})(\text{त्रि} - \text{पक्रांज्या})} = \text{ज्या}\ (\text{मेनिउ} + \text{वृनिउ} + \text{मिनिउ})$

एतेषां चापान्यधोऽधः शुद्धानि तदा मेषादिराशीनां निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥३॥

अथवा $\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}(\text{मेषान्तज्या}^2 - \text{मेक्रांज्या}^2) = \text{मेनिरक्षोदयज्या}^2$ मूलेन

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}}$ (मेषान्तज्या^{2}—मेक्रांज्या^{2} वर्गान्तरस्य तरघातसमत्वात्

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}(\text{मेषान्तज्या}+\text{मेक्रांज्या})(\text{मेषान्तज्या}-\text{मेक्रांज्या})}$

=मेषनिरक्षोदयज्या

एवं $\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{वृद्यु}^2}(\text{वृषान्तज्या}+\text{वृक्रांज्या})(\text{वृषान्तज्या}-\text{वृक्रांज्या})}$

=ज्या (मेषनिरक्षोदय+वृनिरक्षोदय)

एवमेव $\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{पद्यु}}(\text{त्रि}+\text{परमक्रांज्या})(\text{त्रि}-\text{पक्रांज्या})}$ =

ज्या (मेनिरक्षोदय+वृनिरक्षोदय+मिनिरक्षोदय)

एषां चापान्यधोऽधः शुद्धानि तदा मेषादिराशीनां निरक्षोदयमानानि भवन्तीति ॥४॥

हि. भा.—अथवा मेषादि राशियों की क्रान्तिज्या और भुजज्या के योग से उन्हीं के अन्तर को गुणकर मूल लेना उनको त्रिज्या से गुणकर अपनी अपनी द्युज्या से भाग देने से जो फल आवे उनके चाप को अधोऽधः शुद्ध करने से मेषादि राशियों के निरक्षोदय मान होते हैं ॥३॥

अथवा मेषादि राशियों की भुजज्या और क्रान्तिज्या के योगान्तर घात को त्रिज्या वर्ग से गुणकर अपने अपने द्युज्या वर्ग से भाग देकर जो फल हो उनके मूलों के चापों को अधोऽधः शुद्ध करने से उनके निरक्षोदयमान होते हैं ॥४॥

उपपत्ति ।

पहले के दूसरे श्लोक की उपपत्ति में सिद्ध स्वरूप $\frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}}\sqrt{\text{मेषान्तज्या}^2-\text{मेक्रांज्या}^2}$ =

$\frac{\text{त्रि}}{\text{मेद्यु}}\sqrt{(\text{मेषान्तज्या}+\text{मेक्रांज्या})(\text{मेषान्तज्या}-\text{मेक्रांज्या})}$ = मेनिरक्षोदयज्या एवं

$\frac{\text{त्रि}}{\text{वृद्यु}}\sqrt{(\text{वृषान्तज्या}+\text{वृक्रांज्या})(\text{वृषान्तज्या}-\text{वृक्रांज्या})}$ = ज्या (मेनिउ + वृनिउ) इसी तरह

$\frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}\sqrt{(\text{मिथुनान्तज्या}+\text{परक्रांज्या})(\text{मिथुनान्तज्या}-\text{परक्रांज्या})}$

$=\frac{\text{त्रि}}{\text{पद्यु}}\sqrt{(\text{त्रि}+\text{पक्रांज्या})(\text{त्रि}-\text{पक्रांज्या})}$ = ज्या (मेनिउ+वृनिउ+मिनिउ)

इन सब के चाप कर अधोऽधः शुद्ध करने से मेषादि राशित्रय के निरक्षोदय मान होते हैं ॥३॥

अथव

$\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}$ (मेषान्तज्या^{2}—मेक्रांज्या^{2}) = मेनिरक्षोदयज्या^{2} वर्गान्तर के योगान्तर घात के बराबर होने से

$\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2}$ (मेषान्तज्या + मेक्रांज्या) (मेषान्तज्या—मेक्रांज्या) = मेनिरक्षोदज्या^{2}

मूल लेने से

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{मेद्यु}^2} (\text{मेषान्तज्या} + \text{मेक्रांज्या}) (\text{मेषान्तज्या} - \text{मेक्रांज्या})}$ = मेनिरक्षोदयज्या इसी तरह

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{वृद्यु}^2} (\text{वृषान्तज्या} + \text{वृक्रांज्या}) (\text{वृषान्तज्या} - \text{वृक्रांज्या})}$ =

ज्या (मेनिरक्षोदय + वृनिरक्षोदय) इसी तरह

$\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2}{\text{पद्यु}^2} (\text{त्रि} + \text{पक्रांज्या}) (\text{त्रि} - \text{पक्रांज्या})}$ =

ज्या (मेनिरक्षोदय + वृनिरक्षोदय + मिनिरक्षोदय)

इन सब के चाप करने से और अधोऽधः शुद्ध करने से मेषादि राशित्रय के निरक्षोदय मान होते हैं ।।४।।

अथ निष्पन्नांस्तानसूनाह ।

ते चाङ्कागाङ्कभुवो १६७९ऽङ्कगोऽगशशिनः १७९६ शराऽग्निगोचन्द्राः१९३५।
व्यस्तास्तथा चरदलोनयुता निजधाम्नि षट्सु चोत्क्रमतः ॥५॥
निजसप्तम उदयासुभिरस्तं राशिः समेति नियमेन ।
लङ्कोदयासुभिः स्वैर्याम्योत्तरवृत्तमायाति ॥६॥

वि. भा.—ते च पूर्वोक्तप्रकारेण समागता निरक्षोदयासव एतावन्तः श्लोकोक्ता भवन्ति । शेषं स्पष्टमिति ।।५-६।।

अत्रोपपत्तिः ।

स्वदेशनिरक्षदेशार्कोदयान्तरं चरम् । मेषादिस्त स्वदेशे निरक्षे च समकालमुदेति परं मेषान्तविन्दुः पूर्वं स्वक्षितिजे ततः पश्चादुन्मण्डले लगति । तेन चरखण्डोनो निरक्षमेषोदयः स्वदशीयमेषोदयो भवेत् । एवं वृषमिथुनोदयोरपि भवति । किन्तु कर्क्यादौ चरखण्डानामपचीयमानत्वाद्धनं भवति । तुलादावुन्मण्डलस्य स्वक्षितिजादधःस्थितत्वाच्चरखण्डानि धनानि भवन्ति । मकरादौ हि चरखण्डानामपचीयमानत्वादृणानि भवन्तीति सर्वं बुद्धिमता गोलोपरि ज्ञेयमिति ।।

हि. भा.—पूर्वोक्त प्रकार से मेषादि राशियों के जो निरक्षोदयासु प्रमाण आये हैं वे श्लोक कथित के अनुसार हैं । शेष बात स्पष्ट है ।।५-६।।

उपपत्ति

स्वदेशार्कोदय और निरक्षदेशार्कोदय के अन्तर चर है। मेषादि अपने देश और निरक्षदेश में एक ही समय में उदित होती है। लेकिन मेषान्त बिन्दु पहले अपने क्षितिज में उदित होता है उसके बाद उन्मण्डल में इसलिये निरक्षदेशीय मेषोदय में चरखण्डा घटाने से स्वदेशीय मेषोदयमान होता है। इसी तरह वृष और मिथुन का भी समझना चाहिये।

लेकिन कर्क्यादि में चरखण्डों के अपचीयमानत्व के कारण धन होते हैं। तुलादियों में अपने क्षितिज से उन्मण्डल के नीचा होने के कारण चरखण्ड धन होते हैं। मकरादियों में चरखण्ड के अपचीयमानत्व के कारण ऋण होते हैं। ये सब बातें गोल के ऊपर स्वयं समझनी चाहिए ॥५-६॥

इदानीं पूर्वानीतैः स्वदेशीयराश्युदयमानैर्लग्नानयनमाह।

द्युगताद्दिवा विलग्नं निशिषड्भयुताद्रवेः साध्यम्।
भोग्यात्तात्कालिकरविभवनागतकलागुणिताः ॥७॥
स्वोदयकाला विभक्ता राशिकलाभिः फलाऽसवोऽसुभ्यः।
प्रोह्येष्टेभ्यो भोग्यं क्षिपेद्रवौ तदनु यावन्तः ॥८॥
शुद्धयन्त्युदया राशीन् क्षिपेद्रवौ तावतोऽवशेषं च।
खगुणघ्नमशुद्धोदयहृद्भागादौ क्षिपेद्विलग्नं प्राक् ॥९॥

वि. भा.—दिवा (दिवसे) द्युगतात् (दिनगतकालात्) लग्नानयनं कार्यं, निशि (रात्रौ) षड्भयुताद्रवेः (भार्धयुक्तरवितः) लग्नं साध्यम्। भोग्यात् (यस्मिन्निष्टकाले लग्नसाधनमभीष्टं तस्मिन् काले तात्कालिकरविं प्रसाध्य रव्याक्रान्तराशेर्भोग्यांशात्) लग्नं साध्यते। स्वोदयकालाः (रव्याक्रान्तराशेरुदयासवः) रविभवनागतकला गुणिताः (रव्याक्रान्तिराशेर्भोग्यकलाभिर्गुणिताः राशिकलाभिः (अष्टादशशतकलाभिः) विभक्ताः फलाऽसवः (फलं रव्याक्रान्तराशेर्भोग्यासवो भवन्ति) तेऽसव इष्टेभ्योऽसुभ्यः (इष्टकालेभ्यः) प्रोह्य भोग्यं (भोग्यांशमानं) रवौ क्षिपेत् (योजयेत्) तदनु (पश्चात्) यावन्तो राश्युदयाः शुद्धयन्ति ते शोध्याः तावतो राशीन् रवौ क्षिपेत् (यावन्तो राश्युदया शुद्धास्तेषां राश्युदयानां संख्या पूर्वरवौ क्षिपेत्) अवशेषं खगुणघ्नं (त्रिंशता गुणितं) अशुद्धोदयहृत् (अशुद्धराश्युदयप्रमाणेन भक्तं) फलमंशात्मकं रवौ भागादौ (अंशादौ) क्षिपेत्तदा प्राक् (प्रथमं) विलग्नं (प्रथमलग्नं) भवेदिति ॥७-९॥

अत्रोपपत्तिः।

अथोदयक्षितिजक्रान्तिवृत्तयोः सम्पातबिन्दुर्लग्नमुच्यते तज्ज्ञानार्थमिष्टकालतात्कालिकरव्योः प्रयोजनं भवत्यर्थाद्वर्त्तमानरवीष्टकालयोर्ज्ञानेन तज्ज्ञानं भवितुमर्हति। रविभोग्यासु-लग्नभुक्तासु-रविलग्नान्तरालोदयासूनां योगरूपमेवेष्टकालमानम्। अत्रेष्टकाले यदि वर्त्तमानरवेर्भोग्यासुप्रमाणं शोध्यते तदालग्नभुक्तासु रवि-

लग्नान्तरालोदयप्रमाणयोर्योगोऽवशिष्यतेऽतो वर्त्तमानरवेः (तात्कालिकरवेः) भोग्यासु प्रमाणमानीयते तत्रानुपातो यदि राशिकलाभिस्तात्कालिकरव्याक्रान्त-राश्युदयाऽसवो लभ्यन्ते तदा तात्कालिकरविभोग्यकलाभिः किमित्यनुपातेन समागच्छति तात्कालिकरविभोग्यासवस्तत्स्वरूपम् $= \frac{\text{राश्युदयासु} \times \text{रविभोग्यकला}}{\text{राशिकला}}$

एवं समागतं रविभोग्यासु प्रमाणमिष्टकाले शोध्यं तदा लग्नभुक्तासु रविलग्ना-न्तरालोदयासु प्रमाणयोर्योगोऽवशिष्यते। रवावपि भोग्यांशान् क्षिप्त्वा वर्त्तमान-राशिं पूरयेत्। तथाऽधुनाऽऽनीतलग्नभुक्तासु रविलग्नान्तरालोदयासु योगे रवि-लग्नान्तरालोदयासवः शोध्याः (शेषादर्थादिष्टकाले रविभोग्यासु शोधने यः शेषस्त-स्मादुत्तरान् राश्युदयांश्च शोधयेत्, यावन्तो राश्युदयाः शोधितास्तेषां शोधितानां राश्युदयानां संख्या पूर्वरवौ क्षिपेत्। ततोऽनुपातो यद्यशुद्धोदयासुभिस्त्रिंशदंशा लभ्यन्ते तदा शेषासुभिः किमित्यनुपातेन यदंशात्मकं फलं तद्रवौ देयं तदा राश्यादिकं लग्नं भवेदिति परमितिलग्नानयनं न समीचीनं "क्षेत्राणां स्थूलत्वात्स्थूला उदया भवन्ति राशीनामि" त्याद्युक्ते राश्युदयमानस्यासमीचीनत्वात्तत्सम्बन्धेन साधि-ताऽन्यविषयस्याप्यसमीचीनत्वमेवाऽत एतस्याऽऽचार्यस्याऽन्येषामपि प्राचीना-चार्याणां यल्लग्नानयनं तत्र समीचीनम्॥ सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्यां "या सायनार्कस्य भुजज्यका सेत्या" त्यादिना लग्नानयनं संशोधकेन कृतमस्ति तत्र त्रुटिमवलोक्य म. म. पण्डित सुधाकरद्विवेदिना तदानयनं कृतं, तदानयन-प्रकारश्च—

आकाशमध्यविषुवांशवशात्प्रकुर्याद्यष्टिं दिवाकरमक्रमकोटिभागान्।
यष्टिं जिनांशजगुणं विषुवांशकं च स्वाक्षाढ्य हीनदिनभागमितं क्रमेण॥
सौम्यानुदग्गोलगते प्रकल्प्य साध्यो भुजांशोऽथ भुजांशरव्योः।
युतेर्मितं सायनलग्नमानं भवेत्स्फुटं गोलविदां बुधानाम्॥

सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्यां चन्द्रदेवशास्त्रिणोऽपि लग्नानयनमस्ति परन्तु तत्सर्वापेक्षया सुधाकरद्विवेदिनामेव तदानयनं समीचीनमस्ति। एतद्विषये विशे-षज्ञानार्थं मत्कृतं लग्नानयनं विलोक्यं तत्र पूर्वाचार्यकृतलग्नानयनक्रियाऽपेक्षया क्रिया लाघवमुत गौरवमित्यादि तदानयन-(लग्नानयन)-चमत्कृतिरपि द्रष्टव्या विवेचकैरिति॥७-९॥

हि.भा.—दिन में दिनगतकाल से और रात्रि में छः राशि जोड़कर लग्नानयन करना चाहिये। वर्त्तमान रवि की भोग्यकला को वर्त्तमान रवि राशि के स्वोदयासु से गुणकर राशिकला से भाग देने से रवि की भोग्यासु होती है, इस भोग्यासु प्रमाण को इष्टासु (इष्ट-काल) में घटा कर भोग्यांश को रवि में जोड़ देना चाहिये। इसके बाद शेष में (इष्टकाल में रवि भोग्यासु घटाने से जो शेष रहा है) जितने राश्युदयमान घटे घटा देना, जिस राशि का उदयमान नहीं घटेगा उसका नाम 'अशुद्धोदय' है, जितने राश्युदयमान घटे हैं उन राश्युदयों की संख्या को पूर्व रवि में जोड़ देना, शेष "इष्टासु में रविभोग्यासु और राश्युदय मानों को

घटाने से जो शेष रहा है) को तीस से गुणकर अशुद्धोदय से भाग देने जो भागादि (अंशादि) फल होता है उसको रवि में जोड़ने से प्रथम लग्न होता है ॥७-९॥

उपपत्ति ।

उदयक्षितिज और क्रान्तिवृत्त के सम्पात बिन्दु को लग्न कहते हैं, इसका साधन इष्टकाल और रवि के ज्ञान से किया जाता है, रविभोग्यासु, लग्नभुक्तासु और रवि, लग्न के बीच में जो राशियां हैं उनके उदयमानासु इन सब के योग रूप ही इष्टकाल है, इस इष्टकाल में यदि रवि भोग्यासु प्रमाण घटा दिया जाय तो लग्नभुक्तासु और रवि लग्नान्तरालोदय का योग रहेगा इसलिए रवि भुक्तांसु प्रमाण अनुपात से लाते हैं । यदि राशिकला में वर्त्तमान रवि राश्युदयासु पाते हैं तो वर्त्तमान रवि भोग्यकला में क्या इस अनुपात से वर्त्तमान रविभोग्यासु प्रमाण आता है $\frac{\text{वर्त्तमान रवि राश्युदयासु} \times \text{रविभोग्यक}}{\text{राशिकला}} = \text{वर्त्तमान}$ रवि भोग्यासु । इसको इष्टासु में घटाने से जो शेष रहता है उसका नाम शेष रखते हैं। रवि में भोग्यांश को भी जोड़कर वर्त्तमान राशि को पूरा करना । आनीत शेष में वर्त्तमान रवि राशि के बाद जिन राशियों के उदयमान घटे उन्हें घटा देना, शेष का नाम शेषासु रखना जिस राशि का उदयमान नहीं घटे उसका नाम 'अशुद्धोदय' रखना, जितनी राशियों के उदयमान घटे हैं उनकी संख्या पूर्व रवि में जोड़ देना, तब अनुपात करते हैं यदि अशुद्धोदयासु में तीस अंश पाते हैं तो शेषासु में क्या इस अनुपात से जो अंशात्मक फल आवे उसको रवि में जोड़ देने से राश्यादिक लग्न प्रमाण होता है ॥ लेकिन यह लग्नानयन ठीक नहीं हैं "क्षेत्राणां स्थूलत्वात्स्थूला उदया भवन्ति राशीनाम्" इत्यादि वचन प्रमाण से राशियों के उदयमानों की असमीनता के कारण उसके सम्बन्ध से जो अन्य विषय साधित होंगे वे भी असमीचीन होंगे इसलिए इन आचार्य का तथा अन्य प्राचीनाचार्यों का लग्नानयन समीचीन नहीं है, अन्य प्राचीनाचार्यों ने भी उदयमान ही के सम्बन्ध से लग्नानयन किया हैं ।

सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में "या सायनार्कस्य भुजज्यका सा" इत्यादि से लग्नानयन संशोधक किया हुआ है उसमें कुछ त्रुटि देखकर म. म. पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने उसका आनयन किया है, उनका आनयन प्रकार अधोलिखित है—

"आकाशमध्य विषुवांद्रशवशात्प्रकुर्याद्यष्टि दिवाकरमपक्रमकोटिभागान् ।" इत्यादि

सिद्धान्तशिरोमणि के टिप्पणी में चन्द्रदेव शास्त्री का भी लग्नानयन है परन्तु उन सब की अपेक्षा द्विवेदी जी का लग्नानयन समीचीन है । लग्नानयन में विशेष बातों के ज्ञान के लिए हमारा 'लग्नानयन' देखना चाहिये, पूर्वकृत लग्नानयन में जो क्रियायें हैं उनकी अपेक्षा हमारे लग्नानयन में क्रियासूक्ष्मता या क्रियागौरव, चमत्कार इत्यादि विवेचकों का देखना चाहिए ॥ ७-९ ॥

इदानीं लग्नादिष्टकालानयनमाह ।

लग्नार्कयोगंतैष्या अंशा निजभोदया हता भक्ताः ।
खगुणैस्तदन्तरालोदयमिश्रा इष्टाऽसवोह्यसकृत् ॥१०॥

वि. भा.—लग्नाऽर्कयोः (लग्नरव्योः) गतैष्या अंशाः (भुक्तांशा भोग्यांशाश्च) निजभोदयाहताः (रव्याक्रान्तराशिस्वदेशोदयगुणिताः) खगुणैः (त्रिंशद्भिः) भक्तास्तदा लग्नस्य भुक्तासवो रवेर्भोग्यासवो भवन्ति, एतयोर्योगमध्ये, अन्तरालोदयमिश्राः (रविलग्नयोर्मध्ये यावन्तोराशयस्तदुदया योज्याः) तदाऽसकृदिष्टासवो भवन्तीति॥१०॥

अत्रोपपत्तिः

यस्मिन् राशौ रविर्वर्त्तते तस्य ये भोग्यांशाः (भुक्तांशाग्रतो राश्यन्तं यावत्) तेभ्योऽनुपातेन "यदि त्रिंशदंशै रव्याक्रान्तराशेः स्वदेशोदयासवो लभ्यन्ते तदा रविभोग्यांशैः के" अनेन समागच्छन्ति रविभोग्यांशाः। एवं लग्नभुक्तांशवशतोऽप्यनुपातेन लग्नभुक्तासवो भवन्ति तथा रवेरग्रतो लग्नात्पूर्वं रविलग्नयोर्मध्ये येऽसवइति त्रयाणां (रविभोग्यासु लग्नभुक्तासु रविलग्नान्तरालोदयासूनां) योगे कृतेऽभीष्टकालः स्यात्॥ अयं कालस्तात्कालिकरविशादसकृत्साधितः सूक्ष्मोऽन्यथा स्थूलः भास्कराचार्येणापि "अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्यः समयो विलग्नादि"-त्यादिनाऽन्यैः श्रीपतिप्रभृतिभिरप्याचार्यैरेतदेव कथ्यते नाऽत्र मतवैषम्यमिति सुज्ञैर्ज्ञेयमिति॥ १०॥

हि. भा.—लग्न के गतांश (भुक्तांश) रवि के भोग्यांश को स्वदेशराश्युदय से गुणाकर तीस से भाग देने से लग्न की भुक्तासु और रवि की भोग्यासु होती है इन दोनों के योग में रवि और लग्न के मध्य में जितनी राशियां हैं उनके स्वदेशोदयमान जोड़ने से असकृत्कर्म से इष्टकाल होता है। १०॥

उपपत्ति

जिस राशि में रवि हैं उसके जो भोग्यांश (भुक्तांशाग्र से राश्यन्त तक) है तत्सम्बन्धी असु प्रमाण लाते हैं जैसे तीस अंश में रव्याक्रान्त राशि के स्वदेशोदयासु पाते हैं तो रवि के भोग्यांश में क्या इस अनुपात से रवि की भोग्यासु आती है। लग्नभुक्तांश से भी लग्न भुक्तासु ले आकर दोनों के योग में रवि और लग्न के मध्य में जितनी राशियां हैं उनके उदयमान जोड़ने से इष्टकाल होता है। यह इष्टकाल तात्कालिक रविवश साधन करने से असकृत्कर्म द्वारा सूक्ष्म होता है॥ भास्कराचार्य भी "अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तः" इत्यादि से तथा श्रीपति आदि सब आचार्य इसी बात को कहते हैं, इसमें किसी का मतवैषम्य नहीं है॥ १०॥

प्रकारान्तरेण लग्नानयनमाह।

उत्क्रमतो मेषादीन् क्रमेण जूकादिकान् प्रकल्प्य ततः।
रात्रिद्युव्यत्ययतः षड्भयुतं प्राग्विलग्नं वा॥ ११॥

वि.भा.—मेषादीन् उत्क्रमतः (व्यत्ययात्) जूकादिकान् (तुलादीन्) क्रमेण प्रकल्प्य रात्रिद्युव्यत्ययतः (रात्रिदिनयोर्विलोमात्) यल्लग्नं तत् षड्भयुतं (षड्राशिसहितं) वा प्राग्विलग्नं (प्रथमलग्नं) भवेदिति॥ ११॥

अत्रोपपत्तिश्लोकोक्त्यैव स्पष्टेति॥११॥

हि. भा.—वा, मेषादि राशियों को विलोम तरह से और तुलादि राशियों को क्रम से मानकर रात्रि और दिन में व्यत्यय (उल्टा) मानकर जो लग्न होता है उसमें छः राशि जोड़ने से प्रथम लग्न होता है ।। ११ ।।

इसकी उपपत्ति व्याख्या ही से स्पष्ट है ।।११।।

इदानीं यदेष्टासूनामल्पत्वात्तेभ्यो भोग्यासवो न शुद्धास्तदा कथं लग्नसाधनमित्याह ।

भोग्यात्कालादूनः कालः खगुणाहतो निजोदयहृत् ।
अंशादिफलं सूर्ये संयोज्य प्राग्विलग्नं स्यात् ।। १२ ।।
षड्भयुगुदयरविरस्तविलग्नं भवति निश्चयेन ।। १२½ ।।

वि. भा.—कालः (प्राणिभूत इष्टकालः) भोग्यात्कालात् (प्राणिभूतादभुक्तकालात्) यदि ऊनः (न्यूनः) तदा प्राणिभूतेष्टकालः खगुणहतः (त्रिंशद्गुणितः) निजोदयहृत् (रव्याक्रान्तराश्युदयेन भक्तः) लब्धमंशादिकं फलं सूर्ये संयोज्यं (रवौ योज्यं) तदा प्राग्विलग्नं (प्रथमलग्नं) स्यात् । षड्भयुगुदयरविः (सषड्भोदयकालीनरविः) अस्तविलग्नं (सप्तमलग्नं) भवतीति ।।१२-१२½।।

अत्रोपपत्तिः ।

यदि भोग्यासुभिः इष्टकालासु प्रमाणमल्पं स्यात्तदा रव्याक्रान्तराश्युदयासुभिर्यदि त्रिंशदंशास्तदेष्टकालासुभिः के इत्यनुपातेन समागतमंशादिफलं रवौ योज्य तदा लग्नं भवति । तदोदयकालीनरविरेव षड्राशियुतस्तदाऽस्तलग्नं भवेदिति बालैरपि बुध्यते भास्करेणापि "भोग्यतोऽल्पेष्टकालात्खरामाहतादित्यादिना" श्रीपतिनाऽपि "यदीष्टकालान्न पतत्यभुक्तमि"त्यादिनैतदेव कथ्यतेऽन्यैरपि सर्वैरेवमेव कथ्यते ।। १२-१२½ ।।

हि. भा.—यदि भोग्यकलासु से इष्टकालासु अल्प हो तब इष्टकलासु को तीस से गुणकर रव्याक्रान्तराशि के स्वदेशोदय से भाग देने से जो अंशादि फल हो उसको रवि में जोड़ने से लग्न होता है । उदयकालिक रवि में छः राशि जोड़ने से अस्त लग्न (सप्तमलग्न) होता है ।। १२-१२½ ।।

उपपत्ति ।

यदि भोग्यासु प्रमाण से इष्टकालासु प्रमाण अल्प हो तो अनुपात करते हैं यदि रवि जिस राशि में है उस राशि के स्वदेशोदयासु में तीस अंश पाते हैं तो इष्टकलासु में क्या इस अनुपात से जो अंशादिक फल आता है उसको रवि में जोड़ने से लग्न होता है । उदयकालीन रवि में छः राशि जोड़ने से अस्तलग्न (सप्तमलग्न) होता है ।। भास्कराचार्य भी "भोग्यतोऽल्पेष्टकालात्खरामाहतात्" इत्यादि से तथा श्रीपति भी "यदीष्टकालान्न पतत्यभुक्तं" इत्यादि से इसी बात को कहते हैं अन्य सब आचार्य भी एक स्वर से इसी बात को कहते हैं ।।१२-१२½।।

इदानीमिष्टासुभ्यः भुक्तासूनां शुद्धौ लग्नसाधनमुक्त्वा तस्मादिष्टकालानयनमाह ।

एकस्मिन् यदि भवने विलग्नसूर्यौ तदा तयोर्विवरे ।
भागाः स्वोदयगुणिता वियदग्निविभाजिताः कालः ॥१३॥

वि. भा.—यदि विलग्नसूर्यौ (साधितलग्नरवी) एकस्मिन् भवने (एकराशौ) भवतस्तदा तयोर्विवरे (लग्नरव्योरन्तराले) ये भागः (अंशाः) ते स्वोदयगुणिताः (रव्याक्रान्तराशिस्वदेशोदयगुणिताः) वियदग्निविभाजिताः (त्रिशद्भक्ताः) तदा कालः (इष्टकालः) स्यात् । लग्नरवी यदैकराशिगतौ भवतस्तदाऽभुक्तं त्यक्त्वा लगनस्य भुक्तांशैर्लग्नं साध्यं रव्याक्रान्तराशेरुपरितनराशिषु लग्नसाधनेऽभुक्तस्य प्रयोजनं भवति । तेन लग्नरव्योरन्तरकालसाधनार्थं लग्नरव्योरन्तरे येंऽशादयस्ते एव गृह्यन्त इति ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

यदि लग्नसूर्यावेकस्मिन्नेव राशौ भवतस्तदाऽनुपातेन "त्रिंशदंशैर्यदि रव्याक्रान्तराश्युदयमानं लभ्यते तदा रविलग्नान्तरांशैः किमिति" अनेन यदस्वात्मकं फलं समागच्छेत्स एवेष्टकालः स्यात् ॥ भास्कराचार्येण "यदैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभाग" इत्यादिना श्रीपतिना च "सूर्योदयावेकगृहे यदास्तस्तदन्तरांशानुदयेने" त्यादिनाऽन्यैरप्याचार्यैः स्वस्वसिद्धान्ते एतादृश एव प्रकारोऽभिहित इति विज्ञैर्ज्ञेयमिति ॥ १३ ॥

हि. भा.—यदि लग्न और सूर्य एक राशि में हों तो दोनों के अन्तरांश को रवि जिस राशि में हो उसके स्वदेशोदय मान से गुणाकर तीस से भाग देने से इष्टकाल होता है । यदि लग्न और रवि एक राशि में हों तो अभुक्त को छोड़कर भुक्तांश से लग्न साधन करना चाहिये । रवि जिस राशि में है उससे आगे की राशियों में अभुक्त का प्रयोजन होता है । इसलिए लग्न और रवि के अन्तर सम्बन्धी कालज्ञान के लिये लग्न और रवि के अन्तर में जो अंश हैं वही ग्रहण किये जाते हैं ॥ १३ ॥

उपपत्ति ।

यदि लग्न और रवि एक राशि में हैं तो "तीस अंश में यदि रव्याक्रांत राशि के स्वदेशोदय मान पाते है तो रवि और लग्न के अन्तरांश में क्या" इस अनुपात से जो अस्वात्मक फल आता है वही इष्टकाल है ॥ भास्कराचार्य "यदैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभागः" इत्यादि से और श्रीपति भी सूर्योदयावेकगृहे यदास्तस्तदन्तरांशानुदयेन" इत्यादि से अन्य आचार्य भी अपने अपने सिद्धान्त में इसी तरह के प्रकार लिखते हैं ॥१३ ।

इदानीं रवितो लग्नेऽल्पे सतीष्टकालानयनमाह ।

रजनीशेषाल्लग्ने रव्यूने साधितः कालः ।
द्युनिशाच्छोध्यः कालस्तत्कालरविवशादसकृत् ॥ १४ ॥

वि. भा.—लग्ने रव्यूने (रवितोऽल्पे) तदा साधितः कालः "एकस्मिन् भवने विलग्नसूर्यावि" त्यादिनाऽऽनीतः कालो रजनीशेषात् (रात्रिशेषवशात्क्षितिजतोऽधो भवति) तस्मात्सकालो द्यु निशात् (अहोरात्रात्) शोध्यस्तदा तत्कालरविवशादसकृत्कालो भवेदिति ॥१४॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ तात्कालिकरविकेन्द्रोपरिगताहोरात्रवृत्तयो क्षितिजवृत्तयो सम्पातात्तात्कालिकरविं यावत्सावनात्मक इष्टः कालः । तथोदयकाले यत्र रविः स चौदयिकः स प्रवहवेगादिष्टकाले यत्र गतस्तदुपरिगताहोरात्रवृत्तक्षितिजवृत्तयोः सम्पातादुदयरविं यावन्नाक्षत्रात्मक इष्टकालः । लग्नसाधने सावनात्मक इष्टकालो गृह्यते परन्तु राश्युदयास्तु नक्षत्रात्मकास्तर्हीष्टासुभ्यो राश्युदयाः कथं शोध्यन्ते (द्वयोर्विजातीयत्वात्) भास्करेणैतदर्थमेव कथ्यते "लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्तास्तात्कालिकाऽर्ककरणेन भवेयुरार्क्ष्यः । आर्क्ष्योदया हि सदृशीभ्य इहापनेयास्तात्कालिकत्वमथ न क्रियते यदाऽर्क्ष्यः" लग्नात्कालसाधनेऽसकृत्कर्मणः कारणमपि तात्कालिकरविग्रहणमेवेति ॥ १८ ॥

हि . भा यदि रवि से लग्न अल्प हो तब "एकस्मिन् यदि भवने" इत्यादि से जो इष्टकाल आया है वह रात्रि शेषवश से क्षितिज से नीचा होता है इसलिए उस इष्टकाल को अहोरात्र में घटा देना चाहिए तब तात्कालिक रवि वश करके असकृत्प्रकारेण इष्टकाल होता है ॥ १४ ॥

उपपत्ति

तात्कालिक रवि केन्द्रोपरिगत अहोरात्रवृत्त और क्षितिज वृत्त के सम्पात से तात्कालिक रविकेन्द्र तक सावनात्मक इष्टकाल है । उदयकाल में जहां रवि रहते हैं वह औदयिक रवि है । वह प्रवहवेग से इष्टकाल में जहां गये हैं उनके ऊपर जो अहोरात्रवृत्त होगा वह क्षितिजवृत्त में जहां पर लगेगा वहां (उदयरव्युपरिगत अहोरात्रवृत्त और क्षितिजवृत्त के सम्पात) से उदय रवि तक नाक्षत्रात्मक इष्टकाल है । लग्न साधन में सावन इष्टकाल का ग्रहण करते हैं । लेकिन राशियों का उदयमान नाक्षत्रात्मक है तब इष्टासु में राश्युदयों को क्यों घटाते हैं (दोनों में विजातीयत्व होने के करण योगान्तर नहीं होना चाहिए) इसी को भास्कराचार्य कहते हैं "लग्नार्थमिष्टघटिका" इत्यादि लग्न पर से इष्टकाल ज्ञान के लिए असकृत्कर्म के कारण भी तात्कालिक रवि का ग्रहण करना ही है ॥ १४ ॥

इदानीं स्वदेशोदयैर्विना लग्नरव्योरन्तरासुमानानयनमाह ।

भानोर्लङ्कोदयवत्प्राणाः साध्याश्चरासवश्चापि ।
तद्वियुतिर्मकरादौ कर्क्यादौ तु युतिः प्राणाः ॥१५॥
स्पष्टाः स्युर्मेषादौ कर्क्यादौ तु भार्धतः शुद्धाः ।
जूकादौ भार्धयुता मकरादौ शोधिताश्चक्रात् ॥१६॥
लग्नाच्चैवं प्राणाः सूर्याकलाभिरूनितास्त्वथाल्पाश्चेत् ।
ख खषट्द्वयेन युक्ता विनोदयैर्लग्नकालः स्यात् ॥१७॥

वि. भा.—भानोः (सूर्यस्य) लङ्कोदयवत् (लङ्कोदयानयनरीतिवत्) प्राणाः (उदयासवः) साध्याः, चरासवश्च साध्याः, मकरादौ (मकरादिषट्के रवौ) तद्वियुतिः (तयोरानीतयोरुदयासुचरास्वोः) वियुतिः (विश्लेषः) कर्क्यादौ (कर्क्यादिषट्के-रवौ) युतिः (तयोः समानीतयोरस्वोर्योगः) तदा या असुकला भवेयुस्ता एव मेषादौ (मेषादिराशित्रये प्रथमपदे रवौ स्थिते) स्पष्टा रविभुक्तिकला भवन्ति कर्क्यादौ (कर्क्यादिराशित्रये रवौ द्वितीयपदे) ताः कला भार्धतः शुद्धाः (राशि-षट्केभ्यो विशोधिताः) जूकादौ (तुलादिराशित्रये तृतीयपदे रवौ) ताः कला भार्ध-युताः (षड्राशिसहिताः) मकरादौ (मकरादिराशित्रये चतुर्थपदे रवौ) ताः कला-श्चक्राच्छोधिताः (चक्रकलाभ्यो हीनाः) तदा शेषाः स्पष्टा रविभुक्तकला भवन्ति। लग्नाच्चैवम् । अत्रायमर्थः—लग्नादपि लङ्कोदयसाधनवदसवः साध्याः, लग्नादेव चरार्धासवश्च साध्याः । एतयोरस्वोरन्तरयोगौ मकरकर्क्यादिषु लग्नवशादन्तरं मेषादिपदविकल्पनाद्रविवदेव, प्राणाः (लग्नभुकलाः) भवन्ति । एवमुपरिलिखित-नियमेन रविलग्नयोः पृथक्-पृथक् स्पष्टा भुक्त कला भवन्ति । ततः सूर्यकलाभिरानी-ताभिः, ऊनिताः (रहिताः) लग्नकलाः कार्याः । चेद्यद्यल्पाः (सूर्यकलातोलग्नकला न्यूनाः) तदा खखषट्द्वयेन (२१६००) भुक्तालग्नकलाः कार्यास्तत्र रविकला ऊनिता-स्तदा शेषा रविलग्नयोरन्तरासवो यावद्भिरसुभिः सूर्योदयमारभ्य तल्लग्नम् । यदि रविकलाभ्यो लग्न भुक्ता कलाः शोध्यन्ते तदा रव्युद द्विलोमेन कालसिद्धि-रिति ॥१५-१७॥

अत्रोपपत्तिः ।

लङ्कोदयसाधनावसरे राश्यन्तेषु राश्युदयमानानि साधितानि, अत्र राशिम-ध्येष्वपि साध्यानि । लग्नरव्योश्चरार्धानयनोपपत्तिः पूर्वविधिनैव बोध्या । शेषोप-पत्तिर्भाष्यावलोकनेनैव स्पष्टेति ॥१५-१७॥

हि. भा.—लङ्कोदय साधन रीति के अनुसार सूर्य के उदयासुप्रमाण साधन करना तथा चरासु भी साधन करना, मकरादि छः राशियों में रवि के रहने से उन दोनों (रव्यु-दयासु और चरासु) के अन्तर करने से तथा कर्क्यादि छः राशियों में रवि के रहने से रव्युदयासु और चरासु के योग करने से जो असुकला होती है वही मेषादि तीन राशि (प्रथम पद) में रवि के रहने से स्पष्ट रवि भुक्तकला होती है। कर्क्यादि तीन राशि (द्वितीय पद) में रवि के रहने से उन कलाओं को छः राशि में घटाने से, तुलादि तीन राशि (तृतीय पद) में रवि के रहने से उन कलाओं को छः राशियों में जोड़ने से मकरादि तीन राशि (चौथे पद) में उन कलाओं को चक्र में घटाने से स्पष्ट रविभुक्त कला होती है। लग्न से इसी तरह लग्नभुक्त कला होती है। जैसे लङ्कोदय साधन की तरह लग्नोदयासु साधन करना, तथा पूर्ववत् ही लग्न की चरार्धासु साधन करना, मकरादि और कर्क्यादि में लग्न के रहने से उन दोनों असुओं के अन्तर और योग करना चाहिए। इसके बाद मेषादि पद क्रम से रवि की तरह क्रिया करने से लग्न की भुक्त कला होती है। इस तरह रवि और लग्न की स्पष्टभुक्त कला प्रमाण आ गया। उसके बाद लग्न भुक्त कला में रवि युक्त कला

को घटाना, यदि रवि भुक्त कला से लग्न भुक्त कला स्वल्प हो तो लग्न में २१६०० कला जोड़कर सूर्य भुक्त कला को उसमें घटाने से रवि और लग्न के अन्तरासु प्रमाण होता है। यदि सूर्य कला में लग्न कला घटे तो रव्युदय से विलोम रीति से कालसिद्धि होती है ॥१५-१७॥

उपपत्ति ।

राशियों के लङ्कोदय साधन में राश्यन्त में राशियों के उदयमान साधन किये गये है। यहां राशियों के मध्य में भी साधन करना चाहिए। रवि और लग्न की चरार्धनियनोपपत्ति पूर्ववत् साधन करना। शेष बातें भाष्य देखने से स्पष्ट है ॥१५-१७॥

प्रकारान्तरेण तदानयनमाह ।

उदयाः षष्टिविभक्ताः कालांशाश्चरासवश्चापि ।
चरखण्डलवैर्हीनयुक्तास्ते पूर्ववत्कार्याः ॥ १८ ॥
तैः कालांशैः पूर्ववदेवेष्टकालांशकेभ्यश्च ।
लग्नं लग्नादपि घटिकाः स्युः स्वोदयैर्विना वाऽपि ॥ १९ ॥

वि. भा.—उदयाः (लङ्कोदयासवः) षष्टिविभक्ताः (षष्टचा भक्ताः) तदा कालांशाः भवन्ति। चरार्धासवोऽपि षष्टिभिर्भाज्यास्तदा चरार्धांशाः स्युः। चरखण्डलवैः (चरार्धांशैः) ते कालांशाः पूर्ववत् हीनयुक्ताः कार्याः (चरर्धांशा, क्रमस्थापितेभ्यो मेषादिकलांशेभ्यः क्रमशस्त्याज्याः। उत्क्रमस्थापितेषूत्क्रमतो युक्ताःतुलादिक्रमस्थापितेषु क्रमचरार्धांशाः शोध्याः। मकरादिषूत्क्रमस्थापितेषु उत्क्रमतो युक्तास्तदा स्वदेशोदया भवन्ति। तैः कालांशैः (संस्कृतलङ्कोदयकालांशमानैः), इष्टकालांशकेभ्यश्च (इष्टासवः षष्ट्या भक्ता इष्टकालांशास्तेभ्यः) लग्नानयनप्रकारेण-"भोग्यात्तात्कालिकरविभवनागतकला इत्यादि" अनेन लग्नं साध्यं तदेवाभीष्टलग्नमिति लग्नात्कालानयनमपि पूर्वयुक्त्या कार्यं नाऽत्र कोऽपि विशेष इति ॥१८-१९॥

एतदुपपत्तिर्भाष्येनैव स्पष्टेति ॥१८-१९॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे लग्नादिविधिरष्टमोऽध्यायः।

हि. भा.—लङ्कोदयासु को साठ से भाग देने से कालांश होते हैं, चरार्धासु को भी साठ में भाग देने से चरार्धांश होते हैं। क्रमस्थापित मेषादि कालांशों में चरार्धांश को घटा देना चाहिये। उत्क्रमस्थापित उक्त कालांशों में उत्क्रम से जोड़ देना चाहिए। तुलादि क्रम स्थापित कालांशों में क्रम से चरार्धांश को घटाना तथा मकरादि उत्क्रम स्थापित कालांशों में उत्क्रम से जोड़ना तब स्वदेशोदय होते हैं। उन संस्कृत लङ्कोदय कालांशमानों से तथा इष्टकालांश (इष्टासु को साठ से भाग देने से इष्टकालांश होते हैं) से लग्नानयन प्रकार "भोग्यातात्कालिक रविभवनागतकलाः" इत्यादि से लग्न साधन करना वही इष्टलग्न होता है। इन पर से पूर्व युक्ति से कालानयन भी करना चाहिए इसमें कोई विशेषता नहीं है ॥१८-१९॥

इसकी उपपत्ति भाष्य ही से स्पष्ट है ॥१८-१९॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में लग्नादिविधि नामक
अष्टम अध्याय समाप्त हुआ।

नवमोऽध्यायः

अथ द्युदलभादिविधिः

तत्रादौ दिनार्धशंक्वर्थमाह ।

क्रान्त्यक्षान्तरयोगः समान्यककुभोर्नतांशकाः खाक्षाः ।
तज्ज्या दृग्ज्या दोर्ज्या नतांशकोनास्त्रिगृहभागाः ॥१॥
उन्नतभागाः कोटिस्तज्ज्या दोर्ज्यान्तरं तथा शङ्कुः ।
उन्नतजीवा त्रिज्या कर्णो यष्टिस्तथा नलकः ॥२॥

वि. भा.—समान्यककुभोः (तुल्यभिन्नदिशोः) क्रान्त्यक्षान्तरयोगोऽर्थादेकदिक्कयोः क्रान्त्यक्षाशयोरन्तरं भिन्नदिक्कयोस्तयोर्योगस्तदा नतांशकाः स्युस्ते च खाक्षाः (एतत्संज्ञकाः) तज्ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या सा च दोर्ज्या (भुजज्या) भवति, नतांशकोनास्त्रिगृहभागाः (नतांशहीना नवतिः) उन्नतभागाः (उन्नतांशाः) तज्ज्या दोर्ज्यान्तरं (भिन्नभुजज्या) सा कोटिः । तथा उन्नतजीवा (उन्नांशज्या) शङ्कुः, त्रिज्याकर्णः, तथा यष्टिर्नलकः(यष्टेरेव नाम नलकः)ज्ञातव्य इति ॥१-२॥

अत्रोपपत्तिः

मध्यान्हकाले याम्योत्तरवृत्ते यदि रविः खस्वस्तिकनिरक्षखस्वस्तिकयोरन्तरेऽस्ति तदा रवितो निरक्षखस्वस्तिकं यावत्क्रान्तिः । खस्वस्तिकनिरक्षखस्वस्तिकयोरन्तरेऽक्षांशाः । अत्रानयोरन्तरकरणेन रवितः खस्वस्तिकं यावन्नतांशसंज्ञकः । यदि रविर्निरक्षखस्वस्तिकाद्दक्षिणदिशि तदा तत्र क्रान्त्यक्षांशयोर्योगकरणेन नतांशा भवन्ति । एतज्ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या, नतांशोननवतिर्नतांशकोटिरुन्नतांशस्तज्ज्याशङ्कुः कोटिसंज्ञकः । त्रिज्याकर्ण इति दृग्ज्याशङ्कुत्रिज्याभिर्भुजकोटिकर्णैरेकं छायाक्षेत्रं समुत्पद्यत इति ॥१ २॥

हि. भा.—क्रान्ति और अक्षांश के एक दिशा रहने से अन्तर और भिन्न दिशा रहने से योग करने से नतांश होता है । इसको खाक्ष भी कहते हैं । उसकी ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या कहलाती है । यह दोर्ज्या (भुजसंज्ञक) है । नतांश को नब्बे में घटाने से जो शेष रहता है उसे उन्नतांश कहते हैं उसकी ज्या (उन्नतांशज्या) कोटिदोर्ज्यान्तर (विशिष्ट भुजज्या) कहते हैं यह कोटि है इसको शंकु कहते हैं । त्रिज्या कर्ण है । यष्टि को नलक कहते है ॥१-२॥

उपपत्ति ।

मध्यान्ह काल में याम्योत्तरवृत्त में यदि खस्वस्तिक और निरक्षखस्वस्तिक के बीच में रवि हैं तो रवि से निरक्षखस्वस्तिक तक क्रान्ति है और खस्वस्तिक, तथा निरक्षखस्वस्तिक के अन्तर अक्षांश है, यहां दोनों के अन्तर करने से रवि से खस्वस्तिक तक रवि का नतांश होता है । यदि रवि निरक्ष खस्वस्तिक से दक्षिण हैं तब क्रान्ति और अक्षांश के योग करने से नतांश होता है । इसकी ज्या (नतांशज्या) दृग्ज्या कहलाती है । यह भुज है, नतांश को नब्बे में घटाने से जो शेष रहता है उसे नतांश कोटि या उन्नतांश (रवि से क्षितिज पर्यन्त) कहते हैं इसकी ज्या (उन्नतांशज्या) शंकु कहलाती है । दृग्ज्या शंकु त्रिज्या (भुजकोटिकर्णों) से एक छायाक्षेत्र बनता है ।।१-२।।

इदानीं मध्यच्छाया दिग्व्यवस्थामाह ।

सौम्यक्रान्तेरल्पेऽक्षे याम्या द्युदलभाऽन्यथा सौम्या ।
द्युज्यातो लम्बज्या यदि महती लघ्वी स्यात्तदाऽप्येवम् ।।३।।
द्युज्या धनुःसमेतं पलेन समेन यदा त्रिभादूनम् ।
याम्याऽन्यथेतराभा तत्त्रिभविवरं नतांशाः स्युः ।।४।।
लम्बक्रान्त्योर्योगस्त्रिभाधिकश्चेद् द्युखण्डभा याम्या ।
सौम्याऽन्यथा त्रिभोनस्तन्नतभागाः स्युरथवैषाम् ।।५।।

वि. भा.—सौम्यक्रान्तेः(उत्तरक्रान्तितः)अक्षेऽल्पे(अक्षांशाऽल्पे) द्युदलभा (मध्यच्छाया) याम्या (दक्षिणा) भवति, अन्यथा (सौम्यक्रान्तेरक्षांशाधिके) मध्यच्छाया सौम्या (उत्तरा) भवति, यदि द्युज्यातो लम्बज्या महती, लघ्वी च स्यात्तदाप्येवमेव मध्यच्छायादिगिति ।।३।।

पलेन समेन (अक्षांशतुल्येन) द्युज्याधनुः समेतं (द्युज्याचापसहितं) यदा त्रिभादूनं (नवत्यंशाल्पं) भवेदर्थादक्षांशद्युज्याचापयोर्योगो यदि नवत्यंशाल्पो भवेत्तदा मध्यच्छाया याम्या (दक्षिणा) भवेत् । अन्यथा (द्युज्याचापाक्षांशयोर्योगो यदि नवत्यंशाधिकस्तदेतराभा उत्तरच्छाया) भवेत् । तन्त्रिभविवरं (द्युज्याचापाक्षांशयोगनवत्यंशयोरन्तरं) नतांशाः स्युरिति ।।४।।

चेत् (यदि) लम्बक्रान्त्योर्योगस्त्रिभाधिकः (नवत्यंशाधिकः) तदा द्युखण्डभा (मध्यच्छाया) याम्या(दक्षिणा) भवेत् । अन्यथा (लम्बक्रान्त्योर्योगस्य त्रिभाऽल्पत्वे) मध्यच्छाया सौम्या (उत्तरा) भवेत् । त्रिभोनः (लम्बक्रान्त्योर्योगस्त्रिभोनः) तदैषां नतभागाः (नतांशाः) स्युरिति ।।५।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षांशस्य दिक् सर्वदा दक्षिणा, नाड़ी वृत्ताद्यस्यां दिशि रविस्तद्दिश्येव क्रान्तिदिक् खस्वस्तिकादुत्तरे यदा रविस्तदा रवितो निरक्षखस्वस्तिकं यावदुत्तरा क्रान्तिः । खस्वस्तिकनिरक्षखस्वस्तिकयोरन्तरेऽक्षांशाः । अत्रोत्तरक्रारक्षांशाधिकत्वात्

तत्र (उत्तरक्रान्तौ) अक्षांशस्य शोधनेन खस्वस्तिकाद्रविं यावन्नतांशा भवन्ति, खस्वस्तिकाद्रवेरुत्तरे स्थितत्वात् छायायाश्च रवितो विरुद्धदिशि स्थितत्वाच्च भूपृष्ठ-स्थितशङ्कोरूर्ध्वाधररेखाखण्डरूपत्वेन तदीया छाया दक्षिणा भवेत्। यदि खस्व-स्तिकनिरक्षखस्वस्तिकयोरन्तरे रविस्तदोत्तरा क्रान्तेरक्षांशाल्पत्वादक्षांशे क्रान्तेः शोधनेन नतांशो भवन्ति, परमत्र खस्वस्तिकाद् दक्षिणदिशि रविरतः शङ्कुच्छाया (मध्यच्छाया) उत्तरा भवति। यदि च द्युज्याचापाक्षांशयोर्योगो नवत्यंशाल्पस्तदाऽप्ये-वमेव (मध्यच्छाया दक्षिणा) स्थितिर्भवति। यथा, द्युचाप + अक्षांश इति यदि नव-त्यंशाल्पस्तदा नवत्यंशे तच्छोधनेन

९०—(द्युचाप + अक्षांश) = ९०—द्युचाप—अक्षांश = क्रान्ति–अक्षांश एत-द्दर्शनेन पूर्वोक्तम् "उत्तरक्रान्तेरक्षांशाधिके छाया दक्षिणा" एव सिद्ध्यति, यदि च द्युचाप + अक्षांश नवत्यंशाधिकस्तदाऽत्र नवत्यंशशोधनेन द्युचाप + अक्षांश—९० = अक्षांश—(९०—द्युचा) = अक्षांश—क्रान्ति = नतांश, एतत्स्थितौ पूर्वमेव मध्य-च्छायोत्तरा सिद्धा तेन द्युचाप + अक्षांश अस्य नवत्यंशाधिकत्वे मध्यच्छायोत्तरा भवेत्।

एवं यदि लम्बांश + क्रान्ति नवत्यंशाधिकस्तदाऽपि छाया दक्षिणा भवेद्यथा लम्बांश + क्रान्ति नवत्यंशशोधनेन लम्बांश + क्रान्ति—९० = क्रान्ति—(९०—लम्बांश) = क्रान्ति—अक्षांश = नतांश तदा पूर्वोक्त्याऽत्र स्थितौ दक्षिणैव-च्छाया भवति। लम्बांश + क्रान्ति एतस्य नवत्यंशाल्पत्वे मध्यच्छायोत्तरा भवति। लम्बांश + क्रान्ति इति यदि नवत्यंशाल्पस्तदैतस्य नवत्यंशे शोधनेन ९०—(लम्बांश + क्रां) = ९०—लम्बांश—क्रां = अक्षांश—क्रां = नतांश एतत्स्थितौ मध्यच्छायो-त्तरा पूर्वसिद्धैवेत्याचार्योक्तं सर्वं युक्तियुक्तमिति ॥३-५॥

हि. भा.—उत्तरा क्रान्ति से अक्षांश अल्प हो तो मध्यच्छाया दक्षिण दिशा की होती है अन्यथा (अक्षांश से उत्तराक्रान्ति के अल्प होने से) मध्यच्छाया उत्तर होती है। यदि द्युज्या चाप में अक्षांश जोड़ने से तीन राशि (नवत्यंश) से अल्प हो तो भी मध्यच्छाया दक्षिण होती है, अन्यथा (द्युज्याचाप में अक्षांश जोड़ने से नवत्यंश से अधिक रहने से) मध्यच्छाया उत्तर होती है। (द्युज्याचाप और अक्षांश के योग और नवत्यंश का अन्तर मध्यनतांश होता है। लम्बांश और क्रान्ति के योग यदि नवत्यंशाधिक हो तो भी मध्यच्छाया दक्षिण होती है। अन्यथा (लम्बांश और क्रान्ति के योग यदि नवत्यंशाल्प हो तो) मध्य-च्छाया उत्तर होती है ॥३-५॥

उपपत्ति

अक्षांश की दिशा बराबर दक्षिण होती है, नाड़ीवृत्त से जिस दिशा में रवि रहते हैं वह क्रान्ति की दिशा है। खस्वस्तिक से यदि रवि उत्तर है तो रवि से निरक्ष खस्वस्तिक रवि की उत्तरा क्रान्ति है. खस्वस्तिक और निरक्ष खस्वस्तिक के अन्तर में अक्षांश है, यहां उत्तरा क्रान्ति अक्षांश से अधिक है इसलिये क्रान्ति में अक्षांश को घटाने से खस्वस्तिक से रवि तक

नतांश होता है, यहां रवि खस्वस्तिक से उत्तर में है, रवि से विरुद्ध तरफ छाया की दिशा होती है इसलिये भूपृष्ठ स्थित शङ्कु की छाया दक्षिण होगी, खस्वस्तिक के मध्य में रवि के रहने से अक्षांश से उत्तरा क्रान्ति के अल्प रहने के कारण अक्षांश में क्रान्ति को घटाने से शेष नतांश होता है। पर यहां खस्वस्तिक से रवि दक्षिण तरफ है इसलिये शङ्कुच्छाया (मध्यच्छाया) उत्तर होगी, यदि द्युज्या चाप और अक्षांश के योग यदि नवत्यंशाल्प हो तो भी मध्यच्छाया दक्षिण होती है। जैसे द्युचाप + अक्षांश यह यदि नवत्यंशाल्प है तो इसको नवत्यंश में घटाने से ९० — (द्युचाप + अक्षांश) = ९० — द्युचाप — अक्षांश = क्रान्ति — अक्षांश = नतांश, पहले सिद्ध हो गया कि उत्तरा क्रान्ति के अक्षांशाधिक रहने से मध्यच्छाया दक्षिण होती है इसलिये यहां भी मध्यच्छाया दक्षिण ही सिद्ध हुई।

यदि द्युचाप + अक्षांश यह नवत्यंशाधिक है तब इसमें नवत्यंश को घटाने से द्युचाप + अक्षांश — ९० = अक्षांश — (९० — द्युचाप) = अक्षांश — क्रान्ति = नतांश इस स्थिति में (अक्षांश से उत्तरा क्रान्ति के अल्प रहने से) पहले सिद्ध हो गई हैं मध्यच्छाया की दिशा उत्तर, इसलिये यहां भी (द्युचा + अक्षांश इसको नवत्यंशाधिक रहने पर) मध्यच्छाया उत्तर सिद्ध हुई ॥

यदि लम्बांश + क्रान्ति यह नवत्यंशाधिक हो तो भी मध्यच्छाया दक्षिण होती है। जैसे लम्बांश + क्रान्ति यदि यह नवत्यंशाधिक है तो इसमें नवत्यंश को घटाने से लम्बांश + क्रान्ति — ९० = क्रान्ति — (९० — लम्बांश) = क्रान्ति — अक्षांश = नतांश इस स्थिति में पूर्ववत् मध्यच्छाया की दिशा दक्षिण सिद्ध हुई। यदि लम्बांश + क्रां यह नवत्यंशाल्प हो तो इसको नवत्यंश में घटाने से ९० — (लम्बांश + क्रा) = ९० — लम्बांश — क्रान्ति = अक्षांश — क्रान्ति पूर्वनियम के अनुसार यहां भी मध्यच्छाया उत्तर सिद्ध हुई ॥ आचार्योक्त में सब विषय युक्तियुक्त है ॥३-५॥

इदानीं मध्यच्छाया-छायाकर्णयोरानयनमाह।

दृग्ज्या द्वादशगुणिता शङ्कुविभक्ता प्रभा द्युदलगेऽर्के।
त्रिगृहज्या सूर्यगुणशङ्कुविभक्ता द्युदलकर्णः ॥६॥

वि. भा.—दृग्ज्या द्वादशगुणिता शङ्कुविभक्ता तदाऽर्के (रवौ) द्युदलगे सति प्रभा (छाया) भवति। त्रिगृहज्या (त्रिज्या) सूर्यगुणा (द्वादशगुणिता) शङ्कुविभक्ता तदा द्युदलकर्णः (मध्यकर्णः) भवेदिति ॥६॥

अत्रोपपत्तिः।

शङ्कुः कोटिः, दृग्ज्या भुजः, त्रिज्याकर्ण इति कोटिभुजकर्णैरुत्पन्नमेकं जात्यत्रिभुजम्। तथा द्वादशकोटिः, मध्यच्छाया भुजः, मध्यकर्ण इति कोटिभुजकर्णैरुत्पन्नं द्वितीयजात्यत्रिभुजमेतयोस्त्रिभुजयोः सजातीयत्वादनुपातो यदि शङ्कुकोटौ दृग्ज्याभुजो लभ्यते तदा द्वादशकोटौ किमित्यनुपातेनागता मध्यच्छाया = $\frac{\text{दृग्ज्या} \cdot १२}{\text{शङ्कु}}$, एवं यदि शङ्कुकोटौ त्रिज्याकर्णो लभ्यते तदा द्वादशकोटौ कि-

मित्यनुपातेनाऽगतो मध्यकर्णः $= \frac{\text{त्रि. १२}}{\text{शङ्कु}}$ एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥६॥

अब मध्यच्छाया और मध्यच्छायाकर्ण के आनयन कहते हैं।

हि. भा.—दृग्ज्या को द्वादश से गुणकर शङ्कु से भाग देने से रवि के मध्यान्ह काल में रहने पर (अर्थात् मध्यान्ह काल में) छाया होती है। एवं त्रिज्या को द्वादश से गुणकर शङ्कु से भाग देने से मध्यकर्ण होता है ॥६॥

उपपत्ति।

शङ्कु कोटि, दृग्ज्या भुज, और त्रिज्या कर्ण इन कोटि भुज और कर्ण से उत्पन्न एक जात्य त्रिभुज, तथा द्वादश कोटि, मध्यच्छाया भुज, और मध्यकर्ण कर्ण इन कोटि भुज और कर्ण से उत्पन्न द्वितीय त्रिभुज बनता है। इन दोनों त्रिभुजों के सजातीयत्व के कारण अनुपात करते हैं यदि शङ्कु कोटि में दृज्याभुज पाते हैं तो द्वादश में क्या इस अनुपात से मध्यच्छाया आती है $\frac{\text{दृग्ज्या. १२}}{\text{शङ्कु}} =$ मध्यच्छाया। इसी तरह यदि शङ्कु कोटि में त्रिज्या कर्ण पाते हैं तो द्वादश में क्या इस अनुपात से मध्यकर्ण प्रमाण आता है $\frac{\text{त्रि. १२}}{\text{शङ्कु}} =$ मध्यकर्ण। इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥६॥

इदानीं दिनार्धहृत्यन्त्ययोरानयनमाह।

द्युज्या कुज्योनयुता याम्योत्तरगोलयोर्दिनार्धधृतिः।
त्रिज्या चरज्ययैवं वियुतयुता स्याद्दिनार्धान्त्या ॥७॥

वि. भा.—याम्योत्तरगोलयोः (दक्षिणोत्तरगोलयोः) कुज्योनयुता (कुज्यया-रहिता सहिता च) द्युज्या दिनार्धधृतिः (मध्यहृतिः) भवेत्। एवं याम्योत्तरगोलयोः चरज्याया वियुतयुता (रहिता सहिता) त्रिज्या दिनार्धान्त्या (मध्यान्त्या) भवेदिति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः।

दक्षिणगोले त्रिरक्षोदयास्तसूत्रात्स्वोदयास्तसूत्रस्योपरिस्थितत्वात्तयोः सूत्रयोरन्तर्गता कुज्या यदि याम्योत्तराहोरात्रवृत्तयोः सम्पाता त्रिरक्षोदयास्तसूत्रोपरिलम्बरूपद्युज्याया मुनी क्रियते तदा याम्योत्तराहोत्रवृत्तयोः सम्पातात्स्वोदयास्तसूत्रोपरिलम्बरूपहृतिप्रमाणं भवेत्। उत्तरगोलत्वे तद्विलोमेनार्थाद् द्युज्यायां कुज्याया योजनेन हृतिर्भवति। तथोत्तरगोले क्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातोपरिगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं नाड़ीवृत्ते पूर्वस्वस्तिकराद्यान्तरेऽधो लगति तद्बिन्दुतः पूर्वापरसूत्रस्य समानान्तरसूत्रं कार्यं तच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रं भवेत्। मध्यान्हे रवेर्याम्योत्तरवृत्ते स्थितत्वात्तदुपरिगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं याम्योत्तरवृत्तमेव तन्नाड़ीवृत्ते निरक्षखस्व-

स्तिके लगति। निरक्षखस्वस्तिकाच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रोपरिलम्बो निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रमेव भूकेन्द्रान्निरक्षखस्वस्तिकं यावत्त्रिज्याऽस्ति, भूकेन्द्राच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रपर्यन्तं निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रखण्डं चरज्याऽतस्त्रिज्यायां चरज्याया योजनेन निरक्षखस्वस्तिकाच्चराग्रद्वयबद्धसूत्रपर्यन्तं लम्बरूपा रेखाऽन्त्या स्याद्दक्षिणगोले त्वेतद्विलोमा स्थितिरिति ।।७।।

अब दिनार्ध हृति और दिनार्धान्त्या के साधन कहते हैं।

हि. भा.—दक्षिण गोल में द्युज्या में कुज्या को घटाने से और उत्तर गोल में जोड़ने से मध्यहृति होती है। एवं दक्षिणगोल में त्रिज्या में चरज्या तो घटाने से और उत्तर गोल में जोड़ने से मध्यान्त्या होती है ।।७।।

उपपत्ति।

दक्षिणगोल में निरक्षोदयास्त सूत्र से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर रहने के कारण दोनों सूत्रों के अन्तर्गत कुज्या को यदि याम्योत्तराहोरात्रवृत्त के सम्पात से निरक्षोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्बरूप द्युज्या में घटा देते हैं तो याम्योत्तराहोरात्रवृत्त के सम्पात से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्बरूप हृति प्रमाण होता है। उत्तर गोल में द्युज्या में कुज्या को जोड़ने से हृति होती है। तथा उत्तरगोल में क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में पूर्व स्वस्तिक से चरान्त पर नीचे लगता है उस बिन्दु से पूर्वापर सूत्र के समानान्तर सूत्र कर दिये उसका नाम चराग्रद्वय बद्धसूत्र है। ग्रहोपरिगतध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ी वृत्त के सम्पात बिन्दु से चराग्रद्वय बद्ध सूत्र के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह अन्त्या है। मध्यान्ह काल में ग्रहोपरिगत ध्रुव प्रोत वृत्त याम्योत्तर वृत्त ही होता है वह नाड़ीवृत्त में निरक्षखस्वस्तिक बिन्दु में लगता है। उस बिन्दु से (निरक्षखस्वस्तिक से) चराग्रद्वयबद्ध सूत्र के ऊपर लम्ब निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र है अर्थात् भूकेन्द्र से निरक्ष खस्वस्तिक तक त्रिज्या है, और भूकेन्द्र से चराग्रद्वय बद्धसूत्र तक निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र खण्ड चरज्या है, त्रिज्या में चरज्या को जोड़ देने से मध्यान्त्या होती है, दक्षिणगोल में पूर्वापर सूत्र में चराग्रद्वय बद्ध सूत्र के ऊपर रहने के कारण त्रिज्या में चरज्या को घटाने से मध्यान्त्या होती है, सूर्यसिद्धान्त में भी, "त्रिज्योदक् चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता" इत्यादि से तथा सिद्धान्तशिरोमणि में, "क्षितिज्ययैवं द्युगणश्च सा हृतिः" इत्यादि से इसी विषय को कहा है ।।७।।

इदानीं शङ्कु साधनान्याह।

लम्बज्या पमजीवा समनरसूर्यैर्धृतिः पृथग्गुणिताः।
त्रिज्याग्रा तद्धृति पलकर्णैर्भक्ता नराः क्रमशः ।।८।।
द्युज्याऽन्त्ययोश्च घातो गदितैर्गुणकारकैः पृथग्गुणितः।
त्रिज्यागुणितैर्हरैर्विभाजयेच्छङ्कवो वा स्युः ।।९।।

वि. भा.—धृतिः (हृतिः) लम्बज्या पमजीवा समनरसूर्यैः लम्बज्याक्रान्तिज्या समशंकुद्वादशभिः) पृथग्गुणिताः. त्रिज्याग्रा तद्धृतिपलकर्णैः (त्रिज्याग्रा पलकर्णैः) क्रमशो भक्तास्तदा नराः (शङ्कवः) स्युः ।।८।।

वा द्यु ज्यान्त्ययोर्घातो गदितैः (पूर्वकथितैर्लम्बज्यापमजीवेत्यादिभिः) गुणकारकैः (गुणकांकैः) पृथग्गुणितः, त्रिज्यागुणितैः हरैः (पूर्वकथितहरैः) विभाजयेत्तदा शंकवः स्युरिति ॥९॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{लम्बज्या. हृति}}{\text{त्रि}}$ = शंकु । $\frac{\text{क्रांज्या. हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शंकु ।

$\frac{\text{समशं. हृति}}{\text{तद्धृति}}$ तथा । = शंकु $\frac{\text{१२. हृति}}{\text{पलक}}$ = शंकु

अथ द्यु ज्याऽन्त्ययोश्च घात इत्यादिश्लोकोक्त्या

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ = शंकु । $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$ =

= $\frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. समशं}}{\text{त्रि. तद्धृति}} = \frac{\text{हृति. समशं}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कु

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. १२}}{\text{त्रि. पलक}} = \frac{\text{हृति. १२}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु एतेनाचार्योक्तमुपपन्नम् ॥८-९॥

अब शङ्कु के आनयन प्रकारों को कहते हैं ।

हि. भा.—हृति को लम्बज्या, क्रान्तिज्या, समशङ्कु और द्वादश से पृथक्-पृथक् गुणकर क्रमशः त्रिज्या, अग्रा, तद्धृति और पलकर्ण से भाग देने से शङ्कु प्रमाण होते हैं ॥ अथवा द्युज्या और अन्त्या के घात को पूर्व कथित गुणाङ्कों से गुणकर त्रिज्या गुणित पूर्वहरों से भाग देने से शङ्कु होते हैं ॥ ८-९ ॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{लंज्या. हृति}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{क्रांज्या. हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु ।

$\frac{\text{समशं} \times \text{हृति}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कु, तथा $\frac{\text{१२} \times \text{हृति}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु

"द्युज्याऽन्त्ययोश्च घात" इत्यादि से $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु

तथा $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु ।

तथा $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. समशं}}{\text{त्रि. तद्धृति}} = \frac{\text{हृति. समशं}}{\text{तद्धृति}}$ = शङ्कु ।

$\frac{\text{द्यु. अत्या. १२}}{\text{त्रि. पलक}} = \frac{\text{हृति. १२}}{\text{पलक}}$ = शङ्कु । इनसे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुए ॥८-९॥

पुनः शंक्वानयनान्याह ।

घातस्त्रिज्याहृत-हरगुणकान्तर-सङ्गुणस्त्रिगुणनिघ्नः ।
छेदैर्भक्तः फलवियुतघातस्त्रिज्यया हृतः शङ्कवो वा स्युः ॥१०॥

वि. भा.—घातः (द्युज्यान्त्ययोर्घातः) त्रिज्याहृतहरगुणकान्तरसङ्गुणः (त्रिज्यागुणितं हरगुणकान्तरं गुणितः) त्रिगुणनिघ्नैः (त्रिज्यागुणितैः) छेदैः (पूर्वकथितहरैः) भक्तः (विभाजितः) फलवियुतघातः (लब्धिरहित द्युज्यान्त्ययोर्घातः) त्रिज्यया हृतः (त्रिज्याभक्ताः) वा (अथवा) शङ्कवः स्युरिति ॥१०॥

अत्रोपपत्तिः

$$\text{श्लोकोक्त्या } \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}} = \text{फलम् अनेन रहितघातः}$$

$$\text{द्यु. अन्त्या} - \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$$

$$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि—द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि} + \text{द्यु. अन्त्या. त्रि. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$$

$$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}} \text{ त्रिज्यया भक्तः } \frac{\text{द्यु. अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$$

$$= \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कुः । घातः} = \text{द्यु. अन्त्या}$$

$$\text{एवं } \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \text{फलम् अनेन रहितघातः}$$

$$\text{द्यु. अन्त्या} - \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}}$$

$$= \frac{\text{द्यु. अग्रा. त्रि. अग्रा} - \text{द्यु. अन्त्या. त्रि. अग्रा} + \text{द्यु. अन्त्या. त्रि. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$$

$$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}} \text{ त्रिज्या भक्तः } \frac{\text{द्यु. अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$$

$$= \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{शङ्कुः}$$ । एवमेवान्योऽपि प्रकारो ज्ञेय इति ॥१०॥

पुनः शङ्कु साधन कहते हैं ।

हि. भा.—द्युज्या और अन्त्या के घात को त्रिज्या गुणित हर और गुणक के अन्तर से गुणकर त्रिज्यागुणित हरों से भाग देने पर जो फल हो उन्हें घात में (द्युज्या और अन्त्या के गुणनफल में) घटा कर त्रिज्या से भाग देने से प्रकारान्तर से शङ्कु के मान होते हैं ॥१०॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$ = फल इसको घात में घटाने से द्यु. अन्त्या — $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि. त्रि}}$

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि — द्यु. अन्त्या. त्रि. त्रि + द्यु. अन्त्या. त्रि. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$ त्रिज्या से भाग देने से

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ = शङ्कु । घात = द्यु. अन्त्या

इसी तरह $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}}$ = फल, इसको घात में घटाने से

द्यु. अन्त्या — $\frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. अग्रा — द्यु. अन्त्या. त्रि. अग्रा + द्यु. अन्त्या. त्रि. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अन्त्या. त्रि. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$ त्रिज्या से भाग देने से

$\frac{\text{द्यु. अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु। इसी तरह आगे के प्रकार भी समझना चाहिए ।।१०।।

पुनः शङ्क्वानयनान्याह ।

वैतद्गुणहारान्तरनिहताऽन्त्या हृता पृथग् हारैः ।
फलरहिताऽन्त्या द्युज्यागुणिता त्रिज्याहृता नराः क्रमशः ।।११।।

वि. भा—वा (अथवा) अन्त्या एतद्गुणहारान्तरनिहताः (पूर्वकथितगुणहारान्तरगुणिताः) पृथग्-हारैः (पूर्वकथितभाजकैः) हृताः (भक्ताः) फलरहिताऽन्त्याः (फलोनाऽन्त्याः) द्युज्यागुणिताः त्रिज्याहृताः (त्रिज्याभक्ताः) तदा क्रमशो नराः (शङ्कवः) स्युरिति ।।११।।

अत्रोपपत्तिः

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि}}$ = फलम् अनेन रहिताऽन्त्या तदा

अन्त्या — $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या. त्रि—अन्त्या. त्रि + अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ द्युज्यया गुणिता त्रिज्याभक्ता तदा $\frac{\text{अन्त्या. लंज्या. द्युज्या}}{\text{त्रि. त्रि}}$

$= \frac{\text{लंज्या. हृति}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कुः}$ ।

एवं $\frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}}$ = फलम्, अनेन रहिताऽन्त्या तदा

$\text{अन्त्या} - \frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अन्त्या. अग्रा—अन्त्या. अग्रा + अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ द्युज्या गुणिता त्रिज्या भक्ता तदा $\frac{\text{अन्त्या. क्रांज्या. द्यु}}{\text{अग्रा. त्रि}}$

$= \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{शङ्कुः}$ । एवमग्रेऽपीति ॥११॥

पुनः शङ्कु साधन कहते हैं ।

हि. भा.—अथवा अन्त्या को पूर्व कथित गुणक और हर के अन्तर से गुणाकर पृथक् पृथक् पूर्व कथित हरों से भाग देकर जो फल हो उन्हें अन्त्या में घटा कर द्युज्या से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से क्रम से शङ्कु के मान होते हैं ॥११॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति से $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि}}$ = फल । इसको अन्त्या में घटाने से

$\text{अन्त्या} - \frac{\text{अन्त्या (त्रि—लंज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या. त्रि.—अन्त्या. त्रि + अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ इसको द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से

$\frac{\text{अन्त्या. लंज्या. द्यु}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$ । इसी तरह

$\frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}}$ = फल । इसको अन्त्या में घटाने से

$\text{अन्त्या} \frac{\text{अन्त्या (अग्रा—क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अन्त्या. अग्रा—अन्त्या. अग्रा + अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ इसको द्युज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से

$\frac{\text{अन्त्या. क्रांज्या. द्यु}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{शङ्कु}$ । इसी तरह आग के प्रकार भी समझने चाहिएं ॥११॥

पुनः शंक्वानयनप्रकारान्तराण्याह ।

वाऽन्त्यागुणितैर्गुणकैर्हता द्युजीवा पृथक्-पृथक् क्रमशः ।
भक्ताऽनन्तरहारैर्नरा द्युजीवाः पृथग्गुणिताः ॥१२॥
वोक्तगुणहारविवरैर्भक्ताश्छेदैर्हि लब्धफलसमेता ।
द्युज्या गुणके हारान्महति विहीनाऽल्पके शेषाः ॥१३॥
अन्त्या गुणिता भक्ता त्रिभज्यया शङ्कवः क्रमशः ॥१३½॥

वि. भा.—वा (अथवा) द्युजीवा (द्युज्या) पृथक् पृथक् अन्त्यागुणितैर्गुणकैः (अन्त्यागुणितैः पूर्वकथितगुणकैः) हता (गुणिता) अनन्तरहारैः (पूर्वानीतहारैः) भक्ता तदा नराः (शङ्कवः) स्युः । वा द्युजीवाः (द्युज्याः) उक्तगुणहारविवरैः (पूर्वकथितगुणकहारान्तरैः) पृथक् गुणिताः छेदैः (पूर्वकथितहारैः) भक्ता लब्धफलसमेता (लब्धफलेन युता) द्युज्या कार्या, हाराद् गुणके महति सति, हाराद्गुणकेऽल्पके लब्धफलेन विहीना द्युज्या कार्या शेषा अन्त्या गुणितास्त्रिभज्यया भक्तास्तदा क्रमशः शङ्कवः स्युरिति ॥१२-१३½॥

अत्रोपपत्तिः ।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{अन्त्या. लंज्या. द्यु}}{\text{त्रि. त्रि.}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{शङ्कु}$ । एवमेव

$\frac{\text{अन्त्या. क्रांज्या द्यु.}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$ । एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् ।

एतेन वाऽन्त्यागुणितैरित्यादेर्भक्तानन्तरहारैरित्यन्तमुपपन्नम् ।

अथावशेषार्थं श्लोकोक्त्यैव $\frac{\text{द्यु (त्रि}-\text{लंज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्यु. त्रि}-\text{द्यु. लंज्या}}{\text{त्रि}}$

अत्र गुणकाङ्कः = लंज्या । हरः=त्रि परन्तु त्रि > लंज्या

अर्थात् हर>गुणक अतः द्युज्या—लब्धफल = द्युज्या— $\frac{\text{द्युज्या. त्रि}=\text{द्यु. लंज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{द्युज्या. त्रि}-\text{द्युज्या. त्रि}+\text{द्युज्या. लज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्युज्या लंज्या}}{\text{त्रि}}$ अन्त्यागुणिता त्रिज्या

भक्ता तदा $\frac{\text{द्युज्या. लंज्या. अन्त्या}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$ ।

एवमेव $\frac{\text{द्युज्या (अग्रा}-\text{क्रांज्या)}}{\text{अग्रा.}} = \frac{\text{द्युज्या. अग्रा}-\text{द्युज्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा.}}$ अत्रापि

गुणकाङ्क<हर यतः गुणकाङ्कः=क्रांज्या । हरः अग्रा । अग्रा>क्रांज्या

अतः द्युज्या— $\frac{\text{(द्युज्या. अग्रा}-\text{द्युज्या. क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु ज्या. अग्रा} - \text{द्यु ज्या. अग्रा} + \text{द्यु ज्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{द्युज्या. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$

इदमन्त्यया गुणितं त्रिज्याभक्तं तदा $\frac{\text{द्यु ज्या. क्रांज्या. अन्त्या}}{\text{अग्रा. त्रि}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ $=$ शंकु । एवमेवाग्रेऽपि बोध्यमिति ॥ एतेन 'द्युजीवाः पृथग्गुणिता' इत्यारभ्य "शंकवः क्रमेशः" इत्यन्तमुपपन्नम् ॥१२—१३½॥

पुनः शंकु के साधन कहते हैं ।

हि.भा.—अथवा द्यु ज्या को अलग अलग अन्त्यागुणित पूर्व गुणकों से गुणाकर पूर्वानीतहारों से भाग देने से शंकु प्रमाण होते हैं ।

अथवा द्यु ज्या को पूर्वकथित गुणक और हार के अन्तर से गुणाकर पूर्वकथित हारों से भाग देने से जो फल हो उन्हें द्यु ज्या में जोड़ देना । यदि हर गुणक अधिक हो, यदि हर से गुणक अल्प हो तो लब्ध फल को द्यु ज्या में घटा देना, जो शेष रहे उन्हें अन्त्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से क्रम से शंकुमान होते हैं ॥१२-१३½॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{अन्त्या. लंज्या. द्यु ज्या}}{\text{त्रि. त्रि.}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{शंकु}$ ।

इसी तरह $\frac{\text{अन्त्या. क्रांज्या. द्यु ज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \text{शंकु}$ । इसी तरह आगे भी समझना चाहिये । इससे 'वाऽन्त्यागुणितैः' इत्यादि से "भक्तानन्तरहारैः" यहां तक उपपन्न हुआ ॥ अब शेष के लिए श्लोकोक्ति के अनुसार—

$\frac{\text{द्यु (त्रि} - \text{लंज्या)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्यु. त्रि} - \text{द्यु. लंज्या}}{\text{त्रि}}$ यहां गुणक $=$ लंज्या । हर $=$ त्रि. परन्तु त्रि $>$ लंज्या अर्थात हर $>$ गुणक इसलिए द्यु $-$ लब्धफल $=$ द्यु $- \frac{(\text{द्यु. त्रि} - \text{द्यु. लंज्या})}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{द्यु. त्रि} - \text{द्यु. त्रि} + \text{द्यु. लंज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्यु. लंज्या}}{\text{त्रि.}}$ इसको अन्त्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से $\frac{\text{द्युः लंज्या अन्त्या}}{\text{त्रि. त्रि.}} = \frac{\text{हृति. लंज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शंकु}$ । इसी तरह $\frac{\text{द्यु (अग्रा} - \text{क्रांज्या)}}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अग्रा} = \text{द्यु. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} =$ लब्धफल यहां भी हर $>$ गुणक $\because$ अग्रा $=$ हर, क्रांज्या $=$ गुणक परन्तु अग्रा $>$ क्रांज्या इसलिए द्यु $-$ लब्धफल $=$ द्यु $- \frac{(\text{द्यु. अग्रा} - \text{द्यु. क्रांज्या})}{\text{अग्रा}}$

$= \frac{\text{द्यु. अग्रा} - \text{द्यु. अग्रा} + \text{द्यु. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{द्यु. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$ इसको अन्त्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग

देने से $\frac{\text{द्यु. क्रांज्या. अन्त्या}}{\text{अग्रा. त्रि}} = \frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{त्रि}}$ = शंकु। इसी तरह आगे भी समझना चाहिए। इससे "द्युजीवाः पृथग्गुणिताः" यहां से लेकर "शंकवः क्रमशः" यहां तक उपपन्न हुआ ॥१२-१३$\frac{१}{२}$॥

पुनः शङ्क्वानयनप्रकारान्तराण्याह।

अपमोत्क्रमगुणनिहताः पूर्वगुणाश्छेदगुणकविवरेण ॥१४।
त्रिगुणाहतेन युक्ता विवराण्येतैर्हतार्धान्त्या।
भक्तानन्तरहारैः फलरहितान्त्यैव शङ्कवः क्रमशः ॥१५॥

वि. भा.—पूर्वगुणाः (पूर्वकथिता लम्बज्यापमजीवा समनरसूर्यैरित्यायुक्ताः) अपमोत्क्रमगुणनिहताः (क्रान्त्युत्क्रमज्यागुणिताः) त्रिगुणाहतेन (त्रिज्यागुणितेन) छेदगुणकविवरेण (हारगुणकान्तरेण) युक्तास्तदा विवराणि (अन्तराणि) स्युः। एतैः (विवरैः) अर्धान्त्या (अन्त्या) हता (गुणिता) अनन्तरहारैः (पूर्वकथितहारैः) भक्ता फलरहिताऽन्त्यैव (फलोनाऽन्त्यैव) क्रमशः शङ्कवः स्युरिति ॥ १४-१५ ॥

अत्रोपपत्तिः।

क्रान्त्युत्क्रमज्या = त्रि — क्रान्तिकोटिज्या = त्रि — द्यु

श्लोकोक्त्यनुसारेण लंज्या (त्रि — द्यु) + त्रि (त्रि — लंज्या) | त्रि = हरः, लंज्या = गुण
= लंज्या.त्रि — लंज्या.द्यु + त्रि.त्रि — त्रि.लंज्या

= त्रि.त्रि — लंज्या.द्यु = अन्तरम् = विवरम्। एतेन गुणिताऽन्त्या (त्रि.त्रि — लंज्या.द्यु) अन्त्या = त्रि.त्रि.अन्त्या — लंज्या.द्यु.अन्त्या पूर्वकथितहारेण भक्ता $\frac{\text{त्रि.त्रि.अन्त्या — लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि.}}$ एतद्रहिताऽन्त्या

$$\text{अन्त्या} - \frac{(\text{त्रि.त्रि.अन्त्या} - \text{लंज्या.द्यु.अन्त्या})}{\text{त्रि.त्रि}} =$$

$$\frac{\text{अन्त्या.त्रि.त्रि} - \text{त्रि.त्रि.अन्त्या} + \text{लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि}} = \frac{\text{लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि}}$$

$$= \frac{\text{हृति.लंज्या}}{\text{त्रि}} = \text{शङ्कु}$$ । एवमेव

क्रांज्या (त्रि — द्यु) + त्रि (अग्रा — क्रांज्या) | अत्र हरः = अग्रा, गुणः = क्रांज्या

= क्रांज्या.त्रि — क्रांज्या. द्यु + त्रि.अग्रा — त्रि.क्रांज्या
= त्रि. अग्रा — क्रांज्या.द्यु = विवर = अन्तरम् एतेन गुणिताऽन्त्या
त्रि.अग्रा.अन्त्या — क्रांज्या.द्यु अन्त्या पूर्वकथितहारेण भक्ता

$\frac{\text{त्रि.अग्रा.अन्त्या—क्राज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}$ एतद्रहिताऽन्त्या

$\text{अन्त्या}-\left(\frac{\text{त्रि.अग्रा.अन्त्या—क्रांज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}\right)=\frac{\text{क्रांज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}=$

$\frac{\text{हृति.क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}$=शङ्कु एवमग्रेऽपि बोध्यम् । एतेन "अपमोत्क्रमगुणनिहता" इत्यादि सर्वमुपपन्नम् ॥१४-१५॥

फिर शङ्कु के आनयन करते हैं ।

हि. भा.—पूर्वकथित गुणकों को क्रान्ति के उत्क्रमज्या से गुणकर त्रिज्यागुणित हर और गुणक के अन्तर को जोड़ देने से विवर (अन्तर) संज्ञक होता है । इससे अन्त्या को गुणकर पूर्वकथित हारों से भाग देकर जो फल हो उन्हें अन्त्या में घटाने से क्रम से शङ्कु के मान होते हैं ॥ १४-१५ ॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार लंज्या (त्रि—द्यु) + त्रि (त्रि—लंज्या) | त्रि—द्यु = क्रान्त्युत्क्रमज्या, त्रि = हर । लंज्या = गुण

=लंज्या.त्रि—लंज्या.द्यु + त्रि. त्रि—त्रि.लंज्या

=त्रि.त्रि—लंज्या.द्यु = विवरसंज्ञक = अन्तर इससे अन्त्या को गुणने से

(त्रि.त्रि.अन्त्या—लंज्या.द्यु.अन्त्या) पूर्वकथितहार से भाग देने से

$\frac{\text{त्रि.त्रि.अन्त्या—लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि.}}$ इसको अन्त्या में घटाने से

$\text{अन्त्या}-\left(\frac{\text{त्रि.त्रि.अन्त्या—लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि}}\right)=$

$\frac{\text{अन्त्या.त्रि.त्रि—त्रि.त्रि.अन्त्या+लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि}}=\frac{\text{लंज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.त्रि.}}$

$=\frac{\text{हृति.लंज्या}}{\text{त्रि}}$=शङ्कु । इसी तरह

क्रांज्या (त्रि.द्यु) + त्रि (अग्रा—क्रांज्या) यहां अग्रा = हर । क्रांज्या = गुणक
=क्रांज्या.त्रि—क्रांज्या.द्यु + त्रि.अग्रा—त्रि.क्रांज्या

=त्रि.अग्रा—क्रांज्या.द्यु = विवरसंज्ञक । इससे अन्त्या को गुणने से

त्रि.अग्रा.अन्त्या—क्रज्या.द्यु.अन्त्या पूर्व कथित हार से भाग देने से

$\frac{\text{त्रि.अग्रा.अन्त्या—क्रांज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}$ इसको अन्त्या में घटाने से

$$\text{अन्त्या}-\frac{\text{त्रि.अग्रा.अन्त्या}-\text{क्रांज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}=$$

$$\frac{\text{अन्त्या.त्रि.अग्रा}-\text{त्रि.अग्रा.अन्त्या}+\text{क्रांज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}=\frac{\text{क्रांज्या.द्यु.अन्त्या}}{\text{त्रि.अग्रा}}$$

$=\frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{अग्रा}}=$ शङ्कु । इसी तरह आगे भी समझना चाहिए । इससे "अपमोत्क्रमगुणनिहताः ।।" इत्यादि उपपन्न हुआ ।। १४—१५ ।।

पुनस्तदानयनान्याह ।

पलगुणपलभा कुज्याऽग्राभिर्धृतिः पृथग्गुणिता ।
त्रिज्याक्षश्रवणाग्रोद्धृत्ति भक्ता च नृतलानि ॥ १६ ॥
अथवा धृत्यान्त्याद्यैः कथितगुणैः प्रोक्तहारकैः प्राग्वत् ।
नृतलानि तत्कृतिवियुग्धृतिवर्गान्मूलमथवा ते ॥१७॥

वि. भा .—धृतिः (हृतिः) पृथक् पलगुणपलभाकुज्याऽग्राभिः (अक्षज्या-पलभा कुज्याऽग्राभिः) गुणिता, त्रिज्याक्षश्रवणाग्रोद्धृतिभक्ता (त्रिज्यापलवर्णाग्रातद्धृतिभिर्भक्ता) तदा नृतलानि (शंकुतलानि) भवन्ति । अथवा कथितगुणैः (पूर्वकथितगुणकैः) प्रोक्तहारकैः (कथितहारमानैः)सधितैर्धृत्यान्त्याद्यैः (तद्धृत्यन्त्याद्यैः) नृतलानि (शंकुतलानि)भवन्ति । तत्कृतिवियुग्धृतिवर्गात् (शंकुतलवर्गोनहृतिवर्गात्) मूलं तदा ते शंकुवः स्युरिति ।। १६—१७ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{अज्या . हृति}}{\text{त्रि}}=$शंकुतल । $\frac{\text{पभा . हृति}}{\text{पक}}=$शंकुतल ।

$\frac{\text{कुज्या . हृति}}{\text{अग्रा}}=$शंकुतल । $\frac{\text{अग्रा . हृति}}{\text{तधृति}}=$शंकुतल ।

ततः $\sqrt{\text{हृति}^2-\text{शंकुतल}^2}=$शंकुः । धृत्यान्त्याद्यैः कथितगुणैरित्यादि स्पष्टमेव ।। १६—१७ ।।

फिर शंकु के आनयन करते हैं ।

हि. भा .—हृति को अलग अलग अक्षज्या, पलभा, कुज्या और और अग्रा से गुणा कर त्रिज्या, पलकर्ण, अग्रा और तद्धृति से भाग देने से शंकुतल होते हैं । अथवा पूर्वकथित गुणक और हरों के द्वारा साधित हृति- अन्त्या आदि से शंकुतल के मान आते हैं । हृतिवर्ग में शंकुतल वर्ग को घटा कर मूल लेने से शंकुमान हैं ।। १६-१७ ।।

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{अज्या . हृति}}{\text{त्रि}}=$शंकुतल । $\frac{\text{पभा . हृति}}{\text{पक}}=$शंतल

$\frac{\text{कुज्या . हृति}}{\text{अग्रा}}$ = शंतल । $\frac{\text{अग्रा . हृति}}{\text{तद्धृति}}$ = शंतल तव $\sqrt{\text{हृति}^2 - \text{शंतल}^2}$ = शंकु ।

'धृत्यान्त्याद्यैः कथितगुणैः'' इत्यादि की उपपत्ति स्पष्ट ही है ॥ १६-१७ ॥

इदानीं दिनार्धकर्णानयनमाह ।

त्रिज्या धृतिविशेषोऽक्षश्रुतिनिहतो विभाजितो धृत्या ।
फलवियुगुदक् समेताऽक्षश्रुतिरितरद्युदलकर्णः ॥१८॥

वि. भा.—त्रिज्याधृतिविशेषः (त्रिज्याहृतिवियोगः) अक्षश्रुतिनिहतः (पलकर्णगुणितः) धृत्या विभाजितः (हृतिभक्तः) फलवियुक्समेताऽक्षश्रुतिः (फलरहितयुतः पलकर्णः) तदेतरद्युदलकर्णः (भिन्नमध्यकर्णः) भवेदिति ।

अत्रोपपत्तिः ।

अत्र ग्रन्थे धृतिशब्देन सर्वत्रैव हृतिर्ग्राह्या ।

श्लोकोक्त्या पक + $\frac{(\text{त्रि} - \text{हृति})\text{पक}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक.हृति} + \text{पक.त्रि} - \text{पक.हृति}}{\text{हृ}}$

$= \frac{\text{पक.त्रि}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक त्रि.१२.शं}}{\text{हृ.१२.} \times \text{शं}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{१२} \times \text{हृ}}{\text{हृ.शं}} = \frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शं}}$ = मछाक एवमन्तरपक्षेऽपि ज्ञेयमिति ॥१८॥

हि. भा.—त्रिज्या और हृति के अन्तर को पलकर्ण से गुणाकर हृति से भाग देना ज फल हो उसे दक्षिणोत्तर क्रम से पलकर्ण में जोड़ने और घटाने से दूसरा मध्यकर्ण होता है अर्थात् प्रकारान्त से मध्यकर्ण होता है ॥१८॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार पक + $\frac{(\text{त्रि.हृति})\ \text{पक}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक.हृति} + \text{पक.त्रि} - \text{पक.हृ}}{\text{हृ}}$

$= \frac{\text{पक.त्रि}}{\text{हृ}} = \frac{\text{पक.त्रि} \times \text{१२} \times \text{शं}}{\text{हृ} \times \text{२२} \times \text{शं}} = \frac{\text{त्रि} \times \text{१२} \times \text{हृ}}{\text{हृ} \times \text{१२} \times \text{शं}} = \frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शं}}$ = मध्यच्छाक

इसी तरह अन्तर पक्ष में भी समझना चाहिये ॥१८॥

इदानीं पुनर्मध्यकर्णानयनमाह ।

त्रिज्याऽक्षकर्णगुणिता स्वधृतिभक्ता वा द्युदलकर्णः ।
द्युज्यान्त्याघातहृदक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघातो वा ॥१९॥

वि. भा.—त्रिज्या अक्षकर्णगुणिता (पलकर्णगुणिता) स्वधृतिभक्ता (हृतिविभक्ता) वा (अथवा) द्युदलकर्णः (मध्यकर्णः) भवतीति ॥

अथवा अक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघातः (पलकर्णत्रिज्यावर्गवधः) द्युज्यान्त्या घातहृत् (द्युज्यान्त्या घातभक्तः) तदा मध्यकर्णो भवेदिति ॥१६॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शंकु}}$=मध्यकर्ण । परन्तु $\frac{\text{१२}\times\text{हृति}}{\text{पक}}$=शङ्कु ।

तत उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि.१२}}{\frac{\text{१२}\times\text{हृति}}{\text{पक}}}=\frac{\text{त्रि.१२.पक}}{\text{१२.हृति}}=\frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$=मध्यकर्ण एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ॥

अथ द्युज्यान्त्याघातहृदित्यादिश्लोकोक्त्या $\frac{\text{पक.त्रि}^2}{\text{द्यु.ज्या.अन्त्या}}=\frac{\text{पक.त्रि}^2}{\text{द्यु}.\frac{\text{हृति.त्रि}}{\text{द्यु}}}$

$=\frac{\text{पक.त्रि}^2}{\text{हृति.त्रि}}=\frac{\text{पक.त्रि}^2.\ \text{१२.शं}}{\text{हृति.त्रि.१२.शं}}=\frac{\text{पक.त्रि.१२.शं}}{\text{हृ.१२}\times\text{शं}}=\frac{\text{त्रि.१२}\times\text{हृति}}{\text{हृति.शं}}$

$=\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शं}}$=मध्यकर्ण एतेन द्वितीयप्रकार उपपद्यत इति ॥

अथवा

$\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शंकु}}$=मध्यकर्ण । पर $\frac{\text{१२.हृति}}{\text{पक}}$=शङ्कु अत उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि}\times\text{१२}}{\frac{\text{१२}\times\text{हृति}}{\text{पक}}}=$

$\frac{\text{त्रि}\times\text{१२}\times\text{पक}}{\text{१२}\times\text{हृति}}=\frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$=मकर्ण । यतः $\frac{\text{अन्त्या}\times\text{द्यु}}{\text{त्रि}}$=हृति

अतो हृतेरुत्थापनेन $\frac{\text{त्रि.पक}}{\frac{\text{अन्त्या.द्यु}}{\text{त्रि}}}=\frac{\text{त्रि.पक.त्रि}}{\text{अन्त्या}\times\text{द्यु}}=\frac{\text{त्रि}^2\text{.पक}}{\text{अन्त्या}\times\text{द्यु}}$=मध्यकर्ण

अत उपपन्नमाचार्योक्तं मध्यकर्णानयनमिति ॥१६॥

हि. भा.—वा त्रिज्या को पलकर्ण से गुणकर हृति से भाग देने से मध्यकर्ण होता है। अथवा पलकर्ण और त्रिज्यावर्ग के घात को द्युज्या और अन्त्या के घात से भाग देने से मध्यकर्ण होता है ॥ १६ ॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शंकु}}$=मध्यकर्ण । परन्तु $\frac{\text{१२.हृति}}{\text{पक}}$=शंकु इससे मध्यकर्ण के स्वरूप में शंकु को उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि.१२}}{\frac{\text{१२}\times\text{हृति}}{\text{पक}}}=\frac{\text{त्रि.१२.पक}}{\text{१२.हृति}}=\frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$=मध्यकर्ण

इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ ॥

द्वितीय प्रकार के लिये उपपत्ति ।

$\frac{\text{त्रि.१२}}{\text{शंकु}}$ = मध्यकर्ण । परन्तु $\frac{\text{१२.हृति}}{\text{पक}}$ = शंकु इससे उत्थापन देने से

$\frac{\text{त्रि..१२}}{\frac{\text{१२.हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{त्रि.१२.पक}}{\text{१२.हृति}} = \frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$ = मकर्ण । यत: $\frac{\text{अन्त्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृति

इससे मध्यकर्ण स्वरूप में हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{त्रि.पक}}{\frac{\text{अन्त्या.द्यु}}{\text{त्रि}}} = \frac{\text{त्रि-पक.त्रि}}{\text{अन्त्या.द्यु}} =$

$\frac{\text{त्रि}^{2}\text{.पक}}{\text{अन्त्या.द्यु}}$ = मध्यकर्ण इससे आचार्योक्त मध्यकर्णानयन उपपन्न हुआ ॥१६॥

इदानीं मध्यच्छायानयनमाह ।

दृग्ज्याऽक्षश्रुतिगुणिता तद्धृतिभक्ता द्युदलभा स्यात् ।
भावृत्ते स्वाग्रा याऽत्रश्रवणहता धृतिविभक्ता ॥२०॥
तत्पलभा विवरैक्यं द्युदलाभा सौम्ययाम्ययोर्वा स्यात् ॥२०½॥

वि. भा.—दृग्ज्या अक्षश्रुतिगुणिता (पकलर्णगुणा) तद्धृतिभक्ता (हृति-विभक्ता) तदा द्युदलभा (मध्यच्छाया) स्यादिति ॥ २०-२०½ ॥

वा (अथवा) स्वाग्रा (त्रिज्या गोलीयाग्रा) या साऽक्षश्रवणहता (पलकर्ण-गुणा) धृतिविभक्ता (हृतिभक्ता) तदा भावृत्ते (छायावृत्ते) अग्रा भवेत् । सौम्य-याम्ययोर्गोले (उत्तरदक्षिणयोर्गोले) तत्पलभा विवरैक्यं (छायाकर्णगोलीयाग्रा पलभयोरन्तरैक्यं) तदा द्युदलभा (मध्यच्छाया) भवेदिति ॥२०-२०½॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{दृग्ज्या.१२}}{\text{शंकु}}$ = मछाया । परन्तु $\frac{\text{१२.हृति}}{\text{पक}}$ = शंकु

तत उत्थापनेन $\frac{\text{दृग्ज्या.१२}}{\frac{\text{१२.हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{दृग्ज्या.१२.पक}}{\text{१२.हृति}} = \frac{\text{दृग्ज्या.पक}}{\text{हृति}}$ = मछा

एतेन प्रथमप्रकार उपपद्यते ।

अथ छायाकर्णगोलीयाग्रा = $\frac{\text{अग्रा.छाकर्ण}}{\text{त्रि}}$ । परन्तु $\frac{\text{त्रि.पक}}{\text{हृति}}$ = छाकर्ण

तत उत्थापनेन $\frac{\text{अग्रा.त्रि.पक}}{\text{त्रि.हृति}} = \frac{\text{अग्रा.पक}}{\text{हृति}}$ = छायाकर्णगोलीयाग्रा ।

अग्रा±शंकुतल = भुज, परं छायाकर्णगोले पभा = शंकुतल छायाकर्णे अग्रा±पलभा = छायाकर्णगोले मध्यभुजः = मध्यछाया

एतेन भावृत्ते स्वाग्रा याऽक्षश्रवणहतेत्याद्युपपद्यत इति ॥२०-२०½॥

हि. भा.—दृग्ज्या को पलकर्ण से गुणा कर हृति से भाग देने से मध्यछाया होती है। अथवा अग्रा को पलकर्ण से गुणाकर हृति से भाग देने से भावृत्तीय (छायाकर्णगोलीय) अग्रा होती है। उत्तर और दक्षिण गोल क्रम से उसके (छायाकर्णगोलीयाग्रा के) और पलभा के अन्तर और योग करने से मध्यच्छाया होती है ॥२०-२०½॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{दृग्ज्या}.१२}{\text{शंकु}}$ = मध्यच्छाया। परन्तु $\frac{१२.\text{हृति}}{\text{पक}}$ = शंकु इससे उत्थापन करने से

$$\frac{\text{दृग्ज्या}.१२}{\frac{१२.\text{हृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{दृग्ज्या}.१२.\text{पक}}{१२.\text{हृति}} = \frac{\text{दृग्ज्या}.\text{पक}}{\text{हृति}} = \text{मध्यच्छाया}।$$

इससे प्रथम प्रकार उपपन्न हुआ ॥ २०-२०½ ॥

छायाकर्णगोलीयाग्रा = $\frac{\text{अग्रा}.\text{छायाक}}{\text{त्रि}}$ । परन्तु $\frac{\text{त्रि}.\text{पक}}{\text{हृति}}$ = छायाकर्ण

इससे छायाकर्ण गोलीयाग्रा के स्वरूप में छायाकर्ण को उत्थापन करने से

$$\frac{\text{अग्रा त्रि}.\text{पक}}{\text{त्रि}.\ \text{हृति}} = \frac{\text{अग्रा}.\text{पक}}{\text{हृति}} = \text{छायाकर्ण गोलीयाग्रा}।$$

अग्रा$\pm$शंकुतल = भुज। परन्तु छायाकर्ण गोल में शंकुतल = पलभा इसलिये छायाकर्णगोलीयाग्रा$\pm$पलभा = छायाकर्णगोभुज = मछाया इससे भावृत्ते स्वाग्रा याऽक्षश्रवणहता इत्यादि आचार्योक्त मध्यच्छायानयन उपपन्न हुआ ॥ २०-२०½ ॥

पुनर्मध्यच्छायानयनमाह

भावृत्ताग्रोनयुते पलभे दिनार्धभेस्तोऽथवा गोले।
सौम्ये याम्ये ज्ञेयाः सुधियाऽन्ये वा प्रकाराश्च ॥२१॥

वि. भा.—अथवा सौम्ये याम्ये गोले (उत्तरदक्षिणगोले) भावृत्ताग्रोनयुते पलभे (छायावृत्तीयाग्रा रहितसहिते पलभे) दिनार्धभे (मध्यच्छाये) स्तः (भवतः) वा सुधियाऽन्ये प्रकाराश्च ज्ञेया इति ॥२१॥

अत्रोपपत्तिः ।

अस्योपपत्तिः पूर्वश्लोकोपपत्त्यैव स्फुटेति ॥ २१ ॥

हि. भा.—अथवा उत्तर दक्षिण गोल में छायावृत्तीयाग्रा को पलभा में घटाना, और जोड़ना तब मध्यच्छाया होती है या पण्डित लोग इससे अन्य प्रकारों को भी समझें ॥२१॥

उपपत्ति ।

इसकी उपपत्ति पहले श्लोक की उपपत्ति से स्पष्ट है ॥ २१ ॥

इदानीं द्युज्याऽन्त्ययोरानयनमाह ।

पलकर्णहतत्रिगुणकृतिः कर्णघ्नद्युज्ययाप्ताऽन्त्या ।
कर्णान्त्याघातहृता लब्धा द्युज्या ततो भवति ॥२२॥

वि. भा.—पलकर्णहतत्रिगुणकृतिः (पलकर्णगुणितत्रिज्यावर्गः) कर्णघ्न-द्युज्ययाऽप्ता (छायाकर्णगुणितद्युज्यया भक्तः) तदाऽन्त्या भवति । पलकर्णहत-त्रिगुणकृतिः कर्णान्त्याघातहृता (छायाकर्णान्त्याघातभक्ता) लब्धा ततोऽन्त्यातो द्युज्या भवतीति ॥२२॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ द्युज्यान्त्या घातहृदक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघात इत्यादिना

$\frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{द्यु} . \text{अन्त्या}} = \text{मकर्ण} \therefore \frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{द्यु} . \text{मकर्ण}} = \text{अन्त्या}$

वा $\frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{मक}} = \text{अन्त्या} . \text{द्यु} \therefore \frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{मक} . \text{अन्त्या}} = \text{द्यु}$ । अत उपपद्यते आचार्यो-क्तमिति ॥२२॥

हि. भा.—पलकर्णगुणित त्रिज्यावर्ग में छायाकर्ण गुणित द्युज्या से भाग देने से अन्त्या होती है । पलकर्णगुणित त्रिज्यावर्ग में छायाकर्ण और अन्त्या के घात से भाग देने से द्युज्या होती है ॥२२॥

उपपत्ति ।

द्युज्यान्त्याघातहृदक्षश्रवणत्रिगुणकृतिघात" इत्यादि से

$\frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{द्यु} . \text{अन्त्या}} = \text{मध्यकर्ण}$ । $\therefore \frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{द्यु} . \text{मक}} = \text{अन्त्या}$ ।

वा $\frac{\text{त्रि}^2 . \text{पक}}{\text{मक}} = \text{अन्त्या} . \text{द्यु} \therefore \frac{\text{त्रि}^2 \text{पक}}{\text{मक} . \text{अन्त्या}} = \text{द्यु}$ ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२२॥

इदानीं हृत्यानयनमाह ।

द्युगणत्रिगुणान्तरगुणिताऽन्त्या त्रिज्याहृत्फलोनिता च धृतिः ।
वा कुगुण चरगुणान्तरगुणिताऽन्त्या चरगुणहृत्फलोनिता च धृतिः ॥२३॥

वि. भा.—अन्त्या—द्युगुणत्रिगुणान्तरगुणिता (द्युज्यात्रिज्यान्तरगुणा) त्रिज्याहृत् (त्रिज्याभक्ता) फलोनिता (फलरहिता) अन्त्या, धृतिः (हृतिः) भवेत् । वा, अन्त्या कुगुणचरगुणान्तरगुणिता (कुज्याचरज्यान्तरगुणा) चरगुणहृत् (चरज्याभक्ता) फलोनिता (फलरहिता) अन्त्या—धृतिः (हृतिः) भवेदिति ॥२३॥

अत्रोपपत्तिः ।

श्लोकोक्त्या अन्त्या— $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—द्यु)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या. त्रि—अन्त्या.त्रि+अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृतिः । एवमेव अन्त्या— $\frac{\text{(चरज्या—कुज्या) अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. चज्या—अन्त्या. चज्या+अन्त्या. कुज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{अन्त्या. कुज्या}}{\text{चरज्या}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृति । अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तमिति ।।२३।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे द्युदलभादिविधिर्नवमोऽध्यायः ।।

हि. भा.—अन्त्या को त्रिज्या और द्युज्या के अन्तर से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से जो फल हो उसे अन्त्या में घटाने से हृति होती है । वा अन्त्या को कुज्या और चरज्या के अन्तर से गुणकर चरज्या से भाग देने से जो फल हो उसे अन्त्या में घटाने से हृति होती है ।।२२।।

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार अन्त्या— $\frac{\text{अन्त्या (त्रि—द्यु)}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या. त्रि—अन्त्या. त्रि+अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृति । इसी तरह

अन्त्या— $\frac{\text{(चरज्या—कुज्या) अन्त्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{अन्त्या. चज्या—अन्त्या. चज्या+कुज्या. अन्त्या}}{\text{चज्या}}$

$= \frac{\text{कुज्या. अन्त्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{द्यु. अन्त्या}}{\text{त्रि}}$ = हृति । अतः आचार्योक्त युक्तियुक्त है ।।२३।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकारमे द्युदलभादिविधिः नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ ।



दशमोऽध्यायः

अथेष्टच्छायाविधिः

तत्र कर्णवृत्ताग्रावशेन छायाकर्णानयनमाह ।

भावृत्ताग्राक्षज्याघातः कुज्याहृतो द्युतिश्रवणः ।
भावृत्ताग्रा लम्बज्याघातः क्रान्तिज्ययाप्तो वा ॥१॥
भावृत्ताग्रा त्रिज्यावधोऽथवा भाजितोऽग्रया भवति ॥१$\frac{1}{2}$॥

वि. भा.—भावृत्ताग्राक्षज्याघातः (छायाकर्णगोलीयाग्राऽक्षज्यावधः) कुज्या हृतः (कुज्याभाजितः) फलं द्युतिश्रवणः (छायाकर्णः) भवेत् । वा भावृत्ताग्रालम्बज्याघातः(छायाकर्णगोलीयाग्रा लम्बज्यावधः) क्रान्तिज्ययाऽप्तः (क्रान्तिज्यया भक्तः) फलं छायाकर्णो भवेत् ॥ अथवा भावृत्ताग्रा त्रिज्यावधः (छायाकर्णगोलीयाग्रा त्रिज्याघातः) अग्रया भाजितः फलं छायाकर्णो भवति ॥१-१$\frac{1}{2}$॥

अत्रोपपत्तिः ।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{छायाकर्णगोलीयाग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण} \times \text{अक्षज्या}}{\text{त्रि. कु}}$

$= \frac{\text{त्रि} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रि}} = \text{छायाकर्ण}$ । यतः $\frac{\text{अग्रा. छाकर्ण}}{\text{त्रि}} = \text{छायाकर्णगो अग्रा}$

$\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{त्रि}$

अतः सिद्धम् ।

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{छायाकर्ण}$ । परं $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{लंज्या}}{\text{क्रांज्या}}$

$\therefore \frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \text{छायाकर्ण}$ ।

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. त्रि}}{\text{त्रि. अग्रा}} = \text{छायाकर्ण}$ ।

एतेन सर्वं सिद्धमिति ॥१—१$\frac{1}{2}$॥

हि. भा.—छायावृत्तीय अग्रा और अक्षज्या के घात को कुज्या से भाग देने से छाया-कर्ण होता है। वा छायावृत्तीय अग्रा और लम्बज्या के घात को क्रान्तिज्या से भाग देने से छायाकर्ण होता है ॥ अथवा छायावृत्तीय अग्रा और त्रिज्या के घात को अग्रा से भाग देने छायाकर्ण होता है ॥१-१$\frac{1}{2}$॥

उपपत्ति।

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा} \times \text{अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} =$

$\frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. अक्षज्या}}{\text{त्रि. कुज्या}} = \frac{\text{त्रि. छायाकर्ण}}{\text{त्रि}} = \text{छायाक.}$ } यतः $\frac{\text{अग्रा. छाक}}{\text{त्रि}} = \text{छायाकगोअग्रा}$

$\frac{\text{अग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{त्रि}$

∴ सिद्ध हुआ ॥१-१$\frac{1}{2}$॥

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{छायाकर्ण}$। लेकिन $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{लंज्या}}{\text{क्रांज्या}}$

इसलिए $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \text{छायाकर्ण}$।

तथा $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{छायाकर्ण}$

∴ सिद्ध हो गया ॥१-१$\frac{1}{2}$॥

इदानीं कर्णवृत्ताग्रावशेन छायानयनमाह।

भावृत्ताग्रा दृग्ज्यावधेऽग्रया भाजिते भवेच्छाया ॥२॥

वि. भा.—भावृत्ताग्रा दृग्ज्यावधे (छायाकर्णगोलीयाग्रा दृग्ज्याघाते) अग्रया भाजिते (अग्राभक्ते) तदा छाया भवेदिति ॥२॥

अत्रोपपत्तिः।

श्लोकोक्त्या $\frac{\text{छायाकर्णगोअग्रा. दृग्ज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा. छायाकर्ण. दृग्ज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}}$

$= \frac{\text{छायाकर्ण. दृज्या}}{\text{त्रि}} = \text{छाया}$ ∴ सिद्धम् ॥२॥

हि. भा.—छायावृत्तीयाग्रा और दृग्ज्या के घात में अग्रा से भाग देने से छाया होती है ॥२॥

उपपत्ति

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{\text{छायाकर्णगोऽग्रा. दृग्ज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा. छाकर्ण. दृग्ज्या}}{\text{त्रि. अग्रा}} =$

$\frac{\text{छाकर्ण. दृग्ज्या}}{\text{त्रि}} =$ छाया। अतः आचार्योक्त युक्तियुक्त है ।।२।।

इदानीं शंक्वानयनमाह।

त्रिज्याऽर्काभ्यस्ता कर्णहृता सर्वदा भवेच्छङ्कुः।
दृग्ज्या सूर्याभ्यस्ता प्रभा हृता वा भवेच्छङ्कुः ।।३।।

वि. भा.—त्रिज्या—अर्काभ्यस्ता (द्वादशगुणिता) कर्णहृता (छायाकर्ण-भक्ता) तदा सर्वदा शंकुर्भवेत्। वा दृग्ज्या सूर्याभ्यस्ता (द्वादशगुणिता) प्रभाहृता (छायाभक्ता) तदा शंकुर्भवेदिति ।।३।।

अत्रोपपत्तिः।

छायाक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{त्रि. १२}}{\text{छायाकर्ण}} =$शंकु

तथा $\frac{\text{दृग्ज्या. १२}}{\text{छाया}} =$शंकु। यतः $\frac{\text{त्रि}}{\text{छाकर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$

$\therefore$ युक्तियुक्तमेवोक्तमाचार्येणेति ।।३।।

हि. भा.—त्रिज्या को बारह से गुणकर छायाकर्ण से भाग देने से शंकु होता है। वा दृग्ज्या को बारह से गुणकर छाया से भाग देने से शंकु होता है ।।३।।

उपपत्ति।

छायाक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{त्रि. १२}}{\text{छाकर्ण}} =$शंकु। तथा $\frac{\text{त्रि}}{\text{छाकर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या}}{\text{छाया}}$

इसलिये $\frac{\text{त्रि. १२}}{\text{छाकर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या. १२}}{\text{छाया}} =$शंकु। $\therefore$ आचार्योक्त युक्तियुक्त है ।।३।।

पुनस्तत्साधनान्याह।

समनृक्रान्त्यवलम्बज्या सूर्यैहि ताड़ितं नृतलम्।
क्रमशोऽग्रा कुज्याऽक्षगुणपलभाहृतं नराः स्युर्वा ।।४।।

वि. भा.—वा नृतलं (शङ्कुतलं) समनृक्रान्त्यवलम्बज्या सूर्यैः (समशङ्कु-क्रान्तिज्यालम्बज्याद्वादशभिः) ताड़ितं (गुणितं) क्रमशः अग्राकुज्याऽक्षगुणपल-हृतं (अग्राकुज्याऽक्षज्यापलभाभिर्भक्तं) तदा नराः (शङ्कवः) स्युरिति ।।४।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{समशं} \times \text{शङ्कुतल}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{क्रांज्या. शङ्कुतल}}{\text{कुज्या}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{लंज्या. शङ्कुतल}}{\text{अक्षज्या}}$ = शङ्कु । $\frac{12 \times \text{शङ्कुतल}}{\text{पभा}}$ = शंकु । अत आचार्योक्तपद्यमुपपन्नम् ॥४॥

हि. भा.—अथवा शंकुतल को समशंकु, क्रान्तिज्या, लम्बज्या और द्वादश से अलग अलग गुणाकर क्रम से अग्रा, कुज्या, अक्षज्या और पलभा से भाग देने से शंकु प्रमाण होते हैं ॥४॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{समशं. शंकुतल}}{\text{अग्रा}}$ = शङ्कु । $\frac{\text{क्रांज्या. शंकुतल}}{\text{कुज्या}}$ = शंकु । $\frac{\text{लंज्या. शंकुतल}}{\text{अक्षज्या}}$ = शंकु । तथा $\frac{12.\ \text{शङ्कुतल}}{\text{पलभा}}$ = शङ्कु । इससे आचार्योक्त पद्य उपपन्न हुआ ॥४॥

अथेष्टशंक्वानयने ।

स्वधृतिस्वान्त्ये गुणिते द्युदलनरेण क्रमाद्विभक्ते च ।
धृत्यान्त्याभ्यां लब्धावभीष्टकालोद्भवौ शङ्कू ॥५॥

वि. भा.—स्वधृतिस्वान्त्ये (इष्टहृतीष्टान्त्ये) द्युदलनरेण (दिनार्धशंकुना गुणिते, क्रमात् (क्रमशः) धृत्यान्त्याभ्यां (हृतिमध्यान्त्याभ्यां) विभक्ते (भाजिते) लब्धौ अभीष्टकालोद्भवौ शंकू (इष्टकालिकौ शंकू) भवेतामिति ॥ मध्यान्त्यैषान्त्या कथ्यते सर्वत्रेति ॥५॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शंकु} \times \text{इहृ}}{\text{हृ}}$ = इष्टशंकु । शंकु = मध्यशंकुः । हृ = मध्यहृतिः । परन्तु $\frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृ अत उत्थापनेन $\frac{\text{शंकु} \times \text{इहृ}}{\frac{\text{अन्त्या. द्यु}}{\text{त्रि}}}$ = $\frac{\text{शंकु} \times \text{इहृ} \times \text{त्रि}}{\text{अन्त्या. द्यु}}$ = $\frac{\text{शंकु. इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ = इष्टशंकुः । अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥५॥

हि. भा.—इष्टहृति और इष्टान्त्या को दिनार्धशङ्कु से गुणाकर क्रमशः हृति और अन्त्या से भाग देने से इष्टशङ्कु होते हैं । यहां दो प्रकार से इष्टशङ्कु के साधन हैं ॥५॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{शङ्कु}\cdot \text{इहृ}}{\text{हृ}}$ = इष्टशङ्कु | शङ्कु = मध्यशङ्कु, हृति = मध्यहृति

परन्तु $\frac{\text{अन्त्या}.\ \text{द्यु}}{\text{त्रि}}$ = हृ इष्टशङ्कु के स्वरूप में हृति को उत्थापन देने से $\frac{\text{शङ्कु}\cdot \text{इहृ}}{\frac{\text{अन्त्या}.\ \text{द्यु}}{\text{त्रि}}}$

$= \frac{\text{शङ्कु}\cdot \text{इहृ}.\text{त्रि}}{\text{अन्त्या}\cdot \text{द्यु}} = \frac{\text{शङ्कु}\cdot \text{इष्टान्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ = इष्टशङ्कु ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥५॥

पुनः प्रकारान्तराभ्यां तदानयनमाह ।

स्वधृतिविर्वजिता धृत्या नतोत्क्रमज्यया वा हतो द्युदलशङ्कुः ।
धृत्याऽन्त्याभ्यां भक्तः फलोनितः सैव चेष्टनरः ॥६॥

वि. भा.—द्युदलशंकुः (मध्यशंकुः) स्वधृतिविवर्जिताधृत्या (इष्टहृति-रहितहृत्या) वा नतोत्क्रमज्यया (नतकालोत्क्रमज्यया) हतः (गुणितः) धृत्याऽन्त्या-भ्यां (हृत्यन्ताभ्यां) भक्तः (भाजितः) फलोनितः (फलरहितः) स एव (द्युदलशंकु-रेव) तदेष्टशंकुर्भवेदिति ॥६॥

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{शं}\cdot \text{इहृ}}{\text{हृ}}$ = इष्टशंकु, एतस्य शंकौ विशोधनेन

$\text{शं} - \frac{\text{शं}\cdot \text{इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{शं}\cdot \text{हृ} - \text{शं}\cdot \text{इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{शं}\ (\text{हृ} - \text{इहृ})}{\text{हृ}} = \text{शं} - \text{इशं}$

इदं शंक्वन्तरं(शंकु)अस्माद्विशोध्यं तदेष्टशंकुः = शं — शंक्वन्तर = इष्टशं = $\frac{\text{शं}.\ \text{इहृ}}{\text{हृ}}$

अथ $\frac{\text{इहृ}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{इ अन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ ∴ $\frac{\text{शं}\cdot \text{इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{शं}.\ \text{इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ = इशंकु । एतस्या(शं)त्र

विशोधनेन $\text{शं} - \frac{\text{शं}\cdot \text{इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{शं}\cdot \text{अन्त्या} - \text{शं}\cdot \text{इ अन्त्या}}{\text{अन्त्या}} =$

$\frac{\text{शं}\ (\text{अन्त्या} - \text{इष्टान्त्या})}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{शं}\cdot \text{नतोत्क्रमज्या}}{\text{अन्त्या}}$ = शंक्वन्तर ∴ = शं — अन्तर =

$\frac{\text{शं}\cdot \text{इ अन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ = इशंकु । अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ॥६॥

हि. भा.—इष्टशंकु को इष्ट रहित हृति से वा नतकाल की उत्क्रमज्या से क्रमशः गुणाकर, हृति और अन्त्या से भाग देने से इष्टशंकु होते हैं ॥६॥

उपपत्ति

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{शं. इहृ}}{\text{हृ}}$ = इ शंकु इसको (शं) में घटाने से शं. — $\frac{\text{शं. इहृ}}{\text{हृ}}$

$= \frac{\text{शं.हृ—शं. इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{शं (हृ—इहृ)}}{\text{हृ}}$ = शंक्वन्तर, इस शंक्वन्तर को (शं) इसमें घटाने से

$\frac{\text{शं. इहृ}}{\text{हृ}}$ = इष्टशंकु ।

$\because \frac{\text{इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}} \therefore \frac{\text{शं. इहृ}}{\text{हृ}} = \frac{\text{शं. इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$ = इशंकु इसको (शं) इसमें

घठाने से शं. — $\frac{\text{शं. इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{शं. अन्त्या—शं. इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}} = \frac{\text{शं. (अन्त्या — इअन्त्या)}}{\text{अन्त्या}} =$

$\frac{\text{शं. नतोत्क्रमज्या}}{\text{अन्त्या}}$ = शंक्वन्तर, ∴ शं. शंक्वन्तर = इशंकु = $\frac{\text{शं. इअन्त्या}}{\text{अन्त्या}}$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥६॥

इदानीं पुनरिष्टशंक्वानयनमाह ।

क्रान्त्युत्क्रमगुणरविहृतिरक्षश्रुतिहृत्पलोत्क्रमज्या च ।
युग्विवरं तत्स्वान्त्यघ्नं त्रिज्याहृत्फलवियुक्तासेष्टनरः ॥७॥

वि.भा.—क्रान्त्युत्क्रमगुणरविहृतिः (क्रान्त्युत्क्रमज्या द्वादशघातः) अक्ष श्रुतिहृत् (पलकर्णहृत्) पलोत्क्रमज्या (अक्षांशोत्क्रमज्या) युक् (युता) विवरं (विवरसंज्ञकम्) तत्स्वान्त्यघ्नं (इष्टान्त्यया गुणितं) त्रिज्याहृत् (त्रिज्याभक्तं) फलवियुक्ता सा (फलरहिता सेष्टान्त्या) इष्टनरः (इष्टशंकुः)भवेदिति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः

श्लोकोक्त्या $\frac{१२}{\text{पक}}$ (त्रि—द्यु) = $\frac{१२ \times \text{क्रान्त्युत्क्रमज्या}}{\text{पक}}$

$= \frac{१२.\ \text{त्रि}}{\text{पक}} - \frac{१२.\ \text{द्यु}}{\text{पक}}$ = लंज्या — $\frac{१२.\ \text{द्यु}}{\text{पक}}$ अत्राक्षांशोत्क्रमज्या योजनेन लंज्या—

$\frac{१२ \times \text{द्यु}}{\text{पक}}$ + अक्षांशोत्क्रमज्या = त्रि — $\frac{१२.\ \text{द्यु}}{\text{पक}}$ = विवरसंज्ञकम् इष्टमिष्टान्त्यज्यया

गुणितं त्रिज्याभक्तं तदा $\frac{\text{इअन्त्या}}{\text{त्रि}}\left(\text{त्रि} - \frac{१२.\ \text{द्यु}}{\text{पक}}\right)$

$= \text{इअन्त्या} - \frac{१२.\text{द्यु}\ .\ \text{इअन्त्या}}{\text{पक}\ .\ \text{त्रि}}$ = इअन्त्या — $\frac{१२\ .\ \text{इहृ}}{\text{पक}}$ = इअन्त्या — इशंकु

∴ इअन्त्या — (इअन्त्या — इशंकु) = इष्टशंकु । अत आचार्योक्तं युक्तियुक्तमिति ॥७॥

हि. भा.—क्रान्ति की उत्क्रमज्या और बारह के घात में पलकर्ण से भाग देकर फल में अक्षांश की उत्क्रमज्या जोड़कर जो हो उसका नाम विवर रखना, उसको (विवर को) इष्टान्त्या से गुण कर त्रिज्या से भाग देने से जो हो उसको स्वान्त्या (इष्टान्त्या) में घटाने से इष्टशंकु होते हैं ॥ ७ ॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार $\frac{१२.\text{क्राउज्या}}{\text{पक}} = \frac{१२}{\text{पक}}(\text{त्रि}-\text{द्यु}) = \frac{१२.\text{त्रि}}{\text{पक}} - \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}}$

$= \text{लंज्या} - \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}}$ इसमें अक्षांश की उत्क्रमज्या जोड़ने से

$\text{लंज्या} - \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}} + \text{अक्षांशोत्क्रमज्या} = \text{त्रि} - \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}} = \text{विवर}$ ।

इसको इष्टान्त्या से गुणकर त्रिज्या से भाग देने से इअन्त्या— $\frac{१२.\text{द्यु}.\text{इअन्त्या}}{\text{पक}.\text{त्रि}}$

$= \text{इष्टान्त्या} - \frac{१२.\text{इहृ}}{\text{पक}} = \text{इष्टान्त्या} - \text{इशं}$ इसको इष्टान्त्या में घटाने से इष्टशंकु होते हैं ॥ ७ ॥

इदानीं मध्यशंकुतोऽभीष्टशङ्कोरानयनमाह ।

विवरोनत्रिज्याघ्ना स्वान्त्योनाऽन्त्या त्रिभज्यया भक्ता ।
फलवियुतो मध्यनरोऽभीष्टनरो युतो मध्यः ॥८॥

वि. भा.—स्वान्त्योनाऽन्त्या (इष्टान्त्या रहिताऽन्त्या) विवरोनत्रिज्याघ्ना पूर्वानीतविवररहितत्रिज्यागुणिता) त्रिभज्यया भक्ता (त्रिज्याभक्ता) फलवियुतः (फलरहितः) मध्यनरः (दिनार्धशंकुः) अभीष्टनरः (इष्टशंकुः) भवेत् । फलयुतोऽभीष्टनरो मध्यः (मध्यशंकुः) भवेदिति ॥८॥

अत्रोपपत्तिः ।

पूर्वानीतविवरस्वरूपम् $= \text{त्रि} - \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}}$ अनेन रहिता त्रिज्या

$\text{त्रि} - \left(\text{त्रि} - \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}}\right) = \text{त्रि} - \text{त्रि} + \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}} = \frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}}$ अनेन

(अन्त्या—इष्टान्त्या) गुणिता त्रिज्यया भाजिता तदा

$\frac{१२.\text{द्यु}}{\text{पक}.\text{त्रि}}(\text{अन्त्या}-\text{इअन्त्या}) = \frac{१२.\text{द्यु}.\text{अन्त्या}}{\text{पक}.\text{त्रि}} - \frac{१२.\text{द्यु}.\text{इअन्त्या}}{\text{पक}.\text{त्रि}}$

$=$दि $\frac{1}{2}$ शंकु—इशंकु अनेन रहितो दिनार्धशंकुरिष्टशंकुर्भवेद्यदि चात्रैवेष्ट-शंकुर्योज्यते तदा दिनार्धशंकुर्भवेदिति ॥८॥

हि. भा.—इष्टान्त्या रहित अन्त्या को विवर रहित त्रिज्या से भाग देने से जो फल हो उसको दिनार्ध शंकु में घटाने से इष्टशंकु होता है और फल में इष्टशंकु को जोड़ने से दिनार्धशंकु होता है ॥८॥

उपपत्ति ।

श्लोकोक्ति के अनुसार क्रिया करते हैं । पूर्वानीत विवर का स्वरूप $=$ त्रि$-\frac{१२.द्यु}{पक}$

इसको त्रिज्या में घटाने से त्रि$-\left(त्रि-\frac{१२.द्यु}{पक}\right)=$त्रि$-$त्रि$+\frac{१२.द्यु}{पक}=\frac{१२.द्यु}{पक}$

इससे (अन्त्या — इअन्त्या) इसको गुणकर त्रिज्या से भाग देने से

$$\frac{१२.द्यु}{पक\ त्रि}(अन्त्या-इअन्त्या)=\frac{१२.द्यु\ अन्त्या}{पक.त्रि}-\frac{१२.द्यु.इअन्त्या}{पक.त्रि}$$

$=$दि $\frac{1}{2}$ शंकु$-$इष्टशंकु$=$फल, दि $\frac{1}{2}$ शं$-$फल$=$दि $\frac{1}{2}$ शं$-$(दि $\frac{1}{2}$ शं$-$इशं) $=$इशं वा फल$+$इशं$=$दि $\frac{1}{2}-$इशं$+$इशं$=$दि $\frac{1}{2}$ शं

$\therefore$ आचार्योक्त कथन युक्तियुक्त है ॥८॥

इदानीमुन्नतकालानयनमाह ।

धृतिः कुज्योनसमेता सौम्येतरयोर्भवेद् गुण्यः ।
त्रिज्या चरजीवाभ्यो गुणितो गुण्यो द्युगुणकुगुणभक्तः ॥९॥
तद्धनुरूनसमेतं चरासुभिः स्यात्समुन्नतकम् ॥९$\frac{1}{2}$॥

वि. भा.—सौम्येतरयोर्गोले (उत्तरदक्षिणयोर्गोले) धृतिः (हृतिः) कुज्योनसमेता (कुज्यया रहिता सहिता च) तदा गुण्यः (कला) भवति । गुण्यः (कला) पृथक् त्रिज्याचरजीवाभ्यां (त्रिज्याचरज्याभ्यां) गुणितः, क्रमशः द्युगुणकुगुणभक्तः (द्युज्या-कुज्याभ्यां भाजितः) तद्धनुः (तच्चापं) चरासुभिर्गोलक्रमेणोनसमेतं तदा समुन्नतक (उन्नतकालः) भवेदिति ॥ ९$\frac{1}{2}$ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

ग्रहात्स्वोदयास्तसूत्रोपरि कृतो लम्बो हृतिः (धृतिः), तथा ग्रहादेव निरक्षोदयास्तसूत्रोपरिलम्बः कला (गुण्यः) । अथोत्तरदक्षिणगोलक्रमेण हृति$\mp$कुज्या$=$कला$=$गुण्यस्वोदयास्तनिरक्षोदयास्तसूत्रयोरन्तरम्$=$कुज्या । अथ रविबिम्बकेन्द्रगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिकं यावत्सूत्रचापम् । एतज्ज्यासूत्रसंज्ञं ज्ञातव्यम् । अथ भूकेन्द्राद्रविबिम्बकेन्द्रगतध्रुवप्रोतवृत्तनाडीवृत्तसम्पातं यावदानीतं त्रिज्यासूत्रं कर्णः । सूत्रं भुजः । सूत्रमूलाद्भूकेन्द्रं यावत्पूर्वापरसूत्रे कोटि-

रिति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नमेकं त्रिभुजम् । तथाऽहोरात्रवृत्तगर्भकेन्द्राद्रविबिम्बकेन्द्रावधि द्युज्याकर्णः । कला (गुण्यः) भुजः । निरक्षोदयासूत्रे कोटिरिति कर्णभुजकोटिभिरुत्पन्नं द्वितीयं त्रिभुजम् । एतयोस्त्रिभुजयोस्त्रिज्याद्युज्ये समानान्तरे तथा कोटिरेखे अपि समानान्तरे तेनैकादशाध्याययुक्त्या कोटिकर्णाभ्यामुत्पन्नकोणमाने समाने निष्पन्ने, एकैकः कोणः समकोणत्वात्समान एवातस्तृतीयकोणयोरपि समत्वादुक्तत्रिभुजयोः साजात्यानुपातः $\frac{\text{गुण्य}\times\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला . त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला . चज्या}}{\text{कुज्या}}$ = सूत्र एतच्चापं रविबिम्बकेन्द्रगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिकावधिनाड़ीवृत्ते सूत्रचापम् क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातात्पूर्वस्वस्तिकावधिनाड़ीवृत्ते चरम् । एतच्चरं गोलक्रमेण सूत्रचापे रहितं सहितं च तदा रविबिम्बकेन्द्रोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पाताद्रविबिम्बीयाहोरात्रवृत्तक्षितिजवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तसम्पातं यावन्नाड़ीवृत्ते—उन्नतकालमानं भवेदिति ॥ ६$\frac{1}{2}$ ॥

हि. भा.—उत्तर गोल में और दक्षिण गोल में हृति (धृति) में कुज्या को घटाने से और जोड़ने से गुण्य (कला) होता है । गुण्य (कला) को अलग अलग त्रिज्या और चरज्या से गुणकर क्रम से द्युज्या और कुज्या से भाग देने से जो फल हो उसके चाप में चरासु को गोल क्रम से हीन और युत करने से उन्नत काल होता है ॥ ६$\frac{1}{2}$ ॥

उपपत्ति ।

ग्रह से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर जो लम्ब होता है उसे हृति (धृति) कहते हैं । ग्रह से निरक्षोदयास्त सूत्र के ऊपर जो लम्ब होता है उसे कला (गुण्य) कहते हैं । स्वोदयास्त सूत्र और निरक्षोदयास्त सूत्र के अन्दर कुज्या है अतः उत्तर दक्षिण गोल क्रम से हृति $\mp$ कुज्या = कला = गुण्य । रविबिम्ब केन्द्रगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात से पूर्व स्वस्तिकपर्यन्त नाड़ीवृत में सूत्रचाप है । इसकी ज्या सूत्र है । भूकेन्द्र से रविबिम्ब केन्द्रगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त सम्पातगत रेखा त्रिज्या सूत्रकर्ण, सूत्रभुज, सूत्रमूल से भूकेन्द्रपर्यन्त पूर्वापर सूत्र में कोटि, इन कर्ण, भुज और कोटि से उत्पन्न एकजात्य त्रिभुज है । और अहोरात्रवृत्तगर्भ केन्द्र से रविबिम्ब केन्द्रावधि द्युज्या कर्ण, गुण्य (कला) भुज और निरक्षोदयास्त सूत्र में कोटि, इन कर्ण, भुज और कोटि से उत्पन्न द्वितीय जात्यत्रिभुज है । इन दोनों त्रिभुजों में त्रिज्या और द्युज्या समानान्तर है, तथा कोटि रेखा भी समानान्तर है इसलिए एकादशाध्याय की युक्ति से कोटि और कर्ण से उत्पन्न कोण दोनों त्रिभुज में बराबर हुए । दोनों त्रिभुजों में एक-एक कोण समकोण है इसलिए अवशिष्ट तृतीय कोण भी तुल्य होगा, अतः दोनों त्रिभुजों के सजातीय होने से अनुपात करते हैं $\frac{\text{गुण्य.त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला.त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{कला}\times\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ = सूत्र ।

इसके चाप करने से रविबिम्ब केन्द्रगत ध्रुवप्रोत वृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात से पूर्व स्वस्तिक पर्यन्त नाड़ीवृत्त में सूत्रचाप हुआ । क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तसम्पात से पूर्वस्वस्तिक पर्यन्त नाड़ीवृत्त में चरासु है । गोलक्रम से सूत्रचाप में चरासु को घटाने से और जोड़ने से रविबिम्ब केन्द्रोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात से

रविबिम्बीयाहोरात्रवृत्त क्षितिजवृत्त के सम्पातगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात पर्यन्त नाड़ीवृत्त में उन्नत कालमान होता है ॥ ९$\frac{1}{2}$ ॥

इदानीं प्रकारान्तरेणोन्नतकालानयनमाह ।

द्युदलश्रवणहताऽन्त्या स्वेष्टश्रवणोद्धृता फलस्य धनुः ।
चरासुभिरूनयुतं वा समुन्नतं सौम्यदक्षिणयोः ॥ १० ॥

वि. भा.—अन्त्या (मध्यान्त्या) द्युदलश्रवणहता (मध्यकर्णगुणा) स्वेष्टश्रवणोद्धृता (स्वेष्टच्छायाकर्णेनभक्ता) फलमिष्टान्त्या स्यात्, तद्धनुः (तच्चापं) सौम्यदक्षिणयोः (उत्तरदक्षिणयोर्गोले) स्वचरासुभिः ऊनयुतं तदा समुन्नतं (उन्नतकालमानं) भवेदिति ॥१०॥

अत्रोपपत्तिः ।

$\frac{\text{इहृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इष्टान्त्या । परं $\frac{\text{हृति.इशं}}{\text{दि}\frac{1}{2}\text{शं}}$ = इहृति इष्टान्त्यास्वरूपे इष्टहृतेरुत्थापनेन $\frac{\text{हृति.इशं.त्रि}}{\text{द्यु.दि}\frac{1}{2}\text{शं}} = \frac{\text{अन्त्या.इशं}}{\text{दि}\frac{1}{2}\text{शं}}$ = इष्टान्त्या । यतः $\frac{\text{हृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या

$= \frac{\text{अन्त्या.इशं}\times 12\times\text{त्रि}}{\text{दि}\frac{1}{2}\text{शं.}12\text{.त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या}\times\text{इशं}\times\text{दि}\frac{1}{2}\text{छाकर्ण}}{12\times\text{त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या}\times\text{दि}\frac{1}{2}\text{छाकर्ण}}{\frac{12\times\text{त्रि}}{\text{इशं}}} = \frac{\text{अन्त्या.दि}\frac{1}{2}\text{छाकर्ण}}{\text{इछाकर्ण}}$ = इष्टान्त्या

अस्याश्चापमुत्तरदक्षिणयोर्गोलक्रमेण चरासुभिर्हीनं युतं तदोन्नतकालो भवेदिति ॥१०॥

हि. भा.—वा अन्त्या को दिनार्धकर्ण से गुणकर इष्टच्छायाकर्ण से भाग देकर जो फल हो उसका चाप करना उसको उत्तर गोल और दक्षिण गोल क्रम से अपनी चरासु करके घटाना और जोड़ना तब उन्नतकाल होता है ॥ १० ॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{इहृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इष्टान्त्या, यतः $\frac{\text{हृति.इशं}}{\text{दि}\frac{1}{2}\text{शं}}$ = इहृति

इसलिये $\frac{\text{हृति.इशं.त्रि}}{\text{द्यु.दि}\frac{1}{2}\text{शं}}$ = इष्टान्त्या = $\frac{\text{अन्त्या.इशं}}{\text{दि}\frac{1}{2}\text{शं}}$, यतः $\frac{\text{हृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = अन्त्या

हरभाज्यौ त्रि × १२ गुणितौ तदा $\frac{\text{अन्त्या.इशं.}12\text{.त्रि}}{\text{दि}\frac{1}{2}\text{शं.}12\text{.त्रि}} = \frac{\text{अन्त्या.इशं.दि}\frac{1}{2}\text{छाक}}{12\text{.त्रि}}$

$= \frac{\text{अन्त्या.दि}\frac{1}{2}\text{छाक}}{\frac{12\text{.त्रि}}{\text{इशं}}} = \frac{\text{अन्त्या.दि}\frac{1}{2}\text{छाक}}{\text{इछाक}}$ = इष्टान्त्या इसके चाप में उत्तरगोल और दक्षिण गोल में चरासु को घटाने और जोड़ने से उन्नत कालमान होता है ॥१०॥

इदानीमुन्नतकालादिष्टान्त्यानयनमाह।

चरदलवियुतसमेतात्सौम्ययाम्यगोलयोर्जीवा ।
उन्नतजीवा ज्ञेया यथा कलाभ्यस्तथाऽसुभ्यः ॥११॥

वि. भा.—सौम्ययाम्यगोलयोः (उत्तरदक्षिणगोलयोः) चरदलवियुतसमेतात् (चरासुरहिताद्युताच्च) उन्नतकालाद्याज्या सोन्नतकालज्या (सूत्रसंज्ञिका) ज्ञेया इति कलाभ्यो यथा भवन्ति तथैवाऽसुभ्योऽपि भवन्तीति ॥११॥

अस्योपपत्तिः ।

अथोत्तरगोलक्षितिजाहोरात्रवृत्तयोः सम्पातोपरिगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं पूर्वस्वस्तिकादधः नाड़ीवृत्ते लगति तद्ध्रुवप्रोतवृत्तं नाड़ीवृत्ते यत्र लग्नं ततः पूर्वस्वस्तिकं यावन्नाड़ीवृत्ते चरासवः । तथा तस्मादेव विन्दोः (क्षितिजाहोरात्रवृत्तसम्पातोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातात्) ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तसम्पातं यान्नाड़ीवृत्ते उन्नतकालोऽतोऽत्रोन्नतकाले यदि चरासुमानं शोध्यते तदा पूर्वस्वस्तिकाद्ग्रहोपरि ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तसम्पातं यावन्नाड़ीवृत्ते सूत्रचापं भवति, चापस्यास्यज्यासूत्रसंज्ञकम् । दक्षिणगोले विपरीतस्थितिर्बोध्येति ॥११॥

हि. भा.—उत्तर गोल में उन्नतासु में चरासु को घटाने से और दक्षिणगोल में जोड़ने से जो चाप होता हैं उसकी ज्या उन्नतज्या (सूत्र) होती है । यह उन्नतासु और चरासु से जैसे होती है उसी तरह उन्नतकला और चरकला से होती है ।। ११ ।।

उपपत्ति ।

उत्तरगोल में क्षितिज और अहोरात्रवृत्त के सम्पात के ऊपर जो ध्रुव प्रोतवृत्त करते हैं वह नाड़ीवृत्त में पूर्व स्वस्तिक से नीचा लगता है जहां लगता है वहां से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्त के सम्पात तक उन्नतकाल है तथा उसी बिन्दु (क्षितिज और अहोरात्रवृत्त के सम्पातोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात बिन्दु) से पूर्वस्वस्तिक तक चरासु है, अतः उन्नतकाल में चरासु को घटाने से पूर्वस्वस्तिक से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात तक सूत्रचाप रहता है इसकी ज्या उन्नतज्या (सूत्र) होती है ॥ ११ ॥

सा चरदलगुणयुक्ता सौम्ये याम्ये विवर्जिता स्वान्त्या ।
अन्त्यानतोत्क्रमज्या विवर्जिता सा भवेत्स्वान्त्या ॥ १२ ॥

वि. भा.—सौम्ये (उत्तरगोले) सा (उन्नतज्या) चरदलगुणयुक्ता (चरज्यायुता) याम्ये (दक्षिणगोले) विवर्जिता (हीना) तदेष्टान्त्या स्यात् । नतोत्क्रमज्या विवर्जिता (नतकालोत्क्रमज्यया रहिता) अन्त्या (मध्यान्त्या) सा स्वान्त्या (इष्टान्त्या) भवेदिति ॥ १२ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

उत्तरगोले क्षितिजाहोरात्रवृत्त सम्पातोपरिगत ध्रुव प्रोतवृत्तसम्पातात्पूर्वापर रेखायाः समानान्तरा रेखा कार्या सा च पूर्वापररेखातोऽध एव भवेत्तदुपरीष्टग्रहोपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पाताल्लम्बः कार्यः सैवेष्टान्त्या, इष्टग्रहोपरि ध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तयोः सम्पात्पूर्वापररेखोपरि यो लम्बः सोन्नतकालज्या (सूत्रं) भवति। समानान्तररेखा पूर्वापररेखयोः सर्वत्र चरज्या तुल्यमेवान्तरमतः उन्नतज्या + चरज्या = इष्टान्त्या। दक्षिणगोले विपरीतस्थितिः। मध्यान्हकाले ग्रहस्य याम्योत्तरवृत्ते स्थितत्वात्तदुपरिगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं याम्योत्तरवृत्तमेव तन्नाड़ीवृत्ते निरक्षखस्वस्तिके लगति निरक्षखस्वस्तिकात्पूर्वापरसूत्रोपरिलम्बो निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रं तेनेदमेव समानान्तररेखोपर्यपि लम्बो भवेत्तेन भूकेन्द्रान्निरक्षखस्तिकं यावत् = त्रि अत्र यदि चरज्या (पूर्वापररेखा-समानान्तररेखयोरन्तररूपा) योज्यते निरक्षखस्वस्तिकात्समानान्तरेखां यावत्मध्यान्त्या (अन्त्या) भवेत्। दक्षिणगोले विपरीतस्थितिः। अन्त्यायां यदीष्टान्त्यामानं शोध्यते तदा नतकालोत्क्रमज्या भवति यदि नतकालोत्क्रमज्या मानमन्त्यायां शोधयेत्तदेष्टान्त्या भवेदेवेति ॥ ८ ॥

हि. भा.—उत्तरगोल में उन्नतकालज्या में चरज्या को जोड़ने से और दक्षिणगोल में उन्नत कालज्या में चरज्या को घटाने से इष्टान्त्या होती है वा अन्त्या (मध्यान्त्या) में नतकाल की उत्क्रमज्या को घटाने से इष्टान्त्या होती है ॥१२॥

उपपत्ति ।

उत्तरगोल में क्षितिज और अहोरात्रवृत्त के सम्पात के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त में पूर्व स्वस्तिक से नीचा लगता है जहां लगता है उस बिन्दु से पूर्वा पर रेखा के समानान्तरेखा पूर्वापर सूत्र से नीचा होगा इसके ऊपर इष्टग्रह के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त नाड़ीवृत्त के सम्पात बिन्दु से जो लम्ब होता है वही इष्टान्त्या है, इष्टग्रह के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त और नाड़ी वृत्त के सम्पाते पूर्वापर रेखा के ऊपर जो लम्ब होता है वह उन्नतकालज्या (सूत्र) है पूर्वापर रेखा और समानान्तर रेखा के अन्तर हर जगह चरज्या के बराबर है अतः उन्नतज्या + चरज्या = इष्टान्त्या। दक्षिणगोल में विपरीत स्थिति होती है। अन्त्या—इष्टान्त्या = नतकालोत्क्रमज्या वा अन्त्या—नतकालोत्क्रमज्या = इष्टान्त्या; गोल के ऊपर ये सब बातें स्पष्ट देखने में आती हैं ॥ १२ ॥

पुनरुन्नतकालानयनमाह ।

त्रिगुणचरगुणाभ्यां हता धृति र्द्युगुणकुगुणाभ्यां हृदन्त्या ।
चरदलवियुक् समेता धनुश्च प्राग्वत्समुन्नतकम् ॥ १३ ॥

वि. भा.—धृतिः (हृतिः) पृथक् त्रिगुण चरगुणाभ्यां (त्रिज्याचरज्याभ्यां) हता (गुणिता) द्युगुणकुगुणाभ्यां (द्युज्याकुज्याभ्यां) पृथक् हृत् (भक्ता) तदाऽन्त्या भवेत्। सा चाऽन्त्या गोलक्रमेण चरदलवियुक्समेता (उत्तरगोले चररहिता,

दक्षिणगोले चरज्यायुक्ता) तदा यद्भवेत्तद्धनुः (चाप) प्राग्वत् (पूर्ववत्) समुन्नतकं (उन्नतकालो) भवेदिति ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{इहृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इअन्त्या । यतः $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ = अतउत्थापनेन

$\frac{\text{इहृ.चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ = इअन्त्या ।

उत्तरगोले इअन्त्या—चरज्या = सूत्र = उन्नतकालज्या, अस्याश्चाप तदोन्नतकालः दक्षिणगोले इअन्त्या + चरज्या = उन्नतकालज्या, अस्याश्चापमुन्नतकालः ।

∴ सिद्धम् ॥१३॥

हि. भा.—इष्टहृति को अलग अलग त्रिज्या और चरज्या से गुणकर द्युज्या और कुज्या से भाग देने से इष्टान्त्या होती है उत्तरगोल में उसमें चरज्या घटाने से दक्षिण गोल में चरज्या जोड़ने से जो हो उसके चाप उन्नतकाल होता है ॥१३॥

उपपत्ति ।

$\frac{\text{इहृति.त्रि}}{\text{द्यु}}$ = इष्टान्त्या = $\frac{\text{इहृति.चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ ∵ $\frac{\text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$

ततः पूर्ववत् इष्टान्त्या—चरज्या = उन्नतकालज्या, उत्तरगोल में

दक्षिणगोल में इष्टान्त्या + चरज्या = उन्नतकालज्या

इसके चाप करने से उन्नतरकाल होता है ॥१३॥

इदानीं विशेषमाह ।

अन्त्याश्चरार्धजीवा न विशुद्धयति चे द्विशेष चापेन ।
हीनं चरार्धमथवा दिनगत शेषोन्नतः कालः ॥ १४ ॥

वि. भा.—अन्त्याश्चरार्धजीवा चेन्न विशुद्धयति (यद्यन्त्यातश्चरार्धज्या न विशुद्धयति) तदातयोर्विशेषचापेन (द्वयोरन्तर चादेनार्था द्विलोमशोधनेन यदवशिष्टं तच्चापेनेत्यर्थः) चरार्धं हीनं कार्यं तदा शेष मुन्नकालः स्यादिति ॥१४ ॥

अत्रोपपत्तिरतिसुगममेवेति ॥ १४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे इष्टच्छायाविधिनामको
दशमोऽध्यायः समाप्तः ।

हि. भा.—यदि अन्त्या में जरार्धज्या घटाने से न घटे तव विलोम शोधन करने से जो हो उसके चाप को चरार्ध में घटाने से उन्नतकाल होता है ॥ १४ ॥

इसकी उपपत्ति अति सरल है ॥ १४ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में इष्टच्छायाविधि नामक दशम अध्याय समाप्त हुआ॥

०—०

एकादशोऽध्यायः

अथ सममण्डलप्रवेशविधिः

तत्रादौ कोणशंक्वानयनमाह

समदृङ्मण्डलविवरे क्षितिजे जीवा निगद्यते दिग्ज्या ।
दिग्ज्याकृतिरग्रा कृत्या हीना कृतशक्रताड़िता निहता ॥१॥
त्रिज्याकृत्या प्रथमोऽग्रा रव्यक्षभाहता त्रिज्या ।
त्रिज्यागुणिता ह्यपरो विभक्तौ तौ च स्फुटौ स्याताम् ॥२॥
दिग्ज्याऽर्कघातकृत्यक्षाभा त्रिज्यावधवर्गयोगेन ।
अन्यवर्गयुतादाद्यान्मूलं युतोनितं चान्नेन ॥३॥
सौम्येतरयोर्गोलयोर्दिशि विदिङ्नरः सूर्ये ।
उत्तरयाम्यस्थे समवृत्तादुदग्रवौ पदेन युक्तञ्च ॥४॥
समदक्षिणगे रवावग्रा यत्र भवेन्न दिग्ज्योना ।
दिग्ज्या वर्गोनाऽग्रा कृतिवशेन तत्र चाऽद्योऽन्यः ॥५॥
आद्योनादन्यवर्गतो यत्पदं तेन हीनस्तापनः शङ्कुः ।
एवमेव हि कोणानामन्यानां ना सुखेन संसाध्यः ॥६॥

वि. भा.—समदृङ्मण्डलविवरे क्षितिजे जीवा (सममण्डल-दृङ्मण्डलयोः क्षितिजे यदन्तरं पूर्वं स्वस्तिकाद्दृग्वृत्तक्षितिजवृत्तयोः सम्पातं यावद्दिगंशचापं तज्ज्या) द्विज्या कथ्यते । दिग्ज्याकृतिः (दिग्यावर्गः) अग्राकृत्याहीना (अग्रावर्गरहिता) कृतशक्रताड़िता (द्वादशवर्गगुणिता) त्रिज्याकृत्या निहता (त्रिज्यावर्गगुणित.) प्रथमः (प्रथमसंज्ञकः), अग्रारव्यक्षभाहता त्रिज्या (अग्रा द्वादशपलभागुणिता त्रिज्या) त्रिज्या गुणिता अपरः (परसंज्ञकः) द्विग्ज्याष्वर्कघातः कृत्यक्षाभा त्रिज्या-वधवर्गयोगेन (दिग्ज्या द्वादशघातवर्गस्य पलभा त्रिज्याघातवर्गस्य च योगेन) तौ प्रथमपरौ विभक्तौ तदा स्फुटौ (विशिष्टौ) प्रथमपरौ (आद्यान्यौ) स्याताम् । अन्य-वर्गयुतादाद्यात् (विशिष्टान्यवर्गयुताद्विशिष्टादाद्यात्) मूलं यत्तदन्येन (विशिष्टपरेण) सूर्ये सौम्येतरगोलयोः (उत्तरगोलदक्षिणगोलयोश्च स्थिते रवौ) युतोनितं विदिङ्नरः (कोणशङ्कुः) भवेत् । शेषं स्पष्टमिति ॥१-६॥

अत्रोपपत्तिः

अत्र कोणशङ्कुप्रमाणम् = य

तदा छायाकर्णगोले भुजः $= \frac{\text{द्विज्या. छा}}{\text{त्रि}}$ । तथा अग्रा±शङ्कुतल = भुज

एतस्य भुजस्य छायाकर्ण

गोले परिणामनेन $\frac{\text{छाक}}{\text{त्रि.}}\left(\text{अग्रा}\pm\text{शंतल}\right) = \frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा}\pm\frac{\text{पभा. य}}{१२}\right)$

= छायाकर्ण गोले भुजः ।

एतयोश्छायाकर्णगोलीयभुजयोः समीकरणम्

$\frac{\text{दिज्या. छा}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा}\pm\frac{\text{पभा. य}}{१२}\right)$ पर $\frac{\text{दृज्या. छाक}}{\text{त्रि}}$ = छा अत उत्थापनेन

$\frac{\text{दिज्या. दृग्ज्या. छाक}}{\text{त्रि. त्रि}} = \frac{\text{छाक}}{\text{त्रि}}\left(\text{अग्रा}\pm\frac{\text{पभा. य}}{१२}\right) = \frac{\text{दिज्या. दृज्या}}{\text{त्रि}}$

$= \text{अग्रा}\pm\frac{\text{पभा. य}}{१२}$ वर्गकरणेन

$\frac{\text{दिज्या}^2\text{. दृज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \text{अग्रा}^2 \pm \frac{\text{२अ. पभा. य}}{१२} + \frac{\text{पभा}^2\text{. य}^2}{१२^2} = \frac{\text{दिज्या}^2\ (\text{त्रि}^2 - \text{य}^2)}{\text{त्रि}^2}$

$= \frac{\text{दिज्या}^2\text{. त्रि}^2 - \text{दिज्या}^2\text{. य}^2}{१२}$ छेदगमेन

$\text{अग्रा}^2\text{. }१२^2\text{. त्रि}^2 \pm \text{२अ. पभा. य. त्रि}^2\text{. }१२ + \text{पभा}^2\text{. य}^2\text{. त्रि}^2$
$= \text{दिज्या}^2\text{. त्रि}^2\text{. }१२^2 - \text{दिज्या}^2\text{. य}^2\text{. }१२^2$

समशोधनेन

$\text{पभा}^2\text{. य}^2\text{. त्रि}^2 + \text{दिज्या}^2\text{. य}^2\text{. }१२^2 \pm \text{२अ. पभा. य. त्रि}^2\text{. }१२$
$= \text{दिज्या}^2\text{. त्रि}^2\text{. }१२^2 - \text{अग्रा}^2\text{. }१२^2\text{. त्रि}^2$
$= \text{य}^2\ (\text{पफा}^2\text{. त्रि}^2 + \text{दिज्या}^2\text{. }१२^2) \pm \text{२अ. पभा. य. त्रि}^2\text{. }१२$
$= १२^2\text{. त्रि}^2\ (\text{दिज्या}^2 - \text{अग्रा}^2)$ = प्रथमः = आद्यः
अत्र. अग्रा. पभा. १२. त्रि^2 = पर = अन्य
तदा $\text{य}^2\ (\text{पभा}^2\text{.त्रि}^2 + \text{दिज्या}^2\text{. }१२^2) \pm$ २ अ. अन्य = प्रथम = आद्य
पक्षौ $\text{पभा}^2\text{. त्रि}^2 + \text{दिज्या}^2\text{. }१२^2$ भक्तौ तदा

$\text{य}^2 \pm \frac{\text{२य. अन्य}}{\text{पभा}^2\text{. त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\text{. }१२^2} = \frac{\text{आद्य}}{\text{पभा.}^2\ \text{त्रि}^2 + \text{द्विज्या}^2\text{. }१२^2}$

$= \text{य}^2 \pm \text{२य. अन्य}' = \text{आ}'$ पक्षयोः $'\text{अ}^2$ योजनेन

$य^2 \pm २य.अन्य + अन्य^2 = आ^1 + अन्य^2$ मूलेन $य \pm अन्य^1 = \sqrt{आ^1 + अन्य^2}$

$\therefore य = \sqrt{आ^1 + अन्य^2} \mp अन्य^1$ एवमाचार्योक्तमुपपन्नम् ।

यदा च दिग्ज्या $<$ अग्रा तदाऽपि पूर्ववदेवोपपत्तिः कार्येति ॥१-६॥

हि. भा.—पूर्वापर वृत्त और दृग्वृत्त के अन्तर (पूर्वस्वस्तिक से दृग्वृत्त क्षितिजवृत्त के सम्पात तक) में क्षितिजवृत्तीय चाप दिगंशचाप है इसकी जीवा (ज्या) दिग्ज्या कहलाती है । दिग्ज्या वर्ग में अग्रावर्ग को घटाकर एक सौ चवालीस या द्वादश वर्ग और त्रिज्यावर्ग से गुणा करने से जो होता है उसका नाम प्रथम (आद्य) है । अग्रा बारह पलभा और त्रिज्या वर्ग से घात का नाम अपर (पर-अन्य) है । दिग्ज्या और बारह के घात वर्ग में त्रिज्या और पलभा के घात वर्ग जोड़ करके जो है उससे प्रथम और अन्य को भाग देने से विशिष्ट प्रथम (आद्य) तथा विशिष्ट पर (अन्य) होता है । आद्य में अन्यवर्ग जोड़ कर मूल जो हो उसको सूर्य के उत्तर गोल और दक्षिण गोल में रहने से अन्य करके रहित और सहित करने से कोण शङ्कु होता है । शेष बातें स्पष्ट हैं ॥१-६॥

उपपत्ति

यहां कोण शङ्कु के मान $= य$

तब छायाकर्ण गोल में भुज $= \frac{दिज्या. छा}{त्रि}$ । तथा अग्रा $\pm$ शंतल $=$ भुज इसको

छायाकर्ण गोल में परिणामन करने से $\frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm शंत\right) = \frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm \frac{पभा.य}{१२}\right)$

अतः छायाकर्ण गोलीय दोनों भुजों के समीकरण करने से $\frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm \frac{पभा. य}{१२}\right)$

$= \frac{दिज्या. छा}{त्रि}$ परन्तु $\frac{दृग्ज्या. छाक}{त्रि} =$ छा उत्थापन देने से

$$\frac{छाक}{त्रि}\left(अग्रा \pm \frac{पभा. य}{१२}\right) = \frac{दृग्ज्या. छाक. दिज्या}{त्रि. त्रि}$$

$\therefore अग्रा \pm \frac{पभा. य}{१२} = \frac{दृज्या. दिज्या}{त्रि}$ वर्ग करने से

$$\frac{दिज्या^2. दृज्या^2}{त्रि^2} = अग्रा^2 \pm \frac{२अ. पभा. य}{१२^2} + \frac{पभा^2. य^2}{१२^2}$$

$= \frac{दिज्या^2 (त्रि^2 - य^2)}{त्रि^2} = \frac{दिज्या^2. त्रि^2 - दिज्या^2. य^2}{त्रि^2}$ छेदगम करने से

$अ^2. १२^2. \pm ६अ. पभा. य. १२. त्रि^2 + पभा.^2 य^2. त्रि^2 = दिज्या^2. त्रि^2. १२^2 - दिज्या^2$ $य^2. १२^2$ समशोधन से $य^2 (पभा.^2 त्रि^2 + दिज्या^2 १२.^2) \pm २अ पभा^2. १२^2. त्रिय =$ $दिज्या.^2 १२^2 त्रि^2 - अ^2. १२^2. त्रि^2 = १२^2. त्रि^2 (दिज्या^2 - अ^2)$

यहां $१२^२$. $त्रि^२$. $(दिज्या^२—अ^२)$ = १४४ $त्रि^२(दिज्या^२—अग्रा^२)$ = प्रथम = आद्य
तथा अ. पभा.१२ $त्रि^२$ = पर = अन्य

तत्र $य^२$ $(पभा^२. त्रि^२+ दिज्या^२ १२^२)$ ± २य. अन्य = आद्य दोनों पक्षों में $पभा^२$. $त्रि^२$. + $दिज्या^२$. $१२^२$

इससे भाग देने में $\frac{य^२ \pm २य. अन्य}{पभा.^२ त्रि^२+दिज्या^२.१२^२} = \frac{आद्य}{पभा^२. त्रि^२+दिज्या^२.१२^२}$

= $य^२$ ± २य. $अन्य^१$ = $आद्य^१$ दोनों पक्षों में $अन्य^१$ जोड़ने से
$य^२$ ± २य. $अन्य^१$ + $अ^१न्य^२$ = $आद्य^१$ + $अ^१न्य^२$ मूल लेने से
य ± $अन्य^१$ = $\sqrt{आद्य^१+अ^१न्य^२}$ अतः य = $\sqrt{आ^१+अ^१न्य^२}$ + $अन्य^१$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

यदि दिग्ज्या < अग्रा तो भी पूर्वोपपत्ति के अनुसार उपपत्ति करनी चाहिए ।।१-६।।

इदानीं समशङ्कुसाधनान्याह

त्रिज्या क्रान्तिगुणघ्ना पलज्यया भाजिता समना ।
पलकर्णहृता चापमजीवाऽक्षभाहृता समना ।।७।।
वाऽग्राक्रान्तिज्याहतिरुर्वीयोद्धृता समः शङ्कुः ।
वा स्वधृतिघ्नापमजीवा नृतलहृता समनरो भवति ।।८।।
लम्बज्याऽग्राघातात्पलज्यया भाजितात्समनरो वा ।
द्वादशगुणिता वाऽग्रा विषुवच्छायोद्धृता समना ।।९।।
इष्टनराभ्यस्ताऽग्रा नृतलविभक्ताऽथवा समःशङ्कुः ।
उद्धृत्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं समनरो वा स्यात् ।।१०।।

वि. भा.—त्रिज्या क्रान्तिगुणघ्ना (क्रान्तिज्या गुणिता) पलज्यया भाजिता (अक्षज्याभक्ता) तदा समना (समशङ्कुः) भवेत् । वा अपमजीवा (क्रान्तिज्या) पलकर्णहृता (पलकर्णगुणिता) अक्षभा हृता (पलभा भक्ता) तदा समना (समशङ्कुः) भवेत् ।। वा अग्रा क्रान्तिज्याहतिः (अग्राक्रान्तिज्याघातः) उर्वीजीवोद्धृता (कुज्याभक्ता) समः शङ्कुर्भवेत् । वा अपमजीवा (क्रान्तिज्या) स्वधृतिघ्ना (हृतिगुणिता) नृतलहृता (शङ्कुतलभक्ता) तदा समनरः (समशङ्कुः) भवति ।। वा लम्बज्याऽग्राघातात् पलज्यया (अक्षज्यया) भाजितात्-समनरः (समशङ्कुः) भवेत् । वा अग्रा द्वादशगुणिता—विषुवच्छायोद्धृता (पलभाभक्ता) तदा समना (समशङ्कुः) भवेत् ।। वा अग्रा इष्टनराभ्यस्ता (इष्टशङ्कुगुणिता) नृतलविभक्ता (शङ्कुतलभक्ता) तदा समः शङ्कुर्भवेत् । वा उद्धृत्याग्राकृत्योर्विशेषमूलं (तद्धृत्यग्रावर्गान्तरमूलं) समशङ्कुर्भवेदिति ।।७-१०।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{अक्षज्या}}$ = समशङ्कु = $\frac{\text{पलक. क्रांज्या}}{\text{पभा}}$ । यतः

$\frac{\text{त्रि}}{\text{अक्षज्या}} = \frac{\text{पक}}{\text{पभा}}$ तथा $\frac{\text{अग्रा. क्रांज्या}}{\text{कुज्या}}$ = समशङ्कु = $\frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{शकुतल}}$ । यतः

$\frac{\text{अग्रा}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{हृति}}{\text{शंतल}}$ तथाच $\frac{\text{लंज्या. अग्रा}}{\text{अक्षज्या}}$ = समशंकु = $\frac{\text{१२} \times \text{अग्रा}}{\text{पभा}}$ । यतः

$\frac{\text{लज्या}}{\text{अज्या}} = \frac{\text{१२}}{\text{पभा}}$ अथवा $\frac{\text{इशंकु. अग्रा}}{\text{शंतल}}$ = समशंकु । तथाच

$\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{अग्रा}^2}$ = समशंकु । ∴ सर्वं सिद्धम् ॥७-१०॥

हि. भा.—त्रिज्या को क्रान्तिज्या से गुणकर अक्षज्या से भाग देने से समशङ्कु मान होता है । वा क्रान्तिज्या को पलकर्ण से गुणकर पलभा से भाग देने से समशङ्कु होता है ॥ वा अग्रा और क्रान्तिज्या के घात में कुज्या से भाग देने से समशङ्कु होता है । वा क्रान्तिज्या को हृति से गुणकर शङ्कुतल से भाग देने से समशङ्कु होता है ॥ वा लम्बज्या और अग्रा के घात में अक्षज्या से भाग देने से समशङ्कु होता है । वा अग्रा को बारह से गुणकर पलभा से भाग तेने समशङ्कु होता है ॥ अथवा इष्टशङ्कु और अग्रा के घात में शङ्कुतल से भाग से समशङ्कु होता है । वा तद्धृति और अग्रा के वर्गान्तर मूल समशङ्कु होता है ॥७-१०॥

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{अक्षज्या}}$ = समशङ्कु = $\frac{\text{पक. क्रांज्या}}{\text{पभा}}$ ∵ $\frac{\text{त्रि}}{\text{अक्षज्या}}$

$= \frac{\text{पक}}{\text{पभा}}$ तथा $\frac{\text{अग्रा. क्रांज्या}}{\text{कुज्या}}$ = समशङ्कु = $\frac{\text{हृति. क्रांज्या}}{\text{शंतल}}$ । ∵ $\frac{\text{अग्रा}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{हृति}}{\text{शंतल}}$

तथा $\frac{\text{लंज्या. अग्रा}}{\text{अक्षज्या}}$ = समशं = $\frac{\text{१२. अग्रा}}{\text{पभा}}$ । ∵ $\frac{\text{लंज्या}}{\text{अक्षज्या}} = \frac{\text{१२}}{\text{पभा}}$ अथवा

$\frac{\text{इशङ्कु. अग्रा}}{\text{शंतल}}$ = समशं । तथा $\sqrt{\text{तद्धृति}^2 - \text{अग्रा}^2}$ = समशङ्कु ॥

∴ सिद्ध हो गया ॥७-१०॥

पुनस्तदानयनान्याह ।

पलकर्णाऽर्ककुगुणहतिरक्षभाकृतिहृता समः शङ्कुः ।
वा लम्बत्रिगुणकुगुणहतिरक्षभाकृतिहृता समना ॥११॥
नरधृतिकुगुणाभ्यासो नृतलकृतिहृतोऽथवा समः शङ्कुः ।
धृतिकुगुणार्कवधो वाऽक्षाभा नृतलघातहृत्समना ॥१२॥

वि. भा.—पलकर्णाऽर्ककुगुणहतिः (पलकर्णद्वादशकुज्याघातः) अक्षभाकृतिहृता (पलभावर्गभक्ता) तदा समः शंकुर्भवेत् । वा लम्बत्रिगुणकुगुणहतिः (लम्बज्यात्रिज्या कुज्याघातः) अक्षभाकृतिहृता (पलभावर्गभक्ता) तदा समना (समशंकुः) भवेत् ॥ अथवा नरधृतिकुगुणाभ्यासः (शंकुहृतिकुज्याघातः) नृतलकृतिहृतः (शंकुतलवर्गभक्तः) समः शंकुर्भवेत् । वा धृतिकुगुणार्कवधः (हृतिकुज्या द्वादशघातः) अक्षभानृतलघातहृत् (पलभाशंकुतलघातभक्तः) तदा समना (समशंकुः) भवेदिति ॥१२

अत्रोपपत्तिः ।

$$\frac{१२.\ अग्रा}{पभा} = सशंकु ।\ परन्तु\ \frac{पक.\ कुज्या}{पभा} = अग्रा\ तत\ उत्थापनेन$$

$$\frac{१२ \times पक.\ कुज्या}{पभा.\ पभा} = \frac{१२.\ पक.\ कुज्या}{पभा^{2}} = समशं = \frac{लंज्या.\ त्रि.\ कुज्या}{पभा^{2}}$$

$$वा\ \frac{शंकु \times अग्रा}{शंकुतल} = समशं ।\ परन्तु\ \frac{हृ.\ कुज्या}{शंतल} = अग्रा\ तत\ उत्थापनेन$$

$$\frac{शंकु.\ हृति.\ कुज्या}{शंत.शंत} = \frac{शंकु.\ हृति.कुज्या}{शंत^{2}} = समशंकु ।$$

$$= \frac{१२ \times हृति.कुज्या}{पभा.\ शंतल} ।\ यतः\ \frac{शंकु}{शंतल} = \frac{१२}{पभा}$$

∴ सिद्धम् ॥११-१२॥

हि. भा.—पलकर्ण द्वादश और कुज्या के घात में पलभावर्ग से भाग देने से समशंकु होता है । वा लम्बज्या त्रिज्या और कुज्या घात में पलभावर्ग से भाग देने से समशंकु होता है ॥ अथवा शंकुहृति और कुज्याघात में शंकुतलवर्ग से भाग देने से समशंकु होता है । वा हृतिकुज्या और द्वादश के घात में पलभा और शंकुतल के घात से भाग देने से समशंकु होता है ॥११-१२॥

उपपत्ति

$$\frac{१२.\ अग्रा}{पभा} = समशंकु ।\ परन्तु\ \frac{पक.\ कुज्या}{पभा} = अग्रा\ \ उत्थापन\ देने\ से$$

$$\frac{१२ \times पक.\ कुज्या}{पभा.\ पभा} = \frac{१२.\ पक.\ कुज्या}{पभा^{2}} = समशंकुः = \frac{लंज्या.\ त्रि.\ कुज्या}{पभा^{2}}$$

$$वा\ \frac{शंकु \times अग्रा}{शंतल} = समशंकु\ लेकिन\ \frac{हृति.\ कुज्या}{शतल} = अग्रा$$

उत्थापन देने से

$$\frac{\text{शंकु} \times \text{हृति} \times \text{कुज्या}}{\text{शंतल} \times \text{शंतल}} = \frac{\text{शंकु} \times \text{हृति} \times \text{कुज्या}}{\text{शंतल}^2} = \text{समशंकु} = \frac{12 \times \text{हृति} \times \text{कुज्या}}{\text{शंतल. पभा}}$$

∴ सिद्ध हुग्रा ॥११-१२॥

इदानीं समकर्णनयनान्याह ।

द्वादशगणिताऽक्षज्या क्रान्तिज्या भाजिता समश्रवणः ।
लम्बज्याऽक्षभयाघ्ना क्रान्तिज्याहृत्समः कर्णः ॥१३॥
त्रिज्याऽक्षभयाऽभ्यस्ता वाऽग्रा भक्ता समश्रुतिर्भवति ।
त्रिज्याक्षश्रुतिघातात्तद्वृत्याप्तात्समः श्रवणः ॥१४॥
त्रिगुणपलभाकृतिहृतिरक्षश्रुतिकुगुणघातहृत्कर्णः ।
वाऽक्षाभाघ्नाऽक्षज्या कुज्याभक्ता समः श्रवणः ॥१५॥

वि. भा.—अक्षज्या द्वादशगुणिता क्रान्तिज्याभाजिता (क्रान्तिज्याभक्ता) तदा समश्रवणः (समकर्णः) भवेत् । लम्बज्या, अक्षभयाघ्ना (पलभया गुणिता) क्रान्तिज्याहृत् (क्रान्तिज्याभक्ता) तदा समः कर्णो भवेत् । वा त्रिज्या, अक्षभयाऽभ्यस्ता (पलभया गुणिता) अग्रा भक्ता तदा समश्रुतिः (समकर्णः) भवति । त्रिज्याऽक्षश्रुतिघातात् (त्रिज्यापलकर्णवधात्) तद्वृत्याप्तात् (तद्धृतिभक्तात्) समः श्रवणः (समकर्णः) भवेत् ॥ त्रिगुणपलभाकृतिहृतिः (त्रिज्यापलभावर्गहृतिः) अक्षश्रुति-कुगुणघातहृत् (पलकर्णकुज्याघातभक्ता) तदा समकर्णो भवेत् । वा अक्षज्या अक्षाभाघ्ना (पलभागुणिता) कुज्या भक्ता तदा समः श्रवणः (समकर्णः) भवेदिति ॥१३-१५॥

अत्रोपपत्तिः

$$\frac{\text{त्रि. } 12}{\text{समशंकु}} = \text{समकर्ण} = \frac{\text{त्रि. } 12}{\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{अज्या}}} = \frac{\text{त्रि. } 12 \text{. अक्षज्या}}{\text{त्रि. क्रांज्या}} = \frac{12 \times \text{अक्षज्या}}{\text{क्रांज्या}}$$

$$\because \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लंज्या}} = \frac{\text{पभा}}{12} \therefore 12 \times \text{अक्षज्या} = \text{पभा. लंज्या} \therefore \frac{12 \text{. अज्या}}{\text{क्रांज्या}}$$

$$\frac{\text{पभा. लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \text{सकर्ण} \text{ यतः } = \frac{\text{लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{अग्रा}} \therefore \frac{\text{पभा. लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{सम-}$$

$$\text{कर्ण । यतः } \frac{\text{पभा. तद्धृति}}{\text{पक}} = \text{अग्रा} \therefore \frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{पभा. त्रि}}{\frac{\text{पभा. तद्धृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{पभा. त्रि. पक}}{\text{पभा. तद्धृति}}$$

$$= \frac{\text{त्रि. पक}}{\text{तद्धृति}} = \text{सकर्ण ।}$$

$$\text{अथ } \frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{समकर्ण} = \frac{\text{पभा. त्रि}}{\frac{\text{पक. कुज्या}}{\text{पभा}}} = \frac{\text{पभा. त्रि पभा}}{\text{पक. कुज्या}} = \frac{\text{त्रि. पभा}^2}{\text{पक. कुज्या}} =$$

$\frac{\text{पभा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}}$ एतावता सर्वं सिद्धम् ॥१३-१५॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे सममण्डल-
प्रवेशविधिरेकादशोऽध्यायः ।

हि. भा.—अक्षज्या को बारह से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से समकर्ण होता है। लम्बज्या को पलभा से गुणकर क्रान्तिज्या से भाग देने से समकर्ण होता है। वा त्रिज्या को पलभा से गुणकर अग्रा से भाग देने से समकर्ण होता है। त्रिज्या और पलकर्ण के घात में तद्धृति (तद्धृति) से भाग देने से समकर्ण होता है॥ त्रिज्या और पलभावर्ग के घात को पलकर्ण और कुज्या के घात से भाग देने से समकर्ण होता है। वा अक्षज्या को पलभा से गुणकर कुज्या से भाग देने से समकर्ण होता है ॥१३-१५॥

उपपत्ति।

$$\frac{\text{त्रि. १२}}{\text{समशङ्कु}} = \text{समकर्ण} = \frac{\text{त्रि. १२}}{\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{अक्षज्या}}} = \frac{\text{त्रि. १२.अक्षज्या}}{\text{त्रि. क्रांज्या}} = \frac{\text{१२.अक्षज्या}}{\text{क्रांज्या}} ।$$

$$\because \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लज्या}} = \frac{\text{पभा}}{\text{१२}} \therefore \text{अक्षज्या १२} = \text{पभा. लंज्या} \therefore \frac{\text{१२. अक्षज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{पभा. लंज्या}}{\text{क्रांज्या}}$$

$$= \text{समक यतः } \frac{\text{लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{त्रि}}{\text{अग्रा}} \therefore \frac{\text{पभा. लंज्या}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{समकर्ण}$$

$$\text{यतः } \frac{\text{पभा. तद्धृति}}{\text{पलक}} = \text{अग्रा} \therefore \frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{पभा. त्रि}}{\frac{\text{पभा. तद्धृति}}{\text{पक}}} = \frac{\text{त्रि. पक}}{\text{तद्धृति}} = \text{समक}$$

$$\text{अथ } \frac{\text{पभा. त्रि}}{\text{अग्रा}} = \text{समक} = \frac{\text{पभा. त्रि}}{\frac{\text{पक. कुज्या}}{\text{पभा}}} = \frac{\text{पभा. त्रि. पभा}}{\text{पक. कुज्या}} = \frac{\text{त्रि. पभा}^2}{\text{पक. कुज्या}} =$$

$$\frac{\text{पभा. अक्षज्या}}{\text{कुज्या}} = \text{समकर्ण} \therefore \text{ सिद्ध हुआ ॥१२-१४॥}$$

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में सममण्डलप्रवेशविधि नामक
एकादश अध्याय समाप्त हुआ ॥



द्वादशोऽध्यायः

अथ कोणशंकुविधिः

तत्रादौ कोणशंक्वानयनमाह ।

त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगिनकृतिहतं भवेदाद्यः ।
अन्योऽर्कपलभाग्रा वधोऽक्षभाकृतियुतैर्द्विनगैः ।। १ ।।
भक्तावाद्यस्यान्यकृतियुतस्य पदं युतमुदग्वियुग्याम्ये
अन्येन कोणनास्याद्वियुगुदपि लघुः पदान्नाऽन्यः ।। २ ।।

वि. भा.—त्रिज्याकृतिदलं (त्रिज्यावर्गार्धं) अग्राकृतिवियुक् (अग्रावर्गहीनं) इनकृतिहतं (द्वादशवर्गगुणितं) आद्यसंज्ञकः । अर्कपलभाग्रावधः (द्वादशपलभाग्राघातः) अन्यः (अन्यसंज्ञकः) अक्षभाकृतियुतैः (पलभावर्गयुतैः) द्विनगैः (द्विसप्तभिः) तौ (आद्यान्यौ) भक्तौ तदा विशिष्टावाद्यान्यौ भवतः । अन्यकृतियुतस्य (अन्यवर्गयुतस्य) आद्यस्य पदं (मूलं) अन्येनोदग्गोले (उत्तरगोले) युतं याम्ये (दक्षिणगोले) वियुक् (रहितं) तदा कोणना (कोणशंकुः) भवेत् ।। यदाऽन्यः पदाल्लघुर्न भवेत्तदोदगपि उत्तरगोलेऽपि) वियुक् हीनं तदा कोणशंकुरिति ।।१-२ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

कोणवृत्तस्थरवेः क्षितिजोपरियोलम्बः स एव कोणशंकुः । तन्मूलात्पूर्वापररेखोपरि यो लम्बः सभुजः । तन्मूला(कोणशंकुमूला)देवयाम्योत्तररेखोपरिकृतो लम्बः कोटिः । कोणशंकुमूलस्य कोणदृक्सूत्रे गतत्वादत्र भुजे कोटिसमे भवतः । तेनात्र भुजवर्गो द्विगुणः शंकुमूलाद् भूकेन्द्रं यावद्दृग्ज्याया वर्गसमः ।

अत्र कल्प्यते कोणशंकुप्रमाणम् $=$ य तदाऽक्षक्षेत्रानुपातेन शंकुतलम् $= \frac{\text{पभा . य}}{१२}$

तत उत्तरदक्षिणगोलयोः क्रमेण भुजमानम् $=$ अ $\mp \frac{\text{पभा . य}}{१२}$ | अ $=$ अग्रा । परमत्र

$२\text{भु}^२ = \text{दृग्ज्या}^२ = \text{त्रि}^२ - \text{य}^२ \;\therefore २\text{य}^२ = २\left(\text{अ} \mp \frac{\text{पभा . य}}{१२}\right)^२ = २\left(\text{अ}^२ \mp \frac{२\text{अ.पभा.य}}{१२}\right.$

$\left. + \frac{\text{पभा}^२.\text{य}^२}{१२^२}\right) = \frac{१४४\text{अ}^२ \mp २\text{अ.पभा.य} \times १२ + \text{पभा}^२.\text{य}^२}{७२}$ $\text{दृग्ज्या}^२ = \text{त्रि}^२ - \text{य}^२$ छेद-

गमेन $\text{१४४अ}^{२} \mp \text{२अ.पभा.य.१२} + \text{पभा}^{२}.\text{य}^{२} = \text{७२त्रि}^{२} - \text{७२य}^{२}$ समयोजनादिना

$$\text{पभा}^{२} \times \text{य}^{२} + \text{७२य}^{२} \mp \text{२अ.पभा.य.१२} = \text{७२त्रि}^{२} - \text{१४४अ}^{२} = \text{१४४} \left(\frac{\text{त्रि}^{२}}{\text{२}} - \text{अ}^{२} \right)$$

$$= \text{य}^{२} \left(\text{पभा}^{२} + \text{७२} \mp \text{२अ·पभा·य.१२} \right) = \text{१४४} \left(\frac{\text{त्रि}^{२}}{\text{२}} - \text{अ}^{२} \right)$$

अत्र $\text{१४४} \left(\frac{\text{त्रि}^{२}}{\text{२}} - \text{अ}^{२} \right) = \text{आद्यसंज्ञकः}$ । $\text{अ} \times \text{पभा.१२} = \text{अन्यसंज्ञकः}$

तदा $\text{य}^{२} \; (\text{पभा}^{२} \div \text{७२}) \mp \text{२य.अन्य} = \text{आद्य}$ पक्षौ $\text{पभा}^{२} + \text{७२}$ भक्तौ

तदा $\text{य} \mp \frac{\text{२य.अन्य}}{\text{पभा}^{२} + \text{७२}} = \frac{\text{आद्य}}{\text{पभा}^{२} + \text{६२}} = \text{य}^{२} \mp \text{अन्य}^{१} = \text{आद्य}^{१}$ वर्गपूर्त्तिकरणेन

$$\text{य}^{२} \mp \text{२य.अन्य}^{१} + \text{अ}^{१}\text{न्य}^{२} = \text{आद्य} + \text{अ}^{१}\text{न्य}^{२} \text{ मूलेन}$$

$$\text{य} \mp \text{अन्य} = \sqrt{\text{आद्य} \div \text{अ}^{१}\text{न्य}^{२}} \therefore \text{य} = \sqrt{\text{आद्य}^{१} + \text{अ}^{१}\text{न्य}^{२}} \pm \text{अन्य}^{१}$$

अत उपपन्नमाचार्योक्तम् ।

अत्र यदा त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रावर्गोऽधिकस्तदोत्तरगोले आद्यस्य ऋणत्वात् कोणशङ्कुचतुष्टयमुत्पद्यते । दक्षिणगोले तु कोणशंकोरभाव इति । एतत्कोणशंकानयनप्रकारानुरूपमेव सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिकृतं कोणशंकोरानयनं यथा तदुक्त प्रकारः ।

अग्राकृत्या विहीनं त्रिगुणकृतिदलं वेदशक्रघ्नमाद्यः
सूर्याग्राक्षप्रमाणामभिहतिरपरो भक्तयोरक्षभायाः ।
कृत्याढ्यद्व्याढ्यया तौ परकृतिसहितादाद्यतो यत्पदं स्या-
दन्येनाढ्यं विहीनं धनमयमककुब्गोलयोः कोणशंकुः ॥
उत्तरेतरत्रिदिङ्नशे भवेदुत्तरे तु पदहीनयुक्परः
दक्षिणेन सममण्डलात्ततो भाश्रुतीष्टघटिकाश्च पूर्ववत् ।

ब्रह्मगुप्तप्रकारस्य वाऽनुरूपं श्रीपतिकृतं कोणशंकोरानयनं ब्रह्मगुप्तप्रकारश्च—

अर्काग्रावर्गोनं त्रिज्यावर्गार्धमर्ककृतिगुणितम् ।
आद्योऽन्योऽग्राद्वादशविषुवच्छायावधो हृतयोः ॥ १ ॥
विषुवच्छायाकृत्या द्व्यग७२संयुतयाऽन्यकृतियुतादाद्यात् ।
पदमन्ययुतविहीनं सौम्येतरगोलयोः शंकुः ॥ २ ॥
विदिशोः सौम्येतरयोरुत्तरगोले पदोनयुक्तोऽन्यः ।
सममण्डलदक्षिणगे न च्छायानाड़ीकाः प्राग्वत् ॥ ३ ॥

सूर्यसिद्धान्तेऽपि "त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्राज्यावर्गोनात् द्वादशाहतादि" त्यादिनाऽयमेव कोणशंकानयनप्रकार उक्तः । भास्कराचार्येण "अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य

वर्गा" दित्यादिना विदिताऽग्रावशेनाऽसकृत्कर्मणा कोणशंकोरानयनं सिद्धान्तशिरोमणौ कृतं तद्व्यभिचारश्चोत्तरगोले "युग्माश्चोनाऽक्षप्रभावर्गनिघ्नो बाणाब्ध्यंशज्याद्विकाश्वैर्विभक्ता । अक्षच्छायावर्गयुक्तैः फलाच्चेदग्रा न्यूना स्यात्खिलं सौम्यगोले" एतेन प्रकारेण म. म. सुधाकरद्विवेदिना प्रदर्शितः । दक्षिणगोले तद्व्यभिचारश्च सिद्धान्तशिरोमणेष्टिप्पण्यां संशोधकेन (म. म. बापूदेवशास्त्रिणा) प्रदर्शितः । यदि च भुजः >ज्या४५ तदा पूर्वोक्त श्रीपत्यादिप्रकाराणां व्यभिचार इति सुधिया सम्यग्विचार्य ज्ञेयम् ।

पूर्वं मया लिखितं यदा त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रावर्गोऽधिकस्तदोत्तरगोले कोणशंकुचतुष्टयमुत्पद्यते परमेवं कस्मिन् देशे भवति तदर्थं विचार्यते ।

यत्र देशे परमाग्रा = ज्या४५ तद्देशीयपलभामानम् = य

$$\text{तदा } य^{२} + १२^{२} = \text{पलक}^{२} \therefore \frac{\text{पक}^{२} \times \text{त्रिज्या}^{२}}{१२^{२}} = \text{परमाग्रा} =$$

$$\frac{(य^{२}+१२^{२}).\text{त्रिज्या}^{२}}{१२^{२}} = \text{ज्या}^{२}४५ \text{ छेदगमेन } य^{२} \text{ त्रिज्या}^{२} + १२^{२}.\text{त्रिज्या}^{२} = \text{ज्या}^{२}४५$$

$\times १२^{२}$ समशोधनेन

$$य^{२}.\text{त्रिज्या}^{२} = \text{ज्या}^{२}४५ \times १२^{२} - १२^{२}.\text{त्रिज्या}^{२} = १२^{२}(\text{ज्या}^{२}४५ - \text{त्रिज्या}^{२})$$

$$\therefore य^{२} \frac{१२^{२}(\text{ज्या}^{२}४५ - \text{त्रिज्या}^{२})}{\text{त्रिज्या}^{२}} \text{ मूलेन } \frac{१२\sqrt{\text{ज्या}^{२}४५ - \text{त्रिज्या}^{२}}}{\text{त्रिज्या}^{२}} = १७।५।२२$$

अत्र परमाग्रा प्रमाणं पञ्चचत्वारिंशज्ज्यासमं स्वीकृत्य यदि पलभामानं साध्यते तदा १७।५।२२ भवति तेन सिद्धं यद्यत्र देशे पलभै "१७।५।२२" तत्तुल्यं भवेत्तत्र देशेऽग्रा = ज्या४५, इतोऽधिके पलभादेशे अग्रा > ज्या४५

वा अग्रा^{२} > ज्या^{२}४५

वा अग्रा^{२} > $\frac{\text{त्रि}^{२}}{२}$ यत्रैवं भवति तत्र देशे दक्षिणगोले कोणशंकोरभाव उत्तरगोले कोणशंकुचतुष्टयमुत्पद्यत इति पूर्वोक्तं युक्तियुक्तमिति ॥ १-२ ॥

हि. भा.—त्रिज्यावर्गार्ध में अग्रावर्ग घटा कर बारह के वर्ग से गुणा करने से जो हो उसका नाम आद्य है पलभा, अग्रा, और बारह के घात का नाम अन्त्य है। आद्य और अन्त्य को पलभावर्ग और बहत्तर के योग से भाग देने से विशिष्ट आद्य और अन्त्य होते हैं । आद्य में अन्त्य वर्ग जोड़ कर मूल लेने से जो हो उसमें अन्त्य को युत और हीन करने से उत्तरगोल और दक्षिणगोल में शंकु कोणशंकु होता है ॥ १-२ ॥

उपपत्ति

कोणवृत्ताहोरात्रवृत्त के सम्पात से क्षितिज धरातल के ऊपर जो लम्ब होता है उसे कोणशंकु कहते हैं। उसके मूल से पूर्वापर रेखा के ऊपर जो लम्ब होता है वह भुज है। तथा कोणशंकु ही के मूल से याम्योत्तररेखा के ऊपर जो लम्ब होता है वह कोटि है; यहां पर कोणशंकुमूल के कोणसूत्र के ऊपर पतित होने से भुज और कोटि बराबर होती है इसलिए $भु^2+को^2=२भु^2=दृग्ज्या^2=$ भूकेन्द्र से कोणशङ्कुमूल तक यहां कल्पना करते हैं कोणशङ्कुमान $=$ य तब अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{पभा. य}{१२}=$ शङ्कुतल अतः उत्तर और दक्षिण गोल क्रम से भुज $=अ\mp\frac{पभा. य}{१२}$ | अ $=$ अग्रा

अ $\mp$ शंकुतल $=$ भुज

लेकिन यहां $२भु^2=दृग्ज्या^2=त्रि-य^2$

इसलिए $२भु^2=२\left(अ\mp\frac{पभा. य}{१२}\right)^2=२\left(अ^2\mp\frac{२अ. पभा. य}{१२}+\frac{पभा^2. य^2}{१२^2}\right)$

$=\frac{१४४अ^2\mp२अ.पभा. य\times१२+पभा^2\ य^2}{७२}=दृग्ज्या^2=त्रि^2-य^2$ छेदगम से

$१४४अ^2\mp२अ. पभा. य. १२+पभा^2. य^2=७२त्रि^2-७२य^2$ समयोजनादि से

$पभा^2. य^2+७२य^2\mp२अ. पभा. य. १२=७२त्रि^2-१४४अ^2=१४४$

$\left(\frac{त्रि^2}{२}-अ^2\right)=य^2(पभा^2+७२)\mp२अ. पभा. य. १२=१४४\left(\frac{त्रि^2}{२}-अ^2\right)$

यहां $१४४\left(\frac{त्रि^2}{२}-अ^2\right)=$ आद्य।

अग्रा. पभा. १२ $=$ अन्य

तब $य^2(पभा^2+७२)\mp२य.$ अन्य $=$ आद्य दोनों पक्षों को $पभा^2+७२$ इससे भाग देने से $य^2\mp\frac{२य. अन्य}{पभा^2+७२}=\frac{आद्य}{पभा^2+७२}=य^2\mp२य. अन्य^1=आद्य^1$ वर्गपूर्त्ति करने से

$य^2\mp२य. अन्य^1+अन्य^{12}=आद्य^1+अन्य^{12}$ मूल लेने से

$य\mp अन्य^1=\sqrt{आद्य^1+अन्य^{12}}\ \therefore य=\sqrt{आद्य^1+अन्य^{12}}\pm अन्य^1$

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ॥

यहां जब त्रिज्यावर्गार्ध से अग्रावर्ग अधिक होगा तब आद्य के ऋण होने के कारण उत्तर गोल में चार कोणशंकु उत्पन्न होते हैं और दक्षिणगोल में कोणशंक का अभाव होता है। इस कोणशंकु के आनयन के सदृश ही सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने कोणशंकु का आनयन किया है। जैसे उनके प्रकार अधोलिखित हैं—

"अग्राकृत्याविहीनं त्रिगुणिकृतिदलं वेदशक्रघ्नमाद्यः।" इत्यादि।

या ब्रह्मगुप्त प्रकार के अनुरूप ही श्रीपति प्रकार को कह सकते। ब्रह्मगुप्तप्रकार देखिये—

"अर्काग्रावर्गोनं त्रिज्यावर्गार्धमर्ककृतिगुणितम्।" इत्यादि।

सूर्यसिद्धान्त में भी "त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्राज्यावर्गोनात्" इत्यादि से यही कोणशंकु के आनयन प्रकार कहा गया है। भास्कराचार्य "अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गात्" इत्यादि से विदित अग्रावश करके असकृत्प्रकार से सिद्धान्तशिरोमणि में कोणशंकु का आनयन किया है उसका व्यभिचार उत्तरगोल में—

"युग्माश्वोनाऽक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाब्ध्यंशज्या द्विकाश्वैर्विभक्ता।

अक्षच्छायावर्गयुक्तैः फलाच्चेदग्रा न्यूनां स्यात्खिलं सौम्यगोले।" इस प्रकार से म. म. सुधाकर द्विवेदी ने दिखलाये हैं। दक्षिणगोल में उसका व्यभिचार सिद्धान्तशिरोमणि की टिप्पणी में संशोधक (म. म. बापूदेवशास्त्री) ने दिखलाया है? यदि भुज $>$ ज्या ४५ तब पूर्वोक्त श्रीपत्यादि प्रकारों के व्यभिचार होता है।

पहले हमने लिखा है कि जब त्रिज्यावर्गा से अग्रावर्ग अधिक होता है तब उत्तरगोल में चार कोणशङ्कु उत्पन्न होते हैं लेकिन किस देश में ऐसी स्थिति होती है उसके लिए विच र करते हैं। जिस देश में परमाग्रा = ज्या ४५ उस देश के पलभामान = य मानते हैं।

$$\text{तब } य^2 + १२^2 = पक^2 \therefore \frac{पक^2 . \text{ जिज्या}^2}{१२^2} = \text{परमाग्रा}^2 = \frac{(य^2 + १२^2)\text{जिज्या}^2}{१२^2}$$

$= \text{ज्या}^2 ४५$ छेदगम से $य^2. \text{ जिज्या}^2 + १२^2 \text{ जिज्या}^2 = \text{ज्या } ४५ \times १२^2$ समशोधन से

$$य^2. \text{ जिज्या}^2 = \text{ज्या}^2 ४५ \times १२^2 - १२^2 \text{जिज्या}^2 = १२ \ (\text{ज्या}^2 ४५ - \text{जिज्या}^2)$$

$$\therefore य^2 = \frac{१२^2 (\text{ज्या}^2 ४५ - \text{जिज्या}^2)}{\text{त्रिज्या}^2} \text{ मूल लेने से } \quad १२ \ \frac{\sqrt{\text{ज्या}^2 ४५ - \text{जिज्या}^2}}{\text{त्रिज्या}}$$

$= १७।५।२२$

यहां परमाग्रा का मान पैंतालीस अंश की ज्या के बराबर मानकर यदि पलभा का मान साधन करते हैं तो १७।५।२२ इतना होता है इसलिए इससे सिद्ध होता है कि जिस देश में पलभा के मान (१७।५।२२) इतना होगा उस देश में अग्रा = ज्या४५ इससे अधिक पलभा जिस देश में होगी उस देश में अग्रा $>$ ज्या४५

$$\text{वा अग्रा}^2 > \text{ज्या}^2 ४५$$

$$\text{वा अग्रा}^2 > \frac{\text{त्रि}^2}{२}$$ जहां पर ऐसा होता है वहां उत्तरगोल में चार कोणशंकु उत्पन्न होते हैं और दक्षिणगोल में कोणशंकु से अभाव होता है। ये सब बातें गोल पर स्पष्ट हैं ॥१-२॥

इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयोदग्वियुक् त्रिगुणवर्गात्।
मूलकोण नरो वा पलभाघ्नोऽर्कविहृद्दिष्टमसकृदेवम् ॥ ३ ॥

दक्षिणगोले चेष्टयुजाग्रयोक्तविधिना विदिग्ना स्यात् ।
तस्माद्दृग्ज्या कर्णच्छाया संसाधयेत्प्राग्वत् ।। ४ ।।

वि. भा.—उत्तरगोले द्विगुणितया—इष्टाग्रान्तरकृत्या (इष्टोनाग्राकृत्या) त्रिगुणवर्गात् (त्रिज्यावर्गात्)वियुक—मूलं वा कोणनरः (कोणशंकुः) भवेत् । दक्षिणगोले चेष्टयुजाग्रया पूर्वोक्त्या कोणशंकुः स्यात् । स (कोणशंकुः) पलभाघ्नः (पलभागुणितः) अर्कविहृत् (द्वादशभक्तः) तदेष्टं स्यादेवमसकृत्क्रिया कार्या तदा वास्तवः कोणशंकुर्भवेत् । तस्माच्छंकोः पूर्ववत् दृग्ज्या कर्णच्छायाः साध्या इति ॥

अत्रैतदुक्तं भवति याम्योतरगोलयोः क्रमेणेष्टशब्देन स्वेच्छाकल्पितं शंक्वग्रं कथ्यते । तेनेष्टेनाग्रायाः किञ्चिदूने नाधिकेन वा युतोनिता या रव्यग्राया द्विगुणितया त्रिज्यावर्गाच्छोधितयाऽवशिष्टमूलं कोणशङ्कुर्भवेत् । पूर्वं यदिच्छानुरूपमिष्टं कल्पितं तदानेतुं "पलभाघ्नोऽर्कविहृदिति, कोणशङ्कुः पलभागुणितो द्वादशभक्तः फलमिष्टसंज्ञं भवेत् । ततस्तेनेष्टेन दक्षिणोत्तरगोलयोर्युतोनिताया अग्राया वर्गे द्विगुणिते त्रिज्यावर्गाच्छोधितेऽवशिष्टस्य मूलं कोणशङ्कुः । अस्मात्पुनरिष्टं साध्यं तेन युतोनितयाऽग्रया द्विगुणितया पूर्वोक्ता कोणशङ्कुः साध्यः । एवमसकृत्कर्म तावत्कार्यं यावत्साधितः कोणशंकुः स्थिरो भवेदिति ।

एतत्कोणशंकुवशेन $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोशंकु}^2}$ = दृग्ज्या ततः $\frac{\text{दृग्ज्या. १२}}{\text{कोशं}}$ =

कोछाया । एतेनोपपन्नमाचार्योक्तम् ॥३-४॥

अत्रोपपत्तिर्भाष्येनैव स्पष्टेति ॥

एतप्रकारानुरूपमेव सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिकृतं कोणशंकोरानयनम् । यथा—

इनाऽग्रकायाः सहितोनिताया इष्टेन याम्योत्तरगोलगेऽर्के ।
वर्गे द्विनिघ्ने कृतितस्त्रिमौर्व्यास्त्यक्ते पदं यत्स हि कोणशंकुः ॥
पलप्रभाघ्नेऽर्कहृते च तस्मिन्—इष्ट भवेत्तेन ततः प्रसाध्यः ।
विदिङ्नरः पूर्ववदग्रकाया यावत्स्थिरः स्यादसकृद्विधानात् ॥।। ३-४ ॥

हि. भा.—उत्तरगोल में त्रिज्यावर्ग में इष्ट और अग्रा के अन्तर वर्ग को द्विगुणित कर घटा देने से जो शेष रहे उसका मूल कोणशंकु होता है । दक्षिण गोल में त्रिज्यावर्ग में इष्ट युत अग्रा के वर्ग को द्विगुणित करने से जो हो उसको जोड़कर मूल लेने से कोणशंकु होता है । कोणशंकु को पलभा से गुणकर बारह से भाग देने से इष्टसंज्ञक होता है इस तरह असकृत्कर्म करने वास्तव कोणशंकु होता है । इस शंकु से पूर्ववत् दृग्ज्या छायाकर्ण और छाया का साधन करना चाहिए ।

इष्ट शब्द से अपनी इच्छा से कल्पित शंक्वग्र है, उत्तरगोल में इष्टरहित अग्रावर्ग को द्विगुणित कर त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेने से कोणशंकु होता है, दक्षिणगोल में इष्टयुत

अग्रावर्ग को द्विगुणित कर त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेने से कोणशंकु होता है। अब पहले जो इच्छानुरूप इष्ट मान कर कोणशंकु का आनयन किया है उसी इष्ट का साधन करते हैं, कोणशंकु को पलभा से गुणकर बारह से भाग देने से जो फल होता है वह इष्टसंज्ञक है। इस इष्ट पर से पुनः उत्तर और दक्षिण गोल में पूर्वोक्त रीति से कोणशंकु प्रमाण होता है। इस पर से पुनः पूर्वनियम से इष्ट साधन करना, इसको उत्तर और दक्षिण गोल क्रम से अग्रा में हीन और युत करके कोणशंकु साधन करना चाहिए। इस तरह असकृत्कर्म तब तक करना चाहिए जब तक कोणशंकु स्थिर हो, इस तरह कोणशंकु का वास्तव ज्ञान होता है।

तब $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{कोणशं}^2}$ = दृग्ज्या इस पर से "दृग्ज्या त्रिजीवे रविसङ्गुणे ते शंकूद्धृते भाश्रवणौ भवेताम्" इत्यादि छाया और छायाकर्ण का ज्ञान हो जायेगा ।।३-४।।

इसकी उपपति भाष्य देखने से स्पष्ट हैं ।।३-४।।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने इस प्रकार के अनुरूप ही कोणशंकु का साधन किया है। जैसे "इनाऽग्रकायाः सहितोनिताया इष्टेन याम्योत्तरगोलगेऽर्के।" इत्यादि ।।३-४।।

इदानीं पुनरपि कोणशंकोरानयनमाह।

त्रिज्यायाऽक्षश्रुत्येष्टोनयुतयाऽग्रायोष्टया प्राग्वत्।
साध्यौ विदिङ्नरौ वा सौम्येतरगोलयोरसकृत् ।।५।।

वि. भा.—वा सौम्येतरगोलयोः (उत्तरदक्षिणगोलयोः) अक्षश्रुत्या त्रिज्यया (पलकर्णतुल्यत्रिज्यया) त्रिज्यया—इष्टयाऽग्रया (पलकर्ण व्यासार्धपरिणतयाऽग्रया) इष्टोनयुतया प्राग्वत् (इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयेत्यादिवत्) असकृद्विदिङ्नरौ (कोणशंकू) साध्यावर्थात्प्रथमं रव्यग्रामानमानीय तं पलकर्णव्यासार्धवृत्ते समानीय तदग्रावशेनेष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयेत्यादि पूर्वोक्त्याऽसकृत् कर्मणा गोलयोः कोणशंकू भवेतां पलकर्णव्यासार्धवृत्तीयाग्रावशेन पलकर्णरूपत्रिज्यावशेन च प्रथमकोणशंक्वानयनप्रकारेण "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि" त्यादिना वा कोणशंक्वानयनं भवितुमर्हति परन्त्वाचार्येणाऽत्र प्रदर्शितप्रथमप्रकारेणैव तदानयनं कृतमिति ।।५।।

अत्रोपपत्तिर्भाष्यावलोकनेनैव स्पष्टेति ।।५।।

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽग्रां पलकर्णव्यासार्धवृत्ते परिणतां कृत्वा तदग्रावशेन कोणशंक्वानयनं कृतं तदेतदनुरूपमेव तदानयनं च।

सेष्टायाः पलकर्णमण्डलभुवोऽग्रायाः कृतिं द्व्याहतां
त्यक्त्वाऽक्षश्रुतिवर्गतः पदमसौ कोणोद्भवः स्यान्नरः।
प्राग्वच्चासकृदिष्टमिष्टरहितान्यग्राङ्गुलान्युत्तरे
कृत्वा भास्वति चानुपातविधिना लिप्तामयोऽसौ भवेत्।

तथाच पलकर्णवृत्ताग्रावशेन "अग्राकृत्याविहीनमि"त्यादिना कोणशंक्वानयनं कृतमस्ति तदेतदाचार्योक्तप्रथमप्रकारीयकोणशंक्वानयनं प्रकारेणाऽपि तथैव भवितुमर्हतीति ।

हि. भा.—वा उत्तरगोल और दक्षिण गोल में पलकर्णतुल्य त्रिज्या से और दृष्टाग्रा (पलकर्ण व्यासार्धवृत्त परिणत अग्रा) में इष्ट घटाकर और जोड़कर जो होंगे उन पर से इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितयेत्यादि की तरह असकृद्विधि से कोणशंकु साधन करना अर्थात् पहले अग्रा की पलकर्ण व्यासार्धवृत्त में परिणत कर उस अग्रा पर से इष्टाग्रान्तरकृत्या इत्यादि प्रकार के तरह असकृत्कर्म करने से दोनों गोलों में कोणशंकु होते हैं । वा पलकर्ण व्यासार्ध वृत्तीयाग्रावश से और पलकर्ण रूप त्रिज्या से प्रथम कोणशंकु के आनयन प्रकार "त्रिज्याकृतिदलमग्रा कृतिवियुगि" त्यादि से कोणशंकु के साधन ही हो सकते हैं, परन्तु यहां पर आचार्य ने उपरिलिखित प्रथम प्रकार ही से कोणशंकु का साधन किया है ॥५॥

इसकी उपपत्ति व्याख्या ही से स्पष्ट है ॥५॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने अग्रा को पलकर्ण तुल्य त्रिज्यावृत्त में पतिणत कर उस पर परिणत अग्रा पर से कोणशंकु का साधन किया है वह इस प्रकार के अनुरूप ही है । उनका साधन इस प्रकार है ।

"सेष्टायाः पलकर्ण मण्डपभुवोऽग्रायाः कृति द्व्याहतम् ।" इत्यादि

तथा पलकर्ण वृत्तीयाग्रावश से "अग्राकृत्या विहीनम्" इत्यादि प्रकार से कोणशंकु के साधन सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने किया है । वह वटेश्वराचार्यकृत प्रथम प्रकारीय कोण-शंकु साधन से भी उसी तरह होता है ।

इदानीं पुनः कोणशंकुसाधनान्याह ।

इष्टश्रवणाभ्यस्ता अग्रास्त्रिज्योद्धृता लघुकाः ।
तैरपि विदिङ्नरो वा त्रिज्यामिष्टश्रुतिं कृत्वा ॥६॥
इष्टभुजा वियुजा वा साध्यौ लघ्वग्रया विदिङ्नारौ ।
असकृद्याम्योत्तरयोस्त्रिज्याह्वयेनेष्टकर्णेन ॥७॥

वि. भा.—वा इष्टश्रुतिं (इष्टकर्णं) त्रिज्या कृत्वाऽर्थादिष्टकर्णं त्रिज्यां मत्वाऽग्रा इष्टश्रवणाभ्यस्ताः (इष्टकर्णगुणिताः) त्रिज्याभक्तास्तदा लघुकाः (इष्टकर्णतुल्यत्रिज्यावृत्तपरिणता अग्राः) तैरपि पूर्ववत् "त्रिज्याकृतिदलमग्रा-कृतिवियुगि"त्यादिप्रकारेण विदिङ्नरः (कोणशंकुः) भवेत् ॥६॥

वा त्रिज्याह्वयेनेष्टकर्णेन (इष्टकर्णेन त्रिज्यासंज्ञकेन) याम्योत्तरयोः (दक्षिणोत्तरयोः) गोले लघ्वग्रया (इष्टकर्णत्रिज्याव्यासार्धपरिणतयाऽग्रया) असकृत्कर्मणा विदिङ्नारौ (कोणशंकू) साध्याविति ॥७॥

अत्रोपपत्तिः

इष्टकर्ण व्यासार्धवृत्तपरिणताऽग्रया लघुकसंज्ञिकया "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि' त्यादिप्रकारेण कोणशंकुसाधनं स्पष्टमेव तथा चेष्टकर्णव्यासार्ध-वृत्तपरिणतयाऽग्रया लघ्वग्रासंज्ञिकया दक्षिणोत्तरगोलयोः 'इष्टग्रान्तरकृत्या द्विगुणितये' त्यादिप्रकारेणासकृत्कर्मणा कोणशंकू भवेतामेवेति दिक् ॥६-७॥

हि.भा.—वा इष्टकर्ण को त्रिज्या मानकर अग्रा को इष्टकर्ण से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से फल लघुक या लघ्वग्रा संज्ञक होता है इस पर से पूर्ववत् "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि' इत्यादि प्रकार से कोणशंकु होता है ॥ वा इष्टकर्णत्रिज्या से दक्षिणगोल और उत्तरगोल में लघ्वग्रा 'इष्टकर्णव्यासार्ध वृत्त परिणत अग्रा' से असकृत्प्रकार द्वारा कोणशंकु होते हैं ॥६-७॥

उपपत्ति

इष्टकर्ण व्यासार्धवृत्त परिणत अग्रा (लघुसंज्ञक अग्रा) पर से "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतियुग्' इत्यादि प्रकार से कोणशंकु का साधन स्पष्ट है। वा इष्टकर्णव्यासार्ध वृत्त परिणत अग्रा पर से दक्षिणगोल और उत्तरगोल में "इष्टाग्रान्तरकृत्या द्विगुणितया" इत्यादि प्रकार द्वारा असकृत्कर्म से कोणशंकु होते हैं ॥६-७॥

इदानीं पुनरपि कोणशंकुसाधनमाह ।

धृतिगुणितास्त्रिगुणहृता अग्रा धृतिवृत्तिगा भवन्ति लघुकाः ।
तैः प्राग्वत्कोणनरः साध्यस्त्रिज्यां प्रकल्प्य वृतिम् ॥८॥
वाऽग्रास्तद्धृतिगुणितास्त्रिज्याभक्ता भवन्ति तद्धृतिगाः ।
लघुका हि विदिङ्नारस्तैः प्राग्वत्त्रिज्याह्वयोद्धृत्या ॥९॥
इष्टयुतयोनया वा तयाऽग्रया कोणना पूर्ववत्साध्यः ।
याम्योत्तरयोरसकृत्त्रिज्याह्वयतद्धृतिं कृत्वा ॥१०॥

वि.भा.—वृतिं (हृतिं) त्रिज्यां प्रकल्प्याग्रा हृति (धृति) गुणास्त्रिज्याभक्तास्तदा लघ्वग्रा (हृतिव्यासार्धवृत्तपरिणताग्रा) भवन्ति, तैः (लघ्वग्राप्रमाणैः) प्राग्वत् (पूर्ववत्) कोणनरः (कोणशंकुः) साध्यः ॥ वा अग्रास्तद्धृतिगुणिताः (तद्धृतिगुणिताः) त्रिज्याभक्तास्तदा तद्धृतिव्यासार्धवृत्तपरिणता अग्राः (लघ्वग्राः) तैः (लघ्वग्राप्रमाणैः) त्रिज्याह्वयोद्धृत्या (त्रिज्यासंज्ञकतद्धृत्या) पूर्ववद्विदिङ्नारः (कोणशंकुः) भवेदिति । वा त्रिज्याह्वयतद्धृतिं (त्रिज्यासंज्ञकतद्धृतिं) कृत्वा याम्योत्तरयोर्गोले इष्टयुतया तयाऽग्रया वेष्टोनया तयाऽग्रयाऽसकृत्पूर्ववत्कोणना (कोणशंकुः) भवेदिति ॥८-१०॥

पूर्वोपपत्तिपर्यालोचनयैव स्फुटेति ॥८-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे कोणशंकुविधिर्द्वादशोध्यायः ।

हिं. भा.—हृति को त्रिज्या मानकर अग्रा को हृति से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से लघ्वग्रा (हृतिव्यासार्धवृत्तपरिणताग्रा) होती है, इस पर से पूर्ववत् "त्रिज्या कृति-दलमग्राकृतियुग्" इत्यादि से कोणशंकु होता है। वा अग्रा को तद्धृति (तद्धृति) से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने से लघ्वग्रा (तद्धृतिव्यासार्धवृत्तपरिणताग्रा) होती है। इससे तथा त्रिज्यासंज्ञक तद्धृति से पूर्ववत् कोणशंकु होता है। वा तद्धृति को त्रिज्या मानकर दक्षिण गोल तथा उत्तरगोल में इष्टयुत तथा इष्टरहित अग्रा पर से असकृत्कर्म से पूर्ववत्कोणशंकु होता है ॥८-१०॥

इसकी उपपत्ति पूर्वोपपत्ति देखने से स्पष्ट है ॥८-१०॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में कोणशंकुविधि नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



त्रयोदशोऽध्यायः

अथ छायातोऽर्कानयनविधिः

तत्रादौ रविक्रान्त्यानयनमाह ।

द्युदलद्युतेरुपचयः कुलीरराशेर्मृगादपचयः स्यात् ।
खाक्षाऽक्षान्तरयोगः सामान्यककुभोरिनक्रान्तिः ॥१॥

वि. भा.—कुलीराशेः (कर्क्यादितः) द्युदलद्युतेः (दिनार्धच्छायायाः) उपचय. (वृद्धि.) भवेत् मृगात् (मकरादेः) दिनार्धच्छायाया अपचयः (हानिः) भवेत् । समान्यककुभोः (तुल्यभिन्नदिशोः) खाक्षाक्षान्तरयोगः (नतांशाक्षांशयोरन्तर-योगः) कार्यस्तदेनक्रान्तिः (सूर्यक्रान्तिः) भवेदिति ॥१॥

अत्रोपपत्तिः ।

मध्यच्छाया ज्ञानेन $\sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण, ततः $\frac{\text{छाया. त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$ = दृग्ज्या अस्याश्चापं मध्यनतांशा भवेयुः । ततोऽक्षांशनतांशयोः समदिश्यन्तरेण भिन्नदिशि योगेन क्रान्तिर्भवेदिति ॥१॥

हि. भा.—कर्क्यादि से मध्यच्छाया की वृद्धि होती है और मकरादि से अपचय (ह्रासता) होता है । एक दिशा में अक्षांश और नतांश के अन्तर करने से, भिन्न दिशा में दोनों के योग करने से रवि की क्रान्ति होती है ॥१॥

उपपत्तिः

यहां मध्यच्छाया ज्ञान से $\sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण, तब $\frac{\text{छाया. त्रि}}{\text{छायाकर्ण}}$ = दृग्ज्या इसके चाप करने से नतांश होता है । अक्षांश और नतांश के एक दिशा में अंतर करने से तथा भिन्न दिशा में योग करने से रवि की क्रान्ति होती है ॥१॥

इदानीं सममण्डलशंकुज्ञानेन रविज्ञानमाह ।

अक्षज्याघ्नः समना जिनांशजीवाहृतोऽर्कबाहुज्या ।
उद्धृतिरक्षज्याघ्ना मिथुनान्ताऽग्रोद्धृता वा स्यात् ॥२॥

वि. भा.—समना (समशंकुः) अक्षज्याघ्नाः (अक्षज्यागुणितः) जिनांशजीवाहृतः (जिनांशज्याभक्ताः) तदाऽर्कबाहुज्या (रविभुजज्या) भवेत्। उद्धृतिः (तद्धृतिः) अक्षज्याघ्ना (अक्षज्यागुणिता) मिथुनान्ताऽग्रोद्धृता (मिथुनान्ताऽग्राभक्ता) तदा रविभुजज्या भवेत् ॥२॥

अत्रोपपत्तिः।

यदि त्रिज्ययाऽक्षज्या लभ्यते तदा समशंकुना केतिजाता क्रान्तिज्या $=\frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{त्रि}}$ ततोऽनुपातो यदि जिनज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया केति समागता रविभुजज्या $=\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ अत्र क्रान्तिज्याया उत्थापनेन।

$$\frac{\text{त्रि. अक्षज्या. सशं}}{\text{जिज्या. त्रि}}=\frac{\text{अक्षज्या. सशं}}{\text{जिज्या}}=\text{रविभुजज्या}$$ ।

अथवा $\because$ समशं $=\frac{\text{क्रांज्या. तद्धृति}}{\text{अग्रा}}$, परं मिथुनान्ते क्रांज्या $=$ जिज्या

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या. सशं}}{\text{जिज्या}}=\frac{\text{अज्या. जिज्या. तद्धृति}}{\text{जिज्या. मिथुनान्ताग्रा}}=\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}=\text{रभुज्या}$$

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ॥२॥

हि. भा.—समशंकु को अक्षज्या से गुणकर जिनज्या से भाग देने से रविभुजज्या होती है वा उद्धृति (तद्धृति) को अक्षज्या से गुणकर मिथुनान्ताग्रा से भाग देने से रविभुजज्या होती ॥२॥

उपपत्ति

यदि त्रिज्या में अक्षज्या पाते हैं तो समशंकु में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है, $\frac{\text{अन्या. सशं}}{\text{त्रि}}=\text{क्रांज्या}$ ।

तथा $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}=\frac{\text{त्रि. अज्या. सशं}}{\text{त्रि. जिज्या}}=\frac{\text{अज्या . सशं}}{\text{जिज्या}}=$ रविभुजज्या वा सशं $=\frac{\text{क्रान्तिज्या. तद्धृति}}{\text{अग्रा}}$ परन्तु मिथुनान्त में क्रांज्या $=$ जिज्या $\because \frac{\text{अक्षज्या. सशं}}{\text{जिज्या}}=$ रविभुजज्या

इसमें समशंकु के उत्थापन देने से $\frac{\text{अक्षज्या. जिज्या. तद्धृति}}{\text{जिज्या. मिथुनान्ताग्रा}}=\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ $=$ रविभुजज्या, इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ॥२॥

पुना रविभुजज्यानयनमाह ।

लम्बज्या तद्धृतिवधान्मिथुनान्तसमनृहृतदिनभुजज्या ।
तद्धृतिपलगुणघातोऽर्कघ्नोऽक्षश्रुतिजिनज्यकावधहृतो वा ।।३।।

वि. भा.—लम्बज्या तद्धृतिघातात् मिथुनान्तसमनृहृतात् (मिथुनान्तसमशंकुभक्तात्) फलमिनभुजज्या (रविभुजज्या) स्यात् । वा तद्धृतिपलगुणघातः (तद्धृत्यक्षज्यावधः) अर्कघ्नः (द्वादशगुणितः) अक्षश्रुतिजिनज्यकावधहृतः (पलकर्णजिनज्याघातभक्तः) तदा रविभुजज्या भवेदिति ।।३।।

अत्रोपपत्तिः ।

अथ $\frac{\text{अक्षज्या. तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुजज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या. मिथुनान्त.सशं}}{\text{लंज्या}}$ =

मिथुनान्ताग्रा तत उत्थापनेन रविभुजज्या = $\frac{\text{अक्षज्या. तद्धृति}}{\frac{\text{अज्या. मिथुनान्त सशं}}{\text{लंज्या}}}$

= $\frac{\text{तद्धृति. लंज्या}}{\text{मिथुनान्त समशं}}$ = रविभुज्या । वा $\frac{\text{अज्या. तद्धृ}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुजज्या

यतः $\frac{\text{पक. जिज्या}}{१२}$ = मिथुनान्ताग्रा तत उत्थापनेन $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\frac{\text{पक. जिज्या}}{१२}}$ =

$\frac{\text{अक्षज्या. तद्धृति. १२}}{\text{पक. जिज्या}}$ = रविभुजज्या ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपद्यते ।।३।।

हि. भा.—लम्बज्या और तद्धृति के घात को मिथुनान्त समशंकु से भाग देने से रविभुजज्या होती है । वा तद्धृति और अक्षज्या के घात को बारह से गुणकर पलकर्ण और जिनज्या के घात से भाग देने से रविभुजज्या होती है ।।३।।

उपपत्ति

$\frac{\text{अक्षज्या. तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुजज्या । परन्तु $\frac{\text{अज्या. मिथुनान्ताग्रासशं}}{\text{लंज्या}}$ = मिथुनान्ताग्रा

अतः मिथुनान्ताग्रा को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या.तद्धृति}}{\frac{\text{अज्या. मिथुनान्तसशं}}{\text{लंज्या}}}$ = $\frac{\text{तद्धृति.लंज्या}}{\text{मिथुनान्त सशं}}$ =

रविभुजज्या । वा $\frac{\text{अज्या. तद्धृति}}{\text{मिथुनान्ताग्रा}}$ = रविभुज्या । पर $\frac{\text{पक. जिज्या}}{१२}$ = मिथुनान्ताग्रा

उत्थापन देने से मिथुनान्ताग्रा $\frac{\frac{\text{अज्या तद्धृति}}{\text{पक जिज्या}}}{१२} = \frac{\text{अज्या. तद्धृति १२}}{\text{पक. जिज्या}}$ = रभुज्या

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।।३।।

इदानीं कर्णवृत्ताग्रातो रविज्ञानमाह ।

भावृत्ताग्रा त्रिज्या लम्बज्या संहृतिर्भक्ता ।
भाकर्णाऽन्त्यापमज्यावधेन लब्धं भुजज्या वा ।।४।।

वि. भा—भावृत्ताग्रा त्रिज्या लम्बज्या संहृतिः (छायाकर्णवृत्ताग्रा त्रिज्या लम्बज्याघातः) भाकर्णान्त्यापमज्यावधेन (छायाकर्णपरमक्रान्तिज्याघातेन) भक्ता, लब्धं (फलं) वा भुजज्या (रविभुजज्या) स्यादिति ।। ४ ।।

अत्रोपपत्तिः ।

अक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{लंज्या.अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या, ततः $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या

$\therefore$ $\frac{\text{लंज्या.अग्रा.त्रि}}{\text{त्रि.जिज्या}}$ = रविभुज्या । परं अग्रा = $\frac{\text{छाकवृअग्रा.त्रि}}{\text{छाक}}$

अतो रविभुजज्यास्वरूपेऽग्राया उत्थापनेन

$\frac{\text{लंज्या.छाकवृअग्रा.त्रि.त्रि}}{\text{त्रि.जिज्या.छाक}} = \frac{\text{लंज्या.छाकवृअग्रा.त्रि}}{\text{जिज्या.छाक}}$ = रविभुज्या ।

एतावताऽऽचार्योक्तमुपपन्नम् ।

सूर्यसिद्धान्तेऽपि 'इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या' इत्यादिनैवमानयनं रविभुजज्याया इति ।।४।।

हि. भा.—वा छायाकर्णवृत्तीय अग्रा, त्रिज्या और लम्बज्या के घात में छायाकर्ण और परम क्रान्तिज्या (जिनज्या) के घात से भाग देने से रविभुजज्या होती है ।।४।।

उपपत्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{लंज्या.अग्रा}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या, $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या

रविभुजज्या के स्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से

$\frac{\text{लंज्या.अग्रा.त्रि}}{\text{त्रि.जिज्या}} = \frac{\text{लंज्या.अग्रा}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुज्या ।

परन्तु अग्रा = $\frac{\text{छकवृत्तीयाग्रा.त्रि}}{\text{छाकर्ण}}$

इसलिये रवि भुजज्या के स्वरूप में क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से

$\frac{\text{लंज्या.छायाकर्ण वृत्तीयाग्रा.त्रि}}{\text{जिज्या.छाकर्ण}}$ = रविभुजज्या ।

इससे आचार्योक्त उपपन्न हुआ ।

सूर्यसिद्धान्त में भी "इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या" इत्यादि से इसी तरह रविभुजज्या का आनयन है ॥ ४ ॥

पुना रविभुजज्यानयनमाह ।

त्रिज्याऽग्रानूहतिर्वा धृतिजिनलवगुणवधोद्धृता दोर्ज्या ।
सवितुस्तच्चापं चायं प्रथमपदे भास्करस्तदेव किल ॥५॥
भार्धाच्च्युतंद्वितीये सभार्धमपरे ततश्च्युतं चान्त्ये ।
एवमपरैः प्रकारैः कुर्याद्दिनमणिसाधनं गणकः ॥६॥

वि भा—वा त्रिज्याऽग्रानूहतिः (त्रिज्याऽग्राशंकुघातः) धृतिजिनलवगुणवधोद्धृता (हृतिजिनज्याघातभक्ता) तदा सवितुः (सूर्यस्य) दोर्ज्या (भुजज्या) भवति । तच्चापं रविभुजांशा भवन्ति । अयं समागतो भास्करः (सूर्यः) प्रथमपदे (मेषादिराशित्रये) भवति । तदेव चापं भार्धाच्च्युतं (राशिषट्केभ्यः शोधितं) तदा द्वितीये पदे (कर्क्यादिराशित्रये) रविर्भवेत् । तदेव सभार्धं (राशिषट्कसहितं) तदाऽपरे तृतीये पदे रविर्भवेत् । तदेव भगणतश्च्युतं तदाऽन्त्ये पदे (चतुर्थे पदे) रविर्भवेच्छेषं स्पष्टमिति ॥५-६॥

अत्रोपपत्तिः ।

$\frac{\text{शं} \times \text{अग्रा}}{\text{हृ}}$ = क्रांज्या । ततः $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या, अत्र क्रांतिज्याया उत्थापनेन $\frac{\text{त्रि. शं.अग्रा}}{\text{हृ. जिज्या}}$ = रविभुजज्या, अस्याश्चापं रविभुजांशा भवन्ति शेषं स्पष्टमिति ॥५-६॥

इति वटेश्वरसिद्धांते त्रिप्रश्नाधिकारे छायातोऽर्कानयनविधिस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥

हि. भा—वा त्रिज्या, अग्रा, और शंकु के घात में हृति और जिनज्या के घात से भाग देने से रवि की भुजज्या होती है, उसके चाप रवि भुजांश होते हैं, यह रवि प्रथम पद में होते हैं, चाप को छः राशि (१८०°) में घटाने से द्वितीय पद में होते हैं, उस चाप में छः राशि जोड़ने से तृतीय पद में रवि होते हैं। और भगण (१२ राशि) में घटाने से चतुर्थ पद में रवि होते हैं ॥ ५-६ ॥

उपपत्ति

$\frac{\text{शं.अग्रा}}{\text{हृ}}$ = क्रांज्या । परन्तु $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या, यहां क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से $\frac{\text{शं.अग्रा.त्रि}}{\text{हृ.जिज्या}}$ = रविभुजज्या, इसके चाह करने से रवि भुजांश होते है। शेष बातें स्पष्ट ही हैं ॥ ५-६ ॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में छाया से रवि के आनयनविधि नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥



चतुर्दशोऽध्यायः

अथ छायापरिलेखविधिः

तत्रादौ भाभ्रमरेखानिरूपणं शंकुभ्रमरेखानिरूपणं चाह ।

सलिलसमायामवौ स्वेष्टाभाकर्कटेन वृत्तमालेख्यम् ।
दिङ्मध्यतो भवेत्तच्छायावृत्तं दिनार्धभां केन्द्रात् ॥ १ ॥
तद्व्यत्ययभुजाभ्यां सौम्यच्छायाग्रबिन्दुना मत्स्यौ ।
तद्याम्यसौम्यगोले मुखपुच्छावगाहि सूत्रयुगम् ॥ २ ॥
बद्ध्वा तत्सम्पाते कर्कटकं हि निधा यवक्त्रेण ।
बिन्दुत्रयावगाहि छायावृत्ते भ्रमति छायाग्रम् ॥ ३ ॥
शेषैर्बिन्दुभिरेवं शङ्कुभ्रमवृत्तमालेख्यम् ।
गोले सौम्येऽपि यदा याम्यो बाहुस्तदोत्तरभुजाभ्याम् ॥ ४ ॥
सौम्यालयाववृत्तं छायायाः शेषबिन्दुभिः शङ्कोः ।
याम्या चेद् द्युदलाभोदगग्रविपरीतदिग्भागैः ॥ ५ ॥
छायावृत्तं शेषैः शङ्कोर्भ्रमण्डलं विलिखेत् ।
दक्षिणगोले सौम्या छायोग्रोत्तरभुजाग्रकैर्वृत्तम् ॥ ६ ॥
छायाभ्रमोऽवशेषैर्भ्रमवृत्तं परिलिखेच्छङ्कोः ॥

हि. भा.—जलसमीकृतभूमाविष्टकालिकद्वादशाङ्गुलशंकुच्छायाङ्गुलतुल्येन कर्कटकेन दिङ्मध्यतो वृत्तं लेख्यं तच्छायावृत्तं कथ्यते केन्द्रात् (दिङ्मध्यबिन्दुतः) दिनार्धभां (मध्यच्छायां) स्थापयेदित्यध्याहारः कार्यः। तत्रच्छायावृत्ते विपरीतदिक् स्थापिताभ्यां भुजाभ्यां सौम्यच्छायाग्रबिन्दुना मत्स्यावुत्पाद्यौ, याम्यसौम्यगोले (दक्षिणोत्तरगोले) मुखपुच्छावगाहि सूत्रयुगम् (मुखपुच्छगतं सूत्रद्वयं) बद्ध्वा तत्सम्पाते (तद्योगबिन्दौ) कर्कटकं वक्त्रेण निधाय (कर्कटास्वग्रं) संस्थाप्य बिन्दुत्रयाऽवगाहि (बिन्दुत्रयगतं) वृत्तं लिखेत् । तस्मिन् छायावृत्ते छायाग्रं भ्रमति । अत्रैतदुक्तं भवति, दिङ् मध्यबिन्दुकेन्द्राच्छायाङ्गुलतुल्येन कर्कटकेन लिखिते छायावृत्ते विपरीतदिक्संस्थानक्रमेण भुजौ संस्थाप्यौ, मध्यकेन्द्रादेव दक्षिणोत्तरगतां मध्यच्छायां स्थापयेत् । तथा सति तत्र वृत्ते (छायावृत्ते) पूर्वसंस्थापितविपरीतदिक्क्रयोर्भुजयोरग्रद्वयं तथा याम्योत्तरसूत्रे मध्यच्छायाग्रमिति त्रयो बिन्दवो जातास्तेभ्यो बिन्दुभ्यो यद्वृत्तत्रयं तद्यो-

गेनात्र मत्स्यद्वयं भवति, मत्स्यद्वयमुखपुच्छगतयो रेखयोर्यत्र योगस्तस्माच्छायाग्र-पर्यन्तं यद्रेखाप्रमाणं, तद्वृत्तमुत्पद्यते तदेव भाभ्रमवृत्तं तस्मिन्नेव वृत्ते तद्दिने सदा छायाग्रं भ्रमतीति ।

एवं शेषैर्बिन्दुभिः शंकुभ्रमवृत्तमालेख्यम् । अत्रैतदुक्तं भवति छायाभ्रमणरे-खानिरूपणार्थं यादृग्रूपेण भुजद्वययोर्मध्यच्छायायाश्च संस्थापनं ततो विपरीतदिक्-संस्थापनात्पूर्वरीत्यैव शंकुभ्रमवृत्तं भवत्यर्थाद्भुजाङ्गुलानि स्वदिशि प्रसार्य छायावृत्तपरिधौ संन्यस्य तत्र यद्बिन्दुद्वयं तथा मध्यभुजाङ्गुलानि दिङ्मध्यबिन्दुतोद-क्षिणोत्तररेखायां स्वदिशि प्रसार्य तदग्रे यो बिन्दुरेतद्बिन्दुत्रयगतं यद्वृत्तं सैव शंकुभ्रमरेखा स्यादिति ॥१-६॥

अत्रोपपत्तिः

छायात्रयाग्रबिन्दुषु गतं वृत्तं छायाभ्रमवृत्तम् (भाभ्रमरेखा) इति प्राचीनानां मतम् । बिन्दुत्रयोपरिगतवृतस्य केन्द्रज्ञानार्थं मध्यद्वयमुत्पाद्य मत्स्यद्वयान्तरसूत्रयु-तिः कृता । रेखार्धबिन्दुतस्तदुपरि लम्बकरणार्थं मत्स्योत्पादनं कृतम् । साम्प्रतं रेखार्धबिन्दुतस्तदुपरिलम्बकरणं च सुगममेव । छायात्रयाग्रबिन्दुषु परस्परकृताभी रेखाभिरेकं त्रिभुजमुत्पद्यते रेखागणितचतुर्थाध्यायचतुर्थक्षेत्रबलेन तदुपरिगतं वृत्तं कार्यं तदेव प्राचीनोक्तच्छायाभ्रमणमार्गस्वरूपम् वस्तुतश्छायाभ्रमणं वृत्ते सदा न भवति, भास्कराचार्येण प्राचीनोक्तच्छायाभ्रमणवृत्तस्य खण्डनं "भात्रितयाद् भाभ्र-मणं न स" दित्यादिना कृतं खण्डनं समीचीनमेवेति दिक् ॥१-६॥

हि. भा.—जल समीकृत भूमि में दिङ्मध्य को केन्द्र मानकर इष्टकालिक द्वादशाङ्गुलशङ्कुच्छायाङ्गुल तुल्य कर्कट से जो वृत्त होता है वह छायावृत्त है केन्द्र (दिङ्मध्यबिन्दु) से मध्यच्छाया स्थापन करना उस च्छायावृत्त में विपरीत दिशा में स्थापित भुजद्वय पर से तथा उत्तर च्छायाग्रबिन्दु से दो मत्स्य (मछली के आकार) बनाना, दक्षिणगोल और उत्तर-गोल में मुख और पुच्छ में गतसूत्रद्वय को बांध कर उन दोनों के योगबिन्दु में कर्कट के अग्र को रखकर तीनों बिन्दुओं में गतवृत्त बनाना चाहिये । यहां यह कहा गया है कि दिङ्मध्य बिन्दु केन्द्र से छायाङ्गुल तुल्य कर्कट से लिखित वृत्त में (छायावृत्त में) विपरीत अवस्थान क्रम से दोनों भुजों को स्थापन करना तथा मध्यकेन्द्र से दक्षिणोत्तर रेखा में मध्यछाया को स्थापन करना । इस तरह करने से छायावृत्त में पूर्व संस्थापित विपरीत दिशा के भुजद्वय के अग्रबिन्दुद्वय तथा मध्यछायाबिन्दु ये तीन बिन्दु हैं । इन तीनों बिन्दुओं से जो दो मत्स्य बनते हैं उनमें मुख और पुच्छगत रेखाद्वय का जहां योग होता है वहां से छायाग्रपर्यन्त जो रेखा है उस व्यासार्ध से जो वृत्त बनता है वही भाभ्रमवृत्त होता है । उस वृत्त में उस दिन सदा छाया भ्रमण करती है ॥

इस तरह शेष बिन्दुओं से शङ्कुभ्रमवृत्त लिखना चाहिए । छायाभ्रमरेखा निरूपण के लिए जिस तरह भुजद्वय का तथा मध्यच्छाया का स्थापन किया गया है उससे विपरीत दिशा में संस्थापन से पूर्वरीति के अनुसार ही शंकुभ्रमवृत्त होता है अर्थात् भुजाङ्गुल को अपनी दिशा में फैला कर छायावृत्त परिधि में स्थापन कर वहां जो दो बिन्दु होते हैं और

दिङ्मध्य बिन्दु से मध्यभुजाङ्गुल को दक्षिणोत्तर रेखा में अपनी दिशा में फैला कर उसके अग्र में जो विन्दु होता है। इन तीनों बिन्दुओं में गये हुए वृत्त को शंकुभ्रमवृत्त कहते हैं ॥१-६।

उपपत्ति ।

तीन छायाग्रों के अग्रबिन्दु में गये हुए वृत्त को छायाभ्रमवृत्त (भाभ्रमरेखा) प्राचीनाचार्य कहते हैं। तीन बिन्दुओं के ऊपर गये हुए वृत्त के केन्द्रज्ञान के लिए दो मत्स्य (मछलियां) बना कर दोनों मत्स्यों के अन्तर सूत्र की युति की। रेखार्ध बिन्दु से उसके (रेखा के) ऊपर लम्ब करने के लिए मत्स्योत्पादन किये। इस समय में रेखार्ध विन्दु से उसके ऊपर लम्ब करना सरल ही है। तीनों छायाग्रों के अग्रबिन्दुओं में परस्पर रेखा करने से एक त्रिभुज बनता है रेखागणित चतुर्थाध्याय के चतुर्थ क्षेत्र के बल से उसके ऊपर वृत्त करना वही प्राचीनोक्त छायाभ्रमण मार्ग होता है। वस्तुतः छायाभ्रमण के आकार बराबर वृत्ताकार नहीं होता है प्राचीनोक्त छायाभ्रमण निरूपण का खण्डन भास्कर ने किया है, वह युक्तियुक्त है ॥१-६॥

इदानीं भाभ्रमवशेन दिग्ज्ञानमाह ।

भाभ्रममण्डलपरिधिनाऽत्र ज्ञेया दिशां लेखाः ॥७॥
तच्छंक्वन्तरमाभाः प्राच्यपरेऽर्के समवलयगे वा ।
कोणगते कोणाभाः याम्योत्तरवृत्तगादिना वा या ॥८॥

वि. भा.—अत्र भाभ्रममण्डलपरिधिना (छायाभ्रमणवृत्तपरिधिसम्बन्धेन दिशालेखाः (पूर्वापरादिदिशां गणनाः) ज्ञेयाः। तच्छक्वन्तरं (तत्तस्य छायाभ्रमणवृत्तस्य शकोः शंकुमूलस्य यदन्तरं) आभाः (दिनमध्यच्छायाः) भवन्त्यत्र शंकुशब्देन तन्मूलं गृह्यते। प्राच्यपरेऽर्के समवलयगे इत्यादिना तत्तत्स्थानभेदेन तत्तन्नाम्नी छाया भवतीति ॥७-८॥

अत्रोपपत्तिः

जलसमीकृतभूमाविष्टशंकुं स्थापयेत् ततो यस्मिन् कपाले सूर्यो भवेत्ततो भिन्ने कपाले छायाग्रयं गृहीत्वा प्रथमच्छायाग्रविन्दुं केन्द्रं मत्वेष्टेन कर्कटकेन वृत्तं विलेख्यं तेनैव कर्कटकेन द्वितीयच्छायाग्रविन्दुकेन्द्रतो वृत्तं लेख्यम् । एवमेव तृतीयच्छायाग्रबिन्दुकेन्द्रवशेनापि वृत्तं भवेत्। एतेषां त्रयाणां वृत्तानां मध्ये प्रथमद्वितीयतृतीयवृत्तयोः सम्पातद्वयेन च मत्स्यद्वयमुत्पद्यते तयोर्मत्स्ययोर्यद्दिश्यन्तरं महत्स्यात्ते मुखे यद्दिश्यन्तरमल्पं ते पुच्छे, तन्मुखगतौ सूक्ष्मकीलकौ संस्थाप्य तयोः सूत्रे बद्ध्वा पुच्छगते निःसार्य तयोः सूत्रयोर्मुखपुच्छानुसारेण यत्र योगः सा दक्षिणदिग्भवति यदि रविः शंकुमूलादुत्तरस्यां दिश्यर्थादुत्तरगोले भवेत्। दक्षिणगोलस्थे रवौ तन्मध्यसूत्रयोर्योगः शंकुमूलत आरभ्योत्तरदिग्भवति। उत्तरगोले छायाया दक्षिणाभिमुखत्वाद्दक्षिणगोले च छायाया उत्तराभिमुखत्वाच्च। ततो मध्यविन्दुत सूत्रयोगबिन्दुगतसूत्रं वर्धयेत्सैव दक्षिणोत्तरा दिग्भवति । एवमेव दक्षिणोत्तर-

सूत्राग्रबिन्दुभ्यां शंकुमूलविन्दुना च वृत्तत्रयं पूर्ववत्कृत्वा तेभ्यो मत्स्यद्वयमुत्पाद्य पूर्ववन्मुखपुच्छगता रेखा पूर्वापरा भवेदिति । भिन्नकपालजेष्वपि बिन्दुत्रयेषु पूर्ववदेव वृत्तत्रयं लिखेत्—पूर्ववदेवावशेषं बोध्यम् ।। एवं भाभ्रमवृत्तसम्बन्धेन दिग्ज्ञानं भवति । शंकुमूलस्यच्छायाभ्रमणवृत्तस्य च यद्दक्षिणोत्तरमन्तरं तन्मध्यान्हकालिकच्छायाभ्रमणं भवतीति ।।७-८।।

हि. भा.—छायाभ्रमण वृत्त के सम्बन्ध से दिशाओं का ज्ञान समझना चाहिए। छायाभ्रमण वृत्त और शंकुमूल का अन्तरच्छाया प्रमाण होता है ।।७-८।।

उपपत्ति

जल से समान की हुई पृथ्वी में इष्टशंकु को स्थापन करना। जिस कपाल में सूर्य हैं उससे भिन्न कपाल में तीन छायाओं के अग्र बिन्दु ग्रहणकर प्रथमच्छायाग्र बिन्दु को केन्द्र मान कर इष्टव्यासार्ध से वृत्त बनाना। इसी तरह द्वितीयच्छायाग्र बिन्दु और तृतीयच्छायाग्र बिन्दु को केन्द्र मानकर उसी व्यासार्ध से वृत्तद्वय बनाना। तब प्रथम और द्वितीय वृत्त के जो सम्पातद्वय हैं तथा द्वितीय और तृतीय वृत्त के जो सम्पातद्वय (दो सम्पातबिन्दु) हैं इन से दो मत्स्य (मछली का आकार) बनता है उन दोनों मत्स्यों के जिस दिशा में अन्तर बड़ा है वे दोनों मुख और जिस दिशा में अन्तर छोटा है वे दोनों पुच्छ, उन दोनों मुखों में दो कील रख कर उन दोनों में सूत्र बाँध कर पुच्छगत रेखा को बढ़ा देना चाहिए उन दोनों सूत्रों का जहां पर सम्पात होता है वह दक्षिण दिशा है यदि शंकुमूल से रवि उत्तर गोल में हो तब यदि रविदक्षिणगोल में है तब उन दोनों सूत्रों के योग शंकु मूल से लेकर उत्तर दिशा होती है। मध्यबिन्दु और सूत्रद्वययोग बिन्दु गत रेखा को बढ़ाने से दक्षिणोत्तर रेखा होती है। इसी तरह दक्षिणोत्तर सूत्र के अग्रविन्दुद्वय से जो दो वृत्त होंगे तथा शंकुमूल बिन्दु को केन्द्र मानकर जो वृत्त होगा इन तीनों वृत्तों से पूर्ववत् मत्स्यद्वय बनाकर उसके मुख और पुच्छगतसूत्र पूर्वापर रेखा होती है। यदि छायात्रयाग्र बिन्दु भिन्न भिन्न कपाल में हो तथापि पूर्ववत् ही सब बातें समझनी चाहिए। कुछ भी विशेषता नहीं होती है। इस तरह भाभ्रम वृत्त के द्वारा दिशाओं का ज्ञान होता है। शंकुमूल और छाया भ्रमण वृत्तपरिधि का अन्तर जो है वह मध्यच्छाया होती है ।।७-८।।

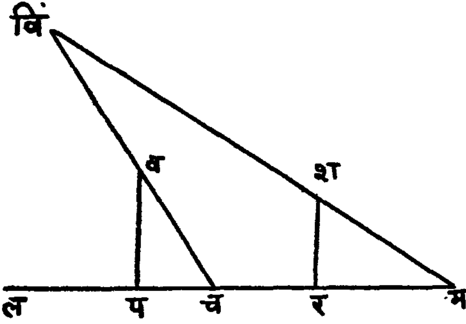
इदानीं गृहपटलाभ्यन्तरे सूर्यावलोकनविधिमाह ।

गृहमध्यगपरिलेखात्कर्णस्थित्या विधाय गृहपटलम् ।
दिग्योगस्थितदृष्टया पश्यति सूर्यग्रहं त्विष्टम् ।।९।।
तैलेऽथ दर्पे वा जलेऽथवा शङ्कुमार्गविन्यस्ते ।
शंक्वग्रस्थितदृष्टया दिनमपि पश्येद्भ्रमन्वमादित्यम् ।।१०।।
केन्द्रगप्रभाग्रदृशा विलोकयेच्छङ्कुमार्गगं ह्यपरम् ।
भाशङ्कुच्छिद्रैर्वा पश्यति तद्विद्धमिव सूर्यम् ।।११।।

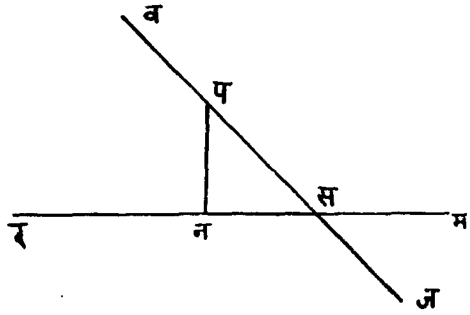
वि. भा—दिग्योगस्थित (दिक्सूत्राणां योगविन्दुस्थदृष्टया) शेषं स्पष्टम् ।।९-११।।

अत्रोपपत्तिः ।

एकस्मिन्नेव समये दृक्सूत्रे यत्र तत्र स्थापितशङ्कोश्छायाः सर्वत्र तुल्या भवन्ति, कथमिति प्रदर्श्यते । लम = दृक्सूत्रम्, विं = ग्रहबिंबकेन्द्रम् । पव = रश = शंकुः, पच = छा, रम = छा । वच = छायाकर्ण, शम = छायाकर्ण, अथ ग्रहबिम्बस्यातिदूरे स्थितत्वाद्यदि स्वल्पान्तरतो विंच, विंम रेखे समानान्तरे तदा <म = <च, <प = <र = ९०, तथा पव = रश = शंकुः, अतः पवच, रशम त्रिभुज समाने (रे. १अ २६ क्षे युक्त्या) ते पच = रम = छा = छा, ∴ पूर्वोक्तं सिद्धम् ।



अथ रम = पूर्वापर रेखा, स = दिक्सूत्रसम्पातबिन्दुः, स बिन्दुस्थ शंकुच्छाया = सज यदि पूर्वयुक्तितः सज = सप = पव, तदा प बिन्दुगतशंकोश्छायाग्रं स बिन्दौ भवेदतस्तच्छङ्क्वग्रात् स बिन्दुगता रेखा ग्रहबिम्वकेन्द्रगता भवितुमर्हति, तेन शंकुग्रस्थदृष्टया ग्रहदर्शनं भवेदेव, व बिन्दौ शंकौ स्थापिते छायाग्र प बिन्दुगतं भवेत्तेन तत्रस्थे जले, तैले दर्पणे वा ग्रहप्रतिबिम्बं भवति, परावर्त्तितकिरणसूत्रं सबिन्दौ पूर्वशंकुतुल्यस्थापितशंक्वग्रगतं भवति (पतितपरावर्तितकोणयोः समत्वात्) तेन प बिन्दुतः स विन्दुस्थापितशंक्वग्रगतरेखामार्गेण शक्वग्रस्थाऽधोदृष्टथा प बिन्दुगतजलादौ ग्रहदर्शनं भवेदेवेति ।



भास्करादिभिराचार्यैर्नलकयन्त्रद्वारा ग्रहावलोकनप्रकारोऽभिहितो यथा भास्करस्य सिद्धान्तशिरोमणौ—

विधाय बिन्दुं समभूमिभागे ज्ञात्वा दिशः कोटिरतः प्रदेया ।
प्रत्यङ्मुखी पूर्वकपालसंस्थे पूर्वामुखी पश्चिमगे ग्रहे सा ।।
कोट्यग्रतो दोरपि याम्यसौम्यौ बिन्दोश्च भाभाग्रभुजाग्रयोगात् ।
सूत्रं च बिन्दुस्थनराग्रसक्तं प्रसार्य कर्णाकृतिसूत्रगत्या ।।
दृगुच्चमूलं नलकं निवेश्य वंशद्वयाधारमथास्यरन्ध्रे ।
विलोकयेत्खे खचरं किलैवं जले विलोमं तदपि प्रवेक्ष्ये ।।

एतादृश एव प्रकारो लल्लाचार्यस्य श्रीपतेश्चापि—

यद्यपि वटेश्वराचार्येण नलकयन्त्रस्य चर्चा न क्रियते किन्तु भङ्ग्यन्तरेण शंकुद्वारैव भास्करादिवत्सर्वं कथ्यत इति ॥९-१०॥

हि. भा.—दिक्सूत्रों का योगबिन्दुस्थितदृष्टिवश कार्य करना। शेष बातें स्पष्ट है ॥९-११ ॥

उपपत्ति।

एक ही समय में दृक्सूत्र में कहीं पर शंकु स्थापन करने से उसकी छाया सब जगह बराबर होती है, इसको सिद्ध करने के लिये युक्ति दिखलाते हैं, संस्कृत उपपत्ति में जो क्षेत्र है उसको देखिये।

लम = दृक्सूत्र, वि = ग्रहबिम्ब केन्द्र, पव = रश = शंकु। पच = छाया = छा, रम = छाया$_1$ = छा$_1$ वच = छायाकर्ण, शम = छायाकर्ण$_1$, ग्रहबिम्ब के अतिदूर रहने के कारण यदि स्वल्पान्तर से विच और बिम रेखा को समानान्तर मान लें तो रेखागणित से $<$म = $<$च, $<$प = $<$९० = र तथा पव = रश = शंकु इसलिए पवच और रशम ये दोनों त्रिभुज बराबर हुए तब पच = रम = छा = छा$_1$ इससे पूर्वोक्त सिद्ध हुआ,

अब मान लीजिये रम = पूर्वापर रेखा, स = दिक्सूत्र सम्पात बिंन्दु स्थित शंकुच्छाया = सज यदि पूर्व युक्ति से सज = सप = पव तब प बिन्दुगत शंकु के छायाग्र स बिन्दु में होता है इसलिए उस शंक्वग्र से स बिन्दुगत रेखा ग्रह बिम्ब केन्द्रगत होती है अतः शंक्वग्र-स्थित दृष्टि से ग्रह दर्शन होगा ही, व बिन्दु में शंकु स्थापन करने से छायाग्र प बिन्दुगत होता है इसलिए वहां जल, वा तेल या दर्पण देखने से उनमें ग्रहबिम्ब प्रतिबिम्बित होता है, और परावर्त्तित किरण सूत्र स विन्दु में पूर्वशंकु के बराबर स्थापित शंकु के अग्रगत होता है (पतित कोण और परावर्तित कोण के तुल्य होने के कारण) इसलिए प बिन्दु में स्थापित शंकु के अग्रगत रेखा मार्ग द्वारा शंकु के अग्र में स्थित अधोदृष्टि से प विन्दुगत जलादि में ग्रहबिम्ब दर्शन होता ही है ॥

भास्कर आदि आचार्यों ने नलक यन्त्र द्वारा ग्रह देखने के लिये प्रकार कहा है।

सिद्धान्तशिरोमणि में भास्कराचार्य का मत है—

"विधाय बिन्दुं समभूमिभागे ज्ञात्वा दिशः कोटिरतः प्रदेया।" इत्यादि

इसी तरह लल्लाचार्य और श्रीपति के भी कथन हैं। यद्यपि वटेश्वराचार्य नलक यन्त्रकी चर्चा नहीं करते हैं किन्तु दूसरी तरह शंकु ही के द्वारा भास्करादि आचार्य की तरह सब कुछ कहते हैं ॥९-११॥

इदानीमिष्टच्छायावृत्ते पलभासंस्थितिमाह।

दद्याद्भुजवदिनाग्रां तदग्रयोस्तूदयास्तमनसूत्रम्।
छायावृत्ते तन्नरान्तरमक्षच्छायाकुलानि स्युः ॥१२॥

वि. भा.—भुजवत् इनाग्रां (सूर्याग्रां) छायावृत्ते दद्यात्। अर्थाच्छायावृत्तीयं यदुदयास्तसूत्रं (सूर्याग्रया यदि तदीयमुदयास्तसूत्रं तदा छायाऽग्रया किमित्यनुपातेन

समागतं) तदुभयदिशि (पूर्वदिशि पश्चिमदिशि च) छायावृत्ते छायावृत्तीयाग्रांश-दानेन यौ बिन्दू तन्मध्यगतसूत्रमेत्र छायावृत्ते उदयास्तसूत्रम् । अस्योदयास्तसूत्रस्य शंकुमूलस्य च यदन्तरं सैव पलभा भवति छायावृत्ते, तत्र शंकुतलपलभयोस्तु-ल्यत्वात् ॥१२॥

अत्रोपपत्तिः ।

क्ष्माजे द्युरात्रसममण्डलमध्यभागजीवाऽग्रका भवति पूर्वपराशयोः सा ।
अग्राग्रयोः प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं यत्तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम् ॥

इति भास्करोक्तोदयास्तस्वरूपं सूर्याग्रया साधितप्रसिद्धमेव, शंकुमूलात्ता-दुदयास्तसूत्रोपरिकृतो लम्बः शंकुतलम् । एतच्छंकुतलं छायावृत्ते परिणामितं पलभातुल्यमेव भवति ।

छायावृत्ते परिणतं शंकुतलं पलभातुल्यं कथं भवति तत्प्रदर्श्यते ।

अक्षाक्षक्षेत्रानुपातेन $\frac{\text{पलभा. शंकु}}{१२}$ = शंकुतलम्, इदं छायाकर्णवृत्ते परि-णाम्यते तदा $\frac{\text{पलभा. शंकु. छाकर्ण}}{१२\times\text{त्रि}}$ = छायावृत्ते शंकुतलम् । परन्तु $\frac{१२.\ \text{त्रि}}{\text{छायाक}}$ = शंकु अतोऽत्र स्वरूपे शंकोरुत्थापनेन $\frac{\text{पलभा. १२. त्रि. छाक}}{\text{१२. त्रि. छाक}}$ = पलभा = छाया-कर्णगोलीयशंकुतलम् । अतः सिद्धम् ॥१२॥

हि. भा.—भुज की तरह सूर्य की अग्रा को देना चाहिए अर्थात् सूर्य को अग्रा में यदि उदयास्त सूत्र पाते हैं तो छायाग्रा में क्या इस अनुपात से छायावृत्तीय उदयास्त सूत्र आता है । यही उदयास्त सूत्र "छायावृत्त में पूर्व तरफ और पश्चिम तरफ छायावृत्तीयाग्रा दान देकर तदग्रगत रेखा करने से होता है इस उदयास्त सूत्र और शङ्कुमूल का अन्तर जो है वही पलभा होती है क्योंकि छायावृत्त में परिणत शंकुतल और पलभा बराबर होती है ॥१२॥

उपपत्ति ।

क्ष्माजे द्युरात्र सममण्डलमध्यभागजीवाऽग्रका भवति पूर्वपराशयोः सा ।
अग्राग्रयोः प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं यत्तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम् ॥

यह सूर्याग्रा से साधित भास्कर कथित उदयास्त सूत्र प्रसिद्ध ही है । शङ्कुमूल से उदयास्त सूत्र के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह शङ्कुतल है । इस शङ्कुतल को छायावृत्त में परिणामन करने से पलभा के बरादर होता है ।

छायावृत्त में परिणतशङ्कुतल पलभा के बरा क्यों होता है तदर्थ युक्ति ।

अक्षक्षेत्र के अनुपात से $\frac{\text{पभा. शङ्कु}}{१२}$ = शङ्कुतल । इसको छायाकर्णवृत्त में परिणत करते हैं $\frac{\text{पभा. शङ्कु. छाक}}{\text{१२. त्रि}}$ = छायावृत्त में शंकुतल । परन्तु $\frac{\text{१२. त्रि}}{\text{छाकर्ण}}$ = शंकु अतः शंकु को उत्थापन देने से $\frac{\text{पभा. १२. त्रि. छाक}}{\text{१२. त्रि. छाक}}$ = पभा = छायाकर्णगोलीय शंकुतल अतः सिद्ध हो गया ॥१२॥

इदानीं छायापरिलेखमाह ।

तच्छङ्कुमस्तकान्तरमक्षश्रवणोऽक्षभां न्यसेत्केन्द्रम् ।
याम्योत्तराऽक्षे केन्द्रं तस्माद्वृत्तं लिखेद्विमलम् ॥१३॥
सिद्धांशं घटिकाङ्कं खटिका लेखाश्च केन्द्रगाः कार्याः ।
तद्वशतो भाभ्रमणं तद्वद्वा भ्रमणमविरतम् ॥१४॥
यस्माद्विमले वृत्ते शंकुच्छाया भ्रमौ स्फुटौ भवतः ।
तात्कालिकाच्च सूर्यात्क्रान्त्याद्यं साधितं स्पष्टम् ॥१५॥
स्पष्टगतिर्द्युचराणां ग्रहोच्चपातैर्विना न सम्यगतः ।
कार्यावसितास्तेषां स्वायुषि भगणाः कृता धात्रा ॥१६॥

वि. भा.—तच्छङ्कुमस्तकान्तरं (पलभाग्रशंक्वोरन्तरं) अक्षश्रवणः (पलकर्णः) अक्षभां न्यसेत् (पलभां स्थापयेत्) तदा केन्द्रं (छायावृत्तकेन्द्रं) स्यादर्थाच्छायावृत्तीयपलभास्थापनवशेन छायावृत्तकेन्द्रज्ञानं भवेत् । केन्द्रं याम्योत्तराक्षे (दक्षिणोत्तररेखायां) भवति, तस्मात् (केन्द्रबिन्दुतः) विमलं वृत्तं (छायावृत्तं) लिखेच्छेषं स्पष्टमिति ॥१३-१६॥

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे छायापरिलेखविधिश्चतुर्दशोध्यायः ।

हि. भा.—पलभाग्र और शंक्वग्र का अन्तर पलकर्ण होता है । पलभा को स्थापन करना तब केन्द्र (छायावृत्तके केन्द्र) का ज्ञान होता है अर्थात् पलभा स्थापन वश मे छायावृत्त केन्द्रज्ञान होता है, वह केन्द्र दक्षिणोत्तर रेखा में होता है, उस केन्द्रविन्दु से छायावृत्त लिखना चाहिये, आगे की बातें स्पष्ट हैं ॥१३-१६॥

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में छायापरिलेखविधि नामक चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

पञ्चदशोऽध्याय

अथ प्रश्नाध्यायविधिः

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह ।

त्रिप्रश्ने प्रश्नसंख्यां कथमपि गणकैः शक्यते नावगन्तुम्,
मानाढ्यज्याविधीनामत इह लघुकं स्पष्टशब्दार्थमूचे ।
प्रश्नाध्यायं विधास्ये नृपसदसि समाकर्ण्य यद्गोलवाह्या,
ग्लानिं संयान्त्यबोधादतिमलयतरोर्दोलनेन प्रपत्रम् ॥१॥

वि. भा.—गणकैः (ज्योतिर्विद्भिः) कथमपि (केनाप्युपायेन) त्रिप्रश्ने (त्रयाणां दिग्देशकालानां प्रश्ना यत्र तस्मिन्नधिकारे त्रिप्रश्नाधिकारे इत्यर्थः) प्रश्नसंख्यां (तत्सम्बन्धिप्रश्नगणनां) अवगन्तुं (ज्ञातुं) न शक्यते (न पार्यते) अतः (अस्मात्कारणात्) इह (त्रिप्रश्नाधिकारे) मानाढ्यज्याविधीनां (मानयुक्तज्यारीतीनामर्थाज्ज्यात्मकपदार्थमानज्ञानार्थं रीतीनां) लघुकं (गणितलाघवार्थं तन्नामकं) स्पष्टशब्दार्थं (स्पष्टः शब्दार्थो यस्य तं) ऊचे (कथितवान्) अर्थाद् यथा बहुत्र स्थले गणितलाघवार्थमाद्यान्यसंज्ञके रक्ष्येते तथैवात्राधिकारे कोणशंक्वादि साधनेषु लघुकं नाम रक्षितम्) । यत् (यस्मात्कारणात्) नृपसदसि (राजसभायां) गोलवाह्याः (गोलज्ञानशून्याः) प्रश्नाध्यायं (प्रश्नप्रकरणं) समाकर्ण्य (श्रुत्वा) ग्लानिं (लज्जां मनोदुःखं वा) संयान्ति (प्राप्नुवन्ति) अबोधात् (तत्प्रश्नज्ञानरहितात्), मतिमलयतरोर्दोलनेन प्रपत्रं (अतिशयमलयाचलस्थवृक्षदोलनेन यथा तत्पत्रं पतितं तथैव राजसभायां गोलज्ञानशून्यत्वात्प्रश्नश्रवणेन तत्पतनं भवतीत्यर्थः) अतः प्रश्नाध्यायं, विधास्ये (करवाणि) ॥१॥

हि. भा.—ज्योतिषी लोग किसी तरह भी त्रिप्रश्न (दिशा, देश और काल सम्बन्धी प्रश्न जिसमें उस त्रिप्रश्नाधिकार) में तत्सम्बन्धी प्रश्नों की गणना को समर्थ नहीं होते हैं इसलिए इस त्रिप्रश्नाधिकार में ज्यात्मक पदार्थ के मानज्ञानार्थ परिपाटी के लिए लघुक जिस का शब्दार्थ स्पष्ट है अर्थात् छोटा उसको कहा है अर्थात् जैसे बहुत स्थलों में गणित लाघव के लिए आद्य, अन्य आदि नाम रखते है वैसे ही इस अधिकार में कोणशंक्वादि साधनों में लघुक नाम रक्खा गया है, जिस कारण से आज सभा में गोलज्ञान रहित व्यक्ति अबोध के कारण प्रश्नाध्याय को सुन कर हास्यास्पद को पाते हैं, जैसे अतिशय मलय पर्वत के ऊपर वृक्षों के डोलने से पत्ते गिरते हैं उसी तरह राजसभा में वे लोग गिरते हैं । इसलिए प्रश्नाध्याय को करता हूं ॥१॥

तत्र प्रश्नानाह ।

भाप्रवेशनविधिं गमनाद्यो भात्रयेण ककुभः कथयेद्वा ।
एवमपक्रमपलैश्च विना यो भाभ्रमं प्रकथयेद् गणकः सः ॥२॥

वि. भा.—यो भागमनात् (छायानिर्गमनतः) भाप्रवेशनविधिम् (छायाप्रवेश-पद्धतिं) वा भात्रयेण (छायात्रितयेन) ककुभः कथयेत् (दिज्ज्ञानं कथयेत्) एवं अपक्रम पलैर्विना (क्रान्त्यक्षांशैर्विना) भाभ्रमं (छायाभ्रमणं) प्रकथयेत्सः गणकोऽस्तीति ॥२॥

अत्र प्रश्नत्रयं वर्त्तते । तत्र प्रथम प्रश्नोत्तरार्थं विचार्यते ।

समायां भूमाविष्टच्छायाकर्णव्यासार्धेन वृत्तं विलिख्य तद्वृत्तकेन्द्रे स्थापितस्य शंकोश्छायाग्रं पूर्वान्हे यत्र विशति स पश्चिमबिन्दुः । अपरान्हे च यत्र निर्गच्छति स पूर्वबिन्दुः । एतद्बिन्दुद्वयगता रेखा स्थूला पूर्वापरा रेखा वास्तव-पूर्वापररेखाया असमानान्तरा । यद्येकस्मिन् दिने रविक्रान्तिः स्थिरा कल्प्येत तदा छाया प्रवेशनिर्गमक्रान्त्योः समत्वात्तदग्रयोरपि समत्वं तेन निर्गमकालिकांशतुल्यं वास्तवपश्चिमबिन्दुतोऽग्रांशदानेन यो बिन्दुः स एव च्छायाप्रवेशबिन्दुरिति । परमैकस्मिन् दिने रविक्रान्तिः स्थिरा न तेन पूर्वोक्तरीत्या छायाप्रवेशबिन्दुज्ञानं सम्यक् न जातमतस्तद्वास्तवज्ञानार्थमुपायः—

छायाप्रवेशकालिकक्रान्तिः = क्रां } छायाप्रवेशकालिकाग्रा = अग्रा
छायानिर्गमकालिकक्रान्तिः = क्रां' } छायानिर्गतकालिकाग्रा = अ'ग्रा

अथाऽग्रान्तरमानीयते यथा

$$\text{अक्षक्षेत्रानुपातेन}\quad \frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}} = \text{अग्रा}\;।\; \frac{\text{त्रि.अग्रा}'}{\text{लंज्या}} = \text{अ}'\text{ग्रा}$$

छायाकर्णवृत्ते परिणाम्यते

$$\frac{\text{त्रि.क्रांज्या} \times \text{छाकर्ण}}{\text{लंज्या.त्रि}} = \text{छायकर्णवृत्ते प्रवेशकालिकाग्रा} = \frac{\text{क्रांज्या.छाक}}{\text{लंज्या}}$$

$$\text{तथा}\; \frac{\text{त्रि.क्रां}'\text{ज्या.छाकर्ण}}{\text{त्रि.लंज्या}} = \text{छायाकर्णवृत्ते निर्गमकालिकाग्रा} = \frac{\text{क्रां}'\text{ज्या.छाक}}{\text{लंज्या}}$$

एतयोरन्तरम्

$$\frac{\text{छाक}}{\text{लंज्या}}(\text{क्रां}^{1}\text{ज्या} \sim \text{क्रांज्या}) = \text{छायाकर्णवृत्तीयाग्रान्तर} = \text{छायाकर्णवृत्ते भुजा-}$$

न्तर एतावत्येवान्तरे प्रवेशबिन्दुं रव्यायनवशा संचालयेत् । यदि रविरुत्तरायणे तदोत्तरतो दक्षिणायने रवौ दक्षिणतश्चालयेत्तदा चालितपूर्वबिन्दुपश्चिमबिन्द्वोर्गता रेखा वास्तवपूर्वापररेखायाः समानान्तरा भवेत् । परमत्र निर्गमबिन्दु (पूर्वबिन्दु)-

वशेन प्रवेशबिन्दुज्ञानमपेक्षितमतः पूर्वोक्ताऽग्रान्तरस्य निर्गमच्छायाग्रबिन्दुतो दानेन प्रवेशबिन्दुज्ञानं भवेदेवेति ।

श्रीपतिभास्करप्रभृतिभिराचार्यैः पूर्वोक्तरीत्याऽग्रान्तरं भुजान्तरं वा संसाध्य तद्वशेन वास्तवपूर्वापररेखायाः समानान्तरं रेखाज्ञानं कृतं, पूर्वोक्तमग्रान्तरं भुजान्तरं वा रेखात्मकं तस्य वृत्तपरिधौ दानानौचित्यात्तद्रीत्या न वास्तवदिज्ज्ञानं भवति । दिङ्मीमांसायां म. म. श्रीसुधाकरद्विवेदिना पूर्वसाधितछायावृत्तीय भुजान्तरवशेन स्फुटं दिज्ज्ञानं कृतमिति ॥ २ ॥

द्वितीयतृतीयप्रश्नयोरुत्तरार्थम्

एतत्प्रश्नद्वयोत्तरार्थयुक्तिश्छायापरिलेखविधौ ७-८ श्लोकयोर्युक्त्यवलोकनेन स्पष्टेति ॥ २ ॥

हि. भा.—जो व्यक्ति छाया निर्गमन से छायाप्रवेशविधि को और तीन कालिक छाया से दिशाज्ञान को तथा क्रान्ति और अक्षांश के विना छायाभ्रमण को कहे वह ज्योतिषी है ॥ २ ॥

यहाँ तीन प्रश्न हैं । यहां प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिए विचार करते हैं ।

उपपत्ति ।

समान पृथ्वी में इष्टच्छाया कर्णव्यासार्ध से वृत्त लिखकर उसके केन्द्र में शंकु को स्थापन करने से उसकी छाया पूर्वान्ह में जहां प्रवेश करती है वह पश्चिम बिन्दु है । अपरान्ह में उसी शंकु की छाया जहां निर्गत होती है वह स्थूल पूर्व बिन्दु है । इन दोनों बिन्दुओं में लगी जो रेखा होती है वह स्थूल पूर्वापर रेखा है, जो कि वास्तव पूर्वापर रेखा की असमानान्तर है । यदि छायाप्रवेशकालिक अग्रा और निर्गमकालिक अग्रा बराबर रहती तब तो वह रेखा वास्तव पूर्वापररेखा की समानान्तर रेखा ही होती पर दोनों कालिक अग्रा तब ही बराबर हो सकती है जबकि एक दिन में रवि की क्रान्ति स्थिर मानी जाय पर यह मानना असङ्गत है । अतः वास्तविक पूर्वापर दिशा ज्ञान के लिये विचार करते हैं ।

यहां कल्पना करते हैं छायाप्रवेशकालिक क्रान्ति = क्रां, छायानिर्गमकालिकक्रान्ति = क्रां^{1} }
छायाप्रवेशकालिक अग्रा = अग्रा, छायानिर्गमकालिक अग्रा = अग्रा^{1}

अक्षक्षेत्रानुपात से $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = प्रवेशका.अग्रा । $\frac{\text{त्रि.क्रां}^1\text{ज्या}}{\text{लंज्या}}$ = निर्गमका.अ^{1}ग्रा

छायाकर्ण वृत्त में परिणामन करने से

$\frac{\text{त्रि.क्रांज्या.छाकर्ण}}{\text{लंज्या त्रि}} = \frac{\text{क्रांज्या.छाक}}{\text{लंज्या}}$ = छायाकर्ण वृत्तीयाग्रा

एवं $\frac{\text{क्रांज्या.छाक}}{\text{लज्या}}$ = निर्गमका.छायाकर्ण वृत्तीया

दोनों के अन्तर करने से

$\frac{\text{छाक}}{\text{लंज्या}}$ (क्रां'ज्या – क्रांज्या) = छायाकर्णवृत्तीयाग्रान्तर = छायाकर्ण वृत्तीयभुजान्तर

इतने ही अन्तर पर रवि के अयन वश करके प्रवेश बिन्दु को चलाना चाहिये। यदि रवि उत्तरायण में हो तो उत्तर से रवि १ दक्षिणायन में रहने से दक्षिण से चालन देने से चालित पूर्वबिन्दु और पश्चिम बिन्दुगतरेखा वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा होती है। लेकिन यहां निर्गम बिन्दु से प्रवेश बिन्दुज्ञान अपेक्षित है इसलिये पूर्वसाधित अग्रान्तर या भुजान्तर तुल्य निर्गम बिन्दु से दान देने से प्रवेश बिन्दुज्ञान होगा ।

श्रीपति तथा भास्कर आदि आचार्य ने पूर्वरीति से अग्रान्तर साधन करके तत्तुल्य पूर्वबिन्दु को चालित कर वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान किया है। पूर्वोक्त अग्रान्तर या भुजान्तर रेखात्मक है उसको वृत्तपरिधि में दान देना अनुचित है इसलिए उन लोगो के दिक्ज्ञान ठीक नहीं है। म. म. श्री सुधाकर द्विवेदी ने दिङ्मीमांसा में पूर्वसाधित छायावृत्तीय भुजान्तरवश से वास्तव दिक्ज्ञान किया है ॥२॥

द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर के लिए युक्ति "छायापरिलेखविधि" के ७-८ श्लोकों की युक्ति देखने से स्पष्ट है ॥२॥

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

वेत्ति दिशोऽपमजांशपलैर्यो द्युदलद्युतिं द्युतिभ्रमाद्रुत वृत्तात् ।
मध्यदिनद्युतितोऽर्कमवैत्य स्वाक्षजभां कुरुते गणकः सः ॥३॥

वि. भा.—योऽपमजांशपलैः (क्रान्त्यक्षांशैः) दिशो वेत्ति (दिज्ज्ञानं जानाति) उत द्युतिभ्रमाद्वृत्तात् (छायाभ्रमणवृत्तात्) द्युदलद्युतिं (मध्यच्छायां) जानाति, तथा द्युदलद्युतितः (मध्यच्छायातः) अर्कः (रविः) अवैत्य (ज्ञात्वा) स्वाक्षजभां (पलभां) कुरुते, सो गणकोऽस्तीति ॥

एतेषामुत्तरार्थमुपपत्तयः ।

अत्र प्रश्नचतुष्टयं वर्त्तते तत्र प्रथमप्रश्नस्योत्तरार्थं विचारः। क्रान्त्यक्षांशयोर्ज्ञानात्प्रश्नाध्यायस्य द्वितीयश्लोकोपपत्तिदर्शनात् "तत्कालापमजीवयोस्तु विवरादि" त्यादि भास्करोक्तेन वा तदुत्तरं सुलभमेवेति ॥

द्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं विचारः ।

छायाभ्रमणवृत्तान्मध्यच्छायाज्ञानं छायापरिलेखविधौ ७-८ श्लोकयोरुपपत्तिदर्शनेन स्फुटमेवेति ॥

तृतीयप्रश्नोत्तरार्थं विचार: ।

मध्यच्छायातो रवेर्ज्ञानम् ।

मध्यच्छायाज्ञानेन $\sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण । ततः $\frac{\text{छाया.त्रि}}{\text{छायाक}}$ = दृग्ज्या । अस्याश्चापं दिनार्धे नतांशा भवेयुः । ततो दिनार्धनतांशयोः संस्कारेण क्रान्तिज्ञानं भवेत्ततः $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुजज्या । अस्याश्चापं रविभुजांशा भवन्तीति ।।

हि. भा.—जो व्यक्ति-विशेष क्रान्ति और अक्षांश को जानकर दिशा को जानते हैं, छायाभ्रमणवृत्त से मध्यच्छाया को जानते हैं, वा मध्यच्छाया से रवि को जानकर पलभा को जानते हैं वे ज्योतिषी है ।।

इन प्रश्नों के उत्तर के लिए उपपत्ति

यहां चार प्रश्न हैं, उनमें से प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिए विचार करते हैं। क्रान्ति और अक्षांश के ज्ञान से प्रश्नाध्याय के द्वितीयश्लोक की उपपत्ति देखने से या "तत्कालापम-जीवयोस्तु विवरात्" इत्यादि भास्करोक्त दिक्ज्ञान से सुलभ ही से दिक्ज्ञान हो जायगा ।।

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिए विचार ।

छायाभ्रमण वृत्त परिधि से मध्यच्छाया ज्ञान के लिए छायापरिलेखविधि के ७-८ श्लोकों की उपपत्ति देखनी चाहिये ।।

तृतीय प्रश्न के उत्तर का विचार स्पष्टार्थ है ।।३।।

इदानीमन्यान् प्रश्नानाह ।

वीक्ष्य रवेरुदयं रविविद्यो यष्टिविधेर्निखिलोर्ध्वमितिं च ।
वेत्ति पलं पलभां गणितज्ञः गोलजातविषयज्ञवरिष्ठः ।।४।।

वि. भा.—यो रविवित् (रविपरिचितः) रवेरुदयं वीक्ष्य (दृष्ट्वा) यष्टिविधेः (यष्टियन्त्रविधितः) निखिलोर्ध्वमितिं (निखिलानां सम्पूर्णानामूर्ध्वस्थितानां मानं) पलं पलभां च (अक्षांशपलभां च) वेत्ति (जानाति) स गोलजातविषयज्ञ-वरिष्ठः (गोलीयविषयपण्डितेषु श्रेष्ठः) स्यादिति ।। ४ ।।

एतदुत्तरार्थं विचार्यते ।

अत्र प्रथमं रवेरग्राया नतोन्नतांशज्ययोश्च स्वरूपं प्रदर्श्य तत्साधनं च क्रियते ।

समायां भूमौ सरलशलाका रूपयेष्टयष्टया लिखिते वृत्ते दिक्साधनद्वारा दिक्साधनं कृत्वा चक्रांशाङ्कितं कार्यं प्रतिभागेषु षष्टिः कला अङ्काश्च तदा

पूर्वापररेखातो यावत्यंशान्तरे रविर्भवति तदंशज्या तस्मिन् दिने रवेरग्रा ज्ञातव्या। वृत्तकेन्द्रे वृत्तव्यासार्धरूपा नष्टच्छायेष्टयष्टिर्यथा भवेत्तथा तिर्यक् रविकेन्द्र-गामिसूत्राकाराऽऽबद्धलम्बा धार्या । वृत्तकेन्द्राद्यैरङ्गुलैर्लम्बपातोऽर्थाद्यल्लम्बरूप-सरलशलाका बद्धा पूर्वयष्टिधृता तन्निपातो भवति तदङ्गुलमान एव यष्टिव्या-सार्धोत्पन्नवृत्ते नतांशज्या (दृग्ज्या) भवति । लम्बांशलाङ्गुलप्रमाणमुन्नतां-शज्या (शंकुः) भवतीति ॥

अत्र यष्टिर्व्यासार्ध (त्रिज्या) रूपा, एतद्व्यासार्धोत्पन्नवृत्तं क्षितिजवृत्तम्। अत्र वृत्ते पूर्वबिन्दुत औदयिकं रविं यावदग्रा चापांशाः । अग्राग्रे उदितो रविर्यथा यथोपरिमच्छति तथा तथा केन्द्रे स्थापितयष्टिर्नष्टद्युतिः स्यात् । नष्टद्युतेर्यष्टे-रग्राद्यावान् लम्बस्तावानेव तस्मिन् काले शंकुः तथा लम्बमूलबिन्दोर्वृत्तकेन्द्रपर्यन्तं नतांशज्या (दृग्ज्या) भवति । एतयोस्त्रिज्या वृत्ते परिणाम्यते, यदि यष्ट्याऽऽनीते यष्टिव्यासार्धवृत्तीये नतांशोन्नतांक्षज्ये लभ्येते तदा त्रिज्ययाके इत्यनुपातेन त्रिज्यावृत्तीये नतांशोन्नतांशज्ये समागते ।

पूर्वलिखितवृत्ते मध्यान्हकाल एव वृत्तकेन्द्रादुत्तरदिशि दक्षिणदिशि च शंकुपतनं भवितुमर्हति तेनोत्तरगोले मध्यान्हकाले वृत्तकेन्द्रादुत्तरदिशि शंकुमूल-पतने तन्मूलतः पूर्वापरसूत्रोपरि यो लम्बः स भुजः । एतेन भुजेन रहिता रव्यग्रा शंकुतलं भवेत् । वृत्तकेन्द्राद्दक्षिणे शंकुमूले भुजेन युताऽग्रा शंकुतलं भवेत् । ततोऽनु-पातो यदि मध्यान्हशंकौ शंकुतलं लभ्यते तदा द्वादशांगुलशंकौ का समागच्छति पलभा । अथ $\sqrt{\text{मध्यंशं}^2 + \text{शंकुतल}^2} = \text{हृति}$

$$\text{तदा } \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रि}}{\text{हृति}} = \text{लम्बज्या । तथा } \frac{\text{शंकुतल} \times \text{त्रि}}{\text{हृति}} = \text{अक्षज्या ।}$$

मध्यान्हतो भिन्नसमये पलभाज्ञानार्थं

उपरिलिखितोपपत्तौ मध्यनतज्योन्नतज्ये (दृग्ज्या शंकु) यदा ज्ञाते भवतस्तदा $\frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}} = \text{छा} \therefore \sqrt{\text{छा}^2 + १२} = \text{छायाकर्ण}$ तदा यतः, छायाकर्णगोले पभा $= \text{शंकुतल} \quad \therefore \text{छायाकर्णगोलीयाग्रा} \pm \text{भुज} = \text{छायाकर्णगोले} \times \text{शंकुतल} = \text{पलभा}$ भास्कराचार्येणाऽपि यष्टियन्त्रेणाग्राऽक्षांशादिज्ञानं सिद्धान्तशिरोमणौ कृतं यथा च तत्पद्यानि ।

"त्रिज्या विष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र ।
दत्वाऽग्रां प्राक् पश्चाद् द्युज्या वृत्तं च तन्मध्ये ॥
तत्परिधौ षष्ट्यकं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे ।
त्रिज्याङ्गुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत् ॥

तावत्या मौर्व्या यद् द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र ।
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक्पश्चात् स्युः क्रमेणैवम् ॥
यष्टयग्राल्लम्बो ना ज्ञेया दृग्ज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये ।
उदयेऽस्ते यष्टयग्रप्राच्यपरा मध्यमग्रा स्यात् ॥
शंकूदयास्तसूत्रान्तरमर्कगुणं नरोद्धृतं पलभा ॥" इति ॥४॥

हि. भा—जो रविज्ञाता रवि के उदय को देखकर यष्टियन्त्र विधि से सम्पूर्ण पदार्थों के मान और अक्षांश तथा पलभा के मान को जानते हैं वह गणित के पण्डित गोलीयविषय के पण्डितों में श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

इनके उत्तर के लिए विचार करते हैं ।

यहाँ पहले रवि की अग्रा के तथा नतांशज्या और उन्नतांशज्या के स्वरूप को दिखाकर उनके साधन करते हैं । समान पृथ्वी में सरलशलाका का रूप इष्टयष्टि को त्रिज्या मान कर वृत्त बनाना, वह क्षितिज वृत्त है । दिक्साधन नियम से इस वृत्त में पूर्वापररेखा और दक्षिणोत्तररेखा का ज्ञान कर लेना, इस वृत्त में पूर्वबिन्दु से जितने अन्तर पर रवि है उसकी ज्या अग्रा है । अग्राग्र में उदित रवि ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं त्यों-त्यों केन्द्र में स्थापित यष्टि नष्टद्युति होती है । नष्टद्युति यष्टि के अग्र से जो लम्ब होता है वह शंकु है, लम्बमूलबिन्दु से वृत्त केन्द्र पर्यन्त नतांशज्या (दृग्ज्या) होती है । इन दोनों को त्रिज्यावृत्त में परिणामन करते हैं यदि यष्टि व्यासार्ध में यष्टि व्यासार्धोत्पन्न नतांशज्या और उन्नतांशज्या पाते हैं तो त्रिज्या में क्या इस अनुपात से त्रिज्यावृत्तीय नतांशज्या और उन्नतांशज्या आती है, पूर्वलिखितवृत्त में मध्यान्हकाल ही में वृत्त केन्द्र से उत्तर दिशा में और दक्षिण दिशा में शंकुमूल गिरता है इसलिये उत्तर गोल में मध्यान्हकाल में वृत्तकेन्द्र से उत्तर तरफ शंकुमूल गिरने पर शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर जो लम्ब करते हैं वह भुज है । रवि की अग्रा में इस भुज को घटाने से शंकुतल होता है । वृत्तकेन्द्र से दक्षिण तरफ शंकुमूल गिरने पर रवि की अग्रा में भुज को जोड़ने से शंकुतल होता है । तब अनुपात करते हैं यदि मध्यशंकु में शंकुतल पाते हैं तो द्वादशाङ्गुल शंकु में क्या इस अनुपात से पलभा आती है । $\sqrt{\text{मशंकु}^2 + \text{शंकुतल}^2}$ $=$ हृति । तब $\frac{\text{शंकुतल} \times १२}{\text{हृति}} = \text{अक्षज्या}$

इस पर से पलभाज्ञान सुलभ ही है ।

मध्यान्ह से भिन्न समय में पलभाज्ञान के लिए पूर्वलिखित उपपत्ति से जब मध्यान्ह काल में दृग्ज्या और शंकु विदित हुआ है तो $\frac{\text{दृग्ज्या}.१२}{\text{शंकु}} = \text{छा}$ । $\sqrt{\text{छा}^2 + १२^2} = \text{छाकर्ण}$, इस छायाकर्ण व्यासार्धवृत्त में पलभा = शंकुतल होता है इसलिए छायाकर्ण वृत्तीय अग्रा $\pm$ भुज = छायाकर्णवृत्तीय शंकुतल = पलभा इस तरह पलभा ज्ञान होता है । भास्करा-

चार्य ने भी यष्टियन्त्र के द्वारा दिनगत घटिकादिज्ञान, अग्रा, अक्षांशादि का ज्ञान सिद्धान्त-शिरोमणि में किया है, जैसे उनके पद्य हैं—

"त्रिज्या विष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र" इत्यादि ॥४॥

इष्टभां च सममण्डलभां च कोणभां च बहुधा समीक्ष्य यः ।
शीघ्रमेव बहुधाऽर्कमानयेत्कालमिष्टमथवा स तन्त्रवित् ॥५॥

वि. भा.—यः इष्टभां (इष्टच्छायां) सममण्डलच्छायां—कोणच्छायां च समीक्ष्य (दृष्ट्वा) शीघ्रमेव बहुधाऽर्कं (रविं) आनयेदथवेष्टकालमानयेत्स तन्त्रवित् (ज्योतिर्वित्) स्यादिति ॥१॥

एतदुत्तरार्थं विचार्यते । प्रथमद्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं विचारः ।

सममण्डलच्छायाज्ञानेन $\sqrt{\text{सछा}^2 + १२^2}$ = सममण्डलकर्णः । ततः $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सक}}$ = सशंकु अथ त्रिज्यया यदि अक्षज्या लभ्यते तदा समशंकुना केतिजाता क्रान्ति-ज्या = $\frac{\text{अज्या} \times \text{सश}}{\text{त्रि}}$.

अत्र समशंकोरुत्थापनेन $\frac{\text{अज्या. १२. त्रि}}{\text{सक. त्रि}} = \frac{\text{अज्या. १२}}{\text{सक.}}$ = क्रान्तिज्या ।

अथ $\frac{\text{अज्या. १२}}{\text{सक}} = \frac{\text{अज्या. १२. लंज्या}}{\text{सक. लंज्या}} = \frac{\text{पभा. लंज्या.}}{\text{सक}}$ = क्रान्तिज्या

ततः $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = अस्याश्चापं तदा रविभुजांशा भवेयुरिति ।

सममण्डलकर्णज्ञानेन रव्यानयनप्रकारः सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनाऽप्येवमेव कृतोऽस्ति । यथा च तदीयः श्लोकः ।

सूर्याक्षभाघ्ने पललम्बजीवे कर्णेन भक्ते समशंकुजेन ।
क्रमाद् भवेतामपमज्य के ते त्रिकर्त्तनः प्राक्तनकर्मणाऽतः ॥

अथवा समशंकुज्ञानेन रव्यानयनप्रकारः ।

अथ त्रिज्ययाऽक्षज्या लभ्यते तदा सममण्डलशंकुकर्णेन केति जाता क्रान्ति-ज्या = $\frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{त्रि}}$ ततो जिनज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया केति जाता रविभुजज्या = $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}} = \frac{\text{अज्या. सशं. त्रि}}{\text{त्रि. जिज्या}} = \frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{जिज्या}}$ अस्या-श्चापं तदा रविर्भवेदिति ॥५॥

अथ तृतीयप्रश्नोत्तरार्थं विचारः ।

कोणच्छायातो रवेर्ज्ञानम् ।

कोणवृत्तस्थिते रवौ कोणवृत्तपूर्वापरवृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणः = ४५ । तथा कोणवृत्तयाम्योत्तरवृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणश्च = ४५ तेनाऽत्र कोणशंकुमूलात्पूर्वापरसूत्रोपरिलम्बो भुजः = कोणशंकुमूलाद्याम्योत्तरसूत्रोपरिलम्बः कोटिसंज्ञकः । कोणशंकुमूलाद्भूकेन्द्रं यावद्दृग्ज्या, तदा भुजकोटिदृग्ज्याभिरुत्पन्नत्रिभुजे कोणानुपातेन त्रिज्यया यदि दृग्ज्या लभ्यते भूकेन्द्रलग्नकोणज्यया पञ्चचत्वारिंशज्ज्यया केत्यनुपातेन समागतो भुजः = $\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या } ४५}{\text{त्रि}}$, अथ कोणवृत्तस्थरव्युपरिगतध्रुवप्रोतवृत्तनाड़ीवृत्तसम्पातान्निरक्षोर्ध्वाधरसूत्रोपरिलम्बः = त्रिज्यावृत्तीयनतकालज्या इयं द्युज्यावृत्तपरिणता याम्योत्तरवृत्तधरातलोपरिकोणशंकोरग्रा-ल्लम्बरूपा रेखा नतकालज्या भवति सा च पूर्वानीतकोट्या समाना । ततः

$$\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या } ४५}{\text{त्रि}} = \frac{\text{द्युज्या} \times \text{नतकालज्या}}{\text{त्रि}} \therefore \frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या } ४५ \times \text{त्रि}}{\text{त्रि. नतकाज्या}} =$$

$\frac{\text{दृग्ज्या. ज्या } ४५}{\text{नतकाज्या}}$ = द्युज्या, त्रिज्यावर्गे विशोध्य मूलं ग्राह्यं तदा क्रान्तिज्या भवेत्ततो रविज्ञानं सुगममेव ।। प्रथमप्रश्नोत्तरं सुगममेवेति ।।५।।

हि. भा.—इष्टच्छाया, सममण्डलच्छाया, तथा कोणच्छाया को जानकर जो व्यक्ति रवि को लाते हैं अथवा इष्टकाल को लाते है वे ज्यौतिषिक हैं ।।५।।

इनके उत्तर के लिये विचार करते हैं । पहले दूसरे प्रश्न के उतर के लिए विचार ।

सममण्डलच्छाया ज्ञान से $\sqrt{\text{सछा}^२ + १२^२}$ = सममण्डल कर्ण तब

$\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सक}}$ = सशंकु । यदि त्रिज्या में अक्षज्या पाते हैं तब समशंकु में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है । $\frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{त्रि.}}$ = क्रान्तिज्या । यहां समशंकु को उत्थापन करने से

$$\frac{\text{अज्या. १२. त्रि}}{\text{त्रि. सक}} = \frac{\text{अज्या. १२}}{\text{सक}} = \text{क्रांज्या} = \frac{\text{अज्या} \times १२ \times \text{लंज्या}}{\text{सक} \times \text{लंज्या}} = \frac{\text{पभा. लंज्या}}{\text{सक}}$$

तब $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रभुजज्या, इसके चाप करने से रवि भुजांश होता है । सममण्डल कर्णज्ञान से रवि के आनयन प्रकार सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी इसी तरह किया है । जैसे—

सूर्याक्षभाघ्ने पललम्बजीवे कर्णेन भक्ते समशङ्कुजेन ।
क्रमाद् भवेतामपमज्यकेते विकर्तनः प्राक्तनकर्मणाऽतः ।।

अथवा समशंकु ज्ञान से रवि का आनयन प्रकार ।

त्रिज्या में यदि अक्षज्या पाते हैं तो समशङ्कु में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है $\frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{त्रि}}$ = क्रांज्या । तब जिनज्या में यदि त्रिज्या पाते हैं तो क्रान्तिज्या में क्या इस अनुपात से रवि की भुजज्या आती है, $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रभुज्या

यहां क्रान्तिज्या को उत्थापन देने से $\frac{\text{अज्या. सशं. त्रि}}{\text{त्रि.जिज्या}}$ = रविभुज्या

= $\frac{\text{अज्या. सशं}}{\text{जिज्या}}$ = रभुज्या । इसके चाप करने से रवि भुजांश होता है ॥५॥

तीसरे प्रश्न के उत्तर के लिए विचार । कोण छाया से रवि का ज्ञान ।

कोणवृत्त में रवि के रहने से कोणवृत्त और पूर्वापर वृत्त से उत्पन्न कोण = ४५ तथा कोणवृत्त और याम्योत्तर वृत्त से उत्पन्नकोण = ४५ इसलिए कोण शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र के ऊपर लम्ब = भु = कोणशंकुमूल से याम्योत्तर रेखा के ऊपर लम्ब = कोटि कोणशंकुमूल से भूकेन्द्र पर्यन्त = दृग्ज्या, तब भुज, कोटि और दृग्ज्या इन भुजकोटि और कर्ण से उत्पन्न त्रिभुज में कोणानुपात करते हैं । यदि त्रिज्या में दृग्ज्या पाते हैं तो पैंतालीस अंश की ज्या में क्या इस अनुपात से कोटि प्रमाण आता है ।

$\frac{\text{दृग्ज्या} \times \text{ज्या ४५}}{\text{त्रि}}$ = कोटि । कोणवृत्तस्थ रवि के ऊपर ध्रुवप्रोतवृत्त और नाड़ीवृत्त के सम्पात बिन्दु से निरक्षोर्ध्वाधर सूत्र के ऊपर लम्ब = नतकालज्या, यह नतकालज्या त्रिज्यावृत्तीय है इसको द्युज्यावृत्त में परिणत करने से कोणशंकु के अग्र से याम्योत्तरवृत्त धरातल के ऊपर लम्बरेखा = द्युज्यावृत्तीय नतकालज्या = पूर्वानीतकोटि

$= \frac{\text{नतकाज्या.द्युज्या}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{दृग्ज्या.ज्या ४५}}{\text{त्रि}} \therefore \frac{\text{दृग्ज्या.ज्या ४५.त्रि}}{\text{त्रि.नतकाज्या}} = \text{द्युज्या}$

$= \frac{\text{दृग्ज्या.ज्या ४५}}{\text{नतकाज्या}}$ इसके वर्ग को त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेने से क्रान्तिज्या होती है $\sqrt{\text{त्रि}^{२} - \text{द्यु}^{२}}$ क्रान्तिज्या तब $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रवि भुजज्या इसके चाप करने से रवि का भुजांश होता है ॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर सुगम ही है ॥५॥

पुनः प्रश्नानाह ।

चरखण्डपलांशविद्रवि कुर्यादिष्टचरासुतोऽक्षभाम् ।
स्वपलद्युतितश्चरार्धकं त्रिप्रश्नोक्तमवैति स स्फुटम् ॥६॥

वि. भा.—यश्चरखण्डपलांशवित् (चरार्धाक्षांशज्ञाता) रविं कुर्यात् (रविं साधयेत्) तथेष्टचरासुतः (इष्टचरार्धज्ञानात्) अक्षभां (पलभां) साधयेत्। स्वपलद्युतितः (स्वपलभातः) चरार्धकं साधयेत्स स्फुटं त्रिप्रश्नोक्तं विधिं जानातीति ॥६॥

अत्र प्रश्नत्रयमस्ति

तत्र प्रथमप्रश्नोत्तरार्थमुपपत्तिः।

अक्षांशज्ञानेन पलभाज्ञानं सुलभमेव ∴ ९०−अक्षांश=लम्बांश

तदा $\frac{\text{अज्या}.१२}{\text{लंज्या}}$=पलभा तदा कल्प्यते क्रान्तिज्याप्रमाणम्=य

तदा $\frac{\text{पभा}.\text{य}}{१२}$=कुज्या, वर्गकरणेन $\frac{\text{पभा}^२.\text{य}^२}{१२^२}$, अथ क्रान्तिज्यावर्गोनस्त्रिज्यावर्गो द्युज्यावर्गः=$\text{त्रि}^२-\text{य}^२$ तदा $\frac{\text{चज्या}.\text{द्यु}}{\text{त्रि}}$=कुज्यावर्गेण $\frac{\text{चज्या}^२.\text{द्यु}^२}{\text{त्रि}^२}$=कुज्या^{२}

कुज्यावर्गयोः समीकरणम्

$$\frac{\text{पभा}^२.\text{य}^२}{१२^२}=\frac{\text{चज्या}^२.\text{द्यु}^२}{\text{त्रि}^२}=\frac{\text{चज्या}^२(\text{त्रि}^२-\text{य}^२)}{\text{त्रि}^२}$$ छेदगमेन

$$\text{त्रि}^२.\text{य}^२.\text{पभा}^२=१२^२\times\text{चज्या}^२(\text{त्रि}^२-\text{य}^२)=\text{चज्या}^२.१२^२.\text{त्रि}^२-१२^२.\text{चज्या}^२.\text{य}^२$$

समयोजनेन

$$\text{त्रि}^२.\text{य}^२.\text{पभा}^२+१२^२.\text{चज्या}^२.\text{य}^२=\text{चज्या}^२.१२^२.\text{त्रि}^२$$
$$=\text{य}^२(\text{त्रि}^२.\text{पभा}^२+१२^२-\text{चज्या}^२)=\text{चज्या}^२.१२^२.\text{त्रि}^२$$
$$\therefore\frac{\text{चज्या}^२.१२^२.\text{त्रि}^२}{\text{त्रि}^२.\text{पभा}^२+१२^२.\text{चज्या}^२}=\text{य}^२=\frac{\text{त्रि}^२}{\frac{\text{त्रि}^२.\text{पभा}^२+१२^२.\text{चज्या}^२}{\text{चज्या}^२.१२^२}}$$ मूलेन य मानं भवेद्।

ततो रविज्ञानं सुशकमिति ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिनैवमेव क्रान्तिज्ञानं कृतम्। यथा—

सूर्यघ्नी चरशिञ्जिनीकृतकृतिस्तद्युक्भक्ता सती।
त्रिज्याऽक्षप्रभयोर्वधस्य करणी छेदस्त्रिभज्या कृतेः ॥
लब्धेर्मूलमिनापमस्य हि गुणस्तस्मादपि प्रोक्तवत्।
तिग्मांशुर्विषुवात्प्रभाचरदलज्ञानादसौ जायते ॥

ब्रह्मगुप्तोक्तप्रकारसदृश एव श्रीपतिप्रकारः। ब्रह्मगुप्तप्रकारश्च—

अर्काज्ञाने ज्ञाने विषुवच्छाया चरासूनाम्।
इष्टचरार्धस्य ज्याक्षयवृद्धिज्या तदर्धं वधकृत्या ॥
त्रिज्या विषुवच्छाया वधवर्गो युतहृतश्छेदः।

व्यासार्धकृतेर्मूलं क्रान्तिज्या व्यासदलगुणा भक्ता ।
जिनभागजीवया लब्धचापमर्कः पदैः प्राग्वत् ॥

अथ $\frac{\text{चज्या}^2 . १२^2 . \text{त्रि}^2}{\text{त्रि}^2 . \text{पभा}^2 + १२^2 . \text{चज्या}^2} = \text{य}^2 = \frac{\text{चज्या}^2 . १२^2}{\text{पभा}^2 + \frac{१२^2 . \text{चज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}$ —मूलेन

$$\frac{\text{चज्या} . १२}{\sqrt{\text{पभा}^2 + \frac{१२^2 . \text{चज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}} = \text{य}$$ एतेन "चरज्यकाऽर्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या

भक्ता" इत्यादि भास्करोक्तं समुपद्यते ॥६॥

हि. भा.—चरखण्ड और अक्षांश जानकर रवि को जो लाते हैं तथा इष्टचरासु पर से पलभा लाते हैं और स्वपलभा से जो चरार्ध लाते हैं वह स्पष्टरूप से त्रिप्रश्नोक्तविधि को जानते हैं ॥२॥

यहां तीन प्रश्न हैं उनमें प्रथम प्रश्न के उत्तर ।

अक्षांशज्ञान से लम्बांशज्ञान होगा तब $\frac{\text{अज्या} . १२}{\text{लंज्या}} = \text{पभा}$,

क्रान्तिज्या का मान = य ।

तब $\frac{\text{पभा} . \text{य}}{१२} = \text{कुज्या} \therefore \frac{\text{पभा}^2 . \text{य}^2}{१२^2} = \text{कुज्या}^2$ । $\text{त्रि}^2 - \text{य}^2 = \text{द्यु}^2 \therefore \frac{\text{चज्या} . \text{द्यु}}{\text{त्रि}} = \text{कुज्या}$

$\therefore \frac{\text{पभा}^2 . \text{य}^2}{१२^2} = \frac{\text{चज्या}^2 . \text{द्यु}^2}{\text{त्रि}^2}$ छेदगम करने से $\text{पभा}^2 \text{य}^2 . \text{त्रि}^2 = \text{चज्या}^2 . \text{द्यु}^2 . १२^2$

$$= \text{चज्या}^2 . १२^2 (\text{त्रि}^2 - \text{य}^2)$$
$$= \text{चज्या}^2 . १२^2 . \text{त्रि}^2 - \text{चज्या}^2 . १२^2 . \text{य}^2 = \text{पभा}^2 . \text{य}^2 . \text{त्रि}^2$$

समयोजन से

$$\text{चज्या}^2 . १२^2 . \text{त्रि}^2 = \text{पभा}^2 . \text{य}^2 . \text{त्रि}^2 + \text{चज्या}^2 . १२^2 . \text{य}^2 = \text{य}^2 (\text{पभा}^2 . \text{त्रि}^2 + \text{चज्या}^2 . १२^2)$$

$$\therefore \frac{\text{चज्या}^2 . १२^2 . \text{त्रि}^2}{\text{पभा}^2 . \text{त्रि}^2 + \text{चज्या}^2 . १२^2} = \text{य}^2 \quad \cdots (१)$$

$= \frac{\text{त्रि}^2}{\frac{\text{पभा}^2 . \text{त्रि}^2 + \text{चज्या}^2 . १२^2}{\text{चज्या}^2 . १२^2}} = \text{य}^2$ मूल लेने से य मान होता है इस पर से रवि-ज्ञान सुगम ही है ॥

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने इसी तरह क्रान्तिज्ञान किया है । यथा—

"सूर्यघ्नी चरशिञ्जिनीकृतकृतिस्तद्युक्तभक्ता सती" इत्यादि ।

श्रीपति का यह प्रकार भी ब्रह्मगुप्तप्रकारसदृश ही है । जैसे ब्रह्मगुप्त प्रकार यह है—

"अर्काज्ञाने ज्ञाने विषुवच्छाया चरासूनाम्" । इत्यादि

(१) यहां हर और भाज्य में त्रि^{2} भाग देने से $\frac{\text{चज्या}^2 . १२^2}{\frac{\text{पभा}^2 + १२^2.\text{चज्या}^2}{\text{त्रि}}}$ मूल लेने से

$$\sqrt{\frac{\text{चज्या}.१२}{\frac{\text{पभा}^2 + १२^2.\text{चज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}} = \text{य}$$ इससे "चरज्यकार्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या भक्ता"

इत्यादि भास्करोक्त उपपन्न होता है ।।६।।

इदानीं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरार्थं विधिः ।

एकक्रान्तौ द्वयोर्देशयोश्चरे च, च$'$ तथा द्वयोर्देशयोः पलभे पभा, पभा$'$

तदा $\frac{\text{पभा.क्रांज्या.त्रि}}{१२ \times \text{द्यु}} = \text{चज्या}$ । तथा $\frac{\text{पभा}'.\text{क्रांज्या.त्रि}}{१२.\text{द्यु}} = \text{च}'\text{ज्या}$

$\therefore \frac{\text{चज्या}}{\text{च}'\text{ज्या}} = \frac{\text{पभा}}{\text{पभा}'}$ उत्क्रमनिष्पत्त्या $\frac{\text{च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{प}'\text{भा}}{\text{पभा}}$ अत्र यदि च = स्वदेशचर

च$'$ = इष्टदेशचरम्

तदा $\frac{\text{पभा.च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \text{प}'\text{भा}$ यदि स्वदेशचरार्धज्यया स्वदेशीयपलभा लभ्यते तदेष्टदेशचरार्धज्यया केति तदिष्टदेशपलभा भवत्येतद्विलोमेन स्वपलभा भवतीति ।

ब्रह्मगुप्तोक्तस्य "विषुवच्छायाभक्ता स्वचरार्धज्येष्ठयाऽन्यया गुणिता ।
लब्धस्य चापमिष्टच्छायायाश्चरदलप्राणाः" ।

अस्य प्रकारस्य वैपरीत्येनोपरिलिखितोपपत्तिः सिद्ध्यति ।।

अथवा "स्वदेशजाक्षद्युतिरिष्टदेशचरार्धजीवा गुणिता विभक्ता ।
स्वपत्तनोद्भूतचरार्धमौर्व्या प्रजायतेऽसौ पलभाऽन्यदेशे ।।"

पूर्वप्रदर्शितोपपत्तिः श्रीपत्युक्तश्लोकस्यैवोपपत्तिर्बोध्येति ।।६।।

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिये विचार ।

एक क्रान्ति में दो देशों के चर = च, च$'$ दोनों देशों की पलभा पभा, प$'$भा

तब $\frac{\text{पभा.क्रांज्या.त्रि}}{१२.\text{द्यु}} = \text{चज्या}$ । $\frac{\text{पभा}'.\text{क्रांज्या.त्रि}}{१२.\text{द्यु}} = \text{च}'\text{ज्या} \therefore \frac{\text{च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{पभा}'}{\text{पभा}}$

तब $\frac{\text{च}'\text{ज्या.पभा}}{\text{चज्या}} = \text{पभा}'$ | यहां यदि च = स्वदेश चरार्ध
पभा = स्वदेश पलभा

तब सिद्ध हुआ कि स्वदेश चरार्धज्या में यदि स्वदेश पलभा पाते हैं तो इष्टदेश चरार्धज्या में क्या इष्टदेश की पलभा आती है । इसके विलोम क्रिया से स्वदेश पलभा होती है ।।

ब्रह्मगुप्तोक्त—"विषुवच्छाया भक्ता स्वचरार्धज्येष्ठयाऽन्यया गुणिता" । इत्यादि इस प्रकार के उल्टी क्रिया से पूर्वोक्त उपपत्ति सिद्ध होती है ।

अथवा "स्वदेशजाक्षद्युतिरिष्टदेशचरार्धजीवा गुणिता विभक्ता । इत्यादि पूर्व प्रदर्शित उपपत्ति श्रीपति के इस श्लोक की उपपत्ति समझनी चाहिये ॥ ६ ॥

तृतीयप्रश्नोत्तरार्थं विधिः ।

पूर्वप्रदर्शितद्वितीयप्रश्नोपपत्तौ $\frac{\text{च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{प}'\text{भा}}{\text{पभा}}$ सिद्धमस्ति तदा

$\frac{\text{पभा}'.\text{चज्या}}{\text{च}'\text{ज्या}} = \text{पभा}$ । वा विलोमेन $\frac{\text{पभा}.\text{च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \text{च}'\text{ज्या}$ ।

सिद्धान्तशेखरे "अन्यदेशपलभा समाहृता स्वीयपत्तन-चरार्ध-शिञ्जिनी ।
भाजिता पलभया स्वया ततश्चापमन्यविषये चरासवः ॥"

श्रीपतिनाऽनेन श्लोकेन स्पष्टमेव तृतीयप्रश्नोत्तरं कथ्यते यदुपपत्तिर्मया प्रदर्शितेति ॥ ६ ॥

तीसरे प्रश्न के उत्तर के लिए विधि ।

पूर्व प्रदर्शित द्वितीयप्रश्नोत्तरोपपत्ति में $\frac{\text{च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \frac{\text{प}'\text{भा}}{\text{पभा}}$ यह स्वरूप सिद्ध है

तब $\frac{\text{पभा}'.\text{चज्या}}{\text{च}'\text{ज्या}} = \text{पभा}$ । इसके विलोम से $\frac{\text{पभा}.\text{च}'\text{ज्या}}{\text{चज्या}} = \text{च}'\text{ज्या}$

सिद्धान्तशेखर में "अन्यदेशपलभा समाहृता स्वीयपत्तनचरार्धशिञ्जिनी । इत्यादि इस श्लोक से श्रीपति स्पष्ट ही तृतीय प्रश्न के उत्तर कहते हैं जिसकी उपपत्ति हमने दिखलाई है ॥ ६ ॥

इदानीमन्यप्रश्नानाह ।

स्वविषयोदयमन्तरा यो वेत्ति लग्नरविमध्यनाड़िकाम् ।
उन्नतं नतमहर्दले कुजान्नुद्युतेर्दिनपतिं स तन्त्रवित् ॥७॥

वि. भा.—यः स्वविषयोदयमन्तरा (स्वदेशीय राश्युदयैर्विना) लग्नरविमध्यनाड़िकाम् (लग्नरव्योरन्तरघटिकां वेत्ति (जानाति) स तन्त्रवित् (ज्योतिर्वित्) अस्तीति प्रथमः प्रश्नः । अहर्दले (मध्यान्हे) कुजात् (क्षितिजात्) उन्नतं (उन्नतांशमानं) नतं (नतांशमानं) च यो वेत्ति स तन्त्रविदस्तीति द्वितीयः प्रश्नः । नुः (शंकोः) द्युतेः (छायातः) दिनपतिं (सूर्यं) यो वेत्ति स तन्त्रविदिति तृतीयः प्रश्न इति ॥७॥

अथ प्रथमप्रश्नोत्तरं प्रदर्श्यते ।

रविलग्नयोश्चरार्धोपपत्तिः स्वाग्रावृत्तयोः प्रदर्श्या मृगकर्कादौ च तयोरन्तरयोगौ क्रियेते यतः प्रथमचतुर्थौ क्रान्तिवृत्तपादौ चरार्धरहितावुदयं गच्छतः । तथा

द्वितीयतृतीयपादौ चरार्धयुतावुदयं गच्छतः। रविलग्नयोश्च कालकलाः प्रथमे पदे तावत्य एव युज्यन्ते मेषादित्वाद्राशीनां भोग्योत्पन्नत्वाद्राशिषट्ककलाभ्यो विशोधयितुं युज्यते। एवं कालगती रविलग्नभुक्ती भवतः। अधिकत्वाच्च लग्नस्य ततो रविकलाः शोध्यन्ते तदा शेषाः कलास्तयोरन्तरासवः। यदि रविकलाभ्यो लग्नकलाः शोध्यन्ते तथापि रव्युदयाद्वैपरीत्येन काल उपपद्यते॥ अतः प्रश्नोत्तरसिद्धिर्जातेति ॥७॥

हि. भा.—अपने देश के राशियों के उदयमान के बिना रवि और लग्न के अन्तर घटी को जो जानता है वह ज्योतिषी है यह प्रथम प्रश्न है। क्षितिज से उन्नतांश और नतांश को मध्यान्हकाल में जो जानता है वह ज्योतिषी है यह दूसरा प्रश्न है। तथा मध्यच्छाया से रवि को जो जानता है वह ज्योतिषी है यह तीसरा प्रश्न है॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर।

रवि और लग्न की चरखण्डोपपत्ति अपनी अग्रावृत्त में देखनी चाहिए मकरादि और कर्कादि केन्द्र में उन दोनों के अन्तर और योग करते हैं क्योंकि क्रान्तिवृत्त के प्रथम और चतुर्थ पाद चरार्ध रहित होकर उदय को प्राप्त होते हैं और द्वितीय तथा तृतीय पाद चरार्धयुत होकर उदय को प्राप्त होते हैं। रवि और लग्न की कालकला उतनी ही युक्त है मेषादित्व से राशियों के भोग्योत्पन्नत्व के कारण छः राशिकलाओं में घटाने के लिए युक्त है इस तरह कालगति रवि और लग्न की भुक्ति होती है। लग्न के अधिकत्व से उसमें रविकलाओं को घटाते हैं शेषकला उन दोनों की अन्तरासु होती है। यदि रविकला में लग्नकलाओं को घटाते हैं तो भी रवि के उदय से विपरीत क्रिया से काल होता है॥

अथ द्वितीयप्रश्नोत्तरार्थं विधिः।

"पलावलम्बावपमेन संस्कृतौ नतोन्नते ते भवत" इत्यादिना तद्वासना स्पष्टैवास्तीति॥

द्वितीय प्रश्न के उत्तर के लिए विधि।

"पलावलम्बावपमेन संस्कृतौ नतोन्नते ते भवत" इत्यादि से नतोन्नत साधन की उपपत्ति स्पष्ट ही है॥

अत्र तृतीयप्रश्नोत्तरार्थमुच्यते।

$$\text{मध्यच्छायाज्ञानेन } \sqrt{\text{छा}^2+१२^2}=\text{छायाकर्ण ततः } \frac{\text{छाया.त्रि}}{\text{छायाक}}=\text{दृग्ज्या},$$

अस्याश्चापं नतांशा भवेयुः। यद्युत्तरछायाग्रं तदा दक्षिणाः। यदि दक्षिणं तदोत्तराः। एवं दिनार्धे ये नतांशा भवन्ति ते यदि दक्षिणास्तदाऽक्षांशैर्वियुक्ताः। यद्युत्तरास्तदाऽक्षांशैर्युताः सन्तः क्रान्त्यंशा भवन्ति ततो यदि जिनज्यया त्रिज्या लभ्यते तदा क्रान्तिज्यया किमित्यनुपातेन समागच्छन्ति रविभुजज्यास्तत्स्वरूपम् $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$

$=$ रविभुजज्या एतच्चापं रविभुजांशा भवेयुरिति॥

परमयं रविः कस्मिन् पदे समागत इत्येतदर्थं विचार्यते ।

जिनाधिकाक्षांशदेशे प्रथमपदे तूत्तरोत्तरं क्रान्तेरुपचयादक्षांशे तद्विशोधनेनोत्तरोत्तरं नतांशा अल्पा भवन्ति । परन्तु तेऽक्षांशन्यूना अतएव "पलभाऽल्पिका छायाऽपचयिनी भवति" द्वितीयपदे क्रान्तेरुत्तरोत्तरमुपचयादुत्तरोत्तरं नतांशा अधिका भवन्ति तेन तद्वशतश्छायाप्युत्तरोत्तरमुपचयिनी (वृद्धिमती) भवति किन्तु पलभाऽल्पा, यतो हि नतांशा अक्षांशाल्पाः पदान्तं यावद् भवन्ति । तृतीयपदे उत्तरोत्तरं क्रान्तेरुपचयात्तस्या अक्षांशस्य च योगकरणेन नतांशा भवन्ति ते चाऽक्षांशाधिका उत्तरोत्तरमधिकाश्च भवन्ति, पदान्तं यावदेवं स्थितिस्तेन तत्र पलभाऽधिका छायोत्तरोत्तरं वृद्धिमती भवति । चतुर्थे पदे च क्रान्तेरुत्तरोत्तरमपचयत्वात्तस्या अक्षांशस्य च योगकरणेनोत्तरोत्तरमपचयीभूता अक्षांशाधिका नतांशा भवन्ति तेन छाया तत्रोत्तरोत्तरं पलभाऽधिका क्षीयमाणा चेति ॥ जिनाऽल्पाक्षांश देशे तु पूर्ववदेव तृतीयचतुर्थपदयोः स्थितिः । परन्तु जिनाधिकाक्षांशदेशे रवेः खस्वस्तिकाद्दक्षिणे स्थितत्वात् । जिनाऽल्पाक्षांशदेशे खस्वस्तिकाद्भागद्वये रवेर्गतत्वात्तन्नियमेन न कार्यसिद्धिः । तत्रापि क्रान्त्यंशाऽक्षांशयोस्तुल्यत्वे शून्यसमाछाया तदल्पे पूर्वं नियमानुसारस्थितिरेव । तथाऽक्षांशाधिकक्रान्तौ खस्वस्तिकयोरवेरुत्तरगतत्वात्तत्र प्रथमपदे उत्तरोत्तरमुत्तरनतांशवृद्धेर्दक्षिणाभिमुखी वृद्धिमती च छाया भवति । द्वितीयपदे क्रान्तेरपचयान्नतांशापचयत्वं तेन तत्र दक्षिणाभिमुखी अपचयिनी छाया भवतीति ॥

सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरेण पदज्ञानाय स्वप्रकारो लिखितस्तदुपपत्तिरेव मया लिखिता तत्प्रकारश्च—

आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाऽल्पिका स्यात् छायाऽल्पिका भवति वृद्धिमती द्वितीये ।
छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये तुर्ये पुनः क्षयवती तदनल्पिका च ॥
वृद्धिं व्रजन्ती यदि दक्षिणाग्रच्छाया तथाऽपि प्रथमं पदं स्यात् ।
ह्रासं प्रयान्तीमथ तां विलोक्य रवेर्विजानीहि पदं द्वितीयम् ॥

सिद्धान्तशेखरे श्रीपतिकथितश्लोकद्वये सर्वं कमलाकरोक्तसदृशमेव केवलं "छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये" इति स्थले "अक्षद्युतेः समधिकोपचिता तृतीये" इति भागे दृश्यते, प्रथमश्लोकेन जिनाऽधिकाक्षांशदेशे द्वितीयश्लोकेन जिनाऽल्पाक्षांशदेशे रविपदज्ञानार्थमुपायो वर्णितः । एतदतिरिक्तैः करप्याचार्यैः पदज्ञानाय नैवेदृशी व्यवस्था कुत्रापि लिखिता । पूर्वं सर्वे जानन्ति स्म यदेतत्कमलाकरोक्तमेवास्ति परन्तु सिद्धान्तशेखरे उपरिलिखितं श्लोकद्वयं दृष्ट्वा 'श्रीपत्युक्तप्रकार एव कमलाकरेण स्वग्रन्थे निवेशितः अत्र न कोऽपि सन्देहः कस्यापि मनसि भविष्यतीति ॥७॥

तृतीय प्रश्न के उत्तर के लिए विचार करते हैं ।

मध्यछाया ज्ञान से $\sqrt{\text{छा}^2 + १२^2}$ = छायाकर्ण तब $\frac{\text{छाया.त्रि}}{\text{छायाक}}$ = दृग्ज्या, इसके चाप

करने से नतांश होता है, छायाग्र के उत्तर रहने से दक्षिण नतांश होता है, छायाग्र के दक्षिण रहने से उत्तर नतांश होता है, इस तरह दिनार्ध में जो नतांश होता है वह यदि दक्षिण है तो उसमें अक्षांश घटाने से क्रान्ति होती है, यदि नतांश उत्तर है तो उसमें अक्षांश जोड़ने से क्रान्ति होती है तब अनुपात करते हैं कि यदि जिनज्या में त्रिज्या पाते हैं तो क्रान्तिज्या में क्या इस अनुपात से रवि की भुजज्या आती है $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रवि भुजज्या, इसके चाप करने से रवि के भुजांश होते हैं। लेकिन यह रवि किस पद में आये इसके लिए विचार करते हैं। जिनाधिकांश देश में प्रथम पद में उत्तरोत्तर क्रान्ति के बढ़ने के कारण अक्षांश में उसको घटाने से शेष तुल्य नतांश उत्तरोत्तर अल्प होता है। लेकिन वह अक्षांश से न्यून है इसलिए "पलभा से अल्पच्छाया अपचयिनी (ह्रासाभिमुख) होती है।

द्वितीयपद में क्रान्ति के उत्तरोत्तर अधिक होने के कारण नतांश उत्तरोत्तर अधिक होता है उसके वश से छाया भी उत्तरोत्तर उपचयिनी (वृद्धि की तरफ) होती हैं लेकिन वह छाया पलभा से अल्प है क्योंकि पदान्त तक नतांश अक्षांशाल्प होते हैं।

तृतीयपद में उत्तरोत्तर क्रान्ति के उपचय (वृद्धि की तरफ) के कारण अक्षांश में जोड़ने जो नतांश होता है वह अक्षांशाधिक होता है और उत्तरोत्तर अधिक होता है। पदान्त तक ऐसी ही स्थिति रहती है इसलिए वहां छाया पलभा से अधिक और उत्तरोत्तर वृद्धिमती होती है।

चतुर्थ पद में क्रान्ति के उत्तरोत्तर अपचयत्व से (क्षीयमाण होने से) अक्षांश के साथ योग करने से जो नतांश होता है वह अक्षांश से अधिक होता है इसलिए वहां छाया उत्तरोत्तर क्षीयमाण और पलभा से अधिक होती है॥

जिनाऽल्पाक्षांश देश में तृतीय और चतुर्थ पद की स्थिति पूर्ववत् ही होती है। लेकिन जिनाधिकाक्षांश देश में रवि को खस्वस्तिक से दक्षिण दिशा में रहने के कारण जिनाऽल्पाक्षांश देश में खस्वस्तिक से दोनों तरफ रवि के जाने के कारण पूर्वोक्त नियम से कार्य सिद्धि नहीं होती है वहां भी क्रान्त्यंश और अक्षांश के तुल्य रहने से छाया शून्य होती है, अल्पता में पहले नियम के अनुसार ही स्थिति होती है।

अक्षांशाधिक क्रान्ति में खस्वस्तिक से रवि के उत्तर तरफ जाने के कारण वहां प्रथम पद में उत्तर नतांश के उत्तरोत्तर वृद्धि से दक्षिणाभिमुखी और वृद्धिमती छाया होती है। द्वितीय पद में क्रान्ति के अपचय से नतांश का भी अपचयत्व होता है इसलिए वहां दक्षिणाभिमुखी और अपचयिनी छाया होती है।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक में पदज्ञान के लिए अपने प्रकार लिखे हैं हमने उसकी उपपत्ति लिखी है। उनका प्रकार यह है—

आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाऽल्पिका स्यात् छायाऽल्पिका भवति वृद्धिमती द्वितीये।
छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये तुर्ये पुनः क्षयवती तदनल्पिका च॥ इत्यादि।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपतिकथित श्लोकद्वय (दोनों श्लोकों) में सब कुछ कमलाकर कथित के समान ही है केवल "छायाऽधिका भवति वृद्धिमती तृतीये" इस जगह "अक्षच्युतेः समधिकोपचिता तृतीये" यह पाठ देखते हैं, प्रथम श्लोक से जिनाऽधिकाक्षांश देश में द्वितीय श्लोक से "जिनाऽल्पाक्षांश देश में" रवि पदज्ञान के लिए उपाय दिखलाया गया है। इनके अतिरिक्त कोई प्राचीनाचार्य ने पदज्ञान के लिए इस तरह की व्यवस्था कहीं नहीं लिखी है, पहले सब जानते थे जो कि यह प्रकार कमलाकर ही का है लेकिन सिद्धान्तशेखर में पूर्वोक्त श्लोकद्वय को देखकर "श्रीपति के लिखे हुए प्रकार ही कमलाकर अपने ग्रन्थ में लिख दिये है" इसमें किसी के मन में कुछ भी सन्देह नहीं होगा ।।७।।

इदानीमन्यप्रश्नानाह ।

बाहुकोटिदिवसार्धभाङ्गुलैरिष्टभालिखितमण्डले पुमान् ।
शंकु भाभ्रममवैति यो हि सोऽतीव प्रौढगणकोऽस्ति भाभ्रमे ।।८।।

वि. भा.—यः पुमान् (पुरुषः) इष्टभालिखितमण्डले (इष्टकालिकद्वादशाङ्गुलच्छायाङ्गुलप्रमाणेन कर्कटकेन दिङ्मध्यबिन्दुतो लिखिते छायावृत्ते) बाहुकोटिदिवसार्धभाङ्गुलैः (भुजकोटिदिनार्धच्छायाङ्गुलप्रमाणैः) शंकुभाभ्रम (शंकुभ्रममार्गं छायाभ्रममार्गं च जानाति) सौ भाभ्रमे (छायाभ्रमणविषये) अतीव प्रौढगणकः (अतीवनिष्णातज्यौतिषिकः) अस्तीति ।। ८ ।।

अस्योत्तरार्थमुच्यते ।

पूर्वं छायाभ्रमरेखानिरूपणार्थं शंकुभ्रमरेखानिरूपणार्थं योपपत्तिरभिहिता तद्दर्शनेनैवैतदुत्तरं स्फुटं भवतीति ।

हि. भा.—जो मनुष्य इष्टकालिक द्वादशाङ्गुल शंकुच्छायाङ्गुल प्रमाण कर्कट से दिङ्मध्य बिन्दु से बनाये हुए छायावृत्त में भुजकोटि और मध्यच्छायाङ्गुलों से शंकुभ्रम मार्ग और छायाभ्रममार्ग को जानता है वह छायाभ्रम विषय में अतिशय प्रौढ़ (निपुण) ज्योतिषी है ।। ८ ।।

इसके उत्तर के लिए कहते हैं ।

पहले छायाभ्रमरेखा निरूपण के लिए तथा शंकुभ्रमरेखा निरूपण के लिये जो उपपत्ति कही गई है उसके देखने ही से इन प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट हैं ।। ८ ।।

इदानीमन्यप्रश्नमाह ।

अभ्रवेदप्रमिता नतासवस्तिग्मगौ हि सममण्डलस्थिते ।
अक्षभा नवमिताः किल यत्र ब्रूहि तत्र नियतं दिवाकरम् ।।९।।

वि.भा.—तिग्मगौ (सूर्ये) सममण्डलस्थिते (समवृत्तप्रवेशे) यत्राऽभ्रवेदप्रमिता (चत्वारिंशत्) नतासवः। अक्षभाः (पलभाः) नव मितास्तत्र नियतं (निश्चितं) दिवाकरं (सूर्यं) ब्रूहि (कथय) ।। ९ ।।

एतदुत्तरार्थमुच्यते ।

अत्र समप्रवेशकालिक नतकालपलभयोर्ज्ञानेन रव्यानयनप्रकारार्थं प्रश्न इति ।

समप्रवेशे रवौ लम्बांशाः कोटिः । सममण्डलनतांशा भुजः । सममण्डलद्युज्या चापांशाः कर्ण इत्येभिः कोटिभुजकर्णैरुत्पन्नचापीयजात्ये चापीयत्रिकोणमित्या—

$$त्रि.नकोज्या = स्पक्रां \times स्पलं = \frac{त्रि.क्रांज्या}{द्यु} \times \frac{त्रि.लंज्या}{अज्या}$$ अत्र भुज संमुख-कोणः = नतकालः

$$अतः\ स्पक्रां = \frac{त्रि.नकोज्या}{स्पलं} = \frac{त्रि.नकोज्या}{\frac{त्रि.\ लंज्या}{अज्या}} = \frac{त्रि.नकोज्या.अज्या}{त्रि.लंज्या}$$

$$= \frac{नकोज्या.अज्या}{लंज्या} = \frac{नकोज्या.पभा}{१२}$$ । यतः $\frac{अज्या}{लंज्या} = \frac{पभा}{१२}$ ततः

$$त्रि^२ + स्प^२क्रां = छे^२क्रां = त्रि^२ + \frac{नकोज्या^२.पभा^२}{१२^२} = \frac{त्रि^२.१२^२ + नकोज्या^२.पभा^२}{१२^२}$$

$$ततोऽनुपातेन\ क्रान्तिज्या^२ = \frac{त्रि^२.स्प^२क्रां}{छे^२क्रा} =$$

$$= \frac{\frac{त्रि^२.नकोज्या^२.पभा}{१२^२}}{\frac{त्रि^२.१२^२ + नकोज्या^२.पभा^२}{१२^२}} = \frac{त्रि^२.नकोज्या^२.पभा^२}{त्रि^२.१२^२. + नकोज्या^२.पभा^२}$$ हरभाज्यौ(त्रि^{२})

भक्तौ तदा $\frac{नकोज्या^२.\ पभा^२}{१२^२ + \frac{नकोज्या^२.पभा^२}{त्रि^२}}$ = क्रांज्या^{२} (१) मूलेन

$$\sqrt{\frac{नकोज्या.पभा}{१२^२ + \frac{नकोज्या^२.पभा^२}{त्रि^२}}} = क्रांज्या$$ । ततः $\frac{त्रि.क्रांज्या}{जिज्या}$ = रभुज्या, अस्या-

श्चापं रवेः भुजांशा भवेयुः । एतेन "तदा नतज्या त्रिभजीवयोरि" त्यादि भास्करोक्त-मुपपद्यते ।

तथा (१) अनेन "त्रिज्यादिनार्धसममण्डलान्तरासुज्ययोः कृतिविशेषः ।
स्वविषयविषुवच्छायावर्गेण गुणो द्विधा प्रथमः ॥१॥
व्यासार्धवर्गभक्तो लब्धं द्वादशजवर्गसंयुक्तम् ।
छेदो द्वितीयराशेर्लब्धं पदं क्रान्तिरर्कोऽतः ॥२॥

ब्रह्मगुप्तोक्तमित्युपपद्यते तथाऽस्यैव श्लोकान्तरमात्रं श्रीपत्युक्तम् —
"समनरनतकालज्या त्रिमौर्वीकरण्योर्विवरमभिहतं तद्वैषुवत्याश्च कृत्या

पृथगथ पदजीवा वर्गसंभक्तमाद्यं फलमिनकृतियुक्तं भाजकः सोऽन्यराशेः ॥ फलस्य यत्पदं भवेदपक्रमस्य शिञ्जिनी। स्फुटं ततश्च पूर्ववत्प्रसाधयेद्दिवाकरम् ॥ इत्युपपद्यते ॥ ९ ॥

हि.भा.—सूर्य के सममण्डल में रहने से जहां पर चालीस नतकाल हैं, और पलभा नौ (९) है वहां सूर्य के प्रमाण कहो ॥९॥

इसके उत्तर के लिए विचार।

यहां सम प्रवेशकाल में पलभा और नतकाल जानकर सूर्यानयन प्रकार के लिए प्रश्न है। रवि के सम प्रवेश में रहने से द्युज्याकर्ण, लम्बांशकोटि, नतांशभुज इन कर्णकोटि और भुज से जो चापीय त्रिभुज बनता है उसमें भुजसंमुखकोण=नतकाल, तब चापीय त्रिकोण मिति से—

$$\text{त्रि.नकोज्या} = \text{स्पक्रां} \times \text{स्पलं} \therefore \frac{\text{त्रि.नकोज्या}}{\text{स्पलं}} = \text{स्पक्रां} \;\Big|\; \text{परन्तु} \;\frac{\text{त्रि.लंज्या}}{\text{अज्या}} = \text{स्पलं}$$

$$\therefore \frac{\text{त्रि.नकोज्या}}{\text{स्पलं}} = \frac{\text{त्रि.नकोज्या}}{\frac{\text{त्रि.लंज्या}}{\text{अज्या}}} = \frac{\text{नकोज्या.अज्या}}{\text{लंज्या}} =$$

$$\frac{\text{नकोज्या.पभा}}{१२} = \text{स्पक्रां} \text{ । तथा } \text{त्रि}^2 + \text{स्प}^2\text{क्रां} = \text{छे}^2\text{क्रां}$$

$$\therefore \text{त्रि}^2 + \frac{\text{नकोज्या}^2.\text{पभा}^2}{१२^2} = \text{छे}^2\text{क्रा} = \frac{\text{त्रि}^2.१२^2 + \text{नकोज्या}^2.\text{पभा}^2}{१२^2}$$

$$\text{अनुपात से } \frac{\text{त्रि}^2.\text{स्प}^2\text{क्रां}}{\text{छे}^2\text{क्रां}} = \text{क्रान्तिज्या}^2$$

$$= \frac{\text{त्रि}^2.\text{नकोज्या}^2.\text{पभा}^2}{\text{त्रि}^2.१२^2 + \text{नकोज्या}^2.\text{पभा}^2} \text{ हर और भाज्य को (त्रि}^2\text{) इससे भाग देने से}$$

$$\frac{\text{नकोज्या}^2.\text{पभा}^2}{१२^2 + \frac{\text{नकोज्या}^2.\text{पभा}^2}{\text{त्रि}^2}} = \text{क्रांज्या}^2 \ldots (१) \text{ मूल लेने से क्रान्तिज्या होती है}$$

इस पर से सूर्य ज्ञान सुलभ ही है ॥

(१) इससे "त्रिज्यादिनार्धसममण्डलान्तरासुज्ययोः कृतिविशेषः।" इत्यादि।

यह ब्रह्मगुप्तोक्त उपपन्न होता है। इन्हीं के श्लोकान्तर रूप में श्रीपत्युक्त प्रकार है। जैसे—

"समनरनतकालज्या त्रिमौर्वीकरण्योर्विवरमभिहतं तद्वैषुवत्याश्च कृत्या।" इत्यादि।

इसीके सदृश "तदानतज्या त्रिभजीवयोर्यत्" इत्यादि भास्करोक्त भी है ॥ ९ ॥

इदानीमन्यप्रश्नानाह ।

यत्र शून्यतुरगाः पलांशकाः नोदयं व्रजति तत्र भानुमान् ।
केन नास्तमुपयाति नेहसा कीदृशश्च सविता निगद्यताम् ।। १०।।

वि. भा.—यत्र देशे शून्यतुरगाः (सप्ततिः) पलांशकाः (अक्षांशाः) सन्ति तत्र भानुमान् (सूर्यः) न उदयं व्रजति (उदयं गच्छति) केन नेहसा (कालेन) अस्तं न समुपयाति, तत्र सविता (सूर्यः) कीदृश इति कथ्यताम् ।।१०।।

अस्योत्तरार्थमुच्यते ।

यत्र देशेऽक्षज्या द्युज्या समा वा लम्बांशाः क्रान्तितुल्यास्तस्मिन् देशे मेषादिषु—कर्काद्येषु च त्रिषु राशिषु सूर्यो नास्तं गच्छत्यर्थादेतावधिपर्यन्तं सर्वदैव दृश्य एव तिष्ठति । तथा वृश्चिकादिषु—मकरादिषु च त्रिषु राशिषु नोदयति, यदा मेषादिगतस्य रवेः क्रान्तिज्या तुल्या लम्बज्या भवेयुस्तदा यो मध्यमार्कस्तथा कर्कादिगतस्य रवेर्यदा क्रान्तिज्या तुल्या लम्बज्यास्तदा यो मध्यमार्कस्तयोरन्तरे याः कलास्ता रविमध्यमगतिभक्तास्तदा दिनानि भवन्ति तावद्दिनपर्यन्तमुत्तरक्रान्तेर्लवांशाधिकत्वाद्रवेरनस्तमयः । दक्षिणक्रान्तेर्लम्बांशाधिकत्वात्तत्र तावद्दिनपर्यन्तं रवेरनुदय इति ।। १० ।।

यत्र देशे षट्षष्टि ६६ वा भागाधिका अक्षांशास्तत्र यावत्कालं रवेरुत्तरा क्रान्तिर्लम्बांशाधिका भवति तावत्कालं सर्वदादिनमेव । दक्षिणक्रान्तिर्यावत्कालं लम्बांशाधिका तावत्सर्वदा रात्रिरेव भवेत् अनुदयानस्तमययो रव्योरन्तराद्रविमध्यमगत्याऽनुपातेन तदन्तरदिनानयनं सुलभमेवेति ।।१०।।

हि. भा.—जिस देश में अक्षांश सत्तर है वहां सूर्य नहीं उदित होते हैं और कितने समय में सूर्य अनस्तमय होते हैं । और वहां सूर्य किस तरह के है सो कहो ।।१०।।

इसके उत्तर के लिए विचार ।

जिस देश में अक्षज्या और द्युज्या बराबर है या लम्बांश और क्रान्ति बराबर है उस देश में मेषादि तीन राशियों में और कर्कादि तीन राशियों में सूर्य अस्तंगत नहीं होते हैं अर्थात् इस अवधि में रवि बराबर दृश्य ही होते हैं । तथा वृश्चिकादि तीन राशियों में और मकरादि तीन राशियों में रवि उदित नहीं होते हैं । जब मेषादिगत रवि की क्रान्तिज्या तुल्य लम्बज्या होगी तब जो मध्यम रवि होंगे तथा कर्कादि गत रवि की क्रान्तिज्या तुल्य लम्बज्या जब हो तब जो मध्यम रवि होंगे उन दोनों मध्यम रवियों के अन्तर में जो कला है उनमें रवि मध्यमगति से भाग देने से दिन होते हैं उतने दिन तक उत्तर क्रान्ति के लम्बांशाधिक होने के कारण रवि के अनस्तमय होता है । दक्षिण क्रान्ति के लम्बांशाधिक होने के कारण उतने दिन रवि के अनुदय होता है ।।

वा जिस देश में ६६ अंश से अधिक अक्षांश हैं उस देश में जब तक रवि की उत्तरा-

क्रान्ति लम्बांशाधिक होती है तावत्कालपर्यन्त बराबर दिन होता है, दक्षिणक्रान्ति जब तक लम्बांशाधिक होती है तावत्कालपर्यन्त बराबर रात्रि ही होती है। अनुदय अनस्तम रवि के अन्तर से तथा रविमध्यम गति से अनुपात द्वारा उन दोनों के अन्तर सम्बन्धिदिनानयन बहुत सुलभ ही से होता है ॥१०॥

अथान्यं प्रश्नमाह ।

षट्कृतिः ३६ पललवाः समवृत्ते तिग्मगौविषयवर्गमिता भा ।
यत्र तत्र नलनीवनबन्धुं ब्रूहि तेऽत्र यदि कौशलमस्ति ॥११॥

वि. भा.—यत्र देशे षट्कृतिः (षट्त्रिंशत्) पललवाः (अक्षांशाः) सन्ति, तिग्मगौ (सूर्ये) समवृत्ते (सममण्डल प्रवेशे) विषयवर्ग २५ संमिता (पञ्चवर्गतुल्या) भा (छाया) अस्ति तत्र नलनीवनबन्धुं (सूर्यं) ब्रूहि (कथय) यदि ते (तव) अत्र गणिते कौशलमस्ति (नैपुण्यमस्ति) तदा कथयेति ॥११॥

एतदुत्तरार्थमुच्यते ।

यद्यप्यस्य प्रश्नस्योत्तरं मया पूर्वं लिखितं तथाप्यत्रोच्यते। सममण्डलच्छाया ज्ञाताऽस्ति तदा $\sqrt{\text{छा}^2+१२^2}$ = समकर्ण। ततः $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सक}}$ = सशंकु। तदा त्रिज्ययाऽक्षज्या लभ्यते तदा समशंकुना केत्यनुपातेन समागता क्रान्तिज्या तत्स्वरूपम् = $\frac{\text{अक्षज्या.सश}}{\text{त्रि}}$ अत्र समशङ्कोरुत्थापनेन $\frac{\text{अज्या.१२.त्रि}}{\text{सक.त्रि}} = \frac{\text{अज्या.१२}}{\text{सक}}$ = क्रान्तिज्या ।

ततः $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुज्या अस्याश्चापं रविभुजांशा भवेयुरिति ॥११॥

हि. भा.—जिस देश में छत्तीस अक्षांश है सूर्य के सममण्डल में रहने से पच्चीस छाया होती है तब सूर्य के प्रमाण को कहो यदि इस गणित में तुम्हें निपुणता है तो कहो ॥११॥

इसके उत्तर के लिए विचार करते हैं।

यद्यपि इस प्रश्न के उत्तर हम पहले एक जगह लिख चुके हैं तथापि यहां लिखते हैं। यहां सममण्डलच्छाया विदित है तब $\sqrt{\text{छा}^2+१२^2}$ = समकर्ण तब $\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{सक}}$ = समशंकु। त्रिज्या में यदि अक्षज्या पाते हैं तो समशंकु में क्या इस अनुपात से क्रान्तिज्या आती है, $\frac{\text{अज्या.सश}}{\text{त्रि}}$ = क्रान्तिज्या, यहां समशंकु को उत्थापन देने सु $\frac{\text{अज्या.१२.त्रि}}{\text{सक.त्रि}}$ = $\frac{\text{अज्या.१२}}{\text{सक}}$ = क्रांज्या इससे $\frac{\text{त्रि.क्रांज्या}}{\text{जिज्या}}$ = रविभुज्या, इसके चाप करने से रवि के भुजांश होते हैं ॥११॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

यत्र वेददहनाः पलांशकास्तिग्मगौ च मिथुनान्तसंस्थिते ।
वन्हिपूर्वदिशि मध्यगे तथा तत्र शंकुमिति मुच्यतां बुधाः ॥१२॥

वि. भा.—यत्र देशे वेददहनाः (चतुस्त्रिंशत्) पलांशकाः (अक्षांशाः) सन्ति; वन्हिपूर्वदिशि मध्यगे (आग्नेयपूर्वदिश्योर्मध्ये) मिथुनान्तसंस्थिते तिग्मगौ (मिथुनान्तस्थिते सूर्ये) सति तत्र देशे हे बुधाः शंकुमितिं (शंकुमानं) उच्यतामिति ॥ १२ ॥

एतदुत्तरार्थमुच्यते ।

अत्राऽक्षांशज्ञानेन [सूर्ये आग्नेयपूर्वदिशोर्मध्ये मिथुनान्तस्थिते तदीयः शंकुः (कोणशंकुः) को भवतीति विचारार्थम् अक्षांशज्ञानेन पलभाज्ञानं तथा रविर्मिथुनान्तेऽस्ति तेन तत्क्रान्ति=जिनांशः ततो $\frac{\text{त्रि.जिज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा । तदाऽग्रापलभयोर्ज्ञानेन "त्रिज्याकृतिदलमग्राकृतिवियुगि" त्यादिना सुखेन विदिक्कोणशंकुज्ञानं भवेदेवेति ॥ १२ ॥

हि. भा.—जिस देश में चौंतीस अक्षांश है और आग्नेय तथा पूर्वदिशा के मध्य में मिथुनान्त में रवि के रहने पर उस देश में शंकुमान (कोणशंकु) को कहो ॥१२॥

इसके उत्तर के लिए विचार करते हैं ।

यहां अक्षांश ज्ञान से तथा आग्नेय और पूर्व दिशाओं के मध्य में मिथुनान्त में रवि के रहनेसे शंकु (कोणशंकु) मान क्या होता है इसके विचार के लिये अक्षांशज्ञान से पलभा का ज्ञान होगा, रवि मिथुनान्त में है इसलिए क्रान्तिज्या = जिनज्या तब $\frac{\text{त्रि. क्रांज्या}}{\text{लंज्या}}$ = अग्रा
इस तरह अग्रा के ज्ञान होने से "कोणशंकानयनविधि" द्वारा कोणशङ्कु ज्ञान होजायगा ॥ १२ ॥

इदानीमन्यं प्रश्नमाह ।

वल्लकीभृदवसानमागतः कुङ्कुमारुणरुचिर्गभस्तिमान् ।
नाऽस्तमेति पलशिञ्जिनीं जनाः कीर्त्तयन्ति कियतीं वदाचिरात् ॥ १३ ॥

वि. भा.—कुङ्कुमारुणरुचिः (कुङ्कुमसदृशरक्तकान्तिः) गभस्तिमान् (सूर्यः) वल्लकीभृदवसानं (वल्लकीं वीणां बिभर्ति धारयति वल्लकीभृद्धनुस्तदवसानमन्तं) आगतः, नास्तमेत्यर्थाद्धनुरन्तमागतः सूर्यो नास्तं गच्छति, तत्र जनाः (लोकाः) कियतीं पलशिञ्जिनीं (अक्षज्यां) कीर्त्तयन्ति (गायन्ति) इत्यचिरात् (शीघ्रं) वद (कथय) अर्थात्सूर्यः धनुरन्तं प्राप्तो नास्तं गच्छति स कीदृशो देशस्तदक्षांशमानं कथयेति प्रश्नः ॥ १३ ॥

अत्रोपपत्तिः ।

धनुरन्तक्रान्तिः = २४°, एतत्तुल्यलम्बांशेऽक्षांशाः = ६६°, एतस्मादधिकेऽक्षांशेऽर्थाद्धनुरन्तक्रान्तितोऽल्पे लम्बांशे धनुर्मकरौ सर्वदाऽदृश्यावेव भवतः । लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र । यावच्च याम्या सततं तमिस्रा इत्याद्युक्तेर्याम्यगोलीयधनुरन्तक्रान्तेर्लम्बांशस्याल्पत्वात्सर्वदा तददृश्यता भवेदेव तत्राक्षांशमानं शट्षष्टितोऽधिकमिति दिक् ।। १३ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारे स्फुटः प्रश्नाध्यायः पञ्चदशः ।

इति आनन्दपुरीय भट्टमहदत्तसुतवटेश्वराचार्यविरचिते वटेश्वरसिद्धान्ते त्रिप्रश्नाधिकारस्तृतीयोऽधिकारः समाप्तिमगमदिति ।

हि. भा.—कुङ्कुम की तरह लाल कान्ति वाले सूर्य वल्लकीभृत् (धनु) उसके अन्त (धनुरन्त) में आकर अस्तंगत नहीं होते हैं किस देश में यह स्थिति होती है उस देश के अक्षांश को कहो ।। १३ ।।

उपपत्ति

धनुरन्तक्रान्ति = २४°, इतने लम्बांश देश में अक्षांश = ६६°, इससे अधिक अक्षांश में अर्थात् धनुरन्तक्रान्ति से अल्पलम्बांश में धनु और मकर सर्वदा अदृश्य ही रहते हैं "लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र । यावच्च याम्यं सततं तमिस्रा" इस उक्ति से दक्षिणगोलीय धनुरन्तक्रान्ति को लम्बांशाधिक होने से सर्वदा उसकी अदृश्यता होती है वहां अक्षांशमान ६६ छियासठ अंश से अधिक होता है । इति ।। १३ ।।

इति वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में स्फुटप्रश्नाध्यायविधि नामक पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

इति आनन्दपुरीय भट्ट महदत्त के पुत्र वटेश्वराचार्य-विरचित वटेश्वरसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार नामक तृतीय अधिकार समाप्त हुआ ।।

